योगवसिष्ठ भाषा

भाग १

इति पृ. ५६०

इति.पु. ५60

ॐ

सच्चिदानन्दाय नमः ।

योगवासिष्ठ भाषा ।

भाग १ ला.

जिसमें

१ वैराग्यप्रकरण, २ मुमुक्षुप्रकरण, ३ उत्पत्तिप्रकरण, ४ स्थितिप्रकरण, ५ उपशमप्रकरण है ।

जिसको

इति पृ. ५६०

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बम्बई

निज "श्रीवेंकटेश्वर" (स्टीम) यन्त्रालयमें

मुद्रित कर प्रकाशित किया ।

संवत् १९८१ शके १८४६.

यह पुस्तक खेमराज श्रीकृष्णदासने बम्बई खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लेन, निज "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् मुद्रण-यन्त्रालयमें अपने लिये मुद्रित कर यहीं प्रकाशित किया ।

NEPAL SANSKRIT UNIVERSITY, 1986 A.D.
पुस्तकालय
Acc. 1099 / १०५५

NEPAL SANSKRIT UNIVERSITY
पुस्तकालय

दशरथराजा
रा.
ल.
श.

श्रीसच्चिदानन्दब्रह्मणे नमः ।

प्रस्तावना ।

हे पाठकगण! उस सच्चिदानंद परब्रह्मको हम कोटिशः धन्यवाद देते हैं कि, जिसने वेदांत सिद्धांत वाक्यरूप कतरानियोंसे हमारा मायाजाल कतरकर उद्धार किया है और आनंदमय अपना धाम दरशाया है। अहो ! उस दयालु प्रभुकी दयालुताको हम कैसे वर्णन कर सकते हैं कि, जिसने चौरासी लक्ष योनियोंमें भ्रमते हुए हमलोगोंको मनुष्यशरीर दिया; फिर भी हमारा अज्ञान नष्ट करनेके लिये वेदांतशास्त्र प्रकट किया । हाय ! इतनेपर भी हम न समझें तो हमारी ऐसी मूर्खता है कि, जैसे हथेलीपर आया हुआ अमृत अज्ञानसे त्याग देना और खाना नहीं । अब प्रकृतका अनुसरण करते हैं कि, उसी वेदांतसिद्धांतशास्त्रमें यह एक ग्रंथ योगवासिष्ठ है जिसे कि महर्षिवाल्मीकिजीने निर्माण किया है और वशिष्ठजी महाराजने रघुवंशमणि श्रीरामचंद्रजीके प्रति उपदेश किया है । अहो! इस ग्रन्थकी शैलीको क्या अन्य ग्रंथ प्राप्त हो सकता है ? कदापि नहीं, कि जिसमें वेदांतके गूढ पदार्थ कथारूपकरके ऐसी सरलरीतिसे दरशाये हैं मानो करतलमें आमलक। अब इस आबालवृद्ध विख्यात अतिअवदात ग्रंथकी अविज्ञात ग्रंथके समान प्रशंसा करनी उचित न समझकर इस भाषाग्रंथके विषयमें लिखता हूँ कि, यह योगवासिष्ठभाषाग्रंथ ऐसा कदापि न जानना चाहिये कि, अज्ञानभ्रमको दूर नहीं कर सके; यह अवश्य ही अज्ञानभ्रमको दूर करता है क्योंकि, किसी महात्माने युक्तिके साथ कहा है, जैसे कि–

दोहा–ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित, ताकी वाणी वेद ।
भाषा अथवा संस्कृत, करत भेद भ्रम छेद ॥ १ ॥

इसलिये जब अन्य ब्रह्मज्ञानीजननकी भाषावाणी भी अज्ञान दूर करनेके लिये वेदरूप है तो फिर महर्षि वाल्मीकिजीके ग्रंथके भाषानुवादका तो कहना ही क्या है। यद्यपि यह ग्रंथ अक्षरार्थानुरूप अनुवादित नहीं कियागया किंतु कथानुरूप अनुवादित किया गया है तथापि इसके कथादृष्टांतोंको दार्ष्टांतिकोंपर ऐसा समेटा है कि, मानो सागरका जल गागरमें भर लिया है। इसका कथानुरूप अनुवाद होनेका कारण भिन्नभिन्न प्रकारसे सुना जाताहै। कोई तो कहते हैं कि, कोई माहात्मा कहीं योगवासिष्ठकी कथाश्रवण करके आया करते और अतिदयालुतासे मुमुक्षुजनोंके हितार्थ उतनीही कथाको कंठसे लिख लिया करते थे; और कोई ऐसा कहते हैं कि, अबसे १०० वर्षपूर्व पंजाबदेशके अंतर्गत सर्वविज्ञात पटियाला नामक राजधानीमें

श्रीसाहबसिंह नामवाले राजा हुए उनकी दो बहिनें विधवायें थीं। उनकी अद्वैतमतमें अत्यंत निष्ठा थी इसलिये वेदांतशास्त्रकी ही कथा श्रवण किया करती थीं। एक समय निरंजनी साधु रामप्रसादजीके मुखसे इन्होंने इस योगवासिष्ठकी कथा श्रवण करिके पश्चात् वेदांतसिद्धांतका प्रकाशक सूर्यरूप इस ग्रंथको समझकर इन्होंने विचार किया कि, यह उत्तम ग्रंथ देववाणीमें होनेसे सर्वोपयोगी नहीं इसलिये इसकी भाषा कराकर हम ऐहलौकिक यश और पारलौकिक कल्याणको प्राप्त होवें ऐसा विचारकर फिर उसी (उक्त) साधुसे कथाका प्रारंभ कराया और दो पंडित लिखनेके वास्ते बैठा दिये; जैसे जैसे ये साधु कथाका व्याख्यान करते गये वैसे वैसे ही पंडित लिखते गये। आशय यह कि, व्याख्यानरूप यह योगवासिष्ठकी सम्पूर्ण कथा पंजाबीमिश्र हिंदीभाषामें लिखी गयी और दोनों पुस्तकोंका मिलान कर एक शुद्ध प्रति बनायी गयी। पश्चात् अतिउत्तम होनेके कारण शीघ्र ही यह ग्रंथ सब देशोंमें प्रचलित हो गया इन पूर्वोक्त उपकारपरायणोंको हम कोटिशः धन्यवाद देते हैं कि, जिन्होंने परलोकसुखसाधन भूत यह ग्रंथ प्रचलित करके परम उपकार किया। इस ग्रंथके वैराग्य आदि षट् ६ प्रकरण हैं उनमें उस उस नामवाले प्रकरणमें उस उस विषयका ऐसा वर्णन किया है कि; मानो साक्षात् मूर्त्तिमान् वह विषय उपस्थित है। इसप्रकार वेदांतसिद्धांत इसमें ऐसा दरशायागया है कि, जिसका श्रवण मनन और निदिध्यासन करनेसे अवश्य ही मनुष्य प्रपंचजालसे छूटकर मोक्षपदका भागी होजाता है। यह ग्रंथ अति शुद्ध कराकर मैंने अपने यंत्रालयमें प्रकाशित किया है और महात्माओंकी रुचिके कारण मैंने इसे दो प्रकारसे मुद्रित किया है एक ग्रंथसाइज व दूसरी बुकसाइज। बुकसाइज सुनहरी काम कराकर अति उत्तम बनवायी है और इसे सर्व समय विचारोपयोगी होनेके कारण बुकसाइजके दो विभाग कियेगये हैं। अब महात्माओंसे निवेदन है कि इसमें कहीं दृष्टिदोषसे जो अशुद्धियां रहगयीं हों उन्हें क्षमा करें।

आपका कृपाकांक्षी—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयाध्यक्ष,—बंबई.

योगवासिष्ठकी अनुक्रमणिका ।

I. वैराग्यप्रकारणकी अनुक्रमणिका १.

सर्गांक.	सर्गनाम.	पृष्ठांक.
१	कथारम्भवर्णन	१
२	कथारम्भवचन	७
३	तीर्थयात्रावर्णन	९
४	दिवस व्यवहार वर्णन	१३
५	कार्श्य वर्णन	१४
६	विश्वामित्रागमनवर्णन	१५
७	विश्वामित्रेच्छावर्णन	१८
८	दशरथोक्तिवर्णन	२०
९	वसिष्ठसमाश्वासनवर्णन	२२
१०	रामविषादवर्णन	२४
११	रामसमाश्वासनवर्णन	२८
१२	रामेण वैराग्यवर्णन	२९
१३	लक्ष्मीतिरस्कारवर्णन	३३
१४	संसारसुखनिषेधवर्णन	३५
१५	अहंकारदुराशावर्णन	३७
१६	चित्तदौरात्म्यवर्णन	३९
१७	तृष्णागारुडीवर्णन	४३
१८	देहनैराश्यवर्णन	४६
१९	बालावस्थावर्णन	५२
२०	युवागारुडीवर्णन	५४
२१	स्त्रीदुराशावर्णन	५९
२२	जरावस्थावर्णन	६३
२३	कालवृत्तांतवर्णन	६७
२४	कालविलासवर्णन	७०
२५	कालकालिकावर्णन	७१
२६	कालविलासवर्णन	७२
२७	सर्वपदार्थाभाववर्णन	७५
२८	जगद्विपर्ययवर्णन	७९
२९	सर्वांतप्रतिपादनवर्णन	८२
३०	वैराग्यप्रयोजनवर्णन	८४
३१	अनन्यत्यागवर्णन	८६
३२	देवसमाजवर्णन	८८
३३	मुनिसमाजवर्णन	८९

मुमुक्षुप्रकरणकी अनुक्रमणिका २. II.

सर्गांक.	सर्गनाम.	पृष्ठांक.
१	शुकनिर्वाणवर्णन	९७
२	विश्वामित्रोपदेशवर्णन	९४
३	असंख्यसृष्टिप्रतिपादनवर्णन ...	९६
४	पुरुषार्थोपक्रमवर्णन	९९
५	पुरुषार्थवर्णन	१००
६	परमपुरुषार्थवर्णन	१०४
७	पुरुषार्थोपमावर्णन	१०६
८	परमपुरुषार्थवर्णन	१०९
९	परमपुरुषार्थवर्णन	१११
१०	वसिष्ठोत्पत्ति तथा वसिष्ठोपदेशागमन वर्णन	११३
११	वसिष्ठोपदेशवर्णन	११६
१२	तत्त्वज्ञमाहात्म्यवर्णन	१२१
१३	समवर्णन	१२४
१४	विचारनिरूपण	१३०
१५	संतोषनिरूपण	१३३
१६	साधुसंगनिरूपण	१३५
१७	षट्प्रकरणविवरण	~~१४०~~ १४०~१४३

१८ वर्णन P. १४०~१४३

सर्गांक.	सर्गनाम.	पृष्ठांक.
१८	दृष्टांतप्रमाणवर्णन	१४२
१९	प्रमाणनिरूपण	१४९
२०	आत्मप्राप्तिवर्णन	१५१

उत्पत्तिप्रकरणकी अनुक्रमणिका ३.

सर्गांक.	सर्गनाम.	पृष्ठांक.
१	बन्धहेतुवर्णन	१५३
२	बन्धहेतुवर्णन ...	१५६
३	बन्धहेतुवर्णन ...	१६०
४	उत्पत्तिप्रकरणार्थ वर्णन... ...	१६२
५	मूलकारणदेवस्वरूपवर्णन ...	१६७
६	प्रयत्नोपदेशवर्णन	१६९
७	दृश्यासत्ताप्रतिपादन	१७०
८	सच्छास्त्रनिरूपण	१७४
९	परमकारणवर्णन	१७५
१०	परमात्मस्वरूपवर्णन ...	१७७
११	परमार्थरूपवर्णन	१८१
१२	जगदुत्पत्तिवर्णन	१८३
१३	स्वयंभूत्पत्तिवर्णन	१८५
१४	सर्वब्रह्मप्रतिपादन ...	१८७
१५	मण्डपोपाख्याने राजवर्णन ...	१९६
१६	मण्डपोपाख्याने राज्ञीपरिदेवनवर्णन	१९८
१७	सन्देहराष्ट्रवर्णन	२००
१८	सकलजगद्भ्रान्तिवर्णन ...	२०४
१९	ब्राह्मणमरणवर्णन	२०६
२०	परमार्थप्रतिपादनवर्णन ...	२०८
२१	विश्रांतिवर्णन	२१२
२२	विज्ञानाभ्यास वर्णन ...	२१७
२३	लीलाप्रज्ञादेव्योर्ज्ञानदेहाकाशगमनवर्णन	२१९
२४	लीलोपाख्याने आकाशगमनवर्णन	२२०
२५	लीलोपाख्याने भूलोक वर्णन	२२१
२६	लीलोपाख्याने सिद्धदर्शनहेतुवर्णन	२२२
२७	लीलोपाख्याने जन्मांतरवर्णन	२२४
२८	लीलोपाख्याने गिरिग्रामवर्णन	२२७
२९	लीलोपाख्याने परमाकाशगमन	२२९
३०	लीलोपाख्याने चित्र ब्राह्मण्डकोटिवर्णन	२३२
३१	लीलोपाख्याने युद्धप्रेक्षकस्थिताम्बर-वर्णन	२३३
३२	लीलोपाख्याने आहवारम्भवर्णन	२३५
३३	लीलोपाख्याने सेनयोः प्रथमपात वर्णन	”
३४	लीलोपाख्याने रणप्रेक्षणवर्णन	२३६
३५	लीलोपाख्याने द्वंद्वयुद्धवर्णन	२३७
३६	लीलोपाख्याने सहायकागमनवर्णन	२३८
३७	लीलोपाख्याने जनपदयुद्धवर्णन	२३९
३८	लीलोपाख्याने युद्धनिवृत्तिवर्णन	”
३९	लीलोपाख्याने निशाचरकुलरात्रिरणांगणवर्णन	२४०
४०	लीलोपाख्याने स्मृत्यनुभववर्णन	”
४१	लीलोपाख्याने भ्रांतिविचारवर्णन	२४६
४२	लीलोपाख्याने स्वप्नपुरुषसत्यतावर्णन	२५१
४३	लीलोपाख्याने अग्निदाहवर्णन ...	२५३
४४	लीलोपाख्याने अग्निदाहवर्णन ..	२५५
४५	लीलोपाख्याने सत्यकामसंकल्पवर्णन	२५८
४६	विदूरथनिर्याणवर्णन	२६०
४७	विदूरथसिंधुसमागमवर्णन	”
४८	आयुधवर्णन	२६१
४९	तृतीयास्त्रयुद्धवर्णन	२६४
५०	विदूरथमरणवर्णन	”
५१	सिंधुराष्ट्रवर्णन	२६२
५२	लीलोपाख्याने मृत्युमूर्च्छानन्तरप्रतिमावर्णन	”
५३	लीलोपाख्याने मंडपाकाशगमनवर्णन	२६८
५४	लीलोपाख्याने मृत्युविचारवर्णन ...	२७१
५५	लीलोपाख्याने संसारभ्रमवर्णन ...	२७७
५६	लीलोपाख्याने मरणानंतरावस्थावर्णन	२८२
५७	लीलोपाख्याने स्वप्नपदार्थनिवृत्तिनिर्णय	२८६
५८	लीलोपाख्याने जीवजीवनवर्णन ...	२८३
५९	लीलोपाख्याने निर्वाणवर्णन ...	२९९

सर्गांक.	सर्गनाम.	पृष्ठांक.
६०	प्रयोजनवर्णन	२९४
६१	जगत्किंचनवर्णन ...	३००
६२	दैवशब्दार्थविचारवर्णन ...	३०४
६३	चित्ताविकारवर्णन ...	३०६
६४	बीजांकुरवर्णन ...	३०७
६५	जीवविचारवर्णन ...	३१०
६६	संसृत्युपशमयोगवर्णन ...	३१२
६७	सत्योपदेशवर्णन ...	३१४
६८	राक्षसीवर्णन ...	३२१
६९	विषूचिकामंत्रकथन ...	३२२
७०	विषूचिकाव्यवहारवर्णन ...	३२३
७१	सूचीपरिदेवन ...	३२४
७२	सूचीतपःप्रभाववर्णन ...	३२५
७३	सूचीवर्णन ...	३२६
७४	सूचीतपःपाकवर्णन ...	३२७
७५	राक्षसीविचारवर्णन ...	३३१
७६	अन्यायबाधकत्ववर्णन ...	३२९
७७	राक्षसीविचारवर्णन ...	३३०
७८	राक्षसीवर्णन ...	३३१
७९	राक्षसीप्रश्नवर्णन ...	३३३
८०	राक्षसीप्रश्नभेदवर्णन ...	३३६
८१	सूचीउपाख्याने परमार्थनिरूपण ...	३४१
८२	राक्षसीसौहृदवर्णन ...	३४८
८३	कंदरापूजनवर्णन ...	३५२
८४	मनोऽङ्कुरोत्पत्तिकथन ...	३५३
८५	ब्रह्मादित्यसमागमवर्णन ...	३५७
८६	ऐंदवसमाधिवर्णन ...	३५९
८७	जगद्रचनानिर्वाणवर्णन ...	३६२
८८	ऐंदवनिश्चयकथन ...	३६३
८९	कृत्रिमेंद्रवाक्य ...	३६५
९०	अहल्यानुरागसमाप्तिवर्णन ...	३६८
९१	जीवक्रमोपदेशवर्णन ...	३६९
९२	मनोमाहात्म्यवर्णन	३७३
९३	वासनात्यागवर्णन	३७६
९४	सर्वब्रह्मप्रतिपादनवर्णन	३७७
९५	कर्मपौरुषयोरैक्यप्रतिपादन ...	३७८
९६	मनःसंज्ञाविचारवर्णन	३८१
९७	चित्ताकाशमाहात्म्यवर्णन	३८६
९८	चित्तोपाख्यानवर्णन	३८९
९९	चित्तोपाख्यानसमाप्तिवर्णन ...	३९०
१००	चित्तचिकित्सावर्णन	३९३
१०१	बालकाख्यायिकावर्णन	३९६
१०२	मनोनिर्वाणोपदेशवर्णन	३९८
१०३	चित्तमाहात्म्यवर्णन	४०२
१०४	नृपमोहनवर्णन	४०४
१०५	राजप्रबोधवर्णन	४०७
१०६	चांडालीविवाहवर्णन	४०९
१०७	इन्द्रजालोपाख्यानोपद्रववर्णन ...	४११
१०८	अकांडदुर्भिक्षवर्णन	४१३
१०९	शम्बरिकोपाख्यानवर्णन	४१४
११०	चित्तवर्णन	४१५
१११	मनःशक्तिरूपप्रतिपादन	४२०
११२	सुखोपदेशकथन	४२४
११३	अविद्यावर्णन	४२७
११४	दोषपरिहारोपदेशवर्णन	४३२
११५	सुखदुःखभोक्तृत्वोपदेशकथन ...	४३८
११६	सात्विकजन्मावतार	४४०
११७	अज्ञानभूमिकावर्णन	४४२
११८	ज्ञानभूमिकोपदेशवर्णन	४४४

सर्गांक.	सर्गनाम.	पृष्ठांक.
११९	मुक्तोपदेशवर्णन	४४७
१२०	चांडालीशोकवर्णन	४४८
१२१	चित्ताभावप्रतिपादन	४४९
१२२	परमार्थनिरूपण	४५३

स्थितिप्रकरणकी अनुक्रमणिका ४.

सर्गांक.	सर्गनाम.	पृष्ठांक.
१	जगन्निराकरणवर्णन	४५८
२	स्मृतिबीजोपन्यास	४६०
३	जगदनन्तवर्णन	४६२
४	अङ्कुरवर्णन	४६४
५	भार्गवसंविद्भ्रमणवर्णन	४६५
६	भार्गवमनोराज्यवर्णन	४६७
७	भार्गवसंगमवर्णन	४६८
८	भार्गवोपाख्याने विविधजन्मवर्णन	४७०
९	भार्गवकलेवरवर्णन	४७२
१०	कालवाक्यवर्णन	४७३
११	संसारावर्त्तवर्णन	४७७
१२	उत्पत्तिविस्तारवर्णन	४८२
१३	भृगवाश्वासनवर्णन	४८३
१४	भार्गवजन्मांतरवर्णन	४८५
१५	शुक्रप्रथमजीवनवर्णन	४८७
१६	भार्गवजन्मांतरवर्णन	४९०
१७	मनोराज्यसम्मीलनवर्णन	४९३
१८	जीवपदवर्णन	४९४
१९	जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयारूपवर्णन	४९९
२०	भार्गवोपाख्यानसमाप्तिवर्णन	५०२
२१	विज्ञानवादवर्णन	५०३
२२	अनुत्तमविश्रामवर्णन	५०७
२३	शरीरनगरवर्णन	५१०
२४	मनस्विसत्यताप्रतिपादन	५१४
२५	दामव्यालकटोत्पत्तिवर्णन	५१६
२६	दामव्यालकटसंग्रामवर्णन	५१८
२७	ब्रह्मवाक्यवर्णन	५१९
२८	सुरासुरयुद्धवर्णन	५२३
२९	असुरहननवर्णन	५२४
३०	दामव्यालकटजन्मांतरवर्णन	५२६
३१	निर्वाणोपदेशवर्णन	५२७
३२	देशाचारवर्णन	५३१
३३	पुरुषार्थजयवर्णन	५३५
३४	दामव्यालकटोपाख्यानसमाप्तिवर्णन	५४१
३५	उपशमवर्णन	५४३
३६	चिदात्मरूपवर्णन	५४९
३७	शांत्युपदेशकरण	५५१
३८	मोक्षोपदेशवर्णन	५५२
३९	सर्वैकताप्रतिपादन	५५५
४०	ब्रह्मप्रतिपादन	५५९
४१	अविद्याकथन	५६१
४२	जीवतत्त्ववर्णन	५६५
४३	जीवबीजसंस्थावर्णन	५६८
४४	संसारप्रतिपादन	५७१
४५	यथार्थोपदेशयोगवर्णन	५७५
४६	यथाभूतार्थबोधयोगवर्णन	५७९
४७	जगत्सत्यासत्यनिर्णय	५८१
४८	दाशूरोपाख्याने वनोपहननवर्णन	५८७
४९	दाशूरकदंबवृक्षवर्णन	५९०
५०	शूरदिगवलोकन	"
५१	दाशूरसुतबोधवर्णन	५९१
५२	खोत्थवैभववर्णन	५९३
५३	संसारविचारवर्णन	५९५
५४	जगच्चिकित्सावर्णन	६०३
५५	कर्तव्यविचारवर्णन	६०४

सर्गांक.	सर्गनाम.	पृष्ठांक.
५७ ५६	पूर्णस्वरूपवर्णन	६०९
५८ ५७	कचगाथावर्णन	६१४
५९ ५८	कमलजाव्यवहारवर्णन ...	६१५
६० ५९	विचारपुरुषनिर्णय	६१८
६१ ६०	मोक्षविचारवर्णन	६२२
६२ ६१	मोक्षोपायवर्णन	६२४

V. उपशमप्रकरणकी अनुक्रमणिका ५.

सर्गांक.	सर्गनाम.	पृष्ठांक.
१	पूर्वदिनवर्णन	६२७
२	उपदेशानुसारवर्णन	६२८
३	सभास्थानवर्णन	६३२
४	राघवप्रश्नवर्णन	६३३
५	प्रथमोपदेशवर्णन	६३६
६	क्रमोपदेशवर्णन	६४१
७	क्रमसूचनावर्णन	६४३
८	सिद्धगीतावर्णन	”
९	जनकविचारवर्णन ... ... महाकल्प = P. 648.	६४५
१०	जनकनिश्चयवर्णन	६५१
११	चित्तानुशासनवर्णन	४५४
१२	प्राज्ञसहिमवर्णन	६५५
१३	मनोनिर्वाणवर्णन	६५८
१४	चित्तचैतन्यरूपवर्णन	६६६
१५	तृष्णावर्णन	६७१
१६	तृष्णाचिकित्सोपदेशवर्णन ...	६७३
१७	तृष्णोपदेशवर्णन	६७५
१८	जीवन्मुक्तवर्णन	६७८
१९	पावनबोधवर्णन	६८३
२०	पावनबोधवर्णन	६८६
२१	तृष्णाचिकित्सोपदेश	६८९
२२	विरोचनवर्णन	६९२
२३	बलिवृत्तांतविरोचनगाथा	६९५
२४	बल्युपाख्याने चित्तचिकित्सोपदेशवर्णन	६९७
२५	बलिचिंतासिद्धांतोपदेशवर्णन ...	७०१
२६	बल्युपदेशवर्णन	७०३
२७	बलिविश्रांतिवर्णन	७०४
२८	बलिविज्ञानप्राप्तिवर्णन	७०७
२९	बल्युपाख्यानसमाप्तिवर्णन	७०८
३०	हिरण्यकशिपुवधवर्णन	७१२
३१	प्रह्लादविज्ञानवर्णन	७१४
३२	प्रह्लादोपाख्याने विविधव्यतिरेकवर्णन	७१८
३३	प्रह्लादाष्टकानंतरं नारायणागमनवर्णन	७२०
३४	प्रह्लादोपदेशवर्णन	७२२
३५	आत्मलाभचिंतनवर्णन	७३०
३६	प्रह्लादोपाख्याने संस्तवनवर्णन ...	७३६
३७	दैत्यपुरीप्रभञ्जनवर्णन	७४१
३८	भगवच्चित्तविवेकवर्णन	७४२
३९	नारायणवचनोपन्यासयोगवर्णन ...	७४३
४०	प्रह्लादबोधवर्णन	७४६
४१	प्रह्लादाभिषेकवर्णन	७४८
४२	प्रह्लादव्यवस्थावर्णन	७५१
४३	प्रह्लादविश्रांतिवर्णन	७५२
४४	गाधिबोधोपाख्यानेगाधिविनाशवर्णन	७५३
४५	गाधिबोधोपाख्याने चांडालीवर्णन ...	७५६
४६	राजप्रध्वंसवर्णन ...	७५९
४७	प्रत्यक्षावलोकनवर्णन ...	७६१
४८	मायामहत्त्ववर्णन ...	७६४
४९	गाधिबोधप्राप्तिवर्णन ...	७७०
५०	राघवसेवनवर्णन ...	”
५१	उद्दालकविचारवर्णन ...	७७६
५२	उद्दालकविचारवर्णन ...	७७९
५३	उद्दालकविश्रांतिवर्णन ...	७८२

सर्गांक.	सर्गनाम.	पृष्ठांक.
५४	उद्दालकविश्रांतिवर्णन	... ७८८
५५	ध्यानविचारवर्णन	... ७९१
५६	भेदनिरासवर्णन	... ७९६
५७	सुरघवृत्तांतमांडव्योपदेशवर्णन	... ७९७
५८	सुरघवृत्तांतवर्णन	... ८००
५९	सुरघवृत्तांतसमाप्तिवर्णन	... ८०३
६०	सुरघपरघसमागमवर्णन	... ८०४
६१	समाधिनिश्चयवर्णन	... ८०७
६२	सुरघपरघनिश्चयवर्णन	... ८०९
६३	कारणोपदेशवर्णन	... ८११
६४	भासविलासवृत्तांतवर्णन	... ८१५
६५	अनित्यताप्रकरण	... ८१६
६६	अन्तरासङ्गविचारवर्णन	... ८१८
६७	संसक्तविचारवर्णन	... ८२१
६८	शांतसमाचारयोगोपदेशवर्णन	... ८२५
६९	संसक्तचिकित्सावर्णन	... ८२६
७०	संसारयोगोपदेशवर्णन	... ८२९
७१	मोक्षस्वरूपोपदेशवर्णन	... ८३५
७२	आत्मविचारवर्णन	... ८३८
७३	निरास्पदमौनविचारवर्णन	... ८४१
७४	मुक्तामुक्तविचारवर्णन	... ८४९
७५	संसारसागरयोगोपदेशवर्णन	... ८५४
७६	जीवन्मुक्तवर्णन	... ८५५
७७	जीवन्मुक्तिज्ञानबन्धवर्णन	... ८५८
७८	सम्यग्ज्ञानवर्णन	... ८६२
७९	चित्तोपशमयोगवर्णन	... ८६४
८०	चित्तशांतिप्रतिपादनवर्णन	... ८६७
८१	वीतवोपाख्याने चित्तानुशासनवर्णन	... ८६९
८२	वीतवोपाख्यानेऽनुशासनयोगोपदेशवर्णन	८७५
८३	" चित्तोपदेशवर्णन	... ८७८
८४	वीतवमनोज्ञवर्णन	... ८८१
८५	वीतवसमाधियोगोपदेशवर्णन	... ८८३
८६	" इंद्रियनिर्वाणवर्णन	... ८८५
८७	वीतवनिर्वाणयोगोपदेशवर्णन	... ८८९
८८	वीतवविश्रांतिसमाप्तिवर्णन	... ८९१
८९	सिद्धिलाभविचारवर्णन	... ८९३
९०	दानविचारवर्णन	... ८९७
९१	स्मृतिबीजविचारवर्णन	... ८९९
९२	संशयनिराकरणोपदेशवर्णन	... ९०८
९३	मोक्षोपायवर्णन	... ९१२

इति.

परमात्मने नमः ।

अथ श्रीयोगवासिष्ठे

वैराग्यप्रकरण--प्रारंभः ।

प्रथमः सर्गः १.

अथ कथारंभवर्णनम् ।

सत्-चित्-आनंदरूप जो आत्मा है तिसको नमस्कार है. सो कैसा है जिसते यह सब भासत है, अरु जिसविषे यह सर्व लीन होत है, अरु जिस विषे यह सब स्थित है, तिस सत्य आत्माको नमस्कार है. ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, कर्त्ता, करण, क्रिया, जिसकरके सिद्ध होता है, ऐसा जो ज्ञानरूप आत्मा है, तिसको नमस्कार है. जिस आनंदके समुद्रके कणसों संपूर्ण विश्व आनंदवान् है, अरु जिस आनंद करि सर्व जीव जीवते हैं, तिस आनंद आत्माको नमस्कार है.

कोई एक सुतीक्ष्ण अगस्त्यमुनिका शिष्य होत भया, तिसके मनमें एक संशय उत्पन्न हुआ, तिसको निवृत्त करनेके अर्थ अगस्त्यमुनिके आश्रमको गमन किया, जायकर विधिसंयुक्त प्रणाम करि स्थित भया, और नम्र भावसों प्रश्न करने लगा--

सुतीक्ष्ण उवाच--हे भगवन् ! सर्वतत्त्वज्ञ, सर्व शास्त्रोंके ज्ञाता, एक संशय मुझको है सो तुम कृपा करके निवृत्त करो. मोक्षका कारण कर्म है, कि ज्ञान है, कि दोनों हैं ? याते जो मोक्षका कारण होय सो कहो.

अगस्त्य उवाच--हे ब्रह्मण्य ! केवल कर्म मोक्षका कारण नहीं और केवल ज्ञानते भी मोक्ष प्राप्त नहीं होता दोनों करके मोक्षकी प्राप्ति होती है. कर्म

करके अंतःकरण शुद्ध होता है मोक्ष नहीं होता अरु अंतःकरणशुद्धि विना केवल ज्ञानते भी मुक्ति नहीं होती, अर्थ यह जो शास्त्रका तात्पर्य ज्ञानका निश्चय अंतःकरण शुद्ध हुए विना ज्ञानकी स्थिति नहीं होती. ताते दोनों करके मोक्षकी सिद्धि होती है. कर्म करके प्रथम अंतःकरणकी शुद्धि होती है. बहुरि ज्ञान उपजता है; तब मोक्षकी सिद्धि होती है. जैसे दोनों पंख करके पक्षी आकाशमार्गको सुखेन सों उडता है. तैसे कर्म अरु ज्ञान दोनों कर मोक्ष सिद्ध होता है. हे ब्रह्मण्य ! इस अर्थके अनुसार एक पुरातन इतिहास है सो तू श्रवण कर.

एक कारुण्य नाम ब्राह्मण अग्निवेश्यका पुत्र था, सो गुरुके निकट जायकर चार वेद षडङ्ग सहित अध्ययन करत भया. अध्ययन करके घरको आवत भया. और कर्मते रहित होय कर चुप रहा; अर्थ यह जो संशययुक्त होय कर्मते रहित भया तब पिताने देखा जो यह कर्म ते रहित होयकर स्थित भया है. ऐसा देखके इस प्रकार कहत भया--

अग्निवेश्य उवाच–हे पुत्र! कर्मकी पालना क्यों नहीं करता और तू कर्मके न करनेते सिद्धताको कैसे प्राप्त होवेगा ? जिसकरके तू कर्मते रहित हुआ है, सो कारण कहि दे.

कारुण्य उवाच–हे पिताजी ! एक संशय मुझको उत्पन्न हुवा है. तिस करके मैं कर्मते चुप रहा हों, सो श्रवण करो. वेदने एक ठौर कहा है कि, जबलग जीवता रहे तब लग कर्मको करना. जो अग्निहोत्रादिक कर्म हैं, सो करताही रहै अरु और ठौर कहा है कि, धन करके मोक्ष होत नाहीं और कर्म करके मोक्ष होत नाहीं, और पुत्रादिक करके मोक्ष होत नाहीं केवल त्यागते मोक्ष होता है। इन दोनों विषे मुझको क्या कर्तव्य है ? यह संशय है। सो तुम कृपा करके निवृत्त करो, कि क्या कर्तव्य है ?

अगस्त्य उवाच-हे सुतीक्ष्ण ! ऐसे जब कारुण्यने पिताको कहा; तब तिसका वचन सुन अग्निवेश्य कहत भया.

अग्निवेश्य उवाच–हे पुत्र ! एक कथा मुझते तू श्रवण कर जो पहिले हुई है, तिसको सुनकर हृदय विषे धर, आगे जो तेरी इच्छा होय सोई करना.

एक सुरुचि नाम अप्सरा हती, सो जेती कुछ अप्सरा हतीं, तिनके विषे उत्तम थी.सो एक समय हिमालयके शिखरपर बैठी थी. सो हिमालय पर्वत कैसा है ? कि कामना करके संपन्न जो हृदयमें विचारे सो पावे. तहां देवता अरु किन्नरके गण अप्सराके साथ क्रीडा करते हैं और कैसा है ? जहां गंगाजीका प्रवाह लहरी देत चला आवत है सो गंगा कैसी है कि,महा पवित्र जल है जिसका, ऐसे शिखरपर सुरुचि अप्सरा बैठी थी; तिसने इंद्रका दूत अंतरिक्षते चला आवत देखा. जब निकट आया, तब अप्सराने कहा. अहो सौभाग्य देवदूत ! तू देवगणमें श्रेष्ठ है, तू कहांते आया और कहां जायगा ? सो कृपा करके कहि दे.

देवदूत उवाच-हे सुभद्रे ! तैंने पूछा है सो श्रवण कर, अरिष्टनेमि एक राजर्षि था; वाने अपने पुत्रको राज्य देकर वैराग्य लिया,सम्पूर्ण विषयोंकी अभिलाषा त्याग करके गंधमादन पर्वतमें जायकर भयंकर तप करने लगा, अरु धर्मात्मा था, तिसके साथ मेरा एक कार्य था,सो कार्य करके मैं अब इंद्रके पास चला जाता हौं तिसका मैं दूत हौं संपूर्ण वृत्तांत निवेदन करनेको चला हौं.

अप्सरा उवाच-हे भगवन् ! वृत्तांत कौनसा है ? सो मुझसे कहो. मेरेको तू अति प्रिय है यह जानकर पूछती हूँ और जो महापुरुष हैं तिनसों कोई प्रश्न करता है तब वह उद्वेगते रहित होकर उत्तर देता है, ताते तू कहि दे.

देवदूत उवाच-हे भद्रे ! जो वृत्तांत है सो सुन.विस्तार करके मैं तुझको कहता हौं, वह जो राजा गंधमादन पर्वतमें तप करने लगा सो बड़ा तप किया,तब देवतोंके राजा जो इन्द्र हैं तिसने मुझको बोलाय कर आज्ञा करी कि,हे दूत ! तू गंधमादन पर्वतमें जा और विमान, अप्सरा, नाना प्रकारकी सामग्री,गंधर्व, यक्ष, सिद्ध, किन्नर, ताल, मृदंग आदि वादित्र संग लेजा और वह गंधमादन पर्वत कैसा है ? जो नाना प्रकारकी लता वृक्ष करके पूर्ण है,तहां जायके राजाको विमानपर बिठायके इहां ल्याव. हे सुन्दरी ! जब इन्द्रने ऐसा कहा,तब मैं विमान अरु सामग्री सहित तहां आया अरु राजासे कहा हे राजन् ! तेरे कारण विमान ले आया हूँ, तापर

बैठके तू स्वर्गको चल और देवतानके भोग भोगु जब मैं ऐसे कहा तब मेरा वचन सुनकर राजा बोलत भया.

राजोवाच—हे देवदूत ! प्रथम स्वर्गका वृत्तांत तू मुझसे कह कि, तेरे स्वर्गमें दोष कहा अरु गुण कहा है ? तिनको सुनके मैं हृदयमें विचारों पाछे जो मेरी इच्छा होवेगी तो आऊँगा.

देवदूत उवाच-हे राजन् ! स्वर्गमें बड़े दिव्य भोग हैं सो स्वर्ग बडे पुण्यसों जीव पाते हैं जो बडे पुण्यवाले होते हैं सो उत्तम सुख स्वर्गको पाते हैं, जो मध्यम पुण्यवाले हैं सुख स्वर्गको पाते हैं अरु जो कनिष्ठ पुण्यवाले हैं सो कनिष्ठ सुख स्वर्गको पाते हैं यह तो गुण स्वर्गमें है सो तोसों कहे हैं और स्वर्गके जो दोष हैं सो सुन-हे राजन् ! जो आपने ऊँचे बैठे दृष्टि आवते हैं अरु उत्तम सुख भोगते हैं, तिनके देखके ताप उत्पत्ति होतीहै क्योंकि, उनकी उत्कृष्टता सही नहीं जाती है अरु जो कोई अपने समान सुख भोगते हैं, तिनको देखके क्रोध उपजत है, कि मेरे समान क्यों बैठे हैं, अरु जो अपने नीचे बैठे हैं कनिष्ठ पुण्यवाले तिनको देखके आपको अभिमान उपजत है कि, मैं इनते श्रेष्ठ हौं और एक और भी दोष है कि, जब उसके पुण्य क्षीण होते हैं तब तिसीकालमें उसको मृत्युलोकमें गिराय देते हैं, एक क्षण भी रहने देते नहीं. हे राजन् ! यह जो दोष कहे सो स्वर्गमें हैं. जो तैने पूंछा सो मैंने गुण अरु दोष कहे.

हे भद्रे ! जब इस प्रकार राजासे मैंने कहा तब मोको राजाने कहा हे देवदूत ! इस स्वर्गके योग्य हम नहीं हैं, अरु हमको इच्छा भी नहीं है हम उग्र तप करैंगे. तप करके इस देहको भी त्याग देंगे जैसे सर्प अपनी त्वचाको पुरातन जानिके त्याग करताहै तैसे हम भी त्याग कर देंगे, हे देवदूत ! तुम अपने विमानको जहांते लाये हो, तहां लेजाओ, हमारे तो नमस्कार हैं.

हे देवि ! जब इस प्रकार राजाने मुझको कहा तब विमान अप्सरा आदि सबको लेके स्वर्गमें गया, अरु संपूर्ण वर्त्तमान इंद्रसे कहा तब इंद्र प्रसन्न हुआ अरु सुंदर वाणी करके मुझसे कहत भया- हे दूत ! तू

बहुरि जहां राजा है तहां जा. वह संसारते उपराम हुआ है. इसकी अब आत्मपदकी इच्छा हुईहै. इसको साथ लेके वाल्मीकि जिसने आत्मतत्त्वको आत्मा करि जाना है; तिसके पास ले जाव . मेरा संदेशा कहना कि, हे महाऋषि ! इस राजाको तत्त्वबोधका उपदेश करना; क्योंकि यह बोधका अधिकारी है.काहेते कि, इसको स्वर्गकी भी इच्छा नहीं,अरु औरकी भी वांछा नहीं; ताते तुम इनको तत्त्वबोधका उपदेश करो, जो तत्त्वबोधको पाय करके संसारदुःखते मुक्त होवे.

हे सुभद्रे ! जब इस प्रकार देवराजने मुझसे कहा तब मैं चला. जहां राजा था तहां जाय करिकै मैंने कहा-कि हे राजन् ! संसार समुद्रते मोक्ष होनेके निमित्त वाल्मीकिके पास चल, वाल्मीकि तुझको उपदेश करैगा. तब तिसको साथ लेकर मैं वाल्मीकिके स्थानपर आय प्राप्त भया. तिस स्थानमें राजाको बिठाया अरु इन्द्रका संदेश कह दिया. जो वहां वृत्तान्त भया सो सुन--जब वहां गये अरु प्रणाम कर बैठे,तब वाल्मीकिने कहा-हे राजन् ! कुशल है ?

राजोवाच--हे भगवन् ! परमतत्त्वज्ञ और वेदांत जाननेवालोंमें श्रेष्ठ! मैं अब कृतार्थ हुआ तुम्हारे दर्शन करके अब मुझको कुशल हुआ है अरु कछु पूछता हौं. कृपा करके उत्तर कहना, जिससे संसार बन्धनते मुक्ति होय.

वाल्मीकिरुवाच--हे राजन्! महारामायण औषध तुझसे कहता हों सो श्रवण करके तात्पर्य हृदय विषे धारणेका यत्न कर. जब तात्पर्य हृदय विषे धारेगा तब जीवन्मुक्त होयकर विचरेगा, हे राजन् ! वशिष्ठजी अरु रामचन्द्रजीका संवाद है तिसमें सब कथा मोक्षके उपायकी कही है. तिसको सुनके जैसे रामचन्द्रजी अपने स्वभाव विषे स्थित हुए अरु जीवन्मुक्त होयके विचरे हैं तैसे तूभी विचरेगा.

राजोवाच--हे भगवन् ! रामचन्द्रजी कौन था, कैसा था अरु कैसे होकर विचऱ्या है ? सो कृपा करके कहो.

वाल्मीकिरुवाच--हे राजन् ! शापके वशते, हरि जो विष्णु तिनने छल करके मनुष्यका देह धरा सो अद्वैत ज्ञानकर संपन्न है तौ भी कछुक अज्ञानको अंगीकार करके मनुष्यका शरीर धरा था.

राजोवाच-हे भगवन् ! चिदानंदरूप जो हरि हैं तिनको शाप किस कारण हुआ अरु किसने दिया ? सो कहो.

वाल्मीकिरुवाच--हे राजन् ! एक कालमें सनत्कुमार जो निष्काम हैं सो ब्रह्मपुरीमें बैठे थे; अरु त्रिलोकीका पति जो विष्णु भगवान् सो वैकुंठते उतरके ब्रह्मपुरीमें आए, तब ब्रह्मासहित सर्व सभा उठके खडी हुई अरु पूजन किया अरु सनत्कुमारने पूजन किया नहीं, तिसको देखकर विष्णु भगवान् बोलत भया--हे सनत्कुमार ! तुझको निष्कामताका अभिमान है; ताते तू काम करके अवतार पावेगा अरु स्वामिकार्तिक तेरा नाम होवेगा. जब विष्णु भगवान्ने ऐसा कहा तब सनत्कुमार बोले हे विष्णु ! सर्वज्ञताका अभिमान तुझको है सो तेरी सर्वज्ञता कोई काल निवृत्त होवेगी अरु अज्ञानी होवेगा. हे राजन् ! एक तो यह शाप हुआ और भी सुन.

एक कालमें भृगुकी स्त्री जात रही थी; तिसके वियोग कर वह ऋषि तपायमान हुआ था. तिसको देखके विष्णुजी हँसे तब भृगु ब्राह्मणने शाप दिया--हे विष्णु ! मेरे तईं देखि तैंने हँसी करी है सो मेरी नाईं तू भी स्त्रीके वियोग कर आतुर होवेगा.

एक दिन देवशर्मा ब्राह्मणने नरसिंह भगवान्को शाप दिया था सो सुन--एक दिन नरसिंह भगवान् गंगा के तीरपर गये थे, तहां देवशर्मा ब्राह्मणकी स्त्री थी, तिसको देखके नरसिंहजी भयानक रूप दिखायके हँसे. तिनको देखके ऋषिकी लुगाईने भय पाय प्राण छोड़ दिये तब देवशर्माने शाप दिया कि, तुमने मेरी स्त्रीका वियोग किया, ताते तुम भी स्त्रीका वियोग पाओगे.

हे राजन्! भृगु, सनत्कुमार, देवशर्मा अरु वृंदाके शापकरके विष्णुभगवानने मनुष्यका शरीर धरा, सो राजा दशरथके घरमें प्रगटे, हे राजन् ! यह जो शरीर धरा है अरु आगे जो वृत्तान्त हुआ है सो सावधान होय श्रवण कर.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कथारंभवर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २.

कथारंभवर्णनम्।

दिव्य जो है देवलोक अरु भू जो है पृथ्वीलोक अरु पाताललोक ऐसी त्रिलोकीको प्रकाशता है; अरु अंतर बाहर आत्मतत्त्वकरि पूर्ण है. ऐसा अनुभवात्मक मेरा आत्मा है, तिस आत्माको नमस्कार है.

हे राजन्! यह शास्त्र जो आरंभ किया है. तिसका विषय क्या है, प्रयोजन क्या है, संबंध क्या है अरु अधिकारी कौन है? सो श्रवण कर. सत्, चित्, आनंदरूप, अचिंत्य, चिन्मात्र आत्माको जनावता है सो विषय है. अरु परमानंद आत्माकी प्राप्ति अरु अनात्म अभिमान दुःखकी निवृत्ति, यह प्रयोजन इसमें है. अरु ब्रह्मविद्या मोक्ष उपायकर आत्मपदका प्रतिपादन है सो संबंध है. अरु जिसको यह निश्चय है कि, मैं अद्वैत ब्रह्म, अनात्म देहका साथी हुआ हौं सो किसी प्रकार छूटौं ऐसा ज्ञानवान् है अरु मुमुक्षु है ऐसा जो विकृति आत्मा है सो इहां अधिकारी है.

इस शास्त्रका मोक्ष उपाय है. परंतु कैसा है? मोक्ष उपाय परमानंदकी प्राप्ति करनहारा है. जो पुरुष इसको विचारे सो ज्ञानवान् होवे. बहुरि जन्म मृत्युरूप संसारमें न आवे. हे राजन्! यह महारामायण जो है सो पावन है. श्रवणमात्रसे सब पापका नाशकर्त्ता है. जिस विषे रामकथा है सो प्रथम मैं अपने भरद्वाज शिष्यको श्रवण कराई है.

एक समय भरद्वाज चित्तको एकाग्र करके मेरे पास आया था; तिसको मैं उपदेश किया था. तिसको श्रवण करके वचनरूपी समुद्रते साररूपी रत्नको हृदय विषे धरके एक समय सुमेरु पर्वतपर गया. तहां पितामह जो ब्रह्मा सो बैठे थे. अरु भरद्वाजने जायकर प्रणाम किया अरु पास बैठा, अरु ब्रह्माजीको यह कथा सुनाई. तब ब्रह्माने प्रसन्न होयकर भरद्वाजसे कहा-हेपुत्र! कछु वर मांग, मैं तुझपर प्रसन्न हुआ हौं. हे राजन्! जब इस प्रकार ब्रह्माजीने कहा तब परम उदार जिसका

आशय है. ऐसा जो भरद्वाज सो कहत भया--हे भूत भविष्यके ईश्वर! जो तुम प्रसन्न हुए हो तो यह वर देहु कि, संपूर्ण जीव संसार दुःखते मुक्त होहिं अरु परमपदको पावहिं; सो उपाय कहो.

ब्रह्मोवाच--हे पुत्र! तू अपने गुरु वाल्मीकिके पास गमन कर. बहुरि जो तिसने आत्मबोध महारामायण अनिंदित शास्त्रका आरंभ किया है तिसको सुनकर जीव महामोह संसारसमुद्रते तरैंगे। कैसा शास्त्र है महारामायण? जो संसारसमुद्र तरनेको पुल है अरु परम पावन है.

वाल्मीकिरुवाच, हे राजन्! जब इस प्रकार कहा, तब आप परमेष्ठी ब्रह्मा, भरद्वाजको साथ लेकर मेरे आश्रममें आये. तब मैंने भले प्रकारसों उनका पूजन किया. सो ब्रह्माजी कैसे हैं? जिसकी सर्व भूतके हितमें प्रीति है सो मुझसे कहत भये.

ब्रह्मोवाच--हे मुनिश्रेष्ठ! वाल्मीकि यह जो रामके स्वभावके कथनका आरंभ तुमने किया है तिस उद्यमका त्याग नहीं करना इसको आदिते अंतपर्यंत समाप्त करना. कैसा है यह मोक्ष उपाय? जो संसाररूपी समुद्रके पार करने को जहाज है. इस करिकै सर्व जीव कृतार्थ होवेंगे.

वाल्मीकिरुवाच--हे राजन् इसप्रकार ब्रह्माजी मुझसे कहिके अंतर्द्धान होगये. जैसे समुद्रते आवर्त चक्र एक मुहूर्त पर्यंत उठके बहुरि लीन हो जाता है तैसा ब्रह्माजी अंतर्द्धान हो गये. तब मैं भरद्वाजसे कहा हे पुत्र! ब्रह्माजीने क्या कहा?

भरद्वाज उवाच--हे भगवन्! तुमको ब्रह्माजीने ऐसा कहा कि, हे मुनिश्रेष्ठ! तुमने रामके स्वभावके कथनका उद्यम किया है तिसका त्याग नहीं करना; अंतपर्यंत समाप्ति करना. काहेते कि, इस संसारसमुद्रके पार करनेको यह कथा जहाज है। इस कारिके अनेक जीव कृतार्थ होवेंगे. अरु संसारसंकटते मुक्त होवेंगे.

वाल्मीकिरुवाच--हे राजन्! जब इस प्रकार ब्रह्माजीने मुझको कहा तब ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार मैंने ग्रंथ किया; अरु भरद्वाजको कहा हे पुत्र! वसिष्ठजीके उपदेशको पाय कर जिस प्रकार रामजी निःशंक होय विचरे हैं. तैसे तू भी विचर. तब उसने प्रश्न किया.

भरद्वाज उवाच--हे भगवन् ! जिस प्रकार रामचंद्र जीवन्मुक्त होकर विचरे हैं सो आदिसों क्रम करके मुझको कहो.

वालमीकिरुवाच-हे भरद्वाज ! रामचंद्र, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता, कौसल्या, सुमित्रा, दशरथ ये आठों अष्टमंत्री अष्ट गुण आदि लेकर जीवन्मुक्त होय विचरे हैं, तिनके नाम सुन रामजीसे लेके दशरथ पर्यंत आठ तो ये कृतार्थ हुऐ हैं. अविरोध, परमबोधवान् भये हैं, और कृतभासी १, शतवर्धन २, शुकधाम ३, विभीषण४, इंद्रजीत५, हनुमंत ६, वशिष्ठ७, वामदेव८ ये अष्ट मंत्री सो निःशंक होय चेष्टा करत भये हैं, अरु सदा अद्वैतनिष्ठ हुए हैं. इनको कदाचित् स्वरूपते द्वैतभाव नहीं स्फुर्या है. अनामय पदविषे स्थितिमें तृप्त रहे, जो केवल चिन्मात्र, शुद्धपद, परम पावन ताको प्राप्त हुए हैं. इनके समान जो बर्तोंगे तो मुक्त ही हो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कथारंभवर्णनं
नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ३.

अथ तीर्थयात्रावर्णनम् ।

भरद्वाज उवाच--हे भगवन् ! जीवन्मुक्तकी स्थिति कैसी है ? अरु रामजी कैसे जीवन्मुक्त हुए हैं ? सो आदिते लेकर अंतपर्यंत सब कहो.

वालमीकिरुवाच--हे पुत्र ! यह जगत् जो भासता है सो वास्तविक कछु नहीं उत्पन्न भया. अविचार करके भासता है. विचार कियेते निवृत्त हो जाता है. जैसे आकाशमें नीलता भासती है सो भ्रम करके है जब विचारकरके देखिये तब नीलताप्रतीति दूर हो जाती है. तैसे अविचार करके जगत् भासता है अरु विचारते लीन हो जाता है. हे शिष्य ! जबलग सृष्टिका अत्यंत अभाव नहीं होता, तबलग परमपदकी प्राप्ति नहीं होती. जब दृश्यका अत्यंत अभाव होय जावे, तब पाछे शुद्ध चिदाकाश आत्मसत्ता भासेगी। कोई इस दृश्यको महाप्रलयमें कदा-

चित् अभाव कहते हैं, परंतु मैं तुझको तीनोंई कालका अभाव कहता हौं. सो सत शास्त्रकर इस शास्त्रमें श्रद्धा संयुक्त आदिते लेकर अंत पर्यंत श्रवण कर, अरु तिनको धार, तब तिसकी भ्रांति निवृत्त होय जावे. अरु अव्याकृत पदकी प्राप्ति होवे. हे शिष्य ! संसार भ्रममात्र सिद्ध है, इसको भ्रममात्र जानकर विस्मरण करना सो मुक्ति है. अरु इसको बंधनका कारण वासना है. वासना करके भटकत फिरता है. जब वासनाका क्षय होजाय तब परमपदकी प्राप्ति होवे. जो वासनामें फिरता है तिसका नाम मन है, जैसे जल शरदीकी दृढ जडता पायके बर्फ होता है. पाछे सूर्यके तापसे बहुरि गलकर जल होता है तब केवल शुद्ध जल होय रहता है. तैसे आत्मारूपी जल है तिसविषे संसारकी सत्यतारूपी जडता शीतलता है. तिस करके मनरूपी बर्फका पुतला हुआ है. जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होवेगा तब संसारकी सत्यतारूपी जडता, शीतलता निवृत्त हो जावेगी.

जब संसारकी सत्यता अरु वासना निवृत्त हुई तब मन नष्ट हो जावेगा, जब मन नष्ट हुआ तब परम कल्याण हुआ. ताते इसके बंधनका कारण वासना है अरु वासनाके क्षय हुएते मुक्ति है सो वासना दो प्रकारकी है, एक शुद्ध अरु दूसरी अशुद्ध, सो अपने वास्तविकस्वरूपके अज्ञानते अनात्मा जो देहादिक तिनमें अहँकार करना, सो जब अनात्मामें आत्म अभिमान हुआ तब नाना प्रकारकी वासना उपजती है. तिस करके घटीयंत्रकी नाईं चक्र भ्रमता है. हे साधु ! यह पंचभूतका शरीर तू जो देखता है. सो सब वासनारूप है. वासना सो चक्र है. जैसे मणके धागेके आश्रयते खडे होते हैं और जब धागा टूट पडा तब मणका न्यारा न्यारा होय पडता है अरु ठहरता नहीं है. तैसे वासनाके क्षयहुए पंचभूतका शरीर नहीं रहता. ताते सब अनर्थका कारण वासना है अरु जो शुद्ध वासना है तिनमें जगत्का अत्यन्त अभाव निश्चय होता है. हे शिष्य ! अज्ञानीका जो निश्चय है सो वासना कर बहुरि जन्मका कारण हो जाता है अरु ज्ञानीकी वासना है सो बहुरि जन्मका कारण नहीं होती है. जैसे एक कच्चा बीज होता है; दूसरा दग्धबीज होता है तिसमेंजो

कच्चा है सो बहुरि उगता है अरु जो दग्ध हुआ है सो बहुरि नहीं उगता. तैसे अज्ञानीकी वासना है सो रससहित है सो जन्मका कारण है अरु ज्ञानीकी वासना है सो रसरहित है सो जन्म का कारण नहीं. ज्ञानीकी चेष्टा स्वाभाविक गुण करके खडी होती है और किसी गुणके साथ मिलकर अपनेमें चेष्टा नहीं देखता. खाता है, पीता है, देता है, बोलता है, चलता है, विचार करता है परन्तु अंतर सदा अद्वैत निश्चेष्टको धरता है. कदाचित् द्वैतभावना तिसको फुरती नहीं है. अपने स्वभावविषे स्थित है ताते निर्गुण अरु अरूप है. ताकी चेष्टा जन्मका कारण नहीं है, जैसे कुम्हारका चक्र है, सो जबलग उसको फेर चढ़ावे, तबलग वह फिरताहै. और जब फेर चढावना छोड दिया, तंब स्थीयमान गतिसे उतरत उतरत फिरके स्थिर रह जाता है तैसे जबलग अहंकार सहित वासना होती है, तबलग जन्म पावता है. जब अहंकारते रहित हुआ तब बहुरि जन्म नहीं पावताहै

हे साधु ! यह जो अज्ञानरूपी वासना है, तिसको नाश करनेका उपाय एक ब्रह्मविद्या श्रेष्ठ है. ब्रह्मविद्या मोक्ष उपायका शास्त्र है. जब इससे और शास्त्रमें गिरैगा तब कल्पपर्यंतहू अव्याकृत पदको न पावेगा; अरु जो ब्रह्मविद्याका आश्रय करैगा तो सुखसों आत्मपदको प्राप्त होवेगा. हे भरद्वाज ! यह मोक्षउपाय रामजी अरु वशिष्ठजीका संवाद सो विचारने योग्य है; बोधका परम कारण है ताते आद्यंतपर्यंत मोक्ष उपाय श्रवण कर. जैसे रामजी जीवन्मुक्त होय विचरे हैं सो सुन.

एक दिन रामजी विद्या पढके अध्ययन शालाते अपने गृहमें आये अरु संपूर्ण दिन विचार करत व्यतीत करदिया. बहुरि मनमें तीर्थ, ठाकुरद्वाराका संकल्प धर पिता दशरथके पास आये. पितासों मिलके जो संपूर्ण प्रजाको सुखमें रखते थे अरु सब प्रजा तिसके निकट रहिके सुख पाती तिस दशरथका चरण श्रीरघुनाथजीने ग्रहण किया. जैसे सुंदर कमलको हंस ग्रहण करै तैसे पिताका चरण ग्रहण किया. जैसे कमलके तरे कोमल तरियां होती हैं, तिन तरियों सहित कमलको हंस पकडता है; तैसे दशरथजीकी अँगुरीनको रामजीने ग्रहण किया. अरु बोले कि, हे पिता ! मेरा चित्त तीर्थ अरु ठाकुरद्वाराके दर्शनको उठा है.

तातें तुम आज्ञा करो तो मैं तीर्थका अरु ठाकुरद्वारेका दर्शन कर आऊं में तुम्हारा पुत्र हूं तुमको पालना करनी योग्य है और आगे मैं कभी कहा नहीं; यह प्रार्थना अब करी है तातें तुम आज्ञा देहु; जो मैं जाऊं; यह वचन मेरा फेरना नहीं काहेते कि ऐसा त्रिलोकीमें कोऊ नहीं है, जिसका मनोरथ इस घरते सिद्ध हुआ नहीं है; सबका मनोरथ सिद्ध हुआ है, तातें मुझको कृपा कर आज्ञा देहु.

वाल्मीकिरुवाच--हे भरद्वाज ! इस प्रकार जब रामजीने कहा तब वशिष्ठजी पास बैठे थे. तिनने भी दशरथसे कहा-हे राजन्! रामजीको आज्ञा देहु सो तीर्थ कर आवें. क्योंकि इनका चित्त उठा है. राजकुमार हैं, इनके साथ सेना दीजे, धन दीजे, मंत्री दीजे, ब्राह्मण दीजे, जो ये दर्शन कर आवें.

हे भरद्वाज ! जब ऐसे विचार किया तब शुभ मुहूर्त देखकर रामजीको आज्ञा दीनी. जब चलने लगे तब पिता अरु माताके चरण लगे अरु सबको कण्ठ लगाइ रुदन करने लगे. तिनको मिलकर आगे चले अरु लक्ष्मण आदि जो भाई हैं और मंत्री थे, तिनको साथ लेकर अरु वशिष्ठ आदि जो ब्राह्मण विधिके जाननेवारे थे अरु बहुत धन, बहुत सेना तिनको साथ ले चले. और दान पुण्य करके जब गृहके बाहर निकले तब वहांके जो लोग थे अरु स्त्रियां थीं तिन सबने रामजीके ऊपर फूल अरु फूलोंकी मालाकी वर्षा करी. सो वर्षा वरफ बरखती है ऐसी दीखती थी अरु रामजीकी जो मूर्ति है सो हृदयमें धर लीनी. इस प्रकार रामजी वहांसे चले. तहां ब्राह्मण अरु निर्धनोंको दान देते देते तीर्थ जो गंगा, यमुना, सरस्वती आदि देके हैं, इसमें स्नान विधि संयुक्त कर पृथ्वीके चारों कोन उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिमको दान किया. अरु चारों ओर समुद्रके स्नान किये. अरु सुमेरु पर्वतपर गये. हिमालय पर्वतपर गये. अरु शालग्राम, बद्री, केदार आदि गंगामें स्नान किये अरु दर्शन किये. ऐसे सब तीर्थस्नान, दान; तप; ध्यान विधिसंयुक्त यात्रा करत भये. जैसी जैसी जहां विधि थी तैसी तैसी तहां करी एक वर्ष में सम्पूर्ण यात्रा करके रामजी बहुरि घरमें आये ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे तीर्थयात्रावर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४.

अथ दिवसव्यवहारवर्णनम्।

वाल्मीकिरुवाच--हे भरद्वाज! जब रामजी यात्रा करके अपनी अयोध्यामें आवत भये तब नगरके वासी लोग पुरुष और स्त्री फूलनकी वर्षा करत भये अरु जयजय शब्द मुखते उच्चारने लगे अरु प्रेमहास्य करने लगे और जैसे इंद्रका पुत्र अपने स्वर्गमें आवत है, तैसे रामचन्द्रजी अपने घरमें आये. पहिले राजा दशरथको प्रणाम कर, फिर वशिष्ठजीको प्रणाम कर, फिर सब सभाके लोगोंको यथायोग्य मिले, फिर अन्तःपुरमें आवत भये तहां कौशल्या आदि जो माता थीं इनको यथा योग्य नमस्कार किये और जो भाई बांधव कुटुंब थे तिन सबको मिले.

हे भरद्वाज! इस प्रकार रामजीके आवनका उत्साह सप्तदिन पर्यंत होता रहा. वा समयमें कोऊ मिलने आवे कोऊ कछु लेने आवे. तिनको दान पुण्य करत बाजे बजत उत्साह हुआ. भाट आदि स्तुति करने लगे तदनंतर रामजीका आचरण हुआ. सो सुन प्रातःकालमें उठके स्नान संध्यादिक सत्कर्म करते, बहुरि भोजन करते, बहुरि भाई बंधुको मिल अपने तीर्थकी कथा कहते, देवद्वारके दर्शनकी वार्ता करते इस प्रकार सों उत्साह कर दिन रातको बितावते थे.

एक दिन प्रातःकालमें उठके पिताजी दशरथको देखे सो जैसे इंद्रका तेज है, तैसा तेजवान देखा अरु वशिष्ठादिककी सभा बैठी थी, तहां वशिष्ठजीके साथ कथा वार्ता रामजी करते हुए तहां एक दिन राजा दशरथ कहत भये; हे रामजी! तुम शिकार खेलने जायबो करो. तब राजकुमार रामजीके साथ लक्ष्मण अरु शत्रुघ्न भाई थे, भरत नहानेको गये थे; फिर तिनके साथ स्नान संध्यादिक नित्य कर्म करके भोजनकरके शिकार खेलने जाते. तहां जो जीवको दुःख देनेहारे जानवर देखें तिनको मारते अरु अवर लोकको प्रसन्न करते इस प्रकार दिनको शिकार खेलते

रात्रिको निशान बजाते अपने घरमें आवते ऐसे करत केतेक दिन बीते.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे दिवसव्यवहारवर्णनं
नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः ५.

अथ कार्श्यवर्णनम् ।

ता समयमें रामजीकी अवस्था वर्ष १६ में थोरेक महीना कमती थी तामें रामजी अपने अंतःपुरमें आइ सबका त्याग करके एकांतमें चिंतन करत बैठि रहते.

हे भरद्वाज ! जेती कछु राजकुमारकी चेष्टा सो सबको रामजीने त्याग कर दीनी थी जेते कछु रस संयुक्त इंद्रियोंके विषय हैं, इनको त्यागके शरीरते दुर्बल जैसे हो मुखकी कांति घट गई, पीत वर्ण हो गये. जैसे कमल सूखके पीतवर्ण हो जाता है, तैसे रामजीका मुख पीला हो गया अरु जैसे सूखे कमलपर भँवरे बैठते हैं तैसे सूखे मुखकमलपर नेत्ररूपी भँवरे भासन लगे. सोहू शोभा होवन लागी. अरु इच्छा निवृत्त होय-गई जैसे शरत्कालमें ताल निर्मल होता तैसे इच्छारूपी मलनते रहित चित्तरूपी तालहू निर्मल होता है तैसे वासना निवृत्त होते दिन दिन पै शरीर निर्मल हो गया, अरु जहां बैठे तहां चितासंयुक्त बैठें रहि जावें उठें नहीं अरु बैठें तब हाथपै चिबुक धरके बैठे जब टहलुये मंत्री बहुत कहहिं कि हे प्रभो ! यह स्नान संध्याका समय हुआ है सो उठो, तब उठकर स्नानादिक करहिं अरु हृदयमें न विचारहिं. जेती कछु खाने पीने बोलने पहिरनेकी क्रिया है, सो सब विरस होय गई ऐसे रामचन्द्रजी भये. तब लक्ष्मण अरु शत्रुघ्नहू रामजीको संशय संयुक्त देखके तिस प्रकार हो बैठे, तब--

दशरथ यह वार्त्ता सुनके रामजीके पास आय बैठे अरु देखे तब महा कृश जैसा हो गया है इस चिंता करके आतुर हुआ कि हाय २ इनकी क्या अवस्था हुई है ? इस शोकके लिये रामजीको गोदमें बैठाये अरु पूँछने

लगे कोमल सुन्दर शब्द करके बोले कि हे पुत्र ! तुमको क्या दुःख प्राप्त भया है जिससे तुम शोकवान् हुए हो ? तब रामजीने कहा कि, हे पिता ! हमको तो दुःख कोऊ नहीं है ऐसे कहिके चुप हो रहा. जब केतेक दिवस इस प्रकार व्यतीत भये. तब राजा भी शोकवान् हुआ अरु सब स्त्रियां भी शोकवती भईं. अरु राजा मंत्री मिलके विचार करने लगे कि, पुत्रका किसी ठौर विवाह करना अरु यह भी विचार किया कि, क्या हुआ है जो मेरे पुत्र शोकवान् होय रहते हैं तब वशिष्ठजीसे पूँछा कि, हे मुनीश्वर ! मेरे पुत्र शोक में क्यों रहते हैं ? तब--

वशिष्ठजीने कहा, हे राजन् ! महापुरुषको जो क्रोध होता है सो किसी अल्प कारण से नहीं होता अरु मोहभी अल्प कारण से नहीं होता अरु शोक भी अल्प कारण से नहीं होता. जैसे पृथ्वी, जल, वायु, आकाश जो महाभूत हैं, सो अल्प कार्य में विकारवान नहीं होते. जब जगत्की उत्पत्ति प्रलय होती है तब विकारवान् होते हैं तैसे महापुरुष अल्प कार्यमें विकारवान् नहीं होते. ताते हे राजन् ! तुम शोक करनेयोग्य नहीं. अरु रामजी जो शोकवान् हुआ है सो भी किसी अर्थके निमित्त हो गया है, पाछे इसको सुख मिलैगा, तुम शोक मत करो.

इति श्रीयोगवासिष्ठ वैराग्यप्रकरणे कार्श्यवर्णनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ६.

अथ विश्वामित्रागमनवर्णनम्।

वाल्मीकिरुवाच—हे भरद्वाज ! ऐसे वशिष्ठ अरु राजा दशरथ विचार करते थे. तिस कालमें विश्वामित्रजी अपने यज्ञके सहाय अर्थ आवतभये. राजा दशरथके गृहमें आयकर पौरियासों कहते भये; कि राजा दशरथसे कहो. गाधिका पुत्र विश्वामित्र बाहर खडे हैं तब इनने और बडे पौरियाको जाय कहा. हे स्वामी ! एक बडा तपस्वी द्वारपै आय खडा है, उसने हमसे कहा कि राजा दशरथके पास जाय कहो कि, विश्वामित्र आये हैं. सो

सुनके राजा दशरथके पास गये, अरु कहा कि विश्वामित्र गाधिका पुत्र बाहर खडा है. अरु संपूर्ण मंडलेश्वर करपूज्य जो राजा दशरथ सबन सहित अपने सिंहासनपर बैठा है अरु बडे तेज कर संपन्न है; तिससे कहा कि विश्वामित्रने हमसे कहा है कि, दशरथके पास जाय कहो कि, विश्वामित्र बाहर खडा है-

हे भरद्वाज ! जब इस प्रकार बडे पौरियाने राजा सों कहा, तब राजा सुनकर सुवर्णके सिंहासनसे उठ खडा हुआ अरु चरणों करके चला एकओर वशिष्ठजी और दूसरी ओर वामदेवजी अरु सुभटकी नांई मण्डलेश्वर स्तुति करत चले. जब जहां ते विश्वामित्रजी दृष्टि आये तब तहांते प्रणाम करने लगे. जहां पृथ्वीपर शीश राजाका लागै तहां पृथ्वी भी हीरा, मोतीकी सुंदर होय जावे. इस प्रकार शीश नमावत राजा विश्वामित्रके आगे चला. अरु बडी जटा शिरपरते कांधपर परी हैं, ऐसे विश्वामित्र अग्निकी नाईं प्रकाशित हैं अरु शरीर सुवर्णकी नाईं प्रकाशता है अरु हृदयमें शांति कोमल स्वभाव जाननेमें आवे ऐसे अरु महातेजवान्, सुंदर कांति, अरु शांतिरूप अरु हाथमें बांसकी लकडी अरु महा धैर्यवान् ऐसे विश्वामित्रको प्रणाम करत राजा दशरथ चरणोंके ऊपर जाय गिरा जसे सूर्य सदाशिवको चरणोंपर जाय गिरेतेथे. तैसे मस्तक नवायके कहा मेरे बडे भाग्य हुए जो तुम्हारा दर्शन हुआ है.हमारे ऊपर तुमने बडा अनुग्रह किया है. हमको बडा आनंद प्राप्त हुआ है. जो अनादि, अनंत है आदि, मध्य,अंतते रहित अविनाशी है. ऐसा जो अकृत्रिम आनंद है, सो तुम्हारे दर्शन कर मुझको प्राप्त हुआ दृष्टिमें आवता है. हे भगवन् ! आज मेरे बडे भाग्य हुए हैं, जो मैं धर्मात्माके गिननेमें आऊंगा. काहेते कि जो तुम मेरे कुशलनिमित्त आये हो. हे भगवन् ! तुम्हारा आवन हमारे लक्षमें नहीं था अरु तुमने बडा अनुग्रह किया है जसे सूर्य कोई कार्य करनेको पृथ्वीपर आवे, तैसे तुम मुझको दृष्टिमें आवते हो. अरु सबते उत्कृष्ट दृष्टिमें आवते हो काहेते कि तुममें दो गुण हैं.एकतो क्षत्रिकाय स्वभाव तुम्हारेमें है अरु दूसरा ब्राह्मणका स्वभाव भी तुम्हारे में

भासता है अरु शुभ गुण कर संपूर्ण हो. हे मुनीश्वर ! तुम क्षत्रियमेंते ब्राह्मण भये हो. ऐसी कोई की सामर्थ्य नहीं देखी. अरु तुम्हारा शरीर प्रकाशमान दीखता है अरु जिस मार्गसे तुम आये हो अरु जिस मार्गमें तुम दृष्टि करत आये हो तहांते अमृत वृष्टि करत आये हो ऐसा दृष्टि आवता है. हे मुनीश्वर ! तुम आये सो तुम्हारे दर्शन कर मुझको बडा लाभ हुआ है.

हे भरद्वाज ! इस प्रकार राजा दशरथ विश्वामित्रसे बोले अरु वशिष्ठजी आयकर विश्वामित्रको कंठ लगायके मिल और जो मंडलेश्वर राजा थे सो बहुत प्रणाम कर इस प्रकार सब मिले तब विश्वामित्रको राजा दशरथ घरमें ले आय, जहां राजसिंहासन था तहां आनकर बिठाया. अरु वशिष्ठ वामदेवको बिठाये. और राजा दशरथने विश्वामित्रका पूँजन किया. अरु अर्घ्य पादार्चन करके प्रदक्षिणा करि बहुरि वशिष्ठजीने विश्वामित्रका पूजन किया. अरु विश्वामित्रने वशिष्ठजीका पूजन किया. ऐसे अन्योन्य पूजन हुआ. इस प्रकार पूजन करके सब अपने अपने आसनपर यथायोग्य बैठे तब–

राजा दशरथ बोले–हे भगवान् ! हमारे बडे भाग्य हैं जो तुम्हारा दर्शन हुआ. जैसे कोऊ तप्तको अमृत प्राप्ति होवे. अरु जन्मांधको नेत्र प्राप्त होवें सो आनंद पावे. जैसे निर्धनको चिंतामणि प्राप्त होवे अरु आनंदको पावे अरु जैसे किसीका बांधव मुवा होय सो विमान पर चढा हुआ आकाशते आवे उसको जैसा आनंद प्राप्त होवे; तैसे तुम्हारे दर्शन कर, मैं आनंदको प्राप्त हुआ हूँ. हे मुनीश्वर ! तुम्हारा आवना जिस अर्थ हुआ है सो कृपा कर कहो अरु जो तुम्हारा अर्थ हो सो पूर्ण हुआ जानो. काहेते कि ऐसा पदार्थ कोई नहीं है जो तुमको देना कठिन है. सब कछु मेरे विद्यमान है सो तुम्हारा अर्थ है जो निश्चय कर जानने योग्य हो रहा है जो कुछ तुम आज्ञा करोगे सो मैं देऊंगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे विश्वामित्रागमनवर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ७.

अथ विश्वामित्रेच्छावर्णनम्।

वाल्मीकिरुवाच–हे भरद्वाज! जब इस प्रकार राजा दशरथने कहा, तब मुनिनमें शार्दूल जो विश्वामित्र, बहुत प्रसन्न भये अरु रोम खडे हो आये जैसे पूर्णमासीके चन्द्रमा को देखके क्षीर सागर प्रसन्न होता है तैसे प्रसन्न होकर कहत भये--हे राजशार्दूल! तुम धन्य हो! ऐसा क्यों न होवे; जो तुम्हारेमें दो गुण श्रेष्ठ हैं एक तो रघुवंशी हो. दूसरा वशिष्ठजी तुम्हारा गुरु है; ताकी आज्ञामें चलते हो; ताते.

हे राजन्! जो कुछ मेरा प्रयोजन है सो तुम्हारे आगे प्रगट करता हों श्रवण करो. दशरात्र यज्ञका मैंने आरंभ किया है. सो जब यज्ञको करने लगता हूँ तब राक्षस खर अरु दूषण उस यज्ञको तोर डारते हैं, जहां जहां मैं जायकर यज्ञ करता हूँ तहां तहां आय कर अपवित्र जो रुधिर अरु मांस, अस्थि सो डारते हैं. सो स्थान यज्ञ करने योग्य नहीं रहता और बहुरि मैं और ठौर करने लगता हूँ तहां भी उसी प्रकार अपवित्र कर जाते हैं. तिसके नाश करनेके निमित्त मैं तुम्हारे पास आया हूँ कदाचित् ऐसे कहो कि तुम भी तो समर्थ हो तो हे राजन्! मैंने यज्ञका आरंभ किया है तिसका अंग क्षमा है. जो उनको मैं शाप देऊं तो वह भस्म हो जावें, परन्तु शाप क्रोध बिना होत नाहीं अरु क्रोध कियेते यज्ञ निष्फल हो जाता है अरु जो मैं चुप हो रहों तो वह राक्षस अपवित्र वस्तु डार जाते हैं. ताते मैं तुम्हारी शरण आया हों मेरा कार्य करो हे राजन्! तेरा जो रामजी पुत्र है सो कमलनयन काकपक्ष संयुक्त है अर्थ यह जो बालक दूसरी शिखा सहित रहे हैं तिसको मेरे साथ देहु. जो राक्षसोंको मारें तब मेरा यज्ञ सफल होय और तुमको ऐसा शोक करना नहीं चाहिये कि मेरा पुत्र बालक है यह तो बडे इन्द्र के समान शूरवीर हैं इनके समीप वह राक्षस ठहर न सकैंगे जैसे सिंहके सम्मुख मृगके बच्चे ठहर नहीं सकते, तैसे तेरे पुत्रके सम्मुख राक्षस न ठहर सकैंगे ताते मेरे साथ

उनको तुम देहु. जो तुम्हारा भी धर्म रहै अरु यश भी रहै मेरा कार्य भी होवे इसमें सन्देह नहीं करना.

हे राजन्! ऐसा पदार्थ त्रिलोकीमें कोई नहीं जो रामजीका किया कछु न होवे. इसीसे मैं तेरे पुत्रको लिये जाता हूँ यह मेरे करसों ढांपा रहैगा अरु इसको कोई विघ्न मैं होने नहीं देऊंगा अरु जो तेरे पुत्र वस्तु हैं सो मैं जानता हूँ और वशिष्ठजी हू जानते हैं और जो ज्ञानवान् त्रिकालदर्शी होवेगा सो भी इनको जानता होयगा और कोईकी सामर्थ्य नहीं है जो इनको जान सकै. तातें तुम इनको मेरे साथ देहु जो मेरे कार्यकी सिद्ध होय

हे राजन्! जो समयपर कार्य होता है सो थोरे करनेसे भी बहुत सिद्धि पावता है. जैसे द्वितीयाके चंद्रमाको देखके एक तंतुका दान किया होय सो भी बहुत है पीछे वस्त्रका दान दियेते भी तैसा कार्य सिद्ध नहीं होता तैसे समयपर थोड़ा कार्य भी बहुत सिद्धिको देता है अरु समय विना बहुत कार्य भी थोरे फलको देता है. तातें तुम मेरे साथ रामजीको दीजै.

खर, दूषण ये बडे दैत्य हैं सो आय कर मेरा यज्ञ खंडन करते हैं; जब रामजी आवेंगे तब वह भाग जायँगे. रामजीके आगे खडे न होय सकैंगे. इनके तेजसे वह अल्प बल हो जावेंगे जैसे सूर्यके तेज करिके तारागणका प्रकाश छिप जाता है तैसे रामजीके दर्शनसे वह स्थित न रहैंगे. जैसे गरुडके आगे सर्प नहीं ठहर सकते; तैसे रामजीके आगे राक्षस न ठहर सकैंगे; देखकर भाग जायँगे. तातें तुम मेरे साथ देहु जो मेरा कार्य होवे अरु तुम्हारा धर्म भी रहै रामजीके निमित्त संदेह मत करना उस राक्षसकी सामर्थ्य नहीं जो रामजीके निकट आवे अरु मैं भी रामजीकी रक्षा करूंगा.

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे विश्वामित्रेच्छा-
वर्णनं नाम सप्तमः सर्गः॥ ७॥

अष्टमः सर्गः ८.

अथ दशरथोक्तिवर्णनम् ।

वाल्मीकिरुवाच--हे भरद्वाज ! जब विश्वामित्रने ऐसा कहा, तब राजा दशरथ सुनकर चुपरहा अरु गिरपड़ा. एक मुहूर्त्त पर्यंत पड़ा रहा.

फिर एक मुहूर्त्त पीछे राजा उठे अरु महादीन से हो गये, अरु महा मोहको प्राप्त हो गये, धैर्य ते रहित होकर बोले.

राजोवाच--हे मुनीश्वर ! तुमने क्या कहा रामजी अभी तो कुमार हैं शस्त्रविद्या, अस्त्रविद्या भी सीखे नहीं हैं अभी तो फूलनकी शय्यापर शयन करने वारे हैं वह युद्धको क्या जानै. अंतःपुरमें स्त्रियनके पास बैठने वाले हैं, राजकुमार बालकनके साथ खेलनेवाले हैं और कदाचित् रणभूमि देखीहू नहीं है भ्रुकुटीको चढायके कदाचित् युद्ध भी नहीं किया अरु कमल की नाईं जिसके हाथ हैं अरु कोमल जिसका शरीर है. वह राक्षसके साथ युद्ध कैसे करैगा, कहूँ पत्थरका अरु कमलका भी युद्ध हुआ है? रामजीका वपु कमल समान कोमल है अरु वह महा क्रूर पत्थरकी नाईं हैं उनके साथ युद्ध कैसे होवेगा.

हे मुनीश्वर ! मैं नव सहस्र वर्षका हुआ हूँ अब दशवाँ सहस्र लगा है वृद्ध हुआ हूँ यह वृद्धावस्थामें मेरे घर पुत्र हुए हैं. सो चारोंके मध्य रामजी कमलनयन कछु षोडश वर्षका हुआ है अरु मुझको बहुत प्रियतम है अरु मेरा प्राण है, रामजी बिना मैं एक क्षण भी रहि नहीं सकता. जो तुम इनको ले जाओगे तो मेरा प्राण निकल जायगा मैं मृतक हो जाऊंगा.

हे मुनीश्वर ! केवल मेरा ही ऐसा सनेह सो नहीं है. उसका भाइ जो लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न अरु उसकी माता जो हैं सो सबहीके प्राण रामजी हैं. जो तुम रामजीको ले जाओगे तो हम सबही मर जायँगे वियोग करके जो हमको मारने आये हो तो ले जाओ हे मुनीश्वर ! मेरे चित्तमें रामही फुर रहा है. तिसको मैं तुम्हारे साथ कैसे देऊं. मैं उसको देखत देखत प्रसन्न होता हों जैसे पौर्णमासीके चंद्रमाको देख कर क्षीर समुद्र प्रसन्न

होता है अरु चंद्रको देखकर चकोर प्रसन्न होता है अरु मेघ बूंदको देखकर पपीहा प्रसन्न होता है तैसे रामजीको देखकर मैं प्रसन्न होता हूँ. तब रामजीको वियोग कर मेरा जीवना कैसा होयगा. हे मुनीश्वर ! मेरेको रामही जैसे प्रिय स्त्री भी नहीं अरु धनभी ऐसा प्रिय नहीं अरु राज्यभी ऐसा प्रिय नहीं और पदार्थ भी मुझको कोई रामके समान प्रिय नहीं है. ऐसा रामजी प्यारा है.

हे मुनीश्वर ! तुम्हारे वचन सुनके बडे शोकको प्राप्त हुआ हूँ मेरे बडे अभाग्य आये हैं. जो तुम्हारा आवना इस निमित्त हुआ है तुम्हारे वचन सुन कर जैसे कमलके ऊपर पत्थरकी वर्षा होय ऐसी व्यथा मेरेको होती है अरु पत्थरकी वर्षाते जैसे कमल नष्ट हो जाते हैं. तैसे तुम्हारे बचनते मेरी नष्टता हो जायगी. जैसे बडा मेघ चढ आवे तामें बडा पवन चले तब मेघकी गंभीरताका अभाव होय जाय; तैसे तुम्हारे वचनते मेरी बडी प्रसन्नताका अभाव होय जाता है. जैसे वसन्तऋतुकी मंजरी ज्येष्ठ आषाढमें सूख जाती है तैसे तुम्हारे वचन सुन मेरे हृदयकी प्रसन्नता जर जाती है. हे मुनीश्वर ! रामजीको देनेमें मैं समर्थ नहीं हूँ, जो तुम कहो तो एक अक्षौहणी सेना मेरी है सो बडे शूरवीरकी है, जिसको शस्त्रविद्या, अस्त्रविद्या, मंत्रविद्या सब आवती है और सबै युद्धमें चतुर हैं तिनके साथ मैं तुम्हारे संग चलता हों वहां जायके मैं उनको मारूंगा अरु हस्ती, घोडा, रथ, प्यादे ऐसी चतुरंगिनी सेनाको साथ ले जाओ अरु जो तुम्हारे यज्ञके खंडनहारे हैं तिनको नाश करो अरु एकके साथ मैं युद्ध न करसकूंगा जो कदाचित् यज्ञ खंडन हारा कुबेरका भाई अरु विश्रवाका पुत्र रावण होवे तो उसके साथ युद्ध करनेको मैं समर्थ नहीं.

हे मुनीश्वर ! आगे मेरेमें बडा पराक्रम था वैसा त्रिलोकीमें किसीको नहीं था. जो मेरे निकट मारनेको आता तो वाको मैं मार देता. अब मेरी वृद्धावस्था हुई है अरु देह जर्जरीभावको प्राप्त हुआ है. इस कारण रावणके साथ युद्ध करनेको मैं समर्थ नहीं हूँ.

हे मुनीश्वर ! मेरे बडे अभाग्य हैं जो तुम्हारा आना इस निमित्त हुआ है अब मेरा वैसा पराक्रम नहीं. मैं रावण सों काँपता हों केवल

मैं ही नहीं काँपता; इन्द्रादिक देवता सब रावणसे काँपते हैं अरु राक्षस सब उसके वश वर्त्तते हैं. अब किसीको शक्ति नहीं है जो रावणके साथ युद्ध करै। इस कालमें वह बडा शूरवीर है.

हे मुनीश्वर ! जब मेरा सामर्थ्य भी नहीं रहा तो राजकुमार रामजी कैसे समर्थ होवेंगे अरु जिस रामजीको लेने तुम आये हो सो रोगी हो रहा है उसको चिंता ऐसी आय लगी है. जिससे वह महादुर्बल हो गया है अरु अंतःपुरमें एकांतमें बैठा रहता है, खाना पीना इत्यादिक जो राजकुमारकी चेष्टा है सो सब उसको विरस हो गई है अरु मैं नहीं जानता कि उसको क्या दुःख प्राप्त हुआ है, जैसे कमल सूखके पीतवर्ण हो जाता है, तैसा उसका मुख हो गया है; उसको युद्ध करनेका सामर्थ्य नहीं अरु अपने स्थानसे बाहरकी पृथ्वी भी नहीं देखी है सो युद्ध कैसे करैंगे.

हे मुनीश्वर ! वह युद्ध करनेको समर्थ नहीं हैं अरु हमारे प्राण वही हैं जो उसका वियोग होवेगा तो हमारा जीवना नहीं होवेगा, जैसे जल विना मछली जीवती नहीं है, तैसे हम रामजी विना कैसे जीवेंगे, अरु जो राक्षसके युद्ध निमित्त कहो तो हम तुम्हारे साथ चलें अरु रामजी युद्ध करनेके योग्य नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे दशरथोक्तिवर्णनं नाम अष्टमःसर्गः।८।

नवमः सर्गः ९.

अथ वशिष्ठसमाश्वासनवर्णनम्।

वाल्मीकिरुवाच–हे भरद्वाज ! जब इस प्रकार राजा दशरथने कहा तब महादीन जैसे मोह सहित अधैर्ययुक्त वचन सुनकर क्रोधसों विश्वामित्र कहत भये.

विश्वामित्र उवाच–हे राजन् ! तू अपने धर्मको सुमिरण कर यह प्रतिज्ञा तैंने करी है, "जो तेरा अर्थ होवेगा सो पूर्ण करूंगा और पूर्ण हुआ जानना" ऐसा तुमने कहा है, अब तू अपने धर्मको त्यागता है

और जो तू सिंह हुआ मृगोंकी नाईं भागता है तो भाग; परंतु आगे रघुवंशमें ऐसा कोई नहीं हुआ. जैसे चन्द्रमाके मंडलमें शीतलता होती है अग्नि निकसता नहीं है, तैसे तुम्हारे कुलविषे ऐसा कदाचित् नहीं हुआ अरु जो तू करता है तो कर, हम उठ जायँगे. काहेते कि शून्य गृहते शूनेई जाता है. परंतु यह तुमको योग्य न था. अरु तुम वसते रहो राज्य करते रहो अरु जो कछु होवेगा सो हम समझ लेयँगे अरु जो अपने धर्मको तू त्यागता है, तो त्याग दे.

वाल्मीकिरुवाच-हे भरद्वाज ! इस प्रकार जब अत्यंत क्रोधवान् होकर विश्वामित्र बोला तब इसके क्रोध करनेसे पचास कोटि पृथ्वी काँपने लगी अरु इंद्रादिक देवताभी भयको प्राप्त हुए कि, ये क्या हुआ; तब वशिष्ठजी बोले.

वशिष्ठ उवाच-हे राजन् ! इक्ष्वाकुके कुलमें सब परमार्थी हुए हैं और तू अपने धर्मको क्यों त्यागता है. मेरे विद्यमान तैंने कहा है," जो तुम्हारा अर्थ होवेगा सो मैं पूर्ण करूंगा." अब तू क्यों भाजता है ? रामजीको इसके साथ दे अरु यही तेरे पुत्रकी रक्षा करैंगे. जैसे सर्पते अमृतकी रक्षा गरुड करता है तैसे तेरे पुत्रकी रक्षा यह करेगा अरु यह कैसा पुरुष है सो श्रवण कर इसके समान बल किसीका नहीं. साक्षात् बलकी मूर्तिहै अरु धर्मात्मा है. साक्षात् धर्मकी मूर्ति है अरु ऐसा तपस्वी कोऊ नहीं है अरु तपकी खानि है अरु इसके समान कोऊ बुद्धिमान् नहीं है अरु इसके समान कोई शूरमा नहीं है अरु अस्त्र, शस्त्र विद्यामें भी इसके तुल्य कोऊ नहीं है. काहेते कि, जो दक्ष प्रजापतिकी दो पुत्री थीं; एक जया अरु दूसरी सुभगा सो ये ऋषिको दीनी हैं अरु जो जया थी तिसमें दैत्योंके मारने निमित्त पांचसौ पुत्रोंको प्रगट किये थे अरु सुभगाके भी पांचसौ पुत्र भये थे सो सब दैत्योंके नाश निमित्त उत्पत्ति किये थे. सो स्त्रियां इसके विद्यमान मूर्त्ति धरके स्थित हुई हैं, ताते इसको जीतनेको कोऊ समर्थ नहीं है, जिसका साथी विश्वामित्र होवे सो त्रिलोकीमें काहू सों नहीं डरै, ताते इसके साथ तू अपना पुत्रदे, अरु संशय मतकर. किसीकी सामर्थ्य नहीं जो इसके होते तेरे पुत्रको

कछु कोऊ कहिसके. इसकी दृष्टिके देखनेते दुःखका अभाव होजाता है. जैसे सूर्यके उदयते अंधकारका अभाव हो जाता है, तैसे.

हे राजन् ! इसके साथ तेरे पुत्रको खेद कहां होवे. तू इक्ष्वाकुके कुलका है अरु दशरथ तेरा नाम है. सो तेरे जैसे धर्म्मात्मा जब अपने धर्ममें स्थित न रहे तो और जीवते धर्मकी पालना कैसे होयगी, जो कछु श्रेष्ठ पुरुष चेष्टा करते हैं. तिनके अनुसार और जीव करते हैं. जो तुम सरीखे अपने वचनकी पालना न करैंगे, तब और सों कहा बनैगी अरु तुम्हारे कुलमें ऐसा कबहूँ नहीं हुआ. ताते अपने धर्मको त्यागना योग्य नहीं. तू अपने पुत्रको दे अरु जो तू उनके भयकर शोकमान होवे तो भी ना मतिक है और मूर्तिधारी काल आयकर स्थित होवे तो भी विश्वामित्रके विद्यमान तेरे पुत्रको कछु होवैं नहीं, तू शोक मत कर; अपने पुत्रको इसके साथ दे अरु जो न देगा तो दो प्रकारका तेरा धन नष्ट होवेगा-एक धन यह है कि जो कूप, वावडी, ताल कराये होयँगे, तिनका जो पुण्य है सो नष्ट हो जावेगा. अरु तप, व्रत, यज्ञ, दान, स्नानादिकका जो पुण्य है अरु क्रिया है तिस सबका फल नष्ट हो जावेगा और तेरा गृह निरर्थ होय जावेगा. ताते मोह अरु शोकको त्याग अरु अपने धर्मका सुमिरण कर, रामजीको इसके साथ दे, तेरे सब कार्य सफल होवेंगे.

हे राजन् ! जो इस प्रकार तुमको करना था, तो प्रथम ही विचारकर कहना था. काहेसे कि विचार विना काम करनेका परिणाम दुःख होता है. ताते इसके साथ अपने पुत्रको देहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे वशिष्ठसमाश्वासन-
वर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः १०.

अथ रामविषादवर्णनम्।

वाल्मीकिरुवाच--हे भरद्वाज ! जब इस प्रकार वसिष्ठजीने कहा तब राजा दशरथ धैर्यवान् होकर, भृत्योंमें जो श्रेष्ठ भृत्य था, वाको बुला-

यकर कहत भया, हे महाबाहु! रामजीको लेआओ. तब इसके साथ जो चाकर अंतर बाहर आवने जावने बारा था अरु छलते रहित था, सो राजाकी आज्ञा लेकर रामजीके निकट गया और एक मुहूर्त्त पाछे पीछा आया अरु कहत भया हे देव! रामजी तो बडीचिन्तामें बैठे हैं. मैंने रामजीसे वारंवार कहा कि अब चलिये तब वह कहते हैं कि चले हैं. ऐसे कहि कहि चुप हो रहते हैं.

हे भरद्वाज! इस प्रकार जब राजाने श्रवण किया तब कहा, रामजीके मंत्री अरु टहलुए सब बुलाओ, सब सेवकोंको बुलाय निकट लाये तब राजा आदरसों कोमल सुंदर वचन युक्तिसे कहत भया, हे रामजीके प्यारे! रामजीकी कहा दशा है और ऐसी दशा क्यों कर हुई है सो सब क्रम करके कहो.

मंत्री उवाच--हे देव! हम कहा कहैं, जेते हम कछु दृष्टि आवते हैं सो सब आकार अरु प्राण देखने मात्र हम हैं अरु हम सब मृतक हैं काहेते कि हमारा स्वामी रामजी बडी चिन्ताको प्राप्त हुआ है. हे राजन्! जिस दिनसे रघुनाथजी तीर्थ कर आये हैं तिस दिनसे चिन्ताको प्राप्त भये हैं. जब उत्तम भोजन हम ले जाते हैं, और पान करनेका पदार्थ और पहरनेका पदार्थ अरु देखनेका पदार्थ कछु ले जाते हैं सो सुखदाई पदार्थ रससहित तिसे देखके किसी प्रकार प्रसन्न होते हमने नहीं देखा है ऐसी चिंताके विषे वह लीन हैं; कि देखता भी नहीं अरु जो देखता है तो क्रोध करता है अरु सुखदाई पदार्थका निरादर करता है अरु अंतःपुर में इनकी माता नानाप्रकारके हीरे अरु मणि के भूषण देती है तो उन को भी डारदेता है नहीं तो किसी निर्धनको दे देता है, प्रसन्न किसी पदार्थपे होते नहीं हैं सुंदर स्त्रियाँ खडी विद्यमान होती हैं. नानाप्रकारके भूषणहू सहित महा मोह करनेहारी निकट होइकर लीला करती हैं, कटाक्षहू सहित प्रसन्न करने निमित्त, तौभी विषवत जानत हैं. उनकी ओर देखता भी नहीं. जैसे पपैया और जलको देखता भी नहीं जब अंतःपुर विषे निकसता है तब उनको देखकर क्रोधवान् होता है.

हे राजन् ! और कछु उसको भला नहीं लगता. किसी बडी चिंताविषे मग्न है और तृप्त होकर भोजन भी नहीं करता. क्षुधावंत रहता है, और न कछु पहरने, खाने पीनेहू की इच्छा रखता है न राज्यकी इच्छा है न किसी इंद्रिय के सुखकी इच्छा है. महा उन्मत्तकी नाईं बैठा रहता है अरु जब कोई सुखदाई पदार्थ फूलादिक ले जाते हैं, तब क्रोध करता है. हम नहीं जानते कि क्या चिंता उसको भई है, एक कोठरीमें पद्मासनकरि अरु हाथमें मुख धरके बैठा रहताहै. अरु जो कोऊ बडा मंत्री आयके पूछता है तब उससे कहता है कि तुम जिसको संपदा मानते हो सोई आपदा है, जिसको आपदा जानते हो सो आपदा नहीं है, अरु नानाप्रकारके संसारके पदार्थ जो रमणीय कर जानते हो, सो सब झूठे हैं याहीमें सब डूबे हैं ये सब मृगतृष्णाके जलवत् हैं, तिनको सत्य जान मूर्ख जो हरिण सो दौरते हैं, अरु दुःख पाते हैं.

हे राजन् ! कदाचित् बोलते हैं तो ऐसे बोलते हैं और कछु उनके उरमें सुखदायी नहीं भासता है अरु जो हम हँसीकी वार्त्ता करते हैं तो वह हँसता नहीं है. जिस पदार्थको प्रीति संयुक्त लेते थे तिस पदार्थको अब डारि देते हैं अरु दिन दिनपै दुर्बल हुये जाते हैं अरु जब अंतःपुरमें स्त्रियोंके पास बैठता है अरु वह नानाप्रकारकी चेष्टा रामजीको प्रसन्न करनेके निमित्त देखावती हैं उनको भी देखके प्रसन्न नहीं होता अरु जैसे मेघकी बूंदते पर्वत चलायमान नहीं होते हैं; तैसे आप चलायमान नहीं होते हैं. अरु जो बोलता है तो ऐसे कहताहै-न राज्य सत्य है न भोग सत्य है न जगत् सत्य है न मित्र सत्य है; मिथ्यापदार्थके निमित्त मूर्ख परे यत्न करते हैं जिनको सत्य जानते अरु सुखदायक जानते हैं सो बंधनका कारण है और कहा कहिये जो उनके कोई पास राजा अथवा पंडित जावे तिनको देखकर कहता है यह पशु हैं आशारूपी फांसीसे बँधे हुये हैं.

हे राजन् ! जो कछु भोग्य पदार्थ हैं तिनको देखकर उसका चित्त प्रसन्न नहीं होता अरु देखके क्रोधवान् होता है जसे पपैया मारवाडमें आवे अरु तहां हू मेघकी बूंद देखता नहीं है अरु खेदवान् होता है, तैसे रामजी विषय हू ते खेदवान् होता है हे राजन् ! इस करके हर्षवान् नहीं होता,

ताते हम जानते हैं कि इनको परमपद पानेकी इच्छा है, परन्तु कदाचित् मुखते सुना नहीं है अरु त्यागका अभिमान भी कदाचित् सुना नहीं है, कबहूं गाता है अरु बोलता है तब ऐसे कहता है, हाय हाय! मैं अनाथ मारा गया हूं अरे मूर्ख तुम संसार समुद्रमें क्यों डूबते हो यह संसार परम अनर्थका कारण है, इसमें सुख कदाचितहूं नहीं है, इससे छूटनेका उपाय करो.

हे राजन्! ऐसा भी कभी हम सुनते हैं अरु किसीके साथ बोलता नहीं है न हँसता है, न मंत्रीके साथ, न अपने अंतःपुरनकी स्त्रियोंके साथ, न माताके साथ बोलता है; किसी परमचिंतामें मग्न है अरु किसी पदार्थ पर आश्चर्यवान् नहीं होता, जो कोऊ कहै कि आकाशमें बाग लगा है, तिसमें फूल फूले हैं तिनको मैं ले आया हूँ तिसको सुनकर भी आश्चर्यवान् नहीं होता, सब भ्रम मात्र देखता है, न किसी पदार्थसे उसको हर्ष होता है, न किसी पदार्थसे उसको शोक होता है, किसी बडी चिंतामें मग्न है सो किसीको चिंता निवारनेमें हम समर्थ नहीं देखते हैं, वह तो चिंताके समुद्रमें मग्न है हे राजन्! यह चिंता हमको लग रही है कि, रामजीको न खानेकी इच्छा है, न पहिरनेकी इच्छा है, न बोलने की, न देखनेकी इच्छा रही है, न किसी कर्मकी इच्छा रही है ताते मृतक न हो जावे ऐसी हमें चिंता है अरु जो कोऊ कहता है कि तू चक्रवर्ती राजा है तेरो बडा आयुर्बल होइ अरु बडे सुखको पाओ तब तिसके बचन सुन कठोर बोलता है.

हे राजन्! केवल रामजीको ही ऐसी चिंता नहीं, लक्ष्मण अरु शत्रुघ्नको भी ऐसी चिंता लग रही है रामको देखकर जो कोऊ उनकी चिंता दूर करनेहारा होवे तो करे नहीं तो बडी चिंता मध्य डूबे रहैंगे किसी पदार्थकी इच्छा उनको नहीं रहती है.

हे राजन्! अब कहा कहते हो? तेरा पुत्र अब अतीत ह्वै रहा है. एक वस्त्र उपरना ओढकर बैठा है ताते सोइ उपाय करो. जिससे उसकी चिंता निवृत्त होवे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे रामविषाद-
वर्णनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ११.

अथ रामसमाश्वासनवर्णनम्।

विश्वामित्र उवाच--हे साधु! जो रामजी ऐसे हैं तो हमारे पास विद्यमान लाओ, हम उसका दुःख निवृत्त करेंगे. हे राजा दशरथ! तू बडा धन्य है कि, जिसका पुत्र विवेक अरु वैराग्यको प्राप्त भया. हे राजन्! हम तेरे पुत्रको परमपदकी प्राप्ति करेंगे. अभी सब दुःख उनके मिट जायँगे. हम वशिष्ठादि जो बैठे हैं सो एक युक्तिकर उपदेश करेंगे. तिस करके उनको आत्मपदकी प्राप्ति होवेगी. तब वह दशा तेरे पुत्रकी होवेगी जो लोष्ट पत्थर अरु सुवर्णको समान जानेंगे अरु जो कछु तुम्हारे क्षत्रियकी प्रवृत्तिका आचरण है सो करेंगे अरु हृदयमें प्रेमते उदासी होवेंगे ताते हे राजन्! उस करके तुम्हारा कुल कृतकृत्य होवेगा ताते रामजीको शीघ्र बोलावहु.

वाल्मीकिरुवाच--हे भरद्वाज! ऐसे मुनींद्रके वचनसुनकर राजादशरथ मंत्री अरु नौकरोंसे कहत भया कि रामजी अरु लक्ष्मण अरु शत्रुघ्नको ले आओ. जैसे हरिणीको हरिण ले आता है तैसे ले आओ जब राजा दशरथने ऐसा कहा, तब मंत्री अरु भृत्य रामजीके पास जायके कहा; तब रामजी आये सो आवत आवत राजा दशरथ अरु वशिष्ठजी अरु विश्वामित्रको देखे कि, तीनोंके ऊपर चमर होय रहे हैं अरु बडे मंडलेश्वर बैठे हैं. तिननेहू रामजीको देखे जो शरीरते कृश होय रहे हैं जैसे महादेवजी स्वामिकार्त्तिकको आवत देखे. तैसे रामजीको आवत राजा दशरथ देखत हैं. तहाँ रामजी आयकर राजा दशरथके चरणोंपै- मस्तक लगाय नमस्कार किया फिर तैसेई वशिष्ठजीको अरु विश्वामित्रजी को नमस्कार किया. बहुरि सभामें जो ब्राह्मण बडे बडे बैठे थे. तिनको हू नमस्कार किये अरु जो बडे बडे मंडलेश्वर बैठे थे तिनने उठकर रामजीको प्रणाम किया. फिर--

राजा दशरथने रामजीको गोदमें बैठाया. अरु देखकर मस्तक चूमा अरु बहुत प्रेम पुलकित होय रामजीसों कहत भया हे पुत्र! केवल विरक्तता

कर परमपदकी प्राप्ति नहीं होती है अरु वशिष्ठजी गुरु हैं तिनके उपदेशकी युक्ति कर परमपदकी प्राप्ति होयगी.

वशिष्ठ उवाच--हे रामजी ! तुम धन्य हो,अरु बडे शूरमें हो जो विषय रूपी शत्रु तुमने जीते हैं जो विषय अतीत है अरु दुष्ट है ताको तुमने जीता ताते तुम धन्य हो धन्य हो !

विश्वामित्र उवाच--हे कमलनयन राम ! अपने अन्तरकी चपलता है तिसको त्याग करके जो कछु तुम्हारा आशय होय सो प्रगट कर कहो. हे रामजी ! यह जो तुमको मोह प्रात हुआ है सो कैसे अरु किस कारण हुआ है ? अरु केताक है सो कहो अरु जो अब कछु तुमको बांछित होय सो कहो, हम तुमको तिसी पदमें प्राप्त करैंगे. जिसमें दुःख कदाचित् होय नहीं और आकाशको चूहा काटि नहीं सकता है तैसे तुमको पीडा कदाचित् न होवेगी. हे रामजी ! जब तुम्हारे सम्पूर्ण दुःख नाश कर देयँगे तुम संशय मत करो, जो कुछ तुम्हारा वृत्तांत होय सो हमसे कहो.

वाल्मीकिरुवाच--हे भरद्वाज ! अब ऐसे विश्वामित्रने कहा सो सुनकर रामजी बहुत प्रसन्न भए अरु शोकको त्याग दिया. जैसे मेघको देखके मोर प्रसन्न होता है तैसे विश्वामित्रके वचन सुन रामजी प्रसन्न हुए अरु अपने हृदयमें निश्चय किया अब मुझको उस पदकी प्राप्ति होवेगी.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे रामसमाश्वासन-वर्णनं नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२.

अथ रामेण वैराग्यवर्णनम्।

वाल्मीकिरुवाच--हे भरद्वाज ! ऐसे मुनीश्वरके वचनको रामजी सुनके बहुत प्रसन्न होयके बोले--

श्रीराम उवाच--हे भगवन् ! जो वृत्तांत है सो तुम्हारे विद्यमान क्रम करके कहता हौं, इस राजा दशरथके घरमें जो मैं उत्पन्नभया हौं बहुरि

क्रम करके बडा हुआ हौं, उपवीत पाया हौं अरु चारों वेद पढ़कर ब्रह्मचर्यादि व्रतपाया हौं ता पाछे एक दिन पढके मैं घरमें आया तब मेरे हृदयमें बात आय रही कि तीर्थाटन करों अरु देवद्वारमें जायके देवनके दर्शन करों तब मैं पिताकी आज्ञा लेकर तीर्थको गया अरु गंगा आदि संपूर्ण तीर्थ में स्नान किया अरु शालिग्राम अरु केदार आदि ठाकुरके विधिसंयुक्त दर्शन किये अरु यात्रा करके इहाँ आया फिर उत्साह हुआ.

तब मेरे में विचार आया कि प्रातःकाल उठके स्नान संध्यादिक कर्म करना, बहुरि भोजन करना; ऐसे इस प्रकारसों केतेक दिन व्यतीत भये- तब मेरे हृदयमें विचार उत्पन्न हुआ सो विचार मेरे हृदयको खैंच ले गया--जैसे नदीके तटपर तृण लता होते हैं, तिसको नदीका प्रवाह खैंच ले जाता है, तैसे मेरे हृदयमें जो कछु जगत्की आस्थारूप तृणलता थी सो विचार रूपी प्रवाह ले गया. तब मैं जानता भया कि राज्यकरके क्या है? अरु भोगते क्या है? अरु जगत् क्या है? सब भ्रम मात्र है, इसकी वासना मूर्ख रखते हैं. यह स्थावर जंगम रूपी जेता कछु जगत् है सो सब मिथ्या है.

हे मुनीश्वर! जेते कछु पदार्थ हैं सो मनसों करके हैं सो मन भी भ्रममात्र. अनहोता मन दुःखदायी हुआ है. मन जो पदार्थ सत्य जानकर दौरता है अरु सुखदायक जानता है सो मृगतृष्णाके जलवत् है. जैसे मृगतृष्णाको देखकर मृग दौरते हैं अरु है नहीं; सो मृग दौरत दौरत थकके पड़ जाता है; तौ हू जल तिसको प्राप्त नहीं होता. तैसे मूर्ख जीव पदार्थको सुखदायी जानकर भोगनेका यत्न करता है; अरु शांतिको नहीं पाता है. तैसे--

हे मुनीश्वर! इंद्रियनके भोग सर्पवत् हैं, जिनका मारा हुआ जन्म मरनको पाता है. जन्मते जन्मांतरको पाता है. भोग अरु जगत् सब भ्रममात्र है. तिन विषे जो आस्था करते हैं, सो महामूर्ख हैं ऐसा मैं विचार करके जानता हों;जो सब आगमापायी है. अर्थ यह जो आवते हू हैं अरु जाते हू हैं. ताते जिस पदार्थका नाश न होय सो पदार्थ पावने योग्य है, इसी कारणसे मैंने भोगका त्याग किया है.

हे मुनीश्वर ! जैसे कछु संपदारूप पदार्थ भासते हैं सो सब आपदा हैं. इनमें रंचक हू सुख नहीं है. जब इनका वियोग होता है तब कंटककी नाईं मनमें चुभता है. जब इंद्रियको भोग प्राप्त होता है तब रोगदोषकर जलता है; अरु जब नहीं प्राप्त होता तब तृष्णा कर जलता है. ताते भोग दुःखरूप है.जैसे पत्थरकी शिलामें छिद्र नहीं होता, तैसे भोगरूपी दुःखकी शिलामें रंचक भी सुखरूपी छिद्र नहीं होता है.

हे मुनीश्वर ! विषयकी तृष्णामें बहुत कालसों जलता रहा हों. जैसे हरे वृक्षके छिद्रमें रंचक अग्निधरा होय तब धुवां होय थोरा थोरा जलता रहता है; तैसे भोगरूपी अग्नि करके मन जलता रहता है. यह विषयमें सुख कछु हू नहीं, अरु दुःख बहुत है इनकी इच्छा करनी सोई मूर्खता है, जैसे खाईंके ऊपर तृण अरु पात होता है. तिसकर खाईं आच्छादित होय जाती है. तिसको देखके हरिण कूद परता है अरु दुःख पावता है; तैसे मूर्ख भोगको सुखरूप जानके भोगनेकी इच्छा करता है जब भोगता है तब जन्मते जन्मांतर रूप खाईं में जाय परते हैं अरु दुःख पावते हैं.

हे मुनीश्वर ! भोगरूपी चोर है सो अज्ञानरूपीरात्रिमें लूटने लगता है सो आत्मरूपी धन है तिसको ले जाता है; तिसके वियोगते महादीन रहता है अरु जिस भोगके निमित्त यह यत्न करता है सो दुःखरूप है शांतिको प्राप्त नहीं होता अरु जिस शरीरके अभिमान करके यह यत्न करता है, सो शरीर क्षणभंग होताहै अरु असार है. जिसको सदा भोगकी इच्छा रहती है सो मूर्ख अरु जड है, इसको बोलना चालना भी ऐसा है जैसे सूखे बाँसके छिद्रमें पवन जाता है अरु पवनके वेगकर शब्द होता है तैसे उस मनुष्यकी वासना है. जैसे थका हुआ मनुष्य मारवाड़के मार्ग की इच्छा नहीं करता तैसे दुःख जानकर मैं भोगकी इच्छा नहीं करता हूँ

अरु यह जो लक्ष्मी है सो परम अनर्थकारी है. जब लग इसकी प्राप्ति नहीं होती, तब लग तिसके पावनेका यत्न होता है अरु अनर्थ करके प्राप्ति होती है अरु जब प्राप्ति हुई तब सब गुणका नाश कर

देती है शीलता, संतोष, धर्म, उदारता, कोमलता, वैराग्य, विचार, दयादिक गुणका नाश करती है. जब ऐसे गुणोंका नाश हुआ तब सुख कहांते होय. परम आपदा प्राप्त होती है. परमदुःखका कारण जानकर मैंने इसका त्याग किया है. हे मुनीश्वर! इसमें गुण तब लग है जब लग लक्ष्मी नहीं प्राप्त भई, जब लक्ष्मीकी प्राप्ति भई तब सब गुण नाश हो जाता है, जैसे वसन्तऋतुकी मंजरी हरियावल तब लग रहती है जब लग ज्येष्ठ आषाढ नहीं आया; जब ज्येष्ठ आषाढ आया तब मंजरी जर जाती है. तैसे जब लक्ष्मी प्राप्ति भई तब सब शुभ गुण जर जाते हैं अरु मधुर वचन तब लग बोलता है, जब लग लक्ष्मीकी प्राप्ति नहीं होती है जब लक्ष्मीकी प्राप्ति भई तब कोमलताका अभाव होय कठोर हो जाता है. जैसे जल पतला तब लग रहता है जब लग शीतलताका संयोग नहीं होय जब शीतलताका संयोग होता है तब बर्फ होकर कठोर दुःखदायक हो जाता है. तैसे यह जीव लक्ष्मी पाकर जड हो जाता है.

हे मुनीश्वर! जो कछु संपदा है सो आपदाका मूल है; काहेते कि जब लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है तब बडे सुखको भोगता है अरु जब तिसका अभाव होता है तब तृष्णा करके जलता है. जन्मते जन्मान्तरको पावता है. लक्ष्मीकी इच्छा है सोई मूर्खता है यह तो क्षणभंग है. याते भोग उपजता है अरु नाश भी होता है जैसे जलते तरंग उपजते हैं अरु मिट जाते हैं अरु बिजुली स्थिर नहीं होती है तैसे भोगहू स्थिर नहीं रहते अरु पुरुषमें शुभ गुण तब लग हैं जब लग तृष्णाका स्पर्श नहीं किया. जब तृष्णा भई तब शुभ गुणका अभाव हो जाता है. जैसे दूधमें मधुरता तब लग है. जब लग उसको सर्पने स्पर्श नहीं किया; जब सर्पने स्पर्श किया तब दूध है सो विषरूप होजाता है.

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे रामेण वैराग्य-

वर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः १३.

अथ लक्ष्मीतिरस्कारवर्णनम्।

श्रीराम उवाच--हे मुनीश्वर ! लक्ष्मी देखने मात्रको ही सुंदर है अरु जब इसकी प्राप्ति हुई तब सद्गुणका नाश कर देती है. जैसे विषकी लता देखने मात्रको सुंदर है अरु स्पर्श कियेते मार डारती है, तैसे लक्ष्मीकी प्राप्ति हुए आत्मा पदते मृतक होता है अरु महादीन होय जाता है. जैसे किसीके घरमें चिंतामणि दबी रही ताको खोदकर लेवे नहीं तब लग दरिद्री रहता है, तैसे अज्ञान कर ज्ञान विना महादीन जैसा हो रहता है आत्मानंदको पाय नहीं सकता. आत्मानंदके पानेका जो मार्ग है तिसकी नाश करनहारी लक्ष्मी है. इसकी प्राप्तिते जीव महा अंध हो जाता है.

हे मुनीश्वर ! जब दीपक प्रज्वलित होता है तब उसका बडा प्रकाश दृष्टि आवता है; जब दीपक बुझ जाता है तब प्रकाशका अभाव होय जाता है अरु काजरकी समक्षता रहजाती है, जो वारंवार वासना उपजती थी सो रहती है; तैसे जब इस लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है तब बडे भोग उनको भुगवाती है अरु तृष्णा रूप काजर उससे उपजता रहता है. जब लक्ष्मीका अभाव होता है तब वासना तृष्णाकी समक्षता छांड जाती है. तिस वासना तृष्णा करके अनेक जन्मको पाता है. शांतिको कदाचित् नहीं प्राप्त होता.

हे मुनीश्वर ! जब जिसको लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है तब शांतिके उपजावन हारे गुणका नाश करती है. जैसे जब लग पवन नहीं चलता तबलग मेघ रहता है, जब पवन चला कि, मेघका अभाव होजाता है. तैसे लक्ष्मीकी प्राप्ति हुए गुणका अभाव होता है अरु गर्वकी उत्पत्ति होती है.

हे मुनीश्वर ! जो शूरमा होके अपने मुखते अपनी बडाई न कहै सो दुर्लभ है अरु समर्थ होय किसीकी अवज्ञा न करै सबमें समबुद्धि राखै सो दुर्लभ है. तैसे लक्ष्मीवान् होकर शुभ गुण संयुक्त होय सो भी दुर्लभ है.

हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी जो सर्प है, तिसको बढाने का स्थान लक्ष्मी रूपी दूध है सो पीवत पवन रूपी भोगका आहार करत कदाचित आघात नहीं अरु महा मोहरूप उन्मत्त हस्ती है तिसको फिरने का स्थान पर्वतकी अटवी रूपी लक्ष्मी है अरु गुण रूप जो सूर्यमुखी कमल है, तिसकी लक्ष्मी रात्रि है अरु भोग रूपी चंद्रमुखी कमल है. तिनका लक्ष्मी चंद्रमा है अरु वैराग्य रूप जो कमलिनी है तिसके नाशकरनेहारी लक्ष्मी बर्फ है अरु ज्ञानरूपी जो चंद्रमा है तिसको आच्छादन करनेहारी लक्ष्मी राहु है अरु मोहरूपी जो उलूक है तिसकी यह रात्रि है अरु दुःखरूपी जो बिजुरी है तिसको लक्ष्मी आकाश है अरु तृष्णारूपी जो लता है, तिसको बढावनहारी लक्ष्मी मेघ है अरु तृष्णारूप जो तरंग हैं, तिनकी लक्ष्मी समुद्र है अरु भोगरूपी जो पिशाच है, तिसका लक्ष्मी स्थान है अरु तृष्णारूपी भवँरको लक्ष्मी कमलिनी है. जन्मके दुःखरूप जलको यह लक्ष्मी ताल है.

हे मुनीश्वर ! देखनेमात्रको यह सुंदर लगती है अरु दुःखका कारण है. जैसे खड्गकी धारा देखने मात्रको सुंदर होती है. अरु परश कियेते नाश करती है, तैसी यह लक्ष्मी है अरु विचाररूपी मेघका नाशकरनेमें लक्ष्मी वायु है.

हे मुनीश्वर ! यह मैंने विचारकर देखा है. इसमें सुख कछूहू नहीं. अरु संतोषरूपीमेघका नाश करनहारा यह शरत्काल है अरु इस मनुष्यमें शुभ गुण तबलग दृष्टि आवै, जबलग लक्ष्मीकी प्राप्ति नहीं भई. जब लक्ष्मीकी प्राप्ति भई, तब गुण नाश पाते हैं.

हे मुनीश्वर ! लक्ष्मीको ऐसी दुःखदायक जानकर इसकी इच्छा मैंने त्यागदीनी हैं. यह भोग मिथ्या रूप हैं. जैसे बिजुरी प्रगट होय छिपजाती हैं. तैसे यह लक्ष्मीहू प्रगट होय छिपजाती है. जैसे जल है सो हिम है, तैसे लक्ष्मीजीकी ज्योति है सो मूर्ख जडके आश्रयते है. इसको छलरूप जानकर मैंने त्याग किया है.

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे लक्ष्मीतिरस्कार-
वर्णनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः १४.

अथ संसारसुखनिषेधवर्णनम्।

राम उवाच--हे मुनीश्वर! जो वाको देखकर प्रसन्न होता है. सो जैसे पत्रके ऊपर जलकी बूंद नहीं रहती है तैसे लक्ष्मी क्षणभङ्ग है. जैसे जलके तरंग होयके नाश पाते हैं, तैसे लक्ष्मी होयके नाश पाती है.

हे मुनीश्वर! पवनको रोकना कठिन है सो भी कोऊ रोके रहै अरु आकाशका चूरन करना अति कठिन है सो भी कोऊ चूरन करडारै अरु बिजलीको रोकना अति कठिन है सो भी कोऊ रोकलेवे, परन्तु लक्ष्मी पायके कोई स्थिर होवे सो नहीं. जैसे शशाके सींग सो कोऊ मार नहीं सकता अरु आरसीके ऊपर जैसे मोती नहीं ठहरता है. जैसे तरंगकी गांठ नहीं परत है तैसे लक्ष्मीहू स्थिर नहीं रहती है लक्ष्मी बिजुलीकी चमक जैसी है तैसे होतीहू है अरु मिट भी जाती है अरु लक्ष्मी पायके आपको अमर हुआ चाहै सो महामूर्ख जानना अरु लक्ष्मीको पायकर जो भोगकी वांछा करत है सो महा आपदाका पात्र है; तिनको जीनेते मरना श्रेष्ठ है. जीनेकी आशा मूर्ख करते हैं सो अपने नाशके निमित्त करते हैं. जैसे स्त्री जो गर्भकी इच्छा करती है सो अपने नाशके निमित्त करती है.

अरु जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, जिनकी परम पदमें स्थिति है अरु तिसकर तृप्ति पाये हैं; तिनका जीना सुखके निमित्त है. तिनके जीनेते औरका कार्य्य भी सिद्ध होजाता है. तिनका जीना चिंतामणिकी नाईं श्रेष्ठ है अरु जिनको सदा भोगकी इच्छा रहती है और आत्मपदके विमुख हैं तिनका जीना किसी सुखके निमित्त नहीं है. वह मनुष्य नहीं, गर्दभ है अरु जैसे वृक्ष, पक्षी, पशुका जीवना है तैसे तिसका भी जीवना है.

हे मुनीश्वर! जो पुरुष शास्त्र पढा है अरु पाने योग्य पद नहीं पाया तब शास्त्र उसको भाररूप है जसे औरका भार होता है तैसे पढनेका भी भार है अरु पढके विचार चर्चा करता है और तिसके सारको नहीं ग्रहण करता तो यह विचार चर्चा हू भार है.

हे मुनीश्वर ! मन है सो आकाशरूप है, सो मनमें जो शांति न आई तो मनहू उसको भार है अरु जो मनुष्य शरीरको पाया है उसका अभिमान नहीं त्यागता है तो यह शरीर भी उसको भार है. यह शरीरका जीवना तब ही श्रेष्ठ है जब आत्मपदको पावे, अन्यथा उसका जीना व्यर्थ है और आत्मपदकी प्राप्ति अभ्याससे होती है. जैसे जल पृथ्वीके खोदेते निकसता है तैसे अभ्यास कर आत्मपदकी प्राप्ति होती है. अरु जो आत्मपदते विमुख होय आशाकी फांसी में फँसे हैं सो संसारमें भटकते रहते हैं.

हे मुनीश्वर ! संसारके तरंग अनेक कालसों उत्पन्न होय नष्ट होय जाते हैं तैसे यह लक्ष्मीहू क्षणभंग है, इसको पायके जो अभिमान करते हैं सो मूर्ख हैं जैसे बिल्ली चूहाको पकड़नेके लिये परी रहती है, तैसे लक्ष्मी उनको नरकमें डारनेके लिये घरमें परी रहती है. जैसे अंजलीमें जल नहीं ठहरता, तैसे लक्ष्मी चली जाती है, ऐसी क्षणभंग लक्ष्मी अरु शरीरको पायकर जो भोगकी तृष्णा करते हैं सो महामूर्ख हैं. सो मृत्युके मुखमें परेहुए जीनेकी आशा करते हैं. जैसे सर्पके मुखमें मेढक पड़ता है सो मच्छरको खानेकी इच्छा करता है, याते सो महामूर्ख है, तैसे यह पुरुष मृत्युके मुखमें परा हुआ भोगकी वांछा करता है सो महामूर्ख है.

अरु युवा अवस्था नदीके प्रवाहकी नाईं चली जाती है बहुरि वृद्धावस्था प्राप्त होती है, तामें महादुःख प्रगट होते हैं अरु शरीर जर्जर होय जाता है, फिर मरता है; इक क्षणहूँ मृत्यु इनको विसारती नहीं है सदाई देखत रहती है, जैसे महाकामी पुरुषको सुन्दर स्त्री मिलती है तब उसको देखनेका त्याग नहीं करती, तैसे मृत्यु मनुष्यको देखे बिना नहीं रहती है.

हे मुनीश्वर ! मूर्ख पुरुषका जीना दुःखके निमित्त है. जैसे वृद्धमनुष्यका जीवना दुःखका कारण है तैसे अज्ञानीका जीवना दुःखका कारण है. उसको बहुत जीवनेते मरना श्रेष्ठ है. जिस पुरुषने मनुष्य शरीर पायकर आत्मपदपानेका यत्न नहीं किया तिनने आपई अपना नाश किया है, सो आत्महत्यारा है.

हे मुनीश्वर ! यह माया बहुत सुंदर भासती है अरु आखिर नाशको पाती है. जैसे वृक्षको अंतरते घुण खाय जाता है अरु बाहरते बहुत सुन्दर दीखता है; तैसे यह पुरुष बाहरते सुंदर दृष्टि आता है अरु अंतरते इसको तृष्णा खाय जाती है. जो पदार्थको सत्य अरु सुखरूप जानकर सुखके निमित्त आश्रय करता है सो सुखी नहीं होता है. जैसे नदीमें सर्पको पकरके पार उतरा चाहै सो पार नहीं उतरता है,वह मूर्खता करके डूबेहीगा, तैसे जो संसारके पदार्थको सुखरूप जानकर आश्रय करता है सो सुख नहीं पाता संसारके समुद्रमेंही डूब जाता है.

हे मुनीश्वर ! यह संसार इंद्रधनुषकी नाईं है. जैसे इंद्रधनु षबहुत रंगका दृष्टिमें आता है अरु तिसते अर्थ सिद्धि कछु नहीं होती है तैसे यह संसार भ्रममात्र है. इसमें सुखकी इच्छा रखनी व्यर्थ है. इस प्रकार जगत्को मैंने अस्तरूप जानकर निर्वासना होनेकी इच्छा करी है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे संसारसुखनिषेधवर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः १५.

अथ अहंकारदुराशावर्णनम्।

श्रीराम उवाच--हे मुनीश्वर ! यह जो अहंकार उदयहुआ सो अज्ञानते महादुष्ट है अरु यही परमशत्रु है. इसने मेरेको भार प्राप्त किया है अरु मिथ्या है. जेते कछु दुःख है तिन सबकी खानिअहंकार हैजबलग अहंकार है तबलग पीडाकी उत्पत्तिका अभाव कदाचित् नहीं होता है.

हे मुनीश्वर ! जो कछु मैंने अहंकारसों भजन किया अरु पुण्य किया है अरु जो लिया दिया है और कछु किया है सो सब व्यर्थ है, इसकर परमार्थकी सिद्धि कछु नहीं है.जैसे राखमें आहुति धरी व्यर्थ हो जाती है तैसे जानत हौं अरु जेते कछु दुःख हैं तिनका बीज अहंकार है, इसका नाश होवे तब कल्याण होवे. ताते तुम इसका उपाय मुझको कहो, जिसकर अहंकार निवृत्त होवे.

हे मुनीश्वर ! जो वस्तु सत्य है तिसका त्याग करनेमें दुःख हो जाताहै अरु जो वस्तु नाशवान् अरु भ्रमकरके दिखती है, तिसके त्याग करनेते आनंद है अरु शांतिरूप जो चंद्रमा है तिसको आच्छादन करनेका अहंकाररूपी राहु है. जब राहु चंद्रमाका ग्रहण करता है तब उसकी शीतलता अरु प्रकाश ढपजाता है तैसे जब अहंकार उपजता है तब समता ढप जाती है. जब अहंकाररूपी मेघ गर्जके बरसता है तब तृष्णारूपी कटकमंजरी बढ जाती है सो कदाचित् घटत नहीं, जब अहंकारका नाश होवे तब तृष्णाका अभाव होवे. जैसे जबलग मेघ है तबलग बिजुरी है. जब विवेकरूपी पवन चलै तब अहंकाररूपी मेघका अभाव होयके बिजुरी नाश पाती है. जैसे जबलग तेल अरु बाती है तब लग दीपका प्रकाश है; जब तेल बातीका नाश होता है तब दीपका प्रकाश भी नाश पाता है तैसे जब अहंकारका नाश होवे तब तृष्णाका भी नाश होता है.

हे मुनीश्वर ! परमदुःखका कारण अहंकार है. जब अहंकारका नाश होवे, तब दुःखका भी नाश होजाय. हे मुनीश्वर ! यह जो मैं रामहों सो नहीं अरु इच्छा भी कछु नहीं. काहेते जो मैं नहीं तो इच्छा किसको होवे अरु इच्छा होइ तो यही होइ जो अहंकारके रहित पदकी प्राप्ति होवे. जैसे जनींद्रको अहंकारका उत्थान नहीं हुआ तैसा मैं होऊं ऐसी मुझको इच्छा है.

हे मुनीश्वर ! जैसे कमलको बर्फ नाश करती है, तैसे अहंकार ज्ञानका नाश करता है. जैसे पारधी जालसों पक्षीको बंधन करता है तिसपर पक्षी दीन होजाते हैं, तैसे अहंकाररूपी पारधीने तृष्णारूपी जाल डारके जीवको बंधन किया है, तिसकर महादीन हो गया है. जैसे पक्षी अन्नके कनको सुखरूप जानकर चुगनेको आता है, फिर चुगते फिरते जालमें बँध जाताहै, तिस बंधनकर दीन होजाता है, तैसे यह पुरुष विषयभोगकी इच्छा कियेते तृष्णारूपी जालमें बंध होय महादीन हो जाता है. ताते हे मुनीश्वर ! मुझको सोई उपाय कहो जिसकर अहंकार नाश होवे. जब अहंकारका नाश होवेगा तब मैं परमसुखी होऊंगा जैसे विंध्याचल

पर्वतके आश्रयते उन्मत्त हस्ता पडे गर्जते हैं, तैसे अहंकाररूपी जो विंध्याचल पर्वत है तिसके आश्रयते मनरूपी उन्मत्त हस्ती नानाप्रकारके संकल्प विकल्परूपी शब्द करता है, ताते सोई उपाय कहो जिसकर अहंकारका नाश होवे सो अहंकार अकल्याणका मूल है. जैसे मेघका नाश करनहारा शरत्काल है; तैसे वैराग्यका नाश करनहारा अहंकार है. मोहादिक विकाररूप जो सर्प हैं, तिनको रहनेको अहंकाररूपी बिल है, अरु अहंकार कामीपुरुषकी नाईं है जैसे कामी पुरुष कामको भुगतता है अरु फूलकी माला गरेमें डारके प्रसन्न होता है, तैसे तृष्णारूपी तागा है अरु मनुष्यरूपी फूलके मनके हैं सो तृष्णारूपी तागेके साथ पिरोये हैं सो अहंकाररूपी कामीपुरुष गरेमें डारता है अरु प्रसन्न होता है.

हे मुनीश्वर ! आत्मारूपी सूर्य्य है. तिसका आवरण करनहारा मेघरूपी अहंकार है, जब ज्ञानरूपी सूर्य उदयका काल आवे तब अहंकाररूपी बादरका नाश हो जाता है अरु तृष्णारूपी तुषारका भी नाश होवे.

हे मुनीश्वर ! यह निश्चय कर मैंने देखा है कि, जहां अहंकार है तहां सब आपदा आय प्राप्त होती हैं, जैसे समुद्रमें सब नदी आयके प्राप्त होती हैं तैसे अहंकारमें सब आपदाकी प्राप्ति है. ताते सोई उपाय कहो जिसकर अहंकारका नाश होवे.

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे अहंकारदुराशावर्णनं नाम पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः १६.

अथ चित्तदौरात्म्यवर्णनम्.।

श्रीराम उवाच–हे मुनीश्वर ! यह जो मेरा चित्त है सो काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णादिक दुःख कर जर्जरीभाव हो गया है अरु महापुरुषके जो गुण वैराग्य, विचार, धैर्य, संतोष तिनकी ओर नहीं जाता; सर्वदा विषयकी गिरदमें उड़ता है. जैसे मोरका पंख पवनके लागे ठहरता

नहीं, तैसे यह चित्त सर्वदा भटकता फिरता है अरु इसको लाभ कछु नहीं होता. जैसे श्वान द्वार द्वारपै भटकता फिरता है, तैसे यह चित्त पदार्थके पावने निमित्त भटकता फिरता है और प्राप्त कछु नहीं होता. अरु जो कछु प्राप्त होता है तिसकरि तृप्त नहीं होता. अंतर तृष्णा रही आवत है. जैसे पिटारेमें जल भरिये, तासों वह पूर्ण नहीं होता, क्योंकि छिद्रते जल निकस जाता है अरु पिटारा शून्यका शून्य रहता है. तैसे चित्तको भोग पदार्थ प्राप्त होता है तासों संतुष्ट नहीं होता है. सदा तृष्णाई रहत है.

हे मुनीश्वर ! यह चित्तरूपी महामोहका समुद्र है, तिसमें तृष्णारूपी तरंग उठतेई रहत हैं सो कदाचित् स्थिर नहीं होते, जैसे समुद्रमें तीक्ष्ण वेगकर तरंग होता है सो तटके वृक्षको लागता है अरु जलमें बहजाते हैं; तैसे चित्तरूपी समुद्रमें विषय बहिजाते हैं, वासनारूपी तरंगके वेगसों मेरा जो अचल स्वभाव था सो चलायमान हो गया है सो इस चित्तसों मैं महादीन हुआ हूँ जैसे जालमें परा पक्षी दीन होजाता है तैसे चित्तसे धीवरकी वासनारूपी जालमें बँधा हुआ मैं दीन हो गया हूँ. जैसे मृगके समूहते भूली मृगी अकेली खेदवान होती है, तैसे मैं आत्मपदते भूला हुआ चित्तमें खेदवान हुआ हूँ.

हे मुनीश्वर ! यह चित्त सदा क्षोभवान रहता है,कदाचित् स्थिर नहीं होता, जैसे क्षीरसमुद्र मंदराचल करके क्षोभवान हुआ था, तैसे यह चित्त संकल्प विकल्प कर खेद पावत है, जैसे पिंजरेमें आया सिंह पिंजरेमें फिरता है, तैसे वासनामें आया चित्त स्थिर नहीं होता.

हे मुनीश्वर ! इस चित्तने मेरेको दूरते दूर डारा है, जैसे भारी पवनसों सूखा तृण दूरते दूर जाय पडता है तैसे चित्तरूपी पवनने मुझको आत्मानंदते दूर डारा है. जैसे सूखे तृणको अग्नि जरावत है, तैसे मोको चित्त जारता है. जैसे अग्निते धूम निकलता है, तैसे चित्तरूपी अग्निते तृष्णारूपी धूम निकलता है, तिसकर मैं परम दुःख पावत हों, यह चित्त हंस नहीं बनता है, जैसे राजहंस दूध अरु जल मिलेको भिन्न २ करता है, तिसकी नाईं मैं अनात्मामें अज्ञान करके एकसा हो गया हूँ; तिसको

भिन्न नहीं करसकता हूँ; जब आत्मपद पानेका यत्न करता हूँ तब अज्ञान प्राप्त करने नहीं देता. जैसे नदीका प्रवाह समुद्रमें जाता है, तिसको पहाड़ सूधे नहीं चलने देता है अरु समुद्रकी ओर जाने नहीं देता है. तैसे मुझको चित्त आत्माकी ओरते रोकता है सो परम शत्रु है. हे मुनीश्वर ! ताते सोई उपाय कहो, जिसकर चित्तरूपी शत्रुका नाश होवे.

यह तृष्णा मेरा भोजन करती रहतीहै; जैसे मृतक शरीरकी श्वान अरु श्वाननी भोजन करते हैं तैसे आत्माके ज्ञान विन मैं मृतक समान हों. जैसे बालक अपनी परछाहींको बेताल मानकर भयको पाता है. सो जब विचार करके समर्थ होता है तब बेतालका भय पाता नहीं तैसे चित्तरूपी वेतालने मेरा स्पर्श किया है; तिसकरके मैं भयको पाता हूँ, ताते तुम सोई उपाय कहो; जिससे चित्तरूपी वेताल नष्ट होय जावे.

हे मुनीश्वर ! अज्ञानकरके मिथ्या वेताल चित्तमें दृढहो रहा है, तिसके नाश करनेको मैं समर्थ नहीं हो सकता हों, अग्निमें बैठना सो भी मैं सुगम मानता हों और चलके बडे पर्वतके ऊपर जाना सो भी मैं सुगम जानता हों अरु बडे वज्रका चूरन करना यह भी मैं सुगम मानता हों, परन्तु चित्तका जीतना महाकठिन है, ऐसा मैं जानता हों. चित्त सदाई चलायमान स्वभाववाला है.जैसे थंभके साथ बांधा हुआ वानर कदाचित् स्थिर होय नहीं बैठता, तैसे चित्त वासनाके मारे स्थिर कदाचित् नहीं होता है. हे मुनीश्वर!बडा समुद्रका पान करजाना सुगम है अरु अग्निका भक्षण करनाभी सुगम है, और सुमेरुका उल्लंघन करना सो भी सुगम है, परन्तु चित्तको जीतना महाकठिन है, जो सदा चलरूप है. जैसे समुद्र अपना द्रवस्वभावका कदाचित् नहीं त्याग करता अरु महाद्रवीभूत रहता है, तिसकर नानाप्रकारके तरंग होते हैं, तैसे चित्तभी चंचलस्वभावको कभी नहीं त्यागता है, नानाप्रकारकी वासना उपजती रहती है अरु बालककी नाईं चंचल है, सदा विषयकी ओर धावता है कहूँ पदार्थकी प्राप्ति होती है, परन्तु अंतरते सदा चंचल रहता है, जैसे सूर्यके उदय हुए ते दिन होता है अरु अस्त हुएते नाश पाता है, तैसे चित्तके उदयहुए त्रिलोकीकी उत्पत्ति है अरु चित्तके लीन हुएते लीन हो जाती है.

हे मुनीश्वर ! किसी समुद्रमें जल गंभीर है, तिसमें बडे सर्प रहते हैं सो जब कोऊ समुद्रमें प्रवेश करै तब वे सर्प उनको काटते हैं, तिनको विष चढ जाता है, तिसकरके बडा दुःख पाता है सो दृष्टांत सुनिये चित्तरूपी समुद्र है अरु वासनारूपी जल है; तिसमें छलरूपी सर्प है,जब जीव उसके निकट जाता है तब भोगरूपी सर्प उसको काटता है तब तृष्णारूपी विष पसरता है, तिसकर मरता है.

हे मुनीश्वर ! जो भोगको सुखरूपी जानकर चित्त दौरता है सो भोग दुःखरूप है,जैसे तृणसों खाईं आच्छादित होय जाती है. तिसको देखकर मूर्ख मृग खानेको दौरता है तब खाईंमें गिर पडता है अरु दुःख पाता है, तैसे चित्तरूपी मृग भोगका सुख जानकर भोगनेको लगता है तब तृष्णारूपी खाईंमें गिर पडता है अरु जन्मान्तर दुःखको भोगता है.

हे मुनीश्वर! यह चित्त कबहूं बडा गंभीर हो बैठता है. और जब भोग को देखता है तब तिनकी ओर चीलकी नाईं लगि गिर पडता है जैसे गीदड पक्षी आकाशमें चढा फिरता है सो जब पृथ्वीपर मांसको देखता है, तब तहांते आय पृथ्वीपर बैठता है अरु मांसको लेता है, तैसे यह चित्त कभी निराला उडता है, जब विषय देखे तब आसक्ति पाय विषयमें गिरजाताहै अरु यह चित्त वासनारूपी शय्यामें सोता रहता है अरु आत्मपदमें जागता नहीं. इस चित्तकी जालमें मैं पकराया हों सो कैसा जाल है तामें वासनारूपी सूत्र है अरु संसारकी सत्यतारूपी ग्रंथि है अरु भोगरूपी तिसमें चून है. इसको देखके मैं फँसा हों; कबहूँ पातालमें, कबहूं आकाशमें वासना रूपी जेवरीकर घटीयंत्रकी नाईं बँधाहों , ताते हे मुनीश्वर ! तुम सोई उपाय कहो जिसकर चित्तरूपी शत्रुको जीतों.

अब मुझको किसी भोगकी इच्छा नहीं अरु जगत्की लक्ष्मी मुझको विरस भासती है. जैसे चंद्रमा बादलकी इच्छा नहीं करता अरु चतुर्मासमें आच्छादित होय जाता है, ताते मैं भोगकी इच्छा नहीं करता और जगत्की लक्ष्मीको मैं नहीं चाहता अरु मेरा चित्त है सो परम शत्रु है.

हे मुनीश्वर ! महापुरुष जो जीतनेका यत्न करते हैं सो जब चित्तको जीतैं तब परम पदको पावैं ताते मुझको सोई उपाय कहो, जिसकर

मनको जीतों; दुःख इसके आश्रयते रहते हैं, जैसे पर्वतपर बन है सो पर्वतके आश्रयते रहता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे चित्तदौरात्म्य-
वर्णनं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः १७.

अथ तृष्णागारुडीवर्णनम् ।

श्रीराम उवाच--हे ब्रह्मन् ! चैतन्यरूपी आकाशमें जो तृष्णारूपी रात्रि आई है; तामें काम, क्रोध, लोभ, मोहादिक घुवड विचरते हैं; जब ज्ञान-रूप सूर्य उदय होवे तब तृष्णारूपी रात्रिका अभाव होय जावे. जब रात्रि नष्ट भई, तब मोहादिक उलूक भी नष्ट हो जाते हैं, जब सूर्यका उदय होता है तब बर्फ उष्ण होय पिघल जाता है तैसे संतोषरूपी रसको तृष्णारूपी उष्णता सुखाती है बहुरि तृष्णा कैसी है जैसे शून्य वनमें पिशाचनीअपने परिवारसहित फिरती रहती है, अरु प्रसन्न होती है सो वन अरु पिशाच कैसा है, आत्मपदते शून्य जो चित्त सो भयानकशून्य वन है तिसमें तृष्णा पिशाचनी है अरु मोहादिक उसका परिवार है, उनको साथ लेकर फिरतीहै.

हे मुनीश्वर ! चित्तरूपी पर्वत है; तिसके आश्रयते तृष्णारूपी नदीका प्रवाह चलता है अरु नाना प्रकार के संकल्परूपी तरंगको पसारते हैं जैसे मेघ को देखकर मोर प्रसन्न होता है; तैसे तृष्णारूपी मोर भोगरूपी मेघ को देखके प्रसन्न होता है, ताते परमदुःखका मूल तृष्णा है. जब मैं किसी संतोषादि गुणका आश्रय करता हों तब तृष्णा तिसको नाश करदेती है. जैसे सुंदर सारंगीको चूहा तोर डारता है; तैसे संतोषादि गुणको तृष्णा नाश करती है.

हे मुनीश्वर ! सबते उत्कृष्ट पदमें विराजनेका मैं यत्न करता हों तब तृष्णा विराजने नहीं देती. जैसे जालमें फँसाहुआ पक्षी आकाशमें उड-नेका यत्न करता है. परंतु उड नहीं सकता है. तैसे मैं अनात्मपदमेंते आत्मपदको प्राप्त नहीं हो सकता. स्त्री, पुत्र अरु कुटुम्बने जाल बिछाया

है तामें फँसा हों सो निकस नहीं सकता सो आशारूपी फांसीमें बँधा हुआ कबहूँ ऊर्ध्वको जाता हों, कबहूँ अधःपात होता हों सो घटीयंत्रकी नाईं मेरी गति है. जैसे इंद्रका धनुष मेघमें मलीन होता है. सो बडा अरु बहुत रंगोंसों भरा है परंतु मध्यते शून्य है. तैसे तृष्णा मलिन अंतःकरणमें होती है सो बडी है अरु गुणरूपी रंगते रँगी है. देखने मात्रको सुन्दर है; परंतु इससे कार्य्य सिद्धि कछु नहीं होती.

हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी मेघ है, तिससे दुःखरूपी बुंद निकसते हैं अरु तृष्णारूपी काली नागनी है; उसका स्पर्श तो कोमल है परंतु विष करके पूर्ण है; तिसके डसेते मृतक हो जाता है. अरु तृष्णारूपी बादर है. सो आत्मरूपी सूर्यके आगे आवरण करता है. जब ज्ञानरूपी पवन निकसे तब तृष्णारूपी बादरका नाश होवे अरु आत्मपदका साक्षात्कार होवे अरु अज्ञानरूपी कमलको संकोच करनहारी तृष्णारूपी निशा है अरु तृष्णारूपी महाभयानक कालीरात्रि है, जिसकर बडे धीरजवान भी भयभीत हैं अरु नयनवारेको भी अंधा कर डारती है, जब यह आवती है, तब वैराग्य अरु अभ्यासरूपी नेत्रको अंध कर डारती है अर्थ यह जो सत्य असत्यको विचारने नहीं देती.

हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी डाकनी है सो संतोषादिक पुत्रोंको मार डारती है अरु तृष्णारूपी कंदरा है तिसमें मोहरूपी उन्मत्त हस्ती गर्जते हैं अरु तृष्णारूपी समुद्र है, तिसमें आपदारूपी नदी आय प्रवेश करती हैं ताते सोई उपाय मुझको कहो, जिसकर तृष्णारूपी दुःखते छूटौं. हे मुनीश्वर ! अग्निसों भी ऐसा दुःख नहीं होता अरु इंद्रके वज्रकर भी ऐसा दुःख नहीं होता, जैसे दुःख तृष्णाकर होता है.सो तृष्णाके प्रहारसों घायल बडे दुःखको पाता है अरु तृष्णारूपी दीपकमें परा जरता है, तिसमें संतोषादिक पतंगे जर जाते हैं. जैसे जलमें मछली रहती है सो जलमें कंकरी, रेती आदिको देख, माँस जानकर वह मुखमें लेती है, ताते उसका अर्थ सिद्धि कछु नहीं होता; जैसे तृष्णा भी जो कछु पदार्थ देखती है, तिसके पास उडती है अरु तृप्ति किसी कर नहीं होती अरु तृष्णारूपी एक पंखनी है सो सब कहूँ उडजातीहै अरु स्थिर कबहूँ नहीं होती, तैसे तृष्णा भी कबहूँ

किसी पदार्थको, कबहूँ किसीको ग्रहण करती है, परंतु स्थिर कबहूँ नहीं होती अरु तृष्णारूपी वानर है सो कबहू किसी वृक्षपर, कबहूँ किसीके ऊपरजाता है स्थिर कबहू नहीं होता है. जो पदार्थ नहीं प्राप्त होता तिसके निमित्त यत्न करता है, तैसे तृष्णाहूँ नाना प्रकारके पदार्थका ग्रहण करती है अरु भोगकर तृप्त कदाचित् नहीं होती. जैसे घृतकी आहुतिकर अग्नि तृप्ति नहीं पावे, जैसे जो पदार्थ प्राप्ति योग्य नहीं है; तिसके ओर भी तृष्णा दौरती है, शांतिको नहीं पाती है.

हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी उन्मत्त नदी है, तिसमें जो बहाया पुरुष, ताको कहांका कहां ले जाती है, कबहू तो पहारकी बाजूमें ले जाय. कबहूँ दिशामें ले जाय, जैसे इनको लिये फिरती है तैसे तृष्णारूपी नदी है, सो मुझको लिये फिरती है अरु तृष्णारूपी नदी है. इसमें वासनारूपी अनेक तरंग उठते हैं, कदाचित् मिटते नहीं हैं अरु तृष्णारूपी नटनी है अरु जगत्‌रूपी अखाडा तिसने लगाया है, तिसको शिर ऊंचा कर देखती है अरु मूर्ख बडे प्रसन्न होते हैं, जैसे सूर्यके उदय हुए सूर्यमुखी कमल खिलके ऊंचा आता है, तैसे मूर्ख तृष्णाको देखकर प्रसन्न होते हैं तृष्णारूपी वृद्ध स्त्री है, जो पुरुष इसका त्याग करता है, तब वाके पाछे लगी फिरती है, कबहू इसका त्याग नहीं करती अरु तृष्णारूपी डोर है तिसके साथ जीवरूपी पशु बांधे हुए हैं तिसकर भ्रमते फिरते हैं अरु तृष्णा दुष्टनी है जब शुभ गुणको देखे, तब तिनको मार डारती है, तिसके संयोगते में दीन हो जाता हूँ, जैसे पपैया मेघको देखकर प्रसन्न होता है अरु बूंद ग्रहण करने लगता है और मेघको जब पवन ले जाता है, तब पपैया दीन हो जाता है, तैसे तृष्णा शुभगुणका नाश करती है तब मैं दीन हो जाता हों.

हे मुनीश्वर ! तृष्णाने मुझको दूरते दूर डारा है,जैसे सूखे तृणको पवन दूरते दूर डारता है, तैसे तृष्णारूपी पवनने मुझको दूरते दूर डारा है आत्मपदते दूर परा हों, हे मुनीश्वर ! जैसे भौंरा कमलके ऊपर जाता कबहू नीचे बैठता है, कबहूँ आसपास फिरता है अरु स्थिर नहीं होता तैसे तृष्णारूपी भौंरा संसाररूपी कमलके नीचे ऊपर फिरताहै, कदाचित्

ठहरता नहीं है; जैसे मोतीका बांस होता है. तिसते अनेक मोती निकसते हैं, जैसे तृष्णारूपी बांसते जगतरूपी अनेक मोती निकसते हैं, तिसकर लोभीका मन पूर्ण नहीं होता है, तैसे तृष्णासे मन पूर्ण नहीं होता, दुःखरूपी रत्नका तृष्णारूपी डब्बा है, तिसमें अनेक दुःख रहते हैं ताते सोई उपाय कहो, जिसकर तृष्णा निवृत्त होवे.

यह तृष्णा वैराग्यसों निवृत्ति पाती है और किसी उपायकर निवृत्ति नहीं होती है, जैसे अंधकारका नाश प्रकाश कर होता है और किसी उपाय कर नहीं होता; तैसे तृष्णाका नाश और उपायसों नहीं है अरु तृष्णारूपी हल है सो गुणरूपी पृथ्वीको खोद डारता है अरु तृष्णारूपी लता है सो गुणरूपी रसको पीती है अरु तृष्णारूपी धूर है, सो अंतःकरणरूपी जलमें उछलके मलिन करती है.

हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी नदी है सो वर्षाकालमें बढती है, फिर घट-जाती है, तैसे जब इष्ट भोगरूपी जल प्राप्त होता है, तब हर्षकर बढती है जब भोगरूपी जल घट जाता है, तब सूखके क्षीण हो जाती है. हे मुनीश्वर ! इस तृष्णाने मुझको दीन किया है, जैसे सूखे तृणको पवन उडाता है; तैसे मुझको उडाती है ताते सोई उपाय तुम कहो, जिसकर तृष्णाका नाश होवे अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवें अरु दुःख नष्ट होवे अरु आनंद होवे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे तृष्णागारुडीवर्णनं नाम सप्तदशः सर्गः ॥१७॥

अष्टादशः सर्गः १८.

अथ देहनैराश्यवर्णनम् ।

श्रीराम उवाच-हे मुनीश्वर ! यह जो अमंगलरूप शरीर जगत्में उत्पत्ति पाया है; सो बडा अभाग्यरूप है, सदा विकारवान् मांसमज्जा कर पूर्ण है; सदा अपवित्र है, इस करके मैं कछु अर्थसिद्धि होना नहीं देखता, ताते तिस विकाररूप शरीरकी इच्छा मैं नहीं रखता.

यह शरीर न अज्ञ है, न तज्ज्ञ है, अर्थ यह न जड है न चैतन्य है, जैसे अग्निके संयोग कर लोहा अग्निवत् होता है सो जलता भी है परंतु आप नहीं जलता, तैसे यह देह न जड है न चैतन्य है; जड इस कारणते नहीं कि, इसते कार्य भी होता है, अरु चैतन्य इस कारणते नहीं कि इसको आपते ज्ञान कछू नहीं होता; ताते मध्यम भावमें है काहेते जो चैतन्य आत्मा इसमें व्याप रहा है, सो लोह अग्निकी नाई जानत हों अरु आपते अपवित्ररूप अस्थि, मांस, रुधिर, मूत्र, विष्ठा करि पूर्ण अरु विकारवान्, ऐसी जो देह है सो दुःखका स्थान है अरु इष्टके पायेते हर्षवान होती है अरु अनिष्टके पायेते शोकवान् होती है, ताते ऐसे शरीरकी मुझको इच्छा नहीं. यह अज्ञानकर उपजताहै.

हे मुनीश्वर ! ऐसे अमंगलरूपी शरीरमें जो अहंपना फुरता है, सो दुःखका कारण है, यह संसारमें स्थित होकर नाना प्रकारके शब्द करता है अरु तृष्णा कबहू नहीं धारता है अरु अहंकाररूपी बिलाडा देहमें रहा हुआ; अहं, अहं करता है, चुप कदाचित् नहीं रहता है, हे मुनीश्वर! जो किसीके निमित्त शब्द होवे सो सुन्दर है; अन्यथा शब्द व्यर्थ है. जैसे जयके निमित्त ढोलका शब्द सुन्दर होता है; तैसे अहंकारते रहित जो पद है सो शोभनीक है और सब व्यर्थ है.

अरु शरीररूपी नौका भोगरूपी रेतीमें परीहै इसको पार होना कठिन है. जब वैराग्यरूपी जल बढै अरु प्रवाह होवे अरु अभ्यासरूपी पतवारीका बल होवे तब संसारके पाररूपी किनारेपै पहुँचै. अरु शरीररूपी बेडा है अरु संसाररूपी समुद्र और तृष्णारूपी जलमें परा है अरु बड़ा प्रवाह है अरु भोगरूपी तिसमें मगर है सो शरीररूपी बेडाको पार लगने नहीं देता. जब शरीररूपी बेडाके साथ वैराग्यरूपी वायु लगै अरु अभ्यासरूपी पतवारीका बल लगै तब शरीररूपी बेडा पारको पावे, हे मुनीश्वर ! जिस पुरुषने ऐसे बेडेको उपायकर आपको संसारसमुद्रते पार किया है, सो सुखी भया है अरु जिसने नहीं किया सो परम आपदाको प्राप्त होता है सो इस बेडेकर उलटे डुबेंगे जैसे बेडेमें छिद्र होवें और वामें जल प्रवेश कर आवे तब वह डूब जाता है

अरु तिसमें जो मच्छ है सो खाई जाता है सो इहां शरीररूपी बेडेका तृष्णारूपी छिद्र है तिस करके इहां संसार समुद्रमें डूब जाता है अरु भोगरूपी मगर इसको खाता है अरु यह आश्चर्य है कि, बेडा अपने निकट नहीं भासता है अरु मनुष्य सो मूर्खता करके आपको मानता है अरु तृष्णारूपी छिद्र करके दुःख पाता है.

अरु शरीररूपी वृक्ष है; तामें भुजारूपी शाखा है अरु अङ्गुरी इसके पत्र हैं अरु जंघा इसके स्तंभ हैं अरु वासना इसकी जड है अरु सुख दुःख इसके फूल हैं अरु तृष्णारूपी घुन है सो शरीररूपी वृक्षको खाता रहता है,जब इसको श्वेत फूल लगे तब नाशका समय पाता है, कारण जो मृत्युके निकटवर्त्ती होता है, बहुरि शरीररूपी इसके टास है अरु गिट इसका गुच्छा है अरु दांत फूल हैं जंघा स्तंभ हैं अरु कर्म जलकर बढ जाता है, जैसे वृक्षते जल निकसता है सो चिकटा है, तैसे जल शरीरके द्वार निकसता रहता है अरु तृष्णारूपी विषते पूर्ण सर्पिनी रहती है अरु जो कामनाके लिये इस वृक्षका आश्रय लेता है, तब तृष्णारूपी सर्पिनी तिसको डसती है. तिस विषसों वह मरि जाता है. हे मुनीश्वर ! ऐसा जो अमंगलरूपी शरीर वृक्ष है, तिसकी इच्छा मुझको नहीं है यह परम दुःखका कारण है.

जब लग यह पुरुष अपने परिवारमें बँधा हुआ है तबलग मुक्ति नहीं होती; जब परिवारका त्याग करै तब मुक्ति होवे. देह, इंद्रिय, प्राण, मन, बुद्धि इसका परिवार है इनमें जो अहंभाव है वाका त्याग करै तब मुक्ति होवे अन्यथा मुक्ति नहीं होती.

हे मुनीश्वर ! जो श्रेष्ठ पुरुष हैं सो पवित्र ही स्थानमें रहते हैं, अपवित्र में नहीं रहते. सो अपवित्र स्थान यह देह है इसमें रहनेवाला भी अपवित्र है अरु अस्थिरूपी इस घरमें लकड़े हैं; वामें रुधिर, मूत्र विष्ठाका इसमें कीच लगाया है और मांसकी कहगील करी है अरु अहंकाररूपी इसमें श्वपच रहता है अरु तृष्णारूपी श्वपचनी इसकी स्त्री है अरु काम, क्रोध, मोह, लोभ इसके बेटे हैं. आंत अरु विष्ठादिककारि पूर्ण भराहुआ है ऐसा जो अपवित्र स्थान अमंगलरूप जो शरीर तिसका

मैं अंगीकार नहीं करता, यह शरीर रहो चाहे मत रहो. इसके साथ मेरा अब कछु प्रयोजन नहीं.

हे मुनीश्वर! एक बडा घर है, तिसमें बड़े पशु रहते हैं, सो धूरको उडावते हैं सो गृहमें कोऊ जाता है तब सींगसों मारने लगते हैं अरु धूड भी उसके ऊपर गिरती है सो शरीररूपी बड़ा गृह है तिसमें इंद्रियरूपी पशु हैं, जब इस गृहमें पैठता है तब बडी आपदाको प्राप्त होता है, तात्पर्य यह जो इसमें अहंभाव करता है, तब इंद्रियरूपी पशु सो विषयरूप सींगसों मारते हैं अरु तृष्णारूपी धूडइसको मलीन करती है, हे मुनीश्वर ! ऐसे शरीको मैं अंगीकार नहीं करता.

जिसमें सदा कलह पडे ही रहते हैं, तिसमें ज्ञानरूपी संपदा प्रवेश नहीं होती. ऐसा जो शरीररूपी गेह है तिसमें तृष्णारूपी चंडी स्त्री रहती है, सो इंद्रियरूपी द्वारसों देखती रहती है, सो सदा कल्पना करत रहती है; तिसकर शम दमादिरूप संपदाका प्रवेश नहीं होता. तिस घरमें एक शय्या है जब उसके ऊपर विश्राम करता है तब कछुक सुख पाता है; परंतु तृष्णाका जो परिवार है सो विश्राम करने नहीं देता सो सुषुप्तिरूपी शय्या है; जब उसमें विश्राम करता है, तब काम क्रोधादिक रुदन करते हैं अरु ये चंडी स्त्रीका जो परिवार, काम, क्रोध, लोभ, मोह, इच्छा है सो उठाय देते हैं; विश्राम करने नहीं देते. हे मुनीश्वर ! ऐसा दुःखका मूल जो शरीर रूपी गृह है, तिसकी इच्छा मैंने त्याग दीनी है. यह परमदुःख देनेहारा है इसकी इच्छा मुझको नहीं है.

हे मुनीश्वर ! शरीररूपी वृक्ष है; तिसमें तृष्णारूपी कौवानी आय स्थित भई है सो जैसे कौवानी नीच पदार्थके पास उडती है, तैसे तृष्णारूपी कौवानी भोगरूपी मलिन पदार्थ के पास उड़ती है. बहुरि तृष्णा बंदरीकी नाईं शरीररूपी वृक्षको हिलाती है वृक्षको स्थिर होने नहीं देती अरु जैसे उन्मत्त हस्ती कीचमें फँस जाता है अरु निकस नहीं सकता अरु खेदवान् होता है, तैसे अज्ञानरूपी मद कर उन्मत्त हुआ जीव शरीररूपी कीचमें फँसा है सो निकस नहीं सकता है, पराया

दुःख पावता है. ऐसे दुःख पावनेवारा शरीर है, तिसका मैं अगीकार नहीं करता.

हे मुनीश्वर! यह शरीर अस्थि, मांस, रुधिर करि पूर्ण है सो अपवित्र है. जैसे हस्तीके करन सदा ही हिलते हैं तैसे इसको मृत्यु परा हिलता है. कछु कालका बिलंब है, परंतु मृत्यु इसका ग्रास कर लेवेगा. तातेमैं इस शरीरका अंगीकार नहीं करता हों.

यह शरीर कृतघ्न है, भोग भुगतता है,बडे ऐश्वर्यको प्राप्त करता है, परंतु मृत्यु इनकी सखापन नहीं करता है. जब जीव इसको छांडकर परलोकको जाता है, तब अकेला ही जाता है और शरीरको छोड देता है, जीव इसके सुख निमित्त अनेक यत्न करता है परंतु संगमें सदा नहीं रहता. ऐसा जो कृतघ्न शरीर है इसका मैंने मनसों त्याग कियाहै; जो यहदुःख देनहारा है.

हे मुनीश्वर!और आश्चर्य देखो--जो वाईका भोग करता है तिसके साथ चलता नहीं. जैसे धूर कर मार्ग भासनेते रह जाता है, तैसे यह जीव जब चलने लगता है तब शरीरके साथ क्षोभवान् होता अरु वासनारूप धूर संयुक्त चलता है; परंतु दीखता नहीं कि कहां गया. जब परलोकको जाता है. तब बडा कष्ट होता है; काहेते कि, शरीरके साथ स्पर्श किया है.

हे मुनीश्वर! यह शरीर क्षणभंगुर है. जैसे जलकी बूंद पत्रके ऊपर गिरती है सो क्षणमात्र रहती है; तैसे शरीर भी क्षणभंग है, ऐसे शरीरमें आस्था करनी सो मूर्खता है अरु ऐसे शरीरके ऊपर उपकार करना भी दुःखके निमित्त है, सुख कुछ नहीं है और जो धनाढ्य शरीरसों बडे भोग भुगतते हैं अरु निर्धन थोडे भोग भुगतते हैं; परंतु जरावस्था अरु मृत्यु दोनोंको होते हैं. इसमें विशेषता कछु नहीं. शरीरका उपकार करना और भोग भुगतना सो तृष्णा करके उलटा दुःखका कारणहै. जैसे कोऊ नागिनी घरमें रखके उसको दूध पिलावे, सोई आखिर उसको काटके मारैगी, तैसे जीवने तृष्णारूपी नागिनीके साथ सखाई करी है सो मरैगा, क्यों कि नाशवंत है, इसके निमित्त जो भोग भुगतनेका यत्न करना सो ईर्खता है. जैसे पवनका वेग आता है अरु जाता है, तैसे यह शरीर नाशवंत है.

इससों प्रीति करनी सो दुःखका कारण है सब जीव इसकी अवस्थामें बांधे हुए हैं, इसका त्याग कोई विरलाने ही किया है. जैसे कोई विरला मृग होता है सो मरुथलके जलकी आस्था त्यागता है और सब परे भ्रमते हैं.

हे मुनीश्वर ! बिजलीका अरु दीपकका प्रकाश भी आता जाता दीखता है परंतु इस शरीरका आदि अंत नहीं दिखता है कि, कहांते आता है अरु कहां जाता है. जैसे समुद्रमें बुदबुदे उपजते हैं अरु मिट जाते हैं, तिस की आस्था करनेते कछु लाभ नहीं, तैसे यह शरीरकी आस्था करनी योग्य नहीं, यह अत्यन्त नाशरूप है स्थिर कदाचित् नहीं होता है जैसे बिजुरी स्थिर नहीं होती, तैसे शरीर भी स्थिर नहीं रहता इसकी मैं आस्था नहीं करता इसका अभिमान मैंने त्यागा है जैसे कोई सूखे तृणको त्याग देता है, तैसे मैंने अहंममता त्यागी है.

हे मुनीश्वर ! ऐसे शरीरको पुष्ट करना सो दुःखके निमित्त है. यह शरीर किसी अर्थ आवने योग्य नहीं, जलावने योग्य है. जैसे लकडी जलाने विन और काममें नहीं आती है, तैसे यह शरीरभी जड अरु गूंगा जलावनेके अर्थ है. हे मुनीश्वर ! जिन पुरुषोंने काष्ठरूपीशरीरको ज्ञानाग्नि कर जलाया है; तिनका परम अर्थ सिद्ध भया है अरु जिनने नहीं जलाया सो परमदुःख पाया है.

हे मुनीश्वर ! न मैं शरीर हों न मेरा शरीर है, न इसका मैं हों, न यह मेरा है, अब मुझको कामना कोई नहीं है. मैं निराशी पुरुष हों अरु शरीरके साथ मुझको प्रयोजन कछु नहीं है. ताते तुम सोई उपाय कहो जिस कर मैं परमपदकी प्राप्ति पाऊं.

हे मुनीश्वर ! जिस पुरुषने शरीरका अभिमान त्यागा है सो परमानंद रूप है और जिसको देहका अभिमान है सो परमदुःखी है. जेते कछु दुःख हैं सो शरीरके संयोग करि होते हैं. मान, अपमान, जरा, मृत्यु, दंभ, भ्रांति, मोह, शोक आदि सर्वविकार देहके संयोगकर होते हैं. जिसको देहमें अभिमान है तिसको धिक्कार है और सब आपदा भी तिसको प्राप्त होती हैं. जैसे समुद्रमें नदी आयकर प्रवेश करती है, तैसे देहाभिमानमें

सर्व आपदा आय प्रवेश करती हैं. जिसको देहका अभिमान नहीं सो पुरुषोंमें उत्तम है अरु वंदना करने योग्य है ऐसेको मेरा नमस्कार है अरु सर्व सम्पदाभी तिसको प्राप्त होती हैं. जैसे मानससरोवरमें सब हंस आय रहते हैं, तैसे जहां देहाभिमान नहीं रहा, तहां सर्व संपदा आय रहती हैं.

हे मुनीश्वर ! जैसे अपनी छायामें बालक वैताल कल्पता है अरु तिसकर भय पाता है, जब इसको विचारकी प्राप्ति होती है तब वैतालका अभाव होजाता है. तैसे अज्ञानकर मुझको अहंकाररूपी पिशाचने शरीरमें दृढ आस्था बताई; हे ताते सोई उपाय कहो, जिस कर अहंकाररूपी पिशाचका नाश होवे अरु आस्थारूपी फांसी टूटे.

हे मुनीश्वर ! प्रथम जो मुझको अज्ञानकर संयोग था सो अहंकाररूपी पिशाचका था तिससे अनंतर शरीरमें आस्था उपजी है. जैसे बीजते प्रथम अंकुर होता है फिर अंकुरते वृक्ष होता है, तैसे अहंकारसे शरीरकी आस्था होती है. हे मुनीश्वर ! इस अहंकाररूपी पिशाचने सब जीवनको दीन किये हैं. जैसे बालकको छायामें वैताल भासता है अरु दीनताको प्राप्त होता है, तैसे अहंकाररूपी पिशाचने मुझको दीन किया है सो अहंकाररूपी पिशाच अविचारते सिद्ध है अरु विचार कियेते अभावको प्राप्त होता है. जैसे प्रकाशकर अंधकार नाश होजाता है, तैसे विचार कियेते अहंकार नाश होजाता है.

हे मुनीश्वर ! जो शरीरमें आस्था रक्खी है सो शरीर जलके प्रवाहकी नाईं स्थिर नहीं होता, ऐसा चलहै. जैसे बिजुरीकी चमक स्थिर नहीं होती अरु गंधर्व नगरकी आस्था व्यर्थ है, तैसे शरीरकी आस्था करनी व्यर्थ है. हे मुनीश्वर ! ऐसे शरीरकी आस्था करके अहंकार करते हैं अरु जगत्‌के पदार्थ निमित्त यत्न करते हैं वे महामूर्ख हैं. जैसेस्वप्न मिथ्या है, तैसे यह जगत् मिथ्याहै. तिसको सत्य जानकर जो इसका यत्न करता हैं सो अपने बंधनके निमित्त करता है. जैसे घुरान गुफा बनाती है सो अपने बंधनके निमित्त है अरु पतंग दीपककी इच्छा करता है सो अपने नाशके निमित्त है तैसे अज्ञानी जो अपने देहका अभिमान कर भोगकी इच्छा करता है सो अपने नाशके निमित्त है.

हे मुनीश्वर ! मैं तो इस शरीरका अंगीकार नहीं करता इस शरीरका अभिमान परमदुःख देनहारा है. जिसको देह अभिमान नहीं रहा तिसको भोगकी इच्छा भी न रहैगी. ताते मैं निराशहों अरु परमपदकी इच्छाहै जिसके पायेते बहुरि संसार समुद्रकी प्राप्ति न होवे.

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणे देहनैराश्यवर्णनंनाम अष्टादशः सर्गः १८

एकोनविंशः सर्गः १९.

अथ बालावस्थावर्णनम् ।

राम उवाच--हे मुनीश्वर ! इस संसार समुद्रमें जो जन्म पाया है तामें बालक अवस्था इसको प्राप्त भई है सो भी परम दुःखका मूल है; तिसमें परम दीन होजाता है अरु जेते अवगुण इसमें आय प्रवेश करते हैं सो कहता हों. अशक्तता, मूर्खता, इच्छा, चपलता, दीनता अरु दुःख, संताप एते विकार इसको आय प्राप्त होते हैं. यह बालावस्था महाविकारवान् है अरु बालक पदार्थकी ओर धावता है, एक वस्तुका ग्रहणकर दूसरीको चाहता है, स्थिर नहीं रहता है, फिर औरमें लग जाता है. जैसे वानर ठहरके नहीं बैठता अरु जो कोऊ ऊपर क्रोध करता है तब अंतरते परा जलता है अरु बडी बडी इच्छा करता है तिसकी प्राप्ति नहीं होती. सदा तृष्णामें रहता है अरु क्षणमें भयभीत होजाताहै शांति को प्राप्तनहीं होता फिर महादीन हो जाताहै. जैसे कदली वनका हस्ती सांकरसों बांधा हुआ दीन होजाता है, तैसे यह चैतन्यपुरुष, बालक अवस्थाकर दीन होजाताहै. जो कछु इच्छा करता है सो विचारविना करता है तिसकर दुःख पाता है अरु मूढ गुङ्ग अवस्था है, तिसकर कछु सिद्धि नहीं होती, कोऊ पदार्थकी प्राप्ति होती है तिसमें क्षणमात्र सुखी रहताहै बहुरि तपने लगता है. जैसे तपती पृथ्वीपर जल डारिये तब एक क्षण शीतल होती है फिर उसी प्रकारसों तपती है, तैसे वह भी तपता रहता है. जैसे रात्रिके अंतमें सूर्य उदय होता है तिसकर उलूकादि कष्टवान् होते हैं, तैसे इस जीवको स्वरूपके अज्ञान कर बालावस्थामें कष्ट होता है.

हे मुनीश्वर ! जो बालक अवस्थाकी संगति करता है सो भी मूर्ख है काहेते कि, यह विवेक रहित अवस्था है अरु सदा अपवित्र है. और सदा पदार्थकी ओर धावता है, ऐसी मूढ अरु दीन अवस्थाकी मुझको इच्छा नहीं. जिस पदार्थको देखता है तिसकी ओर धावता है. और क्षण क्षण अपमान को पाता है. जैसे कूकर क्षण क्षणमें द्वारकी ओर धावताहै अरु अपमान पाता है, तैसे बालक अपमानको प्राप्त होता है अरु बालकको सदा माता अरु पिताका भय रहता है; बांधवका सदा भय रहता है अरु आपते बडे बालकका भी भय रहता है अरु पशु पक्षी हू का भय रहता है. हे मुनीश्वर ! ऐसी दुःखरूप अवस्थाकी मुझको इच्छा नहीं. जैसे स्त्रीके नयन चंचल हैं अरु नदीका प्रवाह चंचल है, इसते भी मन अरु बालक चंचल हैं, ऐसे जानता हों, अत्र सब चंचलता बालकते कनिष्ठ है, बालक सबते चंचल है. जैसा मन चंचल है, तैसा बालक भी चंचल है मनका रूप बालक है.

हे मुनीश्वर ! जसे वेश्याका चित्त एक पुरुषमें नहीं ठहरता, तैसे बालकका चित्त एक पदार्थमें नहीं ठहरता कि, इस पदार्थ कर मेरा नाश होवेगा, ऐसा विचार भी तिसको नहीं अरु इस कर मेरा कल्याण होवेगा सो विचार भी नहीं. ऐसेई परा चेष्टा करता है अरु सदा दीन रहता है अरु सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष करके तपायमान रहता है. जैसे ज्येष्ठ आषाढमें पृथ्वी तपायमान होती है, तैसे बालक तपताई रहता है, शांतिको कदाचित् नहीं पाता.

अरु जबविद्या पढने लगताहै; तब गुरुसों बडा भयभीत होता है. जैसे कोई यम को देखके भय पावे और गरुडको देखके जैसे सर्प भय पावे तैसे भयभीत होजाता है. जब शरीरको कोई कष्ट आय प्राप्त होता है, तब बडे दुःखको प्राप्त होता है परन्तु दुःखके निवारणमें समर्थ नहीं होता अरु सहनको भी समर्थ नहीं. अंतरते परा जलता है अरु दुःखते कछु बोल सकता नहीं जैसे वृक्ष कछु नहीं बोल सकता अरु जैसे अपर तिर्यक् योनि दुःख पावते हैं अरु कहि नहीं सकते हैं अरु दुःखका

निवारण नहीं कर सकते, न संहार कर सकते, अंतरते परे जलते हैं; तैसे बालक गूंगा मूढहुआ दुःख पाता है. हे मुनीश्वर ! ऐसी जो बालककी अवस्था तिनकी जो स्तुति करता है सो मूर्ख है.

यह तो परमदुःखरूप अवस्था है, इसमें विवेक विचार कछु नहीं. एक खानेको पाता है अरु रुदन करता है, ऐसी अवगुणरूप अवस्था मुझको नहीं सुहाती है. जसे बिजुरी अरु जलके बुदबुदे स्थिर नहीं रहते तैसे बालक हू स्थिर कदाचित् नहीं होता.

हे मुनीश्वर ! यह महामूर्ख अवस्था है; कबहूँ कहता है, हे पिता ! मुझको बर्फका टुकडा भूनि दे. कबहूँ कहता है--मुझको चंद्रमा उतार दे; ये सब मूर्खताके वचन हैं, ताते ऐसी मूर्खावस्थाको मैं अंगीकार नहीं करता जैसे दुःखका अनुभव बालकको होता है, सो हमारे स्वप्नमें भी नहीं आया. तात्पर्य यह कि, बालावस्थामें बडा दुःख है; यह बालावस्था अवगुणका भूषण है; सो अवगुण कर शोभती है; ऐसी नीच अवस्थाको मैं अंगीकार नहीं करता. इसकी स्तुति करनी सो मूर्खता है, इसमें गुण कोई भी नहीं है.

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे बालावस्थावर्णनं नामैकोनविंशः सर्गः १९

विंशः सर्गः २०.

अथ युवागारुडीवर्णनम्।

राम उवाच--हे, मुनीश्वर ! दुःखरूप बालावस्थाके अनंतर जो युवा अवस्था आती है, सो नीचेते ऊंची चढती है, सो भी उत्तम गिनबेके निमित्त नहीं है अधिक दुःखदायक है, जब युवा अवस्था आती है तब कामरूपी पिशाच आय लगता है. सो कामरूपी पिशाच युवा अवस्थारूपी गडेलेमें आय स्थित होता है, चित्त फिरता है अरु इच्छामें पसारता है. जैसे सूर्यके उदयहुये सूर्यमुखी कमल खिलआता है अरु पखुँरीनको पसातरा है, तैसे युवा अवस्थारूपी सूर्य उदय होता है. तब नानाप्रकारकी इच्छा फुरती है अरु कामरूपी पिशाच इसको स्त्रीमें डार देता है, तहाँ

परा दुःख पाता है जैसे कोईको अग्निके कुंडमें डारदिया होय अरु वह दुःख पावै, तैसे कामके वश हुआ दुःखको पाता है.

हे मुनीश्वर! जो कछु विकार हैं सो सब युवा अवस्थामें आयके प्राप्त हुए हैं. जैसे धनवान्को देखके निर्धन सब धनकी आशा करते हैं, तैसे युवा अवस्थाको देखकर सब दोष आय इकट्ठे होते हैं अरु जो भोगको सुखरूप जानकर भोगकी इच्छा करता है सो परम दुःखका कारण है. जैसे मद्यका घट भरा हुआ देखने मात्रको सुंदर लगता है, परंतु जब उसका पानकरे तब उन्मत्त हो जाय तिस उन्मत्तता कर दीन होजाता है अरु निरादरको पाता है, तैसे यह भोग देखनेमात्रको सुंदर भासता है परंतु जब इसको भुगतता है तब तृष्णाकर उन्मत्त होजाता है अरु पराधीन हो जाता है.

हे मुनीश्वर! यह काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार सब जो चोर हैं, सो युवारूपी रात्रिको देखकर लूटने लगते हैं अरु आत्मज्ञानरूपी धनको चोर ले जाते हैं; तिसकर वह दीन होता है, यह पुरुष आत्मानंदके वियोग कर दीन हुआ है. हे मुनीश्वर! ऐसी जो दुःख देनहारी युवावस्था तिसका मैं अंगीकार नहीं करता अरु शांति जो है सो चित्त स्थिर करनेके लिये है, सो चित्त युवा अवस्थामें विषयकी ओर धावता है. जैसे बाण लक्षके ओर जाता है तब उसको विषयका संयोग होता है, सो विषयकी तृष्णा निवृत्त नहीं होती अरु तृष्णाके मारे जन्मते जन्मांतररूप दुःखको पाता है. हे मुनीश्वर! ऐसी दुःखदायक युवा अवस्थाकी मुझको इच्छा नहीं है.

हे मुनीश्वर! जेते कछु दुःख हैं सो सब युवा अवस्था में आयकर प्राप्त होते हैं. काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, चपलता इत्यादिक जो दुःख हैं, सो सब युवा अवस्थामें स्थिर होते हैं. जैसे प्रलयकालमें सब रोग आय स्थिर होते हैं, तैसे युवा अवस्थामें सब उपद्रव आय मिलते हैं और क्षणभंग हैं. जैसे विजुरीका चमक होयके मिटजाता है, अथवा जैसे समुद्रमें तरंग होते हैं अरु मिट जाते हैं तैसे युवा अवस्था

होयके मिट जाती है. जैसे स्वप्नमें कोई स्त्री विकारकर छल जाती है, तैसे अज्ञानकर युवा अवस्था छल जाती है.

हे मुनीश्वर! युवा अवस्था जीवकी परमशत्रु है. जो पुरुष इस शत्रुके शस्त्रते बचे हैं, वो धन्य हैं, इसके शस्त्र काम, क्रोध हैं, जो इसते छूटा है सो वज्रके प्रहार कर भी छेदा न जावेगा जो. इनकर बाँधा हुआ है सो पशु है. हे मुनीश्वर! युवावस्था देखनेमें तो सुंदर है, परंतु अंतरते तृष्णा-करके जरजरित है. जसे वृक्ष देखनेमें तो सुंदर होय अरु अंतरते घुन लगा हुआ है; तैसे युवावस्था जो भोगके निमित्त यत्न करती है सो भोग आपात रमणीय है. कारण यह कि, जबलग इंद्रिय अरु विषयका संयोग है, तबलग अविचारित भला लगता है अरु जब वियोग हुआ तब दुःख होता है. ताते भोग करके मूर्ख प्रसन्न होते हैं अरु उन्मत्त होते हैं, तिनको शांति नहीं होती. अरु अंतरसे सदा तृष्णा रहती है. स्त्रीमें चित्तकी आसक्ति रहती है. जब इष्ट वनिताका वियोग होता है, तब तिसके स्मरण करके जलता है. जैसे वनका वृक्ष अग्नि करके जलता है तैसे युवावस्थामें इष्टवियोग करके जीव जलता है. जैसे उन्मत्त हस्ती सांकर करके बंधन पाता है तब स्थिर होता है; कहूँ जाय नहीं सकता; तैसे कामरूपी हस्ती है तिसको सांकररूप युवावस्था बंधन करती है अरु युवावस्थारूपी नदी है तिसमें इच्छारूपी तरंग उठते हैं, सो कदाचित् शांतिको नहीं पातेहैं.

हे मुनीश्वर! यह युवावस्था बडी दुष्ट है. कोऊ बडा बुद्धिमान् होवे अरु सदा निर्मल प्रसन्न होवे, एते गुण करके प्रसन्न होवे; तिसकी बुद्धिको भी युवावस्था मलिन कर डारती है जैसे निर्मल जलकी बडी नदी होवे अरु जब वर्षाकाल आवे, तब मलीन होय जावे; तैसे युवावस्थामें बुद्धि मलीन होय जाती है.

हे मुनीश्वर! शरीररूपी वृक्ष है तिसमें युवावस्थारूपी वल्ली प्रगट होती है; सो पुष्ट होता है, तब चित्तरूपी भँवरा आय बैठता है; सो तृष्णारूपी तिसकी सुगंधकरके उन्मत्त होता है अरु सब विचार भूल जाता है. जैसे जब प्रबल पवन चलता है तब सूखे पत्रको उडाय लेजाता है अरु

रहने नहीं देता; तैसे युवावस्था आवती है, तब वैराग्य संतोषादिक गुणका अभाव करती है अरु दुःखरूपी कमलका युवावस्थारूपी सूर्य है; युवावस्थाके उदयते सब दुःख प्रफुल्लित होजाते हैं; ताते सब दुःखका मूल युवावस्था है. जैसे सूर्यके उदयते सूर्यमुखी कमल खिल आते हैं, तैसे चित्तरूपी कमल संसाररूपी पँखुरी अरु सत्यतारूपी सुगंध कर खिल आता है. अरु तृष्णारूपी भौंरा तिसपर आय बैठता है अरु विषयकी सुगध लेता है.

हे मुनीश्वर! संसाररूपी रात्रि है तिसमें युवावस्थारूपी तारागण प्रकाशते, कारण यह जो शरीर युवावस्थाकर सुशोभित होता है अरु युवावस्था शरीरको जर्जरीभाव करके हो आती है. जैसे धानका छोटा वृक्ष हरा तबलग रहता है जबलग उसको फूल नहीं आया जब फूल आते हैं तब सूखनेको लगता है अरु अन्नके कन परिपक्व होते हैं तब अन्नके छोटें वृक्ष जर्जरभावको पाते हैं; उसकी हरियावल नहीं रह सकती. तैसे जब लग जवानी नहीं आई तबलग शरीर सुंदर कोमल रहता है, जब जवानी आई तब शरीर क्रूर हो जाता है फेर परिपक्व होकर क्षीण होजाता है अरु वृद्ध होता है. ताते–

हे मुनीश्वर! ऐसी दुःखकी मूलरूप युवावस्था है तिसकी मुझको इच्छा नहीं, जैसे समुद्र बडे जलकर पूर्ण है, तरंगको पसारता है अरु उछलता है तो भी मर्य्यादाका त्याग नहीं करता. ईश्वरकी आज्ञा मर्य्यादामें रहनेकी है अरु युवावस्था तो ऐसी है जो शास्त्रकी मर्य्यादा अरु लोककी मर्य्यादा मेटके चलती है. अरु तिनको अपना विचार नहीं रहता. जैसे अंधकारमें पदार्थका ज्ञान नहीं होता तैसे युवावस्थामें शुभ अशुभका त्याग नहीं होता जिसको विचार नहीं रहा तिसको शांति कहांते होवे; सदा व्याधि तापमें जुता रहता है. जैसे जल विना मच्छको शांति नहीं होती, तैसे विचार विना सदा पुरुष जलता रहता है.

जब युवावस्थारूप रात्रि आती है तब काम पिशाच आयके गर्जता है; तिस कर इसको यही संकल्प उठते हैं. जो कोऊ कामी पुरुष आवे तिसके

साथमें यही चर्चा करों-- हे मित्र ! वह कैसी सुंदर है ? अरु कैसे उसके कटाक्ष हैं ? सो किस प्रकार मोको प्राप्त होय. हे मुनीश्वर ! इस इच्छाके साथ वह सदा जरता रहता है. जसे मरुस्थलकी नदीको देख मृग दौरता है अरु जलकी अप्राप्तिकर जलता है तैसे कामी पुरुष विषयकी वासना करके जलता है अरु शांति नहीं पाता है ।

हे मुनीश्वर ! मनुष्य जन्म उत्तम है परंतु जिनके अभाग्य हैं तिनको विषयके आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती. जसे चिंतामणि कोईको प्राप्त होवे तो तिसका निरादर करै और उसको जाने नहीं. और डारि देवे, तैसे जो पुरुष मनुष्य शरीर पाकर आत्मपद नहीं पाया सो बडा अभागी है अरु मूर्खता करके अपने जीवनको व्यर्थ खोय डारता है अरु युवावस्थामें परमदुःखका क्षेत्र अपने निमित्त बोता है अरु जेते विकार युवावस्थामें हैं सो सब आयके इसको प्राप्त होते हैं. मान, मोह, मद इत्यादि विकार करके पुरुषार्थका नाश करता है. हे मुनीश्वर ! ऐसे युवावस्था बडे विकारको प्राप्त करती है. जैसे नदी वायुसों अनेक तरंग पसारती है, तैसे युवावस्था चित्तके अनेक कामको उठावती है. जैसे पंखी पंखकर बहुत उड़ता है अथवा जसे सिंह भुजाके बलसों पशुके मारनेको दौडता है,तैसे चित्त युवावस्था कर विक्षेपकी ओर धावता है.

हे मुनीश्वर ! समुद्रका तरना कठिन है काहेते कि, तामें जल अथाह है अरु विस्तार भी बडा है अरु तिसमें मच्छ, कच्छ, मगर, बडे देहधारी रहते हैं. ऐसा दुस्तर समुद्रका तरना सो मैं सुगम मानता हों, परन्तु युवावस्थाका तरना महाकठिन है कारण यह कि, युवावस्थामें निर्दोष रहना कठिन है ऐसी संकटवारी जो युवावस्था है तिसमें चलायमान नहीं होते सोपुरुष धन्य हैं अरु बंदना करने योग्य हैं.हे मुनीश्वर! यह युवावस्था चित्तको मलीन कर डारती है. जैसे जलकी बावडी है, तिसके निकट राख कांटे रहे होयँ सो पवन चलनेते सब आय बावडीमें गिरैं, तैसे पवनरूपी युवावस्था दोषरूपी धूरकांटेनको चित्तरूपी बावडीमें डारके मलीन कर देती है. ऐसे अवगुण करके पूर्ण जो युवावस्था तिसकी इच्छा मुझको नहीं है.

युवावस्था! मेरे पर यही कृपा करनी जो तेरा दर्शन नहीं होवे, तेरा आवना मैं दुःखका कारण मानता हूँ. जैसे पुत्रके मरनेका संकट पिता शोष नहीं सकता अरु सुखका निमित्त नहीं देखता, तैसा तेरा आवना मैं सुखका निमित्त नहीं देखता, ताते मुझपर दया करनी जो अपना दर्शन न होवे.

हे मुनीश्वर! युवावस्थाका तरना महाकठिन है. जो कोऊ यौवनवान् होवे सो नम्रता संयुक्त होवे और शास्त्रके गुण, वैराग्य, विचार, संतोष, शांति इनकर संपन्न होवे सो दुर्लभ है. जैसे आकाशमें वन होना आश्चर्य है, तैसे युवावस्थामें वैराग्य, विचार, शांति, संतोष पावना यह बडा आश्चर्य है ताते मुझको सोई उपाय कहो जिसकर युवावस्थाके दुःखकी मुक्ति होजाय अरु आत्मापदकी प्राप्ति होय.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे युवागारुडीवर्णन नाम विंशः सर्गः॥ २०॥

एकविंशः सर्गः २१.

अथ स्त्रीदुराशावर्णनम्।

हे मुनीश्वर! जिस कामविलासके निमित्त स्त्रीकी वांछा करता है सो स्त्री, अस्थि, मांस, रुधिर, मूत्र, विष्ठा कारि पूर्ण है इसीकी पूतरी बनी हुई है. जैसे यंत्रीकी बनी पूतरी होती है सो तागेसों कर अनेक चेष्टा करती है, तैसे यह अस्थि, मांसादिककी पुतरीमें कछु और नहीं है. जो विचारकर नहीं देखता तिसको रमणीक दीखती है. जैसे पर्वतके शिखर दूरते सुंदर अरु निकटते असार हैं. पत्थरई पडे दीखते हैं, तैसे स्त्री, वस्त्र अरु भूषणसों कारि सुन्दर भासती है अरु जो अंगको भिन्न भिन्न विचार कर देखो तो सार कछु नहीं है. जैसे नागनीका अंग बहुत कोमल होता है, परंतु उसका स्पर्श करो तो काटके मार डारती है, तैसे जो कोई स्त्रीको स्पर्श करते हैं तिनको नाश कर डारती है. जैसे विषकी बेलि देखने मात्रको सुंदर

लगती है, परंतु स्पर्श कियेते मार डारती है. जैसे हस्तीको जंजीरसे बाँधो तब जिस द्वारपे रहता है तहांई स्थिर रहता है, तैसे अज्ञानीका जो चित्तरूपी हस्ती है सो कामरूपी जंजीरसे बँधा हुआ स्त्रीरूपी एक स्थानमें स्थिर रहता है वहाँसे कहूं जाय नहीं सकता. और जब हस्तीको महावत अंकुशका प्रहार करता है तब बंधनको तोरके निकस जाता है, तैसे यह चित्तरूपी मूर्ख हस्ती है,सो महावत रूपी गुरुका उपदेशरूपी अंकुशका बारंबार प्रहार करता है तब सो भी निर्बंध होय जाता है.

हे मुनीश्वर ! कामीपुरुष जो स्त्रीकी वाञ्छा करता है सो अपने नाशके निमित्त करता है जैसे कदली बनका हस्ती, कागजकी हस्तनी देख कर छल पायके बंधनमें आता है तातें परमदुःख पाता है, तैसे परमदुःखका मूल स्त्रीका संग है, हे मुनीश्वर ! जैसे वनके दाहकी अग्नि सबको जलावती है, तैसे स्त्रीरूपी अग्नि तिसते अधिक है. काहेते जो उस अग्निके परश कियेते तप्त होते हैं और स्त्रीरूपी अग्नि तो स्मरण मात्रमें जलाती है और जो सुख रमणीय दिखता है सो आपात रमणीय है जब स्त्रीके सुखका वियोग होता है तब मुर्देकी नाईं होजाता है. तिस कालमें भी (स्त्रीसंयोगकाल) शव (मुर्दा) जैसा हो जाता है.

हे मुनीश्वर ! यह तो अस्थि, मांस, रुधिरका पिंजरा है सो अग्निमें भस्म हो जायगा, अथवा पशु,पक्षीको खानेका आहार होयगा. जिसको देखकर पुरुष प्रसन्न होता है, तिसके प्राण आकाशमें लीन होजाते हैं ताते इस स्त्रीकी इच्छा करनी सो मूर्खता है जैसे अग्निकी ज्वालाके ऊपर श्यामता है, तैसे स्त्रीके शीशऊपर श्याम केश हैं. जैसे अग्निके स्पर्श कियेते जलता है, तैसे स्त्रीके स्पर्श कियेते पुरुष जलता है. ताते जलना दोनोंमें तुल्य है. हे मुनीश्वर ! इसको नाश करनहारी स्त्रीरूपी अग्नि है. जो स्त्रीकी इच्छा करते हैं सो महामूर्ख अज्ञानी है सो अपने नाशके निमित्त इच्छा करते हैं जैसे पतंग अपने नाशके निमित्त दीपककी इच्छा करते हैं, तैसे कामी पुरुष अपने नाशके निमित्त स्त्रीकी इच्छा करता है.

हे मुनीश्वर ! स्त्रीरूपी विषकी बेलि है अरु हस्त पाँवके अग्र तिसके पत्र हैं अरु भुजा डारी हैं और अस्थिरूप गुच्छे हैं, नेत्रादिक इंद्रिय तिसके फूल हैं अरु कामी पुरुषरूपी भौंरे आय बैठते हैं अरु कामरूपी धीवरने स्त्रीरूपी जाल पसारी है; तिसपर कामी पुरुषरूपी पक्षी आय फँसते हैं; कामरूपी धीवर तिसको फँसायकर परम कष्ट प्राप्त करता है. ऐसे दुःखके देनहारी स्त्रीकी जो वांछा करते हैं सो महामूर्ख हैं.

हे मुनीश्वर ! स्त्रीरूपी सर्पनी है; जब तिसका फुंकार निकलता है, तब तिसके निकट कमल फूल सब जल जाते हैं; ऐसी स्त्रीरूपी सर्पनी है तिसका इच्छारूप फुङ्कार जब निकसता है तब वैराग्यरूपी कमल जर जाते हैं अरु जब सर्पनी डसती है तब विष चढता है. और स्त्रीरूपी सर्पनी जब चितौनि करी तब अंतरते आपई विष चढ जाता है.

हे मुनीश्वर ! जैसे व्याध छलकर मच्छीको फँसावता है, तैसे कामी पुरुष मच्छीवत् सुंदर स्त्रीरूपी जाल देखके फँसता है और स्नेहरूपी तागेसों कामी पुरुष बंधन पाय खैंचा चला जाता है; फिर तृष्णारूपी छुरीसों काम मार डारता है. हे मुनीश्वर ! ऐसे दुःखके देनेहारी स्त्रीकी मुझको इच्छा नहीं अरु कामरूपी पारधीहै,तिसते रागरूपी इंद्रियसों जाल बिछाय कामीपुरुषरूपी मृगको आसक्त कर डारता है, अरु स्त्रीतो स्नेहरूपी डोरी है; तिसकर कामी पुरुषरूप बेलसों बँधा है. अरु स्त्रीका मुखरूपी जो चंद्रमाहै तिसको देखकर कामी पुरुषरूपी कमलनी खिलि आती है जैसे चन्द्रमुखी कमल चन्द्रमाको देखकर प्रसन्न होते हैं. और सूर्यमुखी नहीं होते, तैसे यह कामी पुरुष भोग हू कर प्रसन्न होते हैं अरु ज्ञानवान् प्रसन्न नहीं होते हैं. जैसे नकुल सर्पको बिलमें ते निकासके मारता है तैसे कामी पुरुषको स्त्री आत्मानन्दमेंते निकालके मार डारती है, जब स्त्रीके निकट जाता है तब उसको भस्म कर डारती है. जैसे सूखे तृण अरु घृतको अग्नि भस्म कर डारती है; तैसे कामी पुरुषको स्त्रीरूपी नागनी भस्म कर डारती है.

हे मुनीश्वर ! स्त्रीरूपी जो रात्रि है, तिसका स्नेहरूपी अन्धकार है; तिसके काम, क्रोधादिक उलूक अरु पिशाच हैं. हे मुनीश्वर! जो स्त्रीरूपी

खड्गके प्रहारते युवारूपी संग्रामते बचा है; सो पुरुष धन्य है ! तिसको मेरा नमस्कार है. स्त्रीका संयोग परमदुःखका कारण है, ताते मुझको इसकी इच्छा नहीं. हे मुनीश्वर ! जो रोग होता है, तिसके अनुसार औषध करता है,तब रोग निवृत्त होता है अरु कोऊ कुपथ्य दिये, वाका प्रबल होता है;रोग बढ जाता है; ताते मेरे रोगके अनुसार औषधि करो–

सो मेरा रोग सुनिये जरा अरु मृत्यु मुझको बडा रोग है,तिसके नाशकी औषधि मुझको दीजिये और स्त्री आदिक जो भोग हैं,सो सब इस रोगके वृद्धि कर्त्ता हैं जैसे अग्निमें घृत डारिये, तब बढ जाती है; तैसे भोगसों जरा मृत्यु आदिरोग बढता है; ताते इस रोगकी निवृत्तिका औषध करो, नहीं तो सबका त्याग कर वनमें जाय रहूँगा.

हे मुनीश्वर ! जिसको स्त्री है तिसको भोगकी इच्छा भी होती है और जिसको स्त्री नहीं तिसको स्त्रीकी इच्छा भी नहीं. जिसने स्त्रीका त्याग किया है,तिसने संसारका भी त्याग कियाहै; सोई सुखीहै.संसारका बीज स्त्री है, ताते मुझको स्त्रीकी इच्छा नहीं, मुझको सोई औषध दीजिये, जिससे जरा मृत्यु आदि रोगकी निवृत्ति होय.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे स्त्रीदुराशावर्णनं नामैकविंशः सर्गः २१॥

द्वाविंशः सर्गः २२.

अथ जरावस्थावर्णनम्।

श्रीराम उवाच–हे मुनीश्वर ! बालक अवस्था तो महाजड है अरु असक्त है और जब युवा अवस्था आती है, तब बालावस्थाको ग्रहण कर लेती है. तिसके अनन्तर वृद्धावस्था आती है, तब शरीर जर्जरीभूत हो जाता है अरु बुद्धि क्षीण होजातीहै;बहुरि मृत्युको पाताहै. हे मुनीश्वर! इस प्रकार अज्ञानीका जीवना व्यर्थ है, कछु अर्थकी सिद्धि नहीं होती है जैसे नदीके तटपर वृक्ष होते हैं सो जलके प्रवाहकर जर्जरीभूत होजाते हैं तैसे वृद्धावस्थामें शरीर जर्जरीभूत होजाता है;जैसे पवनसों पत्र उड जाता

है, तैसे वृद्धावस्थामें शरीर नाश पाता है. जेते कछु रोगहैं सो सब वृद्धावस्थामें आय प्राप्त होते हैं अरु शरीर कृश होय जाता है, अरु स्त्री पुत्रादिक सब वृद्धका त्याग करते हैं; जैसे पक्के फलको वृक्ष त्याग देता है तैसे वृद्धको कुटुंब त्याग देताहै अरु देखकर हँसते हैं. जैसे बावरेको देख हँसके बोलते हैं कि, इनकी बुद्धि सब जात रही. जैसे कमल फूलनेके ऊपर बरफ पडता है अरु कमल जर्जरीभूत होजाता है, तैसे जरा अवस्थामें पुरुष जर्जरीभावको प्राप्त होता है अरु शरीर कुबरा होजाता है; केश श्वेत हो जातेहैं शक्ति क्षीण होजाती है. जैसे चिरकालका बडा वृक्ष होता है, तिसमें घुन होताहै; तैसे शक्ति कछु रहती नहीं.

हे मुनीश्वर! औरहू सब कृति क्षीण होजाती हैं परंतु एक अशक्ति मात्र रहती है.जैसे बडे वृक्षपै उलूक आय रहते हैं; तैसे इसमें लोभ शक्ति आय रहती है. और शक्ति सब क्षीण होजाती हैं. हे मुनीश्वर ! जरा अवस्था दुःखका घर है जब जरा अवस्था आती है; तब सब दुःख इकट्ठे होते हैं तिनकर महादीन होजातेहैं. अरु युवाअवस्थाका जो कामका बल रहताहै, सो जरामें क्षीण होजाताहै; अरु इंद्रियकी आसक्ति घट जाती है, तिनते चपलताका अभाव होजाता है. जैसे पिताके निर्धन हुए पुत्र दीन होजाताहै; तैसे शरीर निर्बल हुए इंद्रियांहू निर्बल हो जातीहैं; और एक तृष्णा उन्मत्त हो बढ जाती है.

हे मुनीश्वर ! जब जरारूपी रात्रि आतीहै. तब खांसीरूपी गिदडी आय शब्द करतीहै; अरु आधिव्याधिरूपी उलूक आय निवास करते हैं. हे मुनीश्वर ! ऐसी जो नीच वृद्धावस्था है. तिसकी मुझको इच्छा नहीं यह देह जरा आयेते कूबरी होय जाती है; जैसे फल पकनेसों वृक्ष झुक जाता है तैसे जराके आयेते देह कुबरी होजाती है.जो युवाअवस्थामें स्त्री पुत्रादिक चाहते थे अरु टहल करते थे सो सब उसको त्याग देते हैं, जैसे वृद्ध बैलको बैलवारा त्याग देता है; तैसे इसको बन्धु त्याग देते हैं; और देखके हँसते हैं; अरु अपमान करते हैं. तिनको ऊंटकी नाई भासता है, हे मुनीश्वर ! ऐसी जो नीच अवस्था है तिसकी मुझको इच्छा नहीं. अब जो कछु कर्तव्य मुझको कहो सो मैं करों.

इस शरीरकी तीनों अवस्थामें कोऊ सुखदाई नहीं है. क्योंकि बालावस्था महामूढ है अरु युवावस्था महा विकारवान है अरु जरा अवस्था महादुःखका पात्र है, बालावस्थाको युवावस्था ग्रहण कर लेती है अरु युवा अवस्थाको जरा अवस्था ग्रहण कर लेती है अरु जरावस्थाको मृत्यु ग्रहण कर लेता है. यह अवस्था सब अल्प कालकी हैं; इनके आश्रय करके मेरेको कहां सुख होना है, ताते मुझको सोई उपाय कहो जिसकर इस दुःखसे मुक्त हो जाऊं.

हे मुनीश्वर! जब जरा अवस्था आती है,तब मरना भी निकट आता है; जैसे संध्याके आये रात्रि तत्काल आय जाती है और जो संध्याके आये दिनकी इच्छा करते हैं सो महामूर्ख हैं, तैसे जराके आये जीवनेकी आशा रखनी सो महामूर्खताहै. हे मुनीश्वर ! जैसे बिल्ली चितौनी करती है जो चूहा आवे तो पकर लेउँ, तैसे मृत्यु चितवत है कि, जरा अवस्था आवे तो मैं इसका ग्रहण कर लेऊं अरु जरा अवस्था मानो कालकी सखी है. रोगरूपी मशालकर शरीररूपी मांसको सुखाती है, तब काल जो इसका स्वामी है सो आयकर भोजन कर लेता है. अरु शरीररूपी घर है तिसका स्वामी काल है जब काल घरमें आवे तब तिसके आगे तीन पटरानी आती हैं; पहिली अशक्तता, दूसरी अंगमें पीडा, तीसरी खांसी सो शीघ्र श्वासको चलावती है अरु श्वेत केश होते हैं, सो चमरकी नाईं झुलते हैं. ऐसी जो कालकी सहेली है सो प्रथमही आइ प्रवेश करती है अरु जरारूपी कलँगी शरीरको बनावती है, तब जो वाका स्वामी काल है सो आय प्रवेश करता है.

हे मुनीश्वर ! जो परमनीच अवस्था हैसो जराही है सो जब आती है तब शरीरको जर्जरीभूत कर देती है; कँपानेको लगती है अरु शरीरको निर्बल कर देती है अरु क्रूर कर देती है. जैसे कमलपर बरफकी वर्षा होवे अरु जर्जरीभूत होय जाय, तैसे शरीरको जर्जरीभूत कर डारती है. जैसे वनमें बाघिन आयके शब्द करती है अरु मृगका नाश करती है, तैसे खांशी रूपी बाघिन आय मृगरूपी बलका नाश करती है.

हे मुनीश्वर ! जब जरा आती है तब मृत्यु प्रसन्न होता है. जैसे चन्द्रमाके उदयते कमलनी खिल जाती है, तैसे मृत्यु प्रसन्न होता है अरु यह जरा अवस्था बडी दुष्ट है, बडे बडे योद्धे हुए हैं, तिनको भी दीन करदिये हैं; यद्यपि बडे शूर माने संग्राममें शत्रुको जीते हैं सो उनको हू जराने जीतलिये हैं अरु बडे पर्वतके चूर्ण करडारे हैं ताको हू जरा पिशाचनीने महादीन कर दिये हैं यह जरारूपी जो राक्षसी है तिसने सबको दीन कर दिये हैं सो सबको जीतनेवारी है.

हे मुनीश्वर ! यह जरा शरीरको अग्निकी नाईं लगती है. जैसे अग्नि वृक्षमें लगती है तब धूम निकसता है, तैसे शरीररूपी वृक्षमें जरारूपी अग्नि लगके तृष्णारूपी धुँवा निकसता है. जैसे डब्बेमें बडे रत्न रहते हैं, तैसे जरारूपी डब्बेमें दुःखरूपी अनेक रत्न रहते हैं. अरु जरारूपी वसन्तऋतु है तिस करके शरीररूपी वृक्ष दुःखरूपी रसकरके पूर्ण होता है. जैसे हस्ती साँकरसों बँधा हुआ दीन होजाता है; तैसे जरारूपी सांकरकरके बँधा पुरुष दीन होजाता है अरु अंग सब शिथिल हो जाता है बल क्षीण होजाता है अरु इंद्रियां भी निर्बल हो जाती हैं अरु शरीर जर्जरीभावको प्राप्त होता है परंतु तृष्णा नहीं घटती है नित्य बढती चली जाती है. जैसे रात्रि आती है तब सूर्यवंशी कमल सब मुँद जाते हैं तब पिशाचनी आय विचरने लगती है अरु प्रसन्न होती है तैसे जरारूपी रात्रिके आयेते सब शक्तिरूपी कमल मूँद जाते हैं अरु तृष्णारूपी पिशाचनी प्रसन्न होती है.

हे मुनीश्वर ! जैसे गंगातटपर वृक्ष रहते हैं सो गंगाजलके वेगसों जर्जरीभूत होजाते हैं, तैसे जो आयुरूपी प्रवाह चलता है तिसके वेगकर शरीर जर्जरीभूत हो जाता है. जैसे मांसके टुकडेको देख आकाशसे उडती चील्ह नीचे आय ले जाती है, तैसे जराअवस्थामें शरीररूपी मांसको काल ले जाता है. हे मुनीश्वर ! यह तो कालका ग्रास बना हुआ है. जैसे सुंदर वृक्षको हस्ती खाय जाता है, तैसे जराअवस्थावाले शरीरको काल देखकर भोजन कर जाता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे जरावस्थानिरूपणं नाम द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः २३.

अथ कालवृत्तांतवर्णनम् ।

राम उवाच-हे मुनीश्वर! संसाररूपी गर्त है तिसमें अज्ञानी गिरा है, सो संसाररूपी गर्त अल्प है अरु अज्ञानी तो बडा होगया है, संकल्प विकल्पकी अधिकताते बढा है अरु जो ज्ञानवान् पुरुष है सो संसारको मिथ्या जानते हैं, फिर संसाररूपी जालमें फँसते नहीं हैं अरु जो अज्ञानी पुरुष है सो संसारको सत्य जानकर संसारकी आस्थारूपी जालमें फँसता है अरु संसारके भोगकी वांछा करता है सो ऐसा है, जैसे दर्पणमें प्रतिबिंब देखकर बालक पकरनेकी इच्छा करता है, तैसे अज्ञानी संसारको सत्य जानकर जगत्के पदार्थकी वांछा करता है यह मेरेको होवे यह मेरेको नहीं होवे अरु यह जो सुख है सो नाशात्मक है अभिप्राय यह जो आवते हैं अरु जाते हैं, सो स्थिर नहीं रहते हैं, इनका काल ग्रहण करता है. जैसे पक्के अनारको चूहा खाय जाता है, तैसे सब पदार्थनको काल खाता है.

हे मुनीश्वर! जेते कछु पदार्थ हैं सो कालग्रसित हैं बडे बडे बली सुमेरु जैसे गंभीर बलवारे पुरुषोंको कालने ग्रास किये हैं. जैसे सर्पको नकुल भक्षण कर जाता है, तैसे बडे बलीका ग्रास काल कर जाता है अरु जगतरूपी एक गूलरका फल है, तिसमें जो मच्छा है सो ब्रह्मादिक हैं, सो फलका जो वृक्ष है तिनका जो वन है सो ब्रह्मरूप है, तिस ब्रह्मरूप वनमें जेते कछु वन हैं सो सब इसका आहार है सबका भक्षण काल कर जाता है.

हे मुनीश्वर! यह काल बडा बलिष्ठ है जो कछु देखनेमें आता है सो सब इसने ग्रास कर लिया है, तब और की कहा कहानी है और हमारे जो बडे ब्रह्मादिक तिनका भी काल ग्रास कर जाता है. जैसे मृगका ग्रास सिंह कर लेता है और काल किसी करके जाना नहीं जाता. छिन, घरी, हर, दिन, मास और वर्षादिक कर जानिये सो काल है और कालकी

मूर्ति प्रगट नहीं है, ऐसा अप्रगटरूप है अरु किसीकी स्थिति होने नहीं देता अरु एक बेलि कालने पसारी है, तिसकी त्वचा रात्रि है अरु फूल तिसका दिन है और जीवरूपी भौंरे तिसपर आय बैठते है.

हे मुनीश्वर ! जगत्‌रूपी गूलरका फूल है तिसमें जीवरूपी मच्छर बहुत रहते हैं, तिस फूलका भक्षण काल कर जाता है जैसे अनारका भक्षण तोता करता है, तैसे काल भक्षण करता है अरु जगत्‌रूपी वृक्ष है अरु जीवरूपी तिसके पत्र हैं, तिसका कालरूपी हस्ती भक्षण करजाता है. अरु शुभ अशुभरूपी भैंसानको कालरूपी सिंह छेद छेदके खाता है.

हे मुनीश्वर ! यह काल महाक्रूर है सो किसीपर दया नहीं करता, सबका भोजन कर जाता है. जसे मृग सब फूलनको खाय जाता है तिससे कोऊ रहता नहीं है परंतु एक कमल उससे बचे हैं सो कमल कैसा है ? शांति अरु मैत्री तिसके अंकुर हैं अरु चेतनता मात्र प्रकाश है इस कारणते वह बचा है सो कालरूपी मृग इसको पहुँच नहीं सकता. इससे प्राप्तहुआ काल भी लीन होजाता है और जेता कछु प्रपंच है सो सब कालके मुखमें है. ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, कुबेर आदिकर सब मूर्ति कालकी धरी हुई हैं,फिर तिनको भी अंतरध्यान कर देता है. हे मुनीश्वर ! उत्पत्ति, स्थिति, अरु प्रलय सब कालते होते हैं अनेक बेर महाकल्पकाहू ग्रहण कर लेता है अरु अनेक बेर करैगा अरु कालको भोजन कियेते तृप्ति कदाचित् नहीं होती अरु कदाचित् होनहारीहू नहीं. जैसे अग्नि घृतकी आहुतिसों तृप्त नहीं होता, तैसे जगत् अरु सब ब्रह्मांडका भोजन करतेहू काल तृप्त नहीं होता अरु इसका ऐसा स्वभाव है जो इंद्रको दरिद्री कर देता है अरु दरिद्रीको इंद्रकर देता है और सुमेरुको राई बनाता है अरु राईका सुमेरु करता है. सबते बडे ऐश्वर्यवारेको नीच करडारता है, सबते नीचको ऊंच कर डारता है अरु बूँदको समुद्र कर डारता है अरु समुद्रका बूंद करता है ऐसी शक्ति कालमें है. अरु जीवरूपी जो मच्छ है तिनको शुभाशुभ कर्मरूप छुरेसों छेदत रहता है फिर कैसा है ? जो काल कूपका चक्र है जीवरूपी टंटको शुभ अशुभ कर्मरूपी रसरीसों बांधकर

लिये फिरता हैं. फिर कैसा है ? जीवरूपी वृक्षको रात्रि अरु दिनरूपी कुहारा कर छेदता है.

हे मुनीश्वर ! जेता कछु जगत् विलास भासता है सो सबका ग्रहण काल कर लेवेगा अरु जीवरूपी रत्नका काल डब्बा है सो अपने उदरमें डारता जाता है और खेल करता है अरु चंद्रसूर्यरूपी गेंदको कबहूं ऊर्द्ध उछालता हैं, कबहूँ नीचे डारता है. अरु जो महापुरुष हैं सो उत्पत्ति प्रलयमें जो पदार्थ हैं तिनमें स्नेह किसीके साथ नहीं करते, तिसका नाश करनेको काल समर्थ नहीं. जैसे मुंडकी माला महादेवजी गलेमें धरते हैं तैसे यह भी जीवकी माला गरेमें डारता है.

हे मुनीश्वर ! जो बडे बडे बलिष्ठ हैं, तिनका भी काल ग्रहण कर लेता है, जैसे समुद्र बडा है तिसका वडवाग्नि पान कर लेता है और जैसे पवन भोजपत्रको उड़ाता है, तैसे कालका बल है किसीकी सामर्थ्य नहीं जो इसके आगे स्थित रहै.

हे मुनीश्वर ! शांतिगुण प्राधान्य जो देवता हैं अरु रजोगुण प्राधान्य जो बडे राजा हैं अरु तमोगुण प्राधान्य जो दैत्य राक्षस हैं तिनमें कोऊ समर्थ नहीं, जो इसके आगे स्थित होवे. जैसे टोकनीमें अन्न अरु जल धरके अग्निपर चढाय दियेते फिर उछलते हैं सो अन्नके दाने कडछी कर कबहूं ऊर्ध्व और कबहूं नीचे जाते हैं, तैसे जीवरूपी अनेक दानें जगत्-रूपी टोकनीमें परे हुए राग द्वेष रूपी अग्निपै चढे हैं अरु कर्मरूपी कडछीकर कबहूँ ऊर्ध्व जाते हैं, कबहूं नीचे जाते हैं. हे मुनीश्वर ! यह काल किसीको स्थिर होने नहीं देता, महा कठोर है दया किसी पर नहीं धरता इसका भय मुझको रहता है. ताते सोई उपाय मुझको कहो जिसकर मैं कालते निर्भय होजाऊं.

इति श्रीयोगवासिष्ठ वैराग्यप्रकरणे कालवृत्तांतनिरूपणं नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशतितमः सर्गः २४.

अथ कालविलासवर्णनम् ।

श्रीराम उवाच—हे मुनीश्वर ! यह काल बडा बलिष्ठ है. जैसे राजाके पुत्र शिकार खेलने जाते हैं, तब वनमें बडे पशु पक्षी देखते हैं, फिर मारते हैं. तैसे संसाररूपी वन है, तिसमें प्राणी मात्र पशु पक्षी हैं जब कालरूपी राजपुत्र तिसमें शिकार खेलने आता है तब सब जीव भयको पाते हैं, फिर तिसकोई मारता है.

हे मुनीश्वर ! यह काल महाभैरव है सबका ग्रास कर लेता है. प्रलयमें सबका प्रलय कर डारता है अरु इसकी जो चंडिका शक्ति है तिसका बडा उदर है अरु कालिका सबका ग्रास करती है पाछे नृत्य करती है. जैसे वनके मृगको सिंह अरु सिंहनी भोजन करते हैं और नृत्य करते हैं, तैसे जगत्रूपी वनमें जीवरूपी मृगका भोजन करके काल अरु कालिका नृत्य करते हैं, बहुरि इनते जगत्का प्रादुर्भाव होता है. नाना प्रकारके पदार्थनको रचते हैं. पृथ्वी, बगीचे, बावरी आदि सब पदारथ इनही ते उत्पन्न होते हैं अरु सुंदर जीवकीहू उत्पत्ति इनते होती है और एक समयमें उनका नाश भी कर देती है. सुंदर समुद्र रचके फिर वामें अग्नि लगाय देती है अरु सुंदर कमलको बनायके फिर वाके ऊपर बरफकी बरसा करती है. इत्यादि नाना पदार्थको रचिके तिनका नाश करती है. जहां बडे स्थान बसते हैं तिनको उजाड कर डारती है, फिर उजाडमें बस्ती कर धरती है अरु नाश भी करती है स्थिर रहने किसीको नहीं देती. जैसे बागमें बानर आयके वृक्षको ठहरने नहीं देता, तैसे कालरूपी बानर किसी पदार्थको स्थिर रहने नहीं देता.

हे मुनीश्वर ! इस प्रकारसों सब पदार्थ कालसों कर जर्जरीभूत होते हैं तिसका में आश्रय किसरीतिसों करों ? मुझको वो नाशरूप भासता है. ताते अब मुझको किसी जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालविलासवर्णनं नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशतितमः सर्गः २५.

अथ कालकालिकावर्णनम्।

राम उवाच-हे मुनीश्वर ! इस कालका महा पराक्रम है इसके तेजके सन्मुख रहनेको कोई समर्थ नहीं, क्षणमें ऊँचको नीच कर डारता है अरु नीचको ऊँच कर डारता है, तिसका निवारण कोऊ नहीं कर सकता. सब इसीके भयसे परे कांपते हैं यह महाभैरव है सब विश्वका ग्रास कर लेता है अरु चंडिकारूप शक्ति है सो बलवान् है. सो नदीरूप है तिसका उल्लंघन कोई नहीं कर सकता है अरु महाकालरूपी काली है तिसका बडा भयानक आकार है अरु कालरूप जो रुद्र है तिसते अभिन्नरूपी 'कालिका है सो सबका पान कर लेती है पाछे भैरव अरु भैरवनी नृत्य करते हैं सो काल कालिका कैसी है ? बडा जिसका आकाशमें शीश है अरु जिसके पातालमें चरण हैं दशोंदिशा जिसकी भुजा हैं सप्त समुद्र जिसके हाथमें कंकन हैं संपूर्ण पृथ्वीरूप तिसके हाथमें पात्र है तिसके ऊपर जीव है, सो भोजन योग्य है. हिमालय अरु सुमेरु पर्वत दोनों कानमें बडे रत्न हैं चंद्रमा सूर्य जिसके लोचन हैं अरु सब तारागण वाके मस्तकमें बिंदु हैं अरु हाथमें त्रिशूल अरु मुशल आदि शस्त्र हैं अरु जिसके हाथमें तंद्रा फांसा है तिसकर जीवको मारता है. ऐसी जो कालिका देवी है सो सब जीवका ग्रास करके महाभैरव जो रुद्र है तिसके आगे नृत्य करती है अरु अट्ट अट्ट ऐसा शब्द करती है अरु जीवका भोजन करके उनकी रुंडमाला गरेमें धारण करती है सो भैरवके आगे नृत्य करती है अरु भैरव कैसा है ? कि, जिसके सन्मुख रहनेकी शक्ति कोईमें नहीं है अरु जहां उजार है तहां क्षणमें बस्ती कर डारते हैं अरु जहां बस्ती होवे तहां क्षणमें उजार करते हैं इसीसे तिनका नाम देव कहते हैं अरु जिसको कृतांत भी कहते हैं. काहेसे कि, बडे२ पदार्थ

होते हैं अरु तिसका नाश भी करता है अरु स्थिर किसीको रहने नहीं देता तिसते इसका नाम कृतांत है अरु नित्यरूपीहू यही है जो यह आदि धरा है सोई कर्त्ता अरु कर्मरूप है, काहेते कि, परिणाम जिसका अनित्यरूप है इसीते इसका कर्म नाम है सो कैसे नाश करता है ? जब अभावरूपी धनुष हाथमें धरता है तिसकर राग द्वेषरूपी बाण चलाता है तिस बाणसे जर्जरीभूत करके नाश करता है अरु उत्पत्ति नाशमें उसको यत्न भी कछु करना नहीं पडता है इसको तो खेल जैसा है. जैसे बालक मृत्तिकाकी सेना बनाता है, फिर उठाय कर नाश भी कर देता है, तैसे कालको उपजावने अरु नाश करनेमें यत्न करना नहीं पडता है, हे मुनीश्वर ! कालरूपी धीवर है, तिसने क्रियारूपी जाल पसारा है तिसविषे जीवरूपी पक्षी पडे फँसते हैं सो फँसे हुए शांति को नहीं प्राप्त होते हैं. हे मुनीश्वर ! यह तो सब नाशरूप पदार्थ हैं इनमें आश्रय किसका करना, जिसकर सुखी होवे. स्थावर, जंगम जगत् तो सब कालके मुखमें हैं यह सब नाशरूप मुझको दृष्टिमें आवे हैं ताते जो निर्भय पद होय सो मुझसों कहो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालकालिकावर्णनं नाम पञ्चविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशतितमः सर्गः २६.

अथ कालविलासवर्णनम्।

श्रीराम उवाच-हे मुनीश्वर ! जेते कछु पदार्थ भासते हैं सो सब नाशरूप हैं ताते किसकी इच्छा करों ? और कौनको आश्रय करों ? इतनो इच्छा करनी सो मूर्खता है. अरु जेती कछु चेष्टा अज्ञानी करता सो सब दुःखके निमित्त है अरु जीवनेमें अर्थकी सिद्धि कछु नहीं है काहेते, जो बालक अवस्था होती है, तब मूढता रहती है, विचार कछु नहीं रहता. अरु जब युवा अवस्था आती है, तब मूर्खता करके विष-

यको सेवते हैं अरु मान मोहादि विकारोंसे मोहेई जाते हैं तामें भी विचार कछु नहीं होता अरु स्थिर भी नहीं रहते, फिर दीनका दीन रहके विषयकी तृष्णा करता है शांतिको नहीं पाता है.

हे मुनीश्वर ! आयुष्य जो है सो महाचंचल है अरु मृत्यु निकट है वाको अन्यथाभाव नहीं होता है. हे मुनीश्वर ! जेते कछु भोग हैं सो रोग हैं अरु जिसको संपदा जानते हैं सो आपदा है अरु जिसको सत्य कहते हैं सो असत्यरूप है अरु जिस जिस स्त्री पुत्रादिकको मित्र जानते हैं सो सब बंधनका करता है अरु इंद्रिय जो हैं सो महा शत्रुरूप हैं. सो मृगतृष्णाके जलवत् हैं अरु यह देह है सो विकाररूप हैं अरु मन महाचंचल है और सदा अशांतरूप है अरु अहंकार जो है सो महानीच है. इसने ही दीनताको प्राप्त किया है इसकर जेते कछु पदार्थ इसको सुखदायक भासते हैं सो सब दुःखके देनेहारे हैं तिसकर इसको कदाचित् शांति नहीं होती ताते मुझको इतनी इच्छा नहीं. यद्यपि देखने मात्रको सुंदर भासते हैं तो भी इनमें सुख कछु नहीं सो पदार्थ स्थिर रहनेका नहीं. जैसे समुद्रमें नानाप्रकारके तरंग भासते हैं सो सब बडवाग्निकर नाश होते हैं तैसे यह पदार्थ भी नाशको पाते हैं, मैं अपनी आयु विषे कैसे आस्था करों ?

हे मुनीश्वर ! बडे समुद्र जो दृष्टि आते हैं अरु सुमेरु आदि बडे पदार्थ हैं सो सब नाशको पाते हैं, तब हम सारिखेकी कहा वार्त्ता है और बडे बडे दैत्य राक्षसहू होयके नाश पाय गये हैं तो हम सारिखेकी कहा वार्त्ता है अरु देवता, सिद्ध, गंधर्व हुये हैं सो सब नाशको पाते हैं. तिनकी नाम संज्ञा भी नहीं रहती तब हम सारिखेकी कहा वार्त्ता, पृथ्वी, जल अरु अग्नि जो दाहकशक्ति धरनेहारे अरु पवन जो है सो वीर्यसहित सब नाश हो जायँगे, कछु इनकी सत्ता भी न रहैगी तो हम सारिखेकी कहा वार्त्ता अरु यम, कुबेर, वरुण, इंद्र, बडे तेजवारे हैं सो सब नाश पावेंगे तो हम सारिखेकी कहा कहानी है और तारामंडल जो दृष्टि आते हैं सो सब गिरपडेंगे जैसे सूखे पात वृक्षते वायुसों गिरजाते हैं तैसे तारे गिरते हैं तब हम सारिखेकी कहा वार्त्ता है. हे मुनीश्वर ! ध्रुव जो

स्थिर भासता है सो भी अस्थिर होय जायगा अरु चंद्रमा अमृतमय मंडलका दृष्टिमें आता है और सूर्य अखंडमंडल है, जिसका ऐसा जो प्रकाश संयुक्त दृष्टिमें आता है सो सब नाश हो जावहिंगे तो हम सारिखेकी कहा वार्त्ता है और कीहू कहा वार्त्ता है यह जो बडे ईश्वर जगत्के अधिष्ठाता हैं तिनका भी अभाव हो जाता है. परमेष्ठी जो ब्रह्मा है तिसका भी अभाव हो जाता है, हरि जो विष्णु सो भी हरे जायँगे, महाभैरवरूप जो इन्द्र सो भी शून्य हो जायँगे तो हम सारिखेकी कह वार्त्ता करनी ? अरु काल जो सबका भक्षण करनेहारा है सो भी टूक टूक होयके नाशको प्राप्त होवेगा अरु कालकी स्त्री जो नेती है सोहू अनेतताको प्राप्त होवेगी अरु सबका आधार जो आकाश है सो भी नाश हो जायगा. तो हम सारिखेकी कहा वार्त्ता ? अरु जेता कछु जगत् अर्थ कर सिद्ध होता है सो सब नाश हो जावेगा. कोऊहू स्थिर रहनेका नहीं तब हम किसकी आस्था करैं अरु किसका आश्रय करैं यह जगत् सब भ्रममात्र है अज्ञानीकी इसमें आस्था होती है और हमारी नहीं है. कि जगत् भ्रम कैसे उत्पन्न भया है अरु मैं इतना जानता हों कि संसारमें जितने दुःखी होते हैं सो अहंकारने किये हैं.

हे मुनीश्वर ! इसका जो परमशत्रु अहंकार है इस करके भटकता फिरता है. जैसे जेवरीमें बाँधा हुआ पतंग कबहूं ऊर्ध्व कबहूं नीचे जाता है स्थिर कबहूं नहीं रहता. तैसे जीवहू अहंकार करके कबहूँ ऊर्ध्व कबहूँ अधो जाता है स्थिर कबहूँ नहीं होता. जैसे अश्वते आरूढ रथ तिनके ऊपर बैठके सूर्य आकाश मार्गमें भ्रमता है तैसे यह जीव भ्रमता है स्थिर कदाचित् नहीं होता. हे मुनीश्वर ! यह जीव परमार्थ सत्य स्वरूपते भूलाहुआ भटकता है अरु अज्ञान करके संसारमें आस्था करता है अरु भोगहूको सुखरूप जानकर तिसमें तृष्णा करता है और जिसको सुखरूप जानता है सो रोग समान है और विषकर पूर्ण सर्प जैसे है सो जीवका नाश करनेहारे हैं और जिसको सत्य जानता है सो असत्य है सब कालके मुखमें ग्रसे हुए हैं.

हे मुनीश्वर! विचार विना अपना नाश आपही करता है काहेते कि, इसका कल्याण करनेहारा बोध है जो सत्य विचार बोधके शरण जाय तो कल्याण होवे और जेते पदार्थ हैं सो स्थिर कोई नहीं इनको सत्य जानना, दुःखके निमित्त हैं. हे मुनीश्वर! जब तृष्णा आती है, तब आनंद अरु धैर्यको नाश कर डारती है, जैसे वायु मेघका नाश कर डारता है, तैसे तृष्णा नाश कर देती है. ताते मुझको सोई उपाय कहो जिसकर जगत्का भ्रम मिट जावे अरु अविनाशी पदकी प्राप्ति होवै. इस भ्रमरूप जगत्की आस्था मैं नहीं देखता, ताते इच्छा चाहे तैसी करो परंतु सुख दुःख इसीको होन हैं सो होइँगे मिटनेके नहीं. भावे पहाडकी कंदरामें बैठो, भावे कोटमें बैठो परंतु जो होनेका सो मिथ्या नहीं होवै है, इस निमित्त यत्न करना मूर्खता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालविलासवर्णनं नाम षड्विंशतितमः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तविंशतितमः सर्गः २७.

अथ सर्वपदार्थाभाववर्णनम्।

राम उवाच–हे मुनीश्वर! यह जो नानाप्रकारके सुंदर पदार्थ भासते हैं सो सब नाशरूप हैं. इसकी आस्था मूर्ख करते हैं यह तो मनकी कल्पना करके रचे हुए हैं. तिनमें किसकी आस्था करों?

हे मुनीश्वर! अज्ञानी जीवका जीवना व्यर्थ है काहेते जो जीवनेतें उसकी अर्थसिद्धि कछु नहीं होती. जब कुमार अवस्था होती है. तब मूढ बुद्धि होती है, तिसमें विचार कछु नहीं होता. जब युवावस्था आती है तब काम, क्रोधादिक विकार उत्पन्न होते हैं तिसकर सदा ढांपे रहते हैं. जैसे जालमें पक्षी बँध जाता है अरु आकाशमार्गको देख नहीं सकता है तैसे काम क्रोधादिक करि ढपा हुआ विचार मार्गको देख नहीं सकता. जब वृद्धावस्था आती है तब शरीर जर्जरीभूत होजाता है अरु महादीन

होता है बहुरि शरीरको भी त्याग देता है. जैसे कमलके ऊपर बरफ पडता है तब तिसको भौंरा त्याग करता है तैसे जब शरीररूपी कमलको जराका स्पर्श होता है, तब जीवरूपी भौंरा त्याग कर देता है.

हे मुनीश्वर ! यह शरीर तब लग सुंदर है जबलग वृद्धावस्था प्राप्त नहीं होती,जैसे चन्द्रमाका प्रकाश राहुदैत्यने आवरण नहीं किया तबलग रहता है, जब राहु दैत्य आवरण करता है, तब प्रकाश नहीं रहता है. तैसे जरा अवस्थाके आये युवा अवस्थाकी सुंदरता जाती रहती है. हे मुनीश्वर ! जराके आयेते शरीर कृश होजाता है अरु तृष्णा बढ जाती है ,जैसे वर्षाकालमें नदी बढ जाती है तैसे जरा अवस्थामें तृष्णा बढ जाती है अरु जो पदार्थकी तृष्णा करता है सो पदार्थ भी दुःखरूप है; तृष्णा करके आपही दुःख पाता.

हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी समुद्र है तिसमें चित्तरूपी बेडा परा है. राग, द्वेषरूपी मच्छ कबहूं ऊर्ध्व जाते हैं, कबहुँ नीचे आते हैं, स्थिर कदाचित नहीं रहते. हे मुनीश्वर ! कामरूपी वृक्ष है सो वृक्षमें तृष्णारूपी लता लगती है तिनमें विषरूपी फल हैं जब जीवरूपी भौंरा तिनके ऊपर बैठता है तब विषयरूपी बेलसों मृतक हो जाता है. हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी एक बडी नदी है; तिसमें राग, द्वेषादिक बडे मच्छ रहते हैं तिस नदीमें परे हुए जीव दुःख पाते हैं अरु जो संसारकी इच्छा करता है सो नाशरूप है.

हे मुनीश्वर! उन्मत्त हस्ती अरु तुरंगके समूह ऐसा जो रणरूपी समुद्र है तिसको तर जाते हैं; तिसको भी मैं शूर नहीं मानता परंतु जो इंद्रियरूपी समुद्र, तिसमें मनोवृत्तिरूपी तरंग उठते हैं, ऐसे समुद्रको जो तरजाता है तिसको शूर मानता हों. जिसके परिणाममें दुःख होवे तैसी क्रिया अज्ञानी जीव आरंभ करता है और जिसके परिणाममें सुख है तिसका आरंभ नहीं करता है और कामके अर्थकी धारना करता है ऐसे आरंभ कियेते शरीरकी शांति और सुखकी प्राप्ति नहीं होती. ऐसेइ कामना करके सदा जलते रहते हैं अनात्म पदार्थकी तृष्णा करते हैं सो शांतिको कैसे प्रात होवें.

हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी नदी है तिसमें बडा प्रवाह है. तिसके किनारे वैराग्य अरु संतोष दोनों वृक्ष खडे हैं सो तृष्णानदीके प्रवाहते उन दोनोंका नाश होता है. हे मुनीश्वर! तृष्णा बडी चंचल है किसीको स्थिर होने नहीं देती अरु मोहरूपी एक वृक्ष है तिसके चहूँफेर स्त्रीरूपी वेलि है सो विषकरके पूर्ण है तिसपर चित्तरूपी भौंरा आय बैठता है, तब स्पर्शमात्रते नाश पाता है. जैसे मोरका पुच्छ हिलता रहता है तैसे अज्ञानीका चित्त चंचल चलता है सो मनुष्य पशु समान है. जैसे पशु दिनको जंगलमें जाय आहार करते चलते फिरते हैं अरु रात्रिको आय घरमें खूँटासों बंधन पाते हैं तैसे मूर्ख मनुष्यहू दिनको घर छोडके व्यवहारमें फिरते हैं अरु रात्रिको आय अपने घरमें स्थिर होते हैं ताते परमार्थकी सिद्धि कछु नहीं होती जीवना वृथा गँवाते हैं.

बालक अवस्थामें शून्य रहते हैं अरु युवा अवस्थामें काम करि उन्मत्त होते हैं सो काम करके चित्तरूपी उन्मत्त हस्ती स्त्रीरूपी कंदरामें जाय स्थित होते हैं. सो भी क्षणभंगुर है. बहुरि वृद्धावस्था होती है तिसकर शरीर कृश हो जाता है जैसे बर्फते कमल जर्जरीभावको प्राप्त होता है तैसे जरा करके शरीर जर्जरीभावको प्राप्त होता है अरु सब अंग क्षीण हो जाता है अरु एक तृष्णा बढजाती है.

हे मुनीश्वर! यह पुरुष महापशु है सो आकाशके फूल लेनेकी इच्छा करता है जैसे बडे पर्वतपर चढकर आकाशका फूल लेनेकी इच्छा करता है सो फिर बडी कंदरा अरु वृक्षमें गिर पडता है. तैसे यह जीव मनुष्यरूपी पर्वतपर आय रहा है अरु आकाशके फूलरूपी, जगत्के पदार्थकी इच्छा करता है सो नीचेको गिर पडनेको है सो राग द्वेषरूपी कंटक वृक्षमें जाय पडेगा. हे मुनीश्वर! जेते कछु जगत्के पदार्थ हैं सो सब आकाशके फूलकी नाईं नाशवान् हैं. इनमें आस्था करनी सो मूर्खता है, यह तो शब्दमात्र जैसा है तिसते अर्थसिद्धि कछु नहीं होती अरु जो ज्ञानवान् पुरुष हैं तिनको विषय भोगकी इच्छा नहीं रहती काहेते जो आत्माके प्रकाशकर इनको मिथ्या जानते हैं. हे मुनीश्वर!

ऐसे ज्ञानवान् पुरुष सो दुर्विज्ञेय हैं, हमको तो स्वप्नमें भी नहीं भासते हैं. और यह विरक्तात्मा दुर्लभ है जिनको भोगकी इच्छा नहीं है सर्वदा ब्रह्मकी स्थितिकर भासते हैं ऐसे पुरुषको संसारकी इच्छा कछु नहीं रहती, काहेते जो यह पदार्थ सब नाशरूप हैं. हे मुनीश्वर! पर्वतको जिस ओर देखिये तहां पत्थर कर पूर्ण दृष्टि आता है. अरु पृथ्वी पूर्ण मृत्तिका करि दृष्टि आती है अरु वृक्ष काष्ठकरि पूण दृष्टि आता है. समुद्र जलकर पूर्ण दृष्टि आता है तैसे शरीर अस्थि, मांसकर पूर्ण भासता है ये सब पदार्थ पांच तत्त्वकरि पूर्ण हैं और नाशरूप हैं ऐसा रूप ज्ञानी जानके किसीकी इच्छा नहीं करता.

हे मुनीश्वर ! यह जगत् सब नाशरूप है देखते देखते नाशको पाता है तिसमें मैं किसका आश्रय करके सुख पाऊँ. जब युगकी सहस्र चौकरी होती है, तब ब्रह्माका एक दिन होता है, तिस दिनके क्षय हुएते सब जगत्का प्रलय होता है बहुरि ब्रह्माहू कालकर नाश होजाता है.अ रु ब्रह्माहू जितने होगये हैं तिनकी संख्या नहीं होती असंख्य ब्रह्मा नाश होगये हैं तो हम सारिखेकी कहा वर्त्ता करनी है ? हम किसी भोगकी वासना नहीं करते, क्योंकि सब चलरूप है, कछु स्थिर रहनेका नहीं. सब नाशरूप है इनकी आस्था मूर्ख करते हैं तिसके साथ हमको कछु प्रयोजन नहीं. जैसे मृग मरुस्थलको देख जल पान करनेको दौडता है अरु शांतिको नहीं पाता, तैसे मूर्ख जीव जगत्के पदार्थको सत्य मानकर तृष्णा करते हैं परन्तु शांतिको नहीं पाते काहेते कि, सब असाररूप है. अरु–

जो स्त्री, पुत्र, कलत्र भासते हैं सो जब लग शरीर नष्ट नहीं हुआ तबलग भासते हैं जब शरीर नष्टहो जायगा तब जानिवेमें भी न आवेंगे कि, कहां गये अरु कहाँते आये थे ? जैसे तेल अरु बत्तीकर दीपक प्रकाशता है तब बडा प्रकाशवान् दृष्ट आता है पाछे जब बुझ जाता है तब जाना नहीं जाता कि कहाँ गया, तैसे बत्तीरूप बांधव हैं और तिनविषे स्नेहरूपी तेल है तिसकर जो शरीर भासता है सो प्रकाश है जब

शरीररूपी दीपकका प्रकाश बुझ जाता है तब जाना नहीं जाता कि, कहां गया. हे मुनीश्वर ! यह बंधुका मिलाप है सो जैसे तीर्थ यात्राका संग चला जाता होवे सो सब एक क्षणमें वृक्षकी छाया नीचे बैठते हैं फिर न्यारे न्यारे होय जाते हैं, तैसा बांधवका मिलाप है. जैसे उस यात्रामें स्नेह करना मूर्खता है तैसे इनमें भी स्नेह करना मूर्खता है.

हे मुनीश्वर ! अहंममताकी जेवरीके साथ बांधे हुए घटी यन्त्रकी नाईं सब भ्रमते फिरते हैं तिनको शांति कदाचित् नहीं होती. यह देखने-मात्रको चेतन दृष्ट आवता है परंतु पशु अरु बंदर इनते श्रेष्ठ हैं जिनकी समति देह इंद्रियनके साथ बांधी हुई है अरु आगमापायी है इसमें आस्था रखनी सो महामूर्खता है उनको आत्मपदकी प्राप्ति होनी कठिन है. जैसे पवनकर वृक्षके पात टूटके उड जाते हैं, फिर उनको वृक्षके साथ लगना कठिन है तैसे जो देहादिक साथ बांधे हुए हैं तिसको आत्मपद पाना कठिन है.

हे मुनीश्वर ! जब आत्मपदते विमुख होता है तब जगत्के भ्रमको देखता है अरु जब आत्मपदकी ओर आता है, तब संसार इसको बडा विरस लगता है और ऐसा पदार्थ जगत्में कोई नहीं कि, स्थिर रहैगा. जो कछु पदार्थ हैं सो नाशको प्राप्त होते हैं, ताते मैं किसकी आस्था करों ? और किसका आश्रय करों ? सब नाशवंत भासते हैं, वह पदार्थ मुझको कहो, जिसका नाश न होवे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे सर्वपदार्थाभाववर्णनं नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७॥

अष्टाविंशतितमः सर्गः २८.

अथ जगद्विपर्ययवर्णनम् ।

श्रीराम उवाच–हे मुनीश्वर ! जेता कछु स्थावर जंगम जगत् दीखता है सो सब नाशरूप है कछु भी स्थिर रहनेका नहीं जो खाईं थी सो

जलकर पूर्ण होगई है अरु जो बडे जलकर समुद्र पूर्ण दीखते थे सो खाईं रूप ह्वै गये अरु जो सुंदर बडे बगीचे थे सो आकाशकी नाईं शून्य होगये अरु जो शून्य स्थान थे सो सुंदर वृक्ष हुए बनकर दृष्ट आते हैं. जहां वस्ती थी तहां उजार हो गई है अरु उजार थी तहां बस्ती होगई है अरु जहां गढेले थे तहां पर्वत हो गये हैं अरु जहां बडे पर्वत थे तहां समान पृथ्वी हो गई है. हे मुनीश्वर ! इस प्रकार पदार्थ देखत विपर्यय हो जाते हैं स्थिर नहीं रहते, बहुरि मैं किसका आश्रय करों ? अरु किसके पावनेका यत्न करों ? यह पदार्थ तो सब नाशरूप हैं अरु जो बडे बडे ऐश्वर्यकर संपन्न थे अरु जो बडे कर्त्तव्य करते थे और बडे वीर्यवान्, बडे तेजवान् हुए थे सो भी मरण मात्र हो गये हैं तब हम सारीखेकी कहा वार्त्ता है ? सब नाश होते हैं तब हमको भी घडी पलमें चले जाना है रहना किसीको नहीं.

हे मुनीश्वर ! यह पदार्थ चंचलरूप हैं, सो एकरस कदाचितहू नहीं रहते, एक क्षणमें कछु होजाते हैं, दूसरे क्षणमें कछु हो जाते हैं, एक क्षणमें दरिद्री हो जाते हैं, दूसरे क्षणमें संपदावान् हो जाते हैं, एक क्षणमें जीवते दृष्ट आते हैं दूसरे क्षणमें मरजाते हैं, एक क्षण में मुवे भी जी उठते हैं. इस संसारकी स्थिरता कबहूँ नहीं होती. ज्ञानवान् इसकी आस्था नहीं करते. एक क्षणमें समुद्रके प्रवाहके ठिकाने मरुस्थल हो जाते हैं अरु मरुस्थलमें जलके प्रवाह हो जाते हैं हे मुनीश्वर ! इस जगत्का आभास स्थिर नहीं रहता, जैसे बालकका चित्त स्थिर नहीं रहता, तैसे जगत्का पदार्थ एक भी स्थिर नहीं रहता, जैसे नट स्वांगको धरता है. सो कबहूँ कैसा, कबहूँ कैसा सो एक स्वांगमें नहीं रहता, तैसे जगत्के पदार्थ अरु लक्ष्मी एकरस नहीं रहते, कबहूँ पुरुष स्त्री हो जाता है, कबहूँ स्त्री पुरुष हो जाती है अरु मनुष्य पशु हो जाता है, पशु मनुष्य हो जाता है और स्थावरका जंगम अरु जंगमका स्थावर हो जाता है. मनुष्य देवता हो जाता है और देवता मनुष्य हो जाता है. इस प्रकार घटी यन्त्रकी नाईं जगत्की लक्ष्मी स्थिर नहीं रहती, कबहूँ ऊर्ध्वको जाती है कबहूँ अधोको जाती है स्थिर कबहूँ नहीं रहती, सदा भटकत रहती है.

हे मुनीश्वर! जेते कछु पदार्थ दृष्टिमें आते हैं सो सब नष्ट हो जानेके हैं. कैसेहू स्थिर रहनेको नहीं ए सब नदियां हैं सो सब वडवाग्निमें लय हो जायँगी. तैसे जेते कछु पदार्थ हैं सो सब अभावरूप वडवाग्निको प्राप्त होवेंगे अरु बडे बलिष्ठहूँ मेरे देखते लीन हो गये हैं अरु जो बडे सुंदर स्थान सो शून्य हो गये हैं अरु जो सुंदर ताल अरु बगीचे मनुष्य करि पूर्ण ऐसे स्थान सो शून्य हो गये हैं अरु जो मरुस्थलकी भूमिका सो सुंदरताको प्राप्त भई है अरु घठ पट होगये हैं वरके सांप हो जाते हैं, सांपके वर हो जाते हैं. इस प्रकार हे विप्र! जो जगत् दृष्टिमें आता है सो कबहूं सम्पदा, कबहूं आपदा दृष्टिमें आवत है अरु महा चपल दृष्टि आवते हैं. हे मुनीश्वर! ऐसे सब अस्थिर रूप पदार्थ हैं तिसका विचार विना मैं कैसे आश्रय करों अरु किसकी इच्छा करों? सब नाशरूप हैं और–

जो यह सूर्य प्रकाशकर दृष्टिमें आताहै सो भी अंधकाररूप होजायगा अरु अमृतकर पूर्ण जो चंद्रमा दृष्टिमें आता है सो भी शून्य हो जायगा. अरु सुमेरु आदिक जो पर्वत दृष्टि आते हैं सो सब नाश होयँगे और सब लोग नाश होजायँगे. ताते हे मुनीश्वर! और किसीकी क्या कहनी है. ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, जो जगत्के ईश्वर हैं सो भी शून्य हो जायँगे, तो हम सारिखेकी कहा वार्त्ता कहनी है. जेता कछु जगत् दृष्टि आता है सो स्त्री, पुत्र, बांधव, ऐश्वर्य, वीर्य, तेज करिके नाना प्रकारके जीव जो भासते हैं सो सब नाशरूप हैं बहुरि मैं किस पदार्थका आश्रय करों और किसकी इच्छा करों.

हे मुनीश्वर! जो पुरुष दीर्घदर्शी हैं तिनको तो सब पदार्थ विरस हो गये हैं किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करते, काहेते कि, सब पदार्थ नाशरूप भासते हैं और अपनी आयुष्यको बिजुरीके चमत्कारवत् देखते हैं, जैसे विजुरीका चमत्कार होता है तैसे शरीरकी आयुष्य है. जिसको अपनी आयुष्यकी अप्रतीति होती है सो किसीकी इच्छा करते नहीं. जैसे किसीको बलिदान अर्थ पालते हैं तब वह खाने, पीने, भुगतनेकी इच्छा नहीं करता तैसे जिसको अपना मरना सन्मुख भासता है तिसको भी

किसी पदार्थकी इच्छा नहीं रहती. यह सब पदार्थ आपही नाशरूप हैं तो हम किसका आश्रय कर सुखी होवें ? जैसे कोई पुरुष समुद्रमें मच्छके आश्रय करके कहे कि, मैं इसपर बैठके समुद्रके पार जाऊंगा अरु सुखी होऊंगा सो मूर्खता करके डूबही मरेगा. तैसे जिस पुरुषने इस पदार्थका आश्रय लिया है अरु अपने सुखके निमित्त जानता है सो नाशको प्राप्त होवेगा.

हे मुनीश्वर ! जो पुरुष जगत्को विचारता रहताहै तिसको यह जगत् रमणीय भासता है अरु रमणीय जानके नानाप्रकारके कर्म करता है अरु जो नानाप्रकारके संकल्प करके जगत्में भटकते हैं कबहूं ऊपर, कबहूं नीचे आते हैं अरु स्थिर नहीं रहते तैसे यह जीव भटकते फिरते हैं स्थिर कबहूँ नहीं रहते अरु जिस पदार्थकी इच्छा करते हैं सो सब कालका ग्रासरूप होगये हैं. जैसे वनमें अग्नि लगती है तब सब इंधनादिकको जारती है तैसे जेते कछु पदार्थ हैं सो सब इंधनरूपी जगत् वन है; तिसको कालरूपी अग्नि लगी है तिसने सबको ग्रास लिया है बहुरि जो इस पदार्थकी इच्छा करते हैं सो महामूर्ख हैं.

जिनको आत्मविचारकी प्राप्ति है तिनको यह जगत् भ्रमरूप भासता है अरु जिनको आत्मविचारकी प्राप्ति नहीं है तिनको यह जगत् रमणीय भासता है अरु जगत्को देखते नाश होजाते हैं. स्वप्नपुरीकी नाईं संसारकी मैं कैसे इच्छा करों ? यह तो दुःखके निमित्त है. जैसे मिठाईमें विष मिलाया है तिसके भोजन करनेवाले मृत्युको प्राप्त होते हैं तैसे विषय भुगतनेवाले नाशको प्राप्त होते हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे जगद्विपर्ययवर्णनं नाम अष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशत्तमः सर्गः २९.

अथ सर्वांतप्रतिपादनवर्णनम् ।

राम उवाच-हे मुनीश्वर ! इस संसारमें भोगरूपी अग्नि लगी है तिसकर सब जलते हैं. जैसे तालमें हाथीके पाँवसों कचर कमलका चूर्ण हो जाता है

तैसे भोगसों मनुष्य दीन हो जाते हैं, तैसे काम, क्रोध, दुराचारसों शुभ गुण नष्ट हो जाते हैं जैसे कंटारीके पत्तेमें अरु फलमें कांटे हो जाते हैं, तैसे विषयकी वासनारूपी कंटक आय लगते हैं.

हे मुनीश्वर ! यह जगत् सब नाशरूप है किसी पदार्थका स्थिर रहना नहीं है. वासनारूपी जाल अरु इंद्रियरूपी गांठी है तिसमें पुरुष कालसों आय फँसा है सो बडे दुःखको प्राप्त होवेगा. हे मुनीश्वर ! वासनारूपी सूतमें जीवरूपी मोती परोये हुए हैं अरु मनरूपी नट आय परोयकर चैतन्यरूपी आत्माके गरेमें डारता है, जब वासनारूपी तागा टूट परा तब यह भ्रम भी निवृत्त होगया. हे मुनीश्वर ! इसको भोगकी इच्छा है सो बंधनका कारण है भोगकी इच्छा कर भटकता है, शांतिको प्राप्त नहीं होता है, ताते मुझको किसी भोगकी इच्छा नहीं, न राज्यकी इच्छा है, न घरकी, न वनकी इच्छा है, न मरनेका दुःख मानता हों, न जीनेका सुख मानता हों. किसी पदार्थका सुख नहीं, सुख जो होना सो आत्मज्ञानकर होना है. अन्यथा किसी पदार्थकर होता नहीं.जैसे सूर्यके उदय हुए विना अंधकारका नाश नहीं होता, तैसे आत्मज्ञान विना संसारके दुःखका नाश नहीं होता ताते सोई उपाय मुझको कहो जिसकर मोहका नाश होवे और मैं सुखी होऊं.

हे मुनीश्वर ! भोगको भुगतनहारा जो अहंकार है सो मैंने त्याग दिया है फिर भोगकी इच्छा कैसी होवे. हे मुनीश्वर ! इस विषयरूप सर्पने जिसका स्पर्श किया है, तिसका नाश होजाता है अरु सर्प जिसको काटता है सो एकबेर इसको मार डारता है अरु विषयरूपी सर्प जिनको काटते हैं सो अनेक जन्म पर्यंत मारतेई चले जाते हैं, ताते परम दुःखका कारण विषयभोग है, याते विषयरूपी परमविष है. अरु वज्र करके शरीरका चूर्ण होना सो भी मैं सहूँगा, परन्तु विषयका भुगतना मेरेसों कैसेहू सहा नहीं जाता. यह मुझको दुःखदायक दृष्टिमें आता है, ताते सोई उपाय मुझको कहो, जिसकर मेरे हृदयते अज्ञानरूपी अन्धकारका नाश होवे अरु जो न कहोगे तो मैं अपनी छातीपर धीरजरूपी शिला धरके बैठा रहोंगा परन्तु भोगकी इच्छा न करोंगा.

हे मुनीश्वर! जेते कछु पदार्थ हैं सो सब नाशरूप हैं; जैसे बिजुरीका चमत्कार होय छिप जाता है अरु अंजलीमें जल नहीं ठहरता, तैसे विषयभोग अरु आयुष्य नाश हो जाते हैं ठहरते नहीं. जैसे कंठीकर मच्छी दुःख पावती है तैसे भोगकी तृष्णा कर जीव दुःख पावते हैं; ताते मुझको किसी पदार्थकी इच्छा नहीं, जैसे किसीने मरीचिकाके जलको सत्य जान जलपानकी इच्छा करी और दौऱ्या सो जल पावत नहीं. ताते मैं किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करता.

इतिश्रीयोगवाशिष्ठ वैराग्यप्रकरणे सर्वांतप्रतिपादनं नाम एकोनत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशत्तमः सर्गः ३०.

अथ वैराग्यप्रयोजनवर्णनम् ।

श्रीराम उवाच–हे मुनीश्वर! संसाररूपी गढेलेमें अरु मोहरूपी कीचमें मूर्खका मन गिर जाता है तिसकर परा दुःख पाता है शांतवान कबहूं नहीं होता. जब जरा अवस्था आती है तब सर्व शरीर जर्जरीभूत होकर कांपने लगते हैं, जैसे पुरातन वृक्षके पत्र पवन कर हिलते हैं, तैसे जरा अवस्था कर अंग हिलते हैं अरु तृष्णाकी वृद्धि हो जाती है, जैसे नीमका वृक्ष ज्यों २ वृद्ध होता है त्यों २ कटुता बढती है तैसे तृष्णा बढती है.

हे मुनीश्वर! जिस पुरुषने देह, इंद्रियादिकनका आश्रय अपने सुख निमित्त लिया है सो मूर्ख संसाररूपी अन्धकूपमें गिरता है निकस नहीं सकता अरु अज्ञानीका चित्त भोगका त्याग कदाचित् नहीं करता है.

हे मुनीश्वर! जगत्के पदार्थमें मेरी बुद्धि मलीन होगई है. जैसे वर्षाकालमें नदी मलीन होती है अथवा जैसे मार्गशीर्ष मासमें मंजरी सूखि जाती हैं, तैसे जगतकी शोभा देखत देखत विरस होजाती है. जैसे जगतका पदार्थ मूर्खको रमणीय भासताहै, जैसे पानीका गढेला तृणकरि आच्छादित होता है अरु मृगके बालक तिस तृणको रमणीय जानकर खाने जाते हैं फिर गिर जाते हैं; तैसे यह मूर्ख भोगको रमणीय जानि भुगतके

गिर परे हैं फिर महादुःख पाते हैं. जसे मृग मृगतृष्णाकर उडता है सो सुखी नहीं होता, तैसे यह मृगतृष्णारूप संसारके पदार्थनके ऊपर मनरूपी मृग उडनहारा कैसे सुखी होवे.

हे मुनीश्वर ! जगत्के पदार्थनसों मेरी बुद्धि चंचल हो गई है; ताते सोई उपाय कहो जिसकर पर्वतकी नाईं मेरी बुद्धि निश्चल होवे. सो पद कैसा है ? कि परमानन्दके यत्नमें रहते हैं अरु निर्भय, निराकार पद जिसके पायेते संसार कछु भी नहीं रहता है, बहुरि पावना कछु नहीं रहता है तैसे संपूर्ण जगत्की नानाप्रकारकी रचना सब दब जाती हैं. तिस पद पानेका उपाय मुझको कहो. हे मुनीश्वर ! ऐसे पदते मेरी बुद्धि शून्य है, ताते मैं शांतिमान नहीं होता. यह संसार अरु संसारके कर्म मोहरूप हैं इसमें पडे हुऐ शांतिको प्राप्त नहीं होते. अरु–

जनकादिक संसारमें रहे हुए कमलकी नाईं निर्लेप रहते हैं, तैसे शांतिमान संसारमें निर्लेप रहते हैं. सो जैसे कोऊ कीचसों पूर्ण होय अरु कहे कि मुझको कीचका परश नहीं हुआ, तैसे राजाको विक्षेपरूपी कीचमें परे हुए शांतिमान कैसे निर्लेप रहे हैं, तिसकी समुझ कहा है सो कृपा कर कहो. अरु तुम जैसे जो सन्तजन हैं सो विषयको भुगतते दृष्टि आवते हैं अरु जगत्की चेष्टा सब करते हैं, सो निर्लेप कैसे रहते हैं, सो युक्ति कहो, जैसे तुम जल कमलवत् रहते हो सो कहो. यह बुद्धि तो मोह करि मोही जाती है जैसे तालमें हस्ती प्रवेश करता है और पानी मलीन हो जाता है. तैसे मोह करि बुद्धि मलिन होय जाती है, ताते सोई उपाय कहो जिसकर बुद्धि निर्मल होवे. यह सन्तोषमें बुद्धि स्थिर कबहूँ नहीं रहती. जैसे मूलसों कुहारे कर काटा वृक्ष स्थिर नहीं होता, तैसे वासनासों कटी बुद्धि स्थिर नहीं रहती. हे मुनीश्वर ! संसाररूपी विषूचिका मुझको लगी है, ताते सोई उपाय कहो जिसकर दृश्यका नाश होवे, इसने मुझको बडा दुःख दिया है. अरु आत्मज्ञान कब प्रकाश होय जिसके उदय हुए मोहरूपी अन्धकारका नाश होवे. हे मुनीश्वर ! जैसे बादरसों चन्द्रमा आच्छादित हो जाता है, तैसे बुद्धिकी मलीनता कर मैं आच्छादित हुआ हूं, ताते सोई उपाय कहो जिसकर आवरण दूर होवे अरु जो

आत्मानन्द सो नित्य है जिसके पायेते बहुरि पावना कछु नहीं रहता, इसते संपूर्ण दुःख नष्ट हो जाते हैं अरु अंतर शीतल हो जाता है, ऐसा जो पद है तिसकी प्राप्तिका उपाय मुझसे कहो. हे मुनीश्वर ! आत्मज्ञान-रूपी चन्द्रमाकी मुझको इच्छा है, जिसके प्रकाशकर बुद्धिरूपी कमलन खिल आती है अरु जिसकी अमृतरूपी किरनकर तृप्त वृत्ति होती है सो कहो. हे मुनीश्वर ! अब मुझको गृहमें रहनेकी इच्छा नहीं अरु वन-विषे जानेकी भी इच्छा नहीं मुझको तो इसी पदकी इच्छा है जिसके पायेते भीतर शांति हो जाय.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे वैराग्यप्रयोजनवर्णनं नाम त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशत्तमः सर्गः ३१.

अथ अनन्यत्यागवर्णनम् ।

श्रीराम उवाच–हे मुनीश्वर ! जो जीवनेकी आस्था करते हैं सो मूर्ख हैं जैसे पत्रपर जलकी बूंद ठहरती नहीं, तैसे आयुष्यहू क्षणभंगुर है. जैसे वर्षाकालमें दर्दुर बोलते हैं तब उनका कंठ चंचल सदा फरकता रहता है, तैसे आयुर्दा छिन छिनमें चंचल हो जाती है; जैसे शिवजीके कपालमें चंद्रमाकी रेखा कछुसी है तैसा यह शरीर है. हे मुनीश्वर ! जिसको इसमें आस्था है सो महामूर्ख है; यह तो कालका ग्रास है. जैसे बिल्ली चूहे-को पकर लेती है तैसे सबको काल पकर लेता है. जैसे बिल्ली चूहे-को संभाल करने नहीं देती तैसे सबको काल अचानक ग्रहण कर लेता है अरु किसीको भासता नहीं.

हे मुनीश्वर ! जब अज्ञानरूपी मेघ आय गर्जता है तब लोभरूपी मोर प्रसन्नहोयके नृत्य करता है. जब अज्ञानरूपी मेघ वर्षा करता है, तब दुःखरूपी मंजरी बढने लगती है, अरु लोभरूपी बिजुरी छिन-छिनमें होय होय नष्ट हो जाती है, अरु तृष्णारूपी जालमें फँसे हुए जीवरूपी पक्षी परे दुःख पाते हैं; शांतिकी प्राप्ति नहीं होती.

हे मुनीश्वर ! यह जगत्‌रूपी बडा रोग लगा है तिसके निवारण करने का कौनसा पदार्थ है जो पाने योग्य है, जिसकर भ्रमरूपी रोग निवृत्त होवे सोई उपाय कहो. यह जगत् मूर्खको रमणीय दीखता है ऐसे पदार्थ पृथ्वी-पर अरु आकाशमें अरु देवलोकमें अरु पातालमें कोऊ नहीं जो ज्ञानवान्‌को रमणीय दीखें. ज्ञानवान्‌को सब भ्रमरूप भासते हैं अरु अज्ञानी जगत्‌में आस्था करता है. हे मुनीश्वर ! चन्द्रमामें जो कलंक है तिसकर शोभा सुंदर नहीं लगती जब कलंक दूर होय जाय तब सुंदर लगे, तैसे मेरे चित्तरूपी चंद्रमामें कामरूपी कलंक लगा है तिसकर उज्ज्वल नहीं भासता ताते सोई उपाय कहो जिसकर कलंक दूर होजाय.

हे मुनीश्वर ! यह चित्त बहुत चंचल है स्थिर कदाचित् नहीं होता. जैसे अग्निमें डारदिया पारा उडजाता है तैसे चित्तभी स्थिर नहीं होता विषयकी तरफ सदा धावता है, ताते सोई उपाय कहो जिसकर चित्त स्थिर होवे और संसाररूपी वनमें भोगरूपी सर्प रहते हैं सो जीवका दंश करते हैं तिनसों बचनेका उपाय कहो अरु जेती कछु क्रिया है सो राग द्वेषके साथ मिली हुई है, ताते सोई उपाय कहो जिसकर राग द्वेषका प्रवेश न होय, तैसे यह संसारमें परे हैं तिसका तृष्णारूपी जलका परश न होय ऐसा उपाय कहौ जिसकर इसको राग द्वेषका परश न होय अरु मनमें जो मनरूपी सत्ता है सो युक्तिसों दूर होती है अन्यथा दूर नहीं होती. सो निवृत्तिके अर्थ आप मेरेको युक्ति कहो और आगे जिसको जिस प्रकार निवृत्ति हुई है सो कहो अरु जिसप्रकार तुम्हारे अन्दरमें शीतलता हुई है सो कहो. हे मुनीश्वर ! जैसे तुम जानते हो सो कहो अरु जो तुम्हारे विद्यमान वह युक्ति नहीं पाई तब मैं तो कछु नहीं जानता तो मैं सब त्यागकर निर अहंकार होय रहोंगा, जबलग वह युक्ति मुझको न प्राप्त होवेगी तबलग मैं भोजन नहीं करूँगा अरु जलपान भी नहीं करूँगा अरु स्नानादिक क्रिया भी नहीं करूँगा संपदाका कार्य भी नहीं करूँगा और आपदाका कार्यभी नहीं करूँगा निर-अहंकार होऊँगा. और ये न मेरी देह है और न मैं देहहों, सब त्याग करके बैठि रहोंगा. जैसे कागजके ऊपर मूर्ति चित्रित होती है तैसे होय

रहोंगा. श्वास आते जाते आपही क्षीण होय जायँगे,जैसे तेल विना दीपक बुझता है,तैसे अर्थ विन देह होय जायगा तब महाशांतिको प्राप्त होऊँगा.

वाल्मीकिरुवाच–हे भरद्वाज ! ऐसे कहि करि रामजी चुप होय रहे, जैसे बडे मेघको देखके मोर शब्द करके चुप हो जाता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे अनन्यत्यागदर्शनं नाम एकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ३२.

अथ देवसमाजवर्णनम्।

वाल्मीकिरुवाच–हे पुत्र ! जब इस प्रकार रघुवंशरूपी आकाशके रामचन्द्ररूपी चन्द्रमा बोले तब सब ही मौन होगये अरु सबके रोम खडे हो आये मानो रोमहू खडे होकर रामजीके वचन सुनते हैं अरु जेते कछु सभामें बैठे थे सो सब निर्वासनारूपी अमृतके समुद्रमें मग्न हो गये. वशिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र आदि जो मुनीश्वर थे और जेते दृष्टि आदिक जो मंत्री थे और राजा दशरथ अरु जेते मंडलेश्वर थे और जेते नौकर चाकर थे और माता कौशल्या आदिक सब मौन हो गये. अर्थ यह तो अचल होगये अरु पिंजरेमें पक्षी जो थे सो भी मौन होगये अरु बगीचेमें पशु आदि थे सो भी मौन होगये अरु चारा तृण खाता रहिगये अरु जो पक्षी आलयमें बैठे थे. सो भी सुनकर मौन होगये. अरु आकाशके पक्षी जो निकट थे सोभी स्थिर होगये अरु आकाशमें देव, सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर, किन्नर थे सो भी आय सुनने लगे. अरु फूलोंकी वर्षा करने लगे. सब धन्य धन्य शब्द करने लगे. और फूलोंकी वर्षा भई, सो मानो बर्फकी वर्षा होती है. अरु क्षीरसमुद्रके तरंग उछलते आवते होयँ अरु मोतीकी मालकी वृष्टि आवत होय और जैसे माखनके पिंड़ उड़ते होयँ इसप्रकार आधी घडी पर्यंत फूलनकी वर्षा भई अरु बडी सुगंध आय पसरी. अरु फूलोंपर भौंरे फिरनेलगे और बड़ा विलास तिस कालमें हो रहा अरु 'नमोनमः' शब्द करने लगे.

देव उवाच-हे कमलनयन! रघुवंशी आकाशमें चंद्रमारूप आप रामजी तुम धन्य हो ! तुमने बडे श्रेष्ठ स्थान देखे हैं अरु बहुत प्रकारके वचन सुने हैं याते जैसे आप वचन कहे हैं ऐसे वचन कबहूँ नहीं सुने, यह वचन सुनके हमारा जो देवताका अभिमान था सो सब निवृत्त भया है. अमृतरूपी वचन सुनकर हमारी बुद्धि पूर्ण होगई है. हे रामजी ! जैसे वचन तुमने कहे हैं ऐसे वचन बृहस्पतिहू कहनेको समर्थ नहीं, तुम्हारे वचन परमानंदके करनेहारे हैं, तातें तुम धन्य हो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे देवसमाजवर्णनं नाम द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः ३३.

अथ मुनिसमाजवर्णनम् ।

वाल्मीकिरुवाच-हे भरद्वाज ! ऐसे वचन देवता कहके विचार करत भये, रघुवंशका कुल पूजबे योग्य है तिसमें रामजी बडे उदार वचन मुनीश्वरके विद्यमान कहे हैं, अब जो मुनीश्वरका उत्तर होयगा सो भी श्रवण किया चाहिये, जैसे फूलके ऊपर भौंरा स्थित होते हैं तैसे व्यास, नारद, पुलह, पुलस्त्य आदि सब साधु सभामें आय स्थित भये; तब वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि मुनीश्वर उठके खडे हुए अरु तिनकी पूजा करने लगे प्रथम पूजा राजा दशरथने करी, फिर नानाप्रकारसों सबने उनकी पूजा करी और यथायोग्य आसनके ऊपर बैठे, सो कैसे हैं? जो नारद बहुत सुंदर मूर्तिवारे हाथमें वीणा लेयके बैठे अरु श्याममूर्ति व्यास आय बैठे और नानाप्रकारके रंगोंसों रंजित वस्त्र पहिरे हुये, मानो तारामें महाश्याम घटा आई है ऐसे अरु दुर्वासा, वामदेव, पुलह, पुलस्त्य अरु बृहस्पतिके पिता अंगिरा अरु भृगु और मैं भी तहां था और ब्रह्मर्षि, राजर्षि, देवर्षि, देवता, मुनीश्वर सब आयके सभामें स्थित हुए. किसीके बडी जटा हैं कोई मुकुट पहिरे हैं किसीने रुद्राक्षकी माला पहरी है किसीने मोतीकी माला पहरी है किसीके कंठमें रत्नकी माला हैं और हाथमें कमंडलु, मृगछाला

किसीके महा सुंदर वस्त्र; ऐसे बडे तपस्वी आयके बैठे, तामें कोई राजसी स्वभावके, कोई सात्त्विक स्वभावके, ऐसे बडे बडे आये अरु सब विद्वत् वेद पढनहारे प्राप्त हुए. और किसीका सूर्यवत्, किसीका चंद्रवत्, किसीका तारावत् ऐसे बडे प्रकाशवाले पुरुषार्थपर यत्न करनेहारे सो यथायोग्य आसन पर स्थिर भये और मोहिनी मूर्त्ति रामजी अरु दीन स्वभाववारे हाथ जोरके सभामें बैठे, तिनकी सब पूजा करत भये. कहते हैं कि, हे रामजी ! तुम धन्य हो ! और–

नारद सबके विद्यमान कहत भये कि. हे रामजी ! तुमने बडे विवेक अरु वैराग्यके वचन कहे सो सबको प्यारे लगे; सबके कल्याण करनेहारे हैं और परम बोधके कारण हैं. हे रामजी ! तुम बडे बुद्धिमान् उदारात्मा दृष्टि आवते हो अरु महावाक्यका अर्थ तुमते प्रगट होता है ऐसा उज्ज्वल पात्र साधुमें और अनन्त तपस्वियोंमें कोई एक होते हैं अरु जेते कछु मनुष्य हैं सो सब पशु जसे दृष्टिमें आवते हैं, क्योंकि जिसको संसार समुद्रके पार होनेकी इच्छा है और जो पुरुषार्थपर यत्न करते हैं सोई मनुष्य हैं, हे साधो ! वृक्ष तो बहुत होते हैं परंतु चंदनका वृक्ष कोई होता है. तैसे शरीरधारी बहुत हैं परंतु ऐसा कोई होता है और सब अस्थि, मांसके पुतरे साथ मिले हुये भटकते फिरते हैं सो जैसी यंत्रीकी पुतरी होती है तैसे अज्ञानी जीव हैं और हस्ती तो बहुत हैं परंतु जिसके मस्तकमेंसे मोती निकसता है सो विरला है. तैसे मनुष्य तो बहुत हैं परंतु पुरुषार्थपर यत्न करनेहारे कोई होते हैं, ऐसे पात्रको थोरा अर्थ कहा भी बहुत हो जाता है, जैसे तेलकी बूंद थोरी जलमें डारी विस्तारको पाती है तैसे थोरे वचनसों आपके हियेमें बहुत होते हैं, आपकी बुद्धि बहुत विशेष है अरु दीपक जैसी प्रकाशवारी है अरु बोधका परमपात्र है और कहनेमात्रते आपको शीघ्र ज्ञान होवेगा अरु हमारे विद्यमान आपको ज्ञान होवेगा ऐसा निश्चय करि जानना.

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणे मुनिसमाजवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३३ ॥

इति योगवासिष्ठे वैराग्यप्रकरणं समाप्तम्.

परमात्मने नमः ।

अथ श्रीयोगवासिष्ठे

मुमुक्षुप्रकरणप्रारंभः ॥ २ ॥

प्रथमः सर्गः १.

अथ शुकनिर्वाणवर्णनम् ।

वाल्मीकिरुवाच—हे साधो! यह जो वचन हैं सो परमानंदरूप हैं अरु कल्याणके कर्त्ता हैं. इसमें श्रवणकी प्रीति तब उपजती है जब अनेक जन्मके बडे पुण्य आय इकट्ठे होते हैं, जैसे कलपवृक्षके फलको बडे पुण्यसों पाते हैं तैसे जिसके बडे पुण्य कर्म इकट्ठे आय होते हैं तिसकी प्रीति इन वचनोंके श्रवणमें होती है अन्यथा प्राप्ति नहीं होती ये वचन परम बोधके कारण हैं. हे भरद्वाज ! इस प्रकार जब नारदजीने कहा तब विश्वामित्रजी बोले.

विश्वामित्र उवाच—हे ज्ञानवानोंमें श्रेष्ठ रामजी ! जेता कछु जानने योग्य था सो तुमने जाना है इसते जानना और नहीं रहा अरु तिसमें विश्राम पावने निमित्त कछुक मार्जन करना है, जैसे अशुद्ध आदर्शकी मलिनता दूर करी होय तब मुख स्पष्ट भासता है तैसे कछु उपदेशकी तुझको अपेक्षा है. हे रामजी ! तेरे जैसा भगवान् व्यासजीका पुत्र शुकदेवजी भया है सो भी बड़ा बुद्धिमान् था; तिसने जो जानने योग्य था सो जाना है. अरु विश्रामके निमित्त तिसको भी अपेक्षा थी सो विश्रामको पाय शांतिमान् भये हैं.

राम उवाच–हे भगवन्! शुकजी कैसे बुद्धिमान् अरु ज्ञानवान् थे अरु कैसी विश्रामकी अपेक्षा थी, फिर कैसे विश्रामको पावत भये? सो कृपा करिके कहो.

विश्वामित्र उवाच–हे रामजी! अंजनके पर्वतकी नाईं जिनका आकार है ऐसे जो भगवान् व्यासजी ये स्वर्णके सिंहासनपर राजा दशरथके पास बैठे हैं अरु सूर्यकी नाईं प्रकाशमान् जिसकी कांति है. तिसके पुत्र शुकजी सो सब शास्त्रके वेत्ता थे, सत्यको सत्य जानते थे असत्यको असत्य जानते थे सो शांतिरूप और परमानंरूप, आत्मामें विश्राम न पावते भये तब उसको विकल्प उठा कि, जिसको मैं जाना हूँ सो न होवेगा. काहेते कि, मुझको आनन्द नहीं भासता है सो संशयको धरके एक कालमें व्यासजी सुमेरु पर्वतकी कंदरामें बैठे थे. तिनके निकट आयकर कहत भये हे भगवन्! यह संसार सब भ्रमात्मक कहांसे भया है वाकी निवृत्ति कैसे होयगी और आगे कोईको इसकी निवृत्ति भई है? सो कहो.

हे रामजी! इस प्रकार जब शुकजीने कहा तब विद्वत् वेद शिरोमणि जो वेदव्यासजी हैं सो तत्काल उपदेश करते भये. तब शुकजीने कहा, हे भगवन्! जो कछु तुम कहो हो सो तो मैं आगेसों जानता हों इसकर मुझको शांति प्राप्त नहीं होती.

हे रामजी! जब इस प्रकार शुकजीने कहा तब सर्वज्ञ जो वेदव्यासजी हैं सो विचार करतभये कि, मेरे वचनकर इसको शांति प्राप्त न होवेगी क्योंकि अब पिता पुत्रका सम्बन्ध भासता है ऐसे विचारकरके व्यासजी कहते भये-हे पुत्र! मैं सर्व तत्त्वज्ञ नहीं, तू राजा जनकके निकट जावे वे सर्व तत्त्वज्ञ हैं अरु शान्तात्मा हैं उनसों तेरा मोह निवृत्त होवेगा.

हे रामजी! जब इस प्रकार व्यासजीने कहा तब शुकदेवजी वहांसों चले तब जो मिथिला नगरी राजा जनककी थी, तिसमें आयकर राजा जनकके द्वारपै स्थित भये. तब ज्येष्ठीने जायकर राजा जनकको कहा कि व्यासजीके पुत्र शुकजी आय खडेहैं, तब राजाने जाना कि, इसको जिज्ञासा है तब कहा खडा रहो तब खडेई रहे. इसी प्रकार ज्येष्ठी जाय कहा तब

सात दिन खडे रहत बीत गये, तब राजाने फिर पूछा शुकजी खडे हैं कि, चलते रहे हैं ? तब ज्येष्ठीने कहा खडे हैं. तब राजाने कहा आगे ले आओ तब आगे ले आये ,उस दरवज्जेपै भी सात दिन खडे रहे. बहुरि राजाने पूँछा कि, शुकजी हैं ? तब ज्येष्ठीने कहा कि, खडे हैं तब राजाने कहा अंतःपुरमें ले आओ. उसको नानाप्रकारके भोग भुगताओ. तब अंतःपुरमें लेगये, वहाँ स्त्रियनके पास सात दिन खडेरहे, तब राजाने ज्येष्ठीसे पूछा कि, तिसकी दशा कैसी है और आगे कहा दशा थी ? तब ज्येष्ठीने कहा जो आगे निरादर करके न शोकवान हुवा था अरु अब भोगकर न प्रसन्न हुआ है, इष्ट अनिष्टमें समान है. जैसे मंद पवनकरके मेरु चलायमान नहीं होवे, तैसे यह बडे भोगका निरादरकर चलायमान नहीं भये. जैसे पपैयेको मेघके जल विना नदी; ताल, आदिके जलकी इच्छा नहीं होती तैसे उसको किसी पदार्थकी इच्छा नहीं. तब राजाने कहा इहाँ ले आओ तब सो ले आये.

जब शुकजी आये, तब राजा जनकने उठके खडे हो प्रणाम किया फिर दोऊ बैठ गये, तब राजाने कहा कि, हे मुनीश्वर ! तुम किस निमित्त आये हो तुमको कहा वांछा है ? सो कहो, किसकी प्राप्ति मैं करदेऊं.

श्रीशुक उवाच-हे गुरु ! यह ससारका आडंबर कैसे उत्पन्न हुआ है फिर कैसे शांत होवेगा सो तुम कहो.

विश्वामित्र उवाच-हे रामजी ! जब इस प्रकार शुकदेवजीने कहा तब राजा जनकने यथाशास्त्र उपदेश जो कछु व्यासजीने कहा था, सोई कहा. बहुरि शुकजीने कहा-हे भगवन्, जो कछु तुम कहो हो, सोई मेरा पिताजी कहता था. अरु सोई शास्त्र कहता है और विचारसों मैं भी ऐसा जानता हों कि, यह संसार अपने चित्तमें उत्पन्न होता है अरु चित्तका निर्वेद हुए भ्रमकी निवृत्ति होती है, फिर विश्राम मुझको नहीं प्राप्त होता है.

जनक उवाच-हे मुनीश्वर ! जो कछु मैंने कहा है अरु जो तुम जानते हो इससे और उपाय कछु है ऐसा जानना नहीं अरु कहनाभी नहीं. यह संसार चित्तके संवेदनकर हुआ है जब चित्त फुरनेते रहित होता है तब भ्रमनिवृत्त होजाता है अरु आत्मतत्त्व नित्य शुद्ध है अरु परमानंद

स्वरूप है केवल चैतन्य है तिसका अभ्यास करैगा तब तू विश्रामको पावेगा अरु तू मुक्ति स्वरूप है. काहेते कि, तेरा यत्न आत्माकी ओर है, दृश्यकी ओर नहीं, ताते तू बडा उदारात्मा है. हे मुनीश्वर ! तू मोको व्यासते अधिक जान मेरे पास आया है और तू मेरेते भी अधिक है काहेते कि, हमारी चेष्टा बाहिरते दृष्ट आवती है और तुम्हारी चेष्टा बाहरते कछु भी नहीं अरु अन्तरते हमारी कछु भी नहीं.

विश्वामित्र उवाच–हे रामजी ! जब इस प्रकार राजा जनकने कहा तब शुकजी निःसंग, निःप्रयत्न, निर्भय होकर चले. सुमेरु पर्वतकी कन्दरामें जाय निर्विकल्प समाधि दश सहस्र वर्ष ताईं करी. बहुरि निर्वाण होगये. जैसे तेल विना दीपक निर्वाण होजाता है, तैसे निर्वाण होगये. जैसे समुद्रमें बूंद लीन होजाता है, जैसे सूर्यका प्रकाश संध्याकालमें सूर्यके पास लीन हो जाता है, तैसे कलनारूप कलंकको त्याग कर ब्रह्मपदको प्राप्त भये.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे शुकनिर्वाण-
वर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २.

अथ विश्वामित्रोपदेशवर्णनम् ।

विश्वामित्र उवाच– हे राजा दशरथ ! जैसे शुकजी शुद्ध बुद्धिवारे थे तैसे रामजी भी हैं. जैसे शांतिके निमित्त उसका कछुक मार्जन कर्त्तव्य था तैसे रामजीको विश्रामके निमित्त कछुक मार्जन चाहिये काहेते कि, आवरण करनहारे भोग हैं सो इच्छा तिनते निवृत्ति भई है अरु जो कछु जानबे योग्य था सो जाना है अब हमको कछुक युक्ति करनी है तिस करके उसको विश्राम होवेगा. जैसे शुकजीको थोडेसे मार्जन करके शांतिकी प्राप्ति भई थी, तैसे इनको भी होवेगी.

हे राजन् ! अब रामजीको भोगकी इच्छा स्पर्श नहीं करती, जैसे ज्ञानवान्को अध्यात्मक आदि दुःख स्पर्श नहीं करते तैसे रामजीको भोगकी इच्छा स्पर्श नहीं करती, भोगकी इच्छा सबको दीन करती है इसकाही

नाम बंधन है; अब भोगकी वासनाका क्षय करना इसका ही नाम मोक्ष है. ज्यों ज्यों भोगकी इच्छा करता है त्यों त्यों लघु हो जाता है अरु ज्यों ज्यों भोगकी वासना क्षय होती है त्यों त्यों गरिष्ठ होता है. जबलग इसको आत्मानंद प्रकाश नहीं होता तबलग विषयकी वासना दूर नहीं होती; जब आत्मानंद प्राप्त होता है तब विषयकी वासना कोई नहीं रहती. जैसे मरुस्थलमें लताकी उत्पत्ति नहीं होती तैसे ज्ञानवान्को विषय वासनाकी उत्पत्ति नहीं होती.

हे साधो ! ज्ञानवान् जो विषयभोगका त्याग करता है सो किसी फलकी इच्छा करके नहीं करता; स्वभावतेई ज्ञानवान्की विषय-वासना उठ जाती है. जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकारका अभाव हो जाता है, तैसे रामजीको अब किसी भोग पदार्थकी इच्छा रही नहीं. अब विदितवेद्य हुआ है, अब आप विश्रामकी इच्छा चाहता है ताते जो कहो, सोई करो, जिसकर विश्रामवान् होय.

हे राजन् ! यह जो भगवान् वशिष्ठजी हैं, इनकी युक्ति करके शांत होवेगा अरु आगे भी सोई रघुवंश कुलके गुरु हैं, इनके उपदेश द्वारा आगे भी रघुवंशी ज्ञानवान् भये हैं. जो सर्वज्ञ हैं अरु साक्षिरूप हैं और त्रिकालज्ञ हैं और ज्ञानके सूर्य हैं, इनके उपदेशकर रामजी आत्मपदको प्राप्त होवेगा.

हे वशिष्ठजी ! वह ब्रह्मका उपदेश तुम्हारे स्मरणमें है. क्योंकि जब तुम्हारा हमारा विरोध हुआ था, तब उपदेश किया और जो सब ऋषीश्वर अरु वृक्ष कारि पूर्ण है ऐसा जो मंदराचल पर्वतमें आयकर ब्रह्माजीने संसार वासनाके नाश निमित्त उपदेश किया था अरु तुम्हारा हमारा विरोध था, तिसके निमित्त अरु और जीवके कल्याण निमित्त जो उपदेश किया था; अब वही उपदेश तुम रामजीको करो यह भी निर्मल ज्ञानपात्र हैं अरु ज्ञान भी वही है अरु विज्ञान भी वही है अरु निर्मल युक्ति वही है कि, शुद्ध पात्रमें अर्पण होवे अरु पात्र विना उपदेश नहीं सुहाता है अरु जिसमें शिष्यभाव न होवे अरु विरक्तता न होवे, ऐसा जो अपात्र मूर्ख होवे तिसको उपदेश करना व्यर्थ है अरु जो विरक्त

होवे अरु शिष्य भावना न होवे, तउभी उपदेश नहीं करना अरु दोनों करि संपन्न होवे तब करना. पात्र विना उपदेश व्यर्थ होता है अर्थ यह है कि, अपवित्र हो जाता है; जैसे गौका दूध महापवित्र है परंतु श्वानकी त्वचामें डारिये तब वह अपवित्र हो जाता है तैसे अपात्रको उपदेश करना व्यर्थ है. हे मुनीश्वर ! जो शिष्य वैराग्य करि संपन्न होता है अरु उदार आत्मा है सो तुम्हारे उपदेशके योग्य है; तुम कैसे हो कि, वीतराग हो, भय अरु क्रोधते रहित हो; परम शांतिरूप हो, सो तुम्हारे उपदेशका पात्र रामजी है.

वाल्मीकिरुवाच—इसप्रकार जब विश्वामित्रने कहा तब नारद अरु व्यासादिकने साधु, साधु, करके कहा. अर्थ यह कि, भला, भला कहा; ऐसेई यथार्थ है, तब राजा दशरथके पास बहुत प्रकारके साधु बैठे हुए थे.

वशिष्ठ उवाच—ब्रह्माजीके पुत्र वशिष्ठजीने तिनसे कहा कि-हे मुनीश्वर ! जो कछु तुमने आज्ञा करी है सो हमने मानी है. ऐसा समर्थ कोऊ नहीं जो संतकी आज्ञा निवारण करै. हे साधो ! जेते कछु राजा दशरथके पुत्र हैं, तिन सबके हृदयमें जो अज्ञानरूपी तम है सो मैं ज्ञानरूपी सूर्यकर निवारण करोंगा; जैसे सूर्यके प्रकाशकर अंधकार दूर होता है. हे मुनीश्वर ! जो कछु ब्रह्माजीने उपदेश किया था सो मुझको अखंड स्मरण है सोई उपदेश करोंगा. जिसप्रकार रामजी निःसंशय पदको प्राप्त होवेगा.

वाल्मीकिरुवाच—इसप्रकार वशिष्ठजीने विश्वामित्रसे कहा ताके अनंतर मोक्षका उपाय सब रामजीको कहत भया.

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे विश्वामित्रोपदेशो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ३.

अथ असंख्यसृष्टिप्रतिपादनवर्णनम् ।

वशिष्ठ उवाच—हे रामजी जो कछु कमलज जो ब्रह्माजी, तिसने मुझको जीवके कल्याण निमित्त उपदेश किया है सो भले प्रकार मेरे सुमिरणमें आता है सो अब तुमको कहता हों.

श्रीराम उवाच-हे भगवन्! कछुक प्रश्न करनेका अवसर आया है, अब एक संशयको दूर करो. मोक्ष उपाय जो कहते हो सो सब तुम कहोगे परंतु यह जो तुमने कहा कि, शुकदेवजी विदेहमुक्त हो गये तो भगवान् व्यासजी जो सर्वज्ञ हैं सो विदेहमुक्त क्यों न हुए.

वशिष्ठ उवाच-हे रामजी! जैसे सूर्य किरणसों त्रिसरेणु उडती देख परती हैं. तिनकी संख्या कछु नहीं होती, तैसे परम सूर्यके संवेदनरूपी किरणमें त्रिलोकीरूप त्रिसरेणु हैं सो असंख्य हैं. और अनंत होकर मिट जाते हैं अरु और अनंत होते हैं; और अनंत त्रिलोकी ब्रह्म समुद्रमें होवेंगे; तिसकी संख्या कछु नहीं.

श्रीराम उवाच-हे भगवन्! जो आगे व्यतीत हो गये हैं और जो आगे होवेंगे तिनकी संख्या केती है अरु वर्त्तमानको तो जानता हों,

वशिष्ठ उवाच-हे रामजी! अनंत कोटि त्रिलोकीके गण उपजे हैं अरु मिट गये हैं अरु कई होवे हैं अरु कई होवेंगे, गिननेकी संख्या कछु नहीं, काहेते कि, जीव असंख्य हैं अरु जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि है. जब यह जीव मृतक हो जाते हैं तब उसी स्थानमें अपने अंतवाहक संकल्परूपी पुरविषे इसका बांधव भास आता है अरु इसी स्थानमें परलोक भास आता है; पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश पंच भूत भासता है अरु नानाप्रकारकी वासनाके अनुसार अपनी अपनी सृष्टि भास आती है, बहुरि जब वहाँ ते मृतक होता है तब वही सृष्टि भास आती है. नाम रूप संयुक्त वही जाग्रत सत्य होकर भास आती है. बहुरि जब वहांते मरता है तब इस पंचभूत सृष्टिका अभाव हो जाता है और अपर भासती है अरु तहांके जो जीव होते हैं तिनको भी इसी प्रकार अनुभव होता, इसी प्रकार एक एक जीवकी सृष्टि होती है अरु मिट जाती है, तिसकी संख्या कछु नहीं, तब ब्रह्माकी सृष्टिकी संख्या कैसे होवे.

जैसे पुरुष फेर लेता है अरु तिसको सब पदार्थ भ्रमते दृष्टि आवते हैं अरु जैसे नौकामें बैठे हुये नदी तटके वृक्ष चलते दृष्टि आते हैं,जैसे नेत्रके दोषकर आकाशमें मोतीकी माला दृष्टि आती है. जैसे स्वप्नमें सृष्टि भासती है तैसे जीवको भ्रम करके यह लोक परलोक भासता है वास्तवते

जगत् कछु उपजाई नहीं, एक अद्वैत परमात्मतत्त्व अपने आपविषे स्थित है तिसविषे द्वैत भ्रम अविद्या करके भासता है. जैसे बालकको अपने परछैयामें बेताल भासता है अरु भयको पाता है तैसे अज्ञानीको अपनी कल्पना जगत्‌रूप हो भासती है.

हे रामजी ! यह व्यासदेव बत्तीस बेर मेरे देखनेमें आया है. तिसमें दशतो एक आकाररूप हैं अरु एकही जैसी क्रिया अरु एकही जैसी निश्चय हुआ है। अरु अपर दश समानही सम हुए हैं अरु बारे विलक्षण आकार विलक्षण क्रिया चेष्टावारे हुए हैं. जैसे समुद्रमें तरंग होते हैं तिनमें कई सम अरु कई विलक्षण उपजते हैं, तैसे व्यास हुए हैं अरु सम जो दश हुए हैं तिनमें दश व्यास यही हैं अरु आगे भी अष्टवेर यही होवेगा अरु बहुरि महाभारत कहेगा बहुरि नौमी वेर ब्रह्मा होकर विदेह मुक्त होवेगा. अरु हम भी होवेंगे अरु वाल्मीकि भी होवेगा. अरु भृगुभी होवेगा अरु बृहस्पतिका पिता अंगिराभी होवेगा इत्यादिक और भी होवेंगे

हे रामजी ! एक सम होते हैं एक विलक्षण होते हैं. अरु मनुष्य, देवता, तिर्यगादिक जीव कई बेर समान होते हैं कई बेर विलक्षण होते हैं, कई जीव समान आकार आगे जैसे कुल क्रिया सहित होते हैं अरु कई संकल्प कर उठते फिरते हैं. आवना, जावना, जीवना, मरना, स्वप्न भ्रमकी नाईं दिखता है. अरु वास्तवते कोऊ न आता है न जाता है न जन्मता है न मरता है. यह भ्रम अज्ञानसों भासता है विचार कियेते कछु निकसता नहीं, जैसे कदलीका स्तंभ देखनेमें बडा पुष्ट आता है फिर खोल देखो तो सार कछु नहीं निकलता तैसे जगत् भ्रम अविचार करके सिद्ध है विचार कियेते कछु भासता नहीं.

हे रामजी जो पुरुष आत्मसत्तामें जागा है तिसको द्वैत भ्रम नहीं भासता है, वह आत्मदर्शी, सदा शांत आत्मा परमानंद स्वरूप है अरु सब कलनाते रहित है ऐसे जीवन्मुक्तको कोई चलाय नहीं सकता, ऐसे जो व्यासदेवजी हैं तिसको संदेह मुक्ति अरु विदेह मुक्तिकी कोऊ कलना नहीं, सदा अद्वैत रूप है, हे रामजी ! जीवन्मुक्तको सब सर्वात्मा

पूर्ण भासता है अरु स्वस्वरूप भासता है. स्वरूपसार शांतिरूप अमृत कारि पूर्ण है अरु निर्वाणमें स्थित है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे असंख्यसृष्टि-
प्रतिपादनो नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४.

अथ पुरुषार्थोपक्रमवर्णनम्।

वशिष्ठ उवाच–हे रामजी! जीवन्मुक्ति अरु विदेहमुक्तिमें भेद कछु नहीं. जैसे स्थिर जल है तो भी जल है अरु तरंग फिरते हैं तो भी जल है, तैसे जीवन्मुक्ति अरु विदेहमुक्तिमें भेद कछु नहीं. हे रामजी! जीवन्मुक्ति अरु विदेहमुक्तिका अनुभव तुझको प्रत्यक्ष नहीं भासता–काहेते जो स्वसंवेद्य है अरु तिनमें जो भेद भासता है, सो असम्यग्दर्शीको भासता है, ज्ञानवान्‌को भेद कछु नहीं भासता है; जैसे वायु स्पंदरूप होता है तो भी वायु है अरु निष्पंदरूप होता है तो भी वायु है; उसके वायेते निश्चयविषे भेद कछु नहीं, पर अपर जीवको स्पंद होती है तो भासती है अरु निष्पंद होती है तो नहीं भासती है; जैसे ज्ञानवान् पुरुषको जीवन्मुक्ति अरु विदेहमुक्तिमें भेद कछु नहीं वह सदा अद्वैत कलनाते रहित हैं. जब जीवको उसका शरीर भासता है तब जीवन्मुक्ति कहते हैं, जब शरीर अदृश्य होता है तब विदेहमुक्त कहते हैं अरु उसको दोनों तुल्य हैं.

हे रामजी! अब प्रकृत प्रसंगको सुन, जो श्रवणका भूषण है–जो कछु सिद्ध होता है सो अपने पुरुषार्थ कर सिद्ध होता है; पुरुषार्थ विन सिद्ध कछु नहीं होता और कहते हैं जो दैव करैगा सो होवेगा सो मूर्खता है. यह चन्द्रमा हृदयको शीतल अरु उल्लासकर्त्ता भासता है सो इसमें शीतलता पुरुषार्थ कर हुई है. हे रामजी! जिस अर्थकी प्रार्थना करै अरु यत्न करै अरु तिसमें फिरै नहीं तो अवश्य कर पाता है और पुरुष प्रयत्न किसका नाम है सो श्रवण कर, संत-

जन अरु सत्यशास्त्रके उपदेशरूप उपाय कर तिसके अनुसार चित्तका विचरना होय सो पुरुषमें यत्न है, तिससे इतर जो चेष्टा करता है तिसका नाम उन्मत्त चेष्टा है अरु जिस निमित्त यत्न करता है सोई पावता है. एक जीव था सो पुरुषार्थपर यत्न करते अपुन इंद्रकी पदवी पाई; त्रिलोकी पति होय सिंहासनपर आरूढ हुआ.

हे रामचंद्र! आत्मतत्त्वमें जो चैतन्य स्पंद, इस स्पंदरूप होकर स्फूर्ति है सो अपने पुरुषार्थ कर ब्रह्माके पदको प्राप्त भई है ताते देख, जिसको कछु सिद्धता प्राप्त हुई सो अपने पुरुषार्थ कर हुई है, केवल चैतन्य जो आत्मतत्त्व है, तिसमें चित्त संवेदन यही स्पंदरूप है यह चैतन्य संवेदन अपने पुरुषार्थ करके गरुडपर आरूढ होय विष्णुरूप होताहै अरु यह चैतन्य संवेदन अपने पुरुषार्थ करके रुद्ररूप भया है अरु अर्द्धांगमें पार्वतीको धर रहाहै अरु मस्तकमें चंद्रमाको धरा है अरु नीलकंठ परम शांतरूप है ताते जो कछु सिद्ध होताहै सो पुरुषार्थ कर होताहै.

हे रामजी! पुरुषार्थ करके सुमेरुका चूरण किया चाहे तो भी कर सकता है. जैसे पूर्व दिनमें दुष्कृत किया होय अरु अगले दिनमें सुकृत करै तब दुष्कृत दूर हो जाता है, जो अपने हाथ द्वारा चरणामृत भी ले नहीं सकता अरु पुरुषार्थ करै तो यही पृथ्वी खंड खंड करनेको समर्थ होता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे पुरुषार्थोपक्रमो नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ५.

अथ पुरुषार्थवर्णनम्।

वशिष्ठ उवाच—हे रामजी! जो चित्त कछु वांछा करता है अरु शास्त्रके अनुसार पुरुषार्थ नहीं करता सो सुखको न पावेगा—उसकी उन्मत्त चेष्टा है, अरु पुरुषार्थ भी दो प्रकारका है एक शास्त्र अनुसार एक शास्त्र विरुद्ध है. जो शास्त्रको त्याग करि अपनी इच्छाके अनुसार विचरता है सो सिद्धताको न पावेगा अरु जो शास्त्रके अनुसार पुरुषार्थ करता है सो सिद्धताको प्राप्त होवेगा अरु दुःखी भी न होवेगा. अनुभव

वते स्मरण होता है अरु स्मरणते अनुभव होता है सो दोनों इसतेही होते हैं दैव तो कछु न हुआ.

हे रामजी! और दैव कोई नहीं, इसका किया इसको प्राप्त होता है. परंतु जो बलिष्ठ होता है सो तिसके अनुसार विचरता है. जो पूर्वके संस्कार बली होते हैं तो उसकी जय होती है अरु जो विद्यमान पुरुषार्थ बली होता है तब उसको जीति लेते हैं. जैसे एक पुरुषके दो बेटे हैं अरु जो तिनको लडावता है तो दोनोंविषे जो बली होता है तिसकी जय होती है परंतु दोनों उसके हैं; तैसे दोनों कर्म इसके हैं जो पूर्वका संस्कार बली होता है तोई इसकी जय होती है.

हे रामजी ! यह जो सत्संग करता है अरु सत शास्त्रहूका विचार करताहै, बहुरि पक्षीकी नाईं संसार वृक्षहूकी ओर उड़ताहै तो पूर्वका संस्कार बली है तिस करि स्थिर हो नहीं सकता. ऐसे जानकर तैं पुरुष प्रयत्नका त्याग नहीं करना जो पूर्वके संस्कारते अन्यथा नहीं होता। पूर्वका संस्कार बलीभी होवे परंतु जब सत्संग करे अरु सत शास्त्रहूका दृढ अभ्यास होवे तो पूर्वके संस्कारको पुरुषप्रयत्न जीत लेता है; जैसे पूर्वके संस्कारमें दुष्कृत किया है, सुकृत आगे किया है तो अगलेका अभाव हो जाता है सो पुरुष प्रयत्न होता है सो पुरुषार्थ क्या है ? अरु तिसकर सिद्ध क्या होता है ? सो श्रवण करके ज्ञानवान् जो सन्त हैं अरु सतशास्त्र जो ब्रह्मविद्या है तिसके अनुसार प्रयत्न करना तिसका नाम पुरुषार्थ है अरु पुरुषार्थ करके पावने योग्य आत्मा है जिसकरि संसार समुद्रते पार होवे.

हे रामजी ! जो कछु सिद्ध होता है सो अपने पुरुषार्थ करि होता है; अपर दैव कोऊ नहीं अरु जो शास्त्रके अनुसार पुरुषार्थको त्याग करि कहता है जो जो कछु करना है सो दैव करेगा सो मनुष्यमें गर्दभ है. तिसका संग न करना, उसकी सङ्गति करनी सो दुःखका कारण है. इस पुरुषको प्रथम तो यह कर्तव्य है-कि, अपने वर्णाश्रमविषे शुभ आचारको ग्रहण करना अरु अशुभका त्याग करना; बहुरि सन्तका संग अरु सतशास्त्रका विचारना और तिसको विचार कर अपने गुणदोषहूका विचार

करना कि, दिन अरु रात्रिमें शुभ क्या करता हों अरु अशुभ क्या करता हों. आगे गुण अरु दोषहूका साक्षी भूत होकर जो सन्तोष, धीरज, वैराग्य, विचार अरु अभ्यास गुण हैं. तिसका बढावना अरु जो दोष, विपरीत है तिनका त्याग करना. जब ऐसे पुरुषार्थको अंगीकार करेगा तब परमानन्दरूप आत्मतत्त्वको प्राप्त होवेगा. ताते–

हे रामजी ! बनके घायल हुए मृगकी नाई नहीं होना.जो घास,तृण, पातको रसीला जानके परा चुगता है, तैसे स्त्री, पुत्र, बांधव, धनादिक-विषे मग्न हो रहना सो नहीं होना, इनते विरक्त होना.दंतहू साथ दंतहूको चबाय करि संसार समुद्रको पार होनेका यत्न करना अरु बलते बंधनको तोड करि निकस जाना. जैसे.सिंह बल करके पिंजरेमेंते निकस जाता है तैसे निकस जाना, सोई पुरुषार्थ है.

हे रामजी ! जिसको कछु सिद्धताकी प्राप्ति हुई है सो अपने पुरुषार्थ कर हुई है पुरुषार्थ बिना नहीं होती, जैसे प्रकाश बिन पदार्थका ज्ञान नहीं होता जिस पुरुषने अपना पुरुषार्थ त्याग दिया है अरु दैवके आश्रय हुए हैं कि, हमारा दैव कल्याण करैगा सो न होवेगा. जैसे पत्थर सों तेल निकासा चाहै सो नहीं निकलता, तैसे उनका कल्याण दैवते न होवेगा. हे रामजी! तुम तो दैवका आश्रय त्याग कर अपने पुरुषार्थका आश्रय करो.

जिसने अपना पुरुषार्थ त्यागा है, तिसको सुंदर कांति लक्ष्मी त्याग जाती है.जैसे वसन्तऋतुकी मंजरी वसन्तऋतुके गयेते विरस हो जाती है. तैसे उनकी कांति लघु हो जाती है. जिस पुरुषने ऐसे निश्चय किया है कि, हमारा पालनेहारा दैव है सो पुरुष ऐसा है, जैसे कोई अपनी भुजाको सर्प जानके भय पायके दौरते हैं और जानते नहीं कि अपनीभुजा है तैसे अपने पुरुषार्थको त्यागके दैवका आश्रय लेता है अरु भयको पाता है.

पुरुषार्थ नाम इसका है कि, सन्तहूका सङ्ग अरु सतशास्त्रोंका विचार करके तिनके अनुसार विचरना अरु जो तिनको त्यागके अपनी इच्छाके अनुसार विचरते हैं सो सुखको नहीं पावेंगे न सिद्धताको पावेंगे. अरुजो शास्त्रके अनुसार विचरते हैं सो यहां भी सुख पावेंगे अरु आगे भी

सुख पावेंगे, तैसेई सिद्धताको पावेंगे-ताते संसाररूपी जाल विषे नहीं गिरना, सो पुरुषार्थ है. संतजनहूके संग अरु सतशास्त्रके अर्थ हृदयरूपी पत्रपै लिखना, बोधरूपी कानी करनी अरु विचाररूपी स्याही करनी जब ऐसे पुरुषार्थ कारि लिखेगा तब संसाररूपी जालमें न गिरैगा.

हे रामजी ! जैसे यह आदिनेति हुई है, जो पट है सो पट ही है, जो घट है सो घट ही है, घट है सो पट नहीं और पट है सो घट नहीं. तैसे यह भी नेति हुई है, अपने पुरुषार्थ विना परमपदकी प्राप्ति नहीं होती.

हे रामजी ! जो संतहूकी संगति करता है अरु सतशास्त्र भी विचारता है अरु उनके अर्थमें पुरुषार्थ नहीं करता तिसकारि सिद्धता प्राप्त नहीं होती. जैसे अमृतके निकटई बैठा होवे अरु पान किये विना अमर नहीं होता, तैसे अभ्यास किये विना सिद्धता प्राप्त नहीं होती.

हे रामजी ! अज्ञानी जीव अपना जन्म व्यर्थ खोवते हैं. जब बालक होते हैं तब मूढ अवस्थामें लीन रहते हैं अरु युवाअवस्थामें विकारहूको सेवते हैं अरु जरामें जर्जरीभूत होते हैं, इसी प्रकार जीवना व्यर्थ खोवते हैं अरु जो अपना पुरुषार्थ त्याग करके दैवका आश्रय लेता है सो अपने हंता होते हैं, सुखको नहीं पावेंगे. हे रामजी ! जो पुरुष व्यवहारविषे अरु परमार्थविषे आलसी हुए हैं अरु परमार्थको त्यागके मूढ हो रहे हैं सो दीन हुए हैं. मानो पशु हैं अरु दुःखको प्राप्त हुए हैं, यह मैंने विचार करके देखा है, ताते पुरुषार्थका आश्रय करो. सत संग अरु सत शास्त्ररूपी आदर्श करके अपने गुण करके दोषको देखके दोषका त्याग करो अरु शास्त्रका सिद्धांत जो है तिसका अभ्यास करो. जब दृढ अभ्यास करोगे तब शीघ्र ही आनंदवान् होगे.

वाल्मीकिरुवाच-जब इस प्रकार वसिष्ठजीने कहा तब सायंकालका समय हुआ. सब स्नानके निमित्त उठके खडे भये और परस्पर नमस्कार करके अपने २ घरको गये बहुरि सूर्यकी किरनन साथ आय स्थित भये.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे पुरुषार्थवर्णनो नाम पंचमः सर्गः ॥५॥

षष्ठः सर्गः ६.

अथ परमपुरुषार्थवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! इसका जो पूर्वका किया पुरुषार्थ है, तिसका नाम दैव है और दैव कोऊ नहीं. जब यह सत्संग अरु सतशास्त्रका विचार पुरुषार्थ करै तब पूर्वके संस्कारको जीत लेता है. पुरुष जिस इष्ट पानेका यह शास्त्रद्वारा यत्न करेगा, तिसको अवश्यमेव अपने पुरुषार्थते पावेगा; अन्यथा कछु नहीं होती, न हुई है, न होवेगी. पूर्व जो कोऊ पाप किया होता है, तिसका फल जब दुःख पावता है तब मूर्ख कहता है कि, हाय दैव हाय दैव, हाय कष्ट, हाय कष्ट.

हे रामजी ! इसका जो पुरुषार्थ पूर्वका है तिसका नाम दैव है और दैव कोऊ नहीं और जो कोऊ दैव कल्पते हैं सो मूर्ख हैं अरु जो पूर्वके जन्म सुकृत करके आया होता है वही सुकृत सुख होयके देखाई देता है. जो पूर्वका सुकृत बली होता है तो उसकीही जय होती है. जो पूर्वका दुष्कृत बली होता है अरु शुभका पुरुषार्थ करता है, सत्संग अरु सतशास्त्रहूका विचार श्रवण करता है तो पूर्वके संस्कारको जीत लेता है. जैसे प्रथम दिन पाप किया होवे, दूसरे दिन बडा पुण्य करे, तो पूर्वका पाप निवृत्त हो जाता है. तैसे जब यहां दृढ पुरुषार्थ करे तो पूर्वके संस्कारको जीत लेता है. ताते जो कछु सिद्ध होता है सो इसको पुरुषार्थ करके सिद्ध होता है कि, एकत्र भाव करि प्रयत्न करना इसीका नाम पुरुषार्थ है. जिसका यत्न एकत्र भाव होयके करेगा तिसको अवश्यमेव प्राप्त होवेगा; जो पुरुष अपर दैवको जानके अपना पुरुषार्थ त्याग बैठा है सो दुःखको पावेगा; शांतिवान कबहूं न होवेगा.

हे रामजी ! मिथ्या दैवके अर्थको त्यागके तुम अपने पुरुषार्थका अंगीकार करो. जो संतजन अरु सतशास्त्रहूके वचन अरु युक्ति साथ यत्न करके आत्मपदको अभ्यास करके प्राप्त होना इसीका नाम पुरुषार्थ है. प्रकाश करके जैसे पदार्थहूका ज्ञान होता है, तैसे पुरुषार्थ कर आत्मपदकी प्राप्ति होती है. जो पूर्वके कियेसे बडा पापी होता है अरु इह

दृढ पुरुषार्थ कियेते उसको जीत लेता है. जैसे बड़ा मेघ होता है अरु तिसका पवन नाश करता है अरु जैसे वर्ष दिनहूका क्षेत्र पक्का होता है अरु बर्फ तिसका नाश कर देता है; तैसे पूर्वका संस्कार पुरुषप्रयत्न करके नाश होता है.

हे रामजी ! श्रेष्ठ पुरुष सोई है, जोने सत्सङ्ग अरु सतशास्त्र द्वारा बुद्धिको तीक्ष्ण करके संसार समुद्र तरवेका पुरुषार्थ किया है अरु जिनने सत्सङ्ग अरु सतशास्त्रद्वारा बुद्धि तीक्ष्ण नहीं करी अरु पुरुषार्थको त्याग बैठे हैं सो पुरुष नीचते नीच गतिको पावेंगे अरु जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, सो अपने पुरुषार्थ करके परमानन्द पदको पावेंगे. जिसके पायेते बहुरि दुःख नहीं होता अरु जो देखने करि दीन होते हैं अरु सत्संगति अरु सतशास्त्रके अनुसार पुरुषार्थ करते हैं, सो उत्तम पदवीको प्राप्त होते दृष्टि आवते हैं, हे रामजी ! जिस पुरुषने पुरुषप्रयत्न किया है तिसको सब सम्पदा आय प्राप्त होती है अरु परमानन्द करि पूर्ण हो रहते हैं. जैसे रत्नहू करि समुद्र पूर्ण तैसे वह परमानन्द करके पूर्ण हुए हैं. ताते जो श्रेष्ठ पुरुष हैं सो अपने पुरुषार्थ द्वारा संसारके बंधन ते निकस जाते हैं. जैसे केसरी (सिंह) अपने बलसों पिंजरेते निकस जाता है, तैसे वह अपने पुरुषार्थ करि संसार बन्धनते निकस जाता है.

हे रामजी ! यह पुरुष और कछु न करे तब यह करै कि, अपने वर्णाश्रमके अनुसार विचरै अरु सार पुरुषार्थ करे; जो संतहू अरु शास्त्रहूका आश्रय होवे तिसके अनुसार पुरुषार्थ करे तब सब बन्धनते मुक्त होवेगा अरु जो अपने पुरुषार्थका त्याग किया है किसी और दैवको मानके कहता है कि, वह मेरा कल्याण करैगा सो जन्म मरणको प्राप्त होवेगा. हे रामजी ! इस जीवको संसाररूपी विषूचिका रोग है, तिसको दूर करनेका उपाय मैं कहता हों. संत जन अरु सतशास्त्रहूके अर्थविषे दृढ भावना करनी, जो कछु तिनहूते सुना है, तिसका वारंवार अभ्यास करना और सब कल्पना त्यागके एकांत होयके तिसका चिंतन करना तब इसको परम पदकी प्राप्ति होवेगी अरु द्वैत भ्रम निवृत्त हो जावेगा. अद्वैतरूप परा भासेगा; इसका ही नाम पुरुषार्थ है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे परमपुरुषार्थ वर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ७.

अथ पुरुषार्थोपमावर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! अन्य पुरुषार्थ करके इसको अध्यात्मक आदि ताप आय प्राप्त होते हैं तिसकरि शांतिको नहीं पाता. तुम रोगी नहीं होना. अपने पुरुषार्थ द्वारा जन्म मरणके बंधनते मुक्त होवो और कोई दैव मुक्ति नहीं करनेका; अपने पुरुषार्थ द्वारा संसार बंधनते मुक्त होना है. जिस पुरुषने अपने पुरुषार्थका त्याग किया है अरु किसी और दैवको मानि करि तिसमें परायण हुआ तिसका धर्म, अर्थ, काम नष्ट हो जावेगा अरु नीचते नीच गतिको प्राप्त होवेगा.

हे रामजी ! शुद्ध चैतन्य जो इसका अपना आप है अरु वास्तवरूप है तिसके आश्रय जो आदि चित्त संवेदन स्फूर्त्ति है; जो अहं मम संवेदन होयके फुरने लगती है, बहुरि इंद्रिय अहं स्फूर्त्ति है. जब यह स्फुर्ना संत अरु शास्त्रके अनुसार होवे तब वह पुरुष परम शुद्धताको प्राप्त होता है अरु जो संत और शास्त्रके अनुसार न होवे तब वासनाके अनुसार भाव अभावरूप जो भ्रम जाल है तिसविषे परा घटीयन्त्रकी नाई भटकता है, शांतिवान् कबहूं नहीं होता.

हे रामजी ! जिस किसीको सिद्धता प्राप्त हुई है, सो अपने पुरुषार्थकर हुई है; बिन पुरुषार्थ सिद्धताको प्राप्त न होवेगा, जब किसी पदार्थको ग्रहण करना होता है तब भुजा पसारिये तो ग्रहण करना होता है अरु जो किसी देशको प्राप्त होना होवे सो जब चले तब जाय पहुँचिये अन्यथा नहीं होता; ताते पुरुषार्थ विना सिद्ध कछु नहीं होता जो कोऊ कहता है दैव करैगा सो होवेगा सो मूर्ख है. हे रामजी ! और दैव कोऊ नहीं इस पुरुपार्थका नाम दैव है. यह दैव शब्द मूर्खहूका परचावा है; जो किसी कष्ट साथ दुःख पाया तिसको कहते हैं दैवका किया है सो और तो दैव कोऊ नहीं.

हे रामचन्द्र ! जो अपना पुरुषार्थ त्यागके दैवके आश्रय हो रहेगा सो सिद्धताको प्राप्त न होवेगा; काहेते कि, अपने पुरुषार्थ विना सिद्धता

किसीको प्राप्ति नहीं होती अरु बृहस्पतिने जो दृढ पुरुषार्थ किया है तब सब देवताओंके राजा इंद्रका गुरु हुआ है अरु शुक्रजी अपने पुरुषाथ द्वारा सर्व दैत्योंका गुरु हुआ है अरु अवर जो समान जीव हैं, तिन-विषे जिस पुरुषने प्रयत्न किया है सो पुरुष उत्तम हुआ है. जिसको जाते सिद्धता प्राप्त भई है सो अपने पुरुषार्थ कारि भई है अरु जिस पुरुषने संत अरु शास्त्रनके अनुसार पुरुषार्थ नहीं किया सो मेरे देखते देखते बडे राजा, अरु प्रजा धनते और विभूतिते क्षीण हो गये हैं अरु नरकहूविषे परे जलते हैं, जिसकरके कछु अर्थसिद्धि होवे तिसका नाम पुरु-षार्थ है अरु जिस करके अनर्थ सिद्धि होवे तिसका नाम अपुरुषार्थ है.

हे रामजी ! इस पुरुषको कर्तव्य यही है कि, सत शास्त्र अरु संतहूका संगकारि बुद्धि तीक्ष्ण करै अरु शुभगुणको पुष्ट करै; दया, धीरज, संतोष, वैराग्यके अभ्यास करके बुद्धि तीक्ष्ण करै अरु तीक्ष्ण बुद्धि करके इनको पुष्टकरै. जैसे बडे तालमें मेघ पुष्ट होता है, बहुरि वर्षा करके मेघ तालको पुष्ट करता है. तैसे शुभ गुण करके बुद्धि पुष्ट होती है अरु पुष्ट बुद्धि कारि शुभगुण पुष्ट होते हैं.

हे रामजी ! जो बालक अवस्थाते लेकारि अभ्यास किया होता है उसको शुद्धता प्राप्त होती है; अर्थ यह कि दृढ अभ्यास विना शुद्धता प्राप्त नहीं होती है. जो किसी देश अथवा तीर्थ जाना होवे तब मार्गविषे निरआलस होके चला जावे तो जाय पहुंचेगा अरु जब भोजन करैगा तब क्षुधा निवृत्त होवेगी, अन्यथा नहीं होवेगी अरु जब मुखविषे जिह्वा शुद्ध होवेगी तब पाठ स्पष्ट होवेगा; गुंगासों पाठ नहीं होता ताते जो कछु कार्य सिद्ध होता है सो अपने पुरुषार्थ कर सिद्ध होता है; तूष्णीं हो रहनेते कोई कार्य सिद्ध नहीं होता अरु सब ही गुरु बैठे हैं, इनहूते पूँछ देखो, आगे जो तेरी इच्छा हो सो कर. अरु जो मुझसों पूँछे तो सब शास्त्रका सिद्धांत कहता हों जिसकारि सिद्ध-ताको प्राप्त होवेगा.

हे रामजी ! संत जो हैं. ज्ञानवान पुरुष अरु सतशास्त्र जो है, ब्रह्मविद्या तिनके अनुसार संवेदन अरु मन अरु इंद्रियोंको विचारना होवे अरु

इससे विरुद्ध होवे तिससे वर्ज्य रखना, तिसकरके मुझको ससारका राग द्वेष स्पर्श नहीं करैगा, सबसे निर्लेप रहैगा. जैसे जलते कमल निर्लेप रहता है, तैसे तू निर्लेप रहैगा.

हे रामजी ! जिस पुरुषते शांति प्राप्त होवे. तिसकी भली प्रकार सेवा करिये काहेते कि, उसका बडा उपकार है; जो संसार समुद्रते निकासिलेता है हे रामजी ! संत जन भी वही हैं, अरु सतशास्त्रभी वही हैं; जिनके विचार करि अरु संगति करि संसारते चित्त उपरति होवे मोक्षका उपाय वही है; ताते और सब कल्पनाको त्यागके अपने पुरुषार्थको अंगीकार करो, तब जन्म मरनका भय निवृत्त हो जावे.

हे रामजी ! जब यह वांछा करता है अरु तिसके निमित्त दृढ पुरुषार्थ करता है तब अवश्यमेव तिसको पावे अरु जो बडे तेज अरु विभूति करके संपन्न तुझको दृष्टि आते हैं अरु सुनता है सो अपने पुरुषार्थ करिभये हैं अरु जो महा निकृष्ट सर्प कीट आदिक तुझको दृष्टि आते हैं तिनने अपने पुरुषार्थका त्याग किया है तब ऐसे हुए हैं.

हे रामजी ! अपने पुरुषार्थको आश्रय कर; नहीं तो सर्प कीटादिक नीच योनिको प्राप्त होवेगा. जिस पुरुषने अपना पुरुषार्थ त्यागा है और किसी दैवका आश्रय धरा है सो महामूर्ख है. काहेते कि, यह वार्त्ता व्यवहारमें भी प्रसिद्ध है कि, अपने उद्यम किये बिना किसी पदार्थकी प्राप्ति नहीं होती तो परमार्थकी प्राप्ति कैसे होवे ? ताते दैवको त्यागकरि संतजन अरु सतशास्त्रोंके अनुसार यत्न करो परमपद पानेके निमित्त जो दुःखनते मुक्त होवे. हे रामजी ! जो जनार्दन विष्णुजी हैं सो अवतार धर कर दैत्यहूको मारता है अरु अपर चेष्टा भी करता है, परंतु पापका स्पर्श उसको नहीं होता; काहेते जो अपने पुरुषार्थ करके अक्षय पदको प्राप्त हुआ है तुम भी पुरुषार्थका आश्रय करो अरु संसार समुद्रको तारिजावो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे पुरुषार्थोपमावर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८.

अथ परमपुरुषार्थवर्णनम्।

वशिष्ठ उवाच–हे रामजी! यह जो दैव शब्द है सो मूर्खोंने कल्पा है कि, दैव हमारी रक्षा करैगा. हमको दैवका आकार कोऊ दृष्टि नहीं आवता, न कोऊ दैवका काल है, न दैव कछु करता ही है. मूर्ख लोग दैव दैव परे कहते हैं. अपर दैव कोऊ नहीं. इसका पूर्वका कर्म ही दैव है.

हे रामजी! जिन पुरुषोंने अपने पुरुषार्थका त्याग किया है अरु दैवपरायण हुए हैं कि, दैव हमारा कल्याण करैगा सो मूर्ख हैं, काहेते जो अग्निविषे यह जाय पडे अरु दैव इसको निकासि लेवे; तब जानिये कि, कोऊ दैव भी है, सो तो नहीं अरु जो दैव करता है तो यह स्नान, दान, भोजन आदिहूंका त्याग करि तूष्णीं होय बैठे; आप ही दैव कर जावैगा सो भी इसके किये विना नहीं होता, ताते और दैव कोऊ नहीं अपना पुरुषार्थ ही कल्याण कर्ता है.

हे रामजी! जो इसका किया कुछ नहीं होता अरु दैव ही करनेहारा होता तो शास्त्र अरु गुरुका उपदेशभी नहीं होता, सो सतशास्त्रके उपदेश करके अपने पुरुषार्थद्वारा इसको वांछित पदवी प्राप्त होती है; ताते और जो कोऊ दैव शब्द है सो व्यर्थ है; इस भ्रमको त्याग करके संत अरु शास्त्रहूके अनुसार पुरुषार्थ करै तब दुःखनते मुक्त होवेगा. हे रामजी! और दैव कोऊ नहीं; इसका पुरुषार्थ जो है स्पंद, सोई दैव है.

हे रामजी! जो कोऊ और दैव करनहारा होता तो जब इस शरीरको त्यागता है अरु शरीर जब नाश हो जाता है क्रिया शरीरसों कछु नहीं होती काहेते जो चेष्टा करनेहारा त्याग जाता है तब दैव होता तो सभी शरीरसों चेष्टा करावता सो तो चेष्टा कछु नहीं होती, ताते जानना कि, दैव शब्द व्यर्थ है. हे रामजी! पुरुषार्थकी वार्ता है सो अज्ञानी जीवोंको भी प्रत्यक्ष है कि, अपने पुरुषार्थ विना कछु होता नहीं, गोपाल भी जानता है जो मैं गौवोंको चराऊं नहीं तो भूखा ही रहूँगा, ताते और दैवके आश्रय बैठि नहीं रहता आपही चराय ले आवता है.

हे रामजी! और दैवकी कल्पना भ्रम करके परे करते हैं, अपर दैव तो हमको कोऊ दृष्टि नहीं आवता. हस्त, पाद, शरीर दैवका कोऊ दृष्टि नहीं आवता. अपने पुरुषार्थ करि सिद्धता दृष्टि आती है अरु जो कोऊ आकारते रहित दैव कल्पिये तो नहीं बनता, काहेते कि, निराकार अरु साकारका संयोग कैसे होवे ? हे रामजी ! और दैव कोऊ नहीं, अपना पुरुषार्थ दैवरूप है. जो राजा ऋद्धि सिद्धि संयुक्त भासता है सो भी अपने पुरुषार्थ करि हुए हैं.

हे रामजी! यह जो विश्वामित्र हैं, याने दैव शब्द दूरहीते त्याग किया है सो भी अपने पुरुषार्थ करके क्षत्रियते ब्राह्मण हुए हैं अरु अपर जो बडे विभूतिवान हुए हैं सो भी अपने पुरुषार्थ करि दृष्टि आवते हैं. हे रामजी ! जो दैव पढे विना पंडित करै तो जानिये दैवने किया सो तो पढे विना पंडित कहूँ नहीं होता अरु जो अज्ञानीते ज्ञानवान् होते हैं सो भी अपने पुरुषार्थ करि होते हैं, ताते अपर दैव कोऊ नहीं मिथ्या भ्रमको त्याग करि, संतजन अरु सतशास्त्रहूके अनुसार संसार समुद्र तरनेका प्रयत्न करो, तेरे पुरुषाथ विना अपर दैव कोऊ नहीं. जो अपर दैव होता तो बहुत बेर क्रिया बल भी अपनी क्रियाको त्यागके सोइ रहता; आप दैव ही पडा करैगा सो ऐसे तो कोऊ नहीं करता, ताते अपने पुरुषार्थ विना कछु सिद्ध नहीं होता अरु जो इसका किया कछु न होता तो पाप करनेहारे नरक न जाते अरु पुण्य करनेहारे स्वर्ग न जाते, परन्तु पाप करने हारे नरकमें जाते हैं अरु पुण्य करनेहारे स्वर्गमें जाते हैं, ताते जो कछु प्राप्त होता है सो अपने पुरुषार्थ करि होता है.

हे रामजी ! जो कोऊ अपर दैव करता है, ऐसा कहै तिसका शिर काटिये अरु दैवके आश्रय जीवता रहै तो जानिये कि, कोऊ दैव है सो तो जीवता कोऊ रहता नहीं, ताते दैव शब्दको मिथ्या भ्रम जानके संतजन अरु सतशास्त्रहूके अनुसार अपने पुरुषार्थ करि आत्मपदविषे स्थित होवो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे परमपुरुषार्थवर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९.

अथ परमपुरुषार्थवर्णनम्।

राम उवाच-हे भगवन्! सर्व धर्मवेत्ता! तुम कहते हो कि, और दैव कोई नहीं, परन्तु ब्राह्मण भी दैव हैं ऐसा कहते हैं और दैवका किया सब कछु होता है अरु सुख दुःखका देनेहारा दैव है यह लोकविषे प्रसिद्ध है.

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! मैं तुझको ऐसे कहता हों, जो तेरा भ्रम निवृत्त हो जावे; इसका ही कर्म किया हुआ है, शुभ अथवा अशुभ तिसका फल अवश्यमेव भोगना है सो दैव कहो, पुरुषार्थ कहो. अपर दैव कोऊ नहीं अरु कर्त्ता, क्रिया, कर्म आदिकहूविषे तो दैव कोऊ नहीं और कोऊ दैवका स्थान नहीं, रूप नहीं तो अपर दैव क्या कहिये. हे रामजी! मूर्खहूके परचावने निमित्त दैव शब्द कहा है, जैसे आकाश शून्य है तैसे दैव भी शून्य है.

राम उवाच-हे भगवन्! सर्व धर्महूके वेत्ता! तुम कहते हो कि, अपर दैव कोऊ नहीं सो आकाशकी नाईं शून्य है सो तुम्हारे कहने पर भी दैव सिद्धि होता है. तुम कहते हो कि, इसके पुरुषार्थका नाम दैव है अरु जगत्‌विषे भी दैव शब्द प्रसिद्ध है.

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! मैं ऐसे तुझको कहता हों जिस करि दैव शब्द तेरे हृदयसों उठि जावे. अर्थ यह कि, शून्य हो जावे, दैव नाम अपने पुरुषार्थका है अरु पुरुषार्थ नाम कर्मका अरु कर्मनाम वासनाका है, वासना मनते होती है अरु मनरूपी पुरुष है. जिसकी वासना करता है सोई इसको प्राप्त होता है. जो गांवको प्राप्ति होनेकी वासना करता है सो गांवको प्राप्त होता है; जो पत्तनकी वासना करता है सो पत्तनको प्राप्त होता है; ताते अपर दैव कोऊ नहीं पूर्वका जो शुभ अथवा अशुभ दृढ पुरुषार्थ किया तिसका परिणाम सुख दुःख अवश्य होता है और तिसीका ही नाम दैव है.

हे रामजी! तुम विचारकर देखो कि, अपना पुरुषार्थ कर्महूते भिन्न नहीं तो सुख दुःख देनहारा अरु लेनहारा दैव कोऊ नहीं हुआ. क्योंकि

यह जो पापकी वासना करता है अरु शास्त्र विरुद्ध कर्म करता है सो किस करके करता है ? पूर्वका जो इसका दृढ पुरुषार्थ कर्म तिसकरके यह पाप करता है अरु जो पूर्वका पुण्यकर्म किया होता है तो यह शुभ मार्गविषे विचरता है.

राम उवाच–हे भगवन् ! जो पूर्वकी दृढ वासनाके अनुसार यह विचरता है कि, मैं क्या करूं ? मुझको पूर्वकी वासनाने दीन किया है, अब मुझको क्या कर्तव्य है ?

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जो कुछ इसकी पूर्वकी वासना दृढ हो रही है तिसके अनुसार यह विचारणा होता है अरु जो श्रेष्ठ मनुष्य है सो अपने पुरुषार्थ करके पूर्वके मलीन संस्कारको शुद्ध करता है तिसके मल दूर हो जाते हैं. सतशास्त्र अरु ज्ञानहूके वचन अनुसार दृढ पुरुषार्थ करो तब मलीन वासना दूर हो जावेगी.

हे रामजी ! पूर्वके मलीन कर्म कैसे जानिये अरु शुभ कर्म कैसे जानिये सो श्रवण करिये, जो चित्त विषयकी ओर धावे अरु शास्त्र विरुद्ध मार्गकी ओर जावे अरु शुभकी ओर न धावे तो जानिये कि पूर्वका कर्म कोई मलीन है अरु जो संतजन अरु सतशास्त्रहूके अनुसार चेष्टा करै अरु संसार मार्गते विरक्त होवे तब जानिये कि पूर्वका कर्म शुद्ध है; ताते हे रामजी ! तुमको दोनों करके सिद्धता है; जो पूर्वका संस्कार शुद्ध है, ताते तेरा चित्त शीघ्र ही सत्संग अरु सतशास्त्रहूके वचनको ग्रहण करिलेवेगा अरु शीघ्र ही तुमको आत्मपदकी प्राप्ति होवेगी अरु जो तेरा चित्त इस शुभमार्गविषे स्थिर नहीं हो सके तो दृढपुरुषार्थ करि संसार समुद्रते पार होवो.

हे राम जी ! तू चेतन है, जड तो नहीं. अपने पुरुषार्थका आश्रय करहु मेरा भी यही आशीर्वाद है जो तुम्हारा चित्त शीघ्रही शुभ आचरणविषे स्थित होवे अरु ब्रह्मविद्याका जो सिद्धान्त सार है तिसविषे स्थित होवे. हे रामजी ! श्रेष्ठ पुरुष भी वही है, जिसका पूर्वका संस्कार यद्यपि मलीन भी था, परंतु संत अरु सतशास्त्रके अनुसार दृढ पुरुषार्थ करके सिद्धताको प्राप्त भया है अरु जो मूर्ख जीव है, तिसने पुरुषार्थ अपना

त्याग किया है ताते संसारते मुक्त नहीं होते; पूर्वका जो कोऊ पाप कर्म किया होता है तिसके मलीनता करके पापमें धावता है, अपना पुरुषार्थ त्यागनेते अंध हो जाता है अरु विशेष कारि धावता है.

जो श्रेष्ठ पुरुष है तिसको यह कर्त्तव्य है. प्रथम तो पांचो इंद्रियां वश करनी; शास्त्र अनुसार तिनको बर्त्तावनी; शुभ वासना दृढकरनी; अशुभका त्याग करना; यद्यपि त्यागनी दोनों वासना हैं. प्रथम शुभ वासनाको इकट्ठी करनी अरु अशुभका त्याग करना, जब शुद्ध वासना करके कषाय परिपक्क होवेंगे–अर्थ यह जो अन्तःकरण जब शुद्ध होवेगा, तिस हृदयविषे संत अरु सत शास्त्रका जो सिद्धांत है, तिसका विचार उत्पन्न होवेगा और ताते तुमको आत्मज्ञानकी प्राप्ति होवेगी. तिस ज्ञानद्वारा आत्माका साक्षात्कार होवेगा बहुरि क्रिया ज्ञानका भी त्याग हो जावेगा केवल शुद्ध अद्वैतरूप अपना आप शेष भासेगा. ताते हे रामजी ! और सब कल्पना त्याग कारि संतजन अरु सतशास्त्रहूके अनुसार पुरुषार्थ करो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे परमपुरुषार्थवर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः १०.

अथ वसिष्ठोत्पत्ति तथा वसिष्ठोपदेशागमनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच– हे रामजी मेरे बचनको ग्रहण करो सो वचन बांधव जैसे है, बांधव कहिये जो तेरे परम मित्र होवेंगे अरु दुःखहूते तेरी रक्षा करेंगे. हे रामजी ! यह जो मोक्ष उपाय तुमको कहता हों, तिसके अनुसार तू पुरुषार्थ करेगा तब तेरा परम अर्थ सिद्ध होवेगा अरु यह चित्त जो संसारके भोगकी ओर धावता है तिस भोगरूपी खाडविषे चित्तको गिरने मत देवो भोगको निरस जानिके त्याग देवो; वह त्याग तेरा परम मित्र होवेगा अरु त्याग भी ऐसा करो जो बहुरि भोगको ग्रहण न होय.

हे रामजी ! यह मोक्ष उपाय संहिता है. चित्तको एकाग्र करके इसको श्रवण कर तिसकरि परमानन्दकी प्राप्ति होवेगी प्रथम शम

अरु दमको धारि अर्थ यह जो संपूर्ण संसारकी वासनाका त्याग करहु अरु उदारता करके तृप्त रहना, इसका नाम शम है अरु दम अर्थ यह जो बाह्य इंद्रियको वश करना. जब इसको प्रथम धारेगा तब परमतत्त्वका विचार आय उत्पन्न होवेगा तिस विचारतें विवेकद्वारा परम पदकी प्राप्ति होवेगी. जिस पदको पाय करि बहुरि दुःख कदाचित् न होवेगा; अविनाशी सुख तुझको आय प्राप्त होवेगा ताते जो कछु मोक्ष उपाय यह संहिता है; तिसके अनुसार पुरुषार्थ करहु तब आत्मपदको प्राप्त होवेगा, पूर्व जो कछु ब्रह्माजीने हमको उपदेश किया है सो मैं तुमको कहता हूं.

राम उवाच–हे मुनीश्वर! तुमको जो ब्रह्माजीने उपदेश किया था सो किस कारण किया था अरु कैसे तुमने धारा सो कहो.

वसिष्ठ उवाच–हे रामचन्द्र! शुद्ध चिदाकाश एक है अरु अनंत है अविनाशी है, परमानन्दरूप है, चिदानन्द स्वरूप है, ब्रह्म है तिसविषे संवेदन स्पंदरूप होवे है, सो विष्णु होइकर स्थित भई है; सो विष्णुजी कैसा है? जो स्पंद अरु निस्पंदविषे एक रस है. कदाचित् अन्यथा भावको नहीं प्राप्त हुआ जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, तैसे शुद्ध चिदाकाशते स्पंद करके विष्णु उत्पन्न हुआ है, तिस विष्णुजीके स्वर्णवत् किरण नाभिकमलते ब्रह्माजी प्रगट भया है. तिस ब्रह्माजीने ऋषि, मुनीश्वर सहित स्थावर जंगम प्रजा उत्पन्न करी, तिस मनोराज करि जगत् को उत्पन्न किया; तिस–जगतके कोनेविषे जो जम्बूद्वीप, भरतखण्ड है तिसविषे मनुष्यको दुःखकरि आतुर देखि ब्रह्माजीको करुणा उपजी, जैसे पुत्रको देखि पिताको करुणा उपजती है. तब तिसके सुख निमित्त ब्रह्माजीने तप उत्पन्न किया कि सुखी होय अरु आज्ञा करी कि, तप करो; तब तप करत भये; तिस तपकरि स्वर्गादिकहूको जाय प्राप्त होने लगे; तिन सुखहूँको भोगकरि बहुरि गिरहिं तब दुःखी रहे. ऐसे ब्रह्माजी देखि करि सत्यवाक् धर्मको प्रतिपादन करत भये; तिनके सुखके निमित्त आज्ञा करी. तिस धर्मकी प्रतिपादन करी लोकहूको सुख प्राप्त होने लगे; तहां केतिक काल सुख भोग करि बहुरि गिरहिं, तब दुःखीके दुःखी रहे; बहुरि ब्रह्माजीने दान

तीर्थादिक पुण्यक्रिया उत्पन्न करके उनको आज्ञा करी कि,इनका सेवन करि तुम सुखी होहुगे. जब वे जीव उनको सेवने लगे तब बडे पुण्य लोकहूको प्राप्त भये अरु तिनके सुख भोगने लगे. बहुरि केतिक काल अपने कर्मके अनुसार भोग भोगि गिरे, तब तृष्णाकरि बहुत सुख दुःखके अनुभव करते भये अरु दुःखकरि आतुर हुए, तब ब्रह्माजी देखत भया कि, ये जन्म अरु मरणके दुःख करि महादीन होते हैं, ताते सोई उपाय करिये जिस करि उनका दुःख निवृत्त होवे.

हे रामचंद्र ! ब्रह्माजी विचारत भया कि, इनका दुःख आत्मज्ञान विना निवृत्त नहीं होनेका; ताते आत्मज्ञानको उत्पन्न करिये, जो यह सुखी होवहिं; इस प्रकार विचार करि आत्मतत्त्वका ध्यान करता भया. आत्मतत्त्वके ध्यानते संकल्प किया; तिस ध्यानके करनेसे जो शुद्ध तत्त्वज्ञान है तिसकी मूर्ति होकर मैं प्रगट भया. सो मैं कैसा हूं ? ब्रह्माजी के समान हूँ,जैसे उनके हाथविषे कमंडलु है तैसे मेरे हाथविषे कमंडलु है; जैसे उनके कंठविषे रुद्राक्षकी माला है तैसे मेरे कण्ठमें भी रुद्राक्षकी माला है, जैसे उनके ऊपर मृगछाला है तैसे मेरे ऊपर मृगछाला है; इस प्रकार ब्रह्माजीका अरु मेरा समान आकार है अरु मेरा शुद्धज्ञानी स्वरूप है, मुझे जगत् कछु नहीं भासता;सुषुप्तिकी नाईं जगत् मुझको भासता है, तब ब्रह्माजीने विचार किया कि, इसको मैं जीवनके कल्याण निमित्त उत्पन्न किया है अरु यह तो शुद्धज्ञान स्वरूप है अरु अज्ञान मार्गको उपदेश तब होवे जब कछु प्रश्न उत्तर होवे अरु तब मिथ्याका विचार होवे.

हे रामजी ! जीवनके कल्याण निमित्त मुझको ब्रह्माजीने गोदमें बिठाया अरु शीशपै हाथ फेरा, तिस करि मैं शीतल हो गया. जैसे चंद्रमाकी किरणहू करि शीतलता होती है तैसे मैं शीतल भया. तब ब्रह्माजी मुझको जैसे हँसहँस कर, यों कहा—हे पुत्र ! जीवनके कल्याण निमित्त एक मुहूर्त्त पर्यन्त तुम अज्ञानको अंगीकार करहु. श्रेष्ठ पुरुष जो हैं सो औरहूके निमित्त भी अंगीकार करते आये हैं. जैसे चन्द्रमा बहुत निर्मल है परन्तु श्यामता को अंगीकार किया है तैसे तू भी एक मुहूर्त अज्ञानको अंगीकार कर.

हे रामजी ! इस प्रकार मुझको कहकर ब्रह्माजीने शाप दिया कि, "तू अज्ञानी होवेगा" तब मैंने ब्रह्माजीकी आज्ञा मानि शापको अंगीकार किया. तब मेरा जो शुद्ध आत्मतत्त्व आपना आप था, तिससे मैं अन्यकी नाईं होत भया, मेरी स्वभावसत्ता मुझको विस्मरण हो गई अरु मेरा मन जागि आया; भाव, अभाव रूप जग त् मुझको भासने लगा अरु आपको मैं वसिष्ठ अरु ब्रह्माजीका पुत्र यों जानत भया अरु नाना प्रकारके पदार्थ सहित जगत् जानत भया अरु तिनकी ओर चंचल होत भया; तब मैं संसार जालको दुःखरूप जानि करि ब्रह्माजीते पूछत भया. हे भगवन् ! यह संसार कैसे उत्पन्न भया अरु कैसे लीन होता है ? हे रामजी ! जब इस प्रकार पिता ब्रह्माजीसों प्रश्न किया तब भली प्रकार मुझको उपदेश करत भया, तिसकरि मेरा अज्ञान नष्ट हो गया. जैसे सूर्य उदय हुए तम निवृत्त हो जाता है तैसे मेरा अज्ञान निवृत्त हो गया अरु मैं शुद्धताको प्राप्त भया. जैसे आदर्शको मार्जन करता है अरु शुद्ध हो आवता है; तैसे मैं शुद्ध हुआ.

हे रामजी ! मैं ब्रह्माजीसे भी अधिक होत भया, तब मुझको परमेष्ठी ब्रह्माजीने आज्ञा करी–हे पुत्र ! जंबूद्वीप भरतखण्डमें जा, तुझको सृष्टिपर्यंत विषे अधिकार है तहां जाइकरि जीवनको उपदेश करहु, जिसको संसारके सुखकी इच्छा होवे तिसको कर्ममार्गका उपदेश करना; तिसकरि स्वर्गादिक सुख भोगेंगे अरु संसारते विरक्त होवें और जिनको आत्मपदकी इच्छा होवे तिनको ज्ञान उपदेश करना; ताते तुम अब भुवलोकविषे जाहु. हे रामजी ! इस प्रकार मेरा उपदेश अरु उपजना हुआ है अरु इस प्रकार मेरा आवना हुआ है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे वसिष्ठोत्पत्ति (तथा) वसिष्ठोपदेशागमन वर्णनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ११.

अथ वसिष्ठोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इस प्रकार पृथ्वीविषे मेरा आना भया. मैं कैसा हों ? जाको आत्मज्ञानकी वांछा होवे सो पूर्ण करिवेके लिये ब्रह्माजी

मुझको उत्पन्न करत भये. राम उवाच, हे मुनीश्वर! तिस ज्ञानकी उत्पत्तिते अनंतर जीवनकी शुद्धि कैसे भई? सो कहो.

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जो शुद्ध आत्मतत्त्व है तिसका स्वभाव रूप संवेदन स्फूर्ति है सो ब्रह्माजीरूप होकर स्थित भई है. जैसे समुद्र अपनी द्रवता करके तरंग रूप होता है तैसे ब्रह्माजी भया है. बहुरि संपूर्ण जगतको उत्पन्न किया अरु तीनों काल उत्पन्न किये तब केता काल व्यतीत हुआ अरु कलियुग आया, तिसकरि जीवहूकी बुद्धि मलीन होगई अरु पापविषे विचरने लगे, शास्त्र वेदकी आज्ञा माननेते रहित होगये. इसप्रकार धर्मकी मर्यादा छिपगई अरु पाप प्रगट भया; जेती कछु राजधर्मकी मर्यादा थी सो सब नष्ट होगई अरु अपनी इच्छाके अनुसार जीव विचरने लगे, ताते कष्ट पावने लगे. तिनको देखि करि ब्रह्माजीको करुणा उपजी तिस दयाको धारिकर भूलोकविषे मुझको भेजा अरु कहा हे पुत्र! जायकरि तुम धर्मकी मर्यादा स्थापन करो अरु जीवनको शुद्ध उपदेश करो, जिसको भोगहूकी इच्छा होवे तिसको कर्मकांडका उपदेश करना और जप, तप, स्नान, संध्या यज्ञादिकका उपदेश करना अरु जो ससारविरक्त हुए हैं अरु मुमुक्षु हैं, जिनको परम पद पानेकी इच्छा है तिनको ब्रह्मविद्याका उपदेश करना.

हे रामचंद्र! जिस प्रकार ब्रह्माजी मुझको आज्ञाकरि भूमिलोकविषे भेजते भये तैसेई सनत्कुमार, नारदको हू कहते भये, तब हम सब ऋषीश्वर इकट्ठे होकर विचारते भये कि, जगत्की मर्यादा किस प्रकार होवे अरु जीव शुभमार्गविषे कैसे विचरहिं, तब हमने यह विचार किया कि, प्रथम राज्यहूका स्थापन करना जो जीव तिनकी आज्ञानुसार विचरहिं प्रथम दण्डकरता राजा स्थापन किया, सो कैसा राजा जो बडा वीर्यवान् अरु तेजवान्, बडा उदार आत्मा भया, तिस राजाहूको हम अध्यात्मिक विद्या उपदेश करी, तिस करि परम पदको प्राप्त भये. जो परमानंदरूप अविनाशी पद है तिस ब्रह्मविद्याका उपदेश तिसको भया, तब सुखी भये. इस कारणते ब्रह्मविद्याका नाम राजविद्या है. तब हमहूँने वेद, शास्त्र, श्रुति; पुराणकरि धर्मकी मर्यादा स्थापन करी, सो जप, तप, यज्ञ,

दान, स्नान आदिक क्रियाको प्रगट कीनी. अरे जीव ! तुम इनका सेवन करि सुखी होगे; तब सब फलको धारि करि तिनको सेवने लगे; तामें कोऊ विरला निरहंकारहृदय शुद्धताके निमित्त कर्म करते थे.

हे रामजी ! जो मूर्ख हैं सो कामनाके निमित्त मनमें फूलके कर्म करते हैं सो घटीयंत्रकी नाईं भटकते फिरते हैं सो कबहूँ ऊर्ध्व अरु कबहूँ नीचे आतेहैं और जो निष्काम करते हैं, तिनका हृदय शुद्ध होता है; फिर सो ब्रह्मविद्याके अधिकारी होते हैं, ताके उपदेश द्वारा आत्मपद्की प्राप्ति होती है, इस प्रकार सो जीवन्मुक्त हुए हैं; कई राजा प्रसिद्ध हुए हैं; सो राज्यको परंपरा चलावते हमारे उपदेश द्वारा ज्ञानको प्राप्त भये हैं और राजा दशरथहू ज्ञानवान् भया है और तूभी इसी दशाको आयके प्राप्त हुआ है सो तूसबसे श्रेष्ठ हुआ है.जैसे तू विरक्तआत्मा हुआ है तैसे आगेहू स्वाभाविक विरक्त आत्मा भये हैं, सो स्वभावकर देह शुद्धि कर हुए हैं; इसी कारणते तू श्रेष्ठ है. जो कोऊ अनिष्ट दुःख प्राप्त होता है, तिस कर विरक्तता उपजती है सो तुझको नहीं भई तुझको सब इंद्रियके विषय विद्यमान हैं तैसे होते तेरेको वैराग्य हुआ है ताते तू श्रेष्ठ है.

हे रामजी ! जो मशान आदिक कष्टके स्थान कहे; ता ठिकाने सबको वैराग्य उपजता है."जो कछु नहीं ! मरजाना है ! "तिनमें जो कोई श्रेष्ठ पुरुष होता है सो वैराग्यको दृढ कर रखता है और जो मूर्ख है सो फिर विषयमें आसक्त हो जाता है 'ताते जिनको अकारण वैराग्य उपजता है' सो श्रेष्ठ हैं; हे रामजी!जो श्रेष्ठ पुरुष हैं सो अपने वैराग्य अरु अभ्यासके बल करके संसार बंधनते मुक्त हो जाते हैं. जैसे हस्ति बंधनको तोरके अपने बलसों निकस जाता है तब सुखी होता है; तैसे वैराग्य अभ्यासके बलकर बंधनते ज्ञानी मुक्त होता है.

हे रामजी ! यह संसार बडा अनर्थरूप है, जिस पुरुषने अपने पुरुषार्थ करके बंधनको नहीं तोरा, तिसको राग द्वेषरूपी अग्नि जरावत है अरु जिन पुरुषोंने अपने पुरुषार्थ करके शास्त्र और गुरुको प्रमाण करके ज्ञान साधा है सो उस पदको प्राप्त भये हैं.तिनको आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक ताप जलाय सकता नहीं. जैसे वर्षाकालमें बहुत वर्षाके होते

वनको दावानल जलाय नहीं सकता, तैसे ज्ञानीको अध्यात्मिक आदि ताप कष्टको नहीं देते.

हे रामजी! जिन श्रेष्ठ पुरुषोंने संसारको विरस जानकर त्याग किया है, तिनको संसारका पदाथ गिराय नहीं सकता अरु जो मूर्ख हैं तिनको गिराय देते हैं, जसे अंध्यारी चलत पवनके वेग सों वृक्ष गिर जाते हैं, परंतु कल्पवृक्ष गिरता नहीं. तैसे हे रामजी! श्रेष्ठ पुरुष वही है जिसको संसार विरस हो गया है; सो केवल आत्मतत्त्वकी इच्छा करके तिसमें परायण भये हैं, तिनको ही ब्रह्मविद्याका अधिकार है, सोई उत्तम पुरुष हैं. हे रामजी! तू भी तैसा उज्ज्वल पात्र है, जेसे कोमल पृथ्वीमें बीज बोते हैं तैसे तुमको मैं उपदेश करता हों और जिसको भोगकी इच्छा है और संसारकी ओर यत्न करता है सो पशुवत् है. श्रेष्ठपुरुष वही है जिसको संसार तरनेका पुरुषार्थ होता है.

हे रामजी! प्रश्न तिनके पास करिये, जिनको जानिये कि, मेरे प्रश्नका उत्तर देनेको समर्थ हैं और जिनमें उत्तर देनेकी सामर्थ्य दिखनेमें नहीं आवे, तिनसों प्रश्न करना नहीं और उत्तर देनेको जिसे समर्थ देखिये और तिसके वचनमें भावना न होय तब भी तिससों प्रश्न न करिये काहते कि, दंभकर प्रश्न करनेमें पाप होता है और गुरु भी उपदेश तिनको करता है जो संसारते विरक्त होवे अरु केवल आत्मपरायण होनेकी श्रद्धा होवे अरु आस्तिक भाव होवे, ऐसा पात्र देखके उपदेश करे. हे रामजी! जो गुरु अरु शिष्य दोनों उत्तम होते हैं, तब वचन शोभते हैं. तुम उपदेशका शुद्ध पात्र हो, जेते कछु गुण शिष्यके शास्त्रमें वर्णन किये हैं सो सब तेरेमें प्राप्त हैं और मैं उपदेश करनेमें समर्थ हों ताते कार्य्य शीघ्र होवेगा.

हे रामजी! शुभ गुण साथ तेरी बुद्धि निर्मल होय रही है, मेरा जो सिद्धांतका सार वचन है सो तेरे हृदयमें प्रवेश करैगा. जैसे उज्ज्वल वस्त्रमें केशरका रंग शीघ्र चढ जाता है तैसे तेरे निर्मल चित्तमें उपदेशका रंग लगैगा: जैसे सूर्यके उदयते सूर्यमुखी कमल खिलते हैं तैसे तेरी बुद्धि शुभ गुण कर खिल आई है. हे रामजी! जो कछु शास्त्रव.

सिद्धांत आत्मतत्त्व मैं तुमको कहता हों, तिसमें तेरी बुद्धि शीघ्र प्रवेश करैगी. जैसे निर्मल जलमें सूर्यकी कांति प्रवेश करती है, तैसे तेरी बुद्धि आत्मतत्त्वमें शुद्धता करके प्रवेश करैगी.

हे रामजी! मैं तुम्हारे आगे हाथ जोरके प्रार्थना करता हूँ, जो कछु मैं तुझको उपदेश करता हों तिसविषे तुम आस्तिक भावना करियो कि, इन वचनोंकर मेरा कल्याण होवेगा अरु जो तुमको धारना न होवें तो प्रश्न मत करना. जो शिष्यको गुरुके वचनमें आस्तिक भावना होती है, तिसका शीघ्र कल्याण होता है; ताते मेरे वचनमें आस्तिक-भावना करियो और जिसकर तू आत्मपदको प्राप्त होवेगा सो मैं कहता हों. प्रथम तो यह कर–जिन अज्ञानी जीवनमें असत्य बुद्धि है तिनका संग त्यागकर अरु मोक्षद्वारके जो चार द्वारपाल हैं तिनसों मित्र-भावना कर. जब तिनसों मित्रभाव होयगा, तब वह मोक्षद्वारमें पहुँचाय देयँगे, तब आत्मदर्शन तुमको होवेगा. सो द्वारपालके नाम श्रवण कर; शम, संतोष, विचार, सत्संग यह चारों द्वारपाल हैं. जिस पुरुषने इनको वश किया है तिसको यह शीघ्र मोक्षरूपी द्वारके अंतर कर देते हैं. हे रामजी ! जो चारों वश न होवें तो तीनोंको वश कर, अथवा दोको वश करले, अथवा एकको वशकर; जो एक वश होवेगा तो चारोंई वश होजायँगे, इन चारोंका परस्पर स्नेह है, जहां एक आता है तहां चारों आयके रहते हैं. जिस पुरुषने इनसे स्नेह किया है सो सुखी भया है और जिसने इनका त्याग किया है सो दुःखी है; हे रामजी ! यद्यपि प्राणका त्याग होवे तो भी एक साधन तो बल करके वश करना, एकके वश कियेते चारों ही वश होयँगे अरु तेरी बुद्धिमें शुभ गुणने आयके निवास किया है. जैसे सूर्यमें सब प्रकशा आये हुये हैं तैसे संतने अरु शास्त्रने जो निर्मल गुण कहे हैं सो सब तेरेमें प्राप्त हैं. हे रामजी ! अब तू मेरे वचनका अधिकारी भया है. जैसे चन्द्रमाके उदयते चन्द्रमुखी कमल खिल आते हैं, तैसे शुभ गुण कर तेरी बुद्धि खिल आई है.

हे रामजी ! सत्संग अरु सतशास्त्र द्वारा बुद्धिको तीक्ष्ण कियेते शीघ्र आत्मतत्त्वमें प्रवेश होता है. ताते श्रेष्ठ पुरुष वही है जिसने संसारको

विरस जानके त्याग किया है और संत अरु सतशास्त्रके वचन द्वारा आत्मपद पानेका यत्न करता है, सो अविनाशी पदको प्राप्त होता है और जो संसारका त्याग करके संसारकी ओर लगे हैं सो महामूर्ख जड हैं. जैसे जल शीतलता करके बर्फ हो जाता है, तैसे अज्ञानी मूर्खता करके आत्ममार्गते जड होइ रहे हैं; हे रामजी ! अज्ञानीके हृदयरूपी बिलमें दुराशारूपी सर्प रहता है सो कदाचित् शांति नहीं पाता अरु आनन्दसों कबहूं प्रफुल्लित नहीं होता अरु आशा करके सदा संकुचित रहता है. हे रामजी ! आत्मपदके साक्षात्कारमें विशेष आवरण आशा ही है. जैसे सूर्यके आगे मेघका आवरण होता है तैसे आत्मतत्त्वके आगे दुराशाका आवरण है. जब आशारूपी आवरण दूर होवे तब आत्म पदका साक्षात्कार होवे. हे रामजी ! आशा तब दूर होवे जब संतकी संगति अरु सतशास्त्रका विचार होवे.

हे रामजी ! संसाररूपी एक बडा वृक्ष है सो बोधरूपी खड्ग कर छेदा जाता है; जब सत्संग अरु सतशास्त्रकर तीक्ष्ण बुद्धि होवे, तब संसार रूपी भ्रमका वृक्ष नष्ट हो जाता है. जब शुभ गुण होते हैं तब आत्मज्ञान आयके विराजता है; जहां कमल होते हैं तहां भौंरे आयके स्थित होते हैं. तब शुभ गुणमें आत्मज्ञान रहता है. हे रामजी ! शुभ गुणरूप पवन कर जब इच्छारूपी मेघ निवृत्त होता है तब आत्मरूपी चंद्रमाका साक्षात्कार होता है;जैसे चन्द्रमाके उदय हुए आकाश शोभता है तैसे आत्माके साक्षात्कार हुए तेरी बुद्धि खिलेगी.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे वसिष्ठोपदेश वर्णनं नाम एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२.

अथ तत्त्वज्ञमाहात्म्यवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! अब तू मेरे वचनका अधिकारी है,काहेते कि तप, वैराग्य विचार, संतोष आदि जो शुभ गुण संत अरु शास्त्रने कहे हैं सो सब तेरेमें प्राप्त हैं;ताते तू मेरे वचनको सुन, सो रज, तम गुणको

त्यागकर शुद्ध सात्विकवान् होकर सुन; राजस जो विक्षेप अरु तामस जो लय निद्रामें होत हैं सो दोऊका त्याग करके सुन. जेते कछु जिज्ञासुके गुण शास्त्रमें वर्णन किये हैं सो सबकर तू संपन्न है अरु जेते कछु गुरुके गुण शास्त्रमें वर्णन किये हैं सो सब मेरेमें हैं. जैसे रत्नकर समुद्र संपन्न है तैसे मैं सम्पन्न हों; ताते मेरे वचनका तू अधिकारी है और मूर्खको मेरे वचनका अधिकार नहीं. हे रामजी ! जैसे चंद्रमाके उदयते चन्द्रकांतमणि द्रवीभूत होती है, तब तामेंते अमृत स्रवता है और पत्थरकी शिला है तिनते द्रवीभूत नहीं होता है; तैसे जो जिज्ञासु होता है तिसको परमार्थ वचन लगता है अरु अज्ञानीको नहीं लगता. हे रामजी ! शिष्य तो शुद्ध पात्र होवे अरु उपदेश करनेहारा ज्ञानवान् न होवे तो उसको आत्माका साक्षात्कार नहीं होवे. जैसे चन्द्रमुखी कमलनी निर्मल होय अरु चंद्रमा न होय तब प्रफुल्लित नहीं होती, तैसे तू मोक्षका पात्र है अरु मैं भी परम गुरु हों ताते मेरे उपदेश कर तेरा अज्ञान नष्ट होय जावेगा.

मैं मोक्षका उपाय कहता हों, जब तिसको तू भले प्रकार विचारेगा तब जेती कछु मलीन मनकी वृत्ति हैं तिनका अभाव हो जायगा. जैसे महाप्रलयके सूर्यकर मंदराचल पर्वत जलजाता है. ताते हे रामजी ! वैराग्य अरु अभ्यासके बलकर इस मनको अपने विषे लीनकर शांतात्मा होवहु. तैंने बालकावस्थासों लेकर अभ्यास कर रक्खा है, ताते मन उपशम पायके आत्मपदको प्राप्त होवेगा. हे रामजी! सत्संग अरु सतशास्त्र द्वारा जो आत्मपद पाए हैं सो सुखी भये हैं फिर तिनको दुःख नहीं लगता; काहेते जो दुःख देहाभिमानकर होता है सो देहका अभिमान तो उसने त्याग दिया है; तैसे जिसने देहका अभिमान त्याग दिया है अरु देहका आत्मता करके बहुरि ग्रहण नहीं करता ताते सुखी रहता है. हे रामजी ! जिनने आत्मबल धरके विचारद्वारा आत्मपदको पाया है सो अकृत्रिम आनंदकर सदा पूर्ण है, सब जगत् तिसको आनंदरूप भासता है अरु जो असम्यग्दर्शी हैं, तिनको जगत् अनर्थरूप भासता है; हे रामजी ! संसरनरूप जो यह संसार सर्प है, सो अज्ञानीके हृदयमें दृढ हो गया है; सो योगरूपी गारुड़मंत्र करके नष्ट हो जाता है, अन्यथा नहीं होता;

और सर्पका विष है सो एक जन्ममें मारता है अरु संसरनरूप जो विष है तिस करके अनेक जन्म पायके मरता चला आता है, शांतिमान कदाचित् नहीं होता.

हे रामजी ! जिन पुरुषोंने सत्संग अरु सत् शास्त्रके वचनद्वारा आत्मपदको पाया है सो आनंदित भये हैं अरु अंतर्बाहिर सब जगत् इनको आनंदरूप भासता है अरु सब क्रिया करनेमें आनंद विलास है और जिनने सत्संग अरु सत्शास्त्रका विचार त्यागा है अरु संसारके सन्मुख हैं, तिसकर तिनको संसार अनर्थरूप है; सो ऐसा दुःख देता है जैसे सर्पके दंशते दुःखी होते हैं अरु शस्त्रकर घायल होते हैं अरु अग्निमें पारेकी नाईं जलते हैं अरु जेवरीके साथ बंध होते हैं अरु अंध कूपमें गिरनेते कष्ट पाते हैं, तैसे संसारमें मनुष्य दुःख पाते हैं. हे रामजी ! जिन पुरुषोंने सत्संग अरु सतशास्त्र द्वारा आत्मपदको नहीं पाया, सो ऐसे कष्ट पाते हैं अर्थात् नरकरूपी अग्निमें जरते हैं, अरुचिके विष पीते हैं, पाषाणकी वर्षाकर चूरण होते हैं, कोल्हूमें पीसे जाते हैं अरु शस्त्र साथ कटते हैं; इत्यादिक जो बडे कष्ट हैं सो तिनको प्राप्त होते हैं; हे रामजी ! ऐसा दुःख कोई नहीं जो इस जीवको प्राप्त नहीं होता; आत्माके प्रमादसों सब दुःख होते हैं अरु जिन पदार्थोंको यह रमणीक जानते हैं सो चक्रकी नाईं चंचल हैं, कबहूं स्थिर नहीं रहते; सतमार्गको त्यागकर जो इनकी इच्छा करते हैं सो महादुःखको प्राप्त होते हैं अरु जिस पुरुषने संसारको विरस जाना है और पुरुषार्थ की तरफ दृढ भया है, तिसको आत्मपदकी प्राप्ति होती है.

हे रामजी ! जिन पुरुषनको आत्मपदकी प्राप्ति भई है तिनको फिर दुःख नहीं होता और तिनके दुःख जो नष्ट नहीं होते तो ज्ञानके निमित्त पुरुषार्थ कोऊ नहीं करता. जो अज्ञानी हैं तिनको संसार दुःखरूप है अरु ज्ञानीको सब जगत् आनंदरूप है अपने आपुई है उनको भ्रम कोई नहीं रहता. हे रामजी ! ज्ञानवानमें नानाप्रकारकी चेष्टा भी दृष्टि आती है तो भी सदा शांतरूप है अरु आनंदरूप है; संसारका दुःख कोऊ नहीं स्पर्श कर सकता काहेते कि, तिनने ज्ञानरूपी कवच पहिरा है.

हे रामजी ! ज्ञानवानको भी दुःख होता है; बडे बडे ब्रह्मर्षि अरु राजर्षि बहुत ज्ञानवान भये हैं, सो हू दुःख को प्राप्त होते हैं; परन्तु दुःखसों आतुर नहीं होते, क्योंकि जो ज्ञानवानने ज्ञानका कवच पहिरा है, तातै कोऊ दुःख स्पर्श नहीं करता, सदा आनंदरूप है. जैसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र नाना प्रकारकी चेष्टा करते और जीवको दृष्टि आवते हैं अरु अंदरते सदा शांतरूप हैं; इस प्रकार और भी जो ज्ञानवान उत्तम पुरुष हैं सो शांतरूप हैं, ताको कर्त्ताका अभिमान कोऊ नहीं फुरता. हे रामजी ! अज्ञानरूपी जो मेघ है, तिसकर मोहरूपी कुहाडाका वृक्ष है सो ज्ञानरूपी शरत्काल करके नष्ट हो जाता है; तातै स्वसत्ताको प्राप्त होवै है अरु सदा आनंदकर पूर्ण है. हे रामजी ! जो कछु क्रिया करते हैं सो तिनके विलासरूप है अरु सब जगत् आनंदरूप है अरु शरीर रूपी रथ, इंद्रियरूपी अश्व और मनरूपी रस्सा, तासों अश्वको खैंचता है अरु बुद्धिरूपी रथवाही है, तिस रथमें यह पुरुष बैठा है अरु इंद्रियरूपी अश्व इसको खोटे मार्गमें डारते हैं अरु ज्ञानवानको इंद्रियरूपी अश्व हैं सो ऐसे हैं कि, जहां जाते हैं तहां आनंदरूप हैं, किसी ठौरमें खेद नहीं पाता; सब क्रियामें उनको विलास है, सर्वदा आनंद कर तृप्त रहते हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे तत्त्वज्ञमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः १३.

अथ समवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इसी दृष्टिको आश्रयकर जो हृदय पुष्ट होवे, बहुरि संसारके इष्ट अनिष्ट कर्म कर चलायमान न होवे, जिस पुरुषको इस प्रकार आत्मपदकी प्राप्ति भई है सो परम आनंदित भये हैं; शोकको नहीं करता है, न याचना करता है, उपाधिते रहित परम शांत रूप अमृत कर पूर्ण होय रहे हैं; सो पुरुष नाना प्रकारकी चेष्टा करते दृष्टि आते हैं, परन्तु कछु नहीं करते, जहां उनके मनकी वृत्ति जाती है तहां आत्मसत्ता भासतीहै,सो आत्मानंदकर पूर्ण होय रहे हैं. जैसे पूर्णमासीका

चंद्रमा अमृतकरि पूर्ण रहता है, तैसे ज्ञानवान परमानंद करि पूर्ण रहता है. हे रामजी ! यह जो मैंने तुमको अमृतरूपी वृत्ति कही है, इसको जब जानैगा तब तुमको साक्षात्कार होवेगा. जब जिसको आत्मज्ञानकी प्राप्ति होती है. तब सब दुःख नष्ट हो जाते हैं; जैसे चंद्रमाके मंडलमें अंधकार नहीं होता, तैसे ज्ञानीको अशांति कबहूँ नहीं होती और जो कछु क्रिया करते हैं तिसमें दुःख पाते हैं; जैसे कंकरके वृक्षमें कंटककी उत्पत्ति होती है, तैसे अज्ञानीकी दुःखकी उत्पत्ति होती है.

हे रामजी ! इस जीवको मूर्खता करके बडे दुःख प्राप्त होते हैं, ऐसा अद्भुत दुःख और कोई नहीं अरु किसी आपदा करके भी ऐसा दुःख नहीं होता; जैसा दुःख मूर्खता करके पाते हैं; ऐसा दुःख कोई नहीं, हे रामजी ! हाथमें ठीकरा ले चंडालके घरकी भिक्षा ग्रहण करै और आत्मतत्त्वकी जिज्ञासा होवे तौ भी और ऐश्वर्यते श्रेष्ठ है, परंतु मूर्खतासों जीवना व्यर्थ है, तिस मूर्खताको दूर करनेको मोक्ष उपाय मैं कहता हों.

हे रामजी ! यह मोक्ष उपाय परम बोधका कारण है; कछुक बुद्धि संस्कारी होवे, अर्थ यह जो पद पदार्थके जाननेहारी होवे अरु मोक्ष उपाय शास्त्रको विचारे तो तिसकी मूर्खता नष्ट हो जावैगी अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवेगी. जैसा आत्मबोधका कारण यह शास्त्र है तैसा और शास्त्र त्रिलोकी विषे कोई नहीं. नाना प्रकारके दृष्टांत सहित इतिहास हैं जामें तिसको जब विचारेगा तब परमानंदको प्राप्त होवेगा; अज्ञान रूपी तिमिर नाश करनेको ज्ञानरूपी शलाका है. जैसे अंधकारको सूर्य नाश करता है, तैसे अज्ञानको यह शास्त्रका विचार नाश करता है. हे रामजी! जिस प्रकार इसका कल्याण होता है सो श्रवण कर. गुरु जो ज्ञानवान है सो शास्त्रका उपदेश करै अरु अपने अनुभवसों ज्ञान पावे. जब गुरु अरु शास्त्र और अपना अनुभव यह तीनों इकट्ठे मिलें तब इसका कल्याण होवे; जबलग अकृत्रिम आनंदको प्राप्त नहीं भया, तबलगि दृढ अभ्यास करै; तिस अकृत्रिम आनंदको प्राप्ति करनेहारा मैं गुरु हों जीवमात्रका मैं परम मित्र हों, ऐसा अपर कोऊ नहीं हमारी संगति जीवको आनंद प्राप्त करनहारी है, ताते जो कछु मैं कहता हों सो तू कर.

हे रामजी! यह जो संसारके भोग हैं सो क्षणमात्र हैं; ताते इनको त्याग करहु और विषयके परिणाममें दुःख अनंत हैं; इनको दुःखरूप जानकर त्याग दे अरु हम सारिखे ज्ञानवानका संग कर और हमारे वचनके विचारते तेरे सब दुःख नष्ट हो जायँगे. हे रामजी ! जिस पुरुषने हमारे संग प्रीति करी है तिसको हमने आनंद पदकी प्राप्ति कर दीनी है, जिस आनंदते ब्रह्मादिक आनंदित भये हैं और ज्ञानवानहू आनंदित भये हैं सो निर्दुःख पदको प्राप्त भये हैं. हे रामजी ! श्रेष्ठ पुरुष सोई है; जाने हमारे साथ प्रीति कीनी है. जिसने संत अरु शास्त्रके विचार-द्वारा दृश्यको अदृश्य जाना है सो निर्भय हुआ है. आत्माका प्रमाद जीवको दीन करता है; अज्ञानीका हृदयरूपी कमल तबलग सकुचा रहता है जब लग तृष्णारूपी रात्रि होती है जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होता है, तब तृष्णारूपी रात्रि नष्ट हो जाती है अरु हृदयरूपी कमल आनंद कर खिलि आते हैं.

हे रामजी! जिस पुरुषने परमार्थ मार्गको त्यागा है अरु संसारके खान पान आदि भोगमें मग्न हुआ है तिसको तू मेढुक जान,जैसे कीचमें मेढुक परा शब्द करता है तैसा वह पुरुष है. हे रामजी ! यह संसार बडा आपदाका समुद्र है, तामें जो कोऊ श्रेष्ठ पुरुष है. सो सत्संग अरु सतशास्त्रके विचार करके संसार समुद्र उल्लंघता है अरु परमानंदको प्राप्त होता है आदि, अंत,मध्य रहित निर्भय पदको प्राप्त होता है, अरु जो संसारसमुद्रके सन्मुख हुआ है सो दुःखते दुःखरूप पदको प्राप्त भया है, कष्टते कष्ट, नरकते नरकको प्राप्त होता है. जैसे विषको विष जान तिसका पान करता है, सो विष उसको नाश करता है,तैसे जो पुरुष संसार असत्यजानके बहुरि संसारकी ओर यत्न करता है सो मृत्युको प्राप्त होता है. हे रामजी! जो पुरुष आत्म पदको कल्याणरूप जानता है अरु आत्मपदके अभ्यास का त्यागकर संसारकी ओर धावता है, सो जैसे किसीके घरमें अग्नि लगी अरु तृणका घर अरु तृणकी शय्या करिके शयन करता है, सो जैसे नाशको पावे तैसे जन्म मृत्युको प्राप्त होवहिंगे और संसारके पदार्थ देखकर राग दोषवान् हुए हैं, सो सुख बिजुलीका चमक जैसा है,क्यों जो होयके मिट जावे, स्थिर नहीं रहै, तैसा संसारका दुःख आगमापायी है.

हे रामजी! यह संसार अविचार करके भासता है अरु विचार कियेते लीन हो जाता है; विचार कियेते लीन जो न होता तो तुमको उपदेश करनेका काम नहीं था; सो तो विचार कियेते लीन हो जाता है इसी कारणते पुरुषार्थ चाहिये. जैसे हाथमें दीपक होवे अरु अंधकूपमें गिरै सो मूर्खता है तैसे संसारके भ्रमके निवारणहारे गुरु शास्त्र विद्यमान तिनकी शरण न आवै सो मूर्ख है. हे रामजी! जो पुरुष सन्तकी संगति अरु सतशास्त्रके विचार द्वारा आत्मपदको पाया है, सो पुरुष केवल कैवल्य भावको प्राप्त भये; अर्थ यह जो शुद्ध चैतन्यको प्राप्त हुए हैं अरु संसार भ्रम तिनका निवृत्त हो गया है.

हे रामजी! यह संसार मनके स्मरणते उपजा है, सो इसका कल्याण बांधव करके नहीं होना है अरु धन करके भी नहीं होना है, प्रजा करके भी नहीं होना है अरु तीर्थ अरु देवद्वार करके भी नहीं होना है, ऐश्वर्य करके भी नहीं होना है किंतु एक मनके जीतनेते कल्याण होता है.

हे रामजी! जिसको ज्ञानी परमपद कहते हैं और जिसको रसायन कहते हैं; जिसके पायेते इसका नाश नहीं होय अरु अमर होवे अरु सब सुखकी पूर्णता होवे, इसका साधन समता अरु संतोष है, इनकर ज्ञान उत्पन्न होता है सो आत्मज्ञान रूपी एक वृक्ष है, तिसका फूल शांति है अरु स्थिति इसका फल है; जिस पुरुषको यह ज्ञान प्राप्त हुआ है सो शांतिमान हुआ है सो निर्लेप रहता है, तिसको संसारका भावाभावरूप स्पर्श नहीं होता है. जैसे आकाशमें सूर्य उदय होता है तब जगत्की क्रिया होती है, फिर जब सो अदृश्य होता है तब जगत्की क्रिया भी लीन हो जाती है. जैसे तिस क्रिया होने न होनेमें आकाश ज्यों का त्यों है, तैसे ज्ञानवान सदा निर्लेप है; तिस आत्मज्ञानकी उत्पत्तिका उपाय यह मेरा श्रेष्ठ शास्त्र है.

हे रामजी! जो पुरुष इस मोक्षोपाय शास्त्रको श्रद्धा संयुक्त पढै अथवा सुनै तो थोड़े दिनसों मोक्षका भागी होय रहै अरु मोक्षके चार द्वारपाल हैं सो मैं तुमको कहता हों; सो इनमेंते एकहू जब अपने वश होय तब मोक्षद्वारमें इसका शीघ्र प्रवेश होवे, सो चारोंका नाम कहों हों सो सुन.

हे रामजी! यह सम इसकी परम विश्रामका कारण है अरु यह संसार जो दीखता है सो मरुस्थलकी नदीवत् है, इसको देखकर मूर्ख अज्ञानीरूपी जो मृग है सो सुखरूपी जल जानकर दौरता है अरु शांतिको नहीं प्राप्त होता जब समरूपी मेघकी वर्षा होवे तब सुखी होवे. हे रामजी! सम सो परम आनंद है अरु सम सो परमपद है और शिवप्रद है, जिस पुरुषने सम पाया है सो संसार समुद्रते पार हुआ है, तिसको शत्रु भी मित्र हो जाते हैं. हे रामजी! जैसे जब चन्द्रमाका उदय होता है तब अमृतकी कण फूटती है अरु शीतलता होती है, तैसे जिसके हृदयमें समरूपी चन्द्रमा उदय होता है, तिसके सब ताप मिट जाते हैं अरु परम शांतिमान होते हैं; हे रामजी! यह सम देवताके अमृत समान है, वही परप अमृत है, सम करके इसको परम शोभा प्राप्त होती है. जैसे पूर्णमासीके चन्द्रमाको कांति परम उज्ज्वल होती है, तैसे समको पायके उसकी उज्ज्वल कांति होती है, जैसे विष्णुके दो हृदय हैं सो एकतो अपने शरीरमें है; दूसरा सन्तमें है, तैसे इसके दो हृदय होते हैं, एक अपने शरीरमें, दूसरा समभी इनका हृदय होता है; ऐसा आनंद अमृतके पान कियेतेहू नहीं होता अरु लक्ष्मीकी प्राप्ति तेभी नहीं होता, जो आनंद समवानको होता है.

हे रामजी! प्राणहूते भी प्रिय कोई होवे सो अंतर्द्धान कर फिर प्राप्त होवे, तैसा आनंद नहीं होवे ऐसा आनंद समवानको होवे. तिसके दर्शनकर भी आनंद प्राप्त होता है अरु ऐसा आनंद राजाको भी नहीं होता जो बाहरते श्रेष्ठ मंत्री होता है अरु अन्तरते सुंदर स्त्रियां होती हैं, तिनकर भी ऐसा आनंद नहीं होता, जैसा आनंद समसंपन्न पुरुषको होता है हे रामजी! जिस पुरुषको समकी प्राप्ति भई है सो वंदन करने योग्य है अरु पूजने योग्य है; जिसको समकी प्राप्ति भई है तिसको उद्वेग नहीं आवे अरु लोकहूते उद्वेग नहीं पावे, उसकी क्रिया अमृत समान है अरु वचन उसके अमृतकी नाईं मीठे हैं; जैसे चंद्रमाकी किरण शीतल अरु अमृत रूप है सो सबको हृदयाराम है, तैसे संत जनके वचन हैं जिस पुरुषको समकी प्राप्ति भई है तिसकी संगति जब इस जीवको प्राप्त होती है तब सब परम आनंदित होते हैं.

हे रामजी! जैसे बालक माताको पायके आनंदित होता है, तैसे जिसको समकी प्राप्ति भई है तिसका संगकर जीव अधिक आनंदवान् होता है. जैसे किसीका बांधव मुवा हुआ फिर आवे और उसको आनंद प्राप्त होवे, तिसते भी अधिक आनंद समसम्पन्न पुरुषको पायके होता है. हे रामजी! ऐसा आनंद चक्रवर्ती राज्यके पायेते भी तिसको नहीं होता. अरु त्रिलोकीका राज्य पायेते भी नहीं होता, जिसको समकी प्राप्ति भई है तिसके शत्रु भी मित्र होजाते हैं; तिसकर कछु भयभीत नहीं होता अरु सर्पका भय भी तिसको नहीं रहता, सिंहका भय भी तिसको नहीं रहता, औरहू किसीका भय नहीं रहता; सदा निर्भय शांतरूप रहता है. हे रामजी! जो कोऊ कष्ट आय प्राप्त होवे और कालकी अग्नि आय लगे तो भी सो चलायमान नहीं होता, सदा शांतरूप रहता है; जैसे शीतल चाँदनी चन्द्रमामें स्थित है, तैसे जो कछु शुभ गुण अरु सम्पदा हैं सो सब समवान्के हृदयमें आय स्थित होते हैं.

हे रामजी! जो पुरुष अध्यात्मिकादि तापकर जलता है, तिसको हृदयमें समकी प्राप्ति होवे, तब ताप मिट जाते हैं. जैसे तप्त पृथ्वी बर्षा करके शीतल हो जाती है, तैसे उसका हृदय शीतल हो जाता है. जिसको समकी प्राप्ति भई है सो सब क्रियामें आनंदरूप है तिसको दुःख कोऊ नहीं स्पर्श करता; जैसे वज्र शिलाको बाण वेध नहीं सकता, तैसे जिस पुरुषने समरूपी कवच पहिरा है उसको अध्यात्मिकादि ताप वेध नहीं सकता; वह सर्वदा शीतलरूप रहता है.

हे रामजी! तपस्वी, पंडित, याज्ञिक, धनाढ्य, सो पूजा, मान करने योग्य हैं, परंतु जिसको समकी प्राप्ति भई है सो सबसे उत्तम है. सो सबको पूजने योग्य है; उसके मनकी वृत्ति आत्मतत्त्वको ग्रहण करती है अरु सब क्रियामें शोभत है. जिस पुरुषको शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह इंद्रियके विषय, इष्ट अनिष्टमें राग द्वेष नहीं होता तिसको शांतात्मा कहते हैं. हे रामजी! जो संसारके रमणीय पदार्थमें बध्यमान नहीं होता अरु आत्मानंद कर पूर्ण है तिसको शांतिमान कहते हैं वाको संसारके शुभ अशुभ कर मलीनपना नहीं लगता; सदा निर्लेप

रहता है. जैसे आकाश सब पदार्थते निर्लेप है, तैसे शांतिमान सदा निर्लेप रहता है. हे रामजी ! ऐसे जो पुरुष हैं सो इष्ट विषयकी प्राप्तिमें हर्षवान होते नहीं अरु अनिष्ट विषयकी प्राप्तिमें शोकवान होते नहीं अरु अंतरते सदा शांत रहते हैं; उनको कोऊ दुःख स्पर्श नहीं करता; अपने आपमें सदा परमानंदरूप रहते हैं. जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे शांतिके पाये सर्व दुःख नष्ट हो जाता है; सदा निर्विकार रहते हैं.

हे रामजी ! सो पुरुष सब चेष्टा करते दृष्टि आते हैं परंतु सदा निर्गुणरूप हैं, कोऊ क्रिया उनको स्पर्श नहीं करती. जैसे जलमें कमल निर्लेप रहता है, तैसे शांतिमान् सदा निर्लेप रहता है. हे रामजी ! जो पुरुष बडे राज्य सम्पदाको पायकर अरु बडी आपदाको पायकर ज्योंका त्यों अलग रहता है, उसे शांतिमान कहिये. हे रामजी ! जो पुरुष शांतिते रहित है, तिसका चित्त क्षण क्षण राग द्वेष कर तपता है अरु जिसको शांतिकी प्राप्ति भई है, सो अंतर बाहिर शीतल है अरु सदा एकरस है. जैसे हिमालय सदा शीतल रहता है, तैसे वह सदा शीतल रहता है वाके मुखकी कांति बहुत सुंदर हो जाती है. जैसे निष्कलंक चंद्रमा होवे तैसे शांतिमान पुरुष निष्कलंक रहता है. हे रामजी ! जिनको शांति प्राप्त भई है सो परम आनंदित हुए हैं, परम लाभ तिनको प्राप्त होता है. ज्ञानी इसीको परम पद कहते हैं जिसको पुरुषार्थ करना है, तिसको शांतिकी प्राप्ति करनी चहिये. हे रामजी ! जैसे मैंने कहा है तिस क्रम करके शांतिका ग्रहण करो, तब संसार समुद्रके पार पहुँचोगे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे समनिरूपणं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः १४.

अथ विचारवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! अब विचारका निरूपण सुन. जब हृदय शुद्ध होता है तब विचार होता है अरु शास्त्रार्थ विचारद्वारा बुद्धि तीक्ष्ण होती है

हे रामजी! अज्ञानरूपी जो वन है तिसमें आपदारूपी बेलिकी उत्पत्ति होती है. तिसको विचाररूपी खड्ग करके काटेगा तब शांत आत्मा होवेगा अरु मोहरूपी हस्ती है सो जीवके हृदयकमलका खंड खंड कर डारता है; अभिप्राय यह जो इष्ट अनिष्ट पदार्थमें राग द्वेषकर छेदा जाता नहीं; जब विचाररूपी सिंह प्रगटे तब मोहरूपी हस्तीका नाश करै,फिर शांतात्मा होवे.

हे रामजी! जिसको कछु सिद्धता प्राप्त हुई है सो विचार अरु पुरुषार्थ कर भई है; जो राजा होता है सो प्रथम विचार कर पुरुषार्थ करता है, तिसकर राज्यको प्राप्त होता है. बल, बुद्धि अरु तेज चतुर्थ जो पदार्थका आगमन अरु पंचम पदार्थकी प्राप्ति होती है सो पाँचोकी प्राप्ति विचारकर होती है. अर्थ यह जो इंद्रियोंका जीतना अरु बुद्धि सो आत्मा व्यापिनी अरु तेज पदार्थका आगमन इनकी प्राप्ति विचारसों होती है. हे रामजी! जिस पुरुषने विचारका आश्रय लिया है सो विचारकी दृढता करके जिसकी वांछा करतेहैं तिसको पावते हैं; ताते विचार इसका परम मित्र है. जो विचारवान् पुरुष है सो आपदामें मग्न नहीं होता. जैसे तुम्बी जलमें डुबत नहीं, तैसे वह आपदामें डुबत नहीं. हे रामजी! वह विचारसंयुक्त जो करता है,देता है, लेता है सो सब क्रिया सिद्धताका कारणरूप होती है. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष विचारकी दृढता करके सिद्ध होती हैं; विचाररूपी कल्पवृक्ष है तिसमें जिसका अभ्यास होता है सोई पदार्थकी सिद्धिको पाता है.

हे रामजी! शुद्ध ब्रह्मका विचार ग्रहणकर, आत्मज्ञानको प्राप्त होडु; जैसे दीपकसों कर पदार्थका ज्ञान होता है तैसे पुरुष विचारसों कर सत्य असत्यको जानता है. असत्यको त्यागकर सत्यकी ओर यत्न किया है तिसको विचारवान् कहते हैं. हे रामजी! संसाररूपी समुद्रविषे आपदा रूपी तरंग चलते हैं जो विचारवान् पुरुष है सो संसारके भाव अभावमें कष्टवान् नहीं होता है. जो कछु विचार संयुक्त क्रिया होती है तिसका परिणाम सुख है. जो विचार विना चेष्टा होती है. तिसकर दुःख प्राप्त होता है. हे रामजी! अविचार रूपी कंटक वृक्ष है, तिसते दुःखरूपी

कण्टक पडे उत्पन्न होते हैं अरु अविचाररूपी रात्रि है तिसमें तृष्णारूपी पिशाचनी आय विचरती है. जब विचाररूपी सूर्य उदय होता है तब अविचाररूपी रात्रि अरु तृष्णारूपी पिशाचनी नष्ट होजाती है.

हे रामजी ! हमारा यही आशिर्वाद है कि, तुम्हारे हृदयसों अविचार रूपी रात्रि नष्ट होइ. विचाररूपी सूर्यकरके अविचारित संसार दुःखका नाश होता है; जैसे बालक अविचार करके अपनी परछैयांको बैताल कल्पके भयको पाता है अरु विचार कियेते भय नष्ट हो जाता है; तैसे अविचार करके संसार दुःखको देता है और सतशास्त्रकी युक्तिकर विचार कियेते संसारभय नष्ट होजाता है. हे रामजी ! जहाँ विचार है तहां दुःख नहीं है.जैसे जहां प्रकाश होता है तहां अंधकार नहीं रहता है जहां प्रकाश नहीं तहां अंधकार रहता है तैसे जहां विचार है, तहां संसारभय नहीं है अरु जहां विचार नहीं, तहां संसार भय रहता है. अरु जहां आत्म विचार होता है तहां सुखको देनेहारे शुभगुण आय स्थित होते हैं जैसे मानससरोवरमें कमलकी उत्पत्ति होती है,तैसे विचारमें शुभगुणकी उत्पत्ति होती है जहां विचार नहीं तहां दुःखका आगमन होता है.

हे रामजी ! जो कछु अविचारकर क्रिया करते हैं, सो दुःखका कारण होता है. जैसे चूहा बिलको खोदके मृत्तिका निकासता है सो जहां इकट्ठी होती हैं, तहाँ बेलिकी उत्पत्ति होती है, तैसे अविचार कर यह पुरुष मृत्तिकारूपी पाप क्रियाको इकट्ठी करता है तिसते आपदा रूपी बेलि उत्पन्न होती है अरु अविचाररूपी घुनका खाया सूखा वृक्ष है, तिसको सुखरूपी फल चाहते हैं तेऊ नहीं निकसते हैं सो अविचार किसका नाम है ? जिस करके शुभक्रिया न होवे अरु जिसकर शास्त्रानुसार क्रिया न होवे, तिसका नाम अविचार है.

हे रामजी ! विवेकरूपी राजा है अरु विचारूपी प्रजा है जहां विवेक रूपी राजा आता है तहां विचाररूपी प्रजा तिनके साथ फिरती है अरु जहां विचाररूपी प्रजा आती है तहां विवेकरूपी राजा भी आता है जो पुरुष विचार करके संपन्न है, सो पूजने योग्य है तिसको सब कोऊ नमस्कार करते हैं जैसे द्वितीयाके चन्द्रमाको सब नमस्कार करते हैं तैसे विचार-

वान्को सब नमस्कार करते हैं हे रामजी ! हमारे देखत देखत अल्पबुद्धिहू विचारकी दृढताते मोक्षपदको प्राप्त भये हैं ताते विचार सबका परम मित्र है. विचारवाला पुरुष अंतर बाहिर शीतल रहते हैं जैसे हिमालय पर्वत अंतर बाहिर शीतल रहता है, तैसे वह भी शीतल रहता है. देख ! विचार करके ऐसे पदको प्राप्त होता है. जो पद नित्य है अरु स्वच्छ है, अनंत है, परमानंदरूप है, तिसको पायकर तिसके त्यागकी इच्छा होती नहीं औरके ग्रहणकी इच्छा नहीं होती है उनको इष्ट अनिष्ट विषे सब समान है. जैसे तरंगके होनेमें अरु लीन होनेमें समुद्र समान रहता है, तैसे विवेकी पुरुषको इष्ट अनिष्ट विषे समता रहती है अरु संसार भ्रम मिट जाता है आधाराधेयते रहित केवल अद्वैत तत्त्व उसको प्राप्त होता है.

हे रामजी ! यह जगत् अपने मनके मोहते उपजता है अरु अविचार कर दुःखदायी दीखता है. जैसे अविचार करके बालकको वैताल भासता है, तैसे इसको जगत् भासता है, जब ब्रह्म विचारकी प्राप्ति होवे तब जगत्भ्रम नष्ट हो जावे. हे रामजी ! जिसके हृदयमें विचार होता है, तहां समताकी उत्पत्ति होती है. जैसे बीजते अंकुर निकल आता है, तैसे विचारते समता हो आती है अरु विचारवान पुरुष जिसकी ओर देखता है, तिस ओर आनंद दृष्टि आता है, दुःख कोऊ नहीं भासता है जैसे सूर्यको अंधकार दृष्टि नहीं आता है, तैसे विचारवानको दुःख दृष्टिमें नहीं आता जहाँ अविचार है तहाँ दुःखहै जहां विचार है तहां सुख है, जैसे अन्धकारके अभाव हुए बैतालके भयका अभाव हो जाता है तैसे विचार कियेते दुःखका अभाव हो जाता है.

हे रामजी ! संसाररूपी दीर्घ रोग है तिसका नाश करनेका विचार बडा औषध है. जिसको विचारकी प्राप्ति भई है, तिसके मुखकी कांति उज्ज्वल हो जाती है. जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाकी उज्ज्वल कांति होती है. तैसी विचारवानके मुखकी उज्ज्वल कांति होती है. हे रामजी ! विचार करके इसको परम पदकी प्राप्ति होती है जिस कारि अर्थसिद्धि होवे तिसका नाम विचार है. अरु जिस कारि अनर्थ सिद्धि होवे तिसका

नाम अविचार है अविचाररूपी मदिरा है, जो इसका पान करता है सो उन्मत्त हो जाता है तिसते शुभ विचार कोऊ नहीं हो आवता शास्त्रके अनुसार जो कछु क्रिया है सो ताते नहीं होती, ताते अविचार करि अर्थसिद्धि नहीं होती.

हे रामजी ! इच्छारूपी रोग है, सो विचाररूपी ओषध करके निवृत्त होता है, जिस पुरुषने विचार द्वारा परमार्थ सत्ताका आश्रय लिया है, सो परम शांत हो जाता है अरु हेय उपादेय बुद्धि तिसकी नहीं रहती सब दृश्यको साक्षीभूत होकर देखता है अरु संसारके भाव अभाव विषे ज्योंका त्यों रहता है अरु उदय अस्तते रहित निःसंगरूप है. जैसे समुद्र जलकारि पूर्ण है तैसे विचारवान आत्मतत्त्व कारि पूण है. जैसे अंधा कूपविषे परा हुआ हस्तके बल कारि निकसता है तैसे संसाररूपी अंधकूपमें गिरा हुआ विचारके आश्रय होकर विचारवान पुरुष निकसनेको समर्थ होता है.

हे रामजी ! राजाओंको कोऊ कष्ट आय प्राप्त होता है, तब वह विचार करके यत्न करते हैं तब कष्ट निवृत्ति हो जाता है ताते तू विचार कर देख कि किसीको कष्ट प्राप्त होता है सो विचारते मिटता है. तुम भी विचारका आश्रय करके सिद्धिको प्राप्त होहु, सो विचार इस कर प्राप्त होता है, जो वेद अरु वेदांतके सिद्धांतको श्रवण कर पाठकर भले प्रकार विचारेगा. तब विचारकी दृढता कर आत्मतत्वको प्राप्त होवेगा. जैसे प्रकाशकर पदार्थका ज्ञान होता है, तैसे गुरु अरु शास्त्रके वचन कर तत्त्वज्ञान होता है, जैसे प्रकाशमें अंधको पदार्थकी प्राप्ति नहीं होती है तैसे गुरु अरु शास्त्रसों जो विचारशून्य होवे तिसको आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती. हे रामजी ! जो विचाररूपी नेत्रकर संपन्न हैं सोई देखते हैं अरु विचाररूपी नेत्रते जो रहित हैं सो अंध हैं.

हे रामजी ! ऐसा विचार कर कि, मैं कौन हूं? अरु यह जगत् कौन है? अरु इसकी उत्पत्ति कैसी हुई है ? अरु लीन कैसे होता है? इस प्रकार संत अरु शास्त्रके अनुसार विचार कर. सत्यको सत्य जान अरु असत्यको असत्य जान जिसको असत्य जाना है तिसका त्याग कर अरु सत्यमें

स्थित होय इसीका नाम विचार है, इस विचार कर आत्मपदकी प्राप्ति होती है हे रामजी ! विचाररूपी दिव्यदृष्टि जिसको प्राप्त भई है तिसको सब पदार्थका ज्ञान होता है विचारसों आत्मपदकी प्राप्ति होती है, तिसको पायेते परिपूर्ण होता है फिर शुभ अशुभ संसारमें चलायमान नहीं होता ज्योंका त्यों रहता है; जब लग प्रारब्ध वेग होता है तबलग शरीरकी चेष्टा होती है जब लग अपनी इच्छा होवे, तब लग शरीरकी चेष्टा करै, बहुरि शरीरको त्याग कर केवल शुद्ध रूप हो जाता है, ताते.

हे रामजी ! ब्रह्मविचारको आश्रय कर संसार समुद्रको तर जा. जो कोऊ रोगी होता है, सो एता रुदन नहीं करता, जेता रुदन विचार रहित पुरुष करता है जिसको कष्ट प्राप्त होता है सो भी एता रुदन नहीं करता. हे रामजी ! जो पुरुष विचारते शून्य है तिसको सब आपदा आय प्राप्त होती हैं, जैसे सब नदी स्वभावसों समुद्रमें आय प्रवेश करती हैं, तैसे अविचारमें सब आपदा आय प्रवेश करती हैं. हे रामजी कीचका कीट होना सो भला है अरु गर्त्तका कंटक होना सो भी भला है, अरु आंधरे बिलमें सर्प होना सो भला है, परंतु विचारते रहित होना सो भला नहीं जो पुरुष विचारते रहित है अरु भोगमें दौरता है, सो श्वान है.

हे रामजी ! विचारते रहित पुरुष बडे कष्टको पाता है ताते एक क्षण-हू विचारते रहित नहीं रहना. विचारसों दृढ होकर निर्भय रहना; कि मैं कौंन हों ? अरु दृश्य क्या है ? ऐसा विचार करके सत्यरूप आत्माको ज्ञानकर दृश्यका त्याग करना. हे रामजी ! जो पुरुष विचारवान् है; सो संसार भोगमें नहीं गिर जाता; अरु सत्यमें स्थित होता है; विचार जब स्थिर होता है तब तिसते तत्त्वज्ञान होता है, तब तत्त्वज्ञानते विश्राम होता है, विश्रामते चित्तका उपशम होता है अरु चित्तके उपदेशमते सब दुःख नाश होते हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे विचारवर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः १५.

अथ संतोषवर्णनम्.

वसिष्ठ उवाच, हे अविचार शत्रुके नाश कर्त्ता रामजी ! जिस पुरुषको संतोष प्राप्त भया है; सो परम आनंदित हुआ है अरु त्रिलोकीका ऐश्वर्य उसको तृणकी नाईं तुच्छ भासता है. हे रामजी ! जो आनंद अमृतपान कियेते नहीं होता और जो आनंद त्रिलोकीके राज्यकर नहीं होता तैसा आनद संतोषवानको होता है. हे रामजी ! इच्छारूपी रात्रि है. अरु सो हृदयरूपी कमलको सकुचाय देती है और जब संतोषरूपी सूर्य उदय होता है, तब इच्छारूपी रात्रिका अभाव हो जाता है. जैसे क्षीर समुद्र उज्ज्वलता करके शोभता है, तैसे संतोषवानकी कांति सुशोभित होती है.

हे रामजी ! त्रिलोकीके राजाकी इच्छा निवृत्त न भई, तब सो दरिद्री है, अरु जो निर्धन है और संतोषवान है, सो सबका ईश्वर है. संतोष तिसकाई नाम है,श्रवण करि जो अप्राप्त वस्तुकी इच्छा न करै अरु प्राप्त हुए इष्ट अनिष्टमें राग द्वेष न धरै इसका नाम संतोष है; संतोष सोई परम पद है.संतोषवान पुरुष सदा आनंदरूप है अरु आत्मस्थितिसों तृप्त हुआ है तिसको और इच्छा कछु नहीं स्फुरती. अरु संतुष्टता कर तिसका हृदय प्रफुल्लित हुआ है. जैसे सूर्यके उदय हुए सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित होता है,तैसे संतोषवान् प्रफुल्लित हो जाता है. जो अप्राप्त वस्तु है तिसकी इच्छा नहीं करता अरु जो अनिच्छित प्राप्त भई है, तिसको यथाशास्त्रक्रम करके ग्रहण करता है, तिसका नाम संतोषवान् है. जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अमृतकर पूर्ण होता है, तैसे संतोषवान्का हृदय संतुष्टता करके पूर्ण होता है; अरु जो संतोषते रहित हैं, तिसके हृदयरूपी वनमें सदा दुःख अरु चितारूपी फूल फल उत्पन्न होतेई हैं.

हे रामजी ! जिसका चित्त संतोषते रहित है, तिसको नानाप्रकारकी इच्छा जैसे समुद्रमें नानाप्रकारके तरंग होते हैं, तैसे उपजती हैं. संतुष्टात्मा परम आनंदित है,तिसको जगत्के पदार्थमें हेयोपादेय बुद्धि नहीं होती. हे रामजी ! जैसा आनंद संतोषवानको होता है,तैसा आनंद अष्ट सिद्धिके

ऐश्वर्य करके भी नहीं होता. अरु अमृतके पान कियेते भी नहीं होता संतोषवान् सदा शांतिरूप है और सदा निर्मल रहता है. इच्छारूपी धूर सर्वदा उडती थी सो संतोषरूपी वर्षा कर शांत होगई है तिस कारणते संतोषवान् निर्मल है.

हे रामजी! संतोषवान पुरुष सबको प्यारा लगता है. जैसे आंबका परिपक्व फल सुंदर होता है अरु सबको प्यारा लगता है, तैसा संतोषवान पुरुष सबको प्यारा लगता है अरु स्तुति करने योग्य है, जिस पुरुषको संतोष प्राप्त भया है तिसको परम लाभ भया है. हे रामजी! जहां संतोष है तहां इच्छा नहीं रहती है अरु संतोषवान् भोगमें दीन होकर नहीं रहता वह उदारात्मा है; सर्वदा आनंदकर तृप्त रहता है. जैसे मेघ पवनके आयेते नष्ट हो जाता है, तैसे संतोषके आयेते इच्छा नष्ट हो जाती है, अरु जो संतोषवान पुरुष है, तिसको देवता, ऋषीश्वर, सब नमस्कार करते हैं अरु धन्य धन्य कहते हैं. हे रामजी! जब इस संतोषको धरेगा, तब परम शोभा पावेगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे संतोषवर्णनं नाम पंचदशः सर्गः १५॥

षोडशः सर्गः १६.

अथ साधुसङ्गवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! और जेते कछु दान तीर्थादिक साधन हैं, तिनकर आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती साधु संगकर आत्मपदकी प्राप्ति होती है, साधुसंगरूपी एक वृक्ष है तिसका फूल आत्मज्ञान है. जिस पुरुषने फूलकी इच्छा करी है, सो अनुभवरूपी फलको पाता है. हे रामजी! जो पुरुष आत्मानंदते रहित है, सो सत्संगकर आत्मानंदसों पूर्ण होता है अरु अज्ञान करके जो मृत्युको पाता है सो संतके संगते ज्ञान पायकर अमर होता है अरु जो आपदा करके दुःखी है सो सन्तके संगकर सम्पदाको पाता है आपदारूपी कमलका नाश करनहारा सत्संग रूपी बर्फकी बर्षा है, सतसंगसों आत्मबुद्धि प्राप्त होती है, तिस कर

मृत्युते रहित होता है और सब दुःखते रहित होता है अरु परमानंदको प्राप्त होता है.

हे रामजी ! सन्तकी संगतिकर इसके हृदयमें ज्ञानरूपी दीपक जलता है तिसकर अज्ञानरूपी तम नष्ट होजाता है अरु बडे ऐश्वर्यको प्राप्त होता है; बहुरि किसी भोग पदार्थकी इच्छा नहीं रहती अरु बोधवान होता है सबते उत्तम पदमें विराजता है. जैसे कल्पवृक्षके निकट गयेते वांछित फलकी प्राप्ति होती है, तैसे संसारसमुद्रके पार उतारनहारे सन्तजन हैं. जैसे धीवर नौका करके पार लगाता है तैसे सन्तजन युक्ति करकेसंसार-समुद्रते पार करते हैं अरु मोहरूपी मेघका नाशकरनहारा सन्तका संग है सो पवन है; जिनको देहादिक अनात्मसों स्नेह नष्ट भया है अरु शुद्ध आत्माविषे जाकी स्थिति है; तिसकर तृप्त भये हैं, बहुरि संसारके इष्ट अनिष्टते जाकी चलायमान बुद्धि नहीं होती, सदा समता भावमें स्थित रहे हैं ऐसे संसार समुद्रके पार उतारनेमें फूल जैसे अरु आपदारूपी बेलिको जड समेत नाश करनहारे हैं.

हे रामजी ! सन्तजन प्रकाशरूप हैं, तिनके संगते पदार्थकी प्राप्ति होती है अरु जो अपने पुरुषार्थरूपी नेत्रते हीन हुए हैं, तिनको पदार्थकी प्राप्ति नहीं होती; जिस पुरुषने सत्संगका त्याग किया है सो नरकरूपी अग्निमें लकडीकी नांई जरैगा अरु जिस पुरुषने सत्संग किया है, तिसको नरकरूपी अग्निका नाशकरनहार सत्संगरूपी मेघ है. हे रामजी ! सत्संग रूपी गंगा है, जाने सत्संगरूपी गंगाका स्नान किया ताको बहुरि तप, दान आदि साधनका प्रयोजन नहीं; वह सत्संग करके परम गतिको प्राप्त होनेको है ताते अपर सब उपाय त्यागकर सत्संगको खोजना जैसे निर्धन चिंतामणि आदिक धनको खोजता है तैसे मुमुक्षु सत्संगको खोजता है अध्यात्मिकादि तीन तापसों जलता है तिसको शीतल करनेहारा सत्संग है. जैसे तपी हुई पृथ्वी मेघकर शीतल होती है,तैसे सत्संगकर हृदय शीतल होता है.

हे रामजी ! मोहरूपी वृक्षका नाश करनहारा सत्संगरूप कुहाडा है, सत्संग करके यह पुरुष अविनाशी पदको प्राप्त होता है जिस पदके

पायेते और पावनेकी इच्छा नहीं रहती; ऐसा सबते उत्तम सत्संग है. जैसे सब अप्सरानते लक्ष्मी उत्तम है तैसे सत्संग कर्त्ता सबते उत्तम है ताते अपने अल्याणके निमित्त सत्संग करना तुमको योग्य है. हे रामजी ! यह जो चारों मोक्षके द्वारपाल हैं सो तुझको कहे, जिस पुरुषने इनके साथ प्रीति करी है, सो शीघ्र आत्मपदको प्राप्त होहिंगे. और जो इनकी सेवा नहीं करते सो मोक्षको प्राप्त नहीं होते. हे रामजी ! इन चारोंमेंसे एक हू जहाँ आता है, तहाँ तीनों औरहू आय जाते हैं; जहाँ समुद्र रहता है, तहाँ सब नदी आय जाती है; तैसे तहाँ सम आता है जहाँ सन्तोष, विचार अरु सत्संग ये तीनों आय जाते हैं, जहां साधु संगम होता है, तहां संतोष, विचार, अरु सम ये तीनों आय जाते हैं, जहाँ कल्पवृक्ष रहता है, तहाँ सब पदार्थ आय स्थित होते हैं; अरु जहाँ संतोष आता है, तहां सम विचार, सतसंग, ये तीनों आय जाते हैं. जैसे पूर्णमासीके चन्द्रामामें गुण कला सब इकट्ठी हो जाती हैं तैसे जहां संतोष आता है तहां और तीनों आय जाते हैं अरु जहां बिचार आता है तहां संतोष, उपशम अरु सत्संग, ये आय रहते हैं. जैसे श्रेष्ठ मंत्रीसों कर राज्यलक्ष्मी आय स्थित होती है तैसे जहां विचार होता है, तहां और भी तीनों आते हैं ताते हे रामजी ! चहां चारों इकट्ठे होते हैं तहां परम श्रेष्ठ जानना; ताते हे रामजी ! चारों न होहिं तो एकका तो अवश्य आश्रय करना; जब एक आवेगा, तब चारों आय स्थित होवेंगे. मोक्षकी प्राप्ति होनेके यह चार परम साधन हैं और उपायसों मुक्ति होनेकी नहीं.

श्लोक।

संतोषः परमो लाभः सत्संगः परमं धनम् ॥
विचारः परमं ज्ञानं शमश्च परमं सुखम् ॥ १ ॥

हे रामजी ! ये परम कल्याण कर्त्ता है सो जो इन चारों कारि संपन्न है, तिसकी ब्रह्मादिक स्तुति करते हैं, ताते दंतको दंत लगाय इनका आश्रय करके मनको वश कर ले.

हे रामजी ! मनरूपी हस्ती विचाररूपी अंकुश करके वश होता है, अरु मनरूपी वनमें वासनारूपी नदीं चलती है तिसके शुभ अशुभ दो

किनारे हैं अरु पुरुषार्थ करना यह है-कि, अशुभकी ओरते रोकके शुभकी ओर चलावना; जब अंतर्मुख आत्माके सन्मुख वृत्तिका प्रवाह होवेगा तब तू परम पदको प्राप्त होवेगा. हे रामजी! प्रथम तो पुरुषार्थ करना यही है कि, अविचार रूपी ऊँचाईको दूर करना; जब अविचाररूपी बेट दूर होवेगा तब आपही प्रवाह चलेगा. हे रामजी! दृश्यकी ओर जो प्रवाह चलता है सो बंधनका कारण है; जब आत्माकी ओर अंतर्मुखप्रवाह होवे तब मोक्षका कारण हो जाय आगे जो तेरी इच्छा होवे सो कर. इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे साधुसंगवर्णनं नाम षोडशः सर्गः॥ १६॥

सप्तदशः सर्गः १७.

अथ षट्प्रकरणवर्णनम्.

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! यह मेरे वचन हैं सो परम पावन हैं जो विचारवान् शुद्ध अधिकारी है, तिसको यह वचन परम बोधका कारण है; जो पुरुष शुद्ध पात्र है सो इन वचनोंको पायके शोभत है और वचनहू उसको पायके शोभा पाते हैं, जैसे मेघके अभावते शरदकालमें चन्द्रमा अरु आकाश शोभतें हैं, तैसे शुद्धपात्रमें यह वचन शोभते हैं अरु जिज्ञासु निर्मल वचनकी महिमा सुनके प्रसन्न होता है.

हे रामजी! तुम परमपात्र हो अरु मेरे वचन परम उत्तम हैं; यह महारामायण मोक्षोपायक शास्त्र है सो आत्मबोधका परम कारण है। अरु परम पावन वाक्यकी सिद्धता है अरु युक्ति युक्तार्थ वाक्य है। अरु नानाप्रकारके दृष्टांत कहे हैं. जिनके बहुत जन्मके पुण्य आय इकट्ठे होते हैं तिनको कल्पवृक्ष मिलता है. सो फल कर झुक पडता है; तब तिनको यह शास्त्र श्रवण होता है अरु नीचको इनका श्रवण प्राप्त नहीं होता है, उसकी वृत्ति इनके श्रवणमें नहीं आती है; जैसे धर्मात्मा राजाकी इच्छा न्याय शास्त्रके श्रवणमें होती है अरु जो पापात्मा राजा है तिसकी इच्छा नहीं होती.

हे रामजी! तैसे पुण्यवानकी इच्छा इसके श्रवणमें होती है अरु

अधर्म की इच्छा नहीं होती; जो कोई मोक्षोपायक इस रामायणका अध्ययन करैगा अथवा निष्काम संतके मुखते श्रद्धायुक्त श्रवण करैगा अरु आदिते लेकर अंतपर्यंत एकत्र भाव होकर विचारेगा, तब तिसका संसार भ्रम निवृत्त हो जावेगा. जैसे जेवरीके जाननते सर्पका भ्रम दूर हो जाता है, तैसे अद्वैतात्मतत्त्वके जाननेते तिसका संसार भ्रम नष्ट हो जवेगा. सो–

इस मोक्षोपायक शास्त्रके बत्तीस सहस्त्र श्लोक हैं अरु षट् प्रकरण हैं, प्रथम वैराग्य प्रकरण है सो वैराग्यका परम कारण है. हे रामजी! मरुस्थलमें वृक्ष नहीं होता, परंतु बडी वर्षा होवे तब तहां भी वृक्ष होता है; तैसे अज्ञानीका हृदय मरुस्थलकी नाईं है, तिसमें वैराग्यरूपी वृक्ष नहीं होता, परंतु यह शास्त्ररूपी जो बडी वर्षा होवे, तिसकर वैराग्यरूपी वृक्ष उत्पन्न होता है; तिसके एक सहस्त्र पांचसौ श्लोक हैं, तिसके अनंतर मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण है. तिसमें परम निर्मल वचन हैं. तिसकरके मलीन मणि हुई ताका मार्जन कियेते उज्ज्वल हो आती है तैसे यह वचनते मुमुक्षुका हृदय निर्मल होता है अरु विचारके बलते आत्मपद पानेको समर्थ होता है तिसके एक सहस्त्र श्लोक हैं तिसके अनंतर–उत्पत्तिप्रकरण है, तिसके पंच सहस्त्र श्लोक हैं; तिसमें बडी सुंदरकथायें दृष्टांत सहित कही हैं, जिस विचारते जगत्‌का सत्यताभाव मनते चलायमान रहता है, अर्थ यह जो जगत्‌का अत्यन्त अभाव जान परता है, हे रामजी! यह जगत्‌में जो मनुष्य. देवता, दैत्य, पर्वत, नदी आदि स्वर्ग लोक, पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश आदि स्थावरजंगम भासता है सो अज्ञान करके है अरु इसकी उत्पत्ति कैसे भई है; जैसे जेवरीमें सर्प होता है अरु सीपमें रूपा होता है अरु सूर्यके किरणमें जल दीखता है, आकाशमें तरुवर दीखता है और जैसे दूसरा चंद्रमा दीखता है जसे गंधर्व नगर भासते हैं, मनोराजकी सृष्टि भासती है अरु संकल्पपुर होता है अरु सुवर्णमें भूषण होता है, समुद्रमें तरंग होता है, आकाशमें नीलता दीखती है, जैसे नौकामें बैठतें किनारेके वृक्ष पर्वत चलते दृष्टि आते हैं अरु बादरके चलते चंद्रमा धावता दीखता है और थंभमें पुतरी-

भासती है भविष्यत नगरते आदि लेकर असत्य पदार्थ जैसे सत्य भासते हैं, तैसें सब जगत् आकाशरूप है, अज्ञानकरके अर्थाकार भासता है सो अज्ञान करके उत्पत्ति दीखती है अरु ज्ञान करके लीन हो जाता है जैसे निद्रामें,स्वप्न सृष्टिकी उत्पत्ति होती है अरु जागेते निवृत्ति हो जाती है,तैसे अविद्याकरके जगत्‌की उत्पत्ति होती है अरु सम्यक् ज्ञान करके निवृत्त हो जाती है सो अविद्या कछु वस्तुहू नहीं, सर्व ब्रह्म चिदाकाशरूप है सो शुद्ध है, अनंत है, परमानंद स्वरूप है, तिसमें न जगत् उपजता है, न लीन होता हैं, ज्यों की त्यों आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है तिसमें जगत् ऐसा है जैसे भीतमें चित्र होता है, जैसे थंभमें पुतरियां होती हैं अरु हुए विना भासती हैं तैसे यह सृष्टि मनमें रही है, वास्तवते कछु बनी नहीं सब आकाशरूप है जब चित्तसंवेदन स्पंदरूप होता है तब नाना प्रकारका जगत्‌होय के भासता है अरु जब निष्पंद होता है तब जगत् मिट जाता है, इस प्रकार जगत्‌की उत्पत्ति कही है. तिसके अनंतर स्थिति प्रकरण है तिसमें जगत् की स्थिति कही है; जैसे इंद्रका धनुष आकाशरूप है और अविचार करके रंगसहित भासता है. जैसे सूर्यकी किरणमें जल भासता है, जैसे जेवरमें सर्प भासता है सो सब सम्यग्दृष्टि करके निवृत्त होता है, तैसे अज्ञान करके जगत्‌की प्रतीति होती है सो मनोराज करके जगत् रच लेता है सो कछु उत्पन्न हुआ नहीं है, तैसे यह जगत् संकल्पमात्र है, जब लग मनोराज है, तब लग यह नगर होता है, जब मनोराजका अभाव हुआ है तब नगरका अभाव हो जाता है. जब लग अयान होता है तब लग जगत्‌की उत्पत्ति होती है, जब संकल्पका लय हुआ तब जगत् का अभाव हो जाता है.जैसे इंद्र, ब्रह्माके पुत्रहूकी दश सृष्टि संकल्प करके स्थित भई, तैसे यह जगत् भी है, कोऊ पदार्थ अर्थरूप नहीं. हे रामजी ! इस प्रकार स्थिति प्रकरण कहा है, तिसके तीन सहस्र श्लोक हैं. तिसके विचार करके जगत्‌की सत्यता जात रहती है तिसके अनंतर-

उपशम प्रकरण है तिसके पंच सहस्र श्लोक हैं तिसके विचारते अहंतत्वादिक वासना लीन हो जाती है, जैसे स्वप्नते जागेते वासना जात रहती है तैसे विचार कियेते अहंतादिक वासना लीन होती जाती है.काहेते

कि उसके निश्चयमें जगत् नहीं रहता जैसे एक पुरुष सोया है, तिसको स्वप्नमें जगत् भासता है और उसके निकट जो जाग्रत पुरुष है, तिसको स्वप्नका जगत् आकाशरूप है जब आकाशरूप हुआ तब वासना कैसे रहै? जब वासना नष्ट भई तब मनका उपशम हो जाता है, तब देखने मात्रको उसकी सब चेष्टा होती है और इसके मनमें अर्थरूप इच्छा नहीं होती, जैसे अग्निकी मूर्त्ति देखने मात्रको होती है, अर्थाकार नहीं होती तैसे उसकी चेष्टा होती है. हे रामजी! जब मनते इच्छा नष्ट होती है,तब मन भी निर्वाण हो जाता है, जैसे तेलते रहित दीपक निर्वाण होता है, तैसे इच्छाते रहित मन निर्वाण होता है,इस प्रकार उपशम प्रकरण है, तिसके अनन्तर निर्वाण प्रकरण है, जो शेष है तिसमें परम निर्वाण वचन कहे हैं; अज्ञान करके चित्त अरु चित्तका संबंध है सो विचार कियेते निर्वाण हो जाता है. जैसे शरद कालमें मेघके अभावते शुद्ध आकाश होता है, तैसे पुरुष विचार करके निर्मल होता है. हे रामजी! अहंकार रूपी पिशाच है सो विचार करके नष्ट होता है. जेती कछु इच्छा स्फूर्ति है सो निर्वाण हो जाती है, जैसे पत्थरकी शिला फुरनेते रहित होती है तैसे ज्ञानवान इच्छाते रहित होता है. तबजेतीकछु जगतकी यात्रा है सो इसको होय चुकती है जो कछु करना है सो कर चुकता है. हे रामजी! शरीर होते ही वह पुरुष अशरीरी हो जाता है अरु नाना प्रकारका जगत् तिसको नहीं भासता. जगतकी नेतीते वह रहित होता है अहं तत्त्वादिक तमरूप जगत् तिसको नहीं भासता है; जैसे सूर्यको अंधकार दृष्टि नहीं आवता, तैसे उसको जगत् दृष्टिमें नहीं आता अरु ऐसे बडे पदको प्राप्त होता है, जैसे सुमेरु पर्वतके किसी कोनमें कमल होता है, तिसके ऊपर भौरा स्थित रहते हैं, तैसे ब्रह्माके किसी कोनपै जगत् तुषाररूप है अरु जीव रूपी भौंरे तिसपर स्थित हैं, वह पुरुष अचिंत्य चिन्मात्र है, रूप अवलोकन, मन, तिसका आकाशरूप हो जाता है. तिस पदको वह प्राप्त होता है, जिस पदकी योग्य उपमा कहनेको ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र समर्थ नहीं, ऐसे अनुपमताके सदृश कोऊ नहीं है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे षट्प्रकरणवर्णनं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः १८.

अथ दृष्टांतवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! यह परम उत्तम वाक्य है, इसको विचारन हारा उत्तम पदको प्राप्त होता है, जैसे उत्तम खेतमें उत्तम बीच बोयेते उत्तम फलकी उत्पत्ति होती है, तैसे इसको विचारनहारा उत्तम पदको प्राप्त होता है; यह वाक्य कैसे हैं जो युक्ति पूर्वक वाक्य और युक्तिते रहित ऋषि वाक्य भी होहिं तब तिनका त्याग करिये और युक्ति पूर्वक वाक्यका अंगीकार करिये.

हे रामजी! जो ब्रह्माके वचन युक्तिते रहित होहिं तब तिनको भी सूखे तृणकी नाईं त्याग करिये अरु बालकके वचन युक्ति पूर्वक होहिं तो तिनका अंगीकार करिये अरु पिताके कूपका खारा जल होवे तो उसका त्याग करिये और निकट मिष्ट जलका कूप होवे, तब तिसका पान करिये तैसे बडे अरु छोटेका विचार न करके युक्ति पूर्वक वचनका अंगीकार करना; हे रामजी! मेरे वचन सब युक्तिपूर्वक हैं अरु बोधके परम कारण हैं; जो पुरुष एकाग्र होयके इस शास्त्रको आदिते अंतपर्यन्त पढै अथवा पंडित सों श्रवण करके विचारे तब तिसकी बुद्धि संस्कारित होवे.

प्रथम वैराग्यप्रकरणको विचारेगा तब वैराग्य उपजैगा जेते कछु जगत्के रमणीय भोग पदार्थ हैं तिनको विरस जानैगा अरु किसी पदार्थकी वांछा न करैगा; जब भोगमें वैराग्य होता है तब शांतिरूप आत्म तत्त्वमें प्रतीति होती है; जब विचार करके बुद्धि संस्कारित होवेगी तब शास्त्रका सिद्धांत बुद्धिमें आय स्थित होवेगा और संसारके विकार रहित बुद्धि निर्मल होवेगी, जैसे शरत् कालमें बादरके अभाव हुएते अकाश सब ओरते स्वच्छ होता है, तैसे बुद्धि निर्मल होवेगी, बहुरि आधि व्याधिकी पीडा उसको न होवेगी. हे रामजी! ज्यों ज्यों विचार दृढ होवेगा त्यों त्यों शांतात्मा होवेगा ताते जेते कछु संसारके यत्न हैं तिनका त्याग कर इस शास्त्रको वारंवार विचारेते चैतन्य सत्ता उदय होवेगी, त्यों त्यों लोभ मोहादिक विचारकी सत्ता नष्ट होवेगी. ज्यों ज्यों सूर्य

उदय होता है, त्यों त्यों अंधकार नष्ट होता है; तैसे विकार नष्ट होवेगा तब तिस पदकी प्राप्ति होवेगी, जिसके पायेते संसारको क्षोभ मिट जायँगे. जैसे शरदकालमें मेघ नष्ट हो जाता है, तैसे संसारके क्षोभ मिट जाते हैं.

हे रामजी ! ज्ञानवान् पुरुषको संसारके राग द्वेष वेधि नहीं सकते. जैसे जिस पुरुषने कवच पहिरा होय तिसको बाण वेध नहीं सकते; उसको भोगकी इच्छा नहीं रहती; जब विषयभोग विद्यमान आय रहे, तब तिनको विषय भूत जानके बुद्धि ग्रहण नहीं करती. अर्थ जानकर बाहर नहीं निकसती, अंदर आत्मामें ही स्थित रहती है.जैसे पतिव्रता स्त्री अपने अंतः पुरते बाहर नहीं निकलती तैसे ताकी बुद्धि अंदरते बाहर नहीं निकलती; हे रामजी ! बाहरते तो वह भी प्रकृतिजन्यकी नाईं दृष्टि आते हैं, जो कछु अनिच्छित प्राप्त होते हैं, तिसको भुगतता हुआ दृष्टिमें आता है और अन्तरते उसका राग द्वेष नहीं फुरता.

हे रामजी ! जेता कछु जगत्की उत्पत्ति प्रलयका क्षोभ है सो ज्ञानवानको नष्ट नहीं कर सकता; जैसे चित्रकी बेलिको आंधी चलाय नहीं सकती, तैसे उसको जगत्का दुःख चलाय नहीं सकता अरु संसारकी ओरते जड़ हो जाता है; वृक्षकी नाईं गंभीर हो जाता है अरु पर्वतकी नाईं स्थिर हो जाता है अरु चन्द्रमाकी नाईं शीतल हो जाता है. हे रामजी ! सो आत्मज्ञानकरके ऐसे पदको प्राप्त होता है, जिसके पायेते और कछु पाने योग्य नहीं रहता, आत्मज्ञानका कारण यह मोक्षोपाय शास्त्र है, जामें नाना प्रकारके दृष्टांत कहे हैं. जो वस्तु अपरिच्छिन्न होवे अरु देखनेमें न आई होय; तिसका न्याय देखनेमें होवे; तिसको विधिपूर्वक समुझावे उसका नाम दृष्टांत है. हे रामजी ! यह जगत् कार्यकारणरूप है अरु आत्मा जगत्की एकता कैसे होवे; ताते जो में दृष्टांत कहोंगा तिसका एक अंश अंगीकर करना सब देशकर अंगीकार नहीं करना; हे रामजी ! कार्य कारणकी कल्पना मूर्खने करी है, तिसको निषेध करनेके निमित्त मैं स्वप्न दृष्टांत कहों हों सो समुझनेते तेरे मनका संशय नष्ट हो जावेगा. दृग अरु

दृश्यका भेद मूर्खको भासता है तिसके दूर करनेके अर्थ स्वप्न दृष्टांत कहोंगा; तिसके विचारने करि मिथ्या विभाग कल्पनाका अभाव होता है. हे रामजी ! ऐसी कल्पनाका नाशकर्त्ता यह मेरा मोक्ष उपाय शास्त्र है, जो पुरुष आदिते अंत पर्यंत विचारेगा सो संस्कारी होवेगा. जो पद पदार्थको जानने हारा होवे अरु इसको वारंवार बिचारे तब तिसका दृश्य भ्रम नाश पावे. इस शास्त्रके विचार विषे अपर किसी तीर्थ, तप, दान आदिककी अपेक्षा नहीं, जहां स्थान होवे तहां बैठे. जैसा भोजन गृह विषे होवे तैसा करै अरु वारंवार इसका विचार करै, तब अज्ञान नष्ट हो जावे अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवे; हे रामजी ! यह शास्त्र प्रकाशरूप है. जैसे अंधकार विषे पदार्थ नहीं दीखता अरु दीपकके प्रकाश करि चक्षु सहित देखता है, तैसे शास्त्ररूपी दीपक विचाररूपी नेत्रसहित होवे तब आत्मपदकी प्राप्ति होवे.

हे रामजी ! आत्मज्ञान, विचार विना वर शापकरि प्राप्त नहीं होता जब विचार करि दृढ अभ्यास करिये तब प्राप्त होता है. ताते मोक्ष उपाय जो परम पावन शास्त्र, तिसके विचारते जगत् भ्रम नष्ट हो जावेगा. जगत्के देखते देखते जगत् भाव मिट जावेगा जैसे सर्पकी मूर्त्ति लिखी होती है अरु अविचार करके तिससे भय पाता है, जब विचार करि देखिये तब सर्प भ्रम मिट जाता है सो सर्पका आकार दृष्टि आता है परंतु उसका भय मिट जाता है, तैसे यह जगत भ्रम विचार कियेते नष्ट हो जाता है अरु जन्म मरणका भय नहीं रहता. हे रामजी ! जन्म मरणका भय भी वडा दुःख है परंतु इस शास्त्रके विचारते नष्ट हो जाता है. जिन्होंने इसका विचार त्यागा है सो माताके गर्भ विषे कीट होवेंगे अरु कष्टते नहीं छूटेंगे अरु विचारवान् पुरुष आत्मपदको प्राप्त होवेगा अरु जो श्रेष्ठज्ञानी अनंत है तिसको आपना रूप भासता है, कोऊ पदार्थ आत्माते भिन्न नहीं भासता. जैसे जिसको जलका ज्ञान हुआ है तिसको लहरी आवर्त सब जलरूप ही भासता है, तैसे ज्ञानवानको सब आत्मरूप भासता है अरु इंद्रियहूके इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिमें इच्छा द्वेष नहीं करता सदा

एकरस मनके संकल्पते रहित शांतरूप होता है. जैसे मंदराचल पर्वतके निकसेते क्षीरसमुद्र शांतिको प्राप्त भया, तैसे संकल्प विकल्प रहित यह पुरुष शांतिरूप होता है.

हे रामजी! और जो तेज होता है सो दाहक होता है परन्तु ज्ञानरूपी तेज जिस घट विषे उदय होता है सो शीतल शांतिरूप होता है, बहुरि तिसविषे संसारका विकार कोऊ नहीं रहता. जैसे कलियुग विषे शिखावारा तारा उदय होता है सो कलियुगके अभाव हुए नहीं उदय होता, तैसे ज्ञानवान्के चित्तमें विकार उत्पन्न नहीं होता.

हे रामजी! संसार भ्रम आत्माके प्रमादकरि उत्पन्न होता है सो आत्मज्ञानके प्राप्त भये यत्न विना शांत हो जाता है. फूल पत्र काटनेमें भी कछु यत्न होता है,परन्तु आत्माके पावनेमें कछु यत्न नहीं होता;काहेते कि बोध रूपी बोध ही करके जानता है.हे रामजी!जो जानने मात्र ज्ञानस्वरूप है, तिसमें स्थित होनेका क्या यत्न है; आत्मा शुद्ध अद्वैतरूप है अरु जगत् भ्रम मात्र है जो पूर्व अपर विचार कियेते जिसकी सत्यता न पाइये तिसको भ्रममात्र जानिये अरु पूर्व अपर विचार कियेते सत्य होवे तिसका रूप जानिये, सो इस जगत्की सत्यता आदि अंतविषे नहीं है, ताते स्वप्नवत् है. जैसे स्वप्न आदि अंतमें कछु है नहीं तैसे जाग्रत् भी आदि अंतमें नहीं है, ताते जाग्रत् स्वप्न दोनों तुल्य हैं.

हे रामजी! यह वार्त्ता बालक भी जानता है;कि आदि अंतमें जिसकी सत्यता न पाइये,सो स्वप्नवत् है,जो आदि भी न होय अरु अंत भी न रहै, तिसको मध्यमें भी असत्य जानिये, तिसविषे यह दृष्टांत कहे हैं-संकल्पपुरीवत्, ध्याननगरकी नाईं, स्वप्नपुरीकी नाईं, वर शाप करके जो उपजता है तिसकी नाईं, ओषधीते उपजकी नाईं इस पदार्थकी सत्यता है,न आदि होती है, न अंत होता है अरु मध्यमें जो भासता है सो भी भ्रममात्र है.तैसे यह जगत् अकारण है अरु कार्य कारण भाव सम्बन्धमें भासता है, तो कार्य कारण जगत् भया अरु आत्मसत्ता अकारण है; जगत् साकार है अरु आत्मा निराकार है.

इस जगत्का दृष्टांत जो आत्माविषे देऊंगा तिसको तुम एक अंश ग्रहण करना. जैसे स्वप्नकी सृष्टि होती है तिसका पूर्व अपर भाव आत्मतत्त्वविषे मिलता है काहेते कि,अकारण है अरु मध्य भावका दृष्टांत नहीं मिलता काहेते कि उपमेय अकारण है; तो तिसका इस समान दृष्टांत कैसे होवे? ताते अपने बोधके अर्थ दृष्टांतका एक अंश ग्रहण करना. हे रामजी ! जो विचारवान् पुरुष है, सो गुरु अरु शास्त्रके श्रवण करके सुखबोधके अर्थ दृष्टांतका एक अंश ग्रहण करते हैं. हे रामजी! तिसको आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है, काहेते कि सारग्राहक होते हैं अरु जो अपने बोधके अर्थ दृष्टांतका एक अंश ग्रहण नहीं करते अरु वाद करते हैं, तिसको आत्मतत्त्वकी प्राप्ति नहीं होती, ताते दृष्टांतका एक अंश ग्रहण करना, सर्व भाव करके दृष्टांतको नहीं मिलावना अरु पृथक्को देखि करि तर्क नहीं करना. एक अंश दृष्टांतका आत्मबोधके निमित्त सारभूत ग्रहण करना. जैसे अंधकारमें पदार्थ परा होवे, सो दीपकके प्रकाशसों देख लेना, जो दीपकके साथ प्रयोजन है और ऐसे नहीं कहना कि दीपक किसका है अरु तेल बाती कैसा है अरु किस स्थानका हैं, दीपकका प्रकाश ही अंगीकार करना, तैसे एक अंश दृष्टांतका आत्मबोधके निमित्त अंगीकार करना.

हे रामजी ! जिसकरि वाक्य अर्थ सिद्धि न होवे तिसका त्याग करना जो वचन अनुभवको प्रगट करे तिसका अंगीकार करना. जो पुरुष अपने बोधके निमित्त वचनको ग्रहण करता है सोई श्रेष्ठ है अरु जो वादके निमित्त ग्रहण करता है सो चोगचूंच है,वह अर्थको सिद्ध नहीं करता,जो कोऊ अभिमानको लेकरि कहता है, सो हस्तीकी नाईं शिरपर माटी डारता है, तिसका अर्थ सिद्ध नहीं होता अरु जो अपने बोधके निमित्त वचनको ग्रहण करता है अरु विचार करि तिसका अभ्यास करता है, तब वह आत्मा शांतिको पाता है. हे रामजी ! आत्मपद पावने निमित्त अवश्यमेव अभ्यास चाहिता है; जब शम, विचार, सन्तोष अरु सन्तसमागम करि बोधकी प्राप्ति होवे तब परमपदको पाता है.

हे रामजी ! जिसका दृष्टांत कहता है, सो एक देश लेकरि कहता है, सर्वमुख कहने करि अखण्डताका अभाव हो जाता है अरु जो सर्व मुख

दृष्टांत मुखको जानिये, सो सत्यरूप होता है, ऐसे तो नहीं. आत्मा सत्यरूप है कार्य कारणते रहित शुद्ध चैतन्य है; तिसके लिखावने निमित्त कार्य कारण जगत्का दृष्टांत कैसे दीजिये; यह जगत्का जो दृष्टांत कहता है सो एक अंश लइ कहता है अरु बुद्धिमान् भी दृष्टांतके एक अंशको ग्रहण करते हैं. जो श्रेष्ठ पुरुष हैं सो अपने बोधके निमित्त सारको ग्रहण करते हैं अरु जिज्ञासुको भी यही चाहिता है, कि अपने बोधके निमित्त सारको ग्रहण करै अरु वाद न करै. जैसे क्षुधार्थीको चावल पाक आय प्राप्त होवहिं, तब भोजन करनेका प्रयोजन है अरु उसकी उत्पत्ति अरु स्थितिका वाद करना व्यर्थ है.

हे रामजी ! वाक्य सोई है जो अनुभवको प्रगट करै. अरु जो अनुभवको न प्रगट करै तिसका त्याग करना; जो स्त्रीका वाक्य होवे अरु आत्म अनुभवको प्रत्यक्ष करै तिसका ग्रहण करना; अरु परमगुरु वेद वाक्य होवे और अनुभवको प्रगट न करै तिसका त्याग करना. जबलग विश्रामको नहीं पाया, तबलग विचार कर्तव्य है; विश्रामका नाम तुर्य पद है; जब विश्रामकी प्राप्ति भई तब अक्षय शांति होती है. हे रामजी!जो तुर्यापद संयुक्त पुरुष है, तिसका श्रुति स्मृति उक्त कर्महूके करने करि प्रयोजन सिद्ध कछु नहीं होता अरु न करनेकरि कछु पाप नहीं होता, सदेह होवे, भावे विदेह होवे, गृहस्थ होवे, भावे विरक्त होवे तिसको कर्तव्य कछु नहीं, वह पुरुष संसार समुद्रते पार हुआ है.

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे दृष्टान्तवर्णनं नामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशतितमः सर्गः १९.

अथ प्रमाणनिरूपणम्।

हे रामजी ! उपमेयको उपमा करि जानता है, सो एक अंशको ग्रहण करि जानता है, तब बोधकी प्राप्ति होती है अरु जो बोधते रहित है, सो

मुक्तिको प्राप्त नहीं होता वह व्यर्थ वाद करता है. हे रामजी ! शुद्ध स्वरूप आत्मसत्ता जिसके घटविषे विराजमान है, तिसको त्यागकरि अपर विकल्प उठावता है सो चोगचूंच है अरु मूर्ख है.

हे रामजी ! जो अर्थ प्रत्यक्ष है, सो प्रमाण मानने योग्य है और जो अनुमान, अर्थापत्ति, आदि प्रमाणसों तिसकी सत्ता प्रत्यक्ष करि होती है. जैसे सब नदीका अधिष्ठान समुद्र है, तैसे सब प्रमाणहूका अधिष्ठान प्रत्यक्ष प्रमाण है सो प्रत्यक्ष क्या है सो श्रवण करहु.

हे रामजी ! चक्षुरूपी ज्ञान संमत संवेदन है, तिस चक्षु करके विद्यमान होता है तिसका नाम प्रत्यक्ष प्रमाण है; तिन प्रमाणहूको विषय करने हारा जीव है; अपने वास्तव स्वरूपके अज्ञानकारि अनात्मारूपी दृश्य बनी है तिस विषे अहंकृति करके अभिमान भया है. अभिमान सब दृश्य है, ताते हेयोपादेय बुद्धि भई है अरु राग द्वेष करके परा जलता है, आपको कर्त्ता मानि बहिर्मुख हुआ भटकता है.

हे रामजी ! जब विचार करके संवेदन अंतर्मुखी होवे, तब आत्मपद प्रत्यक्ष होता है अरु निजभावको प्राप्त होता है. परिच्छिन्न भाव नहीं रहता शुद्ध शांतिको प्राप्त होता है. जैसे स्वप्नते जागेते स्वप्नका शरीर अरु दृश्य भ्रम नष्ट हो जाता है, तैसे आत्माके प्रत्यक्ष हुएते सब भ्रम मिट जाता है अरु शुद्ध आत्मसत्ता भासती है. हे रामजी! यह जो दृश्य अरु द्रष्टा है सो मिथ्या है, जो द्रष्टा है सो दृश्य होता है अरु जो दृश्य है सो द्रष्टा होता है, सो यह भ्रम मिथ्या आकाशरूप है. जैसे पवनमें स्पंद शक्ति रहती है, तैसे आत्मामें संवेदन रहती है, जब संवेदन स्पंदरूप होती है तब दृश्यरूप होयके स्थित होती है. जैसे स्वप्नमें अनुभव सत्ता दृश्य रूप होके स्थित होती है, तैसे यह दृश्य है; ताते सब आत्मसत्ता है, ऐसे विचार करि आत्मपदको प्राप्त होवहु. अरु जो ऐसे विचार करके आत्मपदको प्राप्त न होय उसको तब अहंकार जो जो उल्लेख फुरता है तिसका अभाव करो; पाछे जो शेष रहैगा सो शुद्ध बोध आत्मसत्ता है जब शुद्ध बोधको तुम प्राप्त होहुगे. तब ऐसे चेष्टा पडी होवेगी

जैसे जंत्रीकी पुतरी संवेदन विना चेष्टा करती है, तैसे देह रूपी पुतरीका पालनहारा मनरूपी संवेदन है तिस विना पडी रहैगी; परंतु अहंकृत का अभाव होवेगा; ताते यत्न करकें तिस पदके पानेका अभ्यास करो जो नित्य शुद्ध शांतरूप है. हे रामजी ! और दैव शब्दको त्याग करि अपना पुरुषार्थ करो अरु आत्मपदको प्राप्त होहु. पुरुषार्थमें शूरमा है सो आत्मपदको प्राप्त होता है अरु जो नीच पुरुषार्थका आश्रय करता है सो संसार समुद्रमें डूबता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे प्रमाणनिरूपणं नामैकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशतितमः सर्गः २०.

अथ आत्मप्राप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच, हे रामजी ! जब सत्संग करके यह पुरुष शुद्ध बुद्धि करै तब आत्मपद पानेको समर्थ होवे. प्रथम सत्संग यह है जिसकी चेष्टा शास्त्रके अनुसार होवे तिसका संग करै; तिसके गुणहूको हृदयविषे धरै बहुरि महापुरुषके शम संतोष आदिक गुणहूका आश्रय करै; शम संतोषादिक करि ज्ञान उपजता है; जैसे मेघ करि अन्न उपजता है अरु अन्न करि जगत् होता है अरु जगतहूते मेघ होता है, तैसे शम संतोष भी हैं. शमादिक गुणकरि ज्ञान उपजता है अरु आत्मज्ञान करि शमादिक गुण आय स्थित होते हैं. जैसे बडे तालकरि मेघ पुष्ट होता है अरु मेघ करि ताल पुष्ट होता है, तैसे शमादिक गुण करि आत्मज्ञान होता है अरु आत्मज्ञानते शमादिक गुण पुष्ट होते हैं ऐसे विचार करके शम संतोषादिक गुणोंका अभ्यास करहु तब शीघ्र ही आत्मतत्त्वको प्राप्त होवेगा. हे रामजी ! ज्ञानवान् पुरुषको शमादिक गुण स्वाभाविक आय प्राप्त होते हैं अरु जिज्ञासुको अभ्यास करके प्राप्त होते हैं अरु जैसे धान्यका पालन स्त्री करती है, ऊंच शब्द करती है जिस करि पक्षीहूको उडावती है

जब इस प्रकार पालना करती है तब फलको पाती है तिसकारि पुष्ट होती है, तैसे शम संतोषादिकके पालनेकारि आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है.

हे रामजी ! इस मोक्ष उपाय शास्त्रको आदितें लेकर अंतपर्यंत विचारे तब भ्रांति निवृत्त होवे. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सर्व पुरुषार्थ कर सिद्ध होते हैं परंतु यह मोक्ष उपाय शास्त्र परम कारण है, जो शुद्ध बुद्धिमान् पुरुष इसको विचारेगा, तिसको शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवेगी, याते इस मोक्ष उपाय शास्त्रका भलीप्रकार अभ्यास करो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे आत्मप्राप्तिवर्णनं नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

समाप्तमिदं योगवासिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणम्।

प्रकरण		श्लोकसंख्या
I	वैराग्य,,	1500
II	मुमुक्षु,,	1000
III	उत्पत्ति,,	5000
IV	स्थिति,,	3000
V	उपशम,,	5000
VI	निर्वाण,,	16500
षट् प्रकरण		32000

सर्गाः		पृष्ठाः	प्रकरणानि
१-३३	(15)	१-९०	I वैराग्यम्
१-२०	(10)	९१-१५२	II मुमुक्षुः
१-१२२	(50)	१५३-४५७	III उत्पत्तिः
१-६२	(30)	४५८-६२६	IV स्थितिः
१-९३	(50)	६२७-९९९	V उपशमः
३३०	(155)	१-९९९	
३३०	(165)	(1-1000)	VI निर्वाण पू. उ.

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालय-बम्बई.

परमात्मने नमः ।

अथ श्रीयोगवासिष्ठे

तृतीयम् उत्पत्तिप्रकरणम् ।

तत्र प्रथमः सर्गः १.

अथ बन्धहेतुवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ब्रह्म अरु ब्रह्मवेत्ता, यह सब शब्द ब्रह्मसत्ताके आश्रयते स्फुरते हैं; मैं अरु तू यह वह इत्यादिक सर्व शब्द आत्मसत्ताके आश्रयते स्फुरते हैं; जैसे स्वप्नविषे शब्द होते हैं, सो सब अनुभवसत्ताविषे होते हैं; तैसे यह भी जान अरु तिसविषे और जो विकल्प होते हैं– जो जगत् क्या है ? अरु कैसे उत्पन्न हुवा है ? अरु किसका है इत्यादिक जो विकल्प हैं सो चोगचंचु है. हे रामजी ! यह सब जगत् ब्रह्मरूप है; यहां स्वप्नका दृष्टांत विचारि लेना; प्रथम मैंने मुमुक्षुप्रकरण तुझसे कहा है, अब उत्पत्तिप्रकरण कहता हों,कैसी उत्पत्ति है सो श्रवण कर. जो ज्ञान है, जो वस्तु है, जो स्वभाव है, जो क्रम है. हे रामजी ! बढ़ता भी वही पदार्थ है; जो उपजा होता है अरु घटता भी वही है; जो उपजा होता है अरु बंध अरु मोक्ष भी वही होता है; उत्तम भी वही होता है, नीच भी वही है जो उपजा होता है अरु जो उपजा न होवेगा तिसका न बढना है, न घटना है, न बंध होना है, न मोक्ष होना है, न उत्तम होना है, न नीच होना है. हे रामजी ! स्थावर जंगम जो कछु जगत् दीखता है, सो सब आकाशरूप है, द्रष्टाका जो दृश्यके साथ संयोग है इसीका नाम बंधन है, तिस संयोगका निवृत्त होना,इसीका नाम मोक्ष है; सो तिस निवृत्तिका उपाय मैं कहता हों. देहरूपी जो जगत् है सो

चिन्मात्ररूप है और कछु उपजा नहीं अरु जो उपजा भासता है सो ऐसे है. जैसे सुषुप्तिते स्वप्न होता है, तैसे जगत्की उत्पत्ति होती है, जैसे स्वप्नते सुषुप्ति होती है तैसे, जगत्का प्रलय होता है; जो प्रलयविषे शेष रहता है तिसकी संज्ञा व्यवहारके निमित्त यह रखता है. नित्य सत्य ब्रह्म आत्मा सच्चिदानंद इत्यादिक जिसके नाम रक्खे हैं सो सबका अपना आपरूप है; चैतन्यता करिके तिसका नाम जीव हुआ है अरु शब्द अर्थोंको ग्रहण करने लगा है. हे रामजी ! शब्द अर्थोंको जो ग्रहण करता है सो जीव है अरु चैतन्यविषे जो स्पंदता हुई है सो संकल्प विकल्परूपी मन होकरि स्थित हुआ है तिसके संसरणकरिके देश, काल, नदियां, पर्वत, स्थावर, जंगमरूप जगत् हुआ है. जैसे सुषुप्तिते स्वप्न होवै तैसे जगत् हुआ है; तिसको कोऊ अविद्या कहतेहैं, कोऊ जगत् कहते हैं कोऊ माया कहते हैं, कोऊ संकल्प कहते हैं, कोऊ दृश्य कहते हैं अरु वास्तवमें सब ब्रह्मस्वरूप हैं, इतर कछु नहीं. जसे स्वर्णते भूषण होता है सो भूषण स्वर्णरूप है, स्वर्णते इतर भूषण कछु वस्तु नहीं, तैसे जगत् अरु ब्रह्मविषे कछु भेद नहीं अरु भेद तब होवे जो कछु जगत् उपजा होवै जो उपजा ही न होवै तब भेद कैसा भासै ? अरु जो भेद भासता है सो मृगतृष्णाके जलवत् है. जैसे मृगतृष्णाकी नदीके तरंग भासते हैं तहां सूर्यकी किरण ही जलकी नाईं भासती हैं जलका नाम भी नहीं तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, चैतन्यके अणुअणु प्रति सृष्टियां हैं अरु कैसी हैं कि आभासरूप हैं, कछु उपजी नहीं, सर्वदा अद्वैतसत्ता अपने आपविषे स्थित है तिसविषे जन्म मरण अरु बंध मुक्ति कैसे होवै ? जेती कछु कल्पनाबंध मुक्ति आदिक भासती हैं सो वास्तविक कछु नहीं, आत्माके अज्ञानकरके भासती हैं. हे रामजी ! और जगत् कोऊ नहीं उपजा, अपनी कल्पनाई जगत्रूप होइकारि भासती है अरु प्रमादकरिके सत् होइ रही है, निवृत्त होना कठिन हो रहा है, अनियत नियत शब्द जो कहे हैं सो भाव्यर्थ हैं; ऐसे वचनोंकारि तौ जगत् दूर नहीं होता. हे रामजी ! युक्त अर्थ वचनों विना दृश्य भ्रम निवृत्त नहीं होता; जो तर्कोंकरिके तप, तीर्थ, दान, स्नान,

ध्यानादिक करिके जगत्भ्रमको निवृत्त किया चाहते हैं सो मूर्ख हैं, इस प्रकारते तो दृढ होता है जहां जावैगा, तहां इसको देश काल क्रिया नित्य पांचभौतिक सृष्टिही दृष्टि आवैगी और कछु दृष्टि न आवैगा; ताते इसका नाश होवैगा अरु जो जगत्ते उपरांत होइ करि समाधि लगाइ बैठेगा, तब भी चिरकालते उतरैगा, बहुरि जगत्के शब्द अरु अर्थ इसको भास आवैगा जो बहुरि अनर्थरूप संसार भासा तौ समाधिका क्या सुख हुआ? जबलग समाधिविषे रहैगा तबलग सुख रहैगा ताते इन उपायों करिके जगत् निवृत्त नहीं होता; जैसे कमलडोडे विषे बीज होता है जबलग उस बीजका नाश नहीं होता; तबलग बहुरि उत्पन्न होता है;जो वृक्षके पात तोडिये तौ भी बीजका नाश नहीं होता तैसे तप दानादिकों करि जगत् नहीं निवृत्त होता जबलग अज्ञानरूपी बीज नष्ट नहीं होता जब अज्ञानरूपी बीज नष्ट होवेगा तब जगत्रूपी वृक्षका अभाव हो जावैगा और जो उपाय हैं,सो पत्तोंका तोडना है अरु और उपायोंकरि अक्षय पद नहीं प्राप्त होता अरु अक्षय समाधि नहीं प्राप्त होती. हे रामजी! ऐसी समाधि तौ किसीको प्राप्त होती नहीं जो शिलाकी नाईं हो जावे, मैं सब स्थान देख रहा हौं अरु जो ऐसे भी होवे तौ भी संसारसत्ता निवृत्त न होवैगी. काहेते जो अज्ञानरूपी बीज निवृत्त नहीं भया यह समाधि ऐसी है जैसे जाग्रत्ते स्वप्न होता है अरु अज्ञानरूपी वासनाकरि सुषुप्तिते बहुरि जाग्रत् आती है. तैसे अज्ञानरूपी वासनाकरिके समाधितें भी जाग पडता है उसको वासना खैंच ले आती है. हे रामजी! तप समाधि आदिकोंकरि संसारभ्रम निवृत्त नहीं होता. जैसे कांजीकरिके क्षुधा किसीकी निवृत्त नहीं होती, तैसे तप समाधिकरि चित्तकी वृत्ति एकाग्र होती है, परंतु संसार निवृत्त नहीं होता; जब लग चित्त समाधिविषे लगा है तबलग सुख होता है; जब उठा तब बहुरि नानाप्रकारके शब्द अरु अर्थोंसंयुक्त संसार भासता है. हे रामजी! अज्ञानकरिके जगत् भासता है अरु विचार कियेते निवृत्त होता है; जैसे बालकको अपने अज्ञान करि परछाहींविषे वेतालकल्पना होती है अरु ज्ञानकरिकै निवृत्त होती है, तैसे यह जगत् अविचारकरिकै भासता है;

विचारते निवृत्त होता है. हे रामजी ! वास्तवमें कछु जगत् उपजा नहीं असद्रूप है जो कछु स्वरूपते उपजा होता तब निवृत्त नहीं होता; ताते विचार करि निवृत्त होता है. ताते जाना जाता है, कि बना कछु नहीं जो वस्तु सत्य होती है तिसकी निवृत्ति नहीं होती अरु जो असत् है सो स्थिर नहीं रहती हे रामजी ! सो सत्स्वरूप आत्मा है तिसका अभाव कदाचित् नहीं होता अरु असत्रूप जो जगत् है सो स्थिर नहीं होता; यह जगत् आत्माविषे आभासरूप है आरंभ अरु परिणामकरि कछु उपजा नहीं. जहां चैतन्य अणु होता है, तहां सृष्टि भी होती है, काहेते कि आभासरूप है, आत्मरूप आदर्श है, तिसविषे अनंतसृष्टि प्रतिबिंबित होती है, अरु आदर्शविषे प्रतिबिंब भी तब होता है, जो दूसरा निकट होता है, अरु आत्माके निकट दूसरा कोई प्रतिबिंब नहीं होता है; काहेते कि आभासरूप है, एकही आत्मसत्ता चैतन्यता करिकै द्वैतकी नाईं होकरि भासती है, और कछु बना नहीं जैसे फूलविषे सुगंध होती है, अरु तिलोंविषे तेल होता है, अग्निविषे उष्णता होती है अरु जैसे मनोराज्यकी सृष्टि होती है तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे मनोराज्यते मनोराज्यकी सृष्टि भिन्न नहीं, तैसे इस जगत् आत्माते भिन्न कछु बना नहीं.

इति श्रीयोग० उत्पत्तिप्रकरणे बन्धहेतुवर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २.

बन्धहेतुवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! एक आकाशज आख्यान है, सो श्रवणका भूषण है अरु बोधका कारण है, तिसको श्रवण कर आकाशज एक ब्राह्मण होता भया सो कैसा ब्राह्मण है ? शुद्ध चिदंशते तिसकी उत्पत्ति भई है, धर्मनिष्ठ है अरु सदा आत्मामें स्थित रहता है अरु भली प्रकार प्रजाकी पालना करता है सो चिरंजीवी है तब मृत्युदेवता विचार करत भया कि मैं अविनाशी हौं अरु जीव जो उपजते हैं तिनको मैं मारता

हौं परंतु यह जो ब्राह्मण है तिसको मैं नहीं भोजन करि सकता; मेरी शक्ति इस ब्राह्मणपर कुंठित हो गई है जैसे खड्गकी धारा पत्थरपर चलाई कुंठित हो जाती है. हे रामजी! ऐसा विचार करके मृत्यु ब्राह्मणको भोजन करनेके निमित्त उठा जैसे श्रेष्ठ पुरुष अपने आचारकर्मको नहीं त्याग करते तैसे मृत्यु अपने कर्मोंको विचार करि चला जब ब्राह्मणके गृहविषे मृत्युने प्रवेश किया तब उसको अग्नि जलावनेको उडत भया. जैसे प्रलय कालविषे महातेजसंयुक्त अग्नि सर्वपदार्थोंको जलावने लगता है, तैसे तब मृत्यु दौडके आगे गया; जहां ब्राह्मण बैठा था अंतःपुरविषे जाइकरि कहने लगा; परंतु ब्राह्मणको पकडि न सका, जैसे बडा बलवान् पुरुष भी औरके संकल्परूप पुरुषको पकड नहीं सकता; तैसे मृत्यु ब्राह्मणको पकड न सका तब मृत्यु बहुरि धर्मराजके गृहमें आवत भया अरु कहा हे भगवन्! जो कोऊ उपजा है तिसको मैं भोजन करता हौं परंतु एक ब्राह्मण जो आकाशते उपजा है तिसको मैं वश नहीं कर सकता इसका क्या कारण है? यम उवाच–हे मृत्यु! तू किसीको नहीं मार सकता जो कोऊ मरता है सो अपने कर्मोंकरि मरता है जो कोऊ कर्मोंका कर्त्ता है तिसके मारनेका तू समर्थ होवेगा अरु जिसका कर्म कोऊ नहीं तिसके मारनेको समर्थ न होवैगा ताते जाइकरि ब्राह्मणके कर्म खोजो; जब कर्म पावेगा तब उसको मारनेको समर्थ होवैगा अन्यथा समर्थ न होवैगा, हे रामजी! जब इस प्रकार यमने कहा तब कर्म खोजनेके निमित्त मृत्यु चला, कर्म नाम है वासनाका, वहां जाइके ब्राह्मणके कर्मोंको ढूँढने लगा दशों दिशा देखे ताल समुद्र बगीचे देखे, द्वीपते द्वीपांतर देखे, इत्यादिक सब स्थान देखते फिरे परंतु ब्राह्मणके कर्मोंकी प्रतिमा कहूं न पाई हे रामजी! मृत्यु बडा बलवंत है परन्तु ब्राह्मणके कर्मोंको न पाया तब मृत्यु बहुरि धर्मराजके पास गया कैसा धर्मराज है, जो संपूर्ण संशयोंका नाश करता है अरु सदा ज्ञानस्वरूप है तिसको मृत्यु कहत भया, हे संशयोंके नाशकर्त्ता! ब्राह्मणके कर्म मुझको कहूं नहीं दृष्टि आवते बहुत प्रकार ढूँढ रहा हौं जो शरीरधारी है सो सब कर्मसंयुक्त है इसका जो कर्म

कोऊ नहीं है सो क्या कारण है ? यम उवाच-हे मृत्यु ! इस ब्राह्मणकी उत्पत्ति शुद्ध चिदाकाशते हुई है तहां न कोऊ कारण था जो पदार्थ कारण विना है सो जिस विषे भास्या है सो ईश्वररूप है. हे मृत्यु ! शुद्ध आकाशते जो इसका होना हुआ है तौ यह भी वही रूप है यह ब्राह्मण भी शुद्ध चिदाकाशरूप है. अरु इसका चेतन ही वपु है इसका कर्म कोऊ नहीं न कोऊ कर्म किया है शुद्ध चिदाकाश इसका स्वरूप है अपने स्वरूपते आपही इसका होना हुवा है इस कारणते इसका नाम स्वयंभू है अरु सदा अद्वैतरूप है. मृत्युरुवाच-हे भगवन् ! जो यह आकाशस्वरूप है तौ साकाररूप क्यों दृष्टि आता है. यम उवाच-हे मृत्यु ! यह सदा निराकार चैतन्य वपु है इसके साथ आकार कोऊ नहीं अरु अहंभाव भी कोऊ इसके साथ नहीं ताते इसका नाश कैसे होवे ? अहं त्वं कोऊ जानता ही नहीं जगत्का निश्चय भी इसके विषे कोई नहीं यह ब्राह्मण अचेत चिन्मात्र है जिसके मनविषे पदार्थोंका सद्भाव होता है तिसका नाश भी होता है जिसको जगत भासता ही नहीं तिसका नाश कैसे होवे ? हे मृत्यु ! जो बड़ा बली भी कोऊ होवे अरु जंजीरसे भी होवै तौ भी आकाशको बांध न सकैगा तैसे ब्राह्मण आकाशरूप है इसका नाश कैसे होवे ताते इसके नाश करनेका उद्यम त्याग करु और देहधारियोंको जाइ मारो यह तुमसों न मरैगा. हे रामजी ! ऐसे सुनकर मृत्यु आश्चर्यवत् होकरि अपने गृहविषे आया. राम उवाच-हे भगवन् ! यह तौ हमारे बडे पितामह ब्रह्माकी वार्ता तुमने कही है. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! वार्ता तौ ब्रह्माकी कही है परंतु मृत्यु अरु यमके विवादनिमित्त मैं तुझको श्रवण कराई है इस प्रकार जब बहुत काल व्यतीत हुआ अरु कल्पका अंतपात हुवा तब मृत्यु सर्वभूतोंको भोजनकरि लाया बहुरि ब्रह्माको भोजन करनेको गया. जैसे किसीका कर्म होता है अरु एकवार सिद्ध न भया तौ छोड़ नहीं देता बहुरि उद्यम करता है तैसे मृत्यु भी ब्रह्माके सन्मुख गया तब धर्मराजाने कहा-हे मृत्यु ! यह जो ब्रह्मा है सो आकाशरूप है अरु आकाश ही इसका शरीर है तौ आकाशके पक-

डनेको तू कैसे समर्थ होवैगा ? यह तौ पंचभूतके शरीरते रहित है! जैसे संकल्प पुरुष होता है तौ उसका आकाश ही वपु होता है. तैसे यह आकाशरूप है अरु आदि अंत मध्यते रहित है; अहं त्वंके उल्लेखते रहित है अचल चिन्मात्र है इसके मारनेको तू कैसे समर्थ होवैगा अरु यह जो इसका वपु भासता है सो ऐसे है, जैसे शिल्पीके मनविषे स्तंभकी पुतली होती है सो कछु नहीं है, तैसे स्वरूपते इतर इसका होना नहीं, यह तौ ब्रह्मस्वरूप है हमारे तुम्हारे मनविषे इसकी प्रतिमा हुई है यह तौ निर्वपु है, जो पुरुष देहवंत होता है; तिसको ग्रहण करना सुगम होता है अरु वंध्यापुत्रके ग्रहणको श्रम होता है काहेते जो वह निर्वपु है; तैसे यह भी निर्वपु इसके मारनेकी कल्पनाको त्याग और देहधारियोंको जाइके मार.

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इसप्रकार मृत्युको यमने कहा; ब्रह्माजी आकाश रूप है अरु द्वैतकल्पनाते रहित है, हे रामजी ! शुद्ध चिन्मात्र सत्ता सूक्ष्म है, जिसविषे आकाश भी पर्वतकी नाईं स्थूल है तिस चित्तविषे जो अहं अस्मि चेत्योन्मुखत्व हुवा है तिसकरि अपने साथ देहको देखत भया, सो देह भी आकाशरूप है हे रामजी ! शुद्ध चिन्मात्रविषे चेत्यका उल्लेख किसी कारणकरिके नहीं हुवा, स्वतःस्वभाव ही ऐसे उल्लेख आय फुरा है तिसका नाम स्वयंभू ब्रह्मा हुआ है तिस ब्रह्माको सदा ब्रह्म हीका निश्चय है ब्रह्मा अरु ब्रह्मविषे भेद कछु नहीं. जैसे समुद्र अरु तरंग विषे भेद कछु नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद कछु नहीं फूल अरु गंधविषे भेद नहीं तैसे ब्रह्मा अरु ब्रह्मविषे भेद नहीं. जैसे जलद्रवता करिके तरंगरूप होकरि भासता है, तैसे आत्मसत्ता चैत्यन्यताकरिके ब्रह्मा होकरि भासती है ब्रह्मा दूसरी वस्तु कछु नहीं, सदा चैतन्य आकाश है पृथ्वी आदिक तत्त्वोंते रहित है. हे रामजी ! न कोऊ इसका कारण है न कोऊ कर्म है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे बन्धहेतुवर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥२॥

तृतीयः सर्गः ३.

बन्धहेतुवर्णनम् ।

राम उवाच-हे भगवन् ! तुमने जो कहा कि पृथ्वी आदि तत्त्वोंते रहित ब्रह्माजीका वपु है अरु संकल्पमात्र है, तौ स्मृतिका संस्कार इसका कारण क्यों न होवै ? जैसे हमको स्मृति है और जीवोंको स्मृति है, तैसे ब्रह्माको भी होवै. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! संस्कार स्मृति उसीका कारण होती है; जो आगे भी देहवान् होता है, जो पदार्थ आगे देखा होता है तिसकी स्मृति संस्कारते भी होती है अरु जो देखा नहीं होता तिसकी स्मृति संस्कारते भी नहीं होती सो ब्रह्माजी अद्वैत है, अज है, आदि मध्य अंतते रहित है,इसकी स्मृतिका कारण कैसे होवे; यह तौ शुद्ध बोधरूप है सो आत्मतत्त्व ब्रह्मारूप होकरि स्थित हुआ है,अपने आपते जो इसका होना हुआ है इसीते इसका नाम स्वयंभू शुद्धबोधविषे चेत्य उल्लेख हुआ है अर्थ यह जो चित्त चैतन्यस्वरूपको नाम है अपने चित्त-का संवित् कारण होवै और दूसरा इसका कारण कोऊ नहीं; सदा निरा-कार है अरु संकल्परूप इसका शरीर है और पृथ्वी आदिक भूतते शुद्ध अंतवाहक इसका वपु है. राम उवाच-हे मुनीश्वर ! जेते कछु जीव हैं, तिनके दो दो शरीर हैं, एक अंतवाहक शरीर है दूसरा आधिभौतिक शरीर है सो ब्रह्माका एकही अंतवाहक शरीर कैसे है ? यह वार्त्ता स्पष्ट करि कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी !जो सकारणरूपी जीव हैं, तिनके दो दो शरीर हैं अरु ब्रह्माजी अकारण हैं इस कारणते उनका एक अंतवाह-कही शरीर है. हे रामजी ! सुनो, जीवोंका कारण ब्रह्मा है इस कारणते यह जीव दोनों देहोंको धरते हैं अरु ब्रह्माजीका कारण कोऊ नहीं अपने आपते उपजा है; इसका नाम स्वयंभू है अरु आदि जो इनका प्रादुर्भाव हुआ है सो अंतवाहक शरीर है अपने स्वरूपका विस्मरण नहीं भया सदा अपने वास्तव स्वरूपविषे स्थित है ताते अंतवाहक है अरु दृश्यको अपने संकल्पमात्र जानता है अरु जिनको दृश्यविषे दृढ प्रतीति हुई है

तिनको अधिभूत कहते हैं. जैसे जडताकरिके जलका बरफ होता है तैसे दृश्यकी दृढता करिके आधिभौतिक होते हैं. हे रामजी! जेताकछु जगत् तुझको दृष्टि आता है सो सब आकाशरूप है किसी पृथ्वी आदिक भूतोंते नहीं हुआ भ्रमकरिकै आधिभौतिक भासता है. जैसे स्वप्ननगर आकाशरूप होता है किसी कारणसों नहीं उपजा न किसी पृथ्वी आदि तत्त्वोंते उपजा है सब आकाशरूप है अरु निद्रा दोषकरिकै आधिभौतिक होय करि भासता है, तैसे यह जाग्रत् जगत् भी अज्ञानकरिकै आधिभौतिक आकाश भासता है. जैसे स्वप्न अज्ञानकरिकै अर्थाकार भासता है तैसे जगत् अज्ञानकरि अर्थाकार भासता है. हे रामजी ! यह संपूर्ण जगत् संकल्पमात्र है और कछु बना नहीं जैसे मनोराज्यके पर्वत आकाशरूप होते हैं, तैसे यह जगत् आकाशरूप है, वास्तव कछु बना नहीं सब संकल्पके पुरुष हैं सब जगत् मनते उपजा है. जैसे बीजते देशकाल करिकै अंकुर निकसता है, तैसे सब दृश्य मनते उपजता है सो मनरूपी ब्रह्मा है अरु ब्रह्मादि मनरूप है, तिसके संकल्पविषे संपूर्ण जगत् स्थित है सो सब आकाशरूप है आधिभौतिक कोऊ नहीं. हे रामजी ! आधिभौतिक जो आत्माविषे भासता है सो भ्रांतिमात्र है. जैसे बालकको परछैयामें बैताल भासता है तैसे अज्ञानीको आधिभौतिक भासता है सो भ्रांतिमात्र है वास्तव कछु नहीं. हे रामजी ! जेते कछु जीव हैं सो सब हीं अंतवाहक हैं परन्तु अज्ञानीको अंतवाहकता निवृत्त हो गई है अरु आधिभौतिकता दृढ हो गई है अरु जो ज्ञानवान् पुरुष हैं सो अंतवाहकरूप हैं. हे रामजी ! जिन पुरुषोंको प्रमाद नहीं हुआ वे सदा आत्माविषे स्थित हैं, अंतवाहकरूप हैं अरु सब जगत् आकाशरूप है. जैसे संकल्प पुरुष होता है, जैसे गंधर्वनगर होता है, जैसे स्वप्नपुर होता है, तैसे यह जगत् है जैसे स्तंभविषे पुतलियां शिल्पी कल्पता है जो एती पुतलियां स्तंभविषे हैं सो पुतलियां उपजी कछु नहीं, ज्योंकी त्यों स्तंभमें स्थित हैं, पुतलीका सद्भाव शिल्पीके मनविषे होता है तैसे सब विश्व मनविषे स्थित है स्वरूपते कछु बना नहीं. दृश्य ही मनरूप है अरु मन दृश्यरूप है. जैसे तरंग ही जलरूप हैं जल ही तरंगरूप है.

हे रामजी ! जबलग मनका सद्भाव है तबलग दृश्यका बीज मन है. जैसे कमलडोडेका सद्भाव उसके बीजविषे होता है तिसकरि कमलडोठेकी उत्पत्ति होती है, तैसे जगत्का बीज मन है सब जगत् मनते उत्पन्न होता है. हे रामजी ! जब तुझको स्वप्न आता है तब तेरा ही चित्त दृश्यको चेतता जाता है और तौ कारण कोऊ हुआ नहीं तैसे यह जगत् भी जानना, यह तेरे अनुभवकी वार्ता कही है काहेते जो नित्य तुझको अनुभव होता है. हे रामजी ! मन ही जगत्का कारण है और कोऊ नहीं जब मन उपशम होवैगा तब दृश्यभ्रम मिट जावैगा जबलग मन उपशम नहीं होता तबलग दृश्यभ्रम निवृत्त नहीं होता अरु जबलग दृश्य निवृत्त नहीं होता तबलग शुद्ध बोध नहीं होता जबलग शुद्ध बोध नहीं होता, तबलग आत्मानन्द नहीं होता ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे बन्धहेतुवर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४.

उत्पत्तिप्रकरणार्थवर्णनम् ।

वाल्मीकिरुवाच–इस प्रकार मुनिशार्दूल वसिष्ठजी कहिकरि तूष्णीं भये अरु सर्व श्रोता वसिष्ठजीके वचनोंको श्रवण करिकै तिनके अर्थ विषे स्थित भये; इंद्रियोंकी चपलताको त्यागि करि वृत्तिको स्थित करते भये अरु तरंगोंके घुघर छिनकते थे सो स्थिर हो गये पिंजरोंविषे जो तोते थे सो भी सुनिकरि तूष्णीं हो गये अरु जो चपल ललना थीं सो भी तिस कालविषे अपनी चपलताको त्याग करत भई अरु वनके जो पशु पक्षी निकट थे सो भी सुनिकरि तूष्णीं भये, मध्याह्नका समय हुआ तब राजाको बडे भृत्योंने आय कहा–हे राजन् ! अब स्नानसंध्याका समय हुआ है उठिकरि स्नानसंध्या करौ, जब इस प्रकार बडे भृत्योंने कहा; तब वसिष्ठजी बोले–हे राजन् ! अब जो कछु कहना था सो कहि रहे हैं, कालि कछु बहुरि कहैंगे तब राजाने कहा अस्तु,

ऐसे ही होवै; तब राजा उठिकारि अर्घ्यपाद्यनैवेद्य कारि वसिष्ठजीका पूजन करत भये और जो ब्रह्मर्षि थे तिनकी यथायोग्य पूजा करी तब वसिष्ठजी उठ खडे हुए परस्पर आपस में नमस्कार किये अरु अपने स्थानों को चले, आकाशचारी आकाशको गये; पृथ्वीपर रहनेवाले ब्रह्मर्षि, राजर्षि पृथ्वीपर गये, पातालवासी पातालको गये अरु सूर्य भगवान् दिनरातकी कल्पनाको त्याग करि स्थिर हो रहे अरु मन्द मन्द पवन सुगंधसहित चलनेलगा मानो पवन भी कृतार्थ होने आया है तब सूर्य अस्त हुआ और ठौरको प्रकाशने लगा काहेते कि संतजन सब ठौरको प्रकाशते हैं अरु रात्री हुई, तारागण प्रकट हो आए, बहुरि अमृतरूपी किरणको धारे हुए चन्द्रमा आय उदय हुआ, अन्धकारका अभाव होगया अरु राजद्वार भी चन्द्रमाकी किरणोंके साथ शीतल हो गया. मानो वसिष्ठजीके वचनोंको सुनिकर इनकी तप्तता मिट गई है अरु सब श्रोता विचार पूर्वक रात्रिको व्यतीत करत भये, जब सूर्यकी किरण निकसीं तब अंधकार नष्ट होगया. जैसे संतोंके वचनोंकारि अज्ञानीके हृदयका तम नष्ट होता है, तैसे अंधकार नष्ट हो गया अरु सब जगत्की क्रिया प्रगट हो आई तब सूर्यकी किरणोंके साथ सब श्रोता स्नानसंध्याको करिकै आय स्थित भये. खेचर, भूचर, पातालके वासी सब अपने अपने स्थानों विषे आय बैठे परस्पर नमस्कार किये तब पूर्वकेप्रसंगको पायकारि बोलत भये राम उवाच-हे भगवन्! ऐसा जो मन है, संसाररूपी दुःखोंकी मंजरी जिसते बढती है तिस मनका रूप मुझको कहौ कि वह क्याहै? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! इस मनका रूप कछु देखनेविषे नहीं आता यह मन नाममात्र है, वास्तवरूप इसका कछु नहीं, आकाशकी नाईं शून्य है. जैसे आकाश शून्यरूप है, तैसे मन शून्यरूप है। हे रामजी! मन आत्माविषे कछु नहीं उपजा. जैसे सूर्यविषे तेज होता है तैसे आत्माविषे मन है जसे वायुविषे स्पंद है, जैसे जलविषे तरंग हैं, जैसे सुवर्णविषे भूषण हैं, तैसे आत्माविषे मन है, जैसे मरीचिकाका जल है, जैसे आकाशविषे दूसरा चन्द्रमा है सो वास्तव कछु

नहीं तैसे मन आत्मविषे कछु वास्तव नहीं । हे रामजी ! यह आश्चर्य है जो वास्तवमें कछु उपजा नहीं अरु आकाशकी नाईं सब घटोंविषे वर्त्तता है अरु संपूर्ण जगत् मनकरिकै भासता है असद्रूपी जगत् जिसकरिकै भासता है तिसका नाम मन है, हे रामजी ! आत्मा शुद्ध अद्वैत है तिसविषे द्वैतरूप जगत् जिसकरि भासता है, तिसका नाम मन है अरु संकल्प विकल्प जो फुरता है सो मनका रूप है जहां जहां संकल्प फुरता है तहां तहां मन है जैसे जहां जहां तरंग फुरते हैं तहां तहां जल है तैसे जहां जहां संकल्प फुरता है तहां तहां मन है और भी मनके नाम हैं, स्मृति कहिये, अविद्या कहिये, मलिनता कहिये तम कहिये ये सब इसके नाम हैं, ज्ञानवान् पुरुष जानते हैं. हे रामजी ! जेती कछु जगत्जाल भासती है, सो सब मनते उत्पन्न हुई है अरु सब दृश्य मनरूप है काहेते कि मनका रचा हुआ है वास्तव कछु नहीं । हे रामजी ! मनरूपी जो देह है तिसका नाम अंतवाहक शरीर है सो संकल्परूप है अरु सब जीवोंका आदि वपु है तिस संकल्पविषे जो दृढ आभास हुआ है तिसकरि आधिभौतिक भासने लगा है अरु आदि स्वरूपका प्रमाद हुआ है. हे रामजी! यह जगत् सब संकल्प रूपहै स्वरूपके प्रमादकरिकै पिंडाकार भासता है. जैसे स्वप्न देहका आकार आकाशरूपहै पृथ्वी आदि तत्त्वोंका आभाव होता है परंतु अज्ञान करिकै आधिभौतिकता भासती है सो मनहीका संसरना है तैसे यह जगत् है सब मनके फुरने करि भासता है; हे रामजी ! जहां मन है तहां दृश्य है, जहां दृश्य है तहां मन है, जब मन नष्ट होवै तब दृश्य भी नष्ट होवै शुद्ध बोधमात्रविषे जो दृश्य भासता है, सोई मन है जबलग दृश्य भासता है तबलग मुक्त न होवैगा जब दृश्यभ्रम नष्ट होवैगा तब शुद्ध बोधको प्राप्त होवैगा. हे-रामजी! द्रष्टा, दर्शन, दृश्य यह जो त्रिपुटी भासती है सो मनकरि भासती है जैसे स्वप्नविषे त्रिपुटी भासती है जब जागिकै उठा तब त्रिपुटीका अभाव हो जाता है अरु अपना आप भासता है, तैसे आत्मसत्ताविषे जागे हुए अपना आप अद्वैत ही भासता है, जबलग शुद्ध बोध नहीं प्राप्त भया

तब लग दृश्यभ्रम निवृत्त नहीं होता अरु बाह्य देखता है तब सृष्टि ही दृष्टि आती है जब अंतर देखैगा तौ भी सृष्टि दृष्टि आती है अरु तिसको सत्य जानिकरि राग दोष कल्पना उठती है अरु जब मन आत्मपदको प्राप्त होता है तब दृश्यभ्रम निवृत्त हो जाता है. जैसे जब वायुकी स्पंदता मिटी तब वृक्षके पत्रोंका हलना भी मिटि जाता है ताते मनरूपी दृश्य ही बन्धनका कारण है। राम उवाच–हे भगवन् ! यह दृश्यरूपी विषूचिका रोग है तिसकी निवृत्ति कैसे होवै सो कृपा करिकै कहौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! संसाररूपी वैताल जिसको लगा है तिसकी निवृत्ति अकस्मात् करि होती है. प्रथम तौ विचार करिकै जगत्का स्वरूप जानैगा तिसके अनंतर जब आत्मपदविषे विश्रांत होवैगा तब तू सर्व आत्मा होवैगा. हे रामजी ! दृश्यभ्रम जो तुझको भासता है तिसको मैं उत्तर ग्रंथकरि निवृत्त करौंगा इसविषे संदेह नहीं श्रवण कर, यह दृश्य मनते उपजा है इसका सद्भाव मनविषे हुवा है जैसे कमलके डोडेका जो उपजना है सो कमलडोडेके बीजविषे है, तैसे संसारका उपजना स्मृतिते होता है सो स्मृति अनुभव आकाशविषे होती है. हे रामजी ! स्मृति तिस पदार्थकी होती है जिसका अनुभव सद्भावरूप ग्रहण होता है अरु जेता कछु जगत् तुझको भासता है सो संकल्परूप है कोऊ पदार्थ सद्रूप नहीं, जो वस्तु असद्रूप है तिसकी स्थिरता नहीं होती अरु जो सद्वस्तु है तिसका अभाव कदाचित् नहीं होता, जेता कछु प्रपंच भासता है सो असद्रूप है मनके चिंतनते उत्पन्न हुआ है जब मन फुरनेते रहित होवै तब जगतभ्रम निवृत्त होता है. हे रामजी !पृथ्वी, पर्वत आदिक जगत् असद्रूप नहीं होता तब मुक्त भी कोऊ नहीं होता मुक्त जो होना है सो दृश्य भ्रमते होना है जो दृश्यभ्रम मन नष्ट न होता तौ मुक्त कोऊ न होता सो तौ ब्रह्मर्षि, राजर्षि, देवता इत्यादिक बहुतेरे मुक्त हुए हैं. इस कारणते कहते हैं कि दृश्य असत्यरूप है मनके संकल्पविषे स्थित है. हे रामजी! एक मनको स्थिर करि देख बहुरि अहं त्वं आदिक जगत् तुझको कछु न भासैगा चित्तरूपी आदर्श है तिसविषे संकल्प-

रूपी दृश्य मलीनता है जब मलीनता दूर होवेगी तब आत्माका साक्षात्कार होवैगा. हे रामजी! यह दृश्यभ्रम मिथ्या उदय भया है. जैसे गंधर्वनगर होता है, जैसे स्वप्नपुर होता है तैसे यह जगत् भी है. जैसे शुद्ध आदर्शविषे पर्वतका प्रतिबिंब होता है तैसे चित्तरूपी आदर्शविषे यह दृश्य प्रतिबिंबित है. मुकुरविषे जो पर्वतका प्रतिबिंब होता है सो आकाशरूप हैं कछु पर्वतका सद्भाव नहीं, तैसे अत्माविषे जगत्का सद्भाव नहीं. जैसे बालकको भ्रमकरि परछाहींविषे पिशाचबुद्धि होती है तैसे अज्ञानीको जगत् भासता है, वास्तवमें जगत् कछु नहीं. हे रामजी ! न कछु मन उपजा है न कछु जगत् उपजा है दोनों असद्रूप हैं, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है तैसे आत्मविषे जगत् भासता है जैसे आकाश अपनी शून्यताकरिकै पूर्ण है, जैसे समुद्र जलकरि पूर्ण हैं, तैसे ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित पूर्ण है तिसविषे जगत्का अत्यंत अभाव है. राम उवाच–हे भगवन् ! यह तुम्हारे वचन ऐसे हैं जैसे कहिये कि वंध्याके पुत्रने पर्वत चूर्ण किया है अरु शशेके शृंग अति सुंदर हैं अरु रेतविषे तेल निकसता है अरु पत्थरकी शिला नृत्य करती है अरु जैसे कहिये मूर्तिका मेघ गर्जता है अरु पत्थरकी पुतलियां गान करती हैं, तैसे तुम्हारे शब्द मुझको भासते हैं. तुम कहते हो दृश्य कछु उपजा नहीं अरु है ही नहीं अरु मुझको जरा मृत्यु आदिक विकारोंसहित प्रत्यक्ष भासता है ताते मेरे मनविषे तुम्हारे वचनोंका सद्भाव नहीं स्थित होता अरु जो तुम्हारे निश्चयविषे इसी प्रकार है तौ अपना निश्चय मुझको भी बताओ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! यह जो हमारे वचन हैं सो यथार्थ हैं, हमने असत् कदाचित् नहीं कहा तुम विचार करि देखौ यह जो जगत् आडंबर है सो कारणविना है जब महाप्रलय होता है तब पाछे शुद्ध चैतन्य संवित् रहता है तिसविषे कार्यकारणकल्पना कोई नहीं रहती है. तिसविषे जो बहुरि जगत् फुरता है सो कारणविना फुरता है, जैसे सुषुप्तिते स्वप्नसृष्टि फुरती है जैसे स्वप्नसृष्टि अकारण है तैसे यह सृष्टि भी अकारण है. हे–रामजी! जिसका समवायिकारण अरु निमित्तकारण न होवै अरु प्रत्यक्ष भासै तब जानिये कि भ्रांति

रूप है. जैसे नित्य स्वप्नका अनुभव तुझको होता है तिसविषे नानाप्रकारके पदार्थ कार्यकारण सहित भासते हैं अरु कारण विना हैं तैसे यह जगत् भी कारण विना है ताते आदि कारण विना जगत् उपजा है. जैसे गंधर्वनगर भासता है, जैसे संकल्पपुर भासता है, जैसे आकाश विषे दूसरा चंद्रमा भासता है तैसे यह जगत् भासता है कोऊ पदार्थ सत् नहीं. जैसे स्वप्नविषे राज्यपति भासते हैं अरु नानाप्रकारके पदार्थ भी भासते हैं सो किसी कारणते तौ नहीं उपजे सब आकाशरूप हैं मनके संसरने करिके भासते हैं तैसे यह जगत् चित्तके संसरनेकरिके भासता है. जैसे स्वप्नते और स्वप्न भासता है बहुरि और स्वप्न भासता है तैसे यह जगत् भासता है, तैसे जाग्रत् जगत्जाल मनकी कलपनाकरि भासता है. हे रामजी! चलना, दौरना, देना, लेना, बोलना, सुनना, सूंघना इत्यादिक विषय रागद्वेषादिक जो विकार हैं सो सब मनके फुरने करि होते हैं आत्माविषे विकार कोऊ नहीं जब मन उपशम होता है तब सब कल्पना निवृत्त हो जाती है ताते संसारका कारण मन है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे उत्पत्तिप्रकरणार्थ-
वर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ५.

मूलकारणदेवस्वरूपवर्णनम्।

राम उवाच-हे भगवन्! मनका रूप क्या हैं? यह तौ मायामय है इसका होना जिसते है सो कौन पद है? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जब महाप्रलय होता है तब सब जगत्का अभाव होता है. पाछे जो शेष रहता है सो सद्रूप है अरु आदि सर्गका भी सत्यरूप होता है तिसका नाश कदाचित् नहीं होता सदा प्रकाशरूप है अरु परम-देव है शुद्ध परमात्मतत्त्व अज अविनाशी है अद्वैत है जिसको वाणी नहीं कहि सकती सो पद जीवन्मुक्त पावता है. हे रामजी! आत्मआ-

दिक जो शब्द हैं सो भी उद्देशविषे कल्पित हैं स्वाभाविक कोऊ शब्द नहीं प्रवर्त्तता शिष्यको जनावने निमित्त शास्त्रकारोंने एते नाम देवके कल्पे हैं मुख्य तौ देवको पुरुषकरि कहते हैं वेदान्तवादी ब्रह्मकरि कहते हैं विज्ञानवादी बौद्ध तिसको विज्ञान करिकै कहते हैं एक कहते हैं निर्मलरूप है शून्य वादी कहते हैं शून्य ही शेष रहता है, एक कहते हैं प्रकाशरूप है, जिसके प्रकाशकरि सूर्यादिक प्रकाशते हैं, एक उसको वक्ता कहते हैं, कि आदि वेदका वक्ता वही है अरु स्मृति कर्त्ता कहते हैं कि सब कछु स्मृतिकरिकै वह करने हारा है सब कछु उसकी इच्छाकरिकै हुआ है ताते सबका कर्त्ता वही है सर्वात्मा है और सर्वका कर्त्ता है. हे रामजी ! इत्यादिक संज्ञा तिसकी शास्त्रकारोंने करी हैं सर्वका जो अधिष्ठान है, सो परमदेव है अरु अस्ति आदि षट् विकारोंते रहित है शुद्ध चैतन्य है सूर्यवत् प्रकाशरूप है सो देव सब जगत्‌विषे पूर्ण हो रहा है. हे रामजी ! आत्मरूपी सूर्य है ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक तिसकी किरणैं हैं अरु ब्रह्मरूपी समुद्र है तिसविषे जगतरूपी तरंग बुद्‌बुद उत्पन्न होते हैं अरु लीन होते हैं अरु सर्व पदार्थ आत्माके प्रकाशकरि प्रकाशते हैं. जैसे दीपक अपने आपकरि प्रकाशता है अरु औरोंको भी प्रकाश देता है, तैसे आत्मा अपने प्रकाशकरि प्रकाशता है और सर्वको सत्ता देने हारा है. हे रामजी ! वृक्ष जो उपजता है सो आत्मसत्ताकरि उपजता है आकाशविषे शून्यता तिसकी करी है अग्निविषे उष्णता तिसकी करी है जलविषे द्रवता तिसकी करी है पवनविषे स्पर्श तिसका किया है सर्व पदार्थोंकी सत्ता वही है मोरके पंखोंविषे जो रंग है सो आत्मसत्ताकरि हुआ है, पत्थरमें मुंगे तिसीकरि हुए हैं और पत्थरविषे जो जडता है सो तिसीकी करी है स्थावर जंगम जगत्‌का अधिष्ठानरूप ब्रह्म है. हे रामजी ! आत्मारूपी चंद्रमा है तिसकी किरणोंसों ब्रह्माण्डरूपी त्रसरेणु उत्पन्न होते हैं सो कैसा चंद्रमा है, जो शीतलता अरु अमृतकरि पूर्ण है ब्रह्मरूपी मेघ है तिसते जीवरूपी बुंदा स्रवते हैं. जैसे बिजलीका प्रकाश होता है अरु छुप जाता है, तैसे जगत प्रगट होता है अरु छुप जाता है सबका अधिष्ठान आत्मसत्ता है सो

नित्य शुद्ध बुद्ध परमानंदरूप है सत्य असत्यरूप पदार्थ सब आत्म-सत्ता करिकै होते हैं. हे रामजी ! तिस देवकी सत्ताकरिकै जड पुर्यष्टक चैतन्य होय करि चेष्टा करती हैं.जैसे चुंबक पत्थरकी सत्ताकरिकै लोहा चेष्टा करता है तैसे चैतन्यरूपी चुंबकमणिकरि देह चेष्टा करता है सो आत्मा चैतन्य नित्य है सबका कर्त्ता आत्मा ही है तिसका कर्त्ता और कोऊ नहीं सब साथ अभेदरूप है समान सत्ता है उदय अस्तते रहित है। हे रामजी ! जो पुरुष तिस देवको साक्षात् करता है तिसकी सब क्रिया नष्ट होजाती हैं अरु चिज्जडग्रंथि भेदि जाती है केवलबोधरूप होते हैं तब स्वभावसत्ताविषे मन स्थित होता है तब मृत्युको सन्मुख देखिकरि भी विह्वल नहीं होता. वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! यह देव किसी स्थानविषे रहता नहीं अरु कहूँ दूर नहीं अपने आपविषे स्थित है. हे रामजी! घटघटविषे देव है अरु अज्ञानीको दूर भासता है सो स्नान, दान, तप आदिकरिकै नहीं प्राप्त होता. ज्ञातव्य ही करि प्राप्त होता है. कर्तव्यताकरिके नहीं प्राप्त होता. जैसे मृगतृष्णाकी नदी भासती है सो कर्तव्यताकरि नहीं निवृत्त होती ज्ञातव्यकरिकै निवृत्त होती है, तैसे जगत्की निवृत्ति आत्मज्ञानकरि होती है. हे रामजी ! कर्तव्य भी सोई है जो प्राप्त होनेका ज्ञातव्यरूप है अर्थ यह जो ज्ञातव्यस्वरूपकी प्राप्ति होती है. राम उवाच—हे भगवन् ! जिस देवके जाननेते पुरुष बहुरि जन्म मरणको नहीं प्राप्त होता सो कहां रहता है ! अरु किस तप क्लेशकरि तिसकी प्राप्ति होती है ?

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मूलकारणदेवस्वरूपवर्णनं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ६.

अथ प्रयत्नोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! किसी तपकरि देवको नहीं प्राप्त होता अपने पुरुषप्रयत्नकरि प्राप्त होता है. जेता कछु राग, द्वेष, तम, क्रोध,

मत्सर, अभिमान सहित तप है, सो निष्फल दंभ है, इसकरि आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती. हे रामजी ! परम औषध सत्संग अरु सच्छास्त्रनका विचार है, जिसकरि दृश्यरूपी विषूचिका निवृत्त होती है प्रथम इसका आचार भी शास्त्र अरु लोकोंके साथ अविरुद्ध होवै; अर्थ यह कि शास्त्रोंके अनुसार होवै अरु भोगरूपी गर्तविषे गिरै नहीं; संतोष संयुक्त यथालाभसंतुष्ट होवै, अनिच्छित भोग प्राप्त होवै अरु शास्त्र अविरुद्ध होवै तिसको ग्रहण करै अरु विरुद्ध होवै तिसका त्याग करै दीन न होवै; ऐसा जो उदारआत्मा है; तिसको शीघ्र ही आत्मपदकी प्राप्ति होती है. हे रामजी ! आत्मपद पानेका कारण सत्संग अरु सच्छास्त्र हैं सत कौन है, जिसको सब लोक भला साधु कहते हैं अरु सच्छास्त्र सो है जिस विषे ब्रह्मनिरूपण होवै ऐसे संतोंका संग अरु सच्छास्त्रोंका विचार होवै तब शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होती है; जब यह पुरुष श्रुतिविचारद्वारा अपने परम स्वभावविषे स्थित होता है तब ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र भी इसकी दया चाहते हैं, कहते हैं कि जो यह पुरुष परब्रह्म हुआ है। हे रामजी ! सतोंका संग अरु सच्छास्त्रोंका विचार इसको निर्मल करता है, दृश्यरूप जो मैल है तिसका नाश करता है,जैसे निर्मल रेतकरिकै जलका मैल दूर होता है; अरु परम निर्मल होता है तैसे यह पुरुष निर्मल होता है अरु चैतन्य होता है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे प्रयत्नोपदेशवर्णनंनामषष्ठःसर्गः॥ ६॥

सप्तमः सर्गः ७.

दृश्यासत्ताप्रतिपादनम् ।

राम उवाच–हे भगवन् ! यह देव जो तुमने कहा जिसके जाननेते संसारबंधनते मुक्त होता है; सो देव कहां स्थित है अरु किस प्रकार तिसको पाता है ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह देव दूर नहीं शरीरविषे स्थित है, नित्य चिन्मात्र है; सर्वविषे पूर्ण है अरु सर्व विश्वते रहित

है, चंद्रमाको मस्तकविषे धरनहारा जो सदाशिव है सो चिन्मात्ररूप है अरु कमलज ब्रह्मा भी चिन्मात्ररूप है अरु कमलनाभ विष्णु भी चिन्मात्र है इंद्रादिक सब चिन्मात्ररूप हैं अरु सब जगत् चिन्मात्ररूप है राम उवाच–हे भगवन्! यह तो अज्ञानी बालक भी कहते हैं; कि आत्मा चिन्मात्र है; यह तुम्हारे उपदेशकरि क्या सिद्ध हुआ?

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! यह विश्व जो चिन्मात्र तू जानता है, इसके जाननेते संसारसमुद्रको नहीं लंघ सकता, इस चैतन्यका नाम संसार है यह चैतन्य जीव पशु है. संसार नामरूप है, इसते जरामरणरूप तरंग उत्पन्न होते हैं, काहेते जो हेयरूप दुःख पाता है. हे रामजी! चैतन्य होकरि जो चैत्यता है. सो अनर्थका कारण है अरु चेत्यते रहित चैतन्य है सो परमात्मा है, तिस परमात्माको जानिकरि मुक्ति होती है, तब चेत्यता मिटि जाती है, हे रामजी परमात्माके जाननेते हृदयकी चिज्जड-ग्रंथि टूट पडती है, अर्थ यह जो अहं मम नष्ट हो जाता है अरु सर्व संशय छेदे जाते हैं, सर्व कर्म क्षीण हो जाते हैं. राम उवाच–हे भगवन्! चित्त चैतन्योन्मुखत्व होता है, तब आगे दृश्य भासता है, सो स्पष्ट भासता है इसके होते चित्तके रोकनेको कैसा समर्थ होता है, अरु दृश्य किस प्रकार निवृत्त होता है? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! दृश्यसंयोगी चैतन्य है सो जीव है, जन्मरूपी जंगलविषे भटकता भटकता थक पडता है; इस चेतनको जो चेत्य कहते हैं अर्थ यह कि. चिदाभास जीव प्रकाशी सो पंडित भी मूर्ख है यह तौ संसारी जीव है इसके जाननेते मुक्ति कैसे होवै, मुक्ति परमात्माके जाननेते होती है, अरु सर्व दुःख नाश होते हैं. जैसे विषविषूचिका रोग उत्तम औषधकरि निवृत्त होता है, तैसे परमात्माके जाननेते मुक्त होता है. राम उवाच–हे भगवन्! परमात्माका क्या रूप है जिसके जाननेते मोहरूपी समुद्रको तरता है? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! देशते देशांतरको निमेषविषे दूर जो संवित् जाता है तिसको मध्य जो ज्ञानसंवित् है, सो परमात्माका रूप है अरु जहां संसारका अत्यंत अभाव होता है तिसके पीछे

बोधमात्र शेष रहता है, सो रूप परमात्माका है. हे रामजी ! जहां दृश्य द्रष्टा दर्शनका अभाव होता है ऐसा जो आकाश है, सो रूप परमात्माका है अरु जो अशून्य है अरु शून्यकी नाईं स्थित है जिसविषे सृष्टिका समूह शून्य है ऐसी अद्वैत सत्ता है; सो रूप परमात्माका है. हे रामजी ! महाचेतनरूप बडे पर्वतकी नाईं स्थित है. अरु अजड है अरु जडकी नाईं स्थित है; सो रूप परमात्माका है. सबके अंतर बाहिर स्थित है अरु सबको प्रकाशता है, सो परमात्माका रूप है. हे रामजी ! जैसे सूर्यका प्रकाशरूप है अरु जैसे आकाश शून्यरूप है, तैसे यह जगत् आत्मारूप है. राम उवाच–हे भगवन् ! जो सर्व परमात्मा ही है, तौ वह क्यों नहीं भासता ? और सब जगत् भासता है; इस जगत्का निर्वाण कैसे होवै. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह जगत् भ्रमकरिकै उत्पन्न हुआ है; वास्तव कछु नहीं. जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है; जब जगत्का अत्यंत अभाव जानैगा तब परमात्माका साक्षात्कार होवैगा; और किसी उपायकरि नहीं होवेगा; जब दृश्यका अत्यंत अभाव करैगा तब दृश्य उसी प्रकार स्थित रहैगा अरु तुझको पदार्थ सत्ता ही भासैगी. हे रामजी ! चित्तरूपी जो आदर्श है, सो दृश्यके प्रतिबिंब विना कदाचित् नहीं रहता, जबलग दृश्यका अत्यंत अभाव नहीं होता तबलग परमबोधका साक्षात्कार नहीं होता. राम उवाच–हे भगवन् ! यह दृश्य जाल आडंबर मनविषे कैसे स्थित हुआ है, जैसे सरसोंके दानेविषे सुमेरुका आना आश्चर्य है, तैसे जगत्का आना मनविषे आश्चर्य है. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! एक दिन तू वेद-धर्मकी प्रवृत्ति सकाम यज्ञयागादिक त्रिगुणते रहित होकरि स्थित हो; सत्संगति अरु सच्छास्त्रपरायण हो; तब एकक्षणविषे दृश्यरूपी मैल दूरमें जायगा. जैसे सूर्यकी किरणैं जाननेते जलका अभाव हो जाता हैं, तैसे दृश्यभ्रम तेरा अभाव हो जावैगा. जब दृश्यका अभाव हुआ तब द्रष्टा भी शांत होवैगा; जब दोनोंका अभाव हुआ तब पाछे शुद्ध आत्म सत्ता ही भासैगी. हे रामजी ! जबलग द्रष्टा है, तबलग दृश्य है अरु जबलग दृश्य है तबलग द्रष्टा है. जैसे एककी अपेक्षाकरि दो होते हैं, दो हैं तौ

एक है, एक है तब दो भी हैं, एक न होवै तब दो कहाँ होवै तैसे एकके अभाव हुए दोनोंका अभाव होता है; द्रष्टाकी अपेक्षाकरि दृश्य है; दृश्यकी अपेक्षा करिकै द्रष्टा है; एकके अभावकरि दोनोंका अभाव हो जाता है. हे रामजी ! अहंताते आदि लेकरि जो दृश्य है सो तेरे अर्थ कार्य दूर करौंगा, मार्जन कर देवौंगा; आत्मसत्ताते जो इतर दृश्यसत्ता भासती है. हे रामजी ! अनात्मा आदि लेकरि जो दृश्य है, सोई मैल है, तिसते रहित हुआ चित्तरूपी दर्पण निर्मल होवैगा जो पदार्थ असत्य है तिसका कदाचित् सत् नहीं होना अरु जो पदार्थ सत् है, सो असत् कदाचित् नहीं होना; जो वस्तु सत् न होवै, तिसका मार्जन करना क्या बात है ? हे रामजी ! यह जगत् आदि उत्पन्न नहीं भया. जो कछु दृश्य भासता है, सो भ्रांतिमात्र है, सर्व निर्मल ब्रह्म चैतन्य है. जैसे सुवर्णते भूषण होता है, सो सुवर्ण भूषणते भिन्न नहीं. जगत् अरु ब्रह्मविषे भेद कछु नहीं. हे रामजी ! दृश्यरूपी मलके मार्जन अर्थ मैं बहुत प्रकारकी युक्ति तुझको विस्तारकरिकै कहौंगा, तिसकारि तुझको अद्वैतसत्ताका भान होवैगा, यह जगत् जो तुझको भासता है. सो किसी कारणद्वारा उपजा नहीं. जैसे मरुस्थलकी नदी भासती है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है; तैसे यह जगत् कारण विना भासता है, जैसे मरुस्थलविषे जल नहीं, जैसे वंध्याका पुत्र नहीं, जैसे आकाशविषे वृक्ष नहीं, तैसे यह जगत् है नहीं, जो कछु देखता है सो निरामय ब्रह्म है, यह जो कछु तुझको कहा है सो वाणीमात्र नहीं कहा, युक्तिपूर्वक कहा है. हे रामजी ! गुरुओंकी कही युक्तिको जो मूर्खताकारि त्याग करते हैं तिनको सिद्धांत नहीं प्राप्त होता ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे दृश्यासत्ताप्रति
पादनंनाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८.

सच्छास्त्रनिरूपणम्।

राम उवाच–हे मुनीश्वर ! यह युक्ति कौन है? अरु कैसे प्राप्त होती है? जिसके धारेते पुरुष आत्मपदको प्राप्त होता है. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! मिथ्याज्ञान विषूचिका जगत् नामकी बहुत कालकी दृढ हो रही है सो विचाररूपी मंत्रकरिकै शांत होती है. हे रामजी ! बोधकी सिद्धता अर्थ तुझको आख्यान कहता हौं तिसको श्रवण करके तू मुक्तात्मा होवैगा अरु जो अर्द्ध प्रबुद्ध होइकरि तू उठ जावैगा, तो तिर्यगादिक धर्मको प्राप्त होवैगा. हे रामजी ! जिस अर्थके पानेकी इच्छा करता है तिसके पाने अनुसार यत्न भी करै तौ अवश्यमेव तिसको पाता है; जो थकिकारि फिरे नहीं ताते सत्संगति अरु सच्छास्त्रपरायण होवै; जब तू इनके अर्थविषे दृढ अभ्यास करैगा तब केतेक दिनोंविषे परमपदको पावैगा. राम उवाच–हे भगवन्! आत्मबोधका कारण कौन शास्त्र है? शास्त्रोंविषे श्रेष्ठ कौन है? जिसके जाननेते शोक न रहै. वसिष्ठ उवाच–हे महामते रामजी ! आत्मबोधका जो कारण है सो शास्त्रविषे परम शास्त्र महारामायण है, जिस विषे बडे इतिहास हैं जिसकरि परमबोधकी प्राप्ति होती है, हे रामजी ! सर्व इतिहासका सार मैं तुझको कहता हौं, जिसको समझ करि जीवन्मुक्त होवैगा. अरु जगत् न भासैगा. जैसे स्वप्नते जागे हुए स्वप्नके पदार्थ भासते हैं; जो कछु सिद्धांत है तिस सबका सिद्धांत इसविषे है. अरु जो इसविषे नहीं सो और विषेभी नहीं इसको सर्वशास्त्र विज्ञानभंडार बुद्धिमान् जानते हैं. हे रामजी ! जो पुरुष श्रद्धासंयुक्त इसको श्रवण करै अरु नित्य ही सुनिकै विचारै, तो उसकी बुद्धि उदार होवै अरु परमबोधको प्राप्त होवै इसविषे संशय नहीं अरु जिसको इस शास्त्रविषे रुचि नहीं सो पापात्मा है, उसको चाहिये कि प्रथम और शास्त्रको विचारै तिसके अनंतर इसको विचारै; इसको विचारिकारि जीवन्मुक्त होवै. जैसे उत्तम औषधिकारि रोग शीघ्र ही निवृत्त होता है, तैसे इस

शास्त्रके श्रवण अरु विचारनेकारि शीघ्र ही अज्ञान नष्ट होवैगा. अरु आत्मपदको प्राप्त होवैगा. हे रामजी! आत्मपदकी प्राप्ति वरशापकी नाईं नहीं होती, जो वर देनेकारि आत्मज्ञान प्राप्त होवै; जब विचार अभ्यास करै तब आत्मज्ञान प्राप्त होता है. हे रामजी! दान देनेकारि, तपस्याकारि, वेदके पठनेकारि भी आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती; केवल आत्मविचारकारि आत्मपदकी प्राप्ति होती है अरु संसारभ्रम अन्यथा नष्ट नहीं होता ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सच्छास्त्रनिरूपणं नामअष्टमः सर्गः॥८॥

नवमः सर्गः ९.

परमकारणवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जिस पुरुषका चित्त आत्मविषे है अरु प्राणोंकी चेष्टा भी आत्माकी ओर है अरु परस्पर बोधभी आत्माका है अरु कहता भी आत्माको है अरु तोषवान भी आत्माकरि है. रमता भी आत्मविषे है; ऐसा जो ज्ञाननिष्ठ जीवन्मुक्त है, बहुरि विदेहमुक्त होता है. राम उवाच–हे मुनीश्वर! जीवन्मुक्त अरु विदेहमुक्तका क्या लक्षण है? जो उसकी दृष्टिको लेकरि मैं भी तैसे ही करौं. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जो पुरुष सब जगत्का व्यवहार करता है अरु हृदयमें द्वैत भ्रम शांत भया है सो जीवन्मुक्त है. अरु जो सब क्रियाको करता है अंतरते आकाशकी नाईं निर्लेप रहता है, सो जीवन्मुक्त है जो पुरुष संसारकी दशातें सुषुप्त भया है अरु स्वस्वरूपविषे जगत् भया है जगत्भ्रम जिसका निवृत्त भया है सो जीवन्मुक्त है. हे रामजी! इष्टकी प्राप्तिविषे जिसके मुखकी कांति बढती नहीं अरु अनिष्टकी प्राप्तिविषे न्यून नहीं होती, सो पुरुष जीवन्मुक्त है और जो पुरुष सब व्यवहार करता है अरु अन्तरमें रागद्वेषते रहित शीतल रहता है, सो जीवन्मुक्त है. हे रामजी! जो पुरुष रागद्वेषादिक संयुक्त दृष्टि आता है, इष्टविषे रागवान् दीखता है अनिष्-

विषे द्वेषवान् दृष्टि आता है अरु अन्तर सदा शांतिरूप है सो जीवन्मुक्त है. जिस पुरुषको अहं ममताका अभाव है अरु बुद्धि किसीविषे लेपायमान नहीं होती सो कर्म करे अथवा न करे परन्तु जीवन्मुक्त है. हे रामजी ! जिन पुरुषनको मान, अपमान, भय, क्रोधविषे विकार कोई नहीं उपजता, आकाशकी नाईं शून्य होगये हैं सो जीवन्मुक्त हैं, जो पुरुष भोक्ता भी अन्तरते अभोक्ता हैं, सचित्त दृष्टि आते हैं अरु अचित्त हैं सो जीवन्मुक्त हैं; जिस पुरुषते लोक उद्वेगवान् नहीं होते अरु लोकोंते वह उद्वेगवान् नहीं होता रागद्वेषभयक्रोधते रहित है, सो जीवन्मुक्त है. हे रामजी ! जो पुरुष चित्तके फुरनेकरि जगत्की उत्पत्ति जानता है अरु चित्तके अफुरण हुए जगत्का प्रलय जानता है अरु सर्वविषे समबुद्ध है, सो जीवन्मुक्त है जो पुरुष भोगों करिकै जीवता दृष्टि आता है अरु मृतककी नाईं स्थित है, चेष्टा करता दृष्टि आता है, पर्वतकी नाईं अचल है, सो जीवन्मुक्त है हे रामजी ! जो पुरुष व्यवहार करता दृष्टि आवता है अरु चित्तविषे इष्ट अनिष्ट विकार कोऊ नहीं सो जीवन्मुक्त है. जिस पुरुषको सब जगत् आकाशरूप भया है अरु निर्वासना बुद्धि भई, सो जीवन्मुक्त है, काहेते जो सदा आत्मस्वभावविषे स्थित है सब जगत्को ब्रह्मस्वरूप जानता है. राम उवाच–हे भगवन् ! जीवन्मुक्तकी तुमने कठिन गति कही है, इष्ट अनिष्टविषे सम शीतल बुद्धि कैसे होती है ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इष्ट अनिष्टरूपी जगत् अज्ञानीको भासता है, ज्ञानीको सब आकाशरूप भासता है, रागद्वेष किसी विषे नहीं होता, औरकी दृष्टिविषे चेष्टा करता दृष्टि आता है, परंतु जगत्की वार्ताते सुषुप्त भया है. हे रामजी ! जीवन्मुक्त कोऊ काल रहि करि जब शरीरको त्यागता है, तब ब्रह्मपदको प्राप्त होता है, जैसे पवन स्पंदको त्याग करि निस्पंद होता है, तैसे जीवन्मुक्त पदको त्याग करि विदेह मुक्त होता है, तब ऐसे होइकरि स्थित होता है, सूर्य होइकरि तपावता वही है, ब्रह्मा होइकरि उत्पन्न करता है, विष्णु होइकरि प्रतिपालना करता है, रुद्र होयके संहार करता है, पृथ्वी होयकै सब भूतोंको धारता है, औषधि अन्नादिकोंको उत्पन्न करता है; पर्वत होयके पृथ्वीको राखता है,

जल होयके द्रवता रस देता है, अग्नि होयके उष्णताको धारता है, पवन होयके पदार्थोंको सुखावता है, चंद्रमा होयके औषधियोंको पुष्ट करता है, आकाश होयके सब पदार्थोंको ठौर देता है, मेघ होयके वर्षा करता है. स्थावर जंगम जेता कछु जगत् है, सर्वविषे आत्मा होयके स्थित होताहै. राम उवाच-हे भगवन् ! विदेहमुक्त शरीरके धारणते क्षोभवान् होता है, फिर जगत्विषे आवता है, त्रिलोकीका भ्रम क्यों नहीं मिटता. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जगत् आडंबर अज्ञानीके हृदयमें स्थित है, ज्ञानवान्को सब चिदाकाशरूप है, विदेहमुक्त सोई रूप होता है, जहां उदय अस्तकी कल्पना कोऊ नहीं, केवल शुद्ध बोधमात्र है. हे रामजी ! यह जगत् आदिते उपजा नहीं, अज्ञानकरिकै भासता है; मैं तू अरु जगत् सब आकाशरूप हैं. जैसे आकाशमें नीलता और दूसरा चंद्रमा भासता है, जैसे मरुस्थलमें जल भासता है, तैसे आत्मामें जगत् भासता है. हे रामजी! जैसे स्वर्णमें भूषण उपजा कछु नहीं, जैसे समुद्रमें तरंग होते हैं, तैसे आत्मामें जगत् उपजा नहीं, जेता कछु जगत्जाल है, सो मनके फुरनेतें भासता है, स्वरूपते बना कछु नहीं, ज्ञानीको सदा यही निश्चय रहता है बहुरि जगत्क्षोभ उसको कैसे भासै. हे रामजी ! यह भी मैं तेरे जनावने मात्र कहा है नहीं तौ जगत् कहां है, जगत्का अत्यंत अभाव है. राम उवाच-हे भगवन्! जगत्के अत्यंत अभाव हुए विना आत्मबोधकी प्राप्ति नहीं होती ? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! दृश्य, द्रष्टा मिथ्या भ्रम उदय हुआ है, जब दोनोंमेंते एकका अभाव होवै, तब दोनोंका अभाव होवै जब दोनोंका अभाव होवै तब शुद्ध बोधमात्र शेष रहै, जिस प्रकार जगत्का अत्यंत अभाव होवै सो युक्ति तुझको कहौं हौं, हे रामजी! चिरकालसे जगत् दृढ हो रहा है सो मिथ्याज्ञान विषूचिका है, सो विचाररूपी मंत्रसों निवृत्त होता है, जैसे पर्वतका चढना अरु उतरना शनैः शनैः होता है, तैसे अविरुद्धकभ्रम चिरकालका दृढ हो रहा है, विचारकरि अनुक्रमते तिसकी निवृत्ति होती है. जगत्के अत्यंत अभाव हुए विना आत्मबोध नहीं होता सो अत्यंत अभावके निमित्त मैं युक्ति कहता हौं; तिसके समझनेते जगत्भ्रम नष्ट होवैगा अरु जीवन्मुक्त होकरि तू विचरैगा.

हे रामजी ! बंधनकरि सोई बँधता है जो उपजा होता है अरु मुक्त भी सो होता है जो उपजा होता है, यह जगत् तुझको भासता है. सो उपजा नहीं अरु मरुस्थलविषे नदी भासती है सो उपजी नहीं भ्रमसे भासती है, तैसे आत्मामें जगत् भासता है सो उपजा नहीं भ्रमकरिके भासता है; वास्तव नहीं, जैसे अर्धमीलितनेत्र पुरुषको आकाशविषे तिरवरे भासते हैं, तैसे भ्रमकरिके जगत् भासता है. हे रामजी ! जब महाप्रलय होता है; तब स्थावर, जंगम, देवता, किन्नर, दैत्य, मनुष्य, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक जगत्का अभाव होता है, ताके अनंतर जो रहता है, सो इंद्रियग्राहक सत्ता नहीं, असत्य भी नहीं, न शून्य है, न प्रकाश है, न अंधकार है, न द्रष्टा है, न दृश्य है, न केवल है, न अकेवल है, न चेतन है, न जड है, न ज्ञान है, न अज्ञान है, न साकार है, न निराकार है, न किंचन है, न अकिंचन है, सर्व शब्दोंते रहित है, तिसविषे वाणीकी गम नहीं अरु जो है तो चेत्यते रहित चेतन आत्मतत्त्वमात्र ही जिसविषे अहंत्वंकी कल्पना कोऊ नहीं, ऐसे शेष रहता है पूर्ण अपूर्ण आदि मध्य अंतते रहित है; सोई सत्ता जगत्रूप होय भासती है और कछु जगत् बना नहीं, जैसे मरीचिकामें जल भासता है तैसे आत्मामें जगत् भासता है. हे रामजी ! जब चित्त-शक्ति स्पंदरूप हो भासती है तब जगदाकार भासता है अरु जब निस्पंद होती है, तब जगत्का अभाव होता है अरु आत्मसत्ता सदा एकरस रहती है. जैसे वायु स्पंदरूप होता है तब भासता है, विस्पंदरूप होता है तब नहीं भासता परंतु वायु एक ही है; तैसे चित्तसंवेदन स्पंदरूप होता है तब जगत्रूप होय भासता है, जब निस्पंदरूप होता है तब जगत् मिट जाता है. हे रामजी ! चेतनका जानना भी तब होता है, जब संवेदन स्पंदरूप होता है, जैसे सुगंधिका ग्रहण आधार भूतकरि होता है, आधार भूत द्रव्य विना सुगंधिका ग्रहण नहीं होता अरु वस्त्र श्वेत होता है, तब रंगको ग्रहण करता है अन्यथा रंग नहीं चढता; तैसे आत्माका जानना स्पंदकरि होता है; स्पंदविना जानने की कल्पना भी नहीं होती. जैसे आकाशमें शून्यता भासती है अथवा जैसे अग्निमें उष्णता भासती

है तैसे आत्मामें जगत् भासता है; अनन्यरूप है जैसे जल द्रवतासों तरंगरूप होयके भासता है तैसे आत्मसत्ता जगत्रूप होयके भासती है; सो आकावत् शुद्ध है अरु श्रवण, चक्षु, नासिका त्वचा देहते रहित है; शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधते रहित है अरु सर्व ओरते श्रवण करता, बोलता, सूंघता, स्पर्श करता, रस लेता भी आप ही है; आत्मरूपी सूर्यकी किरणों विषे जलरूपी त्रिलोकी फुरती भासती है, जैसे जलमें चक्र आवृत फुरते भासते हैं सो जलते इतर कछु नहीं, जलरूप ही हैं, तैसे जगत् आत्माते भिन्न कछु नहीं; आत्मरूप है, आत्मा ही जगत्रूप होकरि भासता है रसना नहीं अरु बोलता है; अभोक्ता है, सोई भोक्ता होयके भासता है, अफुर है सोई फुरता भासता है; अद्वैत है सोई द्वैतरूप होइकरि भासता है; निराकार है सोई साकाररूप होयके भासता है. हे रामजी! सर्व शब्दते आत्मसत्ता अतीत है सोई सर्व शब्दोंको धारती है, अन्य द्रष्टा होयके भासती है, परंतु इतर कछु हुआ नहीं, कई सृष्टि समान होती हैं कई विलक्षण होती हैं परंतु स्वरूपते इतर कछु हुई नहीं, सदा आत्मरूप है. जैसे सुवर्णमें भूषण समान आकार भी होते हैं अरु विलक्षण आकार भी होते हैं कंकणते आदि लेके जो भूषण हैं, सो स्वर्णते इतर कछु नहीं होते स्वर्णरूप ही हैं; तैसे जगत् आत्मस्वरूप है, शुद्ध आकाशते भी निर्मल है, बोधमात्र है. हे रामजी! जब तिसमें तू स्थिर होवैगा, तब जगत्-भ्रम मिट जावेगा, जगत् वास्तवते कछु नहीं सदा ज्योंका त्यों आपविषे स्थित है; मनके फुरणेकारि जगत् भासता है, मनके फुरणेते रहित हुए सब कल्पना मिटि जाती है आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों भासती है; सो सत्ता ज्योंकी त्यों ही है. सबका अधिष्ठानरूप है यह जगत सब उसीते हुआ है अरु वही रूप है सबका कारण आत्मसत्ता है; उसका कारण कोऊ नहीं, अकारण है काहेते जो अद्वैत है सो अजर है, अमर है सब कल्पनाते रहित है; शुद्ध चिन्मात्ररूप हैं॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे परमकारणवर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥९॥

दशमः सर्गः १०.

अथ परमात्मस्वरूपवर्णनम् ।

राम उवाच-हे भगवन् ! जब महाप्रलय होता है अरु सब पदार्थ नष्ट हो जाते हैं अरु तिसके पाछे जो रहता है सो शून्य कहिये अथवा प्रकाश कहिये तम है नहीं चेतन है; अथवा जीव है मन है नहीं, बुद्धि है; सत् असत् किंचन अकिंचन इनहूमें कोऊ तौ होवैगा? तुम कैसे कहते हौ जो वाणीकी गम नहीं? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! यह तुझने बडा प्रश्न किया है तिसको विना यत्न मैं नाश करौंगा. जैसे सूर्य उदय हुए अंधकारका नाश होता है, तैसे तेरे संशयका नाश होवैगा. हे रामजी ! जब महाप्रलय होता है तब संपूर्ण दृश्यका अभाव हो जाता है, पाछे जो शेष रहता सो शून्य नहीं अरु दृश्याभास उसविषे सदा रहता है अरु वस्तुते कछु हुआ नहीं जैसे स्तंभविषे शिल्पी पुतलियोंको कलपता है कि, एती पुतलियां इस स्तंभसों निकसैंगी; सो उसविषे शिल्पी कलपता है; वहां तौ स्तंभ ही है; जो स्तंभ न होवै तौ शिल्पी पुतलियां किसविषे कल्पै ? तैसे आत्मरूपी स्तंभविषे मनरूपी शिल्पी जगद्रूपी पुतलियां कलपता है; जो आत्मा न होवै, तब पुतलियां किसविषे कल्पै ? जैसे स्तंभविषे पुतलियां स्तंभरूप हैं, तैसे सब जगत् ब्रह्मरूप है, ब्रह्मते इतर जगत्का होना नहीं. जैसे पुतलियोंका सद्भाव अरु असद्भाव स्तंभविषे है; काहेते जो अधिष्ठानरूप स्तंभ है, स्तंभ विना पुतलियां नहीं होती, तैसे जगत् आत्मा विना नहीं होता. हे रामजी ! सद्भाव हो जाता है, सो सत्‌ते होता है, असत्‌ते नहीं होता अरु असद्भाव भी सिद्ध होता है, सो सत्हीविषे होता है; असत्‌विषे नहीं होता, ताते सत् शून्य नहीं जो शून्य होवै तौ भासना किस विषे होवै? जैसे सोमजलमें तरंगका सद्भाव भी होता है अरु असद्भाव भी होता है असद्भाव इस कारणते होता है कि तरंग भिन्न कछु नहीं अरु सद्भाव इस कारणते होता है कि, जलही विषे तरंग होते हैं सत् असद्भाव इसी कारणते जलविषे होता है, तैसे जगत्का सद्भाव असद्भाव आत्माविषे

होता है शून्यविषे नहीं होता. जैसे सोमजलमें कहनेमात्र तरंग है नहीं, जल ही है, तैसे जगत् कहने मात्र है अरु हुआ कछु नहीं एक सत्ता ही है अरु शून्यरूप अरु अशून्य भी नहीं; काहेते कि शून्य अशून्य यह जो दोनों शब्द हैं, सो उसविषे कल्पित हैं काहेते कि, शून्य उसको कहते हैं, जो अभावरूप होवै सद्भावते रहित; अशून्य उसको कहते हैं, जो विद्यमानता पावै सो सत्ता इन दोनोंते रहित है अरु अशून्य भी शून्यका प्रतियोगी होता है, जो शून्य नहीं तौ अशून्य कहांते होवै ? यह दोनों अभावमात्र हैं. हे रामजी ! यह जो सूर्य, तारा, दीपक आदिक भौतिक प्रकाश हैं, सो भी वहां नहीं, काहेते कि, यह प्रकाश अंधकारका विरोधी है, जो यह प्रकाश होता तो अंधकार सिद्ध न होता सो तो अंधकार भी सिद्ध होता है, इसी प्रकारते कहता है कि प्रकाश भी वहां नहीं अरु जो कहिये तम ही रहता होवेगा. तौ तम भी नहीं, काहेते कि सूर्य आदिक जिसकरि प्रकाशते हैं, सो तम कैसे होवे ? आत्मप्रकाश विना सूर्यादिक भी तमरूप हैं, ताते न शून्य है, न अशून्य है, न प्रकाश है, न तम है, केवल आत्मतत्त्वमात्र है. जैसे स्तंभमें पुतलियां कछु हुई नहीं, तैसे आत्मामें कछु जगत् हुआ नहीं, जैसे बिल्ली अरु बिल्लीकी मज्जाविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्में भेद कछु नहीं. जैसे जल अरु तरंगमें भेद कछु नहीं, जैसे मृत्तिका अरु घटमें कछु भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु-जगत्में कछु भेद नहीं, नाममात्र भेद है वास्तवमें कछु भेद नहीं. हे रामजी ! जल अरु मृत्तिकाका दृष्टांत जो दिया है, सो आत्मविषे ऐसे भी नहीं. जैसे जलमें तरंग होता है; मृत्तिकामें घट होता है सो भी परिणामरूप होता है अरु आत्मामें जगत्भान नहीं है ; अरु जो मानसिक है, तौ आकाशरूप है; ताते जगत् कछु भिन्न नहीं, रूप अवलोकन मनसा कार्यता जो कछु भासते हैं; सो सब आकाशरूप है आत्मसत्ता ही चित्तके फुरनेकारि जगत्रूप ह्वै भासती है; जगत् कछु दूसरी वस्तु नहीं, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलाभास होता है, तैसे आत्मविषे जगत् भासता है. हे रामजी ! स्तंभविषे जो पुतलियां कल्पता है, सो भी नहीं होतीं, अरु यहाँ कल्पनेवाला भी बीचकी पुतली है वह भी होवै विना

भासती है. हे रामजी ! जिसविषे यह जगत् भासता है तिसको शून्य कैसे कहिये ? अरु जो कहिये चैतन्य है तौ भी नहीं, काहेते कि चैतन्य जानना भी तब होता है, जब चित्कला फुरती है; जहां फुरना न होवै, तहां चैतन्यता केसे रहे ? जैसे मिरचको खाता है तब तिसकी तिखाई भासती है, खाए विना नहीं भासती, तैसे चैतन्य जानना भी स्पंदकलाविषे होता है, आत्मविषे जानना भी नहीं. चेतनताते रहित चिन्मात्र है, अक्षय सुषुप्तिरूप है, तिसको तुरीय कहते हैं; सो ज्ञेय ज्ञानवान्करि गम्य है. हे रामजी ! जो पुरुष तिसविषे स्थित हुए हैं, तिनको संसाररूपी सर्प डस नहीं सकता; वह अचेत्य चिन्मात्र होता है, जिसकी आत्माविषे स्थिति नहीं, तिसको दृश्यरूपी सर्प डसता है; आत्मसत्ताविषे तौ कछु द्वैत हुआ नहीं आत्मसत्ता आकाशते भी स्वच्छ है, द्रष्टा दर्शन दृश्य इनकी स्वतः जो अनुभवसत्ता है, सो आत्माका रूप है; जब अभ्यास करे तब तिसको प्राप्त होवै. हे रामजी ! तिसविषे द्वैतकल्पना कछु नहीं, अद्वैतमात्र है न द्रष्टा है, न जीव है, न कोऊ विकार है अरु न स्थूल है, न सूक्ष्म है, एक शुद्ध अद्वैतरूप है, अपने आपविषे स्थित है, जो यह चेत्यका फुरणा ही आदि नहीं हुआ, चेतनकलाका तो जीव कैसे होवै ? जो जीव ही नहीं तौ बुद्धि कैसे होवै ? जो बुद्धि ही नहीं तो मन इन्द्रियां कैसे होवैं ? जो इन्द्रियां नहीं तो देह कैसे होवै ? जो देह नहीं तो जगत् कैसे होवै ? हे रामजी ! आत्मसत्ताविषे सब कल्पना मिट जाती हैं; तिसविषे कछु कहना नहीं बनता, पूर्ण अपूर्ण सत् असत्ते न्यारा है; भाव अभावका विचार कोऊ नहीं, आदि, मध्य, अंतकी कल्पना कोऊ नहीं, अजर, अमर, आनंद, अनंत, चित्स्वरूप है; अचेत चिन्मात्र अवाच्य पद है; सूक्ष्मते भी सूक्ष्म है; आकाशते भी अधिक सूक्ष्म है, अरु स्थूलते भी स्थूल है, एक अद्वैतरूप है, अनंत चिद्रूप है. राम उवाच–हे भगवन् ! यह जो अचिंत्य चिन्मात्र परमार्थसत्ता तुमने कही, तिसका रूप बोधके निमित्त मुझको बहुरि कहौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जब महाप्रलय होता है तब सब जगत् नष्ट हो जाता है, परब्रह्म सत्ता शेष रहती है; तिसका

रूप कहता हौं मनरूपी ब्रह्म है, जब मनकी वृत्ति क्षीण होती है, सो वृत्ति कौन है ? एक प्रमाणवृत्ति है, दूजी विपर्ययवृत्ति है, तीसरी विकल्प वृत्ति है, चौथी अभाववृत्ति है, पंचम स्मरणवृत्ति है. प्रमाणवृत्ति आगे तीन प्रकारकी है, एक प्रत्यक्ष द्वितीय अनुमान; धुवाँ अग्नि जाननेकी वृत्ति शब्दरूप आप्तकामिका ये तीन प्रमाणवृत्ति हैं; द्वितीय विपर्ययवृत्ति हैं होवै अरु भासै और तृतीय विकल्पवृत्ति सो शब्दज्ञान होवै अरु अर्थ-ज्ञान न होवै; जैसे कहिये चैतन्य पुरुष कहा जो एक पुरुष होवै अरु उसका द्वितीय चैतन्यस्वरूप होवै तब चैतन्य पुरुष कहा जाय, चेतन ईश्वररूप है अरु साक्षी पुरुषरूप होवै सो जैसे सीप पडी होवै तिसविषे संशय वृत्ति होवै; साक्षीरूपी भासै साक्षी सीपीभास इसका नाम विकल्प है चतुर्थ स्मरणवृत्ति है पंचम निद्रा अभाववृत्ति है यह पञ्चम वृत्ति अरु इनका अभिमानी मन जो है तीन शरीरका अभिमानी अहंकाररूप तिसका जब नाश होवै तब पाछे जो रहता है सो निश्चल सत्ता अनंत आत्मा है, असत् नहीं कहि सकता है। हे रामजी ! जब जाग्रत्का अभाव होता है अरु सुषुप्ति नहीं आई, वह जो रूप है, सो परमात्माका है; अंगुष्ठको जो शीत उष्णका स्पर्श होता है तिसके अनुभव करनहारी परमात्मसत्ता है, जिसविषे द्रष्टा, दर्शन, दृश्य उपजते हैं अरु बहुरि लीन होते हैं, सो परमात्माका रूप है कैसी सत्ता है, जिस विषे चेतनता भी नहीं. हे रामजी ! चैतन्य जो है जीव अरु जड जो है देहादिक, सो जिसविषे दोनों नहीं ऐसा जो अचेत चिन्मात्र है, सो परमात्मारूप है अरु जो सब व्यवहार होता है; अरु अन्तर जिसके आकाशरूप है, कोऊ क्षोभ नहीं ऐसी जो सत्ता है सो पर-मात्माका रूप है; शून्य है परंतु शून्यताते रहित है. हे रामजी ! द्रष्टा, दर्शन दृश्य जिसविषे तीनों प्रतिबिंबित हैं अरु आकार है ऐसी जो सत्ता है, सो परमात्माका रूप है. स्थावरविषे जो स्थावर भावकरि व्यापा है, चैतन्यविषे जो चैतन्यभावकरि व्यापा है, मन बुद्धि इन्द्रियां जिसको पाय नहीं सकतीं ऐसी जो सत्ता है सो परमात्माका रूप है. हे रामजी !

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इनका जहां अभाव होजाता है, तिसके पाछे जो शेष रहता जिसविषे विकल्प कोऊ नहीं, अचेत चिन्मात्र जो सत्ता है, सो रूप परमात्माका है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे परमात्मस्वरूपवर्णनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ११.

परमार्थरूपवर्णनम् ।

राम उवाच—हे भगवन्! यह दृश्य जो स्पष्ट भासता है, सो महाप्रलयमें कहां जाता है? वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! वंध्या स्त्रीका पुत्र कहांते आता है अरु कहां जाता है? आकाशका वन कहांते आता है अरु कहां जाता है? जैसे आकाशका वन है, तैसे यह जगत् है. राम उवाच—हे मुनीश्वर! वंध्याका पुत्र अरु आकाशका वन तीनों काल हैं नहीं, शब्दमात्र हैं, उपजा कछु नहीं अरु यह जगत् स्पष्ट भासता है सो वंध्याके पुत्र समान कैसे होवे? वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! जैसे वंध्याका पुत्र अरु आकाशका वन उपजा नहीं, तैसे यह जगत् भी उपजता नहीं जैसे संकल्पपुर होता है, जैसे स्वप्ननगर प्रत्यक्ष भासता है अरु आकाशरूप है, कोऊ पदार्थ सत् नहीं, तैसे यह जगत् आकाशरूप है. कछु उपजा नहीं. जैसे ज़ल अरु तरंगमें भेद कछु नहीं, जैसे काजर अरु श्यामतामें भेद नहीं, जैसे अग्नि अरु उष्णतामें भेद नहीं, जैसे चंद्रमा अरु शीतलताविषे भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगतविषे भेद नहीं, सदा अपने स्वभावविषे स्थित है, जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद नहीं, जैसे आकाश अरु शून्यताविषे भेद नहीं, जैसे चंद्रमा अरु शीतलतामें भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्में भेद नहीं. हे रामजी! जगत् कछु बना नहीं, आत्मसत्ता ही अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे अज्ञानकरके जगत् भासता है; जैसे आकाशविषे

दूसरा चंद्रमा भासता है, जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है, जैसे आकाशविषे तरवरे भासते हैं, तैसे आत्माविषे अज्ञानकरि जगत् भासता है. राम उवाच-हे भगवन्! दृश्यके अत्यंत अभाव विना बोधकी प्राप्ति नहीं होती अरु जगत् स्पष्टरूप भासता है. द्रष्टा अरु दृश्य जो मनकरि उदय हुए हैं सो भ्रम करिके हुए हैं. जो एक भी है, तो दोनों बंध हुए हैं, जब दोनोंविषे एकका अभाव होवै, तब दोनों मुक्त होवैं काहेते कि, जहां द्रष्टा है, तहां दृश्य भी है अरु जहाँ दृश्य है, तहां द्रष्टा भी है. जैसे शुद्ध आदर्श प्रतिबिंब विना नहीं होता, तैसे द्रष्टा दृश्य विना नहीं रहता अरु दृश्य, द्रष्टा विना नहीं. हे मुनीश्वर! दोनों विषे एक नष्ट होवै तब दोनों निर्वाण होवैं, ताते सोई युक्ति कहौ, जिसकरि दृश्यको अत्यंत अभाव होवै, अरु आत्मबोध प्राप्त होवै एक ऐसा भी कहते हैं जो दृश्य आगे था अब नाश हुआ है. तब उसको भी संसारभाव दिखावैगा, अरु जिसके विद्यमान नहीं भासता अरु अन्तर उसका सद्भाव है, तौ फेरि संसार देखैगा. जैसे सूक्ष्म बीज विषे वृक्षका सद्भाव होता है, तैसे स्मृति बहुरि संसारको दिखावैगी; अरु तुम कहते हो, जगत्का अत्यंत अभाव होता है, अरु जगत्का कारण कोऊ नहीं आभासमात्र है; उपजा कछु नहीं. हे मुनीश्वर ! जिसका अत्यंत अभाव होता है वह वस्तु वास्तव नहीं होती है; जो नहीं तौ बंधन भी किसीको हुआ नहीं, सब मुक्तस्वरूप हुवे अरु जगत् प्रत्यक्ष भासता है, ताते सोई युक्ति कहो जिस करि जगत्का अत्यंत अभाव होवै. वसिष्ठ उवाच- हे रामजी! दृश्यके अत्यंत अभाव निमित्त एक कथा श्रवण कराता हौं जिसके अर्थ निश्चयकर समझते दृश्य शांत हो जावैगा; बहुरि संसार कदाचित् न उपजैगा. जैसे समुद्रविषे धूर नहीं उडती, तैसे तेरे हृदयविषे संसार न रहैगा. हे रामजी! यह जगत् तुझको भासता है सो अकारणरूप है, इसका कारण कोऊ नहीं. हे रामजी! जिसका कारण कोऊ न होवै अरु भासे तिसको जानिये कि, भ्रममात्र है उपजा कछु नहीं. जैसे स्वप्नविषे सृष्टि भासती है, सो कोई कारणते उपजी नहीं संवित्रूप है; तैसे स्वर्ग आदि कारणते नहीं उपजा आभासरूप है, पर-

मात्माका कछु नहीं. हे रामजी ! जो पदार्थ कारणविना भासै, सो जिस वस्तुविषे भासता है, सोई अधिष्ठानरूप है जैसे तुमको स्वप्नविषे स्वप्नका नगर होइ भासता है तौ और पदार्थ वहां कोऊ नहीं आभासरूप है; संवित ज्ञान चैत्यताकरिके नगररूप होइ भासता है; तैसे विश्व अकारण आभास आत्मसत्ताते होयके भासता है. जैसे जलविषे द्रवता है, वायुविषे स्पंदता है, जैसे जलविषे रस है, जैसे तेजविषे प्रकाश है, तैसे आत्माविषे चित्तसंवेदन है; जब चित्तसंवेदन स्पंदरूप होता है तब जगतरूप होकरि भासता है और जगत् कोऊ वस्तु नहीं. हे रामजी ! जैसे और तत्त्वोंके अणु हैं सो और ठौर भी पाये जाते हैं अरु आकाशका अणु और ठौर नहीं पाया जाता है, काहेते कि आकाश शून्यरूप है. तैसे आत्माते इतर इस जगत्का भाव कहूँ नहीं पाया जाता, काहेते कि आभासरूप है, किसी कारणते उपजा नहीं, जो तू कहै कि, पृथ्वी आदिक तत्त्वोंते जगत् उपजा है, तौ ऐसे कहना भी असंभव है; जैसे छायाते धूप नहीं उपजता, तैसे तत्त्वोंते जगत् नहीं उपजता, काहेते जो आदि आप ही नहीं उपजे तो कारण किसका होवै ? ताते सर्वदा ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है. हे रामजी ! आत्मसत्ता जगत्का कारण नहीं, काहते कि वह अभूतरूप है अरु अजडरूप है, सो भूतका अरु जडका कारण कैसे होवै ? जैसे धूप परछावेका कारण नहीं तैसे आत्मसत्ता जगतका कारण नहीं; ताते जगत् कछु हुआ नहीं तो है क्या ? वही सत्ता जगत्रूप हो करि भासती है, जैसे स्वर्ण भूषणरूप होता है, तो भूषण कछु उपजा नहीं, तैसे ब्रह्मसत्ता जगत्रूप होकरि भासती है, जैसे अनुभव संवित् स्वप्ननगररूप होइ भासता है, तैसे यह सृष्टि किंचनरूप है, दूसरी वस्तु कछु नहीं, सदा ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है जेता कछु जगत् स्थावरजंगमरूप भासता है सो आकाशरूप है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे परमार्थरूपवर्णनं नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२.

जगदुत्पत्तिवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! आत्मसत्ता नित्य शुद्ध है, अजर अमर है, सदा अपने आप विषे स्थित है, तिसविषे जिस प्रकार सृष्टि उदय भई है सो श्रवण कर, तिसके जाननेते जगतकल्पना मिटि जावैगी. हे रामजी! भाव अभाव, ग्रहण त्याग, स्थूल सूक्ष्म, जन्म मरण पदार्थोंकरि जीव पडा छिदता है, सो तिसते तू मुक्त होवैगा. जैसे चूहे सुमेरु पर्वतको चूर्ण नहीं करि सकते तैसे तुझको संसारके भाव अभाव पदार्थ चूर्ण न करि सकैंगे. हे रामजी! आदि शुद्ध देव अचेत चिन्मात्र है, तिसविषे चैत्यभाव सदा रहता है, काहेते कि चैतन्यरूप है. जैसे वायुविषे स्पंद शक्ति सदा रहती है, तैसे चिन्मात्रविषे चेत्यका फुरणा रहता है; अहं अस्मि इस भावको प्राप्त हुआ है, इस कारणते तिसका नाम चैतन्य है. हे रामजी! जबलग चैतन्य संवित् अपने स्वरूपकी ठौर नहीं आता तबलग इसका नाम जीव है, और संकल्पका नाम बीज चित्त संवित् है; तिससे सर्व भूत जात उत्पन्न हुई है ताते सबका जीव चित्त संवित् है; जीव संवित् जब चेत्यको चेतता भया, तब प्रथम शून्य हुआ, तिसविषे शब्द गुण हुआ, तिस आदि शब्द तन्मात्रते पदवाक्यप्रमाणसहित वेद उत्पन्न भये, जेता कछु जगतविषे शब्द है, तिसका बीज तन्मात्रा है, जिसते सर्व वायु अरु स्पर्श होता है, बहुरि रूप तन्मात्रा हुई, तिससे सूर्य अग्निआदिक प्रकाश हुवा है, बहुरि रसतन्मात्रा हुई जिसतें सब जल होता है, सब जलोंका बीज वही है; बहुरि गंध तन्मात्रा हुई, जिसते पूर्ण पृथ्वी होती है, सब पृथ्वीका बीज वही है. हे रामजी इस प्रकार पांचों भूत हुए हैं, पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाशते बहुरि जगत् हुआ है; सो भूत पंचीकृत भी है अरु अपंचीकृत भी है, यह भूत शुद्ध चिदाकाशरूप नहीं, काहेते जो संकल्प मैलयुक्त भये हैं, तैसे इस प्रकार चिदणुविषे सृष्टियां भासती हैं,जैसे बट बीजमेंते वटका विस्तार

होता है तैसे चिद्‌अणुविषे सृष्टि है, कहूं क्षणविषे युग भासता है, कहूं युगविषे क्षण भासता है, चिद्‌अणुविषे अनंत सृष्टि पडी फुरती हैं, जब चित्त संवित् चैत्योन्मुख होता है, तब अनेक सृष्टियां होय भासती हैं, अरु जब चित्त संवित्‌आत्माकी ठौर आता है, तब आत्माके साक्षात्कार होनेकरि सत् सृष्टि पिंडाकार होइ जाती हैं, अर्थ यह जो सब आत्मरूप होती हैं ताते इस जगत्‌का बीज सूक्ष्मभूत है, अरु इनका बीज चिद्‌ अणु है. हे रामजी! जैसा बीजहोता है, तैसा ही वृक्ष होता है ताते सब जगत् चिदाकाशरूप है, संकल्प करके यह जगत्‌आडंबर होता है संकल्पके मिटेते सब चिदाकाश होता है. जैसे संकल्प आकाशरूप है, तैसे जगत् भी आकाशरूप है, जो सब आत्मानुभव आकाशरूप है, ताते क्षणविषे एक रूप होता है, जैसे संकल्पनगर अरु स्वप्नपुर होता है, तैसे यह जगत् है. हे रामजी! इस जगत्‌का मूल पंचभूत हैं और तिसका बीज संवित् है, तिसका स्वरूप चिदाकाश है, ताते सब जगत् चिदाकाश है, द्वैत और कछु नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जगदुत्पत्तिवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः १३.

स्वयंभूत्पत्तिवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! परब्रह्म सम है, शांत है, स्वच्छ है, अनंत है, चिन्मात्र है, सर्वकाल अपने आपविषे स्थित है; तिसविषे सम अ-समरूप जगत् उत्पन्न हुआ है. समरूप कहिये सजातीयरूप, असम कहिये भेदरूप, सो कैसे हुए सो सुन, प्रथम तौ तिसविषे चैत्यका फुरणा हुआ है, तिसका नाम जीव हुआ. जिसने दृश्यको चेता है, तिसकरि तन्मात्रा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध उपजे हैं, तिन्होंते पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश पांचों भूतरूपी हुआ है. तिस वृक्षमें ब्रह्मांडरूपी फल लगा है. ताते जगत्‌का कारण पंचतन्मात्रा ही है अरु तन्मात्राका

बीज आदि संवित् आकाश है. ताते सर्व जगत् ब्रह्मरूप हुआ हैं ॥ हे-रामजी ! जैसा बीज होता है, तैसा ही फल होता है जो इसका बीज परब्रह्म है, तौ यह भी परब्रह्म हुआ, आदि जो अचेत चिन्मात्र स्वरूप है, सो परमाकाश है. अरु जिस चैतन्य संवितविषे जगत् भास्या है सो जीवाकाश है.सो यह भी शुद्ध निर्मल है;काहेते कि,पृथ्वी आदिक भूतोंते रहित है। हे रामजी ! यह जगत् जो तुझको भासता है, सो सब चिदा-काशरूप है. और द्वैत वास्तवते कछु नहीं बना, यह मैं तुझको ब्रह्माकाश अरु जीवाकाश कहे हैं. अब जिसकरि इसको शरीर ग्रहण हुआ है; सो श्रवण कर। हे रामजी ! शुद्ध चिन्मात्रते जो चैत्योन्मुखत्व हुआ है अहं अस्मि तिस अहंभावकरिके आपको जीव अणु जानत भया.अपना जो वास्तव स्वरूप था, तिसते अन्य भावकी नाईं हुआ, तिस जीव अणु-विषे अहंभाव दृढ हुआ, तिसका नाम अहंकार हुआ, तिस अहंकारकी दृढता करिकै निश्चयात्मक बुद्धि हुई, तिसते आगे संकल्प विकल्परूपी मन हुआ, जब मन संसरने लगा, तब इसकी सुननेकी इच्छा करी तिसकरि श्रवण इंद्रिय प्रगटभई; जब रूप देखनेको इच्छा करी, तब चक्षु इंद्रिय प्रगट भई, जब स्पर्शकी इच्छा करी तब त्वचा इंद्रिय प्रकट भई, जब रस लेनेकी इच्छा करी तब जिह्वा इंद्रिय प्रगट भई, इसी प्रकार देह इंद्रिय चेतनता करि भासी,तिनविषे अहं प्रतीत करने लगा. हे रामजी! जैसे दर्पणविषे पर्वतका प्रतिबिंब होता है, सो पर्वतते बाह्य होता है, तैसे देह इंद्रियां बाह्य दृश्य हैं,अरु अपने विषे भासती हैं, तिसकरि तिन्होंविषे अहं प्रतीति होती है. जैसे कूपविषे मनुष्य आपको देखे, तैसे देहविषे आपको देखता है, जैसे डब्बविषे रत्न होता है;तैसेदेहविषेआपको देखता है; सोई चिद् अणुदेह साथ मिलिकरि दृश्यको रचता है; तिस अहंकारि रूपविषे यह क्रिया भासने लगी. जैसे स्वप्नविषे दौडता जावैं जैसे स्थितविषे स्पंद होता है, तैसे आत्मविषे स्पंदक्रिया हुई है, सो चित्त संवित्कर हुई है. तिसका नाम स्वयंभू ब्रह्मा हुआ, जैसे संकल्पकरि दूसरा चन्द्रमा भासता है; तैसे मनोमय जगत् भासता है, जैसे शशेके शृंग होते हैं तैसा यह जगत् है; कछु उपजा नहीं. चित्तके स्पंदविषे

जगत् फुरता है जैसे २ चित्त फुरा है, तैसे २ देश, काल, द्रव्य, स्थावर, जङ्गम जगत्की मर्यादा भई है; ताते सब जगत् संकल्परूप है; संकल्पते इतर जगत्का आकार कछु नहीं जब संकल्प फुरता है तब आगे जगत्का दृश्य भासता है, जब संकल्प निस्पंद होता है; तब दृश्यका अभाव होता है. हे रामजी ! इस प्रकार करके यह ब्रह्मा निर्वाण हुआ है, बहुरि और उपजे हैं, ताते सब संकल्पमात्र है, जैसे नटवा नानाप्रकारके पटके स्वांगकरके बाहर निकस आता है, तैसे देख, जो सब मायामात्र है । हे रामजी ! जब चित्तकी ओर संसरणता है, तब दृश्यका अन्त नहीं आता, अरु जब अंतर्मुख होता है, तब सब जगत् आत्मरूप होता है; चित्तके स्पंद होनेकरि एक क्षणविषे निवृत्त होता है, क्योंकि संकल्परूप ही है, ताते जो कछु जगत भासता है, सो आकाशरूप है, उपजा कछु नहीं; आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों अपने आपविषे स्थित है. जसे स्वप्नविषे पर्वत नदियां भ्रमकरि देखती हैं, तैसे भ्रमकरिके यह जगत् भासता है. जैसे स्वप्नविषे आपको मुआ देखता है, सो भ्रममात्र है; तैसे यह जगत् भ्रममात्र है । हे रामजी ! स्थावर, जङ्गम जगत् कछु भासता है सो सब चिदाकाश है हमको तौ सदा चिदाकाश ही भासता है; आदि विराट्रूप ब्रह्मा भी वास्तवते कछु उपजा नहीं; तौ जगत् कैसे उपजा होवै ? जैसे स्वप्नविष नानाप्रकारके देश, काल, व्यवहार दृष्टि आते हैं; सो अकारणरूप हैं; उपजें कछु नहीं, आभासमात्र है; तैसे यह जगत् आभासमात्र है, कार्यकारण भासते हैं तौ भी अकारण हैं । हे रामजी ! हमको तौ जगत् ऐसा भासता है, जैसे स्वप्नते जागे मनुष्यको भासता है; जो वस्तु अकारण भासी है, सो भ्रांतिमात्र है, जो जगत् किसी कारणद्वारा उपजा नहीं तौ स्वप्नवत् है, जैसे संकल्पपुर भासता है; जैसे गंधर्वनगर भासता है, तैसे यह जगत् भी जान, आदि विराट् आत्मा है, सो अंतवाहकरूप है; पृथ्वी आदि तत्त्वोंते रहित है. आकाशरूप है तौ यह जगत् अधिभूत करिके कैसे होवै ? सब आकाशरूप है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे स्वयंभूत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः १४.

सर्वब्रह्मप्रतिपादनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! यह दृश्य मिथ्या असद्रूप है जो है सो निरामय ब्रह्म है, सो ब्रह्म आकाश जीवकी नाईं हुआ है. जैसे समुद्र द्रवता करके तरंगरूप होता है; तैसे ब्रह्म जीवरूप होता है. आदि जो संवित् स्पंदरूप हुआ है, सो ब्रह्मा हुआ है, तिस ब्रह्माते आगे जीव हुए हैं, जैसे एक दीपकते बहुत दीपक होते हैं, जैसे एक संकल्पते बहुत संकल्प होते हैं, तैसे एक आदि जीवते बहुत जीव हुए हैं; जैसे स्तंभविषे शिल्पी पुतलियां कल्पता है, जो एती पुतलियां इस स्तंभविषे हैं, सो पुतलियां शिल्पीके मनविषे होती हैं, स्तंभ ज्योंका त्यों ही स्थित है. तैसे सब पदार्थ आत्माविषे मन कल्पै हैं; वास्तवते ज्योंका त्यों आत्मा ब्रह्म है. तिन पुतलियोंविषे बडी पुतली ब्रह्मा है और जीव छोटी पुतलियां हैं. जैसे वास्तवमें स्तंभ है, पुतली कोऊ नहीं उपजी, तैसे वास्तव आत्मसत्ता है. जगत् कछु उपजा नहीं. संकल्प करिकै जगत् भासता है, संकल्पके मिटेते जगत् कल्पना मिटि जाती है. राम उवाच-हे भगवन्! एक जीवते जो बहुत जीव हुए हैं, सो पर्वतविषे पाषाणकी नाईं उपजते हैं; जो पर्वतविषे अनंत पिंड आकार होते हैं, कोई जीवोंकी खाण है, जो इस प्रकार एते जीव उत्पन्न हो आते हैं, अथवा मेघविषे बूँदोंकी नाईं हैं? अथवा अग्निते विस्फुलिंगोंकी नाईं उपजते हैं? सो कहो; और एक जीव कौन है जिसते संपूर्ण जीव उपजते हैं। वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! न एक जीव है, न अनेक जीव हैं, यह तेरे वचन ऐसे हैं, जैसे कोऊ कहै मैं शशेके शृँग उड़ते देखे हैं; तैसे एक जीव ही उपजा नहीं तौ मैं अनेक कैसे कहौं? जो कि ऐसे उपजे है शुद्ध अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है; अनंत आत्मा है तिसविषे भेदकी कल्पना कोऊ नहीं. हे रामजी! जो कछु जगत् तुझको भासता है, सो सब आकाशरूप है, कोऊ पदार्थ उपजा नहीं; संकल्पके फुरणेकरि जगत् भासता है जीवशब्द अरु जीवशब्दका अर्थ आत्मा

विषे कोऊ उपजा नहीं यह कल्पना भ्रमकरि भासती है; आत्मसत्ताही जगत्की नाईं भासती है, तिसविषे न एक जीव है, न अनेक जीव हैं। हे रामजी! आदि जो विराट् आत्मा है; सो आकाशरूप है; तिससे और जगत् उपजा सो तुझको क्या कहौं? जगत् विराट् रूप है, अरु विराट् जीवरूप है, अरु जीव आकाशरूप है बहुरि और जगत् क्या रहा? अरु जीव क्या हुआ? सब चिदाकाशरूप है, यह जेते जीव भासते हैं सो सब ब्रह्मस्वरूप हैं, और द्वैत कछु नहीं. न इनविषे कछु भेद है.

राम उवाच–हे मुनीश्वर! तुम कहते हो, आदि जीव कोऊ नहीं, तौ इन जीवोंको पालनेहारा कौन है? जिसकी आज्ञाविषे यह पडे विचरते हैं? सो नियामक कौन है? जो कोऊ हुआ नहीं तौ यह सर्वज्ञ अरु अल्पज्ञ क्योंकारि होता है एकविषे यह कैसे है? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जिसको तू आदिजीव कहता है; सो ब्रह्मरूप है, नित्य है, शुद्ध है, अनंतशक्ति है, अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे जगत्कल्पना कोऊ नहीं. हे रामजी! जो शुद्ध चिदाकाश अनंतशक्ति है, तिसविषे जो आदिचित्त किंचन हुआ है, सो शुद्ध चिदाकाश ब्रह्मसत्ता ही जीवकी नाईं भासने लगी है; स्पंदद्वारा हुएकी नाईं भासती है; स्वरूपते इतर कछु हुआ नहीं, चैतन्य संवित् आदिस्पंद करके विराट् आत्मा ब्रह्मरूप होइकरि स्थित भया है, तिसते आगे संकल्पकरिकै जगत् रचा है; तिसविषे शुभ अशुभ कर्म रचे हैं, तिनकरि नीति रची है; जो यह शुभ है, यह अशुभ है, जैसे आदि नीति रची तैसे ही महाप्रलयपर्यंत ज्योंकी त्यों चलीजाती है. हे रामजी! वह जो देव है, अनंतशक्ति है तिसविषे जैसे आदि फुरणा हुआ है, तैसे ही स्थित है, जो आदि सर्वशक्ति फुरी है सो तैसे ही है, जो अल्पज्ञ फुरी है, सो अल्पज्ञ है. हे रामजी! इस संसारके जो पदार्थ हैं तिनोंविषे नीतिशक्ति प्रधान है; तिसके लंघनेको कोऊ समर्थ नहीं. जैसे रची है तैसे महाप्रलयपर्यंत रहती है. ॥ हे रामजी! आदि नित्य जो विराट् पुरुष है सो अंतवाहकरूप है, पृथ्वी आदिक तत्त्वोंते रहित है अरु यह जगत् भी अंतवाहकरूप है, पृथ्वी आदिक तत्त्वोंते नहीं उपजा, सब संकल्परूप है; जैसे मनोराज्यका

नगर शून्य होता है, तैसे यह जगत् शून्य है. हे रामजी ! इस सर्गका निमित्तकारण कोऊ नहीं अरु समवायिकारण भी कोऊ नहीं जो पदार्थ निमित्तकारण और समवायिकारण विना दृढ आवै सो भ्रममात्र जानिये, उपजा कछु नहीं, जो पदार्थ उपजता है सो दोनों कारणकरि उपजता है, सो जगत्‌का कारण कोऊ नहीं, ब्रह्मसत्ता नित्य शुद्ध अद्वैतसत्ता है तिस विषे कार्यकारणकी कल्पना कैसे होवै ? हे रामजी ! यह जगत् अकारण है, भ्रांतिकरिकै भासता है, जब तुझको आत्मविचार उपजैगा तब दृश्य-भ्रम मिटि जावैगा. जैसे दीपक हाथमें लेकरि अंधकारको देखिये तौ दृष्टि नहीं आता, तैसे विचारकरि देखैगा तौ जगत्‌भ्रम मिटि जावैगा. जगत्-भ्रम मनके फुरणेकरि उदय हुआ है, ताते संकल्पमात्र है, इसका अधि-ष्ठान ब्रह्म है, सब नामरूप ब्रह्मसत्ताविषे कल्पित हैं. षट्विकार भी ब्रह्म सत्ताविषे फुरे हैं और सबते रहित भी हैं, शुद्ध चिदाकाशरूप है और जगत् भी वही रूप है. जैसे समुद्रविषे द्रवताकारिके तरंग, बुद्बुद, फेन भासता है, तैसे आत्मसत्ताविषे चित्तके फुरणेकरि जगत् भासता है; जैसे आदि चित्तविषे पदार्थसत्ता दृढ हुई है; तैसे ही स्थित है. अरु आत्मा साथ अभेद है, इतर कछु नहीं, सब चिदाकाश है, इच्छा भी आकाशरूप है, देवता भी आकाशरूप है, समुद्र पर्वत भी आकाशरूप हैं. हे रामजी ! हमको सदा चिदाकाशरूप ही भासता है, आत्मसत्ता ही मनरूप हो भासती है, और बुद्धिरूप हो भासती है; पर्वत कंदरा सब जगत् होकरि भासत है, सब चेत्योन्मुखत्व होता है तब जगत् भासता है. जैसे वायु स्पंदरूप होता है तब भासता है अरु निस्पंदरूप होता है तब नहीं भासता, तैसे जब चित्त संवेदन स्पंदरूप होता है, तब जगत् भासता है; जब चित्तसंवेदन अस्फुररूप होता है तब जगत् कल्पना मिट-जाती है. हे रामजी ! चिन्मात्रविषे जो चैत्यभाव हुआ है इसीका नाम जगत् है जब चैत्यते रहित हुआ तब जगत् मिटि जाता है; जो जगत् ही न रहा तब भेदकल्पना रही सो भेदकल्पना आत्माविषे कैसे होवे ? ताते न कोऊ कार्य है, न कारण है, न जगत है, सब भ्रममात्र कल्पना है, शुद्ध चिन्मात्र अपने आपविषे स्थित है. हे रामजी ! शुद्ध चिन्मात्रविषे चित्त

किंचन सदा रहता है,जैसे मिरचोंके बीजविषे तीक्ष्णता सदा रहती है,परंतु जब खाता है तब तीक्ष्णता भासती है,अन्यथा नहीं भासती,तैसे जब चित्त संवेदन चेत्योन्मुखत्व होता हैतब जीव जगत् चैतन्य भासता है अरु संवेदनते रहित जीवजगत् कल्पना नहीं भासती.हे रामजी! जब संवेदन साथ परिच्छिन्न संकल्प मिलता है, तब जीव होता है अरु जब इसते रहित होता है,तब शुद्ध चिदात्मा ब्रह्म होता है,जिस पुरुषकी अशेषविषे कल्पना मिटि गई है अरु जिसको शुद्धनिर्विकार ब्रह्मसत्ताका साक्षात्कार हुआ है, सो पुरुष संसारभ्रमते मुक्त हुआ है. हे रामजी! यह सब जगत् आत्माका आभासरूप है, सो आत्मा अच्छेद्य है, अदाह्य है, अक्लेद्य है, नित्यशुद्ध है, सर्वगत स्थाणुकी नाईं अचल है, सो अहंरूप है, सब जगत् चिदाकाशरूप है, हमको तौ सदा ऐसे ही भासता है, अज्ञानी वादविवाद पडे करते हैं, हमको वादविवाद कोऊ नहीं, काहेते जो हमारा सब भ्रम नष्ट हो गया है. हे रामजी! यह सब जगत् ब्रह्मरूप है और द्वैत कछु नहीं, जिनको निश्चय भया है, तिनके अंग अपना स्वरूप ही है,ताते निराकार निर्वपु सत्ताके अंग अपना स्वरूप क्यों न होवै? ताते जेता कछु प्रपंच है सो सब चिदाकाशरूप है, परंतु अज्ञानीको भिन्न भिन्न भासता है; अरु जन्ममरण आदि विकार भासता है अरु ज्ञानवान्‌को सब आत्मरूप ही भासते हैं, पृथ्वी, आप, तेज, वायु,आकाश सब आत्माके आश्रय फुरते हैं अरु चित्तशक्ति ही ऐसे होइकरि भासती है,जैसे वसंतऋतु आता है, तिसविषे रसशक्तिकरिकै वृक्ष बेलियां सब प्रफुल्लित होइकरि भासती हैं, तैसे चित्तशक्ति स्पंदताकरिकै जगत्‌रूप होइकरि भासती है. हे रामजी! जैसे वायु स्पंदताकरिकै भासता है तैसे जगत् फुरणेकरि भासता है, तैसे ही चित्तसंवित् जगद्रूप होइकरि भासता है। इस फुरणेते जगत् है, अपर वस्तुते जो कछु हुआ नहीं, इसीते जगत् कछु नहीं जैसे समुद्र तरंगरूप होइ भासता है तैसे आत्मा जगत्‌रूप हो भासता है, इसते जगत् दृश्यभावकरि भासता है अरु संवित्‌ते कछु हुआ नहीं, परंतु वायु जड है, आत्मा चतन्य है अरु जल भी परिणाम करिकै तरंगरूप होता है, आत्मा अच्युत है, निराकार है. हे रामजी! चैतन्य-

रूप रत्न है, जगत् तिसका चमत्कार है, चैतन्यरूपी अग्नि है तिसविषे जगद्रूपी उष्णता है. हे रामजी ! चैतन्यप्रकाश यह भौतिक प्रकाशरूप होकरि भासता है, इसते जगत् है अरु वस्तुते कछु नहीं, चैतन्यसत्ता यह शून्य आकाशरूप होइकरि भासती है इस भावकरि जगत् है, वास्तव हुआ नहीं, इसते जगत् कछु नहीं, चैतन्यसत्ताही पृथ्वीरूप होयकरि भासती है, दृश्यविषे होता है इसते जगत् है, अरु आत्मसत्ताते इतर कछु हुआ नहीं इसते चैतन्यबिना घन अंधकार है, तिसविषे जगतरूपी कृष्णता है, चैतन्यरूपी काजलताका पहाड है तिसका जगतरूपी प्रमाण भ्रम है, चैतन्यरूपी सूर्य है तिसविषे जगद्रूपी दिन है, आत्मरूपी समुद्र है, तिसविषे जगतरूपी तरंग है, आत्मरूपी कुसुम है, तिसविषे जगतरूपी सुगंध है, आत्मरूपी बर्फ है, तिसविषे शुक्लशीततारूपी जगत् है, आत्मरूपी बेलि है; तिसविषे जगतरूपी फूल है, आत्मरूपी स्वर्ण है, तिसविषे जगतरूपी भूषण है. आत्मरूपी पर्वत है, तिसविषे जगतरूपी जड सघनता है, आत्मरूपी अग्नि है, तिसविषे जगतरूपी प्रकाश है, आत्मरूपी आकाश है, तिसविषे जगद्रूपी शून्यता है, आत्मरूपी ईख है तिसविषे जगतरूपी मधुरता है, आत्मरूपी दूध है, तिसविषे जगतरूपी घृत है, आत्मरूपी मधु है, तिसविषे जगतरूपी मधुरता है आत्मरूपी सूर्यहै, तिसविषे जगतरूपी जलभास है, है भी अरु नहीं भी है. हे राम जी ! इसप्रकार देख जो सर्व ब्रह्म है, नित्य है, शुद्ध है, परमानन्द स्वरूप है, सर्वदा अपने आपविषे स्थित है, भेदकल्पना कोऊ नहीं. जैसे जल द्रवता करिके तरंगरूप होइ भासता है, तैसे ब्रह्मसत्ता जगतरूप होइ भासती है अरु न कोऊ उपजा है न कोऊ नष्ट होता है. हे रामजी ! आदि जो चित्तशक्ति स्पंदरूप होता है सो विराट्रूप ब्रह्म है. सो भी चिदाकाशरूप है, आत्मसत्ताते इतर भावको नहीं प्राप्त भया. जैसे पत्र ऊपर लीकैं होती हैं, सो पत्रते भिन्न लीकैं कछु नहीं, वस्तु वही है, पत्ररूप है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् है, कछु इतर नहीं अरु पत्र ऊपर लीकैं भी आकार हैं, ब्रह्मविषे जगत् कछु आकार नहीं; सब आकाशरूप मनविषे पडा फुरता है, जगत् कछु हुआ नहीं. जैसे शिलाविषे शिल्पी

पुतलियां कल्पता है,तैसे अत्माविषे मनने जगत् कल्पना करी है, वास्तव ते कछु हुआ नहीं. शिला ही वज्र की नाईं पीन है अरु सब जगत्को धारि रही है; आकाशकी नाईं विस्ताररूप होइकरि अरु शांतरूप है, हुआ कछु नहीं;जो कछु है सो परम ब्रह्मरूप है, जो ब्रह्म ही है.तौ कल्पना कैसे होवै ? वाल्मीकि उवाच-इस प्रकार जब मुनिशार्दूल वसिष्ठजीने कहा, तब सायंकालका समय हुआ सब सभा परस्पर नमस्कार करिकै आश्रमको गई, बहुरि सूर्यकी किरणोंके साथ सब अपने स्थानोंपरि आन बैठे ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सर्वब्रह्मप्रतिपादनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः १५.

मण्डपोपाख्याने राजवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! आत्माविषे कछु उपजा नहीं, भ्रमकरिकै पडा भासता है. जैसे आकाशविषे भ्रम करिकै तरवरे मुक्तमाला भासते हैं, तैसे अज्ञान करिकै आत्माविषे जगत् भासता है; जैसे स्तंभविषे उकरे विना पुतलियां शिल्पीके मनविषे भासती हैं, जो एती पुतलियां स्तंभविषे हैं सो पुतलियां कोऊ नहीं; काहेते कि किसी कारणते नहीं उपजी, तैसे चैतन्यरूपी स्तंभविषे मनरूपी शिल्पी त्रिलोकीरूपी पुतलियां कल्पता है, परंतु कछु कारणकरि उपजी नहीं, ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है. जैसे सोमजलविषे त्रिकाल तरंगोंका सद्भाव होता है वास्तवते जगत्का होना कछु नहीं, चित्तके फुरणेकरि जगत् भासता है; जैसे सूर्यकी किरणें झरोखेविषे आती हैं तिसविषे सूक्ष्म त्रसरेणु होते हैं, तिसते भी चिद्अणु सूक्ष्म है; जैसे त्रसरेणुते सुमेरु पर्वत स्थूल है तैसे चिद्अणुते त्रसरेणु स्थूल है. ऐसे सूक्ष्म चिद्अणुते यह जगत् पडा फुरता है सो क्या रूप है ?आकाश ही रूप है, कछु उपजा नहीं, फुरणे करि जगत् भासता है. हे रामजी ! आकाश, पर्वत, समुद्र, पृथ्वी आदिक जेता कछु जगत्

भासता है सो उपजा कछु नहीं तो और पदार्थ उपजे कहां होवैं, सब आकाशरूप है वास्तवमें कछु उपजा नहीं, जो कछु अनुभवविषे होता है तो भी असत् है; जैसे स्वप्नसृष्टि अनुभव होती है तो भी उपजी कछु नहीं असद्रूप है, तैसे यह जगत् असद्रूप है, शुद्ध निर्विकार सत्ता अपने आपविषे स्थित है; तिससत्ताका त्याग करिकै जो अवयव अरु अवयवीके विकल्प उठावते हैं तिनको धिक्कार है; यह सब जगत् आकाशरूप है अरु अधिभूतक जगत् जो भासता है सो गंधर्वनगर स्वप्नसृष्टिवत् है. हे रामजी! पर्वतोंसहित जगत् भासता है सो रत्तीमात्र भी नहीं; जैसे स्वप्नके पर्वत जाग्रत्के रत्तीभर भी नहीं होते; काहेते कि कछु हुए नहीं, तैसे यह जगत् आत्मरूप है भ्रांतिकरिकै भासता है, जैसे संकल्पका मेघ सूक्ष्म होता है, तैसे यह जगत् आत्माविषे तुच्छ है. जैसे शशेके शृङ्ग असत् होते हैं तैसे जगत् असत् है,जैसे मृगतृष्णाकी नदी असत् होती है, तैसे यह जगत् असत् है, असम्यक् ज्ञानकरिकै जगत् भासता है, विचार कियेते शांति हो जाती है, शुद्ध चैतन्य सत्ताविषे जब चित्तसंवेदन होता है तब वही संवेदन जगत्रूप होय भासता है, परंतु जगत् हुआ कछु नहीं. जैसे समुद्र अपनी द्रवता स्वभाव करिकै तरंगरूप होइ भासता है परन्तु तरंग कछु और वस्तु नहीं जलरूप है, तैसे ब्रह्मसत्ता जगत्रूप होइकरि फुरती है सो और तो जगत् भिन्न पदार्थ कोऊ नहीं ब्रह्मसत्ता किंचनद्वारा ऐसे भासती है; जैसा बीज होता है, तैसा ही अंकुर निकसता है, जैसी आत्मसत्ता है, तैसे ही जगत् है, दूसरी वस्तु कोऊ नहीं आत्मसत्ता ही अपने आपविषे स्थित है, चित्तसंवेदनके स्पंदकरिकै जगत्रूप होती है. हे रामजी! तिस ऊपर, एक आख्यान तुझको कहता हौं सो श्रवणका भूषण है; तिसके समुझेते सब संशय मिटि जावैगा अरु विश्रामको प्राप्त होवैगा। राम उवाच-हे भगवन्! मेरे बोधकी वृद्धताके निमित्त मंडप आख्यान जिसपर हुआ है तैसे संक्षेपते कहौ। वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! इस पृथ्वीमें एक राजा पद्म होत भया है सो कैसा था, जो कुलका कमल प्रफुल्लित था अरु संतानवान् था अरु बडी लक्ष्मीकरि संपन्न अरु समुद्रवत् मर्यादाके धारणेहारा अरु दुष्टरूपी

तमका नाशकर्त्ता, सूर्य अरु सत् गुणरूपी हसोंका मानससरोवर अरु दोषरूपी कौवोंका नाशकर्त्ता अरु दोषरूपी तृणोंका नाशकर्त्ता अग्नि अरु प्रजाके पालनेको और शत्रुके नाश करनेको विष्णुजी तथा मित्र रूपी चन्द्रमुखी कमलनीको चन्द्रामा था अरु सम्पूर्ण राजसी सात्त्विकी गुणोंकर सम्पन्न था, एक लीला नाम तिनकी स्त्री थी, बहुत सुंदर थी, मानो लक्ष्मीने अवतार लिया है सो राजाकी प्रसन्नताको देखके आप भी प्रसन्न होवै अरु राजाको दिलगीर देखके आप भी दिलगीर होवे, अरु राजाको क्रोधवान् देखैं तब भयवान् होवै, बहुत सुशीलता संयुक्त रहै.

इति श्री योगवासिष्ठे उत्पत्तिकरणे मण्डपोपाख्याने
राजवर्णनं नाम पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः १६.

मण्डपोपाख्याने राज्ञीपरिदेवनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! तिस रानीके साथ राजा क्रीडा करत भया; बाग जावे, ताल कदंब वृक्षों कल्पवृक्षोंके नीचे जावे, सुंदर सुंदर स्थानों विषे जायके क्रीडा करै, बरफके मंदिर बनायके तिसविषे रहै अरु रत्नमणिके जडे हुए स्थानोंविषे शय्या बिछाके विश्राम करै; इस प्रकार बिचरते भये बहुरि ठाकुरद्वारा तीर्थ जो जो दूर भी पुण्य स्थान थे तहां गये; इस प्रकार राजसी अरु सात्त्विकी स्थानोंविषे विचरते भये आपसमें गुह्यार्थ पावै, एक एक पदक है, दूसरा तिसको श्लोक करि करि उत्तर देवै अरु श्लोक भी ऐसे पढ़ै जो पढ़नेमें भाषा भासे, अर्थविषे संस्कृत हो अरु शयनकी अरु शृंगारकी चतुराई सीखै अरु राजा चंद्रमाकी नाईं सुंदर अरु राजसी विद्याकरि पूर्ण, हस्ती घोडे रथ आदिक चलावनेको भी विद्यावान् शास्त्रोंके चलावनेकी विद्याकरि भी संपन्न हुआ. इस प्रकार राजा बहुत चतुर हुआ अरु दोनोंका परस्पर आपसमें स्नेह भया अरु दोनोंकी यौवन अवस्था हुई अरु दोनों गुणवान् भये जो राजाका

चित्त और किसी ठौर न जावै अरु रानीका चित्त भी और किसी ओर न जावै, रानी पतिव्रता अरु राजा धर्मात्मा हुआ. तब एक समय रानीने विचार किया कि राजा मुझको बहुत प्रिय है, अपने प्राणोंकी नाईं प्यारा है अरु बहुत सुंदर है, किसी प्रकार इसकी युवावस्था सदा रहै और अजर, अमर रहै इसका अरु मेरा वियोग कदाचित् न होवै सोई उपाय करौं, यज्ञ करौं, दान करौं, तप करौं ऐसे विचार करिकै ब्राह्मणों, ऋषीश्वरों, मुनीश्वरोंसों पूछती भई. हे विप्रो ! अजर अमर नर किस प्रकार होता है ? जिस प्रकार होता है सो हमको कहौ. विप्र उवाच-हे देवि ! जप तप आदि करिकै सिद्धता प्राप्त होती है परंतु अमर नहीं होता, सब जगत् नाशरूप है. इस शरीरकरि कोई स्थिर नहीं रहता. हे रामजी ! इस प्रकार ब्राह्मणोंते सुनिकरि रानी भर्त्ताके वियोगते डरिकरि विचार करने लगी कि जो भर्त्तासों मैं प्रथम मरौं तो मेरे बडे भाग्य हैं मैं सुखवती होऊँगी अरु जो यह प्रथम मृतक होवै तो सोई उपाय करौं जिसकरि राजाका जीव मेरे अंतःपुरविषे ही रहै, बाह्य न जावै; मैं दर्शन करती रहौं, ताते सरस्वतीको मैं सेवौं । हे रामजी ! ऐसे विचार करिकै तपरूप जो सरस्वती है तिसका पूजन करती भई, तब त्रिरात्र अरु दिनपर्यंत निराहार रहै, चतुर्थ दिनमें पारणा करै; जिस प्रकार शास्त्र-विधि है तिस प्रकार करै ; देवता, ब्राह्मण, पंडित, गुरु ज्ञानियोंकी पूजा करै; स्नान, दान, तप, ध्यान नितप्रति करै; यह नियम किया, अरु गृहविषे जिस प्रकार आगे कीर्तन करती थी उसी प्रकार विचरै, भर्त्ताको लखावै नहीं इस प्रकार नियमसंयुक्त क्लेशते रहित तप करती भई; जब तीनसौ दिन व्यतीत भये तब प्रीतिसंयुक्त होइकरि सरस्वतीकी पूजा करी; तब वागीश्वरी प्रसन्न होइ करि दर्शन देती भई अरु कहा. हे पुत्रि! तुझने भर्त्ताके निमित्त निरंतर तप किया है सो मैं प्रसन्न भई हौं जो तुझको अभीष्ट वर है सो माँग । लीलोवाच-हे देवि ! तेरी जय होवै, मैं अनाथ तेरी शरण हौं, मेरी रक्षा कर; यह जन्म जरारूपी जो अग्नि है सो बहुत प्रकारकरि जलावत है, तिसके शांति करनेको तुम चंद्रमा हौ अरु हृदयविषे जो तम है, तिसका नाश करनेको तुम

सूर्य हो, हे माता! मुझको दो वर देहु; एक यह वर देहु कि, जब मेरा भर्त्ता मृतक होवै तब इसका वपु जो है पुर्यष्टक सो बाह्य न जावै, अंतःपुरहीविषे रहै अरु दूसरा यह वर देहु कि, जब मेरी इच्छा तुम्हारे दर्शनकी होवै तब दर्शन देहु। सरस्वत्युवाच-ऐसे ही होवैगा. हे रामजी! इस प्रकार वर देके सरस्वती अंतर्धान भई; जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिके लीन होते हैं तैसे देवी अंतर्द्धान हो गई, ऐसे सुनिकै लीला बहुत प्रसन्न भई; कालरूप चक्र फिरताहै, जिसको क्षणरूपी आरा लगा हुआ है, तिसके तीनसौ साठ कीले हैं; वर्षपर्यंत उसी ठौर बहुरि आते हैं ऐसा जो कालचक्र है तिसकरि राजा पद्म रणभूमिकाते फटके आय घरविषे पडा हुआ मृतक भया तब ऐसा हो गया, जैसे सूखे पत्रसों रस निकसि जाता है तैसे पुर्यष्टकके निकसनेकरि राजाका शरीर कुम्हलाइ गया, तब राणी उसके मरणकरि बहुत शोकवान् भई मुखकी कांति दूर हो गई, जसे कमलिनी जल विना कुम्हलाइ जाती है, तैसे विलाप करने लगी, कबहूँ ऊँचेस्वरकरि रुदन करै कबहूँ चुपकरि जावै राजाके वियोगकरि बहुत शोकवान् भई, जैसे चकवेके वियोगकरि चकवी शोकवान् होती है, जैसे सर्पके फूत्कार लगते कोऊ मूर्च्छित होता है, तैसे शोकके श्वासोंकरि लीला मूर्च्छित हो गई अरु व्याकुल होके प्राण त्यागने लगी; तब सरस्वतीजीने दया करिकै आकाशवाणी करी॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राज्ञीपरिदेवनवर्णनं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः १७.

अथ संदेहराष्ट्रवर्णनम्।

सरस्वत्युवाच-हे सुंदरि! यह जो तेरा भर्त्ता मृतक भया है तिसको तू सर्व ओरते फूलोंकरि ढांपिराख, बहुरि तुझको भर्त्ताकी प्राप्ति होवैगी अरु यह फूल नहीं कुम्हलावेंगे. तेरे भर्त्ताकी ऐसी अवस्था है, जैसे

आकाशकी निर्मल कांति है अरु तेरेही मंदिरविषे है कहूँ गया नहीं. हे रामजी! इस प्रकार कृपा करिके जब देवीने वचन कहा, तब लीला कछुक शांतिवान् भई, जैसे जलविना मच्छी तडफडाती हुई मेघकी वर्षाकरिके कछुक शांतिवान् होती है, तैसे लीला कछुक शांतिवान् होती भई, बहुरि कैसे हुई जैसे धन होवै अरु कृपणता कर धनका सुख न होवै, तैसे वचनों कर शांतिवान् हुई अरु भर्त्ताके दर्शन विना सब शांति न हुई. तब लीला ऐसे ही करत भई. ऊपर नीचे फूलोंकरि भर्त्ताको ढांपा, उसके पास आप भी शोकवान् होइकरि बैठी रही अरु रुदन करने लगी. बहुरि देवीकी आराधना करी, तब अर्धरात्रिके समय देवीजी आय प्राप्त भई अरु कहा, हे सुंदरि! तैंने मेरा स्मरण किस निमित्त किया है? अरु तू शोक किस कारण करती है? यह तो सब जगत् भ्रांतिमात्र है जैसे मृगतृष्णाकी नदी होती है, तैसे यह जगत् है. अहं त्वं इदं ते ले आदिक जो जगत् भासता है, सो सब कल्पनामात्र है, भ्रम करिके भासता है, आत्माविषे हुआ कछु नहीं, तू किसका शोक करती है? लीलोवाच–हे परमेश्वरि! मेरा भर्त्ता कहां स्थित है अरु क्या रूप धरा है? तिसको मुझे मिलाउ, तिस विना मैं अपना जीना देख नहीं सकती. देव्युवाच–हे लीले! आकाश तीन हैं; एक भूताकाश है, एक चित्ताकाश है, एक चिदाकाश है; यह जो आकाश है, सो भूताकाश है, चित्ताकाशके आश्रय है, अरु चित्ताकाश चिदाकाशके आश्रय है, तेरा भर्त्ता अब भूताकाशको त्याग करि चित्ताकाशको प्रत्यक्ष गया है; सो चित्ताकाश चिदाकाशके आश्रय स्थित है, जब तू चिदाकाशविषे स्थित होवैगी तब सब ब्रह्मांड तुझको भासैगा; तिसविषे प्रतिबिंबित होते हैं तहां तुझको भर्त्ताका अरु जगत्का दर्शन होवैगा. हे लीले! देशते देशांतरको क्षणविषे संवित् जाता है, तिसके मध्य जो अनुभव आकाश है, सो चिदाकाश है, जब तू संकल्पको त्याग देवै तिसते शेष रहे सो चिदाकाश है. हे लीले! यहां जो जीव विचरते हैं, सो पृथ्वीके आश्रय हैं अरु पृथ्वी आकाशके आश्रय है, ताते यह सब जीव जो विचरते हैं, सो भूताकाशके आश्रय विचरते हैं अरु चित्त जिसके आश्रयते एक क्षणविषे देशदेशांतर

भटकता है सो चित्ताकाश है. हे लीले ! जब दृश्यका अत्यंत अभाव होता है, तब परम पदकी प्राप्ति होती है, सो चिरकालके अभ्यासते प्राप्त होती है, अरु मेरा तुझको यह वर है, जो तुझको शीघ्रही प्राप्त होवैगा हे रामजी ! इस प्रकार जब ईश्वरी कहिकारि अंतर्द्धान होत भई तब लीला करिकै लीला रानी निर्विकल्प समाधिविषे स्थित भई अरु चित्त सहित देहका अहंकार त्यागिकारि उडी, जैसे पक्षी अपने गृहते उडिकारि आकाशको गमन करता है, तैसे रानी चिदाकाशको उडी, तब एक क्षणमें आकाशको प्राप्त भई. जो नित्य शुद्ध अनंत आत्मा है, परम शांतिरूप है, सर्वका अधिष्ठान है, तिसविषे जाइकारि भर्त्ताको देखती भई, स्पंद कल्पना ले गई थी. तिस करिकै अपने भर्त्ताको देखती भई अरु बहुत मंडलेश्वर सिंहासनोंपर आकाशविषे देखे. अरु बडे सिंहासनपर बैठे भर्त्ताको देखती भई, चारों ओरते जय शब्द होता है कि, हे राजा ! तेरी जय होवे ! तेरी जय होवै ! तू बहुत जीवै, अरु बडे सुंदर मंदिरको देखती भई. राजाके पूर्व दिशाको देखा तहां ब्राह्मण, ऋषीश्वर, मुनीश्वर अनेक बैठे हैं, अरु बडी ध्वनिसों पाठ करते हैं, दक्षिण दिशाकी ओर देखा तहां सुंदर स्त्रियां बैठी हैं अरु नाना प्रकारके भूषणसहित अनेक हैं, फिर उत्तर दिशाकी ओर देखा, तहां हस्ती, घोडे, रथ, प्यादे चारों प्रकारकी अनंत सेना है पश्चिमकी ओर मंडलेश्वर हैं, ऐसे देखके अरु चारों दिशा मंडलेश्वर इसके आश्रय, जीवके विराजते हैं; सो देखके आश्चर्यको प्राप्त भई और नगर देखे प्रजा देखी, सब अपने २ व्यवहारविषे स्थित हैं; बहुरि राजाकी सभाविषे जाइ बैठी; रानी सबको देखै अरु रानी को कोऊ न देखै जैसे औरके संकल्प पुरको नहीं देख सकता, तैसे रानीको कोऊ देख न सकै तब रानीने उसका अंतःपुर देखा, जहां ठाकुरद्वारे बने हुए हैं; देवताकी पूजा होती है अरु गंध धूपसों पवनकारिकै त्रिलोकी मग्न करती है; राजाका यश चंद्रमाकी नाईं बहुत हुआ, तब पूर्व दिशासों हलकारा आयके तिसने कहा हे राजन् ! पूर्व दिशामें और राजाका क्षोभ हुआ है, बहुरि उत्तर दिशासों हलकारा आया, तिसने कहा, हे राजन् ! उत्तर

दिशामें और राजाका क्षोभ हुआ है, तुम्हारे जो मंडलेश्वर हैं, सो युद्ध करते हैं, सोई प्रकार दक्षिण दिशाकी ओरसों आया, उसने भी कहा और राजाका क्षोभ हुआ है. बहुरि पश्चिम दिशासों आया, उसने कहा पश्चिम दिशामें क्षोभ हुआ है, बहुरि और आया, तिसने कहा, सुमेरु पर्वत जो देवता सिद्धोंके रहनेका स्थान है, तहां क्षोभ हुआ है. बहुरि अस्ताचल पर्वतसों आया, तिसने कहा अस्ताचलमें क्षोभ हुआ है, तब राजाकी आज्ञाकरि बहुत सेना विद्यमान स्थित आन हुई, जसे बडे मेघ आवें तैसे सेना आई अरु जेते मंत्री थे अरु नद आदिक जो टहलुए थे और ऋषीश्वर मुनीश्वर तहां देखती भई, जेते भृत्य थे, सो सब सुंदर अरु वर्षाते रहित श्वेत बादरोंकी नाईं तिनके श्वेत वस्त्र देखती भई अरु बडे वेदपाठी ब्राह्मण देखती भई जिनके शब्दकर नगारेके शब्द भी सूक्ष्म भासे. हे रामजी ! इस प्रकार ऋषीश्वर, मंत्री, टहलुए, बालक देखती भई सो अपूर्व देखती भई, अरु पूर्व भी देखती भई, देखके आश्चर्यवान् हुई, चित्तविषे यह शंका उपजी कि, मेरा भर्त्ताही मूआ है, अथवा संपूर्ण नगर मृतक भया; जो परलोकविषे आए हैं. तब देखा कि, मध्याह्नका सूर्य शीशपर उदित है, अरु राजा सुंदर षोडशवर्षका है. प्रथमकी जरा अवस्थाको त्यागकरि नूतन शरीर को धारके बैठा है, ऐसे आश्चर्यको देखके रानी बहुरि अपने गृहविषे आवती भई, तब देखा कि, अर्धरात्रि है, अपनी सहेलियोंको सोती हुई देखती भई, सहेलियोंको जगावती भई अरु कहा जिस सिंहासनपर मेरा भर्त्ता बैठता था तिसको साफ करो, मैं तिसके ऊपर बैठती हौं. अरु जिस प्रकार तिसके निकट मंत्री भृत्य आन बैठते थे, तिसी प्रकार करौ इसप्रकार सुनकर सहेलियोंने बडे मंत्रीको कहा-तिन मंत्रियोंने सबको जगाया, सिंहासन झाडिकरिके मेघकी नाईं जलकी वर्षा करी, सिंहासनके ऊपर वस्त्र बिछाए. आसपास भी वस्त्र बिछाये. मसालें जगाईं. बडा प्रकाश हुआ, अंधकार नष्ट भया. जैसे अगस्त्यमुनिने समुद्रका पान किया था तैसे अंधकारका प्रकाशने पान कर लिया. तब मंत्री, टहलुए, पंडित, ऋषीश्वर, ज्ञानवान् सब आयके स्थित हुए, जेते कछु

राजाके पास थे सो सब आयके स्थित भये. सिंहासनके निकट बैठे और लोक भी आय स्थित हुए. मानो प्रलयकालविषे समुद्रक्षोभ हुआ है बहुरि जलसों पूर्ण हुए हैं. प्रलय हुई सृष्टि मानो अनंत उत्पन्न भई हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने संदेहराष्ट्र-
वर्णनं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः १८.

अथ सकलजगद्भ्रान्तिप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! वह लीला रानी इस प्रकार मंत्री, टहलुए, पंडित, बालक, भर्त्ता विना देखके बडे आश्चर्यको प्राप्त भई. जो एक आदर्शको दोनों ओर अंतर्बाहिर दृष्टि भासती है इस प्रकार देखके अंतरकी वार्त्ता उनको न जनावत भई. बहुरि अंतर आइ करि कहत भई बडा आश्चर्य है बडा आश्चर्य है ईश्वरकी माया जानी नहीं जाती. यह क्या है ? इस प्रकार आश्चर्यवान् होइकरि सरस्वतीजीकी आराधना कीनी तब सरस्वती कुमारी कन्याका रूप धारिकरि आन प्राप्त भई. तब लीलाने कहा हे भगवति ! मैं बारंबार पूछती हौं. तुम उद्वेगवान् नहीं होना. बडेका यह स्वभाव है जो शिष्य बारंवार पूछे तौ भी खेदवान् नहीं होते. अब मैं पूछती हौं कि, यह जगत् क्या है ? अरु वह जगत् क्याहै, दोनोंविषे कृत्रिम कौन है ? अरु अकृत्रिम कौन है ? देव्युवाच-हे लीले ! तैंने पूछा कि कृत्रिम कौन है अरु अकृत्रिम कौन है. सो पाछे मैं तुझको कहौंगी. लीलोउवाच-हे देवी ! जहां तुम हम बैठे हैं सो अकृत्रिम है, अरु वह जो मेरे भर्त्ताका स्वर्ग है सो कृत्रिम है काहेते जो शून्यस्थानविषे वह सृष्टि हुई है. देव्युवाच-हे लीले ! जैसा कारण होता है, तैसाही कार्य होता है, जो कारण सत् होता है, तब कार्य भी सत् होता है अरु सत्ते असत् नहीं होता अरु असत्ते सत् नहीं होता, कारणते अन्य कार्य नहीं होता ताते जैसे यह जगत् है तैसा वह जगत् है. लीलोवाच-हे

देवि ! कारणते अन्य कार्यसत्ता होती है. काहेते कि, मृत्तिका जलके उठावनेको समर्थ नहीं होती अरु जब मृत्तिकाका घट बनता है, तब जलको उठावता है; तौ कारणते अन्य भी कार्यकी सत्ता हुई क्यों ? देव्युवाच-हे लीले ! कारणते अन्य कार्यकी सत्ता तब होती है, जो सहायकारी भिन्न भिन्न होते हैं. जहाँ सहायकारी नहीं होता, तहाँ कारणते अन्य कार्यकी सत्ता नहीं. तेरे भर्ताकी सृष्टि जो भासी है, सो कारणविना भासी है, उसका जीव जो पुर्यष्टक थी, सो आकाशरूप थी, तहाँ न कोऊ समवायिकारण था न निमित्तकारण था, तिसको कृत्रिम कैसे कहिये ? जो किसीका किया होवै, तो कृत्रिम होवै, वह तौ आकाशरूप पृथ्वी आदिक तत्त्वोंते रहित है, जो समवायिकारण न होवै, तौ तिसका निमित्तकारण कैसे होवै ? ताते वह जो तेरे भर्ताका सर्ग (सृष्टि) है सो अकारण है. लीलोवाच-हे देवि ! उस सर्गकी स्मृति जो संस्कार है, सो कारण क्यों न होवै ? देव्युवाच-हे लीले ! स्मृति तौ कोई वस्तु नहीं, स्मृति आकाशरूप है, स्मृति नाम संकल्पका है सो संकल्प आकाशरूप है; और वस्तु कछु नहीं. मनोराज्यरूप है ताते उसकी सत्ता कछु नहीं; आभासरूप है. लीलोवाच-हे महेश्वरि ! जो वह संकल्पमात्र आकाशरूप है, तौ भी आकाशरूप है, जहां तुम हम बैठे हैं, जैसे वह है तैसे यह है, दोनों तुल्य हैं. देव्युवाच-हे लीले ! जैसे तू कहती है, तैसेही है; 'अहम् त्वम् इदम्' यह वह संपूर्ण जगत् आकाशरूप है; भ्रांतिमात्र भासते हैं, उपजे कछु नहीं, सब आकाशमात्र है, स्वरूपते इनका कछु सद्भाव नहीं, जो पदार्थ सत्य न होवैं तौ तिनकी स्मृति कैसे सत् होवे ? लीलोवाच-हे देवि ! अमूर्तिवान् मेरा भर्ता था, सो मूर्तिवान् हुआ अरु तिसको जगत् भासने लगा, सो कैसे भासा ? तिसका स्मृति कारण है ? या किसी और प्रकार है? यह मेरे दृश्यभ्रम निवृत्तिके निमित्त मुझको वही रूप कहौ । देव्युवाच-हे लीले ! वह सर्गभी भ्रमरूप है, यह भी भ्रमरूप है, जो यह सत् होवे तौ इसकी स्मृति सत् होवै, यह जगत् असत्‌रूप है, जैसे यह भ्रम तुझको भासा है सो सुन; एक महाचिदाकाश है, तिसका किंचन चित्

अणु है; तिसके किसी अंशविषे जगत् है, सो जगत्रूपी वृक्ष है, सुमेरु तिसका स्तंभ है; सप्त लोक तिसकी डालैं हैं, आकाश उसकी शिखा है अरु सप्त समुद्र उसविषे रस है, तीनों लोक फल हैं; तिसविषे सिद्ध, गन्धर्व, देवता, मनुष्य, दैत्यरूप मच्छर हैं, तारागण तिसके फूल हैं, तिस वृक्षके किसी छिद्रविषे एक देश है, तिसविषे एक पर्वत है, तिसके तरे एक नगर वसता है, तहाँ एक नदीका प्रवाह चलता है, तहाँ एक वसिष्ठ नाम ब्राह्मण था, सो बडा धर्मी था सदा अग्निहोत्र करता था, धन अरु विद्यासंपन्न था.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने सकलजगद्भ्रान्तिप्रतिपादनं नामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः १९.

अथ ब्राह्मणमरणवर्णनम् ।

देव्युवाच–हे लीले! कैसा ऋषीश्वर वासिष्ठ है ? विद्या अरु कर्म अरु धन पराक्रम सब तिसके समान था, परन्तु ज्ञानविषे भेद था, जो खेचर वसिष्ठका ज्ञान है, तैसा भूचर वसिष्ठका न था; तिसकी स्त्रीका नाम भी अरुंधती, सो पतिव्रता थी, अरु चंद्रमाकी नाईं तिसका मुख था तिस अरुंधती समान विद्या, कर्म, कांति, धन, चेष्टा, पराक्रम जिसका अरु चेतनता जो है ज्ञान सो समान था और सब लक्षण एक समान था, वह आकाशकी अरुंधती है, यह भूमिकी अरुंधती थी एक कालमें वसिष्ठ ब्राह्मण पर्वतके शिखरपर बैठा था, तहाँ सुन्दर हरे तृणों करि शोभायमान स्थान था, एक राजा उस पर्वतके निकट शिकार खेलनेके निमित्त सब परिवार सहित चला जाता था, सो बहुत सुंदर अरु नाना प्रकारके भूषणों सहित भूषित किया हुआ अरु शीशपर चमर होता जाता था, मानो चंद्रमाकी किरणें प्रसर रही हैं अरु शिरपर अनेक प्रकारके छत्रोंकी छाया, मानो आकाश भी रूपेका किया है, अरु दूजभी

बहुत है अरु रत्नमणिके भूषण पहिरे हुए मंडलेश्वर साथ हैं अरु हस्ती, घोडा, रथ, पैदल चारोंप्रकारकी सेना आगे चली जाती हैं, तिनकी धूल बादल होइकरि स्थित भई अरु नौबत नगारे बाजते हैं; तिसको देखके वसिष्ठ ब्राह्मण मनविषे चिंतन करत भया कि, राजाको बडा सुख प्राप्त होता है, जो सब सौभाग्यकरिके राजा संपन्न होता है; इस प्रकार राज्य मुझको भी प्राप्त होवै, यह वांछा करता भया, मैं कब दिशाको जीतौंगा? अरु मेरे यश साथ दश दिशा पूर्ण कब होवैंगी ? ऐसे छत्र मेरे शिरपर कब ढरेंगे ? अरु चारों प्रकारकी सेना मेरे आगे कब चलैगी ? अरु सुंदर मंदिरोंविषे सुंदर स्त्रियोंके साथ मैं कब बिलास करौंगा ? मंदमंद पवन शीतल सुगंधता साथ कब स्परस होवैगा ? हे लीले ! इस प्रकार ब्राह्मण संकल्पको धरता भया अरु जो कछु अपने स्वकर्म हैं सो भी करता रहै अरु कामना हृदयविषे स्थिर हो रही तब ब्राह्मणको जराअवस्था आनि प्राप्त भई, शरीर जर्जरीभाव हुआ; जैसे कमल ऊपर बर्फ पडता है अरु कुम्हलाइ जाता है, तैसे ब्राह्मणका शरीर कुम्हलाइ गया अरु मृत्युका समय निकट आया,तब तिसकी स्त्री भर्त्ताकी मृत्यु निकट देखके कष्टवान् भई, तब उसने मेरी आराधना करी; जैसे तैंने करी तैसे उसने करी. भर्त्ताकी अजर अमरताको दुर्लभ जानके मुझसों वर मांगत भई, हे देवि ! मुझको यह वर देहु, जब मेरा भर्त्ता मृतक होवै, तब इसका जीव बाहर न जावै; तब मैंने कहा ऐसेही होवैगा; हे लीले ! जब बहुत काल व्यतीत हुआ तब ब्राह्मण मृतक हुआ, तब उसका जीव मंदिर विषे रहा; जैसे मंदिरविषे आकाश ही रहता है तैसे मंदिरविषे रहै. हे लीले ! जब आकशरूप हो गये अरु जो उसकी पुर्यष्टकविषे राजाका दृढ संकल्प था तब वह संकल्प उसको आन फुरा, जैसे बीजते अंकुर निकस आवता है तैसे आन फुरा; तिसकरि अपने राज्यको देखता भया. सो कैसा राज्य देखता भया? जो त्रिलोकीका राज्य है अरु परम सौभाग्य करिकै सम्पन्न है,दशोंदिशा यशकरिकै पूर्ण होइ रही हैं मानौ यशरूपी चन्द्रमाकी यह पूर्णमासी है अरु जैसे प्रकाश अंधकारको नाश करता है तैसे शत्रुरूपी अंधकारका नाशकर्त्ता प्रकाश हुआ अरु ब्राह्मणोंका चरणोंका

सिंहासन हुआ. अर्थ यह–वह ब्राह्मणोंको बहुत पूजने लगा अरु अर्थियों का कल्पवृक्ष हुआ अरु स्त्रियोंको कामदेव हुआ,इत्यादिक जो सात्त्विक राजसगुण हैं तिनोंकरि संपन्न हुआ, तिसकी स्त्री तिसको मृतक देखके बहुत शोकवान् भई, जैसे ज्येष्ठ आषाढकी मंजरी सूख जाती है, तैसे शोकवान् भई, तब यह भी शरीरको छोडके आतिवाहिक शरीर करिके भर्त्ताको जाय प्राप्त भई, जैसे नदी समुद्रको जाय प्राप्त होती है अरु ब्राह्मणके जो पुत्र थे सो धनयुक्त अपने गृहविषे रहे; उस ब्राह्मणको मृतक हुए अब आठ दिन हुए हैं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने ब्राह्मणमरणं नामैकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशः सर्गः २०.

अथ परमार्थप्रतिपादनम्।

देव्युवाच–हे लीले! सो वसिष्ठ ब्राह्मण तेरा भर्त्ता पद्म हुआ, अरुंधती उसकी स्त्री तू लीला हुई है अरु जेता कछु आकाश पर्वत समुद्र पृथ्वी त्रिलोकी है; सो वसिष्ठ ब्राह्मणके अंतःपुरविषे एक कोनेविषे स्थित है; वहां तुझको आठ दिन व्यतीत भये हैं; सूतक भी नहीं गया; अरु यहां तुमने साठसहस्रवर्ष राज्य किया है; नाना प्रकारके सुंदर भोग भोगे हैं. हे लीले! इस प्रकार तैंने जन्म लिया है सो मैंने सब कहा है सो क्या है?सब भ्रममात्र है; जेता कछु जगत् तुझको भासता है सो आभासमात्र है, संकल्पकरिकै पड़ा फुरता है, वस्तुगत कछु नहीं. हे लीले! जो यह जगत् सत् न हुआ तो तिसकी स्मृति कैसे सत्य होवै? तुम हम सब उस ब्राह्मणके मंदिरविषे स्थित हैं. लीलोवाच–हे देवि! तुम्हारे वचनको मैं असत् कैसे कहौं;जो तुम कहती हौ उस ब्राह्मणका जीव अपने गृहविषे रहा; तहां हम तुम बैठे हैं अरु देश देशांतर पर्वत समुद्र लोक अरु लोकपालक सब जगत् उसीही गृहविषे हैं सो समावते कैसे हैं?यह वचन तुम्हारे

ऐसे हैं,जैसे सर्षपके दानेविषे उन्मत्त हाथी बांधे हुए हैं अरु सिंहोंके साथ मच्छर युद्ध करता है अरु कमलके डौडेविषे सुमेरुपर्वत आया है, तिस कमलपर भ्रमर आन बैठा तिसको पान करि गया अरु स्वप्नविषे मेघ गर्जते हैं अरु चित्र मणिके मोर नाचते हैं, ऐसी वार्त्ता कहती हौ; अरु जाग्रत्की मूर्त्ति ऊपर लिखा हुआ मोर मेघको गर्जता देखके नृत्य करता है, जैसे यह असंभव वार्त्ता हैं,तैसे तुम्हारा कहना मुझको असंभव भासा है. देव्युवाच-हे लीले ! यह मैंने तुझको झूठ नहीं कहा, हमारा कहना कदाचित् असत् नहीं. काहेते कि, आदि परमात्माकी नीति है, जो महा पुरुष असत् नहीं कहते, इसी कारण हम असत् नहीं कहती;हमतौ धर्मका प्रतिपादन करनेहारी हैं,जहां धर्मकी हानि होती है,तहां हम प्रतिपादन नहीं करती हैं, जो हम धर्मका प्रतिपादन करैं, तों धर्मको और कैसे मानैं ? हे लीले ! जैसे सोए हुएको स्वप्नविषे त्रिलोकी भास आती है सो अंतः-करणविषे ही होती है अरु स्वप्नते जाग्रत् होती है, तैसे मरना भी जान जब जहां मृतक होता है तहां जीव जो पुर्यष्टक है सो आकाशरूप होइ जाता है, बहुरि वासनाके अनुसार तिसको जगत् भासि आता है. जैसे स्वप्नविषे जगत् भासि आता है; सो क्या रूप है, आकाशरूप है, तैसे इसको भी जान. हे लीले ! यह सब जगत् तेरे उस अंतःपुरविषे है, काहेते जो जगत् चित्ताकाशविषे स्थित है. जैसे आदर्शविषे प्रतिबिंब होता है, तैसे चित्तविषे जगत् है अरु चित्त आकाशरूप है, जो चित्त अंतःपुरविषे हुआ तो जगत् भी हुआ, क्यों ? हे लीले ! यह जगत् जो तुझको भासता है सो आकाशरूप है. जैसे स्वप्ननगर भासता है, संकल्पनगर भासता है, जैसे कथाके अर्थ भासते हैं तैसे यह जगत् भी है, जैसे मृगतृष्णाका जल भासता है तैसे यह जगत् जान. हे लीले ! वास्तवते कोई पदार्थ उपजा नहीं किन्तु भ्रमकरिकेपडे भासते हैं. जैसे स्व-प्नते स्वप्नांतर भासता है, बहुरि और स्वप्न देखता है, तैसे तुमको यह सृष्टि-भ्रम भासता है. हे लीले ! यह जगत् आत्मरूप है, जहां चिद्‌ अणु है तहां जगत् भी है परंतु क्या रूप है, आभासरूप है. जैसे यह आका-शरूप है, तैसे यह जगत् भी आकाशरूप है; जिस प्रकार यह चेत्यता

है, तिस प्रकार सोई भासता है ताते संकल्पमात्र है. जैसे स्वप्नपुर भासता है, जैसे संकल्पनगर होता है तैसे यह जगत् है; जैसे मरुस्थलकी नदीके तरंग भासते हैं, तैसे यह जगत भासता है; ताते इसकी कल्पना त्यागके रहहु । लीलोवाच–हे देवि ! तिस वसिष्ठ ब्राह्मणको मुए आठ दिन बीते हैं अरु हमको यहां साठ सहस्र वर्ष बीते हैं; यह वार्त्ता सत कैसे जानिये ? यह थोडे कालविषे बडा काल कैसे हुआ ? देव्युवाच–हे लीले ! जैसे थोडे देशविषे बहुत देश आते हैं, तैसे थोडे कालविषे बहुत काल भी आता है, अहंता ममता आदिक जेता कछु जगत् है सो आभासमात्र है तिसको क्रम करिकै सुन. जब यह जीव मृतक होता है तब मूर्च्छा हो जाती है, बहुरि मूर्च्छासों चेतनता फिरि आती है, तिस विषे यह भासता है, जो यह भासता है, जो यह आधार है, यह आधेय है, यह मेरा हाथ है, यह शरीर है, यह मेरा पिता है, इसका मैं पुत्र हौं, अब एते वर्षका मैं हुआ हौं, यह मेरे बांधव हैं, तिनके साथ स्नेह करताहौं यह मेरा गृह है, यह मेरा कुल चिरकाल चला आता है. मरनेके अनंतर एते क्रमको देखता है ।हे लीले. जिस प्रकार यह देखता है तैसे यह भी जान, एक क्षणविषे औरका और भासने लगता है, यह जगत् चेतनका किंचन है. जैसे चेतन संवित्‌विषे चेत्यता होती है, तैसे जगत् भासता है; जैसे स्वप्नविषे द्रष्टा, दृश्य, दर्शन तीनों भासते हैं तैसे आत्मसत्ताविषें यह जगत किंचन होता है, भ्रमकरिकै भासता है, वास्तवमें नानात्व कछु हुआ नहीं. जैसे स्वप्नविषे कारण विना नानाप्रकारका जगत् भासता है, तैसे परलोकविषे नानाप्रकारका जगत् कारणविना भासता है सो क्या रूप है, आकाशरूप है; मनके भ्रमकरिकै भासता है तैसे यह जगत मनके भ्रम करि भासता है, स्वप्न जगत् अरु परलोक जगत् अरु जाग्रत जगत्‌विषे भेद कछु नहीं. जैसे वह भ्रममात्र है तैसे यह भ्रममात्र है, वास्तवते कछु उपजा नहीं; जैसे समुद्रविषे तरंग कछु वास्तव नहीं, तैसे आत्माविषे जगत् कछु वास्तव नहीं, असत् ही सत्‌की नाईं भासता है; जिस कारणते उपजा नहीं, तिस कारणते अविनाशी है. हे लीले !

जैसे चेत्योन्मुखत्व हुए चेतन आकाश भासता है, तैसे चेत्यताविषे भी चेतन आकाश है काहेते जो कछु हुआ नहीं; जैसे समुद्रते तरंग होता है सो तरंग कछु जलते इतर हुआ नहीं, जल ही है, तैसे आत्माविषे जगत् नहीं, जैसे शशेके शृंग असत् हैं तैसे जगत् असत् है, उपजा जगत् कछु इतर नहीं हुआ अरु जलविषे तरंगकी नाईं भी आत्माविषे नहीं. हे लीले ! जब यह पुरुष मृतक होता है तब जैसा इसको देश भासता है, जैसा काल जैसी क्रिया उत्पन्न नाश भई है, कुटुम्ब शरीर वर्ष आदिक नानारूप भासता है सो क्या रूप है, आभासरूप है; जिस प्रकार क्षण क्षणविषे एते भास आवते हैं, तैसे कारण विना यह जगत् भासता है तो दृश्य द्रष्टा भी कोऊ न हुआ यह जो देश, काल, क्रिया, द्रव्य देह, इंद्रियां, प्राण, मन, बुद्धि सब भ्रमकरिके भासते हैं, आत्मा उपाधिते रहित आकाशरूप है, तिसके प्रमाद करि जगत्भ्रम उदय हुआ है. हे लीले ! भ्रमविषे क्या नहीं होता है. जैसे एक रात्रिविषे हरिश्चंद्रको द्वादश वर्ष भ्रमकरिकै भासे थे तैसे यहां भी थोडे कालविषे बहुत काल भासता है,दोनों अवस्थाविषे इसको औरका और भासता है, स्वप्नविषे भी और भासता है अरु उन्मत्तता करिकै भी औरका और भासता है, अभोक्ता अरु आपको भोक्ता मानता है अरु भ्रमकरिकै उत्साह अरु शोकको इकट्ठा देखता है; न किसीको उत्साह होता है अरु स्वप्नविषे मृतक भाव शोकको देखता है अरु विछुरा हुआ होता है सो स्वप्नविषे मिला देखता है अरु मिला हुआ हो तो आपसे विछुरा जानता है. और काल है तिसको भ्रमकरिके और काल देखता है; ताते देख यह सब भ्रमरूप है; जैसे भ्रमकरिके यह भासता है तैसे यह जगत् भी भ्रमकरि भासता है परंतु ब्रह्मते इतर कछु नहीं; ताते न बंधन है, न मोक्ष है. जैसे मिरचनविषे तीक्ष्णता है तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे स्तंभविषे पुतलियां होती हैं तैसे आत्मविषे जगत् है; जैसे स्तंभविषे पुतलियां कछु हुई नहीं, स्तंभ ज्योंका त्यों है, शिलपीके मनविषे पुतलियां हैं, तैसे ब्रह्मविषे जगत् है नहीं, मनरूपी शिलपीने जगत्-

रूपी पुतलियां कल्पी हैं; आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों अपने आपविषे स्थित है; नित्य शुद्ध है, अज है, अमर है, स्वभावविषे स्थित है. इति श्रीयोगवासिष्ठ उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने परमार्थप्रतिपादनं नाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः २१.

अथ विश्रांतिवर्णनम् ।

देव्युवाच–हे लीले ! जब यह मृत्युकरि मूर्च्छा होती है, तब शीघ्र ही उसको बहुरि कुल जन्म भासि आता है. देश, काल, क्रिया, द्रव्य अरु अपना परिवार भासि आता है, नानाप्रकारका जगत् भासि आता है अरु वास्तव कछु नहीं, स्मृति भी असत् है, एक स्मृति अनुभवते होती है, एक स्मृति अनुभव विना भी होती है अरु दोनों स्मृति मिथ्या हैं जैसे स्वप्नविषे अपना देह देखता है सो अनुभव असत् है, किसी अपने मरनेकी स्मृति करि नहीं भासा अरु तिस मरनेकी स्मृति भी असत् है, स्वप्नविषे कोऊ पदार्थ देखो तिसको जाग्रत्‌विषे स्मरण करना वह भी असत्य है; वस्तुते कछु हुआ नहीं ताते यह जगत् अकारणरूप है, जो है सो चिदाकाश ब्रह्मरूप है और न कछु विदूरथकी सृष्टि सत् है सब संकल्पमात्र है. लीलोवाच–हे देवि ! जो यह सृष्टि भ्रममात्र है तो वह जो विदूरथकी सृष्टि है सो यह सृष्टिके संस्कार करिके हुई है अरु यह सृष्टि उस ब्राह्मण अरु ब्राह्मणीकी स्मृति संस्कारते हुई है तो ब्राह्मण अरु ब्राह्मणीकी सृष्टि किसकी स्मृतिविषे हुई ? देव्युवाच–हे लीले ! वह जो वसिष्ठ ब्राह्मणकी सृष्टि है सो ब्राह्मणके संकल्पविषे हुई है अरु ब्रह्म ब्राह्मणविषे फुरा है परंतु वस्तुते कछु ब्रह्मा भी हुआ नहीं, तो तिसकी सृष्टि क्या कहौं ? ऐसी जेती कछु सृष्टि हैं, सो उसी ब्राह्मणके मंदिरविषे हैं वस्तुते कछु हुई नहीं, सब संकल्परूप है, मनके फुरने करिके भासता है, जैसा जैसा संकल्प फुरता है तैसा तैसा होइकरि

भासता है, यह सृष्टि जो तेरे भर्त्ताको भासि आई है, सो दृढ संकल्पके भावते भासि आई है थोडे कालकरि बहुत भ्रम होइकरि भासता है. लीलोवाच-हे देवि! जहां ब्राह्मणको मृतक हुए आठ दिन व्यतीत भये हैं, तिस सृष्टिको हम किस प्रकार देखैं? देव्युवाच--हे लीले! जब तू योगाभ्यास करै तब देखै, अभ्यास विना देखनेको समर्थ न होवैगी, काहेते जो वह सृष्टि चिदाकाशविषे फुरती है. जब तू चिदाकाशविषे अभ्यास करिकै प्राप्त होवैगी तब तुझको सब सृष्टि भासि आवैगी; वह जो सृष्टि है सो औरके संकल्पविषे है, जो उसके संकल्पविषे प्रवेश करै तब उसकी सृष्टि भासै, अन्यथा नहीं भासती, जैसे एकके स्वप्नको दूसरा नहीं जानि सकता तैसे औरकी सृष्टि नहीं भासती, जब तू अंतवाहकरूप होवै तब उस सृष्टिको देखै. जबलग आधिभौतिक जो है स्थूल पंचतत्त्वोंका शरीर, तिसविषे अभ्यास है, तबलग उसको न देख सकैगी; काहेते कि,निराकारको निराकार ग्रहण करता है, निराकारको आकार नहीं ग्रहण करि सकता; ताते यह जो आधिभौतिक देह सो भ्रम है इसको त्यागकरि चिदाकाश सत्ताविषे स्थित होहु. जैसे पक्षी आलयको त्यागिकरि आकाशविषे उड़ता है तब इच्छा होवै तहां चला जाता है, तैसे चित्तको एकाग्र करिके स्थूल शरीरको त्याग देहु अरु योगाभ्यासकरि आत्मसत्ताविषे स्थित होहु, जब आधिभौतिकको त्यागिकरि चिदाकाशविषे अभ्यासके बलते स्थित होवैगी तब आवरणते रहित होवैगी; बहुरि जहां इच्छा करैगी, तहां चली जावैगी; जो कछु देखा चाहैगी सो देखगी। हे लीले! हम सदा तिस चिदाकाशविषे स्थित हैं, हमारा वपु चिदाकाश है, इस कारणते हमको आवरण कोऊ रोक नहीं सकता। हम सरिखे जो उदार हैं तिनको सदा स्वरूपविषे स्थिति है अरु सदा निवारण है, कोई कार्य हमको आवरण नहीं करि सकता; हम स्वइच्छित हैं, जहां गया चाहै तहां जाते हैं; सदा अंतवाहकरूप हैं अरु तू अबलग आधिभौतिकरूप है, इस कारणते वह सृष्टि तुझको नहीं भासती अरु तू वहां जाय भी नहीं सकती. हे लीले! अपना ही जो संकल्प मनोराज्य होता है, तिसविषे चित्तकी वृत्ति लगी

है, तिसविषे काल यह अपना शरीर नहीं भासता तो औरका कैसे भासै? जब तुझको अंतवाहकका दृढ अभ्यास होवै और आधिभौतिक स्थूल शरीरकी ओरते वैराग्य होवै तब आधिभौतिकता मिटि जावैगी, काहेते जो आगे ही सब सृष्टि अंतवाहकरूप है, संकल्प ही दृढता करिकै आधिभौतिक भासता है. जैसे जल दृढशीतताकरिकै बर्फरूप हो जाता है, तैसे अंतवाहकते आधिभौतिक हो जाते हैं; प्रमादरूप संकल्पते वास्तवते कछु हुआ नहीं, जब वही संकल्प उलटकारि सूक्ष्म अतवाहककी ओर आता है तब आधिभौतिकता मिटि जाती है, अंतवाहकता आन उदय होती है जब इस प्रकार तुझको निवारणरूप उदय होवैगा. तब देखनेमात्र अरु जाननेविषे यत्न कछु न होवैगा; साकार साथ निराकारको ग्रहण नहीं करि सकता, निराकारकी एकता निराकार साथ होती है अन्यथा नहीं होती, जब तू अंतवाहकरूप होवैगी तब उसकी संकलपसृष्टिविषे तेरा प्रवेश होवेगा. हे लीले! यह जगत् संकल्पभ्रममात्र है, वास्तवते कछु हुआ नहीं, एक अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है; द्वैत कछु है नहीं. लीलोवाच–हे देवि! जो एक अद्वैत आत्मसत्ता है तब कलना यही दूसरी वस्तु क्या हुई यह कहौ? देव्युवाच–हे लीले! जैसे स्वर्ण विषे भूषण कछु वस्तु नहीं, जसे सीपीविषे रूपा दूसरी वस्तु कछु नहीं, जेवरीविषे सर्प नहीं, तैसे कलना भी कछु वस्तु नहीं, एक अद्वैत आत्मसत्ता सहज ज्योंकी त्यों ही स्थित है, तिसविषे नानात्व भासता है सो भ्रममात्र है, वास्तव अपना आप एक अनुभवसत्ता है. लीलोवाच–हे देवि! जो एक अनुभवसत्ता है अरु मेरा अपना आप है तौ मैं एता काल क्यों भ्रमती रही? देव्युवाच–हे लीले! अविचार भ्रम करिकै भ्रमती रही है; विचार कियेते भ्रम शांत हो जाता है; सो भ्रम भी अरु विचार भी दोनों तेरा स्वरूप है, तोहीते उपजा है अरु जब तुझको अपना विचार होवै तब भ्रम निवृत्त हो जावैगा. जैसे दीपकके प्रकाशकरि अन्धकार नष्ट हो जाता है; तैसे विचारकरि द्वैतभ्रम नष्ट हो जावैगा; जैसे जेवरीके जाननेते सर्पभ्रम नष्ट हो जाता है अरु सीपीके जाननेते रूपाभ्रम नष्ट हो जाता है, तैसे आत्माके जाननेते आधिभौतिक भ्रम शांत हो जावैगा,

जब दृश्यको अत्यंताभाव जानके दृढ वैराग्य करिये अरु आत्म स्वरूपका दृढ अभ्यास होवै तब आत्माका साक्षात्कार होवै,भ्रम शांत हो जावै, इसकर कल्याण हो जावै.हे लीले!जब दृश्यजगत्‌विषे वैराग्य होता है तब वासना क्षय हो जाती है, वासना क्षय हुएते शांति प्राप्त होती है,हे लीले! तू आत्मसत्ताका अभ्यास कर, तब जगत् भ्रम शांत हो जावैगा, भ्रम भी कछु वस्तु नहीं, देह आदिक भ्रम भी कछु हुआ नहीं. जैसे जेवरीके जाननेते सर्पका अभाव हो जाता है, तैसे आत्माके जाननेते देहादिकोंका अत्यंत अभाव होता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे विश्रांतिवर्णनं नामैकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः २२.

विज्ञानाभ्यासवर्णनम् ।

देव्युवाच-हे लीले ! जेते कछु शरीर तुझको भासते हैं सो स्वप्नपुरकी नाईं हैं,जैसे स्वप्नविषे शरीर भासता है,जब स्वरूपविषे स्मृति होती है तब स्वप्नका शरीर वास्तव नहीं भासता; जैसे संकल्पके त्यागेते संकल्पशरीर भासता नहीं, तैसे बोधकालविषे यह शरीर भासता नहीं, जसे मनोराज्यके त्यागे मनोराज्यका शरीर भासता नहीं,तैसे यह शरीर भी भासता नहीं, जब स्वरूपका ज्ञान होवै तब यह भी वास्तव न भासैगा; जैसे स्वरूपके स्मरण हुए स्वप्नशरीर शांत हो जावै, तैसे वासनाको शांत हुए जाग्रत् शरीर भी शांत हो जाता है, जैसे स्वप्नका देह अभाव ज्ञानते असत् होता है, तैसे जाग्रत् शरीरकी भावना त्यागेते असत् भासता है, इसके नष्ट हुए अंतवाहक देह उदय होवैगा जैसे निद्राकरिकै स्वप्नविषे रागद्वेषको पावता है, जब पदार्थोंकी वासना बोधकर निर्बीज होती है तब उनते मुक्त होता है, तैसे जिस पुरुषकी वासना जाग्रत् पदार्थोंविषे नष्ट भई है, सो पुरुष जीवन्मुक्त पदको प्राप्त होता है, जब उस विषे

बहुरि वासना भी दृष्टि आवै तब वह वासना भी निर्वासना है; जो सर्व कल्पनाते रहित है; तिसका नाम सत्ता सामान्य है. हे लीले ! जिस पुरुषने वासना रोकी है अरु अज्ञान निद्राकरि आवर्या हुआ है तब उसको सुषुप्तिरूप जान, उसकी वासना सुषुप्त है अरु जिसकी वासना प्रगट है, जाग्रतरूपकरि विचरती है तिसको अधिक मोहकरि आवर्या जानिये; जो पुरुष चेष्टा करता दृष्टि आता है अरु जिसकी अंतरवासना नष्ट भई है तिसको तुरीया जान. हे लीले ! जो पुरुष प्रत्यक्ष चेष्टा करता है अरु अंतरवासनातें रहित है सो जीवन्मुक्त है, जिस पुरुषका चित्त सत् पदको प्राप्त भया है तिसको जगत्की वासना नष्ट हो जाती है, जो वासना फुरती भासती है तौ भी सत्य जानके नहीं फुरती; जब शरीरकी वासना नष्ट होती है तब आधिभौतिकता नष्ट हो जाती है, अंतवाहकता आन प्राप्त होती है जैसे बर्फकी पुतली सूर्यके तेज लागेते जलरूप होइ जाती है, तैसे आधिभौतिकता क्षीण हो जाती है, अंतवाहकता प्राप्त होती है. अब अंतवाहकता प्राप्त भई इसका शरीर अमांसमय चित्तरूप होता है अरु सर्वका ज्ञान इसको होइ आवता है, अपने जन्मातरोंका ज्ञान भी होय आवता है, व्यतीत सृष्टिका ज्ञान भी होय आवता है अरु जहां जानेकी इच्छा करै तहां जाय प्राप्त होता है; किसी सिद्धिके मिलनेकी इच्छा करै अथवा कोई देखनेकी इच्छा करै, सब कछु सिद्ध होता है, परंतु अंतवाहक विना शक्ति नहीं होती, जब इस देहसों तेरा अहंभाव उठैगा, तब सब जगत् तुझको प्रत्यक्ष भासैगा. हे लीले ! जब आधिभौतिक शरीरकी वासना नष्ट भई तब अंतवाहक देह होती है, जब अंतवाहकविषे स्थिति होती है, तब औरके संकल्पकी सृष्टि भासती है ताते वासना घटावनेका यत्न कर, जब वासना नष्ट होवैगी तब तू जीवन्मुक्त पदको प्राप्त होवैगी. हे लीले ! जबलग तुझको पूर्ण बोध नहीं प्राप्त भया तबलग देहको यहां स्थापन करि वह सृष्टि चलही करि देख, अंतवाहक शरीर साथ मांसमय स्थूल देहका व्यवहार सिद्ध नहीं होता, जसे स्थूल देहसाथ सूक्ष्म कार्य नहीं होता, ताते अंतवाहक शरीरका अभ्यास कर, जब अभ्यास करैगी तब वह सृष्टि देखनेको समर्थ

होवैगी. हे लीले ! जैसे अनुभवते संस्थित सो मैंने तुझको कही है, यह वार्ता बालक भी जानते हैं, जो वर अरु शापकी नाईं नहीं, जब अपना अभ्यास करैगी तब बोधकी प्राप्ति होवैगी. हे लीले ! सब जगत् अंतवाहकरूप है; अर्थ यह जो संकलपरूप अबोधरूप संकलपके अभ्यास करिकै आधिभौतिक उत्पन्न हुआ है, तिसकरिकै संसारकी वासना दृढ भई है, जन्म मरण आदिक जो विकार हैं सो चित्तविषे पडे भासते हैं; जीव न मरता है; न जन्मता है; जैसे स्वप्नविषे जन्ममरण भासते हैं; जैसे संकल्प करिकै भ्रम भासता है तैसे जन्ममरण भ्रम करिकै भासता है; जब आत्मपदका अभ्यास करैगी तब वह विकार मिट जावैगा अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी. लीलोवाच-हे देवि ! तुमने परम निर्मल उपदेश मुझको कहा है, जिसके जाननेते दृश्यविषूचिका निवृत्त होती है सो अभ्यास क्या है ? बोधका साधन कैसे होता है अरु अभ्यास पुष्ट कैसे होता है अरु पुष्ट होनेसों फल क्या होता है ? देव्युवाच-हे लीले ! जो कछु कोऊ करता है, जिसकालविषे, सो अभ्यास विना सिद्ध नहीं होता, सबका साधक अभ्यास है, ताते तू ब्रह्म अभ्यास कर. हे लीले ! चित्तविषे आत्मापदकी चिंतवना होवै, कथन भी आत्माका होवै, परस्पर बोध भी आत्माका होवै, प्राण की चेष्टा भी आत्मविषे होवै, मनन भी आत्मपदका होवै इसका नाम ब्रह्माभ्यास कहते हैं, बुद्धिमान् चिंतना किसको कहते हैं, जो शास्त्र अरु गुरुते महावाक्य श्रवण किये हैं; तिनको युक्तिपूर्वक विचारना अरु कथन उसको कहते हैं जो शिष्यको उपदेश करना, अन्योन्य परस्पर बोध करना, समान धर्म निश्चय चर्चा निर्णय करना, इन तीनोंमें परायण रहना तिसका नाम बुद्धिमान् ब्रह्म-अभ्यास कहते हैं; जिन पुरुषोंके पाप अंतको प्राप्त भये हैं अरु पुण्य बडे हैं, सो रागद्वेषते मुक्त भये हैं, तिनको तू ब्रह्मसेवक जान. हे लीले ! जिन पुरुषोंके रात्रि दिन अध्यात्मशास्त्रकी चिंतवनाविषे व्यतीत होते हैं अरु वासनाको प्राप्त नहीं हैं तिनको ब्रह्माभ्यासी जान, वे ब्रह्माभ्यासविषे स्थित हैं. हे लीले ! जिनकी भोगवासना क्षीण भई है अरु संसारके अभावकी भावना करते हैं, ऐसे जो विरक्त चित्त

महात्मा पुरुष भव्य मूर्ति हैं, सो शीघ्र ही आत्म पदको प्राप्त होते हैं. जिनकी बुद्धि वैराग्यरूपी रंगसाथ रंगी हैं अरु आत्मानंदकी ओर वृत्ति धावती है, ऐसे जो उदार आत्मा हैं, सो ब्रह्माभ्यासी कहाते हैं. हे लीले ! जिन पुरुषोंने जगत्का अत्यंत अभाव जाना है, जो यह जगत् आदिते उत्पन्न हुआ नहीं ऐसे जानके दृश्यको असत् जानके त्यागते हैं अरु परम तत्त्वको सत्य जाना है इस युक्तिविषे अभ्यास करते हैं, सो ब्रह्माभ्यासी कहाते हैं. जिन पुरुषोंको दृश्य असंभवका बोध हुआ है, रागद्वेषते रहित हैं, इस जगत्में हम हैं इस बुद्धिका भी अभाव करिकै परमात्मपदविषे प्राप्त होते हैं, सो ब्रह्माभ्यासी कहाते हैं. हे लीले ! दृश्यके अभाव जाने विना रागद्वेष निवृत्त नहीं होता राग-द्वेषबुद्धि लोकविषे दुःखोंको प्राप्त करती है अरु जिसको दृश्यकी असं-भवबुद्धि प्राप्त भई है तिसको ज्ञेय जो परमात्मतत्त्व है, तिसका ज्ञान प्राप्त होता है. जब दृढ़ अभ्यास तिस पदविषे होता है तब परमानंद निर्वाणपदको प्राप्त होता है; इस निमित्त यत्न करता है; सो प्राकृत है. हे लीले ! बोधका साधन अभ्यास है अरु अभ्यास शास्त्रते होता है, अरु प्रयत्नकरि पुष्ट होता है. पुष्ट हुए आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है. हे लीले ! इनका नाम ब्रह्माभ्यासी ब्रह्मका सेवक कहते हैं, सो तीन प्रकारके हैं, एक उत्तम है, एक मध्यम है, एक प्राकृत है; उत्तम अभ्यासी वह है, जिसको बोधकला उत्पन्न हुई है अरु दृश्यका असंभव बोध हुआ है; सो उत्तम है अरु जिसको दृश्यका असंभवबोध हुआ है अरु बोधकला जो नहीं उपजी तिसके अभ्यासविषे है सो मध्यम है अरु जिसको दृश्यका असंभव नहीं हुआ अरु सदा यही हृदयविषे रहता है, जो दृश्यका असंभव होवै; ताते जिस प्रकार मैं तुझको अभ्यास कहा है तैसे अभ्यास कियेते तू परमपदको प्राप्त होवैगी. वसिष्ठ उवाच– हे रामजी ! अज्ञानरूपी निद्रा विषे यह जीव शयन कर रहा है, तिसकरि जगत्को नानाप्रकार देखता है, तैसे अविद्यारूपी निद्राते लीलाको विवेकरूपी वचनोंके जलकी वर्षा करिकै देवीने जगाई, तब अज्ञानरूपी निद्रा तिसकी नष्ट हो गई. जैसे शरत्कालविषे मेघकी कुहड

नष्ट हो जाती है, तैसे लीलाका अज्ञान नष्ट भया. वाल्मीकिरुवाच-इस प्रकार जब मुनीश्वरने कहा; तब सायंकालका समय हुआ; तब सर्व सभा परस्पर नमस्कार करिकै स्नानको गई. सूर्यकी किरणैं जब उदय भई तब बहुरि आय स्थित भये.

इति श्रीयोगवा०उत्प० विज्ञानाभ्यासवर्णनं नाम द्वाविंशः सर्गः ॥२२॥

त्रयोविंशः सर्गः २३.

लीलाप्रज्ञादेव्योर्ज्ञानदेहाकाशगमनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इस प्रकार अर्द्धरात्रिके समय देवी अरु लीलाका संवाद हुआ, सब लोक सहेलियां बाहर सोए पडे थे; लीलाका भर्त्ता फूलोंविषे दावा हुआ था; तिसके पास दिव्य वस्त्र पहिरे हुए चंद्रमाकी नाईं है कांति जिसकी ऐसी सुंदर देवियां सर्व कलनाको त्यागके अंगोंको संकोच करिकै समाधि विषे स्थित भईं; मानो रत्नके स्तंभसों पुतलियां उत्कीर्णकी हुई स्थित हैं; अंतःपुर भी तिनके प्रकाशकरि प्रकाशमान भया है, बहुरि कैसी हैं, मानों कागजऊपर मूर्त्तियां लिख छोडी हैं, इस प्रकार सब दृश्यकलनाको त्यागिकै निर्विकल्प समाधिविषे स्थित भईं जैसे कल्पवृक्षकी लता दूसरी ऋतुके आएते आगले रसको त्यागिकै दूसरी ऋतुके रसको अंगीकार करती हैं; तैसे दृश्यभ्रमको त्यागिकै आत्मतत्त्वविषे स्थित भई हैं, तब अहंताते आदि लेकरि जो दृश्यभ्रम है, सो तिनका शांत हो गया. दृश्यरूपी पिशाचके शांत हुयेते निर्मल भावको प्राप्त भईं; जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे निर्मलभावको प्राप्त भईं. हे रामजी ! यह जगत् शशेके शृंगकी नाईं असत् है; जो आदि न होवै अरु अन्त भी न रहै; जो वर्तमान दृष्ट आवै तो भी असत् जानिये । जैसे मृगतृष्णाका जल असत्य है, तैसे यह जगत् असत्य है ऐसे जब स्वभावसत्ता हृदयविषे चिदाकाशविषे स्थित भईं; तब अन्यसृष्टिके देखनेका जो संकल्प था

सो आन फुरा; तिस फुरणे करि आकाशरूप देहसाथ चिदाकाशविषे उडीं, सूर्यचन्द्रमाके मंडलको लंघ गईं, दूरते दूर गईं, अनंत योजन पर्यंत स्थान लंघि गईं, तब बहुरि भूतोंकी सृष्टि देखी, तिसविषे प्रवेश किया. इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलाप्रज्ञादेव्योर्ज्ञानदेहाकाशगमनवर्णनं नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः २४.

आकाशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इस प्रकार परस्पर हाथ पकड़िकारि दूरते दूर चली जावें; मानो एक ही आसनपर दोनों चली जाती हैं. मेघोंके स्थान लंघे, अग्निके पवनके वेग नदियोंकी नाईं चलते थे, तहांते लंघि गईं, जहां निर्मल आकाश ही भासै तहांते आगे गईं, कहूँ चन्द्रमा सूर्यका प्रकाशही नहीं, कहूँ चन्द्रमा सूर्यका प्रकाश है; देवता विमानोंपर आरूढ फिरते हैं, सिद्ध उडते फिरें हैं; विद्याधर किन्नर गंधर्व गायन करते हैं; कहूँ सृष्टि उत्पन्न होती है, कहूँ प्रलय पडी होती है; शिखाधारी तारे उपद्रवकर्ता उदय हुए हैं; कहूँ प्राणी अपने व्यवहारविषे लगे हुए हैं; कहूँ अनेक महापुरुष ध्यानस्थित हैं; कहूँ हस्ती विचरते हैं, कहूँ और पशु पक्षी विचरते हैं, कहूँ दैत्य डाकिनी विचरते हैं; जोगिनियां लीला करती हैं; कहूं अंधे गूंगे रहते हैं; कहूं गीध पक्षी सिंह घोडेके मुखवाले गण विचरते हैं, कहूं वरुण, कुबेर, इन्द्र, यमादिक लोकपाल बैठे हैं अरु बडे पर्वत सुमेरु मंदराचल आदिक देखे, कहूँ अनेक योजनों पर्यंत वृक्षही चलेजाते हैं; कहूँ अनेक योजन पर्यंत अविनाशी प्रकाश है, कहूँ अनेक योजनपर्यंत अविनाशी अंधकार है; कहूं जलकरि पूर्णस्थान है, कहूं सुन्दर पर्वतोंपर गंगाके प्रवाह चले जाते हैं; कहूं सुन्दर बगीचे बावडियां ताल हैं, तिनोंविषे कमल लगे हुए हैं, कहूं भूत भविष्यत होना दृष्टि आवै है कल्पवृक्षके वन हैं; चिन्तामणि अनंत हैं; कहूँ शून्य स्थान हैं, भूत

प्राणी कोऊ नहीं, कहूँ देवता अरु दैत्यके युद्ध बडे होते हैं; नक्षत्रचक्र पडे फिरते हैं; कहूँ प्रलय पडा होता है. देवता विमानोंसहित पडे फिरते हैं; कहूँ स्वामिकार्त्तिकके राखे हुए मोरोंके समूह विचरते हैं; कहूं कुक्कुट मोर आदिक पक्षी विद्याधरोंके वाहन पडे विचरते हैं, कहूं यमके वाहन महिषोंके समूह विचरते हैं, कहूं पाषाणसंयुक्त पर्वत पडे हैं, कहूं भैरवके गण नृत्य करते हैं, कहूँ विद्युत् चमकती है; कहूं कल्पतरु है, मंद मंद शीतल पवन सुगंधसमेत चलता है, कहूं पर्वत रत्न अरु मणिकरि शोभते हैं. हे रामजी ! इत्यादिक जगतोंका जाल तिन देवियोंने देखा, जीवरूपी मच्छर त्रिलोकरूपी गूलरोंके अनंत वृक्ष देखे, तिसते अनंतर आकाशमंडलको देखके महीतलविषे प्रवेश किया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने आकाशवर्णनं नाम चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशः सर्गः २५.

भूलोकवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! तब देवियां भूतल ग्रामविषे आवती भईं, ब्रह्मांड खण्परविषे प्रवेश किया, कैसा है ब्रह्मांड, त्रिलोकीरूपी कमल है; तिसकी अष्ट पुतलियां हैं; तिसविषे पर्वतरूपी डोडा हैं; चेतनता सुगन्ध है, नदियां समुद्र तिसके अंबुकण हैं, जब रात्रिरूपी भँवरे आन विराजते हैं तब वह कमल सकुचाय जाते हैं, पातालरूपी कीचडविषे लगे हैं, पत्ररूपी मनुष्य देवता हैं, दैत्य राक्षस तिसके कंटक हैं अरु डोडी उसकी शेषनाग है, जब वह हलता है, तब भूचालन होता है; दिनकरिकै प्रकाशता है, ऐसा जो कमल है, तिसको इस प्रकार विस्तार हैं, एक लाख योजन जम्बूद्वीप है तिसके परे दूना खारा समुद्र है, तिस जलकरि द्वीपआवरण किया है, जैसे हाथको कंकण होता है, तिसते आगे दूना शाकद्वीप है तिसते दूना क्षीरसमुद्र है तिसकरि वेष्टित है, तिसते आगे दूनी पृथ्वी

है, तिसका नाम कुशद्वीप है, तिसते दूने घृतके समुद्रकारि वेष्टित है, बहुरि दूनी पृथ्वी है तिसका नाम क्रौंचद्वीप है, तहां दूना दधिका समुद्र है, तिसकारि वेष्टित है, बहुरि शाल्मली द्वीप है, तिसते दूना मधुका समुद्र है, बहुरि प्लक्षद्वीप है, तिसते दूना इक्षुरसका समुद्र है; बहुरि दूना पुष्कर द्वीप है, तिसते दूना मीठेजलका समुद्र है, इस प्रकार सप्त समुद्र हैं तिनते परे दशकोटि योजन कांचनकी पृथ्वी प्रकाशवान् है, तिसते आगे लोकालोक पर्वत है, तिस ऊपर बडा शून्य वन है, तिसते परे एक बडा समुद्र है, तिसते परे दशगुणी अग्नि है, अग्निते परे दशगुणी वायु है; वायुते परे दशगुण आकाश है, आकाशते परे लक्ष योजनपर्यंत घनरूप ब्रह्मांडका कन्ध है; तिसको देखके दोनों फिरि आईं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने भूलोकवर्णनं नाम पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः २६.

सिद्धदर्शनहेतुवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच – हे रामजी ! तहांते फिरिके वसिष्ठ ब्राह्मण और अरुंधतीका मंडल देखत भई, बहुरि ग्राम अरु नगरकी शोभा देखी जो जाती रही है, तैसे कमलोंपर हिमकी वर्षा होवै अरु कमलकी शोभा जाती रहै, जैसे बनमें अग्नि लगै अरु बनकी लक्ष्मी जाती रहै, जैसे अगस्त्य मुनिने समुद्रको पान करि लिया अरु समुद्रकी शोभा जाती रही, जैसे तेल अरु बातीके पूर्ण भयेते दीपकका प्रकाश अभाव हो जाता है जैसे वायुके चलनेकारि मेघका अभाव होता है, तैसे ग्रामकी शोभाका अभाव देखती भईं; जो कछु प्रथम शोभा थी, सो सब नष्ट होगई थी, दासियां रुदन करती थीं, तब लीलाराणी जिसने चिरकाल तप ज्ञानका अभ्यास किया था तिसको यह इच्छा उपजी कि, मोकों अरु देवीको मेरे बांधव देखैं; तब लीलाके सब संकल्प करिकै बांधवलोक देखते भये, कहा जो इह वनदेवी

गौरी अरु लक्ष्मी आई हैं; इनको नमस्कार करिये. हे रामजी ! तब उनको वाने देखके ज्येष्ठशर्मा जो वसिष्ठका बडा पुत्र था, तिसने फूलोंकरि दोनोंके चरण पूजे अरु कहा. हे देवि ! तुम्हारी जय होवो, हे देवियो ! यहां ब्राह्मण अरु ब्राह्मणी रहते थे, तिनका परस्पर स्नेह था, मेरे पिता अरु माता थे, सो अब दोनों कालके वश स्वर्गको गए हैं, तिसकरि हम बहुत शोकवान् भए हैं, हमको त्रैलोक शून्य भासते हैं, हम सब ही रुदन करते पड़े हैं, वृक्षोंपर जो पक्षी रहते थे, सो भी उनको मृतक देखके वनको चले गये. पर्वतकी कंदरानसों पवन आता है, सो उन कंदराओंसे रुदन कर आता है, नदी जो वेगकरि आती हैं अरु तरंग उछलते हैं, मानो वह भी रुदन करते हैं अरु कमलोंके ऊपर जो जलके कण हैं, मानो कमलोंके नयनसे रुदनकरि जल चलता है अरु दिशाते जो उष्ण पवन आता है, सो मानो दिशा भी उष्ण श्वासोंको छोडती हैं. हे देवियों ! हम सब ही शोकको प्राप्त भए हैं तुम कृपा करिकै हमारा शोक निवृत्त करौ. काहेते कि, महापुरुषोंका समागम निष्फल नहीं होता अरु महापुरुषोंके शरीर परोपकारके निमित्त हैं. हे रामजी ! जब इस प्रकार ज्येष्ठशर्माने कहा, तब लीलाने कृपा करिकै उसके शिरऊपर हाथ रक्खा, लीलाके हाथ रखने करि उसका सब ताप नष्ट होगया, अंतःकरण शांतिको प्राप्त भया. जैसे ज्येष्ठ आषाढके दिनोंविषे पृथ्वी तप्त हुई अरु तिसपर मेघकी वर्षा होती है, तब शीतल हो जाती है, तैसे उसका अंतःकरण शीतल भया अरु जो वहांके निर्धन थे, सो तिनके दर्शन करनेकरि लक्ष्मीवान् भए अरु शांतिको प्राप्त भए; शोक नष्ट होगया, वृक्ष सूखे हुए थे, सो तिस समय फलसहित हो गये. राम उवाच-हे भगवन् ! लीलाका पुत्र जो ज्येष्ठशर्मा था; तिसको लीलाने मातारूपी होइकरि दर्शन क्यों न दिया ? सो कारण मुझको कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! शुद्ध आत्मसत्ताविषे जो स्पंद संवेदन हुई है, सो संवेदन भूतोंका पिंडाकार होइ भासती है, अरु वास्तवते आकाशरूप है, भ्रांतिकरिकै पृथ्वी आदिक भूत भासते हैं जैसे बालकको छायाविषे भ्रमकरिकै बैताल भासता है, तैसे संवदनके फुरणकार पृथिव्यादिक भूत भासते हैं जैसे स्वप्नविषे भ्रम करिकै पिंडाकार भासत

हैं अरु जागते आकाशरूप भासते हैं; तैसे भ्रमके नष्ट हुए पृथ्वी आदि भूत आकाशरूप भासते हैं, जैसे स्वप्नके नगर स्वप्नकालविषे अर्थाकार भासते हैं; अग्नि जलावती है, जागेते सब शून्य होइ जाती है, तैसे अज्ञानके निवृत्त हुएते यह जगत् आकाशरूप होइ जाता है. जैसे मूर्च्छाविषे नानाप्रकारके नगर भासते हैं, जैसे परलोक जगत् भासता है, जैसे आकाशविषे तरवरे भासते हैं अरु मुक्तामाला भासती है, जैसे नौकापर बैठेको तटके वृक्ष चलते भासते हैं, तैसे यह जगत् भ्रमकरिकै अज्ञानीको भासता है, अरु जो ज्ञानवान् है तिसको सब चिदाकाश भासता है, जगत्की कल्पना कोऊ नहीं फुरती, ताते लीला उसको पुत्रभाव अरु आपको माताभाव कैसे देखै ? उसका अहं अरु ममभाव नष्ट होगया था. जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार नष्ट होता है, तैसे लीलाका अज्ञानभ्रम नष्ट होगया था, सब जगत् उसको चिदाकाश भासता था, इस कारणते आपको माताभाव न जानत भई, जो उसविषे कछु ममता होती तब उसको माताभावकर देखती, परंतु उसको यह अहं ममभाव न था. इस कारणते माताभाव न देखा, न देवीरूप देखा अरु शिरपर हाथ रक्खा अर्थ यह, जो संतोंका दयालु स्वभाव है और मातापुत्रकी कल्पना उसविषे कछु न थी, इस कारणते उसके शिरपर हाथ रक्खा और कल्पना कछु न थी, केवल आत्मरूप जगत् जसका भासा था.

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने सिद्धदर्शनहेतुवर्णनं नाम षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः २७.

जन्मान्तरवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! तिस पर्वत ऊपर जो ग्राम था, अरु तिसविषे वसिष्ठ ब्राह्मणका गृह था, तिस अन्तःपुरसों देवी अरु लीला दोनों अंतर्धान हो गईं; तब वहाँके लोग कहने लगे कि. वनदेवियोंने हमारे

ऊपर बडी कृपा करिकै दुःख नाश किये अरु अंतर्धान भईं, हे रामजी ! तब दोनों आकाशविषे आकाशरूप अंतर्धान भईं. अरु परस्पर संवाद करत भईं,जैसे स्वप्नविषे संवाद होता है, तैसे उनका परस्पर संवाद हुआ। देवीने कहा, हे लीले ! जो कुछ जानना था, सो तुझने जान्या है, क्यों ? अरु जो कुछ देखना था सो देखा क्यों ? यह ब्रह्मकी शक्ति है; और कुछ पूछना होवै सो पूछौ. लीलोवाच-हे देवि ! मेरा जो भर्त्ता है विदूरथ; तिसके पास मैं गई, तब उसने मोको क्यों न देखी, अरु मेरी इच्छाते ज्येष्ठशर्मा आदिने देखी सो कारण कहौ. देव्युवाच-हे लीले ! तब तेरा द्वैतभ्रम नष्ट भया न था. अरु अद्वैतको अभ्यास करि प्राप्त न भई थी, जैसे धूपमें छायाका सुख नहीं अनुभव होता, तैसे तुझको अद्वैतका अनुभव न था. हे लीले ! जैसे ऋतुका फल मधु होता है; जो ज्येष्ठ आषाढ विदित होता है अरु वर्षा आई नहीं तैसे तू थी. अर्थ यह जो संसारमार्गको लंघी थी अरु अद्वैत तत्त्वको प्राप्त न भई थी, तिसकरि आत्मशक्ति तुझको प्रत्यक्ष न भई थी, तातें आगे तेरा सत्संकल्प न था अरु अब तू सत्संकल्प हुई है, अब तैंने सत्संकल्प किया है, जो तुझको ज्येष्ठशर्माने देखी; तिसकरि तुझको देखते भए, अब तू विदूरथके निकट जावै, तब पूर्ववत् तेरे साथ व्यवहार होवै. लीलोवाच-हे देवि ! इस मंडप आकाशविषे मेरा भर्त्ता वसिष्ठ ब्राह्मण हुआ है बहुरि मृतक हुआ तब इसी लोकमंडप आकाशविषे उसको पृथ्वीलोक फुरि आया, पद्मराजा होत भया, चिरकाल पर्यंत उसने चार द्वीपका राज्य किया, बहुरि मृतक हुआ; तब इसी मंडप आकाशविषे उसको जगत् भासा अरु पृथ्वीपति हुआ, तिसका नाम विदूरथ भया, हे देवि ! इसी मंडप आकाशविषे जर्जरीभाव अरु जन्ममरण हुआ अरु अनंत ब्रह्मांड इसविषे स्थित हैं, जैसे संपुटविषे सरसोंके दाने अनेक होवैं, तैसे इसविषे ब्रह्मांड मुझको समीप ही भासते हैं, भर्त्ताकी सृष्टि भी मुझको अब अंतर भासती है अब जो कछु तुम आज्ञा करौ सो मैं करौं. देव्युवाच-हे भूतलअरुंधती ! तेरे जन्म तौ बहुत विहित भए हैं, अरु अनेक तेरे भर्त्ता हुए हैं तिनविषे यह जो तेरे भर्त्ता हैं

सो सब इस मण्डपविषे हैं; एक वसिष्ठ ब्राह्मण था, सो मृतक हुआ है, तिसका शरीर तो भस्म होगया है, बहुरि पद्मराजा हुआ, सो तेरे मण्डपविषे शव पडा है. अरु तीसरा भर्त्ता संसारमण्डपविषे वसुधापति हुआ है, सो संसारसमुद्रविषे भोगरूपी कल्लोलकरि तिसकी चेतनता व्याकुल है. अरु राज्यकार्यविषे चतुर हुआ है, आत्मपदते विमुख हुआ है; अज्ञान करिकै जानता है; कि मैं ईश्वर हौं, मेरी आज्ञा सबके ऊपर चलती है अरु मैं बडे भोगोंको भोगनेहारा हौं, मैं सिद्ध हौं. बलवान् हौं, हे लीले! ऐसे संकलपविकलपरूपी जेवरी साथ बांधा हुआ है, अब तू किस भर्ताके पास चलती है? जहां तेरी इच्छा होवे तहां मैं तुझको ले जाऊं जैसे सुगंधको वायु ले जाता है, तैसे मैं तुझको ले जाऊंगी. हे लीले! जिस संसारमंडलको तू समीप करती है, सो चिदाकाशकी अपेक्षा करिकै समीप भासता है अरु सृष्टिकी अपेक्षाकरि अनंतकोटि योजनोंका भेद है. अरु आकाशरूप है वपु तिनका, ऐसी अनन्त सृष्टि पडी फुरती हैं, समुद्र अरु मंदराचल पर्वत आदिक अनंत हैं, तिन परमाणुविषे अनन्त सृष्टि चिदाकाशके आश्रय पडी फुरती हैं, चिद्अणुकेविषे रुचिके अनुसार सृष्टि बडे आरंभ करिकै दृष्टि आती है अरु बडी स्थूल गिरि पृथ्वी दृष्टि आती है अरु विचारकरि तौलिये तौ एक चावलके समान भी नहीं होती. हे लीले! नाना प्रकारके रत्नोंकरि पर्वत भी दृष्टि आते हैं. अरु आकाशरूप हैं, जैसे स्वप्नविषे चेतनका किंचन नाना प्रकारका जगत् दृष्टि आता है, तैसे यह जगत् चेतनका किंचन है, पृथ्वी आदिक तत्त्वोंकरि कछु उपजा नहीं, हे लीले! आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, अपने आपविषे स्थित है अरु जगत् आभास उपजता भी है, मिटि भी जाता है, जैसे नदीविषे नाना प्रकारके तरंग उपजते भी हैं अरु लीन भी होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् जाल उपजता है अरु नष्ट भी हो जाता है अरु आत्मसत्ता इनके उपजने विषे अरु लीन होनेविषे एकरस है, आभासरूप है, वास्तव कछु नहीं.

लीलोवाच–हे माता! अब पूर्वकी मुझको सब स्मृति हुई है, प्रथम मैं जो राजसी जन्म ब्रह्मते पाई हौं, तिसते आदिलेकरि नानाप्रकारके मैं अष्ट-

शत जन्म पाई हौं, सो प्रत्यक्ष मुझको भासते हैं; प्रथम जो चिदाकाशतें मेरा जन्म है, सो विद्याधरकी स्त्री भई हौं, तिस जन्मविषे जो कोऊ मेरा कर्म हुआ, तिसकरि मैं भूतलविषे आन स्थित भई, तिसकरि दुःखी भई, बहुरि पक्षिणी भई, तहां जालविषे फँसी, तिसके अनन्तर भिल्लिनी हुई हौं, कदंबवनविषे विचरने लगी, बहुरि वनलता भई हौं, तहां गुच्छे ही मेरे स्तन थे, अरु पत्र मेरे हाथ थे तहां एक ऋषीश्वर मुझको हाथकर स्पर्श किया करता था तिसकी पर्णकुटीमें मैं लता थी, तब मैं मृतक भई, बहुरि मैं तिसके गृहविषे पुत्री भई, तहां जो मुझसों कर्म होवै सो पुरुषहीका कर्म होवै तिसते मैं बडी लक्ष्मीकरि संपन्न राजा भई, तहां मुझसों दुष्ट कर्म हुए तिसकरि मैं बंदरी भई, कुष्ठ अंगोंकरि अष्ट वर्ष मैं वहां रही, बहुरि मैं बैल हुई; मुझको दुष्टने खेतीके हलविषे जोडी, तिसकरि दुःख पाई बहुरि भ्रमरी भई, कमलोंपर जायकरि सुगन्ध लेती थी, बहुरि मृगी भई, चिरपर्यंत वनविषे विचरी, बहुरि एक देशका राजा भई, सौ वर्ष-पर्यंत वहां सुख भोगे, बहुरि कछुवाका जन्म लिया, बहुरि राजहंसका जन्म लिया, इस प्रकार मैं जन्मोंको धारती भई अरु बडे कष्ट पाई. हे देवि ! इत्यादिक अष्ट सौ जन्म पावत फिरी हौं; संसार समुद्रविषे वासनाकरि घटीयंत्रकी नाईं भ्रमती हौं. हे देवि ! अब मैं निश्चय किया है कि, आत्मज्ञान विना जन्मोंका अंत कदाचित् नहीं होता. तुम्हारी कृपातें अब निःसंकल्पपदको पावती भई हौं ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने जन्मांतरवर्णनं नाम सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशः सर्गः २८.

गिरिग्रामवर्णनम् ।

राम उवाच– हे भगवन् ! वज्रसारकी नाईं ब्रह्मांड खप्पर था, अनन्त कोटि योजनोंपर्यंत तिसका विस्तार था, ऐसा ब्रह्मांड खप्पर था, ऐसे ब्रह्मांडको दोनों कैसे लंघती गईं ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! वज्रसार

ब्रह्मांड खप्पर कहां है अरु कौन गया है ? न कोऊ वज्रसार ब्रह्मांड है, न लंघ गया है, सब आकाशरूप है, उसी पर्वतके ग्रामविषे जो वसिष्ठ ब्राह्मणका गृह था, तिसी मंडप आकाशविषे सृष्टिका अनुभव करत भया हौं. हे रामजी ! जब वसिष्ठ ब्राह्मण मृतक भया, तब उसी मंडपाकाशके कोणेविषे आपको चारौ ओर समुद्रोंपर्यंत पृथ्वीका राजा जानत भया, जो मैं राजा पद्म हौं, अरुंधतीको लीला देखता भया, जो मेरी स्त्री है; बहुरि मृतक भया, तब उसी आकाशमंडपविषे उसको और जगत्‌का अनुभव भया, आपको राजा विदूरथ जानत भया, सो तू देख जो कहां गया है अरु क्या रूप है, उसी मंडप आकाशविषे उसको सृष्टिका अनुभव भया, ताते जो सृष्टि है सो उसी वसिष्ठके चित्तविषे स्थित है, तब देवि जो ज्ञप्तिरूप है तिसकी कृपाते अपने ही देहाकाश-विषे लीला उडी है, आतिवाहिक देह जो आकाशरूप है, तिसकरिकै उडी है, ब्रह्मांडको लंघके बहुरि उसी गृहविषे आई, जैसे स्वप्नते स्वप्नांतरको प्राप्त होवै, तैसे देख आई ताते गई कहां अरु आई कहां? एक ही स्थान विषे होयकै एक,सृष्टिते अन्य सृष्टिको देखी है, अरु हे रामजी ! इनको ब्रह्माण्डके लंघ जानेविषे कछु यत्न नहीं, काहेते कि, उनका शरीर आति-वाहिकरूप है, हे रामजी!मनकरि लँघना चाहिये; तहां लंघा जाता है,क्यों तैसे वह प्रत्यक्ष लंघियां हैं !सत्यसंकल्परूप है अरु वस्तुते कहैं तौ कछु नहीं. हे रामजी ! जैसे स्वप्नकी सृष्टि नानाप्रकारके व्यवहारोंसहित बडी गंभीर भासती है अरु आभासमात्र है, तैसे यह जगत् देखे हैं, न कोऊ ब्रह्मांड है, न कोऊ जगत् है, न कोऊ कुंड है, केवल चेतनमात्रका किंचन है, और बना कछु नहीं. जैसे चित्तसंवेदन फुरता है, तैसे आभास होइ भासता है, केवल वासनामात्र ही जगत् है, पृथ्वीआदिक भूत कोऊ उपजा नहीं है, निरावरण ज्ञान आकाश अनंतरूप स्थित है,जैसे स्पंदअरु निस्पंद दोनोंरूप पवन ही है, तैसे स्फुर अस्फुररूप आत्मा ही है,किंचन विषे भी ज्योंका त्यों है, शांतरूप है, सर्वरूप चिदाकाश है, जब चित्त किंचन होता है, तब आप ही जगतरूप हो भासता है, दूसरा कछु नहीं. जिन पुरुषोंने आत्माको जाना है, तिनको जगत् आकाशते भी शून्य

भासता है अरु जिन्होंने नहीं जाना तिनको जगत् वज्रसारकी नाईं दृढ भासता है, जैसे स्वप्नविषे नगर भासते हैं, तैसे यह जगत् है, जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है, जैसे सुवर्णविषे भूषण भासते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है. हे रामजी ! इस प्रकार देवी अरु लीला संकल्पकारिके नानाप्रकारके स्थानोंको देखती भईं; झरनोंते जल चला आवै, बावडियां सुंदर ताल बगीचे वृक्ष देखैं, जो शब्द करते हैं अरु सुंदर मेघ पवनसंयुक्त देखे मानो स्वर्ग यहां आया है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने गिरिग्रामवर्णनं नाम अष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः सर्गः २९.

परमाकाशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इस प्रकार देखके दोनों शीतल चित्त-ग्रामविषे वास करत भईं, भोग अरु मोक्षकारि शीतल चित्त है, अर्थ यह जो संतुष्टचित्त है, चिरकाल जो आत्माभ्यास किया था, तिसकारि शुद्ध ज्ञानरूप होत भईं, अरु त्रिकाल ज्ञानकारि संपन्न भईं, तिस कारि पूर्वकी स्मृति होत भई जो कछु अरुंधतीके शरीरकारि किया था, सो देवीको कहत भई. हे देवि ! तुम्हारी कृपाते पूर्वकी स्मृति मुझको भई, जो कछु इस देशविषे मैं किया था, सो प्रगट भासता है; एक यहां ब्राह्मणी थी, तिसका शरीर वृद्ध होत भया. नाडियां दृष्टि आवैं, अरु भर्ताको बहुत प्यारी थी अरु पुत्रोंकी माता थी, सो मैं ही हौं. हे देवि ! मैंने देवता ब्राह्मणोंकी पूजा करी थी, यहां मैं दूध रखती थी यहां अन्नादिकोंके वासन रखती थी अरु मेरे पुत्र पुत्रियां जमाई दुहिते बैठते थे, यहां मैं बैठती थी अरु भृत्योंको कहती थी कि शीघ्र ही कार्य करो, ऐसे शब्द मैं करती थी. हे देवि ! यहां मैं रसोई करती थी भर्ता मेरा शाक गोबर ले आता था अरु सर्व मर्यादा कहता था यह मेरे हाथके चुटे बोए थे,

यह वृक्ष मेरे लगाए हुए हैं, कछुक फल में इनसो लिये हैं कछुक रहे हैं, सो यह हैं, यहां मैं जलपान करती थी. हे देवि ! मेरा भर्त्ता सब कामों विषे शुद्ध था. अरु आत्मस्वरूपते शून्य था सब कर्म मुझको स्मरण होते हैं, यहां मेरा पुत्र ज्येष्ठशर्मा गृह विषे पड़ा रुदन करता है, यहां बेलि मेरे गृहविषे विस्तरी हैं अरु सुंदर फूल लगे हैं, इनके गुच्छे छत्रोंकी नाईं हैं अरु झरोखे बेलिकरि आवरे हुए हैं यह मेरा मंडप आकाश है; इसविषे मेरे भर्त्ताका जीव आकाश है. देव्युवाच-हे लीले ! यह जो शरीर है, तिसकी नाभिकमलते दश अंगुल ऊर्ध्व हृदयाकाश है; सो अंगुष्ठमात्र हृदय है, तिसविषे उसका संवित् आकाश है, तिसविषे जो राजसी वासना थी, तिसकरि तिसको चारों समुद्रपर्यंत पृथ्वीका राज्य फुरि आया. कि मैं राजा हौं. यहां आठ दिन मृतक हुए बीते हैं; अरु यहां चिरकाल राज्यका अनुभव करत भया है, हे देवि ! इसप्रकार थोडे कालविषे बहुत काल अनुभव करत भया है अरु हमारे ही मंडप विषे वह शव पड़ा है अरु तिसकी पुर्यष्टकविषे जगत् फुरि आया है, तिसविषे आपको राजा विदूरथ जानत भया है, इस राज्यके संकल्प करि उसकी संवित् इसी मंडप आकाशविषे स्थित है, जैसे आकाशविषे गंधको लेके पवन स्थित होवै तैसे उसकी चेतनसंवित् संकल्पको लेकरि इस मंडपाकाशविषे स्थित है, उसकी संवित् इस मंडप आकाशविषे है उस राजाकी सृष्टि मुझको कोटि योजनोंपर्यंत भासती है. पर्वत मेघ अनेक योजनोंपर्यंत लंघती जाओ तब भर्त्ता के निकट प्राप्त होहु, अरु चिदाकाशकी अपेक्षा करके अपने पास भासती है, अब व्यवहार दृष्टिकरि कोटि योजनोंपर्यंत है, ताते चलौ जहां राजा विदूरथ मेरा भर्त्ता है, दूर है तौ भी निश्चयवानोंको निकट है. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इसप्रकार कहिकरि दोनों मंडपाकाशविषे उडीं; जैसे पक्षी उडता है, तैसे उडीं, जैसे खड्गकी धारा श्याम होती है, जसे विष्णुजी का अंग श्याम होता है; जैसे काजर श्याम होता है, जैसे भमरेकी पीठ श्याम होती है, तैसे आकाश श्याम है, तिस आकाशविषे अंतवाहक शरीर करिके उडीं; मेघोंके स्थान लँघिगईं; बड़ा वायुका स्थान लँघि

गई; सूर्य चंद्रमाको लँघगई ब्रह्मलोकपर्यंत जो देवताके स्थान थे, तिनको लँघ गई; इसप्रकारते दूरते दूर गई, ते शून्य आकाशविषे ऊर्ध्व जाइके अंधको देखत भई जो सूर्य अरु चंद्रमा आदिक कोऊ नहीं भासता तब लीलाने कहा हे देवि! एता सूर्य आदिक प्रकाश था सो कहां गया यहां तो महाअंधकार है, ऐसा अंधकार है मानो सृष्टिविषे ग्रहण होता है. देव्युवाच-हे लीले! हम महा आकाशविषे आई हैं, यहां अंधकारका स्थान है, सूर्य आदिक कैसे भासैं ? जैसे अंधकूपविषे त्रसरेणु नहीं भासती, तैसे यहां सूर्य चन्द्रमा नहीं भासते, अपुन बहुत ऊर्द्धको आये हैं. लीलोवाच-हे देवि ! बडा आश्चर्य है जो हम दूरते दूर आई हैं जहां सूर्यादिकोंका प्रकाश नहीं भासता, इसते आगे अब कहां जाना है. देव्युवाच-हे लीले! इसके आगे ब्रह्मांड कपाट आवैगा, सो बडा बज्रसार है अरु अनंत कोटि योजनोंपर्यंत तिसका विस्तार है जिसकी धूलकी कणिका भी इंद्रके वज्रसमान है. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इसप्रकार देवी कहती थी, कि आगे ब्रह्मांडकपाट आया, महा वज्रसार अरु अनंत कोटि योजनों पर्यंत तिसका विस्तार देखा तिसको लंघि गई; अरु क्लेश कछु न भया, काहेते कि जैसा किसी भी निश्चय होता है, तिसको तैसा ही अनुभव होता है, निरावरण आकाशरूप जो देवियां हैं, सो ब्रह्मांडकपाटको लंघ गई, तिसके परे दशगुणा जलका आवरण है, तिसके परे दशगुणा अग्नितत्त्व है, तिसके परे दशगुणा वायु है, तिसके पर दशगुणा आकाश है, तिसके परे परम आकाश है, तिसका आदि मध्य अंत कोऊ नहीं, जैसे वंध्यापुत्रकी कथा चेष्टाका अंत आदि कोऊ नहीं तैसे परम आकाश है, आकाशका आदि. कोऊ नहीं, नित्य शुद्ध अनंतरूप है, अपने आपविषे स्थित है, तिसका अंत लेनेको सदाशिव मनरूपी वेगिकारि कल्पपर्यंत धावै तौ भी न पावै अरु विष्णुजी गरुडपर अरूढ होइके कल्पपर्यंत धावे तौ भी तिसका अंत न पावै अरु पवन अंत लेनेको चाहै तौ न पावै, आदिमध्यअंत कलनाते रहित बोधमात्र है.

इति श्रीयो०उत्प० परमाकाशवर्णनं नाम एकोनत्रिंशत्तमः सर्गः ॥२९॥

त्रिंशत्तमः सर्गः ३०.

चित्रब्रह्माण्डकोटिवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जब पृथ्वी, आप, तेज आदिक आवरणको लँघ गईं, तब परमाणुते रहित परम आकाश उनको भासा, तिस विषे ब्रह्मांड धूर कणिकाकी नाईं भासा, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे त्रसरेणु भासते हैं, सो महाशून्यको धारनेहारा परम आकाश है अरु अपकण चिद् अणु सृष्टि जिसविषे फुरती हैं ऐसा महासमुद्र है कोई अधःको जाता है, तिसविषे कोई ऊर्ध्वको जाता है, कोई तिर्यक् गतिको जाता है. हे रामजी! चित् संवित्‌विषे जैसा स्पंद स्फुरता है, तैसा २ आकार हो भासता है, वास्तव न कोऊ अधः है, न कोऊ ऊर्ध्व है, न कोऊ आता है, न कोऊ जाता है, केवल ज्योंकी त्यों आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, फुरणेकरि जगत् भासता है, उत्पन्न होता है, बहुरि नष्ट होता है, जैसे बालकका संकल्प जो उपजिके नष्ट होजाता है, तैसे चेतनसंवित्‌विषे जगत् फुरके नष्ट होजाता है. राम उवाच-हे भगवन्! अधः क्या होता है अरु ऊर्ध्व क्या होता है अरु तिर्यक् क्या भासता है? अरु यहां क्या स्थित है? सो मुझको कहो. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! परमाकाश जो सत्ता है, सो आवरणते रहित है, शुद्धबोधरूप है, तिसविषे जगत् ऐसे भासता है, जैसे आकाशविषे भ्रांतिकरि तरुवरे भासते हैं, तिसविषे अधः अरु ऊर्ध्व कल्पनामात्र है, जैसे हलोंके वटेके चौफेर कीडियां फिरतीं रहैं, अरु उनको मनविषे अधः ऊर्ध्व पडा भासै, उनके मनविषे अधः ऊर्ध्वकी कल्पना हुई है, हे रामजी! यह जगत् आत्माका आभासरूप है, जैसे मंदराचल पर्वत ऊपर हस्तियोंके समूह विचरते हैं, तैसे आत्माविषे अनेक जगत् फुरते हैं, जैसे मंदराचलपर्वतके आगे हस्ती होवै, तैसे ब्रह्मके आगे जगत् है अरु वास्तवते सर्व ब्रह्मरूप है. कर्त्ता, कारण, कर्म, आदान, उपादान, अधिकरण सर्व ब्रह्म ही है, यह जगत् ब्रह्मसमुद्रके तरंग हैं, तिन जगत ब्रह्मांडोंको देवियां देखत भई, कैसे ब्रह्मांड उन्होंने देखे हैं, सो तू श्रवण

कर. कई सृष्टि उत्पन्न होती देखीं, कई प्रलय होती देखीं, कई उपजनेका आरंभ देखा, जैसे नूतन अंकुर निकसता है, तैसे उपजने लगी है, कहूं जल ही जल है, और कछु नहीं, कहूं अंधकार ही है, प्रकाश कछु नहीं कहूं सर्व व्यवहार संयुक्त है, कहूं अपूर्व वेद शास्त्रके कर्म हैं, कहूं आदि ईश्वर ब्रह्मा है, तिससे सब सृष्टि हुई है, कहूँ आदि ईश्वर विष्णु है, तिससे सब सृष्टि हुई है. कहूँ आदि ईश्वर सदाशिव है इसी प्रकार और प्रजापतिकरि उपजते हैं; कहूं नाथको कोऊ नहीं मानते, अनीश्वरवादी हैं, कहूँ तिर्यक ही जीव रहते हैं, कहूँ देवता ही रहते हैं, कहूँ मनुष्य ही रहते हैं कहूँ बडे आरंभ करिकै संपन्न हैं, कहूँ शून्यरूप हैं, हे रामजी ! इस प्रकार अनेक सृष्टि उत्पन्न होती चिदाकाशविषे देखत भईं तिनकी संख्या करनेको कोऊ समर्थ नहीं. चिदात्माके आभासरूप फुरती हैं, जैसी फुरणा होती है, तिसके अनुसार फुरती हैं ।

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे विचित्र ब्रह्मांडकोटिवर्णनं नामत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशत्तमः सर्गः ३१.

युद्धप्रेक्षिकस्थिताम्बरवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-- हे रामजी ! इस प्रकार दोनों देवियां उडके राजाके जगतविषे आईं, तहां अपने मंडप स्थानोंको देखत भईं, जैसे सोयाहुआ जागके देखता है, तैसे अपने मण्डपविषे प्रवेश किया, तब क्या देखा जो राजाका फूलोंके साथ ढांपा हुआ शव पडा है अरु अर्ध रात्रिका समय है, सर्व लोक गृहमें सोये पडे हैं, अरु राजा पद्मके शवके पास लीलाका शरीर था सो पडा है; अंतःपुरविषे धूप, चंदन, कपूर अगर की सुगंध भरि रही है, तब बिचार करत भई कि वहां चलैं, जहां राजा राज्य करता है, तब उस भर्त्ताकी जो पुर्यष्टक थी, जिसविषे विदूरथका अनुभव हुआ था, तिस संकल्पके अनुसार विदूरथकी सृष्टि देखनेको

देवीके साथ चली, अंतवाहक शरीरके साथ आकाशमार्गको उडीं, जाते२ ब्रह्माण्डकी बाटको लँघ गई, तब विदूरथके संकल्पविषे जगत्को देखत भई, जैसे तलावडीविषे सेवाल होती है, तैसे जगत्को देखत भई, सप्तद्वीप देखे, नवखंड देखे, सुमेरु आदि पर्वत देखे, समुद्रद्वीपादिक सब रचना देखत भई, तिसविषे जंबूद्वीप भरतखंड देखा, तिसविषे विदूरथ राजाका मण्डपस्थान देखत भई, तहां राजा सिद्धको देखत भई तिसने कुछ विदूरथ राजाकी पृथ्वीकी हद्द भाइयोंने दबाई थी, तिनके निमित्त सेनाको भेजी, अरु राजा विदूरथने भी सुनके सेनाको भेजी, दोनों सेना मिलके युद्ध करने लगी हैं, अरु त्रिलोकी युद्धका कौतुक देखने आई है, देवता विमानोंपर आरूढ होइके देखने लगे हैं; सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर शस्त्रोंको छोडके देखनेको स्थित भए हैं, अरु विद्याधरियां अप्सरा आईं स्थित भई हैं, जो शूरमें युद्धविषे प्राणोंको त्यागैंगे; तब हम इनको स्वर्ग विषे ले जावेंगी; ऐसे विचार करि विद्याधरियां आन स्थित भईं हैं अरु रक्त मांस भोजन करनेको भूत, राक्षस, पिशाच योगिनियां आन स्थित भई हैं. हे रामजी ! जो पुरुष शूरमा हैं, सो तौ स्वर्गके भूषण हैं अरु अक्षय स्वर्गको भोगैंगे जिनका मरना धर्म पक्ष करिकै संग्रामविषे होवैगा, सोई स्वर्गको जावेंगे । राम उवाच— हे भगवन् ! शूरमा किसको कहते हैं अरु जो युद्ध करिकै स्वर्गको नहीं प्राप्त होते सो कौन हैं ? वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! जो शास्त्रयुक्त युद्ध नहीं करते अनर्थरूपी अर्थके निमित्त युद्ध करते हैं, सो नरकको प्राप्त होते हैं अरु जो पुरुष धर्मके निमित्त युद्ध करते हैं सो शूरमा हैं, सोई स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं अरु जो पुरुष गौके अर्थ युद्ध करते हैं, कै ब्राह्मणके अर्थ, मित्रके अर्थ, शरणागतके अर्थ युद्ध करते हैं, सो मृतक हुए स्वर्ग लोकको प्राप्त होते हैं; और स्वर्गके भूषण कहाते हैं अरुजो राज्य पालनेके निमित्त युद्ध करते हैं, सो मुए हुए स्वर्गको प्राप्त होते हैं, उनका यश स्वर्गविषे बहुत होता है जो पुरुष धर्मके अर्थ युद्ध करते हैं, सो अवश्य स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं, अरु जो अधर्मकरि युद्ध करते हैं, सो मृतक हुए नरकको प्राप्त होते हैं. हे रामजी !

जो पुरुष कहते हैं, संग्रामविषे मुए सब स्वर्गको प्राप्त होते हैं, सो मूर्ख हैं, स्वर्गको वही जाते हैं, जिनका मरना धर्मके अर्थ हुआ है, अरु जो किसी भोगके अर्थ युद्ध करते हैं सो नरकको प्राप्त होवैंगे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे लीलोपाख्याने युद्धप्रेक्षिकास्थिताम्बर-वर्णनं नाम एकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ३२.

आहवारम्भवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! तब दोनों देवियां रणसंग्रामको देखत भईं, क्या देखा कि महाशून्य बन है, तिसविषे दोनों सेना जुडी हैं, जैसे दो बडे समुद्र उछलिकरि परस्पर मिलने लगें तैसे सेना मिलीं तिसको देखा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे लीलोपाख्यानेआहवारम्भवर्णनं नाम द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः ३३.

सेनयोः प्रथमपातवर्णनम्

यह देखनेकरि संकलपको रचिकै दोनो विमान तिस ऊपर स्थित होके देखने लगीं, तब क्या देखा जो योद्धे आयके स्थित हुए हैं, मच्छ-व्यूह, गरुडव्यूह, चक्रव्यूह इस प्रकार सेनाके भाग भिन्न हुए दोनों सेनाके योद्धे एक एक होइकरि युद्ध करने लगे, प्रथम परस्पर देख जो यह बाण चलावै, तैसे कहैं जो तू प्रथम चलाउ, उनने कहा तू प्रथम चलाउ अरु क्रोधदृष्टिकरि स्थिर हो रहे, मानो मूर्तियां लिख छोडी हैं, तिसके अनंतर और योद्धे दोनों सेनाके आये, मानो प्रलयकालके मेघ उछले हैं तिनके आनेकरि एक एक योद्धेकी मर्यादा दूर हो गई, इकट्ठे युद्ध

करने लगे, बडे शस्त्रोंके प्रवाहके प्रहार करने लगे, कहूं खड्गोंके प्रहार होवहिं, कुहाडे, त्रिशूल, भाले, बरछियां कटारी, छुरी, चक्र, गदादिक, शस्त्र, चलने लगे, जैसे वर्षाकालमें मेघ वर्षा करते हैं, तैसे शस्त्रौंकी वर्षा होने लगी, बडे शब्द करैं अरु शस्त्र चलावैं. हे रामजी ! जेते कछु प्रलयकालके उपद्रव थे, सो इकट्ठे आन हुए; योद्धा जो थे सो जानके युद्धकी ओर आये अरु जो कायर थे सो भागगये ऐसा संग्राम हुआ; जो योद्धानके शिर काटे गये, तिनके हस्ती घोडे मृत्युको प्राप्त भये जैसे कमलके फूल कटे जाते हैं तैसे तिनके शीश काटे जावैं, तब दोनों सेनाके राजा चिंता करने लगे, कि क्या होवैगा ? हे रामजी ! ऐसा युद्ध हुआ, कि रुधिरकी नदी बह चलीं; तिसविषे वाणी बहते जावैं अरु बडे शब्द करैं जिन शब्दके आगे मेघोंके शब्द भी तुच्छ भासैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे लीलोपाख्याने सेनयोः प्रथमपातवर्णनं नाम त्रयस्त्रित्तमः सर्गः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः ३४.

रणप्रेक्षणवर्णनम् ।

हे रामजी ! दोनों देवियां संकल्पके विमान कल्पिके आकाशविषे स्थित हुईं, क्या देखा कि ऐसा युद्ध हुआ है जैसे महाप्रलयविषे समुद्र एकरूप हो जाते हैं अरु बिजलीकी नाईं शस्त्रोंका चमकार होत है अरु जो शूर वीर हैं, तिनके रक्तकी बूंदें पृथ्वीपर पडती हैं, तिन बूंदोंविषे जेते मृत्तिकाके कणके लगे होते हैं, तेते वर्ष स्वर्गको भोगैंगे, जो जो शूरमा युद्धविषे मृतक होवैं, तिनको विद्याधरियां स्वर्गको लेजावैं, अरु देवगण स्तुति करे कि, यह शूरमा स्वर्गको प्राप्त भया, अक्षय स्वर्ग भोगैगा, अर्थ यह जो चिरकाल स्वर्ग सुखभोग भोगैगा. हे रामजी ! शूरमें स्वर्गलोकके भोग मनविषे चिंतन करि हर्षवान् होवैं अरु युद्ध करि नाना प्रकारके शस्त्र चलावैं अरु संहारे

हैं, बहुरि युद्धके सन्मुख होवैं; धैर्य धरके स्थित होवैं. जैसे सुमेरु पर्वत धैर्यवान् अचल स्थित है; तिसते भी अधिक धैर्यवान् रहैं, ऐसे संग्राम-विषे योद्धे चूर्ण होवैं, जैसे ऊखलविषे चूर्ण होता है, तैसे रणविषे चूर्ण होवै अरु बहुरि सन्मुख होवैं अरु हाहाकार शब्द बडे होवैं अरु हस्तीसों हस्ती परस्पर युद्ध करैं शब्द करैं हे रामजी ! अनेक जीव इस प्रकार नाशको प्राप्त भये, जो जो शूरमा मरैं तिनको विद्याधरियां स्वर्गलोक लेजावैं, परस्पर बडे युद्ध होवैं, खड्गवालेके साथ खड्गवाले युद्ध करैं, त्रिशूलवालेके साथ त्रिशूलवाले युद्ध करैं, जैसा २ शस्त्र किसीके पास होवै तैसे ही तिसके पास युद्ध करैं जब शस्त्र पूर्ण होइ जावैं तब मुष्टिसाथ युद्ध करैं, दशदिशा युद्धकारि पूर्ण हो गईं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे लीलोपाख्याने रणप्रेक्षण वर्णनं नाम चतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशत्तमः सर्गः ३५.

द्वन्द्वयुद्धवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जब इस प्रकार बडा युद्ध हुआ तब शूरोंके रुधिरका प्रवाह चला. जैसे गङ्गाका प्रवाह तीक्ष्ण चलता है, तैसा तीक्ष्ण प्रवाह चला, तिस प्रवाहविषे हस्ती, घोडे, मनुष्य, रथ सब बहे जावैं अरु सेनासृष्टि नाशको प्राप्त होती जावै. हे रामजी ! बडा क्षोभ आनके उदय हुआ, जब राक्षस पिशाच आदिक जो तामसी जीव थे, सो भोजन करने लगे, मांस खावैं अरु रुधिर पानकरैं; उनको उत्साह किया प्राप्त भई, जैसे मंदराचल पर्वतकारि क्षीरसमुद्रको क्षोभ हुआ था, तैसे संग्राम भूमिविषे योद्धोंको क्षोभ हुआ, रुधिरका समुद्र चला, तिसविषे हस्ती, घोडे रथ शूरमे तरंगोंकी नाईं उछलते दृष्टि आवैं; रथवालेसों रथवाले युद्ध करैं, घोडेवाले सों घोडेवाले युद्ध करैं; हस्तिवालेसों हस्तिवाले प्यादेसों प्यादे युद्ध करैं. हे रामजी ! जैसे प्रलयकालकी अग्निविषे

जीव पडे जलते हैं, तैसे जो योद्धा रणभूमिविषे आवैं, सो नाशको प्राप्त होवैं; जैसे दीपकविषे पतंग प्रवेश करता है. अथवा जैसे समुद्रविषे नदियां प्रवेश करती हैं, तैसे रणभूमिविषे दश दिशाके योद्धे प्रवेश करैं, किसीका शीश काटा जावै, अरु धड युद्ध करै, किसीकी भुजा काटी जावै, किसीके ऊपर रथ चले जावैं; हस्ती, घोड़े, उलट पलट पड़ैं अरु नाश हो जावैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे लीलोपाख्याने द्वन्द्वयुद्धवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशत्तमः सर्गः ३६.

सहायकागमनवर्णनम् ।

हे रामजी ! दोनों राज्योंकी सहायताके निमित्त अनेक राजा आये थे, पूर्व दिशाते आये थे, काशी मदरास देशके, मीलादेशके, मालवदेशके, सकलादेशके, कवटादेशके, किरात देशके, म्लेच्छदेशके आये थे, जिनके अनुसार मर्यादा नहीं सो म्लेच्छ हैं, पारसीवाले आये काश्मीर देशके आये, तुरक देशके आये, पञ्जाबदेशके आये, हिमालयपर्वतके आये, सुमेरुपर्वतके आये इत्यादिक अनेक देशपाल आये जिनके बडे भुजदंड हैं अरु बडे केश हैं अरु बडे भयानक रूप हैं. सब युद्ध करनेके निमित्त आये, एते मूर्तिमन्त आये बडी ग्रीवावाले आये, एकटंगे पर्वतते आये, एकाचलसे एकाक्ष आये, घोडेके मुखवाले आये; श्वानके मुखवाले इसते लेकरि योद्धे आये, स्त्रीराज्यते आये, सुमेरु कैलासके राजा थे; जेते कछु पृथ्वीके राजा थे, सो सब ही आये.

इति श्रीयोगवासिष्ठे लीलोपाख्याने सहायकागमनवर्णनं नाम षट्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ३७.

जनपदयुद्धवर्णनम्।

हे रामजी ! जैसे महाप्रलयके समुद्र उछलते हैं अरु दिशास्थान जल करि पूर्ण होते हैं, तैसे सेनाकरिके सब स्थान पूर्ण भये, दोनों ओरते युद्ध करने लगे; चक्रवालेके साथ चक्रवाले युद्ध करैं, खड्ग, कुल्हाडे, त्रिशूल छुरी, कटारी, बरछी, गदा, बाण आदिक शस्त्रोंकरि परस्पर युद्ध करने लगे, एक कहैं प्रथम मैं जाता हौं, एक कहैं मैं प्रथम जाता हौं. हे रामजी ! तिस कालमें ऐसा युद्ध होने लगा जो कहनेविषे नहीं आता; दौड दौडके योद्धे रणविषे जावैं अरु मृत्युको प्राप्त होवैं, जैसे अग्निविषे घृतकी आहुति भस्म होती है, तैसे रणविषे योद्धे नाशको प्राप्त होवैं, ऐसा युद्ध हुआ, जो रुधिरका समुद्र चला तिसविषे हस्ती, घोडे, रथ, मनुष्य, तृणोंकी नाईं वहते जावैं अरु संपूर्ण पृथ्वी रक्तमय हो गई, जैसे आंधीकरि फूल फल बूटे गिरते हैं, तैसे पृथ्वीपर कटकट कर शब्द करते शिर गिरैं. हे रामजी ! जो तिस कालमें युद्ध हुआ है, सो कहनेविषे नहीं आता, सहस्रमुख जो शेषनाग है सो वह भी युद्धके कर्मोंको वर्णन करै तौ भी संपूर्ण न करि सकैगा तब और कैसे कहैगा, सो संक्षेपते कछु श्रवण कराया है॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे लीलोपाख्याने जनपदयुद्धवर्णनं नाम सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः॥३७॥

अष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ३८.

युद्धनिवृत्तवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जब इस प्रकार युद्ध हुआ तब सूर्य अस्त हुआ, मानौ उसकी किरणैं भी शस्त्रोंके प्रहारकरि अस्तताको प्राप्त भईं, तब विदूरथ जो सेनापति है, सो मंत्रियोंको बुलाकरि कहत

भया. हे मंत्री ! अब युद्धकी शांति करिये काहेते जो सूर्य अस्त भया है अरु योद्धे भी सब युद्ध करिके थके हैं, रात्रिको आराम करैं, बहुरि दिनको युद्धकरैंगे ताते वस्त्र फेरो और अब युद्ध शांत करौ, तब मंत्रीने दोनों सेनाके मध्यविषे ऊँचे चढके वस्त्रको फेरा, कि अब युद्धको शांत करो बहुरि दिनको युद्ध करैंगे तब दोनों सेनाने युद्धका त्याग किया, अरु अपनी अपनी सेनाविषे नौबत नगारे बजवाने लगे, राजा विदूरथ भी अपने गृहविषे आय स्थित भया, रणभूमिका शांत होगई ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे लीलोपाख्यासे युद्धनिवृत्तवर्णनं नामाष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः ३९.

निशाचराकुलरात्रिरणांगणवर्णनम् ।

जैसे शरत्कालविषे मेघोंते रहित आकाश निर्मल होता है, तैसे रणविषे संग्राम शांतिको प्राप्त भया, तब रात्री देखके राक्षस, पिशाच, गीदड, बघाड, डाकिनी मांसका भोजन करने आये अरु रुधिर पान करैं. कईके शिर काटे गये, कईके अंग काटे गये अरु पडे जीवते हैं अरु हाय हाय सब पडे करते हैं; सो निशाचरनको देखके डरने लगे अरु कईलोक भाई मित्रोंको देखते भये.

इति श्रीयोगवासिष्ठे लीलोपाख्याने निशाचराकुलरात्रिरणांगणवर्णनं नाम एकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४०.

स्मृत्यनुभववर्णनम् ।

हे रामजी ! तब राजा विदूरथ स्वर्णके मन्दिरविषे शय्या ऊपर विश्राम करत भया. कैसी शय्या है, जो फूलोंसहित चन्द्रमाकी नाईं शीतल और सुंदर है, तिस ऊपर सब किवाडोंको चढाइके विश्राम किया है अरु मंत्रियोंके साथ विचार किया, कि प्रातःकालको उठके ऐसे करेंगे, ऐसे

विचार करिकै शयन किया, मुहूर्त एकपर्यंत राजा सोया, बहुरि चिंताकरि जाग उठा, अरु दोनों देवियोंने आकाशते उतरके गृहविषे सूक्ष्म रूपसों प्रवेश किया; जैसे संध्याकालमें कमलके मुख मुँदते हैं, तिनोंमें वायु प्रवेश कर जावै तैसे मंदिरोंमें सूक्ष्म परमाणुके मार्गकरि प्रवेश किया. राम उवाच– हे भगवन् ! शरीर साथ परमाणुके रंध्रविषे देवियां कैसे प्रवेश करत भईं ? वह तौ कमलके तंतुते भी सूक्ष्म होते हैं, बालके अग्रते भी सूक्ष्म होते हैं तिस मार्गविषे कैसे प्रवेश करत भईं ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! भ्रांतिकर जो अधिभूतक शरीर हुआ है, तिस आधिभौतिक शरीरकरि आपने सूक्ष्मरंध्रविषे प्रवेश कोऊ नहीं करि सकता है, परंतु मनरूपी शरीरको रोक कोऊ नहीं सकता. हे रामजी ! देवी अरु लीलाका अंतवाहक शरीर था, तिसते सूक्ष्म परमाणुके मार्गसे उनको प्रवेश करनेमें कछु विचार न हुआ, जो उनका अधिभूत शरीर होता, तो यत्न भी होता जहां अधिभूतक न होवै, तहां यत्नकी शंका कैसे होवै ? हे रामजी ! और भी सब शरीर चित्तरूपी हैं; अरु जैसा निश्चय अनुभव संवित्‌विषे होता है, तैसे ही सिद्धता होती है, अन्यथा नहीं होती. जिसके निश्चयविषे यह शरीरादिक आकाशरूप है, तिसको अधिभूतकताका अनुभव नहीं होता अरु जिसके निश्चयविषे अधिभूतकता दृढ होरही है, तिसको अंतवाहकका अनुभव नहीं होता, जिस पुरुषको पूर्वार्धका अनुभव नहीं तिसको उत्तरार्धविषे गमन नहीं होता, जैसे वायुका चलना ऊर्ध्वको नहीं होता, तिरछा स्पर्श होता है। अरु अग्निका चलना अधःको नहीं होता जल का ऊर्ध्व नहीं होता, जैसे आदि चेतन संवित्‌विषे प्रवृत्ति भई है, तैसे अबलग स्थित है, ताते जिसको अंतवाहक शक्ति उदय भई है. तिसको अधिभूतकता नहीं रहती अरु जिसको अधिभूतकता दृढ है, तिसको अंतवाहक शक्ति उदय नहीं होती. हे रामजी ! जो पुरुष छायाविषे बैठा होवै तिसको धूपका अनुभव नहीं होता; अरु जो धूपविषे बैठा है तिसको छायाका अनुभव नहीं होता, अनुभव तिसको होता है जिसके चित्तविषे दृढता होती है, अन्यथा किसीको कदाचित् नहीं होती. हे रामजी ! जैसा प्रमाण चित्‌संवित्‌विषे होता है, जबलग और

प्रतीति नहीं होती तबलग तैसे ही सिद्धता होती है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, अरु भयकरि कपायमान होता है, सो कँपता भी तबलग है, जबलग सर्पका अनुभव अन्यथा नहीं होता; जब जेवरीका अनुभव उदय हुवा, तब सर्पभ्रम नष्ट होता है,तैसे ही जैसा अनुभव चित्तसंवित् विषे प्रमाण दृढ होता है, तिसका अनुभव होता है; यह वार्त्ता बालक भी जानता है, जैसी जैसी चित्तकी भावना होती है तैसा ही रूप भासता है, निश्चय और होवै अरु अनुभव और प्रकार होवै सो कदाचित् नहीं होता. हे रामजी ! जिनको यह आकार स्वप्नसंकल्पपुरकी नाईं हुए हैं सो आकाशरूप हैं, जिनको ऐसा निश्चय होवै, तिनको रोक कोऊ नहीं सकता. औरोंका भी चित्तमात्र शरीर है; अरु जैसा जैसा संवेदन दृढ भया है, तैसा तैसा आपको जानता है. हे रामजी ! आदि सर्ग आत्मातें स्वाभाविक उपजा है सो अकारणरूप है, पाछेते प्रमाद करि द्वैत कार्य अकारणरूप होयके स्थिर भया है. हे रामजी! आकाश तीन हैं; एक चिदाकाश है, एक चित्ताकाश है, एक भूताकाश है; तिनविषे वास्तव एक चिदाकाश है अरु भावना करिकै भिन्न भिन्न कलना हुई है, आदि शुद्ध चिदाकाश अचेतन चिन्मात्रविषे जो संवेदन फुरा है; तिसका नाम चित्ताकाश है, तिसविषे यह संपूर्ण जगत् हुआ है. हे रामजी ! चित्तरूपी जो शरीर है, सो सर्वगत होइकरि स्थित भया है,जैसा जैसा तिसविषे स्पंद होता है, तैसा होयके भासता है;जेते कछु सर्व पदार्थ हैं,तिन सबों विषे व्याप रहा है; त्रसरेणुके अंतर भी सूक्ष्म भावकरि स्थित भया है, आकाशके अंतर भी व्याप रहा है, जिनके पत्र फल होते हैं. जलविषे तरंग होयके स्थित भया है; अरु शल जो पर्वत हैं; तिनके अंतर भी वही फुरता है अरु मेघ होइकै वही वर्षता है अरु चलते बर्फ भी चित्त ही होता है, अनंत आकाश भी वही है, परमाणुरूप वही है, अंतर बाहर सर्व जगत्में यह है जेता कछु जगत् है, सो चित्तरूपही है, अरु वास्तव आत्मासाथ अनन्यरूप है, जैसे समुद्र अरु तरंगविषे कछु भेद नहीं तैसे आत्मा अरु चित्तविषे कछु भेद नहीं, जिस पुरुषको ऐसे अखंड सत्ता आत्माका अनुभव हुआ है,अरु सर्गके आदि चित्त ही जिसका शरीर है,

अधिभूतकताको नहीं प्राप्त भया सो महाआकाश रूप है, जिनको पूर्वका स्वभाव स्मरण रहा है, इस कारणते तिनका अंतवाहक शरीर है. हे रामजी ! जिस पुरुषको अंतवाहकविषे अहंप्रत्यय है, तिसको सब जगत् संकल्पमात्र हो भासता है; जहां जानेकी इच्छा वह करता है, तहां जाता है आवरण कोऊ उसको रोक नहीं सकता; अरु जिसको अधिभौतिकविषे निश्चय है तिसको अंतवाहक शक्ति नहीं होती. हे रामजी ! सब ही अंतवाहकरूप हैं; अरु भ्रमकरके अणु होता अधिभूतक देखते हैं; जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है, स्वप्नविषे जैसे वंध्याके पुत्रका सद्भाव होता है; तैसे आधिभौतिक जगत् भासता है, जैसे जलते शीतलताकरके बर्फ हो जाता है, तैसे जीवप्रमाद करके अंतवाहकते अधिभूतक शरीर होता है. राम उवाच- हे भगवन् ! चित्तमें क्या है अरु कैसे होता है अरु कैसे नहीं होता, अरु यह जगत् कैसे चित्तरूप है; अरु क्षणविषेय अन्यथा कैसे हो जाता है. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! एक एक जीवप्रति चित्त होता है, जैसा जैसा चित्त है तैसी तैसी शक्ति है; अरु चित्तविषेजगतभ्रम होता है क्षणविषे कल्प अरु संपूर्ण जगत् उदय हो आता है अरु क्षणविषे संपूर्ण लय होता है; किसीको निमेषविषे कल्प हो आता है, किसीको क्रमकरिके भासता है सो तू सुन. हे रामजी ! जब मरनेकी मूर्च्छा होती है तिस महाप्रलयरूप मृत्युमूर्च्छाके अनंतर नानाप्रकारका जगत् इसको फुरि आता है, जैसे स्वप्नविषे सृष्टि फुरि आती है, जैसे संकल्पका पुर भासता है, तैसे मृत्युमूर्च्छाके अनंतर सृष्टि भासती है. जैसे महाप्रलयके अनंतर आदि विराट्रूप ब्रह्मा होता है, तैसे मृत्युके अनंतर इसको अनुभव होता है, यह भी विराट् होता है, काहेते जो इसका मनरूपी शरीर होता है. राम उवाच--हे भगवन् ! मृत्युके अनंतर जो सृष्टि होती है; सो स्मृतिकरके होती है, स्मृतिविना तौ नहीं होती, जो मृत्युके अनंतर सृष्टि हुई तौ सकारणरूप हुई . वसिष्ठ उवाच-- हे रामजी ! जब महाप्रलय होता है, तब हरि हरादिक सबही विदेह मुक्त होते हैं; बहुरि स्मृतिका संभव कैसे होवै ? हम आदिक जो बोध आत्मा हैं, जब विदेहमुक्त हुए तब स्मृतिसंभव कैसे होवै ? अरु अबके जो जीव हैं, तिनका

जन्ममरण स्मृति कारणते होता है; काहेते कि, मोक्ष नहीं होता, मोक्षका उनको अभाव है. हे रामजी ! जब यह जीव मरते हैं, तब मृत्यु मूर्च्छा होती है? अरु कैवल्यभाव विषे स्थित नहीं होते, मूर्च्छाकरि इसका संवित् आकाशरूप होता है तिसते बहुरि चित्तसंवेदन फुरि आता है तब क्रमकरिके जगत् फुरि आता है; जब बोध होता है तब तन्मात्रा अरु काल क्रिया भाव अभाव स्थावर जंगम जगत् सब आकाशरूप हो जाता है. जिसका संवेदन दृश्यकी ओर धावता है अज्ञानजन्य तिसको मृत्युमूर्च्छाके अनन्तर संवेदन फुरताहै, तिसकरि शरीर इंद्रियां भास आतीहैं, कैसा शरीर है, अंतवाहक शरीर है, परंतु चिरकालकी प्राप्ति करिकै आधिभौतिक होय भासता है, तब इसको देश काल क्रिया आधार आधेय उदय होइकरि स्थित होते हैं, जैसे वायु स्पंदनिस्पंदरूप है, जब स्पंद होता है तब भासता है, अरु निस्पंद हुएते नहीं भासता, तैसे संवेदन करिकै जगत भासता है, तब जानता है कि, मैं यहां उपजा हौं; जैसे स्वप्न अंगनाका स्वप्नविषे स्पर्शका अनुभव होता है तो भी मिथ्या है, तैसे भ्रमकरिकै आपको उपजा देखता है, तौ भी मिथ्या है. हे रामजी ! जहां यह जीव मृतक होता है, तहां ही जगत्भ्रम देखता है; अरु वास्तवते जीव भी आकाशरूप है; अरु जगत् भी अकाशरूप है अरु अज्ञानकरिकै आपको उपजा मानता है, अरु आगे जगत् भ्रम देखता है, यह नगर है यह पर्वत है यह सूर्य चन्द्रमा हैं, यह तारागण हैं अरु जरा मरण आधि व्याधि संकटकरिकै व्याकुल होता है, भाव अभाव भय स्थूल सूक्ष्म चर अचर पृथ्वी नदियां पर्वत भूत भविष्य वर्तमान क्षय अक्षय भूमिको देखता है, मैं उपजा हौं, अमुकोंका मैं पुत्र हौं, यह मेरा कुल है, यह मेरी माता है, यह मेरे बांधव हैं एता धन हमको प्राप्त भया है, इत्यादिक वासनाजालों विषे दुःखी होता है; अरु कहताहै, यह सुकृत है, यह देहाकृति है. प्रथम मैं बालक था अब मेरी यह अवस्था भई है यह मेरा वर्ण है; इत्यादि जगत्कल्पना एक एक जीवको उदय होती है, हे रामजी! संसाररूपी एक वृक्ष उदय हुआ है, चित्तरूपी बीज है; तारागण तिसके फूलहैं, अरु मेघ चंचल पत्र हैं; अरु जंगम, जीव, मनुष्य, देवता, दैत्य आदिक पक्षी

बैठनेवाले हैं; अरु रात्रि तिस ऊपर धूर है; अरु समुद्र तिसकी तलावडी है अरु पर्वत उसाविषे सिलबटे हैं अरु अनुभवरूप अंकुर है, जहां यह जीव मरता है, तहां क्षणविषे देखता है, इस प्रकार एक एकको अनेक जगत् भासते हैं. हे रामजी ! कई कोटि ब्रह्मा अरु विष्णु, रुद्र, इन्द्र, पवन, सूर्य आदिक हुए हैं. जहां सृष्टि है, तहाँ यह होते हैं ताते चिदूअद्वीप लोक भी बहुतेरे हुए हैं, जो जो चिद्अणुविषे सृष्टिका अंत नहीं तौ अणुविषे अनेक सृष्टि हैं;जो जीव भी अनंत हुए हैं,तिन्होंविषे सुमेरु मंडल परब्रह्मविषे अंत कहांते आवै अरु वास्तवते है नहीं; जैसे पर्वतकी कंदरा विषे शिल्पी पुतलियां कल्पे तौ कछु है नहीं तैसे जगत् चिदाकाशविषे नहीं, मनमात्र ही है. हे रामजी ! मन अरु स्मरण भी चिदाकाशरूप है अरु चिदाकाशविषे मनन अरु स्मरण हैं, जैसे तरंग भी जलरूप हैं. अरु जलहीविषे तरंग होते हैं, जलते इतर तरंग कछु वस्तु नहीं, तैसे मनन स्मरण भी चिदाकाशरूप जान. हे रामजी ! दृश्य कछु भिन्न वस्तु नहीं, द्रष्टा ही दृश्यकी नाईं होकरि भासता है, जैसे यह मन आकाश नानाप्रकार होय भासता है,तैसे चिदाकाशका प्रकाश नानाप्रकार जगत् होयकरि भासता है, यह विश्व सब चिदाकाशरूप है, हमको तौ ऐसे भासता है, तुमको यह जगत् अर्थाकाररूप भासता है, इसीकारणते कहा है कि लीला अरु सरस्वती आकाशरूप थी अरु सर्वज्ञ थी, स्वच्छ रूप निराकार थी, जहां चाहै तहां जाय प्राप्त होती थी, जैसी इच्छा करै, तैसी सिद्धि होवै; काहेते कि, जिसको चिदाकाशका अनुभव हुआ है तिसको कोऊ रोक नहीं सकता, सर्वरूप होयके जो स्थित हुआ, तिस गृहविषे प्रवेशका क्या आश्चर्य है ? वह अंतवाहकरूप है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने स्मृत्यनुभववर्णनं नाम चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४१.

भ्रांतिविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जब दोनों देवियां राजाके अंतःपुर विषे प्रवेश करिकै संकल्पकरि सिंहासनपर चढ़के स्थित भईं, चंद्रमाकी नाईं कांति है जिनकी अरु निर्मल कल्पवृक्षोंकी सुगंध पवनकरि शरीरको स्पर्श करत भईं तब बडा प्रकाश अंतःपुरविषे भया अरु शीतलताकरि व्याधि ताप शांत भया. जैसे नंदनवन होता है तैसे अंतःपुर भया, जैसे प्रातःकालविषे सूर्यका प्रकाश होता है, तैसे देवियोंके प्रकाश करिकै अंतःपुर पूर्ण भया. मानो देवियोंके प्रकाशसों राजाके ऊपर अमृतकी सिंचना भई, तब राजा देखत भया, मानो सुमेरुके शृंगते दोनों चंद्रमा उदय हुए हैं, ऐसे देखके विस्मयको प्राप्त भया, बहुरि चिंतना करत भया कि, यह देवियां हैं, शय्याते उठ खडा भया, जैसे शेषनागकी शय्याते विष्णु भगवान् उठते हैं तैसे उठके वस्त्रको एक ओर करि हाथोंविषे पुष्प लिये, हाथ जोडिकै देवियोंके चरणोंपर चढाये, अरु मस्तक टेका, पद्मासन बांधिकै पृथ्वीके ऊपर बैठा अरु कहत भया हे देवियो ! तुम्हारी जय होवै, जन्मदुःख तप्तके तुम शांत करनेहारी चंद्रमा हौ अरु अपूर्वसूर्य हौ, अर्थ यह–जो पूर्व सूर्यके प्रकाश करि बाह्यतम नष्ट होता है; अरु तुम्हारे प्रकाशकरि अंतर अज्ञानतम भी नष्ट होता है; ताते अपूर्व सूर्य हौ, जब ऐसे राजाने पूजन करि कहा, तिसते अनंतर मन्त्री जो राजाके पास सोये थे; जैसे नदीके तट ऊपर फूलोंका वृक्ष होवै तैसे राजाके पास सोये थे तिनको जन्म अरु कुलके कहावने निमित्त संकल्प करिकै देवी जगावती भई, तब मन्त्री भी उठके फूलोंकरि देवियोंको पूजन करिकै राजाके समीप बैठ गये, तब सरस्वती कहत भई. हे राजन् ! तू कौन है ? किसका पुत्र है ? अरु कबका जन्म लिया है . हे रामजी ! जब इस प्रकार देवीने पूछा, तब निकट जो मन्त्री बैठे थे सो बोलत भये. हे देवि ! तुम्हारी कृपा

करि राजाका जन्म अरु कुल मैं कहता हौं, इक्ष्वाकुकुलविषे एक राजा होत भया है, कमलकी नाईं तिसके नेत्र थे, अरु श्रीमान् था, अरु तिसका नाम कुंदरथ भया, तिसका पुत्र बुधरथ भया, तिसका पुत्र सिंधुरथ होत भया, तिसका पुत्र महारथ होत भया, तिसका पुत्र विष्णुरथ होत भया, तिसका पुत्र कलारथ होत भया, तिसका पुत्र सूर्यरथ होत भया, तिसका पुत्र नभरथ होत भया, तिस नभरथके पुत्र बडे पुण्यकरके विदूरथ होत भया. जैसे क्षीर समुद्रसों चंद्रमा निकसा है, तैसे सुमित्रा माताते उपजा है, जैसे गौरीजीते स्वामिकार्तिक उत्पन्न भया है, तैसे यह सुमित्राते उत्पन्न भया है. हे देवि ! इस प्रकार तौ हमारा राजाका जन्म हुआ है, जब दश वर्षका भया तब पिता इसको राज्य देकरि आप बनको उठ गया है, तिस दिनते लेकरि इसने धर्मकी मर्यादाके साथ पृथ्वीकी पालना करी है अरु बडे पुण्य किये हैं तिन तिन पुण्योंका फल तुम्हारा दर्शन इसको अब भया है. हे देवि ! तुम्हारे दर्शनके निमित्त जो बहुत वर्ष तप करते हैं तिनको तुम्हारा दर्शन पावना कठिन है, ताते इसके बडे पुण्य हैं, जो तुम्हारा दर्शन प्राप्त हुआ. हे रामजी ! इस प्रकार कहिकै मन्त्री तूष्णीं रहत भया, तब देवीजीने कृपा करिकै राजा विदूरथके शीशपर हाथ रक्खा अरु कहा, हे राजन् ! तू अपने पूर्व जन्मको विवेकदृष्टिकरिकै देख कि जो तू कौन है; जब इस प्रकार देवीने कहा तब राजाके हृदयविषे अज्ञान था सो देवीके हाथ रखनेकरि निवृत्त होत भया अरु हृदय प्रफुल्लित हुआ, ऐसे देवीके प्रसादकरि राजाको पूर्वकी स्मृति फुरआई; लीला अरु पद्मका वृत्तांत संपूर्ण स्मरण करिकै कहत भया. हे देवि ! बडा आश्चर्य मैंने जाना है कि यह जगत् मनकरि रचा है; तेरे प्रसादकरि मैंने जाना है, कि मैं राजा पद्म था अरु लीला मेरी स्त्री थी, एक दिन मुझको मृतक हुवे ऐसे भासा अरु यहां मैं सत्तर वर्षका भया हौं, सो भ्रमकरिकै मैंने नहीं जाना, अब प्रत्यक्ष जानता हौं अरु अनेक कार्य मैंने किये हैं, सत्तर वर्षोंविषे सो मुझको स्मरण होते हैं अरु प्रपितामह भी मुझको स्मरण विषे आता है, अपनी बालक अवस्था भी स्मरणविषे

आती है, यौवन अवस्था भी स्मरणविषे आती है, मित्र बांधव स्मरण होते हैं, यह बडा आश्चर्य हुआ है सरस्वत्युवाच-हे राजन् ! जब यह मृतक होते हैं, तब इनको बडी मूर्च्छा होती है, तिस मूर्च्छाके अनंतर और लोक भासि आते हैं,एक मुहूर्त्तविषे वर्षोंका अनुभव होता है जैसे स्वप्नविषे एक मुहूर्तसों अनेक वर्षोंका अनुभव होता है, तैसे मुझको मृत्युमूर्छाके अनंतर यह लोकभ्रम भासा है.हे राजन्! तू जो पद्मराजा था; तिस अपने गृहविषे मृतक हुए तुझको एक मुहूर्त बीता है अरु यहां तुझको बहुतेरे वर्षोंका अनुभव भया है अरु तिसते भी जो पिछला वृत्तांत है,सो श्रवण कर. हे राजन् ! एक पहाडके ऊपर ग्राम था; तिसविषे एक वसिष्ठ ब्राह्मण था, अरुंधती तिसकी स्त्री थी, दोनों मंदिरविषे रहते थे, तिस अरुंधतीने मुझसों वर लिया कि, जब मेरा भर्ता मृतक होवै तब उसका जीव इस ही मण्डपाकाशविषे रहै.हे राजन् ! जब वह मृतक भया तब उसकी पुर्यष्टक उस ही मंदिरविषे रही, तिसके संवितविषे राजाकी दृढ वासना थी तिस मण्डपाकाश विषे तिसको पद्मराजाकी सृष्टि फुरि आई अरु अरुंधती तिसकी स्त्री तिसको लीला होइकरि प्राप्त भई अरु पद्मका मण्डप उस ब्राह्मणके मण्डपाकाशविषे स्थित फुरि आया, बहुरि तिस मण्डपविषे राजा पद्म तू मृतक भया तब तेरे संवित्विषे नानाप्रकारके आरंभसंयुक्त तुझको यह जगत् फुरि आया। हे राजन् ! यह तो तेरा जगत् है, सो पद्मराजाके हृदयविषे फुरि आया है अरु पद्मराजाके मंडपाकाशविषे स्थित है, सो उस ही वसिष्ठ ब्राह्मणके मण्डपाकाशविषे स्थित है अरु वही वसिष्ठ ब्राह्मण तू विदूरथ राजा भया है,सो कैसे स्थित है ? हे राजन् ! यह सब जगत् प्रतिभामात्र है, मनकी कलनाकरि भासता है, उपजा कछु नहीं. विदूरथ उवाच-बडा आश्चर्य है जैसे मेरा यह जन्म भ्रमरूप भया, तैसे इक्ष्वाकुका कुल भ्रमरूप, तैसे मेरा पिता माता सब भ्रमरूप भये, तिसविषे मैंने जन्म लिया, बहुरि बालक हुआ दश वर्षका हुआ, तब पिताने मुझको राज्य देके वनवास दिया, बहुरि मैंने दिग्विजय करिके प्रजाकी पालना करी,शत वर्षोंका मुझको अनुभव होता है अरु अब मुझको दारुण अवस्था युद्धकी प्राप्ति आन भई है,युद्ध कारिकै रात्रिको मैं गृहविषे

आन स्थित भया हौं; बहुरि तुम दोनों देवियां मेरे गृहविषे आई हौ, मैं तुम्हारी पूजा करत भया हौं, बहुरि तुम दोनोंविषे एक देवीने कृपा करिकै मेरे शीशपर हाथ रक्खा है; तिसकरि मुझको ज्ञानप्रकाश भया है, जैसे सूर्यके प्रकाशकरि कमल प्रफुल्लित होता है तैसे मेरा हृदय देवीके प्रकाशकरि प्रफुल्लित भया है; तैसे इनकी कृपाते कृतकृत्य भया हौं, अब मेरा संताप सब नष्ट भया है, अरु परम निर्वाण समता सुख निर्मल पदको प्राप्त भया हौं, सरस्वत्युवाच–हे राजन्! जो कछु तुझको भासा है, सो सब भ्रममात्र है, नानाप्रकारके व्यवहार अरु लोकांतर भी भ्रममात्र हैं, काहेते जो वहां तुझको मृतक हुए एक मुहूर्त व्यतीत भया है; तिसके अनंतर वही मण्डप आकाशविषे तुझको यह जगत् भासा है अरु वह पद्मराजाकी सृष्टि ब्राह्मणके मंडपविषे स्थित है, तहां तुझको नदियां, पर्वत, समुद्र, पृथ्वी आदिक भूत संपूर्ण जगत् भासि आये हैं; जैसे समुद्रविषे तरंग आवृत्त फुरि आते हैं, तैसे जगत् भासि आया है. हे राजन्! मृत्युमूर्छाके अनन्तर कबहूँ वही जगत् भासता है, कबहूँ और प्रकार भासता है, कबहूँ पूर्व अरु अपूर्व भी भासता है, सो मनकी कल्पना करिकै भासता है वास्तवते असद्रूप है, अज्ञानकरिकै सत्की नाईं भासता है; जैसे एक मुहूर्त शयन करिकै स्वप्नविषे बहुतेरे वर्षोंका क्रम देखता है, तैसे जगत्का अनुभव होता है, जैसे संकल्पपुरविषे अपना जीना बहुरि मरणा देखता है, जैसे गन्धर्वनगर भ्रममात्र होता है, जैसे नौकाविषे बैठे हुएको तटके वृक्ष चलते हुए भासते हैं, जैसे भ्रमणेकरिकै पर्वत पृथ्वी मंदिर भ्रमते भासते हैं, जैसे स्वप्नविषे अपना शिर काटा भ्रमकरिकै भासता है, तैसे यह जगत् भ्रमकरिकै भासता है. हे राजन्! अज्ञान करिकै मिथ्या कल्पना तुझको उपजी है, वास्तवते न तू मृतक भया है, न जन्म लिया है, शुद्धविज्ञान शांतिरूप है, तू अपना आप जो आत्मपद है, तिसविषे स्थित हो, नानाप्रकारका जगत् अज्ञानकरि भासता है, सम्यक् ज्ञानकरिकै सर्वात्मसत्ता भासती है, आत्मसत्ता ही जगत्की नाईं भासती है, जैसे बडी मणिकी किरणें नानाप्रकार होइ भासती हैं, सो मणिते इतर कछु नहीं, तैसे आत्मसत्ताका किंचन आकाशरूप

जगत् भासता है; गिरि ग्राम तुम किंचनरूप हौ; जेता कछु जगतवि-स्तार तुझको भासता है सो लीला अरु पद्मराजाके मंडपाकाशविषे स्थित है, अरु वह लीला पद्मकी राजधानी उस वसिष्ठ ब्राह्मणके मंडपाकाशविषे स्थित है. हे राजन्! यह जगत वसिष्ठ ब्राह्मणके हृदय मंडपाकाशविषे पडा फुरता है, कैसा है मंडपाकाश जो आकाशविषे स्थित है, न पृथ्वी न कोऊ शैल (पर्वत) है, न कोऊ मेघ है, न कोऊ समुद्र है, न कोऊ मुमुक्षु है, केवल शून्य ही शून्य स्थित है और न कोऊ जगत् है, न कोऊ देखनेवाला है; यह सब भ्रांतिमात्र है. हे राजन् यह सब तेरे उस मंडपाकाशविषे पडे फुरते हैं. विदूरथ उवाच-हे देवि !जो ऐसे हैं, तौ यह मेरे भृत्यु भी अपने आत्माविषे सत् हैं, अथवा असत् हैं, सो कहौ. देव्युवाच-हे राजन् ! विदितवेद्य जो पुरुष है, सो शुद्ध बोधरूप है, तिसको कछु भी जगत् सत्यरूप नहीं भासता सब चिदाकाशरूप ही भासता है, जैसे जेवरीविषे सर्पभ्रम निवृत्त हुए नहीं भासता, तैसे जिन पुरुषोंको आत्मबोध हुआ है, अरु जगतभ्रम निवृत्त हुआ है तिनको जगत् सत् नहीं भासता; जैसे सूर्यकी किरणों विषे जलको असत् जाने तब बहुरि जलसत्ता नहीं भासती, तैसे जिनको आत्मबोध हुआ है, अरु जगत्को असत् जाना है, तिनको सत् नहीं भासता. हे राजन् ! जैसे स्वप्नविषे कोऊ भ्रम करिकै अपना शीश काटा देखै, अरु जागते स्वप्नका मरना नहीं देखता, तैसे ज्ञानवान्को जगत् सत् नहीं भासता; जैसे स्वप्नका मरना भ्रमकरि देखता है, तैसे अज्ञानीको जगत् सत् भासता है, परंतु वास्तव कछु नहीं. शुद्ध बोध विषे जगत्भ्रम भासता है, जैसे शरत्कालविषे मेघते रहित शुद्ध आकाश होता है, तैसे शुद्धबोधवालेको अहं त्वम् आदिक व्यर्थ शब्दका अभाव होता है अरु हे राजन् ! तू अरु तेरे भृत्य इत्यादिक जो यह सृष्टि है, सो सब आत्माते फुरे हैं; जैसे तू फुरा है, तैसे यह सब फुरे हैं, अरु वस्तुते कछु हुआ नहीं, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है. भ्रमकरि और कछु भासता है, शुद्धविज्ञानघनरूप तिसका शेष रहता है । वाल्मीकिरुवाच-इसप्रकार जब देवी अरु विदूरथका

संवाद वसिष्ठने रामजीको कहा तब सूर्यका अस्त भया; सायंकालका समय भया, सर्व सभा परस्पर नमस्कार करिके स्नानको गई, रात्रि व्यतीत भई. तब सूर्यके किरणोंसहित सब अपने अपने स्थानोंके ऊपर आइके बैठे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे लीलोपाख्याने भ्रांतिविचारवर्णनं नाम एकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशत्तमः सर्ग ४२.

स्वप्नपुरुषसत्यतावर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जो पुरुष अबोध हैं, अर्थ यह–जो परमपदविषे स्थित नहीं भये, तिनको जगत् वज्रसारकी नाईं दृढ भया है, जैसे मूर्ख बालकको अपनी परछाहींविषे बैताल भासता है, तैसे अज्ञानी को असत्‌रूप जगत् सत् होय भासता है, जैसे मरुस्थलविषे मृगको असत्‌रूप जलाभास सत्य होइ भासता है; जैसे स्वप्नविषे क्रिया अर्थभ्रमकरिके भासती हैं, जैसे जिसको सुवर्णबुद्धि नहीं होती तिसको भूषणबुद्धि सत् भासती है, जसे नेत्र दूषणकरिके आकाशविषे मुक्तमाला भासती है, तैसे असम्यग्दर्शीको असत्‌रूप जगत् सत् होइ भासता है. हे रामजी! यह जगत् दीर्घ कालका स्वप्न है, सो अहंता करिके दृढ जाग्रत्‌रूप हो भासता है, वास्तवते कछु उपजा नहीं, वस्तुते परम चिदाकाश है, सर्वदा शांतिरूप है, अचिंत्य चिन्मात्रस्वरूप है, सो सब जगत् है, सर्वशक्ति सर्वात्मा है, जहां जैसा स्पंद फुरता है, तैसा जगत् होइकरि भासता है; जैसे स्वप्नसृष्टि भासती है, सो स्वप्नभ्रम चिदाकाशविषे स्थित है, तिस चिदाकाशविषे एक स्वप्नपुर फुरता है, वह द्रष्टा हो दृश्यको देखता है, सो द्रष्टा अरु दृश्य दोनों चेतन संवित्‌विषे आभासरूप हैं; तैसे यह जगत् भी आभासरूप है. हे रामजी! स्वर्गकी आदि जो शुद्ध आत्मसत्ता थी, तिसविषे आदि संवेदन स्पंद हुआ है, सो ब्रह्माजी

है, तिसके संकल्पविषे यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है, यह संपूर्ण जगत् स्वप्नकी नाईं है, तिस स्वप्नरूपविषे तुम्हारा सद्भाव हुआ है, जैसे तुम हौ ऐसे और भी है; जैसे स्वप्नविषे स्वप्न नगरको और स्वप्न होवै, जैसे स्वप्ननगर वास्तव सत् नहीं होता तैसे यह जगत् भी जो दृष्ट आता है सो भ्रममात्र है, जैसे स्वप्नविषे असत् ही सत् होके भासता है, तैसे यह भी अहं त्वम् आदिक भासते हैं; जैसे स्वप्नविषे सब कर्म होते हैं, तैसे यह भी जान. राम उवाच–हे भगवन्! स्वप्नते जब जागता है तब स्वप्नके पदार्थ असतरूप हो भासते हैं अरु यह तौ ज्योंके त्यों रहते हें जब देखिये तब ऐसे ही हैं, बहुरि जाग्रत् अरु स्वप्नको तुल्य कैसे कहिये ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जैसा स्वप्न है तैसा जाग्रत् है, स्वप्न अरु जाग्रत्विषे कछु भेद नहीं, स्वप्नको भी स्वप्न असत् तब जानता है; जब जागता है, जबलग जागा नहीं तबलग असत् नहीं जानता, तैसे यह भी जबलग आत्मपदविषे नहीं जागा तबलग असत् नहीं भासता; जब आत्मपद विषे जागे तब यह जगत् भी असतरूप भासैगा. हे रामजी ! यह जगत् असतरूप है अरु भ्रमकरिके सतकी नाईं भासता है; जैसे स्वप्नकी स्त्री असतरूपहोती है. अरु सतरूप जानता है तैसे यह जगत् भी असत्-रूप सत् हो दिखाई देता है, आभासरूप जगत् है अरु आत्मसत्ता सर्वत्र सर्वदा अद्वैतरूप है, अरु जहां जैसा चिंतता है तहां तैसा होके भासता है, जैसे डब्बेविषे अनेक रत्न होते हैं, तामेंते जिसको चाहता है तिसको लेता है, तैसे सर्वगत चिदाकाश है, जहां जैसा चिंतता है तहां तैसा होइ भासता है. हे रामजी अब पूर्वका प्रसंग सुन. जब देवीने विदूरथपर अमृतरूपी ज्ञानवचनोंकी वर्षा करी तब उसके हृदयविषे विवेकरूपी सुन्दर अंकुर आनि उत्पन्न भया; बहुरि सरस्वती कहत भई. हे राजन्! जो कछु कहना था सो मैंने तुझको कहा है अरु अब रणसंग्रामविषे मृतक होना है यह मैं जानती हौं, अरु अब हम जाती हैं, लीलादिको दिखानेके निमित्त हम आई थीं सो देखा है. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जब इसप्रकार मधुरवाणी करि सरस्वतीने कहा तब बुद्धिमान् जो राजा विदूरथ है सो कहतभया. विदूरथ उवाच–हे देवि ! अब तुम्हारा

दर्शन किया, बडेका दर्शन निरर्थक नहीं होता, सो महाफल देनेहारा है. हे देवि! मैं भी ऐसा हूं कि, जो अर्थी मेरेते आन प्राप्त होता तिसको मैं निरर्थक नहीं करता, सबका अर्थ पूर्ण करि देता था अरु तुम तौ साक्षात् ईश्वरी हौ, तांते यह वर मुझको देहु जो देहको त्यागिकारि लोकांतरमें पद्मके शवदेहविषे जाय प्राप्त होऊं, जैसे स्वप्नते स्वप्नान्तरको प्राप्त होता है तैसे प्राप्त होऊं. हे देवि! जो भक्त शरणको आय प्राप्त होता है तिसका बडे त्याग नहीं करते, उसका अर्थ सिद्ध करते हैं, तांते यही वर मुझको देहु जो उसी देहविषे प्राप्त होऊं, मेरे मंत्री अरु भार्या अरु लीला भी मेरे साथ होवैं. सरस्वत्युवाच–हे राजन्! ऐसे ही होवैगा, पद्म राजाके शरीरविषे प्राप्त होवैगा, अरु बोधसहित निःशंक होइकारि राज्य करैगा, हमारा सेवना किसीको व्यर्थ नहीं; जैसी कामनाकरिकै कोऊ हमको सेवता है, सो तैसे फलको प्राप्त होता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने स्वप्नपुरुष-सत्यतावर्णनं नाम द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४३.

अग्निदाहवर्णनम्।

सरस्वत्युवाच–हे राजन्! अब तू रणविषे मृतक होवैगा, मृतक होयके पूर्वके पद्मराजाके शरीरविषे जाय प्राप्त होवैगा, अरु यह तुम्हारी भार्या अरु मंत्री भी तहां जाय प्राप्त होवैंगे. हे राजन्! तुम ऐसे चले जाओगे जैसे वायु चला जाता है, अरु हम जाती हैं, तुम्हारा हमारा साथ कैसे होवै, जैसे अश्व अरु खर, मृग अरु ऊंट हस्तीका संग नहीं होता तैसे तुम्हारा हमारा क्या संग है? तातें हम जाती हैं. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जब इसप्रकार देवीने कहा तब एक पुरुष आई निकसा अरु कहत भया, हे राजन्! शत्रु आए हैं, अरु चक्र गदा आदिक शस्त्रोंकी वर्षा करते आते हैं; जैसे प्रलयकालविषे मंदराचल पर्वत अस्ताचल आदिक पर्वत वायुकरि उडते हैं तैसे शत्रु चले आते हैं

अरु सर्व दिशा सेनाकारि पूर्ण भई हैं; जैसे महाप्रलयविषे सर्व स्थान जलसों पूर्ण होते हैं तैसे सेनाकारि सर्व स्थान पूर्ण भए हैं अरु अग्नि भी तिसने लगाई दई है, तिसकारि स्थान जलने लगे हैं अरु शब्द करते हैं अरु बाण नदीके प्रवाहकी नाईं चले आते हैं, अग्नि ऐसी लगी है जैसे महाप्रलयकी वडवाग्नि समुद्रको शोषती है, तैसे नगरोंको जलाती है, तब दोनों देवियां अरु राजा अरु मंत्री ऊंचे होइके झरोखाविषे बैठके देखने लगे. क्या देखा, कि बडी सेना चलती आती है, जैसे प्रलयकालविषे मेघ चले आते हैं तैसे सेना चली आती है, अरु जैसे प्रलयकी अग्निकारि दिशा पूर्ण होती हैं तैसे अग्निकी ज्वालाकारि पूर्ण भई हैं, अरु तिसते चिनगारियां उडती हैं, मानो तारागण गिरते हैं, अंगारोंकी वर्षा होती है, तिसकारि जीव पडे जलते हैं, अरु जो सुंदर स्त्रियां नानाप्रकारके भूषणोंसहित पूर्ण थीं, सो तृणोंकी अग्निविषे पडी जलती हैं, पुरुषके देह अरु वस्त्र पडे जलते हैं अरु हाय हाय शब्द करते हैं अरु जलते जलते बांधव पुत्र स्त्रियोंको ढूंढते हैं. हे रामजी ! यह आश्चर्य देख, जो ऐसे स्नेहकारिके जीव बांधे हुए हैं, जो मृत्युकालविषे भी स्नेहको त्याग नहीं सकते, इस प्रकार बडा क्षोभ हुआ अरु सेनाके लोग लोकोंको मारिके स्त्रियोंको लेजाते हैं, कई अग्निविषे जलते हैं. हे रामजी ! तिस कालमें ऐसा शब्द हुआ, कि रणभूमिका शब्द छागया, ऐसा शब्द करै, भाई हाय, पिता हाय, माता हाय, पुत्र हाय, स्त्री हाय इत्यादिक शब्दोंकारि रणभूमिका शब्द आच्छादित हो गया; अरु घोडे, गौ, बैल, ऊँट आदिक पशु इकट्ठे मिल गये; अरु अग्निकी ज्वाला वृद्ध होती जावै, बडा क्षोभ आनि उदय हुआ, जैसे महाप्रलयकी अग्नि होती है, तैसे सब स्थान अग्निकारि पूर्ण भये, तिन्हों-विषे अनेक जीव अरु स्थानक पडे दग्ध होते हैं, अरु शब्द करै हैं ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने अग्निदाहवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४४.

अग्निदाहवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! इसप्रकार राजा नगरको देखता था, जो उस पुरमें लीला सहेलियोंसहित अपने दूसरे स्थानते तहां आई, जहां राजा विदूरथ था, जैसे कमलोंविषे लक्ष्मी आवै, तैसे आई; महासुंदर भूषण कछुक टूटे हुए, कछुक शिथिल हैं अरु सहेलियोंसहित आई, एक सहेली कहत भई. हे राजन्! तेरे शत्रु बहुतेरे आन पसरे हैं, अंतःपुरविषे जो स्त्री थीं, सो भी लेगये हैं; तहांसों इस लीला राणीको हम चुराइ लेआई हैं, जैसे इंद्रके गृहविषे दैत्य आन पडैं तैसे. अरु इस रानीको बचाइकरि तुम्हारे पास ले आई हैं; सो हम बडा यत्न करि ले आई हैं; अरु लोकोंको तिन शत्रुओंने बडा कष्ट दिया है; तुम्हारे द्वारेपर जो सेना बैठी है तिसको वह चूर्ण करते हैं अरु नगर जलाय दिया है, लूटि लिया है. हे रामजी! जब इसप्रकार राजाको सहेलियोंने कहा, तब राजाने सरस्वतीजीको कहा, हे देवीजी! यह लीला तुम्हारी शरण आई है अरु तुम्हारे चरण कमलोंकी भ्रमरी है, इसकी रक्षा तुम करना, मैं अब युद्ध करनेको जाता हौं. हे रामजी! इसप्रकार राजा कहिकरि क्रोध संयुक्त होइकै युद्ध करनेको रणकी ओर चला; जैसे मत्त हस्ती धावता है, अथवा सिंह कंदराते निकसिकरि धावता है, तैसे अर्धरात्रिके समय राजा चला, जब वहां लीला सहेलियोंसहित आई, तब देवीके साथ जो प्रथम लीला थी सो देखत भई, क्या देखा, कि अपनी मूर्ति जैसा ही सुंदर आकार है, जैसे आरसीविषे प्रतिबिंब होता है, तैसे देखके कहत भई. प्रबुद्धलीलोवाच–हे देवि! यहां मैं क्योंकरि आन प्राप्त भई हौं, जब मैं प्रथम आई थी, तब मुझको मंत्री टहलुए पुरवासी अनेक दृष्टि आये थे, वह संशय मैंने तुमसों निवृत्त किया था, बहुरि यह जो मैं उस प्रकार कैसे आन स्थित भई हौं; यह दृश्यरूप कैसा आदर्श है, जिसके अंतरबाहिर प्रतिबिंब होता है, जैसे मंत्री टहलुए हैं अरु मेरा स्वरूप यह है, यह क्यों है? दृश्यभाव दो क्योंकर भासता है? यह संशय मेरा दूर करो. देव्युवाच–

हे लीले ! जैसे चित्तसंवितविषे स्पंद फुरता है, तैसे तत्काल सिद्ध होता है, जिस अर्थको चिंतता चित्तसंवित् शरीरको त्यागता है, तिसी अर्थको जाय प्राप्त होता है, तिसी क्षणविषे देश, काल, पदार्थकी दीर्घता होती है; जैसे स्वप्नसृष्टि फुरि आती है, तैसे परलोकसृष्टि भास आती है. हे लीले ! जब तेरा भर्त्ता मृतक होने लगा, तब इसका स्नेह जो तेरे विषे अरु मंत्रियोंविषे बहुत था, तिसकरि वही रूप सत् होइकरि अपनी वासनाके अनुसार भासा; जैसे संकल्पपुर भासता है, जैसे स्वप्नसेना भासती है, तैसे यह देश, काल, पदार्थ भासैं हैं. हे लीले ! जो कोऊ पदार्थ सत्‌रूप होइ करि भासते हैं, सो अज्ञान कालविषे भासते हैं, ज्ञान कालविषे सब तुल्य होइके जाते हैं. अधिक न्यून कोऊ नहीं रहता, जाग्रत्‌विषे स्वप्न झूठ भासता है, स्वप्नविषे जाग्रत्का अभाव हो जाता है, जाग्रत् शरीर मृतकविषे नाश हो जाता है, मृतक जन्मविषे असत् होय जाता है, मृतकविषे जन्म असत् होय जाता है. हे लीले ! जब इस प्रकार इनको विचारि देखिये तौ सब अवस्था भ्रांतिमात्र हैं, वास्तव कोऊ नहीं. हे लीले ! स्वर्गते आदि अरु महाप्रलयपर्यंत कछु हुआ नहीं, सदा ज्योंकी त्यों ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जगत्‌कल्पना आभासमात्र है अज्ञानकरिकै भासती है; जैसे आकाशविषे तरुवरे भासते हैं, तैसे आत्मविषे जगत् भ्रमकरिकै भासता है, अरु वास्तवते किंचित् भी कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिकरि लीन होते हैं, तैसे आत्मविषे जगत् उपजिकरि लीन होते हैं, ताते अहं त्वम् आदिक शब्द भ्रांतिमात्र हैं. हे लीले ! यह जगत् मृगतृष्णाके जलवत् है, इसविषे आस्था करनी अज्ञान है अरु भ्रांति भी कछु नहीं, जैसे घन तम विषे यक्ष भासता है, सो यक्ष वस्तु नहीं ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, भ्रांति भी कछु वस्तु नहीं. जन्म, मृत्यु, मोह सब असत्‌रूप है, जेते कछु अहं त्वम् आदिक शब्द हैं सो महाप्रलयविषे अभाव हो जाते हैं, तिसके पाछे शुद्ध शांतरूप है, अब भी सोई जान. ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों है. हे लीले ! यह जो पृथ्वी आदि भूत भासते हैं, सो भी संवित्‌रूप हैं, काहेते कि चित्तसंवित् जब स्पंदरूप होती है, तब

यह जगत् होयके भासता है, इस कारणते संवित्रूप है. हे लीले! जीवरूप जो समुद्र है, तिसविषे जगत्रूप तरंग उत्पन्न होते हैं अरु लीन भी होते हैं अरु स्वरूपते जलरूप हैं, इतर कछु नहीं; जैसे अग्निविषे उष्णता होती है, तैसे जीवविषे सर्ग है; जो ज्ञानवान् है, तिसको सर्वात्मा भासता है अरु अज्ञानीको भिन्न भिन्न कल्पना होती है. हे लीले! जैसे सूर्यकी किरणोंविषे त्रसरेणु भासते हैं, अथवा जैसे पवनविषे स्पंद होता है, तिसविषे सुगंध होती है, सो निराकार है, तैसे जगत् आत्माविषे निर्वपु है, भाव अभाव ग्रहण त्याग सूक्ष्म स्थूल चर अचर सर्व ब्रह्मके अवयव हैं. हे लीले! यह जगत् जो साकाररूप भासता है, सो आत्माते भिन्न नहीं; जैसे वृक्षके अंग पत्र फल टासरूप सोइ भासते हैं; तैसे ब्रह्मसत्ताही जगत्रूप होइकरि भासती है, इतर कछु नहीं; जैसे चेतनसंवित्विषे स्पंद फुरता है, तैसे होइकरि भासता है, सो आकाशरूप संवित् ज्योंका त्यों है, तिसविषे और कल्पना भ्रममात्र है. हे लीले! यह जगत् भासता है, सो न सत् है, न असत् है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, जिसको असम्यक् ज्ञान होता है, तिसको जेवरीविषे सर्प भासता है, तो असत् न हुआ अरु जिसको सम्यक् बोध हुआ, तिसको सर्प सत् नहीं, तैसे ज्ञानकरि जगत् सत्य भासता है अरु जिसको सम्यक् बोध हुआ है, तिसको सर्प सत् नहीं, तैसे अज्ञान करि जगत् असत् नहीं भासता, आत्मज्ञान हुए सत् नहीं भासता; काहेते जो कछु वस्तु नहीं. हे लीले! जैसे जिसके अंतर स्पंद फुरता है, तिसका अनुभव करता है जब यह जीव मृतक होता है, तब इसको क्षणविषे जगत् फुरि आता है, किसीको अपूर्वरूप फुरि आता है, किसीको पूर्वरूप फुरि आता है, किसीको पूर्व अपूर्व मिश्रित फुरि आता है, तिस कारणते तेरे भर्त्ताको वही मंत्री, स्त्री, सभा वासनाके अनुसार फुरि आये हैं, काहेते जो आत्मा सर्वरूप है जैसा जैसा इसविषे तीव्र स्पंद फुरता है, तैसा होइकरि भासता है. हे लीले! जैसे अपने मनोराज्यविषे प्रतिभा उदय हो आती है, सो सत्रूप हो भासती है, तैसे यह जो लीला तेरे सन्मुख बैठी है, सो एही हुई है अरु तेरे भर्त्ताकी जो तेरेविषे तीव्रवासना

थी, तिसकरि राजाको तेरा प्रतिबिंबरूप होइकरि यह लीला आन प्राप्त भई है, तुझ जैसा शील अरु आचार कुल वपु इसको प्रतिबिंब भया है. हे लीले ! सर्वगत संवित् आकाश है, जैसा जैसा उसविषे फुरना होता है, तैसा चिद्रूप आदर्शविषे प्रतिबिंब भासता है, जेता कछु जगत् है, सो चेतन दर्पणविषे प्रतिबिंब होता है, वस्तुतः मैं तू अरु जगत् आकाश भुवन पृथ्वी राजा आदिक सब आत्मारूप हैं, आत्मा ही जगत्रूप होइ भासता है, जैसे बिल्लीविषे मज्जा होती है, सो बिल्लीते इतर कछु नहीं, बिल्लीही सबरूप है; तैसे यह जगत् ब्रह्मरूप है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने अग्निदाहवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ४५.

सत्यकामसंकल्पवर्णनम् ।

देव्युवाच-हे लीले ! तेरा जो भर्त्ता राजा विदूरथ है सो रणविषे संग्रामकरिकै शरीर त्यागैगा, त्याग करि उस ही अंतःपुरविषे प्राप्त होवैगा अरु बहुरि राज्य करैगा. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जब इस प्रकार देवीने कहा तब विदूरथके पुरकी जो लीला है सो हाथ जोडिकै देवीको प्रणाम करत भई अरु कहत भई. द्वितीयलीलोवाच-हे देवि ! भगवति ! मैं ज्ञप्तिरूपको नित्य पूजत भई हौं, बहुरि स्वप्नविषे उसने मुझको दर्शन दिया है; जैसे वह ईश्वरी थी, तैसे तुम मुझको दृष्टि आती हौ, ताते मुझपर कृपा करिके मनवांछित फलको देहु. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जब इस प्रकार विदूरथकी लीलाने कहा, तब अपने भक्तके ऊपर प्रसन्न होइकरि देवी कहत भई. देव्युवाच-हे लीले ! तैंने अनन्य होइकरि मेरी भक्ति करी है, तिसकरि तेरा शरीर भी जीर्ण भया है, अब मैं तुझ ऊपर प्रसन्न हौं, जो कछु तुझको वांछित है, सो वर मांग. द्वितीयलीलोवाच-जब मेरा भर्त्ता रणविषे देहको त्याग

कर जावै तब मैं इसी शरीर साथ तिसकी भार्या होऊं. देव्युवाच-तुझने भली प्रकार भावनासहित पुष्पादिकनसों निर्विघ्न मेरी सेवा करी है ताते ऐसे ही होवैगा. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! इस प्रकार जब देवीने कहा तब पूर्व लीला कहत भई. प्रबुद्धलीलोवाच-हे देवि! तुम तौ सत्यसंकल्प सत्यकाम ब्रह्मस्वरूप हौ, मुझको इसी शरीर साथ विदूरथके गृहमें वसिष्ठ ब्राह्मणकी सृष्टिविषे क्यों न ले गई. देव्युवाच-हे लीले! मैं किसीका कछु नहीं करती, सर्व जीवके संकल्प मात्र देह है अरु मैं ज्ञप्तिरूप हौं, एक एक जीवके अंतर चेतन मात्र देवता होइ करि स्थित हौं, जो जो जीव जैसी जैसी भावनाको धरता है, तैसी तैसी तिसको सिद्धता होती है. हे लीले! जब तैंने मेरा आराधन किया था तब यह प्रार्थना करी थी कि मेरे भर्त्ताका जीव इसी आकाश मण्डपविषे रहै अरु ज्ञानकी प्राप्ति भी मुझको होवै, तब मैंने तुझको ज्ञानका उपदेश दिया; तुझको ज्ञान प्राप्त भया है अरु इस ही निमित्त तैंने पूजन किया है ताते तुझको यही प्राप्त भया है, जो देहसहित भर्त्ताके साथ जावैगी, जैसा जैसा चित्संवित्विषे स्पंद दृढ होता है तैसी सिद्धता होती है. हे लीले! यह जो कोऊ तप करता है, तिसकी दृढता करके चिदात्मा ही देवता रूप होके फलको देता है; जैसे जैसे संकल्पकी तीव्रता किसीको होती है चेतनसंवित्‌ते तिसको तैसा ही फल होता है, चित्तसंवित्‌ते इतर किसीते किसीको कदाचित् कछु फल नहीं प्राप्त होता, आत्मा सर्वगत सर्वके अंतर स्थित है; जैसे जिसविषे चैत्यताका यत्न होता है, तिसको तैसा ही शुभ अशुभ भाव प्राप्त होता है॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सत्यकामसंकल्पवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशः सर्गः॥ ४५॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ४६.

विदूरथनिर्याणवर्णनम्।

राम उवाच-हे भगवन्! राजाविदूरथ जो देवीको कहिकरि संग्रामविषे गया था, सो क्या करत भया ?. वसिष्ठ उवाच--हे रामजी ! जब राजा गृहते निकसा अरु संपूर्ण सेनाकरिकै शोभता भया; जैसे ताराविषे चन्द्रमा शोभता है तैसे सेनाविषे शोभता भया; तब रथपर आरूढ सभा सहित संग्रामविषे आया;कैसा रथ है,जो मोती अरु माणिकों साथ पूर्ण है अरु आठ घोडे हैं, वायुते भी तीक्ष्ण चलते हैं, पंच ध्वजा हैं, ऐसे रथपर आरूढ हुआ, संग्रामविषे आनि पडा; जैसे सुमेरु पर्वत पंखोंसहित समुद्रविषे जाय पडै तैसे जाय पडा, तब दोनों सेना इकट्ठी होगई. जैसे प्रलयकालविषे समुद्र इकट्ठे हो जाते हैं, तैसे सेना इकट्ठी भई, बडा युद्ध होने लगा अरु मेघोंकी नाईं योद्धोंके शब्द होने लगे अरु शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी, जैसे मेघते बूंदोंकी वर्षा होती है, जैसे अग्निते चिनगारें निकसती हैं तैसे युद्ध करने लगे, जैसे प्रलयकालकी वडवानल अग्नि होती है, तैसे शस्त्रोंते अग्नि निकसे, तिन शस्त्रोंकरि अनेक जीव मृत्युको प्राप्त भये, जिनते वडवाग्निकी नाईं अग्नि निकसै ऐसा बडा युद्ध होने लगा, तब विदूरथकी सेना कछुक निर्बल भई.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने विदूरथनिर्याणवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ४७.

विदूरथसिंधुसमागमवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इस प्रकार जब भयंकर संग्राम चल रहा था, तब ऊर्ध्वमें जो दोनों लीला देवीकी दिव्यदृष्टि साथ देखती थीं, तिन्होंने कहा. हे देवि ! तू तौ सर्वशक्ति हैं अरु हमारेपर तेरी दया भी है,

हमारे भर्त्ताकी जय क्यों नहीं होती? इसका कारण कहौ. देव्युवाच-हे लीले! विदूरथका जो शत्रु सिंधुराजा है, तिसने चिरकाल पर्यंत जयके निमित्त मेरी पूजा करी है अरु तुम्हारे भर्त्ताने जयके निमित्त पूजा नहीं करी, मोक्षके निमित्त पूजा करी है ताते जीत सिंधुराजकी होवैगी अरु तेरे भर्त्ताको मोक्षकी प्राप्ति होवैगी. हे लीले! जिस जिस निमित्तकरि हमारी सेवना कोऊ करता है हम तिसको तैसा ही फल देती हैं, ताते राजा सिंधु विदूरथको जीतिकरि राज्य करैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने विदूरथसिंधुसमागमवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ४८.

आयुधवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! इस प्रकार देवी कहती थी, फिर सेना सब देखने लगी और दोनों राजोंका परस्पर तीव्र युद्ध होनेलगा, ऐसे बाण चलावैं मानो दोनों विष्णु ही खड़े हैं, एक बाण विदूरथने चलाया तिसके सहस्र होगये, आगे गये तब वह भी लक्ष हो गये, बाणही परस्पर युद्ध करते करते टुकड़े टुकड़े होके गिर पड़े अरु ऐसे बाण दूरतेदूर चलेजावैं जैसे दीपक निर्वाण किया नहीं भासता तैसे बाण भासैं नहीं, तब राजा सिंधुने मोहरूपी अस्त्र चलाया, तिसके आनेकरि एक विदूरथ विना सब सेना मोहित भई; जैसे उन्मत्तको कछु सुधि नहीं रहती, तैसे उनको सुधि कछु न रही, नेत्रोंते परस्पर करिकै देखते ही रहे, मानो मूर्तियां लिख छोडी हैं, तब राजा विदूरथको भी मोहका आवेश होने लगा, तब राजा विदूरथने प्रबोधरूपी शस्त्र चलाया, तिसकरि सबका मोह गया सबके देह प्रफुल्लित हो आये; जैसे सूर्यके उदय हुए सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित हो आते हैं, तब सिंधु राजाने नागास्त्र बाण चलाया, तिसकरि अनेक नाग निकस आये, ऐसे नाग आये मानौं पर्वत उडे आते हैं, सब दिशा नागोंकरि पूर्ण होगईं, अरु तिनके मुखते विष अरु अग्निकी ज्वाला

निकसे, तिसकरि विदूरथकी सेनाने बहुत कष्ट पाया; तब राजा विदूरथने गरुडास्त्र चलाया, तिसकरि अनेक गरुड प्रकट हो आये, तिन्होंकरि सब सर्प नष्ट होगये; जैसे सूर्यके उदय हुए अंधकार नष्ट होजाता है तैसे सर्प नष्ट भये, नागोंको नष्ट करिके गरुड भी अंतर्धान होगये; जैसे संकल्पके त्यागेते संकल्पसृष्टिका अभाव होजाता है तैसे गरुड अभाव होगये; जैसे स्वप्नते जागे हुए स्वप्ननगरका अभाव हो जाता है तैसे गरुडका अभाव हो गया, जो कोऊ बाणसिंधु चलावै तिसको विदूरथ नष्ट करै; जैसे सूर्य तमको नाश करै अरु बडी बाणोंकी वर्षा करी, तिसकरि सिंधु भी क्षोभको प्राप्त भया. तब पिछली लीलाने झरोखेविषे देखके देवीजीको कहा. हे देवि! मेरे भर्ताका अब जय होता है, तब देवीने सुनके मुसकाय मुखते कछु न कहा और हृदयमें कहा कि; जीवका चित्त बहुत चंचल है, ऐसे देखते थे कि सूर्य आय उदय हुआ, मानो सूर्य भी युद्धका कौतुक देखनेको आया है. सिंधुने जो तमरूप अस्त्र चलाया तिसकरि सर्वदिशा श्याम हो गई, कछु भासा नहीं, मानो काजलकी समष्टिता इकट्ठी भई है; तब विदूरथने सूर्यका प्रकाशरूपी अस्त्र चलाया, तिसकरि सर्व तम नष्ट होगया जैसे शरत्कालकरि श्याम घटा सब नाश होजाती है, शुद्ध आकाश ही रहता है, जैसे आत्मज्ञानकरि लोभादिकका ज्ञानीको अभाव होजाता है, जैसे लोभरूपी कज्जलके निवृत्त हुए ज्ञानवान्‌की बुद्धि निर्मल होती है, तैसे प्रकाशकरि तम नष्ट होगया, सर्व दिशा निर्मल भई अरु जैसे अगस्त्यमुनि समुद्रको पान करगये थे तैसे प्रकाश तमका पान करि गया, तब सिंधुने वैतालरूप अस्त्र चलाया, तिसकरि विदूरथकी सेना मोहित होगई, जिनकी महाविकराल मूर्ति नग्नरूप परछायोंका रूप जिनका अरु श्यामरूप भासैं अरु ग्रहण किये न जावैं अरु जीवके अंतर प्रवेश करि जावैं, तिनके जो रहनेके स्थान हैं शून्य मंदिरविषे रहैं, चिकडोंविषे, पर्वतोंविषे; मशानोंविषे इसते लेकरि जो मलिन स्थान हैं तिन्हों विषे रहते हैं, सो पिचाश कौन होते हैं; जिसकी शास्त्र उक्त क्रिया नहीं होती, मृत्युके समय सो मरिके भूत पिशाच होकरि वेताल होते हैं, सो अंतरते राग द्वेष तृष्णा भूखकरि जलते रहते हैं अरु दृष्टिरूप इंद्रियको

नहीं प्राप्त होते, ऐसे जो दुष्ट जीव होते हैं ताते विदूरथकी सेना दुःख पावने लगी अरु उनका जो कोऊ बडा था सो विदूरथके निकट आने लगा; तब विदूरथने रूपक नामक अस्त्र चलाया, तब महा भयानक रूप बडे नख, केश, जिह्वा, उदर, होठ अरु नग्नरूप तिन साथ वह कडकडकरता भया अरु भैरव भोजन करै, मारै महाविकराल मूर्त्ति रक्त भरी खप्परमें पीवै, नृत्य करै अरु सबनको दुःख देवै, तब सिंधुने क्रोधित हो राक्षस रूपी अस्त्र चलाया, तिसकरिकै कोटि राक्षस निकस आये, भयानक रूप अरु कृष्णवपु अरु जिह्वा निकसी हुई, ऐसा चमत्कार कर, जैसे श्याम मेघविषे बिजली चमत्कार करती है ऐसे अनेक राक्षस पातालते अरु दिशाते निकसिकै जो कोऊ होवै तिसको मुखविषे पाइ ले जावैं, तिनको देखके विदूरथकी सेना बहुत भयको प्राप्त भई, जिसके सन्मुख हँसिके देखैं सो भयसों मरि जावै, तब राजा विदूरथने अपनी सेनाको कष्टवान् देखके विष्णुनामक अस्त्र चलाया, तिसकरि सब राक्षस नष्ट हो गये. बहुरि राजा सिंधुने अग्नि नामक अस्त्र चलाया, तब संपूर्ण दिशाविषे अग्नि पसर गई, तिसकरि लोक जलने लगे, तब राजा विदूरथने वरुणरूपी बाण चलाया, तिसकरि अग्निका दाह सब मिट गया; जैसे संतोंके संगकरि अज्ञानीके तीनों ताप मिट जाते हैं, तैसे अग्निका ताप मिट गया; तब जलकरि सब स्थान पूर्ण होगये अरु सिंधुकी सेना बहुत जलविषे बहने लगी, तब सिंधुने शोषणमय अस्त्र चलाया, तिसकरि जब सब जल सूख गया; कहूँ कहूँ कीचड रह गया, बहुरि तेजोमय बाण चलाया तिसकरि कीचड़ भी सूख गया अरु विदूरथकी सेना गरमीकरि व्याकुल होगई तपने लगी; जैसे मूर्खका हृदय क्रोधकरि जलता है. तब विदूरथने मेघनामक अस्त्र चलाया, तब मेघ वर्षने लगा अरु शीतल मंद मन्द वायु चला, तिसकरि सेनाकी तपत मिट गई; जैसे आत्माकी ओर आते जीवका संसरना घटता जाता है तैसे विदूरथकी सेना शीतल भई, तब सिंधुने वायुरूपी अस्त्र चलाया, तिसकरि सूखे पत्रकी नांई विदूरथ फिरने लगा।

इति श्रीयोग० उत्पत्तिप्र० आयुधवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥४८॥

एकोनपञ्चाशः सर्गः ४९.

तृतीयास्त्रयुद्धवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! तब विदूरथने पहाड़रूपी अस्त्र चलाया, जिसकरि पहाडोंकी वर्षा पडी होवै अरु वायुका मार्ग रोका गया, वायुका क्षोभ मिट गया, सब पदार्थ स्थिरभूत होगये, जैसे संवेदनते रहित चित्त शांत होता है तैसे शांत हो गये अरु पहाड़ उडिकै सिंधुकी सेनापर पडे, तब सिंधुने, वज्ररूप अस्त्र चलाया, तब पर्वत नष्ट भये अरु वज्र पडे वर्षे; तब विदूरथने ब्रह्मअस्त्र चलाया, तब वज्र नष्ट भये अरु ब्रह्म अस्त्र अंतर्धान होगये. हे रामजी ! इस प्रकार परस्पर इनका युद्ध होता भया, जो सिंधु अस्त्र चलावै तब विदूरथ उसको विदारण करै अरु जो विदूरथ चलावै तब सिंधु विदारण कर डारै.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने तृतीयास्त्रयुद्धवर्णनं नामैकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

पञ्चाशत्तमःसर्गः ५०.

विदूरथमरणवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! फिर विदूरथ राजाने एक ऐसा अस्त्र चलाया जो राजा सिंधुका रथ चूर्ण करि डारा, घोडे भी सब पटक डारे, तब सिंधु राजा रथते निकस खड़ा हुआ, बहुरि सिंधुने ऐसा अस्त्र चलाया जो विदूरथका रथ अरु घोडे नष्ट किये, तब दोनों ढाल अरु तरवार लेकर उतर पडे अरु युद्ध करने लगे, बहुरि दोनोंके रथवाहक और रथ ले आये, तिसके ऊपर आरूढ होकरि युद्ध करने लगे. विदूरथने सिंधुको बरछी चलाई, तब उसके हृदयविषे लगी और रुधिर चला, तिसको देखि लीलाने देवीसे कहा; हे देवि ! मेरे भर्त्ताका जय हुआ है. हे रामजी ! इस प्रकार लीला कहती थी, तब सिंधुने बरछी

चलाई सो विदूरथके हृदयविषे लगी; तिसको देखके विदूरथकी लीला शोकवान् भई अरु कहत भई हे देवि! मेरा भर्त्ता मरता है, सिंधु दुष्टने बडा कष्ट दिया है. हे रामजी! ऐसे कहती थी तहां सिंधुने खड्ग चलाया, तिसते विदूरथके पांव काटे गये, बहुरि घोडे काटे गये, तौ भी विदूरथ युद्ध करता रहा, बहुरि विदूरथके शिरपर खड्गका प्रहार किया, तब विदूरथ मूर्च्छा पायके गिर पडा, ऐसे देखके उसके सारथी जो रथके चलानेहारे, सो रथको गृहमें ले आने लगे, तब सिंधु तिसके पीछे दौडा कि इसका शरीर मैं ले जाऊं; जैसे बांदर कूदके पडे तैसे दौडने लगा; परंतु पकड न सका; जैसे अग्निविषे मच्छर प्रवेश नहीं कर सकता तैसे देवीके प्रभावकरि विदूरथको न पकड सका और रथवाही राजाको गृहमें ले आया॥

इति श्रीयो० उ० प० विदूरथम० नाम पञ्चाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशत्तमः सर्गः ५१.

सिंधुराष्ट्रवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! तब स्त्रियां, मन्त्री, बांधव, कुटुंबी, रुदन करने लगे, बडे शब्द होनेलगे अरु सिंधुकी सेना लुटने लगी; हस्ती घोडे स्वामी विना फिरैं, राजा सिंधुकी जय है, बहुरि ढँढोरा फिराया, तब सर्व ओरते शांति भई, सिंधुराजाके ऊपर छत्र होने लगा, सब पृथ्वीका राजा सिंधु हुआ, तिसका हुकुम चला, जैसे क्षीरसमुद्र मंदराचल निकसेते शांत भया, तैसे सर्व ओर शांति भई.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सिंधुराष्ट्रवर्णनं नाम एकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपंचाशत्तमः सर्गः ५२.

मृत्युमूर्च्छानंतरप्रतिभावर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी जब विदूरथ राजा गृहविषे जाय प्राप्त हुआ तब तिसको अरु दूसरी लीलाको देखके प्रबुद्धलीला कहत भई. हे देवि!

यह लीला इस शरीर साथ वहां क्योंकरि जाइ प्राप्त होवैगी, यह तो भर्त्ताको ऐसे देखके मृतकरूप हो गई है अरु राजा भी मृत्युके निकट पडा है, कछुक श्वास आते जाते हैं. देव्युवाच–हे लीले ! यह जेते आरंभ तू देखती है और जो युद्ध हुआ है तथा नानाप्रकारका जगत् है, सो सब भ्रांतिमात्र है. अरु तेरा जो भर्त्ता पद्म था तिसका हृदय जो मंडपाकाशविषे था तहां यह संपूर्ण जगत् स्थित है अरु वह पद्मका मंडपाकाश वसिष्ठ ब्राह्मणके मंडपाकाशविषे स्थित है अरु वह वसिष्ठ ब्राह्मणका मंडपाकाश सो चिदाकाशके आश्रय स्थित है. हे लीले ! यह संपूर्ण जगत् वसिष्ठ ब्राह्मणके मंडपाकाशकी पुर्यष्टकविषे ही स्थित है, सो कैसे स्थित है, आकाशविषे ही आकाशस्थित हैं, किंचन है, तिस करिके संपूर्ण जगत् पडा फुरता है अरु वास्तव किंचन भी कछु वस्तु नहीं, आत्मसत्ता ही अपने आपविषे स्थित है, तिस आत्मसत्ताविषे अहं त्वं जगत् भ्रमकरिके भासता है; उपजा कछु नहीं. हे लीले ! तिस वसिष्ठ ब्राह्मणके मंडपाकाशविषे नानाप्रकारके स्थान हैं अरु तीनोंविषे प्राणी आते जाते व्यवहार होते भासते हैं, जैसे स्वप्नसृष्टिविषे नानाप्रकार के आरंभ भासते हैं सो असत्‌रूप हैं, तैसे यह जगत् भी असत्‌रूप है. हे लीले ! न यह द्रष्टा है, न आगे दृश्य है, सब भ्रमरूप है अरु द्रष्टा, दर्शन, दृश्य सो त्रिपुटी पदार्थोंविषे है, जो दृश्य नहीं तौ द्रष्टा कैसे होवै सब असत्‌रूप है अरु जो इनते रहित परमपद है, सो उदय अस्तते रहित, नित्य, अज, शुद्ध, अविनाशी, अद्वैतरूप, अपने आपविषे स्थित है, जब तिसको जानता है तब दृश्य भ्रम नष्ट हो जाता है. हे लीले ! दृश्य भ्रम करिके भासता है, वास्तवते कछु नहीं और न उपजैगा, जेते कछु सुमेरुआदिक पर्वतजाल भासते हैं अरु पृथ्वीआदिक तत्त्व भासते हैं सो सब आकाशरूप हैं; वास्तवते कछु उपजा नहीं; जैसे स्वप्नसृष्टि प्रत्यक्ष पडी भासती है, परंतु वास्तव कछु नहीं, तैसे यह जगत् भी जान. हे लीले ! जीव जीवप्रति अपनी सृष्टि रहती है, परंतु तिसविषे सार कछु नहीं; जैसे केलेके स्तंभसों सार कछु नहीं निकसता, तैसे सृष्टिविषे विचार कियेते सार कछु नहीं निकसता, परंतु चित्तसंवेदनके फुरनेकरि पडे

भासते हैं. हे लीले ! तेरे भर्ता पद्मकी जो सृष्टि है सो वसिष्ठ ब्राह्मणके मंडपाकाशविषे स्थित है अर्थ यह जो विदूरथका जगत् पद्मके हृदयविषे स्थित है, तहां तेरा शरीर पडा है अरु राजापद्मका शरीर शव पडा है. हे लीले ! तेरे भर्ता पद्मकी जो सृष्टि है; सो हमको प्रादेशमात्र है, तिस प्रादेशमात्रविषे अंगुष्ठप्रमाण हृदयकमल है, तिसविषे तेरे भर्त्ताका जीवाकाश है, तिसविषे यह जगत् पडा फुरता है, सो प्रादेशमात्र भी है अरु दूरते दूर कोटि योजनोंपर्यंत है, मार्गविषे वज्रसारकी नाईं तत्त्वोंका आवरण है, तिसको लंघके तेरे भर्त्ताकी सृष्टि है. जहां वह शव पडा है, तिसके पास यह लीला जाय प्राप्त भई. लीलोवाच–हे देवि ! ऐसे मार्गको लंघके वह क्षणविषे कैसे जाय प्राप्त भई अरु जिस शरीरके साथ जाना था सो तौ शरीर यहां ही पडा है.वह किस रूप करिकै प्राप्त भई है अरु वहांके लोक उसको कैसे देख जानते भये हैं, सो संक्षेप मात्रते कहौ. हे लीले ! इस लीलाके वृत्तांत कथाकी महिमा ऐसी है जिसके धारेते यह जगत् भ्रमनिवृत्त हो जाता है, संक्षेपमात्र कहती हौं. हे लीले ! जेता कछु जगत् भासता है, सो सब भ्रममात्र है. यह भ्रमरूप जगत् पद्मके हृदयविषे फुरता है, तिसविषे विदूरथका जन्म भी भ्रममात्र है, अरु लीलाका प्राप्त होना भी भ्रम है, संग्राम भी भ्रमरूप है, विदूरथका मरण भी भ्रमरूप है, तिसके भ्रमरूप जगत्विषे तुम हम बैठे हैं, बहुरि लीला तू भी अरु राजा भी भ्रमरूप है अरु मैं सर्वात्मा हौं; मुझको सदा यही निश्चय रहता है, हम जो उदय हुई हैं, सो उदयकी नाईं उदय नहीं हुई. हे लीले ! जब तेरा भर्ता मृतक होने लगा था, तब तेरेविषे उसका स्नेह बहुत था, तिसकरि मृतक हुए भी कमलनयन युवावस्था महासुंदर भूषणोंको पहिरे हुए तू वासनाके अनुसार उसको आन प्राप्त भई. हे लीले ! जब यह मृतक होता है, तब प्रथम इसका अंतवाहक शरीर होता है पाछेते वासना करि आधिभौतिक होता है, तैसे तेरा भर्ता जब मृतक हुआ तब प्रथम उसका अंतवाहक शरीर था, तिसते आधिभौतिक हो गया, जब आधिभौतिक हुआ तब प्रथम उसको जन्म भी हुआ अरु मरण भी हुआ, जब तेरा भर्ता मृतक हुआ तब इसको अपना जन्म

अरु कुल भास आया, जन्मका अर्थ यह कि जनोंका समूह भासि आया, लीलाका जन्म भासि आया, माता पिता भासि आये, लीलाके साथ विहार भासि आया; जैसे तू पद्मको भासि आई थी तैसे वह विदूरथको भासि आये; इत्यादिक भ्रमकरि अपनी वासनाके अनुसार उसको भासि आया है. हे लीले ! ब्रह्म सर्वात्मा है, जैसा जैसा तिसविषे तीव्र स्पंद होता है, तैसे ही सिद्ध होता है अरु मैं जो हौं ज्ञप्तिरूप चेतनशक्ति हौं, तिस मेरेको जैसी इच्छा धारिकै पूजते हैं तैसे फलकी प्राप्ति होती है. हे लीले ! जैसी जैसी इच्छा धरि कोऊ हमको पूजते हैं, तिसीको तैसी सिद्धता प्राप्त होती है, इसते लीलाने जो मुझसों वर मांगा था कि, मैं विधवा न होऊँ इसी शरीरसाथ भर्ताके निकट जाऊं; तब मैंने कहा कि ऐसे ही होवै, तब तिसकरि मृत्युमूर्च्छाके अनंतर तिसको अपना शरीर भासि आया, अपने शरीरसहित जहां तेरा भर्ता पद्मका शरीर शव पडा है; तहां मंडपविषे ऐसे ही शरीरसाथ उसके निकट जाय प्राप्त भई. हे लीले ! उसको यह निश्चय रहा है कि; मैं उस शरीरसाथ आई हौं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने मृत्युमूर्च्छानंतरप्रतिभावर्णनं नाम द्विपञ्चाशतमः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ५३.

मण्डपाकाशगमनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जिस प्रकार वह लीला पद्मराजाके मंडपविषे जाय प्राप्त भई है सो श्रवण करु. जब वह लीला मृतक मूर्च्छाको प्राप्त भई, तिसके अनंतर उसको पूर्वके शरीरकी नाईं वासनाके अनुसार अपना शरीर भासि आया, जानती भई कि मैं उस ही शरीर साथ आई हौं परंतु देवीके वरको पायके आई हौं, सो कैसा शरीर है, अंतवाहक शरीर करके आकाशविषे पक्षीकी नाईं उडती जावै, तब

तिसको अपने आगे कुमारी दृष्टि आई. तब लीलाने कहा-हे देवि! तू कौन है, तब देवीने कहा मैं ज्ञप्ति देवीकी पुत्री हौं, तेरेको पहुँचावनेके निमित्त मैं आई हौं, तब लीलाने कहा-हे देवीजी! मेरे ताईं, मेरे भर्ताके पास ले चलौ. हे रामजी! तब वह कुमारी आगे चली अरु लीला पाछे चली, दोनों आकाशमें उडीं, चिरकालपर्यंत आकाशविषे उडती भईं आगे मेघोंके स्थान आये, बहुरि वायुके स्थान आये. तिनको भी लंघ गईं बहुरि सूर्यका मंडल आया, तारामंडल आये, बहुरि और लोकपालोंके स्थान आये, तिनको लंघ गईं आगे ब्रह्माका लोक आया, बहुरि विष्णुका लोक आया, बहुरि रुद्रका लोक आया, तिनको भी लंघ गईं, आगे ब्रह्मांडकपाट महावज्रसारकी नाईं आया; तिसको भी लंघ गईं जैसे कुंभविषे बरफ पाइये, तिसकी शीतलता बाहिरि प्रगट होती है; तैसे वह ब्रह्मांडते बाह्य निकसि गईं. तिस ब्रह्मांडते दश गुण जलतत्व आया, तिसको भी लंघ गईं, इस प्रकार अग्नि वायु आकाशतत्त्व आवरणको भी लंघ गईं;तिसके आगे महाचेतन आकाश आया; तिसका अंत कहूं नहीं आदि अंत मध्यते रहित है. हे रामजी! जो कोटि कल्पपर्यंत गरुड उडता जावै तौ भी तिसका अंत न पावै ऐसे परमाकाशविषे गईं; तहां इनको कोटि ब्रह्मांड दृष्टि आये; जैसे वनविषे अनेक वृक्षोंके फल होते हैं अरु परस्पर आपपरको नहीं जानते; तैसे वह सृष्टि आपको न जानै, तब एक ब्रह्मांडरूपी फलविषे दोनों प्रवेश करत भईं. जैसे फलके मुखमार्गमें चींटी प्रवेश कर जाती है; तैसे यह ब्रह्मांड फलविषे प्रवेश कर गईं; तिसविषे बहुरि ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रसहित त्रिलोकी देखत भईं; तिनके लोक लंघ गईं अरु तिनके नीचे और लोकपालके स्थान लंघे; बहुरि चन्द्रमाका मण्डल तारामण्डल लंघ गईं; वायु अरु मेघमंडलको लंघके उतरीं. जहां राजाका नगर था, तिसविषे जो मंडपाकाश था, अरु जहां पद्म राजाका शव फूलोंके साथ ढापा पडा था, तहां आय प्रवेश किया, तिसको देखत भईं, तब वह कुमारी अंतर्धान होगई; जैसे मायावी पदार्थ होवैं अरु अंतर्धान हो जावैं, तैसे अंतर्धान हो गई अरु लीला पद्मके पास बैठी रही अरु मनविषे विचार करत भई, कि

यह मेरा भर्त्ता है, वहां इसने संग्राम किया था, सो अब शूरमाकी गतिको प्राप्त भया है, इस परलोकविषे आयके शयन करि रहा है, तिसके पास मैं भी अपने शरीरसाथ देवीजीके वर करिकै आन प्राप्त भई हौं; मेरे जैसा अब कोऊ नहीं, मैं बडे आनंदको प्राप्त भई हौं. हे रामजी! ऐसे विचारके पास चमर पडा था तिसको हाथविषे लेके भर्त्ताको चमर करने लगी; जैसे चन्द्रमा-किरणोंसाथ शोभा पावता है, तैसे चमर शोभा पावता है अरु वहां देवीसों लीला पूछत भई. प्रबुद्ध लीलोवाच-हे देवि! यह राजा तौ अब मृतक होता है; इसके श्वास अब थोडेसे रहे हैं, जब यहांते मृतक होके पद्मके शरीर विषे जावैगा, तब राजाके जागे हुए मंत्री टहलुए कैसे जानैंगे ? देव्युवाच-हे लीले ! तब मंत्री टहलुए जो होवैंगे तिनको द्वैतकलना कछु न भासैगी, जो आश्चर्य हुआ है, इस वृत्तांतको एक तू जानैगी, एक मैं जानौंगी एक वह लीला जानैगी, और कोऊ न जानैगा, काहेते कि इसके संकल्पको और कोऊ कैसे करि जानै? लीलोवाच-हे देवि ! लीलाजो वहां जाय प्राप्त भई थी, सो शरीर तौ यहां पडा है अरु तुम्हारा उसको वर भी था. इस प्रकार इस देह साथ क्यों न जाय प्राप्त भई? देव्युवाच-हे लीले ! छाया भी कदाचित् धूपविषे गई है अरु साँच झूठ भी कदाचित् इकट्ठा भया है, यह आदि नीति है, जैसे जैसे आदिनीति हुई है तैसे ही होता है; अन्यथा नहीं होता. हे लीले ! जो परछाँहींविषे वैताल कल्पना मिटी तौ पर छाय वैताल इकट्ठे नहीं होते, तैसे भ्रमरूप जगत्का शरीर उस जगतविषे नहीं जाता, जैसे दूसरेके संकल्पविषे दूसरा अपने शरीर साथ जाइ नहीं सकता; काहेते जो वह और शरीर है, वह भी और शरीर है, तैसे वह उनके जगत् दर्पणविषे इनके संकल्पका शरीर नहीं प्राप्त होता अरु मेरे वर करि प्राप्त होवै, तो जब उसको मृत्युमूर्च्छा प्राप्त भई तब उसको इस ही जैसा अपना शरीर भासि आया अरु उसका जो शरीर था सो संकल्प विषे स्थित था, सो अपना संकल्प वह साथले गई है, ताते अपने उसी शरीर साथ वह गई है; ऐसे आपको जानती भई है, कि मैं वही लीला हौं. हे लीले ! आत्मसत्ता जो है सो सर्वात्मरूप है; जैसी जैसी भावना

उसविषे दृढ होती है, तैसा ही रूप इसका होइ जाता है, जिसको यह हुआ कि, मैं पंचभूतकरूप हौं तिसको ऐसे ही दृढ होता है, कि मैं उड नहीं सकता. हे लीले ! यह लीला तो अविदित वेदन थी, अर्थ यह जो अज्ञानसहित थी आधिभौतिक भ्रम नहीं निवृत्त भया था, परंतु मेरा वर था, इस कारणते उसको मृत्यु मूर्च्छाके अनंतर भासि आया, कि मैं देवीके वर कर चली जाऊंगी, इस वासनाकी दृढता करिकै जाय प्राप्त भई है. हे लीले ! यह जगत् भ्रांतिमात्र है, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रमकरि भासता है. तैसे आत्माविषे जगत् भ्रमकरि भासता है; सब जगत् आत्माविषे आभासरूप हैं, सर्वका अधिष्ठान आत्मसत्ता अपने आप ही अज्ञान करिकै दूर भासता है. हे लीले ! जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो सदा शांतरूप आत्मानंदकरि तृप्त रहते हैं अरु जो अज्ञानी हैं, सो शांति कैसे पावैं ? जैसे जिसको ताप चढा होता है, तिसका अंतर भी पडा जलता है अरु तृषा भी बहुत लगती है, तैसे जिसको अज्ञानरूपी ताप चढा हुआ है; तिसका अंतर रागद्वेषकरिकै पडा जलता है अरु विषयोंकी तृष्णारूपी तृषा भी बहुत होती है अरु जिसका अज्ञानरूपी तम नष्ट भया है, तिसका रागद्वेषादिककरि अंतर नहीं जलता अरु विषयकी तृष्णारूपी तृषा नष्ट भई है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने मंडपाकाशगमनवर्णन नाम त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुष्पंचाशत्तमः सर्गः ५४.

मृत्युविचारवर्णनम् ।

देव्युवाच-हे लीले ! जो पुरुष अविदितवेद्य हैं, अर्थ यह जो जानने योग्यपदको नहीं जाना सो बडा पुण्यवान् होवै तौ भी तिसको अंतवाहकता प्राप्त नहीं होती अरु अंतवाहक शरीर भी झूठ है, काहेते कि; संकल्परूप है, सो झूठ है ताते जेता कछु जगत् तुझको भासता है, सो

उपजा कछु नहीं; शुद्ध चिदाकाश सत्ता अपने आपविषे स्थित है. लीलोवाच—हे देवि ! जो यह सर्व जगत् संकल्पमात्र है तौ भावरूप पदार्थ कैसे होते हैं अरु अभावरूप कैसे होते हैं; जो अग्नि उष्णरूप है, पृथ्वी स्थिररूप है, बर्फ शीतलरूप है, आकाशकी सत्ता है, कालकी सत्ता है, कोऊ स्थूल पदार्थ है, कोऊ सूक्ष्म पदार्थ है, ग्रहण करना, त्याग करना, जन्म अरु मृतक होता है, मृतक हुआ बहुरि जन्मता है; इत्यादिक सत्ता कैसे भासती हैं. ? देव्युवाच—हे लीले ! जब महाप्रलय होता है, तब सर्व पदार्थ अभावको प्राप्त होते हैं अरु कालकी सत्ता नष्ट होजाती है, तिसके पाछे अनंत चिदाकाश सब कलनाते रहित बोधमात्र ब्रह्मसत्ता ही रहती है, तिस चेतनमात्रसत्ताते जब चित्तसंवित् चैत्यता होती है तब चेतन संवित्‌विषे आपको तेज अणु जानत भई है, जैसे स्वप्नविषे कोऊ आपको पक्षीरूप उड़ता देखै तैसे देखता है, तिसते स्थूलता होती है, सो स्थूलता ब्रह्मांडरूप होती है, तिसविषे तेज अणु आपको ब्रह्मारूप जानती है, कि मैं ब्रह्मा हौं; बहुरि ब्रह्मारूप होइकरि जगतको रचता है; जैसे जैसे ब्रह्मा चेतता जावै तैसे तैसे स्थिरतारूप होता जावै आदिरचनाकरि जैसे निश्चय धारा कि यह ऐसे होवै अरु ऐते काल रहै, तिसका नाम नीति है, जैसे आदि ही रचना नीतिकरि है सो ज्योंकी त्यों होती है; तिसके निवारणको कोऊ समर्थ नहीं अरु वस्तुते आदि ब्रह्मा ही अकारणरूप है, अर्थ यह जो उपजा कछु नहीं तौ जगतका उपजना मैं कैसे कहौं ? ० हे लीले ! स्वरूपते कछु उपजा नहीं परंतु चेतन संवेदनके फुरणेविषे जगत् आकार होइके भासता है; तिसविषे जैसे निश्चय है, तैसे ही स्थित है; अग्नि उष्ण ही है; बर्फ शीतल ही है, पृथ्वी स्थिररूप ही है, जैसे उपजे हैं, तैसे ही स्थिर है. हे लीले ! जो चेतन है, तिस ऊपर भी नीति है, जो उपदेशका अधिकारी है अरु जो जड है, तिनोंविषे वह स्वभाव है, जो आदि चित्तसंवितविषे आकाशका फुरणा हुआ, तब आकाशरूप होकरि स्थित भया, जब कालका स्पंद फुरता है, तब वही चेतनसंवित् कालरूप होकरि स्थित होता है, जब वायुकी चेतनता हुई तब वही संवित वायु-

रूप होकारि स्थित होता है; इसी प्रकार अग्नि, जल, पृथ्वीरूप होइकारि स्थित भया है; स्थूल सूक्ष्मरूप होइकारि चेतनसंवितमें स्थित हो रहा है, जैसे स्वप्नविषे चेतनसंवित् ही पर्वत वृक्षरूप होइकारि स्थित होता है, तैसे ही चेतनसंवित् जगत्रूप होइकारि स्थित भया है. हे लीले ! जैसे आदि नीतिविषे पदार्थोंने संकल्परूप धरे हैं. तैसे ही स्थित हैं; तिसके निवारणको समर्थ कोऊ नहीं; काहेते कि तीव्र अभ्यास चेतनका किया है, जब वही संवित् उलटकारि और प्रकार स्पंद होवे, तब और प्रकार होवै, अन्यथा नहीं होता. हे लीले ! यह जगत् सत् नहीं, जैसे संकल्प-नगर भ्रमसिद्ध है, जैसे स्वप्नपुरुष असत्रूप होता है, जैसे ध्याननगर असत्रूप होता है, तैसे यह जगत् असत्रूप है, अज्ञानकरिके सत्की नाईं भासता है. जैसे स्वप्नसृष्टिके आदि सन्मात्रसत्ता होती है, तिस सन्मात्रते आभास किंचन स्वप्नसृष्टिका अकारण होता है, तैसे यह जागृत जगत्के आदि सन्मात्रसत्ता होती है, तिस सन्मात्रते आभास किंचन स्वप्नसृष्टिका अकारण होता है, तैसे यह जागृत जगत्के आदि सन्मात्र सत्ता होती है, तिसते किंचन अकारणरूप यह जगत् होता है. हे लीले ! यह जगत् कछु वास्तवते उपजा नहीं, असत् ही सत्की नाईं होकारि भासता है, तैसे स्वप्नकी अग्नि स्वप्नविषे असत् ही सत्रूप होइ भासती है, जैसे यह जगत् अज्ञानकारि असत्रूप सत्कारि भासता है, जैसे जन्म अरु मृत्यु अरु कर्मोंका फल होता है, सो तू श्रवण कर. हे लीले ! बड़ा अरु छोटा जो होता है, सो देश काल अरु द्रव्यकारि होता है,एक बालक अवस्थाविषे मृतक होते हैं, एक यौवन अवस्थाविषे मृतक होते हैं,जिसकी क्रिया चेष्टा देश काल द्रव्यकी यथाशास्त्र होती है,तिसकी क्रिया भी शास्त्रके अनुसार होती है अरु जो चेष्टा शास्त्रते विरुद्ध होती है तौ आयुर्बल भी तैसा होता है, एक क्रिया ऐसी है, जिस करि आयुकी वृद्धि होती है, एक क्रियाकर घट जाती है. इसी प्रकार देश, काल, क्रिया, द्रव्य, आयुके घटावने बढावने वाले हैं, तिनोंकारि जीवोंके शरीर सूक्ष्म बडी अवस्थाविषे सोये हैं, यह आदि नीति रची है,युगोंकी मर्यादा है, तैसे ही है, कैसे हैं, एक सौ वर्ष दिव्य कलियुगके, दो सौ वर्ष दिव्य

द्वापरके, तीन सौ त्रेताके, चार सौ सत्ययुगके, यह दिव्यवर्ष हैं अरु लौकिक वर्ष इस प्रकार हैं–चार लाख बत्तीस हजार कलियुग है, अष्ट लाख चौंसठ हजार द्वापरयुग है, बारह लाख छान्नवे हजार त्रेता है, सतरा लाख अट्ठाईस हजार सत्ययुग है, इस प्रकार युगोंकी मर्यादा है, तिसविषे जीव अपने कर्मोंके फलकरि आयु भोगते हैं. हे लीले ! जो पाप करनेवाले हैं, सो मृतक होते हैं, तिनको मृत्युकालमें भी बडा कष्ट प्राप्त होता है. लीलोवाच–हे देवि ! मृतक हुए सुख अरु दुःख कैसे होता है, अरु कैसे भोगता है ? देव्युवाच–हे लीले ! जीवको तीन प्रकारके मृत्यु होते हैं, एक मूर्खको मृत्यु होता है, दूसरा धारणाभ्यासीको होता है; तीसरा ज्ञानवान्को होता है, तिनका भिन्न भिन्न वृत्तांत सुन. हे लीले ! जो धारणाभ्यासी है सो मूर्ख भी नहीं अरु ज्ञानवान् भी नहीं, सो जिस इष्ट देवताकी धारणा करते हैं, सो मृतक होइ करि अर्थ यह जो शरीरको त्यागिके तिस ही देवताके लोकको प्राप्त होते हैं;यह धारणाभ्यासीका मृत्यु है अरु पूर्ण दशा नहीं प्राप्त हुई, तिनका सुखसों शरीर छूटता है, जैसे सुषुप्ति हो जाती है, तैसे धारणाभ्यासी शरीर त्यागता है, त्यागकरि सुखको भोगकरि फेरि आत्मतत्त्वको प्राप्त होता है अरु ज्ञानवान्का शरीर भी सुखसों छूटता है,तिसको भी यत्न कछु नहीं होता अरु वह ज्ञानीके प्राण भी तहां ही लीन होते हैं, वह विदेहमुक्त होता है, अरु जब मूर्खका मृत्यु होने लगता है सो बडे कष्टको प्राप्त होता है, सो मूर्ख कौन है, जिनको अज्ञानियोंकी संगति है अरु शास्त्रोंके अनुसार विचारणा नहीं अरु सदा विषयोंकी ओर धावते हैं, पापाचार करते हैं, ऐसे पुरुषको शरीर त्यागनेविषे बडा कष्ट होता है. हे लीले ! जब यह मृतक होने लगता है; तब पदार्थोंकरि आवरण अर्थबुद्धि जो संबंधी था तिनोंके साथ वियोग होने लगता है अरु कंठका रुकना होता है; नेत्र फट जाते हैं अरु शरीरकांति विरूप जैसी हो जाती है, जैसे कमलफूल काटा हुआ कुम्हलाइ जाता है तैसे मृत्युकालमें शरीर विरूप होय जाता है अरु अंग पडे टूटते हैं, प्राण नाडियोंसे निकसते हैं, जिन अंगोंसों तादात्म्य सम्बन्ध हुवा था अरु पदार्थोंविषे बहुत स्नेह था, तिनोंते

वियोग होने लगता है, ताते बडा कष्ट होता है, जैसे किसीको अग्निके कुंडविषे डारते कष्ट होता है, तैसे उसको कष्ट होता है, सब पदार्थ भ्रमते भासते हैं; पृथ्वी आकाशरूप अरु आकाश पृथ्वीरूप भासते हैं, महाविपर्यय दशाको प्राप्त होता है, चित्तकी चेतनता घटती जाती है, ज्यों ज्यों चित्तकी चेतनता घटती जाती है, त्यों त्यों पदार्थके ज्ञानते अंध होता जाता है; जैसे सायंकालमें सूर्य अस्त होता है, तब नेत्र भ्रांतिमान्को दिशाका ज्ञान नहीं रहता, तैसे इसको पदार्थोंका ज्ञान नहीं रहता अरु कष्टका अनुभव करता है, जैसे आकाशते गिरते कष्ट पावता है, जैसे पाषाणविषे पीसता कष्ट पावता है,जैसे पवनविषे तृण भ्रमता है और कष्ट पावता है, जैसे अंधकूपविषे गिरता कष्ट पावता है, जैसे कोल्हूविषे गिरता कष्ट पावता है, जैसे खंभाणीविषे चलाया पत्थर बडा कष्ट पावता है, जैसे रथते गिरता कष्ट पावता है, जैसे गलेमें फांसी डारेते खेंचनेते कष्ट पावता है, जैसे वायुकरिकै उछला तरंग वडवाग्निमें पडा जलता कष्ट पावता है, तैसे मूर्ख मृत्युकालविषे कष्ट पावता है, जब पुर्यष्टकका वियोग हुआ, तब मूर्च्छाकरि जड जैसा हो जाता है, शरीर तौ अखंडित पडा रहता है. लीलोवाच-हे देवि ! जब यह मृतक होने लगता है, तब इसको मूर्च्छा कैसे होती है, शरीर तो अखंडित पडा रहता है, कष्ट कैसे पावता है ? देव्युवाच-हे लीले ! जो कछु इस जीवने अहंकार भावको लेकरि कर्म किये हैं, सो सब इकट्ठे होते जाते हैं, समय पाइकै आप प्रगट होते हैं.जैसे बीज बोया हुआ समय पाइकै फल आन लगता है, तैसे तिसको कर्म वासनासहित फल आन प्रगट होता है, जब इस प्रकार शरीर छूटने लगता है, तब शरीरकी तादात्म्यता अरु पदार्थोंके स्नेहके वियोगकरि इसको कष्ट होता है, जो प्राण अपानकी कला है; जिसके आश्रय शरीर होता है, सो टूटने लगता है,जिन स्थानोंविषे प्राण फुरते थे तिन स्थानों अरु नाडियोंसे निकसते हैं, जिस स्थानते निकसते हैं, तहां बहुरि प्रवेश नहीं करते, वहां नाडियां जर्जरीभूत होजाती हैं,सब स्थानोंको प्राण जब त्यागि जाते हैं;तब वह पुर्यष्टक शरीरको त्यागि निर्वाण हो जाता है,जैसे दीपक निर्वाण हो जाता है, जैसे पत्थरकी शिला जडी-

भूत होती है,तैसे पुर्यष्टक शरीरको त्यागिकरि जडीभूत हो जाती है,प्राण-अपानकी कला टूट पडती है. हे लीले ! यह मरण अरु जन्म भी भ्रांतिकरिकै भासता है, आत्मविषे कोऊ नहीं; संवित्मात्रविषे जो संवेदन फुरता है, सो अन्य स्वभावविषे सत्ताकी नाईं होकरि स्थित होता है,मरण अरु जन्म तिसविषे भासते हैं; जैसी जैसी वासना होती है, तिसके अनुसार सुखदुःखका अनुभव करता है, जैसे कोऊ पुरुष नदीविषे प्रवेश करता है तिसविषे कहूँ बडा जल होता है, कहूँ छोटा जल होता है, कहूँ बडे तरंग होते हैं, कहूँ सोम जल होता है,सो सब सोमजलविषे होते हैं; तैसे जैसी वासना होती है, तिसीके अनुसार सुखदुःखका अनुभव होता है, अध, ऊर्ध्व, मध्य वासनारूपी गर्तविषे पडे गिरते हैं; जैसे बेलविषे गंठी होती है, तैसे संवेदनविषे जन्ममरणकी कल्पना होती है अरु शुद्ध चेतनमात्रविषे कोऊ कल्पना नहीं, अनेक शरीर नष्ट हो जाते हैं अरु चेतनसत्ता ज्योंकी त्यों रहती है;जो चेतन सत्ता भी मृतक होवै,तब एकके नष्ट हुए सब नष्ट हो जावैं सो ऐसे तो नहीं, चेतनसत्ता सब कछु सिद्ध होती है जो वह न होवै तौ कोऊ किसीको न जाने. हे लीले ! चेतनसत्ता जो है सो न जनमती है,न मरती है, सर्व कल्पनाते रहित केवल चिन्मात्र है, तिसका किसी कालविषे कैसे नाश होवै ? जन्ममरणकी कल्पना संवेदनविषे होती है, अचेत चिन्मात्रविषे कछु हुआ नहीं. हे लीले ! मृत्यु सोई होता है, जिसके निश्चयविषे मृत्युका सद्भाव होता है, जिसके निश्चयविषे मृत्युका सद्भाव नहीं सो कैसे मरै, जब इसको दृश्यका अत्यंत अभाव होवै तब बंधनोंते मुक्त होवै, वासना ही इसको बंधनका कारण है, जब वासनाते मुक्त होता है तब बंधन कोऊ नहीं रहता. हे लीले ! आत्मविचार करि ज्ञान होता है अरु ज्ञान करिकै दृश्यका अत्यंत अभाव होता है, जब दृश्यका अत्यंत अभाव हुआ तब वासना नष्ट हो जाती है, यह जगत् उदय हुआ नहीं;परंतु उदय हुएकी नाईं वासना करिकै भासता है, ताते वासनाका त्याग करौ; जब वासना निवृत्त होवै तब बंधन कोऊ न रहै.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मृत्युविचारवर्णनं नाम चतुष्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशत्तमः सर्गः ५५.

संसारभ्रमवर्णनम्।

लीलोवाच-हे देवि ! यह जीव मृतक कैसे होता है ? अरु जन्म कैसे लेता है ? मेरे बोधकी वृद्धताके निमित्त बहुरि कहौ. देव्युवाच-हे लीले ! इसके अंतर पान अपानकी एक कला है, तिसके आश्रय यह शरीर रहता है, जब लग प्रारब्धकर्म होता है अरु जब मृतक होने लगता है, तब प्राणवायु अपने स्थानको त्यागता है, जब जिस जिस स्थानसों नाडीसों निकसता है, सो स्थान शिथिल होता है, जब पुर्यष्टकशरीरसों निकसता है तब प्राणकला टूट पडती है अरु चेतनता जडीभूत हो जाती है, तब परिवारवाले लोक इसको प्रेत कहते हैं; जो मृतक हुआ प्रेत भया है. हे लीले ! इसके चित्तकी चेतनता जडी भूत हो जाती है, केवल चैतन्य जो ब्रह्मसत्ता है सो ज्योंकी त्यों रहती है, स्थावर जंगम सर्व जगत्‌विषे व्याप रही है आकाश, पहाड, वृक्ष, अग्नि, वायु, आदिक सर्व पदार्थोंविषे व्यापि रही है, उदय अस्तते रहित है. हे लीले ! जब इसको मृत्युमूर्च्छा होती है. तब प्राण पवन आकाशविषे लीन होते हैं, तिस प्राणविषे चेतनता होती है अरु चेतनताविषे वासना होती है ऐसी जो प्राण अरु चैतन्यसत्ता है सो वासनाको लेकरि आकाशविषे आकाशरूप स्थित होती है. जैसे गंधको लेकरि आकाशविषे वायु स्थित होता है, तैसे वासनाको लेकरि चेतनता स्थित होती है. हे लीले ! तिस अपनी अपनी वासनाके अनुसार देश स्थान बहुरि जगत् फुरि आता है, तिस विषे देश, काल, क्रिया, द्रव्य करिकै देखता है, सो मृत्यु भी जीवको दो प्रकारका है, एक पापात्माका मृत्यु है, एक पुण्यात्माका मृत्यु है, बहुरि पापी भी तीन प्रकारके हैं; एक महापापी हैं, एक मध्यमपापी हैं, तीसरे अल्पपापी हैं, ऐसे ही पुण्यवान् भी तीन प्रकारके हैं, एक महापुण्यवान् है, एक मध्यमपुण्यवान् है, तीसरा अल्पपुण्यवान् है, प्रथम पापियोंकी मृत्यु सुन. जब बडा पापी मृतक होता है, तब मरिकै जर्जरीभूत होजाता है, घन पापाणकी

नाईं सहस्र वर्षोंपर्यंत मूर्च्छाविषे पड़ा रहता है, कोई ऐसे जीव हैं, तिस मूर्च्छा विषे भी उनको दुःख होता है, जैसे बाहिर इंद्रियोंको दुःख होता है तिसके रागद्वेषको लेकरि चित्तकी वृत्ति अंतर हृदयविषे जाय स्थित होती है, तैसे पापवासनाका दुःख अंतर होताहै, तिसकरि दुःख होता है, अंतर जलता है, इस प्रकार जडीभूत मूर्च्छाविषे रहता है, तिसके अनंतर उसको बहुरि चैतन्यता फुरि आती है; अपने साथ शरीर देखता है, बहुरि नरकको जाय भुगतता है, चिरकालपर्यंत नरकको भोगिकै बहुतेरे जन्म पशु आदिकोंके भुगतता है, तिसको भोगिकै मनुष्यशरीरको पाता है, महानीच अरु दरिद्री निर्धनोंके गृहविषे जन्म लेता है, तहां भी दुःखोंकरि तप्त रहता है. हे लीले! यह महापापियोंका मृत्यु तुझको कहा; अब मध्यम पापीका मृत्यु सुन. जब मध्यमपापीका मत्यु होता है, तब वह भी वृक्षकी नाईं मूर्च्छा करि जडीभूत होइ जाता है, अरु अंतर दुःखकरि जलता है, जडीभूतते थोडे कालविषे बहुरि चेतनताको पाता है, नरकांतरको जाय भुगतता है, नरकको भोगिकै तिर्यगादिक योनिको भुगतता है; तिसको भोगिकै वासनाके अनुसार मनुष्यशरीरको पाता है, अब अल्पपापीका मृत्यु श्रवण कर. हे लीले! जब अल्पपापी मृतक होता है, तब मूर्च्छित होय जाता है, केतेक कालते उसको चेतनता आय फुरती है, चेतनताको पायके नरकको जाइकरि भुगतता है, तिनको भुगतके कर्मोंके अनुसार और जन्मोंको भुगतता है, बहुरि मनुष्यशरीर आय धरता है. हे लीले! यह पापात्माके मृत्यु कहे, अब धर्मात्माके मृत्यु सुन, जो महाधर्मात्मा हैं; सो जब मृतक होते हैं, तब उनके निमित्त विमान आता है, तिनपर आरूढ करिकै स्वर्गमें लेजाते हैं जिस इष्ट देवताकी वासना इसके हृदय विषे होती है, तिसके लोकविषे लेजाते हैं, तहां जाइकरि स्वर्गसुख भुगतता है, जैसे कर्म किये होते हैं; तैसे सुखको भुगतता है, कैसे स्वर्गसुख हैं, जो गंधर्व, विद्याधर, अप्सराआदिकके भोग हैं, तिनको भोगिकै बहुरि गिरता है, जिस फलविषे आन स्थित होता है, तिस फलका मनुष्य भोजन करता है, जब वीर्यविषे स्थित होता है, तिस वीर्यके साथ माताके गर्भविषे जाय स्थित होता है. तहां ते वासनाके अनुसार बहुरि जन्म लेता

है, जो कछु भोगकी कामना होती है, तब श्रीमान् धर्मात्माके गृहविषे जन्म होता है अरु जो भोगते निष्काम होता है, तब संतजनके गृहविषे जन्म लेता है. अब मध्यम धर्मात्माका मृत्यु सुन. हे लीले! जो मध्यम धर्मात्मा मृतक होता है, तिसको शीघ्र ही चेतनता फुरि आती है अरु स्वर्गको चला जाता है, अपने पुण्यके अनुसार स्वर्गको भोगिकै बहुरि गिरता है, किसी फलविषे आनि स्थित होता है; उस फलको पुरुष भोजन करता है, तब पिताके वीर्यद्वारा माताके गर्भविषे आता है, वासनाके अनुसार जन्म लेता है अरु जो अल्पधर्मात्मा मृतक होता है, तब उसको यह फुरि आता है कि, मैं मृतक हुआ हौं, मेरे बांधव अरु पुत्रोंने मेरी पिंडक्रिया करी है; मैं पितर लोकको चला जाता हौं. वहां पितरलोकका अनुभव करता है, पितरलोकके सुख भोगके गिरता है, तब धान्य विषे आन स्थित होता है, जब धान्यको पुरुष भोजन करता है; तब वीर्यरूप होयके स्थित होता है; तिस वीर्यद्वारा होयके माताके गर्भविषे आता है. बहुरि वासनाके अनुसार जन्म लेता है. हे लीले! जब पापी मृतक होता है, तब तिसको महाक्रूर मार्ग भासता है, तिस मार्गपर चलता है, चरणोंविषे कण्टक चुभते हैं; शीशपर सूर्य तपता है सूर्यके धूपकारि शरीर कष्टवान् होता है अरु जो पुण्यवान् होता है, तिसको सुंदर छायाका अनुभव होता है, बावडियां अरु सुंदर स्थानोंके मार्गसों यमदूत उसको ले जाते हैं, जहां धर्मराज बैठा है. तिसके पास ले प्राप्त करते हैं, धर्मराज चित्रगुप्तसों पूछता है, तब चित्रगुप्त पुण्यवानोंके पुण्य प्रगट करता है; पापीके पाप प्रगट करता है, तिन कर्मोंके अनुसार स्वर्गनरकको भुगतता है; तिसको भोगिकै बहुरि गिरता है, धान्य अथवा और किसी फलविषे आन स्थित होता है, जब उस अन्नको पुरुष भोजन करता है, तब वह स्वप्न वासनाको लेकरि वीर्यविषे आन स्थित होता है; जब पुरुषका इससाथ संयोग होता है, तब वीर्यद्वारा माताके गर्भविषे आता है, तहां भी अपने कर्मोंके अनुसार माताके गर्भको प्राप्त होता है; माताके गर्भविषे इसको अनेक जन्मोंका स्मरण होता है, बहुरि बाहर निकसकै बालक अवस्थाको धरता है, तब पिछली स्मृति विस्मरण हो जाती है, महामूढ अवस्थाको धरता है, परमार्थकी शुद्धि

कछु नहीं होती, क्रीडाविषे मग्न होता है, तिसते आगे यौवन अवस्था आती है, तब काम आदिक विकारोंविषे अंध हो जाता है, विचार कछु नहीं रहता, बहुरि वृद्ध अवस्था आती है, तब शरीर महाकृश जैसा हो जाता है अरु रोग आन उपजते हैं, शरीर कुरूप हो जाता है. जैसे कमलोंपर बर्फ पडता है. अरु कुम्हलाइ जाते हैं, तैसे वृद्ध अवस्था-विषे शरीर कुम्हलाइ जाता है, सब शक्ति घटती जाती है अरु तृष्णा बढती जाती है, बहुरि मृतक होने लगता है, तब कष्टवान् होता है कष्ट को भोगिके मृतक होता है,तब वासनाके अनुसार स्वर्ग नरकके भोगको प्राप्त होता है; इस प्रकार संसारचक्रविषे वासनाके अनुसार घटीयंत्रकी नाईं भ्रमता है; स्थिर कदाचित् नहीं होता. हे लीले ! इस प्रकार जीव आत्मपदके प्रमाद करिके जन्ममरणको प्राप्त होता है; बहुरि माताके गर्भविषे आते हैं, बाल अवस्था, यौवन अवस्था, वृद्ध अवस्था, मृतक अवस्थाको प्राप्त होते हैं, बहुरि वासनाके अनुसार परलोकको देखते हैं, जाग्रत्स्वप्नकी नाईं भ्रमते अनंतर भ्रमको देखते हैं, जैसे स्वप्नते स्वप्नां-तर देखता है, तैसे अपनी कल्पना करिकै जगत्भ्रम फुरता है, स्वरूपते किसीको कछु भ्रम नहीं, आकाशरूप, आकाशविषे स्थित है, भ्रमकरिकै विकार भासते हैं. लीलोवाच-हे देवि ! परब्रह्मविषे यह जगत् भ्रम-करि कैसे हुआ है ? सो मेरे बोधकी दृढताके निमित्त कहो. देव्युवाच-हे लीले ! स्वरूपते सब आत्मरूप है, पहाड भी परमार्थघन है, वृक्ष भी परमार्थघन है ; पृथ्वी, आकाश आदिक स्थावर जंगम जेता कछु जगत् है, सो सब परमार्थघन है, परमार्थसत्ता सर्व आत्मा है. हे लीले ! तिस सत्ता संवित् आकाशविषे जब संवेदन आभास फुरता है; तिसकरि जगत्रूप भासता है, आदिसंवेदन जो संवित्मात्रविषे हुआ है, सो ब्रह्मारूप होइकरि स्थित भया है,बहुरि जैसे वह चेतता गया है तिस प्रकार स्थावरजंगम जगत् होइकरि स्थित भया है. हे लीले ! शरीर जो हुआ है, तिसके अंतरविषे नाडी हैं; नाडीविषे छिद्र हैं; तिन छिद्रोंविषे प्राण स्पंदरूप होइकरि विचरता है, तिसको जीव कहते हैं; जब वह जीव निकस जाता है, तब शरीर मृतक होता है. हे लीले ! जैसे जैसे

आदि संवित्मात्रविषे संवेदन फुरा है, तैसे अबलग स्थित है; जब चेता कि मैं जड होऊं तब जडरूप पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, पर्वत, वृक्षादिक स्थित भये जडकी भावनाकरि जड हुए, चेतनकी भावनाकरि चेतनरूप होइ करि स्थित भए हैं. हे लीले ! जिसविषे प्राणक्रिया होती है, सो जंगमरूप बोलते चलते हैं अरु जिसविषे प्राणस्पंद क्रिया नहीं पाती सो स्थावररूप हैं अरु आत्मसत्ताविषे दोनों तुल्य हैं; जैसे जंगम हैं, तैसे स्थावर हैं अरु दोनों चैतन्य हैं, जैसे जंगमविषे चैतन्यता है, तैसे स्थावरविषे चैतन्यता है अरु जो तू कहै स्थावरविषे चेतनता भासती क्यों नहीं? तिसका उत्तर यह है–हे लीले ! जैसे उत्तर दिशाके समुद्रवाले मनुष्यकी बोलीको दक्षिण दिशाके समुद्रवाले नहीं जानते; अरु दक्षिण दिशाके समुद्रवालेकी बोलीको उत्तर दिशाके समुद्रवाले नहीं समझ सकते; तैसे स्थावरोंकी बोलीको जंगम नहीं समझ सकते अरु जंगमोंकी बोलीको स्थावर नहीं समझ सकता, परस्पर अपनी अपनी जातिविषे सब चेतन है, उसका ज्ञान उसको होता है; जैसे कूपविषे दर्दुर होता है, सो औरके कूपके दर्दुरको नहीं जानता अरु और कूपका दर्दुर उस कूपके दर्दुरको नहीं जानता, तैसे जंगमोंकी बोली स्थावर नहीं जान सकते अरु स्थावरोंकी बोलीको जंगम नहीं जान सकते. हे लीले ! जो आदि संवितविषे संवेदन फुरा है तैसा रूप होइकरि महाप्रलयपर्यंत स्थित है, अन्यथा नहीं होता जब तिस संवितविषे आकाशका संवेदन फुरा, तब आकाशरूप होइकरि स्थित भया है जब स्पंदताको चेतता भया तब वायुरूप होइकरि स्थित भया, जब उष्णताको चेतता भया तब अग्निरूप होइकरि स्थित भया, जब द्रवताको चेतता भया तब जलरूप होइकरि स्थित भया, जब गन्धकी चिंतवना करी तब पृथ्वीरूप होइकरि स्थित भया इस प्रकार जिस-जिसको चेतता भया, सो सो पदार्थका प्रगट भया, आत्मसत्ताविषे प्रतिबिंबित भया, वास्तवते न कोऊ स्थावर है, न जंगम है, केवल ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, अपने आपविषे स्थिर है, तिसविषे जगत् भ्रम करिके पडाभासता है और दूसरी वस्तु कछु नहीं. हे लीले ! अब राजा विदू-

रथको देख, जो मृतक होता है. लीलोवाच-हे देवि! यह राजा पद्म शव शरीरवाले मंडपविषे किस मार्गसों जावैगा अरु इसके पाछे हम किस मार्ग जावैंगे? देव्युवाच-हे लीले! यह अपनी वासनाके अनुसार मनुष्यमार्गसे जावैगा, है चिदाकाशरूप, परंतु अज्ञानके वश इसको दूर स्थान भासैगा अरु हम भी इसहीके मार्गसे इसके संकल्पके साथ अपना संकल्प मिलाइके जावैंगी, जबलग संकल्पसाथ संकल्प मिलता नहीं, तबलग एकत्वभाव नहीं होता, इसी कारणते इसके संकल्प साथ हम अपना संकल्प मिलाइकरि इसहीके मार्गसे जावैंगी. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! इस प्रकार देवीजीने लीलाको उपदेश किया, कैसा उपदेश है, मानो बोधका सूर्य उदय हुआ है, ऐसे संवाद करते थे, तहां राजा जर्जरीभूत होने लगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने संसारभ्रमवर्णनं नाम पंचपंचाशत्तमः सर्गः॥ ५५॥

षट्पंचाशत्तमः सर्गः ५६.

मरणानंतरावस्थावर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! इस प्रकार देवी अरु लीला देखती थी तहां राजाके नेत्र फाटि गये अरु शरीर निरस हो गया अरु गिर पडा, श्वास नासिकाके मार्गसे निकस गया, तब जैसे रसते रहित पत्र होता है, अथवा जैसे काटा हुआ कमल विरस हो जाता है, तैसे राजाका शरीर निरस हो गया, जो कछु चित्तकी चेतनता थी, सो जर्जरीभूत होगई, मृत्युमूर्च्छारूपी अंधकूपविषे राजा जाय पडा अरु प्राण चेतना वासनासंयुक्त आकाशविषे जाय स्थिर भये, प्राणोंविषे चेतना थी अरु चेतनाविषे वासना थी सो चेतना अरु वासना सहित प्राणाकाशविषे जाय स्थित भये, जैसे वायु गंधको लेकरि स्थित होता है. हे रामजी! यह राजाकी पुर्यष्टक तौ जर्जरीभूत होगई; परंतु दोनों देवियां

उसको दिव्य दृष्टिसाथ देखैं, जैसे भ्रमरी गंधको देखती है, तब राजा एक मुहूर्त्तपर्यंत मूर्च्छाविषे रहा; बहुरि उसको चेतनता फुरि आई, अपने साथ शरीर भासि आया अरु जानता भया कि मेरे बांधवोंने मेरी पिंडक्रिया करी है, तिसकरि मेरा शरीर भया है अरु धर्मराजके स्थानको मुझे दूत ले चले हैं. हे रामजी ! इस प्रकार अनुभव करता धर्मराजके स्थानको चला जावे, तिसके पाछे देवी अरु लीला भी चली जावैं, जैसे वायुके पाछे गंध चला जाता है, तैसे चली जावैं, जैसे गंधके पाछे दोनों भ्रमरी जावैं तैसे जावैं, तब राजा विदूरथ धर्मराजके पास जाइ प्राप्त भया, धर्मराजाने चित्रगुप्तको कहा कि इसके कर्म विचारके कहो, तब चित्रगुप्तने कहा. हे भगवन् ! इसने कोई अपकर्म नहीं किया अरु बडे बडे पुण्य किये हैं, पाप नहीं किये हैं अरु भगवती सरस्वतीका इसको वर है अरु इसका शव फूलोंसाथ ढांपा हुआ है, तिस शरीरविषे भगवतीके वरकरि जाय प्रवेश करैगा ताते और इसको अब कछु कहना पूछना नहीं. देवीजीके वरसाथ बांधा है. हे रामजी ! ऐसे उसने कहा, तब राजाको अपने स्थानते चलाय दिया, जैसे खंभाणीकर पत्थर पडा वेगसों चला जाता है, तैसे ही चलाय दिया, तब आगे राजा चला जावै, तिसके पाछे दोनों देवियां चली जावैं, राजाको यह देवियां देखैं अरु राजा इनको देख न सके, तब तीनों एक ब्रह्मांडको लंघ गये जिसका राज्य विदूरथने किया था, तिसको लंघिकरि दूसरे ब्रह्मांडविषे आए, तिसको भी लंघते पद्म राजाके देशमें आये, तिसको लंघिकरि पद्मके मंदिरविषे आये, जहां फूलोंसाथ शव ढांपा था, एक क्षणविषे देवी आन मिली; जैसे मेघको वायु आन मिलता है, जैसे सूर्यमुखी कमलको धूप आनि मिलता है, तैसे आन मिली. राम उवाच–हे भगवन् ! वह तो राजा मृतक हुआ था, मृतक होइकरि तिस मार्गको कैसे पहँचानत भया जो आय प्राप्त हुआ ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! वह विदूरथ जो मृतक भया था, सो उसकी वासना तौ नष्ट भई न थी; उस अपनी वासनाकरि अपने स्थानको आइ प्राप्त भया. हे रामजी ! भ्रांतिमात्र जो जगत है, सो चिद्‌अणु जीवके

उदरविषे है, जैसे वटके बीजविषे अनंत वटवृक्ष होते हैं, तैसे चिद्अणु विषे अनंत जगत् है, जो अपने अन्तर स्थित हैं; तिसको क्यों न देखै. जैसे जीव अपने जीवत्वका अंकुर देखता है,तैसे स्वभाव चिद्अणुत्रिलोकीको देखता है; जैसे कोऊ पुरुष किसी स्थानविषे धनको दाबि राखै अरु आप दूर देशको जावै तौ धनको वासनाकरिकै पडा देखता है, तैसे वासनाकी दृढताकरि विदूरथ देखता भया अरु जैसे कोऊ जीव स्वप्नभ्रमकरि किसी बडे धनवान्के गृहविषे जाय उपजता है; भ्रमके शांत हुए तिसको अभाव देखता है, तैसे अनुभव करत भया. राम उवाच-हे भगवन्! जिसकी वासना पाछे पिंडदानक्रिया की नहीं रहती; अरु मृतक भया है, तब वह कैसे अपने साथ शरीर देहको देखता है, जिसकी पिंडक्रिया हुई नहीं. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! यह पुरुष पिता माताके पिंड जो करता है, उनकी वासना इसके हृदयविषे होती है, सोई वासना फलरूप होइकरि इसको भासती है, जो मेरा शरीर है, मेरे पाछे मेरे बांधवने पिंडदान किया है, तिसकर मेरा शरीर हुआ है, अपनी वासनाकरि तिसको इसी प्रकार अनुभव होता है. हे रामजी! सदेह होवै अथवा विदेह होवै, अपनी वासनाके अनुसार इसको अनुभव होता है; भावनाते इतर अनुभव नहीं होता, चित्तमय पुरुष है, जो चित्तविषे पिंडकी वासना दृढ होती है, तब आपको पिंडवान् ही जानता है, जैसी भावना होती है तैसे ही होता है, भावनाके वशते. असत् भी सत् होजाता है; ताते पदार्थोंका कारण भावना ही है, कारण विना कार्यका उदय नहीं होता, महाप्रलयपर्यंत कारण विना कार्य होता देखा नहीं अरु सुना भी नहीं,ताते कहा है जिसकी जैसी वासना होती है,तैसा अनुभव होता है. राम उवाच-हे भगवन्! जिस पुरुषको अपने पिंडदान आदिक धर्मकी वासना नहीं, वह जब मृतक होता है; तब प्रेतवासनासंयुक्त होता है, कि मैं प्रेत हुआ हौं, मैं पापी हौं अरु पाछे तिसके बांधव उसके निमित्त धर्मक्रिया करते हैं, सो धर्मबांधवोंने पिंडक्रिया करी है, तिसकरि मेरा शरीर हुआ है, सो क्रिया उसको प्राप्त होती है, अथवा नहीं होती? बांधवोंके मनविषे दृढ भावना भई जो इसको प्राप्त होवैगी अरु इसके

मनविषे भावना नहीं जो किस कारणते धनके अभावते अथवा पुत्रादिकोंके अभावते उसको निराश है अरु किसी प्रभावते किसीने पिंडादिक क्रिया करी सो कैसे होत है ? उसको प्राप्त होता है, अथवा नहीं होता; तुम तौ कहते हौ कि; भावनाके वशते असत् भी सत् होजाता है, यह क्या है ? वसिष्ठ उवाच– हे रामजी ! भावना जो होती है, सो देश, काल, क्रिया, द्रव्य, संपदा पांचोंकारि होती है, जैसी भावना होती है, तैसे सिद्ध होता है; जिसकी कर्तव्यता बली होती है, तिसका जय होता है, यह पुत्रदारादिक जो बांधव हैं, सो सब इसकी वासनारूप हैं, जो धर्मकी वासना होती है, तब तिसकी बुद्धिविषे प्रसन्नता उपज आती है, तिनके पुण्यकर्मोंकारि पूर्वभावना नष्ट हो जाती है अरु शुभ गतिको प्राप्त होता है,जो अतिबली वासना होती है तिसका ही जय होता है, ताते अपने कल्याणके निमित्त शुभका अभ्यास किया चाहिये. राम उवाच– हे भगवन्! जो क्रिया, देश, काल, द्रव्य, संपदा पांचोंकारि वासना होती है, तो महाप्रलय सर्गकी आदिविषे देश काल क्रिया द्रव्य संपदा कोऊ नहीं होती,जहां पांचों कारण नहीं होते अरु तिनकी वासना भी नहीं होती, तिस अद्वैतते जगत्भ्रम बहुरि कैसे होता है ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! महाप्रलय अरु सर्गकी आदिविषे देश काल क्रिया द्रव्य संपदा कोऊ नहीं रहती अरु निमित्तकारणका समवायिकारण अभाव होता है अरु चिदात्मविषे जगत् कछु उपजा नहीं अरु है भी नहीं, वास्तवते दृश्यका अत्यन्त अभावःहै अरु जो कछु भासता है सो ब्रह्मका किंचन है सो ब्रह्मसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है, ऐसे अनेक युक्तिकारि मैं तुझको कहौंगा, अब तू पूर्वकथा सुन. हे रामजी ! जब वह दोनों देवियां तिस मंदिरविषे जाय प्राप्त भईं तब देखत भईं कि, महाफूलोंकारि सुंदर शीतल स्थान बने हुए हैं, जैसे वसन्तऋतुविषे वनभूमिका होती है,तैसे स्थान हैं, अरु प्रातःकालका समय है, सुवर्णके कुंभ जलसाथ भरे मंगलरूपी पडे हैं, दीपकोंकी प्रभा मिटगई हैं, किवाड चढे हुए हैं अरु मंदिरोंविषे लोक सोए हुए हैं,तिनके श्वास आते जाते हैं, महासुंदर झरोखे हैं, ऐसे स्थान बने हुए हैं जैसे संपूर्ण कलाकारि चन्द्रमा शोभता है, तैसे भासते

हैं, इंद्रके स्थान जैसे सुंदर हैं, तैसे सुदर मंदिर हैं, जिस कमलते ब्रह्माजी उपजा है,तैसे वह कमल सुंदर हैं,तैसे ही सुंदर स्थान मंदिरको देखत भई.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मरणानंतरावस्थावर्णनं नाम षट्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ५७.

स्वप्नपदार्थनिवृत्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! तब दोनों देवियां तिस शवके पास विदूरथकी लीलाको देखती भईं; जो उसके मृत्युते प्रथम तहां आन प्राप्त भई हैं, पूर्व जैसे वस्त्र भूषण पहिरे हुए हैं, पूर्व जैसा आचार है, पूर्व जैसी सुंदरता है, पूर्व जैसा शरीर है,तिस लीलाको देखत भईं; कैसा सुन्दर मुख है, जैसे चन्द्रमाकी नाईं प्रकाशता है अरु महासुन्दर फूलोंकी भूमिके ऊपर बैठी है; लक्ष्मीके समान लीला है अरु विष्णुके समान राजा है, तिस लीलाको कछुक चिंतासहित देखत भईं, जैसे दिनके समय चन्द्रमाकी मध्यम प्रभा होती है, तैसे कछुक चिंतासहित राजाके दाहिनी ओर बैठी है; चिबुक हाथके आधार रक्खा है अरु दूसरे हाथकरि राजाको चमर करती है, तिस लीलाको दोनों देखत भईं अरु वह लीला इनको न देखत भई, काहेते कि यह दोनों प्रबुद्ध आत्मा थीं अरु सत् संकल्प था अरु वह लीला इनके समान प्रबुद्ध न थी, इस कारणते वह न देखत भई. राम उवाच-हे भगवन् ! तिस मंडपविषे जो पूर्व लीला देहको स्थापन करि अरु ध्यानविषे विदूरथकी सृष्टि देखनेको सरस्वतीके साथ गई थी, सो तिस देहका तुमने वर्णन कछु न किया कि उस देहकी क्या दशा भई अरु कहां गई तिसका वृत्तांत अब कहो. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! लीला कहां थी ? अरु लीलाका शरीर कहां था अरु तिसकी सत्ता कहां थी,वह तो अरुंधतीके मनविषे लीलाके शरीरकी भ्रांति प्रतिभा हुई थी; जैसे मरुस्थलविषे

जलकी प्रतिभा होती है, तैसे लीलाके शरीरकी प्रतिभा हुई थी. हे रामजी! यह आधिभौतिक अज्ञानकरिकै भासता है, बोधकरिकै अधिभूतकता निवृत्त होय जाती है, जब तिस लीलाको बोधविषे परिणाम हुआ, तब तिसका अधिभूतक शरीर निवृत्त हो गया; जैसे सूर्यके तेज कारि बरफका पुतला गलि जाता है, तैसे ज्ञानकरिकै तिसकी अधिभूतकता नष्ट होगई अरु अंतवाहकता आन उदय भई. हे रामजी! जेता कछु जगत् है, सो सब आकाशरूप है; जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रमकरिके भासता है, तैसे अंतवाहकविषे अधिभूतकता भासती है, आदि शरीर अंतवाहक है, अर्थ यह जो संकल्प मात्र तिसविषे जो दृढ भावना हो गई तिसकरि पृथ्वी आदिक तत्त्वोंका शरीर भासने लगा है, वास्तवते न कोऊ भूत आदिक तत्त्व हैं, न कोऊ तत्त्वोंका शरीर है, इनके शव शशेके शृंगोंकी नाई असत् हैं. हे रामजी! आत्माविषे अज्ञानकरिकै अधिभूतक भासे हैं, जब आत्माका बोध होता है, तब अधिभूतक नष्ट हो जाते हैं, जैसे कोऊ पुरुष स्वप्नविषे आपको हरिण देखता भया; जब जागि-उठा तब हरिणका शरीर दृष्टि नहीं आता, तैसे अज्ञानकरिकै अधिभूतकता दृष्टि आई है अरु आत्मबोध हुए अधिभूतकता दृष्टि नहीं आती, जब सत्यका ज्ञान उदय होता है तब असत्का ज्ञान लीन होजाता है. जैसे जेवरीके अज्ञानते सर्प भासै अरु जेवरीके ज्ञानकरि सर्पका ज्ञान लीन होता है, तैसे संपूर्ण जगत् मनते उदय हुआ है, अज्ञानकरिकै अधिभूतकताको प्राप्त भया. जैसे स्वप्नविषे जगत् अधिभूतक होइ भासता है अरु जागेते स्वप्नशरीर नहीं भासता, तैसे आत्मज्ञानकरि अधिभूतकता निवृत्त हो जाती है अरु अंतवाहक शरीर भासता है. राम उवाच–हे भगवन्! योगीश्वर जो अंतवाहक शरीरसाथ ब्रह्मलोक पर्यंत आते जाते हैं, तिनके शरीर कैसे हो भासते हैं? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! अंतवाहक शरीर ऐसे हैं, जैसे कोऊ पुरुष स्वप्नविषे होवै तिसको पूर्वका शरीर जाग्रतका स्मरण होवै, तब स्वप्नशरीर इसको दृष्टि भी आता है अरु तिसको आकाशरूप जानता है, तैसे अधिभूतकता बोधकरिकै नष्ट हो जाती है; जैसे शरत्कालका मेघ देखनेमात्र

होता है; तैसे योगीश्वर ज्ञानवान् का शरीर देखनेमात्र होता है अरु अदृश्यरूप है, औरको शरीर भासता है, उसको आकाशरूप भासता है, हे रामजी ! यह देहादिक आत्माविषे भ्रांतिकरिकै दृष्टि आते हैं, आत्मज्ञानकरिकै निवृत्त हो जाते हैं, जैसे जेवरीके अज्ञानकरिकै सर्प भासता है, जब जेवरीका सम्यक् ज्ञान हुआ, तब सर्पभाव तिसका नहीं रहता, तैसे तत्त्वबोधके हुए देह कहां होवै ? देहकी सत्ता कहां रहे ? दोनोंका अभावही हो जाता है, केवल ब्रह्मसत्ता अद्वैत भासती है, राम उवाच-हे भगवन् ! अंतवाहकते अधिभूतकरूप होता है अथवा अधिभूतकते अंतवाहकरूप होता है ? सो मुझको कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! मैंने तुझको बहुत बार कहा है सो तू मेरे कहेको धारता क्यों नहीं ? मैंने आगे कहा है, कि जेते कछु जीव हैं, सो सब अन्तवाहक हैं, अधिभूतक कोऊ नहीं, आदि जो शुद्ध संवितमात्रते संवेदन आभास उठा, तिसकरिकै इस जीवका आदि शरीर अन्तवाहक संकल्परूप हुआ, जब उसविषे दृढ अभ्यास हुआ, तब वह संकल्परूपी शरीर अधिभूतक होइकरि भासने लगा. जैसे जल दृढ जड़ताकरिकै बरफरूप होजाता है, तैसे प्रमाद करिकै संकल्पके अभ्यासते अधिभूतकरूप होजाता है, तिस अधिभूतकके तीन लक्षण होते हैं, भारी शरीर होता है अरु कठोर भाव होता है, शिथिल होता है, तिसविषे अहंप्रतीति होती है, इस कारणते अधिभूतक कहाता है अरु जब तत्त्वका बोध होता है, तब अधिभूतकता आकाशरूप होजाती है, जैसे स्वप्नविषे देहते आदि लेकरि जगत् बड़ा स्पष्टरूप भासता है अरु जब स्वप्नविषे स्वप्नका ज्ञान होता है, कि यह स्वप्न है, तब वह स्वप्नका शरीर लघु हो जाता है; अर्थ यह कि संकल्परूप हो जाता है, तैसे परमात्माके बोधते अधिभूतक शरीर निवृत्त हो जाता है, संकल्परूप भासता है. हे रामजी ! जो अधिभूतकता इसको प्राप्त भई है, सो अबोधके अभ्यासकरि प्राप्त भई है, जब उलटके वही अभ्यासका बोध होवै, तब अधिभूतकता नष्ट हो जावै अरु अंतवाहकता उदय होवै. हे रामजी ! अन्य शरीरोंको जो यह प्राप्त होता है, सो एक शरीरको त्यागिकै दूसरेका अंगीकार

करता है; जैसे स्वप्नते स्वप्नांतरको प्राप्त होता है अरु जब बोध होता है तब शरीर और कछु वस्तु नहीं रहता वही अधिभूतक शरीर शांत हो जाता है, जैसे स्वप्नते जागा हुआ स्वप्नशरीर शांत हो जाता है. तैसे क्रोध हुएते अधिभूतक शरीर शांत हो जाता है. हे रामजी! जेता कछु जगत् तुझको भासता है, सो सब स्वप्नविषे भ्रममात्र है, अज्ञानकरिकै सत्की नाईं भासता है, जब आत्मबोध होवैगा, तब सब आकाशरूप होवैगा॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने स्वप्नप० नि० सप्तपंचाशत्तमः सर्गः॥ ५७॥

अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ५८.

जीवजीवनवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जब वह दोनों देवियां अंतःपुरविषे गईं तब प्रबुद्ध लीला कहत भई हे देवीजी! समाधिविषे लगे मुझको केता काल व्यतीत भया है अरु मैं जो ध्यानकरिकै भूपालकी सृष्टिविषे गई थी. मेरा शरीर यहां पड़ा था, सो कैसे कहां गया? देव्युवाच-हे लीले! अब तुझको समाधिविषे लगे एकतीस दिन व्यतीत भये हैं अरु जब तू ध्यानविषे लगी, तब तेरा पुर्यष्टक विदूरथकी सृष्टिविषे विचरता फिरता, इस शरीरकी वासना तेरी निवृत्त होगई तब यह शरीर तेरा निर्जीव होइकरि गिर पडा; जैसे रसते रहित पत्र सूख जाता है, तैसे तेरा शरीर रसते रहित भया था, जैसे काष्ठ पाषाण होता है, तैसे हो गया था अरु बरफकी नाईं शीतल होगया. तब देखके सबने विचार किया कि, यह मृतक भया है, इसको जलाइये, तब चंदन अरु घृतसाथ लपेटके जलाय दिया. बांधवजन रुदन करने लगे अरु पुत्रोंने पिंडक्रिया करी. हे लीले! आगे जो तू ध्यानते उतरती तब तुझको देखके लोक आश्चर्यवान् होते अरु अब देखके आश्चर्यवान् होवैंगे, कि राणी परलोकते बहुरि फिरि आई है. हे लीले!

तुझको बोध उदय हुआ है, तिसकारि उस शरीरकी वासना नष्ट भई है, अरु अन्तवाहकविषे दृढ निश्चय भया, इस कारणते वह शरीर जीवित भया, अब जो उसके समान तेरा शरीर है; सो इस कारणते है, जो तुझको बोध हुआ है, सो लीलावासनाविषे हुआ, कि मैं लीला हौं ऐसे जो तेरी वासना भई, इस कारणते तेरा शरीर तैसा रहा, इस लीलाशरीरकी तेरी वासना नष्ट भई न थी, इस कारणते तू निर्वाण न हुई, नहीं तौ विदेहमुक्त हो जाती, अब तू सत्संकल्प भई है, जैसे तेरी इच्छा होवै, तैसे अनुभव होवैगा. हे लीले ! जैसी वासना जिसको होती है, तिसके अनुसार तिसको प्राप्त होता है, जैसे बालकको अंधकारविषे जैसी भावना होती है, तैसा ही भान होता है, जो वैतालकी भावना होती है, तब वैताल होय भासता है, परंतु वास्तव वैताल कोऊ नहीं, तैसे जेती कछु अधिभूतकता भासती है, सो भ्रममात्र है, सब जीवोंका आदि शरीर अंतवाहक है, सो प्रमादकरिकै अधिभूतक भासता है. हे लीले ! एक लिंग शरीर है, एक अंतवाहक शरीर है, सो दोनों संकल्प मात्र हैं, अरु इतना भेद है, लिंग शरीर संकल्परूपी मन है, तिसविषे जिसको आधिभौतिकताका अभिमान हुआ है, तिसको गौरत्वरूप अरु कठोररूप अरु वर्णाश्रमका अभिमान हुआ है, जिस पुरुषको ऐसे अनात्माविषे आत्माभिमान हुआ है, वह अधिभूतक लिंगदेह है, अर्थ यह कि तिसकी चिंतवना सत्य नहीं होती अरु जिसका अधिभूतकका अभिमान नहीं, सो अंतवाहक शरीर है, यह जैसी चिंतवना करता है, तैसी सिद्ध होती है. हे लीले ! तू अब अंतवाहकविषे दृढ स्थित भई है, इस कारणते तेरा बहुरि उस जैसा शरीर हुआ है, अधिभूतकबुद्धि तेरी नष्ट हो गई है; वह शरीर शव होकारि गिर पडा; जैसे जलते रहित मेघ होता है, जैसे सुगंधते रहित फूल होवै, तैसे तेरा शरीर हो गया अरु अब तू सत्यसंकल्प भई है, जैसी चिंतवन करे तैसा होता है. हे लीले ! यह जो कमलनयनी लीला तेरे भर्ताके पास बैठी है, तिसको इस अंतःपुरके लोग सहेलियां जान नहीं सकतीं, काहेते कि मैंने इनको निद्राकरिकै मोहित करा था, जबलग मेरा दर्शन इसको न होवै तबलग इसको और

कोऊ न जानि सकै, अब यह हमको देखैगी. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! ऐसे विचारके देवी उसको अपने संकल्पसाथ ध्यान करती भई. तब उस लीलाने देखा कि अंतःपुरविषे बडा प्रकाश होता भया, जैसे बहुतेरे सूर्यका प्रकाश एकट्ठा होवे अरु चंद्रमाकी नाई शीतल प्रकाश ऐसे प्रकाशवान दोनों देवियोंको देखिकै नमस्कार किया, मस्तक नमाया, अरु दोनोंको स्वर्णके सिंहासनपर बैठायके कहत भई. हे जीवकी दाता! तेरी जय होवे,तैंने मेरेपर बडी कृपा करी है; तेरे प्रसादकरि मैं यहां आइ प्राप्त भई हौं.देव्युवाच–हे पुत्रि ! तू यहां क्यों कैसे आन प्राप्त भई है? अरु क्या वृत्तांत तुझने देखा है, सो कहिदे. विदूरथलीलोवाच–हे देवि ! जब मेरा भर्ता संग्रामविषे घायल भया था,तिसको देखिके मैं मूर्छित भई अरु गिर पडी,मैं मूर्छितभई,परंतु मृतक न भई तिसते अनंतर बहुरि मुझको चेतना फुरि आई तब मैं अपने साथ वही शरीर देखती भई, तिस शरीर-करि मैं आकाशमार्गको उडी, एक कुंवारी मुझको उडाती यहां ले आई, जैसे वायु गंधको ले आता है, तैसे उडावती परलोकविषे मुझको भर्ताके पास बैठागई है अरु आप अंतर्धान होगई अरु मेरा भर्ता जो संग्राम करि थका है, सो आयके सोय रहा है; अरु मैं सँभालती देखती मार्गविषे आई हौं, परन्तु मुझको तुम दृष्टि कहूं न आई, यहां कृपा करि तुमने दर्शन दिया है.वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इस प्रकार सुनिकै देवी प्रबुद्धली-लाको कहत भई, कि अब राजाकी जीवकलाको छोडती हौं, ऐसे कहिके जीवकलाको छोड़दीनी, तबनासिकाके मार्गसों जीवकला प्रवेश कर गई; जैसे कमलकी अन्तर वायु प्रवेशकरि जावे अथवा शरीरमें वायु प्रवेश करि जावे तैसे शरीरमें जीवकला प्रवेश कर गई, कैसी जीवकला है, जो वासनाकरिकै पूर्ण है, जैसे समुद्र जलकरिकै पूर्ण होता है, तैसे पुर्यष्टक वासनाकरि पूर्ण है, ऐसा जीवकलाने शरीरविषे प्रवेश किया; तब शरीरकी कांति उज्ज्वल होत भई अंगोंविषे प्राणवायु पसर गया, जैसे वसंत ऋतुमें फूल वृक्षविषे रस पसरता है,तब सब इन्द्रियां खिल आईं जैसे वसंतऋतुविषे फूल खिल आते हैं तैसे इंद्रियां खिल आईं तब राजा फूलोंकी शय्याते उठि खडा भया जैसे रोका हुआ विंध्याचल

पर्वत उठ आवै तैसे राजा उठा, तब दोनों लीला राजाके सन्मुख आइ खडी भईं. तब राजाने कहा, मेरे आगे तुम कौन खडी हौ, तब प्रबुद्धलीलाने कहा, हे स्वामी ! मैं तेरी पूर्व पट्टराणी लीला हौं, सदा तेरे संग रही हौं; जैसे शब्दके संग अर्थ रहता है, तैसे मैं तेरे संग सदा रही हौं. हे राजन् ! जब तू यहां शरीर त्यागिके परलोकमें गया था, तब मेरेविषे तेरा स्नेह बहुत था; तिसकारि मेरा प्रतिबिंब यह लीला तुमको भासी थी, अब यह जो और कथाका वृत्तांत है, सो मैं तुझको कहौंगी. हे राजन् ! हमारे ऊपर इस देवीने कृपा करी है, जो तुम्हारे शीशपर स्वर्णके सिंहासनपर बैठी है, यह सरस्वती सर्वकी जननी है. इसने हमारे ऊपर बडी कृपा करी है अरु परलोकते तुझे ले आई है. हे रामजी ! ऐसे सुनिकै राजा प्रसन्न हुआ अरु सरस्वतीके चरणोंपर मस्तक नमाया अरु कहत भया. राजोवाच–हे सरस्वती ! तुझको मेरा नमस्कार है तू सबकी हितकारी है अरु तुझने मेरेपर बडा अनुग्रह किया है, अब कृपा कारि मुझको यह वर देहु, कि मेरी आयुर्बल बडी होवै अरु निष्कंटक राज्य करौं अरु लक्ष्मी भी बहुत होवै अरु रोग कष्ट भी न होवै अरु मैं आत्मज्ञानकरिकै संपन्न होऊं; अर्थ यह कि, भोग अरु मोक्ष दोनों देहु. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जब इस प्रकार राजाने कहा, तब देवीने उसके शीशपर हाथ धरा अरु आशीर्वाद कहत भई. देव्युवाच–हे राजन् ! ऐसे ही होवैगा, तेरी आयुर्बल बडी होवैगी, अरु तेरा शत्रुभी कोऊ न होवैगा, तू निष्कंटक राज्य करैगा, आपदा तुझको न होवैगी अरु तू लक्ष्मी संपदा कारि संपन्न होवैगा अरु तेरी प्रजा भी बहुत सुखी रहैगी अरु तुझको देखिके प्रसन्न होवैगी अरु तेरी प्रजाविषे आपदा किसीको न होवैगी अरु तू आत्मानन्दकारि भी पूर्ण होवैगा ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जीवजीवनवर्णनं नाम अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ५९.

निर्वाणवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! इस प्रकार कहिकै देवी अंतर्धान होगई, तब प्रातःकालका समय हुआ. सब लोक जागि उठे, सूर्य भी उदय हुआ, सूर्यमुखी कमल खिल आये, तैसें राजा दोनो लीलाको कंठ लगावत भया; कृपा करिकै प्रसन्न भया; अरु आश्चर्यवान् भया तब तिस मंदिरविषे नगारे बाजने लगे, शब्द होने लगे; बहुरि२ शब्द मंगल गावैं अरु हुलास करैं, मंदिरविषे बडा हुलास आनन्द आन बढा. अंगना अनेक नृत्य करने लगीं. बडा उत्साह हुआ, विद्याधर सिद्ध देवता फूलोंकी वर्षा करने लगे; अरु लोक बडे आश्चर्यको प्राप्त भये; कि लीला परलोकते आई है; अरु भर्ताको भी और आप जैसी लीलाको ले आई है. हे रामजी! यह कथा देशते देशांतरको चली गई लोक श्रवण करिकै आश्चर्यको प्राप्त होवैं; जब इस प्रकार यह कथा प्रसिद्ध हुई; तब राजाने भी श्रवण किया; कि मैं मरिकै फेर जिया हौं; इस प्रकार विचारत भया कि, फिर मैं अभिषेक लेहुँ राजा ऐसे विचारता भया, तब मंत्री अरु मंडलेश्वरने उत्तर दक्षिण पूर्व पश्चिम चारों ओरते समुद्रका जल मँगाया अरु सब तीर्थोंका जल मँगाया. अरु राजाको राज्यका अभिषेक किया; तब चारों समुद्रपर्यंत राजा निष्कंटक राज्य करता भया; राजा अरु लीला पूर्व कथाको विचारैं. अरु आश्चर्यवान होवैं; सरस्वतीके उपदेश अरु प्रसाद अरु अपने पुरुषार्थको पायके राजा अरु दोनों लीलाओंने ऐसे सहस्र वर्षपर्यंत जीवन्मुक्त होइकै राज्य किया; कैसे राज्य किया जो मनसहित षट्इंद्रियोंको वश किया अरु यथालाभविषे संतुष्ट रहे, दृश्यभ्रम तिनका नष्ट होगया ऐसे जीवन्मुक्त होके राज्य करते भये, कैसा सुंदर राजा है; जिसकी सुंदरताकी कणिका मानो चंद्रमा है, बहुरि कैसा राजा है, तिसके तेजकी कणिका मानो सूर्य है, इसप्रकार राज्य करत भए सब प्रजाको भली प्रकार संतुष्ट करत भया, सब प्रजा राजाको देखिकै प्रसन्न होवै

बुद्धिमान् ब्राह्मणसभाको प्रसन्न करनेहारा हुआ, बहुरि विदेहमुक्त निर्वाण पदको दोनों लीला अरु तीसरा राजा प्राप्त हुए ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे लीलोपाख्याने निर्वाणवर्णनं नाम एकोनषष्टितमः सर्गः ॥५९॥

षष्टितमः सर्गः ६०.

प्रयोजनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! यह दोनों कथा मैंने तुझको विस्तारकरि श्रवण कराई हैं, एक आकाशज ब्राह्मणकी, दूसरी लीलाकी, सो दृश्य दोषके निवर्तन अर्थ कही हैं. हे रामजी ! दृश्यकी दृढता जो होरही है, तिसको त्यागिकरि अब तू दोनों इतिहासोंको संक्षेपमात्रते श्रवण कर. यह जगत् जो तुझको भासता है, सो आभासरूप है, आदिते कछु उपजा नहीं, जो वस्तु सत् होती है, तिसके निवारणविषे प्रयत्न होता है अरु जो वस्तु असत् ही होवै; तिसके निवृत्त होनेविषे यत्न कछु नहीं, इस कारणते ज्ञानवान्को सब आकाशरूप होजाता है अरु आकाशकी नाईं स्थित होता है. हे रामजी ! आदि जो ब्रह्मसत्ताविषे आभास संवेदन फुरा है सो ब्रह्मारूप होइकरि स्थित भया है ! सो ब्रह्मा पृथ्वी आदिक भूतोंते रहित है, जो आप ही आभासरूप होवे तिसके उपजाये जगत् कैसे सत् होवै ? हे रामजी ! ज्ञानवान् पुरुष आकाशरूप है; जिसको आत्मपदका साक्षात्कार हुआ है, तिसको दृश्यभ्रमका अभाव होजाता है अरु जो अज्ञानी है, तिसको जगत्भ्रम स्पष्ट भासता है, शुद्ध चिदाकाशका एक अणु जीव है, तिस जीव अणुविषे यह जगत् भासता है, तिस जगत्की सृष्टिमें तुझको क्या कहौं, नीति क्या कहौं, वासना क्या कहौं, पदार्थ क्या कहौं. हे रामजी ! और जगत् कछु उपजा नहीं, संवेदन फुरने करिकै जगत भासता है, शुद्ध संवित्विषे संवेदनरूपी नदी चली है, तिसविषे यह जगत पडा फुरता है, जब संवेदनको यत्नकरि रोकैगा, तब दृश्यभ्रम नष्ट हो

जावेगा सो प्रयत्न करना यही है कि, संवेदनको अंतर्मुख करना, जबलग आत्माका साक्षात्कार होवै, तबलग श्रवण मनन निदिध्यासनकरि दृढ अभ्यास करिये, जब साक्षात्कार हुआ तब दृश्य नष्ट होजाते हैं. हे रामजी! यह सर्व जगत् जो तुझको भासता है, सो हमको अखंड ब्रह्मसत्ता ही भासती है, जगत् मायामय है. परंतु माया भी कछु और वस्तु नहीं, ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है. राम उवाच-बडा आश्चर्य है बडा आश्चर्य है. हे मुनीश्वर! तुमने मुझको परम दशा कही है, कैसा तुम्हारा उपदेश है, जो दृश्यरूपी तृणोंको नाश करता दावाग्नि है अरु आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक तापोंको शांतकर्ता चंद्रमा है. हे मुनीश्वर! तुम्हारे उपदेशकरि मैं ज्ञातज्ञेय भया हौं अरु पांच विकल्प मैंने विचारे हैं, कि यह जगत् मिथ्या है, स्वरूपते अनिर्वचनीय है १, आत्मविषे आभास है २, इसका स्वभाव परिणामी है ३, अज्ञानकरि उपजा है ४, अरु अनादि अज्ञानपर्यंत है ५, ऐसे जानिकै मैं शांतात्मा ज्ञानवानोंकी नाईं भया हौं अरु निर्वाण मुक्तकी नाईं भया हौं. हे मुनीश्वर! और शास्त्रोंते यह तुम्हारा उपदेश आश्चर्य है; श्रवणरूपी पात्र तुम्हारे बचनरूपी अमृतकरि मैं तृप्त नहीं होता ताते यह मेरा संशय दूर करो कि, लीलाके भर्त्ताको तीन सृष्टिका अनुभव कैसे भया? प्रथम वसिष्ठकी बहुरि पद्मकी बहुरि विदूरथकी तिनके विषे कालका व्यतिक्रम देखा कि, कहूं दिन हुआ, कहूं मास हुआ, कहूँ वर्षोंका अनुभव भया सो कालका व्यतिक्रम कैसे हुआ? हे मुनीश्वर! हलोहरके बटेरेविषे जल नहीं स्थित होता अरु कुंभविषे स्थित होता है, ताते स्पष्ट कर कहौ, जो तुम्हारे वचन मेरे हृदयविषे स्थित होवैं, एकबार कहनेकरि हृदयविषे स्थित नहीं होता ताते बहुरि कहौं. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! शुद्ध संवित् सबका अपना आप है. तिसविषे जैसा संवेदन फुरता है, तैसा तैसा रूप होइ भासता है, कहूँ क्षणविषे कल्पोंके समूह बीते भासते हैं; कहूँ कल्पविषे क्षणका अनुभव होता है. हे रामजी! जिसको विषविषे अमृतभावना होती है, तिसको अमृत होइ भासता है अरु जिसको अमृतविषे

विषकी भावना होती है, तब वही विषरूप होइ भासता है, किसी पुरुषका शत्रु होता है अरु उसविषे मित्रकी भावना करता है, वह मित्ररूप होइ भासता है अरु जिसको मित्रविषे शत्रुभावना होती है, तब वही शत्रु होइ भासता है. हे रामजी ! जैसा संवेदन फुरता है, तैसा स्वरूप होइ भासता है, जिसका संवेदन तीव्र भाव अभ्यासकरिकै निर्मलभावको प्राप्त होता है तिसका संकल्प सत् होता है, जैसे चेतता है तैसा ही सिद्ध होता है,ताते संवेदनकी तीव्रता भई.हे रामजी ! जो कोऊ पुरुष रोगी होता है,तिसको एक रात्रि कल्पके समान व्यतीत होती है अरु जो अरोगी होता है तिसकी रात्रि एक क्षणकी नाईं व्यतीत होती है अरु एक मुहूर्तके स्वप्नविषे अनेक वर्षोंका अनुभव करता है, जानता है कि, मैं उपजा हौं; यह मेरे माता पिता हैं. अब मैं बडा हुआ हौं, यह मेरे बांधव हैं. हे रामजी ! एक मुहूर्तविषे एते भ्रम देखता है अरु जागे हुए एक मुहूर्त भी नहीं बीती;हरिश्चंद्रको एक रात्रिविषे बारह वर्षोंका अनुभव हुआ था, राजा लवणको एक क्षणविषे सौ वर्षका अनुभव हुआ था, ताते जैसे जैसे रूप होइकरि संवेदन फुरता है, तैसे तैसे होइकरि भासता है. हे रामजी ! ब्रह्माके एक मुहूर्तविषे मनुष्यकी आयु व्यतीत होजाती है, सो ब्रह्मा एक मुहूर्तका अनुभव करता है, मनुष्य पूर्ण आयुका अनुभव करता है अरु जो ब्रह्मा अपनी संपूर्ण आयुका अनुभव करता है, सो विष्णुका एक दिन होता है, ब्रह्माका आयुर्बल व्यतीत होता है अरु विष्णुको एक दिनका अनुभव होता है, ताते जैसे जैसे संवेदनविषे दृढता होती है, तैसा तैसा भान होता है. हे रामजी ! जेता कछु जगत् तू देखता है, सो संवेदन फुरणे विषे स्थित है, जब संवेदन स्थित होता है, तब न दिन भासता है, न रात्रि भासती है,न कोऊ पदार्थ भासते हैं,न अपना शरीर भासता है, सो केवल आत्मतत्त्व मात्र सत्ता रहती है, ताते तू देख कि, सब जगत् मनके फुरणे विषे होता है, जैसा जैसा फुरता है; तैसा तैसा रूप हो भासता है. कटुकविषे जिसको मधुरकी भावना होती है, तब कटुक तिसको मधुर होजाता है अरु मधुरविषे जिसको कटुक भावना होती है, तब मधुर भी तिसको कटुकरूप होइ जाता है अरु स्वप्नविषे शून्य

स्थानमें नानाप्रकारके व्यवहार होते भासते हैं अरु अस्थिर ही होता है, स्वप्नविषे दौडता फिरता है, ताते जैसा फुरणा मनविषे होता है, तैसा ही हो भासता है. हे रामजी! जो कोऊ पुरुष नौकाविषे बैठा होता है, तिसको नदीके तट वृक्षोंसहित दौड़ते भासते हैं और स्थिर पदार्थ चलते भासते हैं, जो विचारवान् है, सो चलते भासनेविषे स्थिर जानते हैं अरु जो पुरुष भ्रमता है, तिसको स्थिरीभूत मंदिर भ्रमते भासते हैं अरु जो विचारविषे दृढ है, तिसको भ्रमते भासनेविषे भी अचलबुद्धि होती है; ताते जैसा निश्चय होता है, तैसा तैसा होइ भासता है. हे रामजी ! श्वेत पदार्थ होता है, अरु किसीके नेत्रविषे दूषण होता है, तिसको पीत वर्ण भासता है; अरु जिसके शरीरविषे वात, पित्त, कफका क्षोभ होता है, तब इसको सर्व पदार्थ विपर्यय भासते हैं, पृथ्वी आकाशरूप पड़ी भासती है, आकाश पृथ्वीरूप हो भासता है, अरु चल पदार्थ अचलरूप भासता है, अचल पदार्थ चलता भासत है. हे रामजी ! स्वप्नविषे अंगना असत्‌रूप होती है, परंतु भ्रांतिकरिकै उसको स्पर्श करती है अरु प्रसन्न होता है, तिस कालविषे प्रत्यक्ष भासती है, अरु जैसे बालकको परछायेविषे वैताल भासता है, सो असत् ही सत्‌रूप होइ भासता है, अर्थ यह कि भयको देता है. हे रामजी ! शत्रु होता है अरु जो तिसविषे मित्रभावना होती है, तब वह शत्रु भी मित्रसुहृद् होइ भासता है. अरु जो उसविषे शत्रुभाव होता है, तब वह सुहृद् शत्रुरूप होइ भासता है, जैसे जेवरीविषे सर्प है नहीं; परंतु भ्रमकरिकै सर्प भासता है अरु भयको देखता है अरु बांधवमें जो उसविषे बांधवकी भावना न करै तब बांधव भी अबांधव हो भासता है अरु अबांधव भी सो भावनाके अभावते बांधव होजाता है. हे रामजी ! शून्यस्थानमें स्वप्नविषे बड़े क्षोभ भासते हैं; और निटवर्त्ती जागेते निकटको कछु नहीं भासता स्वप्नवालेको स्वप्नका अनुभव होता है अरु जागृतवालेको जागृतका अनुभव होता है, इत्यादिक पदार्थ विपर्यय होइ भासते हैं; सो भ्रमकरि भासते हैं, जब मन फुरता है तब ही भासता है, तैसे लीलाके भर्त्ताको भी ऐसी सृष्टिका अनुभव हुआ जैसे जगत्‌की मूर्त्तिका स्वप्नमें बहुत

कालका अनुभव होता है, तैसे लीलाके भर्त्ताको भी हुआ था, जैसा जैसा मनका फुरणा होता है, तैसा तैसा रूप चेतनसंवित्‌विषे भासता है अरु मुझको सदा ब्रह्मका निश्चय है, ताते सब जगत् हमको ब्रह्मस्वरूप भासता है, जिसको जगत्भ्रम दृढ है, तिसको जगत् ही भासता है. हे रामजी ! जेता कछु जगत् भासता है सो आदिते कछु उपजा नहीं, सब आकाशरूप है, रोकनेवाली भीत कोऊ नहीं, बड़े विस्तारकरि जगत् है, परंतु स्वप्नवत् है, जैसे स्तंभविषे कोरे बिना पुतली शिल्पीके मनविषे भासती है, स्तंभविषे कछु बनी नहीं, तैसे आत्मरूपी स्तंभ है, तिसविषे संवेदन जगत्‌रूपी पुतलियोंको रचता है, परंतु पदार्थ कछु हुआ नहीं आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है. हे रामजी ! जैसे एक स्थानविषे दो पुरुष सोये होवैं; तिनविषे एक जागृत होवै, दूसरा स्वप्नविषे होवै, जो स्वप्नविषे है, तिसको बडे युद्ध होते पडे भासते हैं अरु जागृतको आकाशरूप है, तैसे जो प्रबोध आत्मज्ञानवान् है, तिनको जगत्‌का सुषुप्तिकी नाईं अभाव है. अरु जो अज्ञानी हैं, तिनको नानाप्रकारमें व्यवहारोंसहित जगत् स्पष्ट भासता है, जैसे वसन्तऋतुविषे पत्र फूल गुच्छे रससहित भासते हैं, तैसे आत्मसत्ता चैन्यताकरिके जगत्‌रूप भासती है, जैसे स्वर्णविषे द्रवता सदा रहती है; परंतु जब अग्निका संयोग होता है, तब उसविषे द्रवता भासती है. हे रामजी ! आत्मा अरु जगत्‌विषे कछु भेद नहीं, जैसे अवयवी अरु अवयवोंविषे कछु भेद नहीं; जैसे पृथ्वी अरु गंधविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे कछु भेद नहीं, ब्रह्मसत्ता ही संवेदनकरिकै जगत्‌रूप होइ भासती है अरु कछु दूसरी वस्तु नहीं; जब महाप्रलय होता है अरु सर्ग नहीं होता तब कार्यकारणकी कल्पना कोऊ नहीं होती, केवल चिन्मात्रसत्ता होती है, तिसते जो चिदाकाश बहुरि जगत् भासता है, तौ वही रूप हुआ अरु जो तू कहै इस जगत्‌का कारण स्मृति होती है, तौ सुन. हे रामजी ! जब महाप्रलय होता है, तब ब्रह्माजी तौ विदेहमुक्त होता है, बहुरि वह जगत्‌का कारण कैसे होवै ? अरु जो तू स्मृतिका कारण मानै, तौ स्मृति भी अनुभवविषे होती है, जो स्मृतिते जगत् हुवा तौ भी अनुभवरूप हुआ. राम उवाच–हे भग-

वन् ! पद्मराजाके मंत्री टहलुए सब लोक विदूरथको जाय प्राप्त हुए सो कैसे हुए यह वार्त्ता बहुरि कहो. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! केवल चेतनसंवित् सबका अपना आप है, जैसा जैसा तिस संवित्के आश्रयते संवेदन फुरता है, तैसा तैसा रूप होइ भासता है. हे रामजी ! जब राजा विदूरथ मृतक होने लगा तब राजाकी वासना उनविषे वहती थी अरु मंत्री टहलुए आदिक राजाके अंग हैं,इस कारणते तैसे ही मंत्री टह-लुए राजाको प्राप्त भये, जैसे मणिकी किरणें मणिके अंग हैं, तैसे मंत्री टहलुए आदिक सामग्री राजाके अंग हैं, जैसे स्वप्नविषे कोऊ आपको देखै, कि मैं इस कुलविषे उपजा हौं, यह मेरा कुल आचार है, मैं राजा हौं, यह मेरे मंत्री हैं, टहलुए हैं,और अनेक पदार्थ हैं,तैसे ही मृतक हुआ राजा विदूरथ देखत भया है. हे रामजी ! जैसी जैसी भावना संवेदन विषे दृढ होती है, तैसा रूप होइ भासता है, एक चल पदार्थ होते हैं; एक अचल पदार्थ होते हैं, जो अचल पदार्थ होता है, तिसका प्रतिबिंब आदर्शविषे भासता है अरु चल पदार्थ रहता नहीं भासता, ताते उनका प्रतिबिंब नहीं, भासता तैसे जिस पदार्थकी तीव्र संवेगभावना होती है, तिसका प्रतिबिंब चेतन दर्पणविषे भासता है, अन्यथा नहीं भासता, जैसे तीव्र वेगवान् बडा नद होता है, सो समुद्रको शीघ्रही जाय प्राप्त होता है और नहीं प्राप्त हो सकते तैसे जिसकी दृढवासना होती है, तिसके अनुसार शीघ्र जाय पावता है.हे रामजी ! अनेक वासना जिसके हृदयविषे होती हैं अरु जिसकी तीव्रता होती है; तिसका जय होता है. जैसे समुद्रविषे अनेक तरंग होते हैं, कई उपजते हैं, कई नष्ट होजाते हैं कई सदृश होते हैं, कई विपर्यय होते हैं, तैसे उसको सदृश मंत्री टहलुए हुए. हे रामजी ! तैसे अनेक सृष्टि एक एक चिद्अणुविषे स्थित होती है वास्तवते कछु नहीं, चिदाकाश ही चिदाकाशविषे स्थित है अरु यह जो जगत् भासता है,सो आकाश रूप ही है,जो जागृतरूप होइकारि अस-त् ही सत्‌रूपकी नाईं भासता है;जैसे पत्र फूल फल सब वृक्षरूप हैं वृक्ष ही ऐसे रूप होइकारि स्थित हैं, तैसे अनंतशक्ति परमात्मा अनेकरूप होइ-कारि भासता है. हे रामजी ! द्रष्टा, दर्शन, दृश्य जो त्रिपुटी भासती

है; सो ज्ञानीको अजन्मा पद भासती है अरु अज्ञानीको द्वैतरूप जगत् होइकरि भासता है, कहूं शून्य भासता है, कहूं तम भासता है, कहूं प्रकाश भासता है अरु देश, काल, क्रिया, द्रव्य आदिक सब जगत् है सो सब आदि, अन्त, मध्यते रहित स्वच्छ आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है. जैसे सोमजलते तरंग भी होते हैं, सो जल ही रूप हैं, तैसे अहं त्वम् आदिक जगत् भी बोधरूप है सदा अपने आपविषे स्थित है तिसविषे द्वैतकल्पनाका अभाव है ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने प्रयोजन-वर्णनं नाम षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमः सर्गः ६१.

जगत्किंचनवर्णनम् ।

राम उवाच-हे भगवन् ! अहंत्वम् आदिक जो दृश्य भ्रांति है सो कारण विना परमात्माते कैसे उदय हुई है ? जिस प्रकार मैं समझौं तिसी प्रकार मुझको बहुरि समझाओ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जेता कछु कारणकार्य जगत् भासता है, तिसका उदय होना आदि परमात्माते सब ही हुआ है, अर्थ यह जो संवेदनके फुरणेकरि इकट्ठे ही पदार्थ भासि आये हैं अरु सर्वदा सर्व प्रकार सर्वात्मा अजरूप अपने आपविषे स्थित हैं, हे रामजी ! यह सर्व शब्द अरु अर्थरूप कलना भासी है, सो ब्रह्मरूप है, ब्रह्मते इतर कछु नहीं अरु ब्रह्मसत्ता सर्व शब्द अर्थकी कलनाते रहित अपने आपविषे स्थित है, जैसे सुवर्णते इतर भूषण नहीं अरु जलते इतर तरंग नहीं तैसे ब्रह्मते इतर जगत् नहीं ब्रह्मस्वरूप है, हे रामजी ! ईश्वर जो आत्मा है, सो जगतरूप है, जगत् ईश्वररूप है, जैसे स्वर्ण भूषणरूप है, भूषण स्वर्ण है, अर्थ यह जो स्वर्णविषे भूषणशब्द अरु अर्थकलिपत है, वास्तव नहीं, तैसे जगत् आत्माका आभासरूप है, वास्तवते कछु नहीं, हे रामजी ! जेता कछु जगत् है सो ब्रह्मरूप है, ब्रह्मते इतर कछु

नहीं; जैसे अवयवीते भिन्न अवयव नहीं होता, तैसे आत्माते अवयवी जेता कछु जगत् है, सो भिन्न नहीं, आत्माविषे संवेदनके फुरणेकरि तन्मात्रा फुरी है आत्माविषे इनका उपजना सम हुआ है, पाछे विभागकल्पना हुई है; जो तिनते भूत हुए हैं इत्यादिक जगत्‌रूप कैसा है, सो आत्माते अन्य नहीं; जैसे शिलाविषे चितेरा भिन्न भिन्न पूतलीको कल्पता है. सो शिलारूपही है. इतर कछु नहीं, तैसे अहं त्वम् आदिक जगत् चिद्घन आत्माविषे मनरूपी चितेरेने कल्पी है; सो चिद्घनरूप ही है. इतर कछु नहीं; जैसे जलविषे तरंग स्थित होते हैं; सो जलरूप ही हैं, तरंगोंका शब्द अरु अर्थ जलविषे कोऊ नहीं. तैसे आत्माविषे जगत् स्थित है. अरु आत्मा जगत्के शब्द अरु अर्थते रहित है. हे रामजी ! जगत् परमपदते भिन्न नहीं; अरु परमपद जगत् विना नहीं, केवल चिद्रूप अपने आपविषे स्थित है अरु जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद कछु नहीं, स्पंद अरु निस्पंद दोनों रूप वायुके हैं; अरु जब स्पंदरूप होता है, तब स्पर्शरूप होइकरि भासता है अरु निस्पंद हुए स्पर्श नहीं भासता, तैसे जगत् अरु ब्रह्मविषे भेद कछु नहीं अरु जब संवेदन किंचित् रूप होता है, तब जगत्‌रूप होय भासता है; अरु संवेदनके निस्पंद हुएते जगत नहीं भासता, अरु आत्मसत्ता सदा एकरूप है, हे रामजी ! जब संवेदन फुरणेते रहित होइकरि आत्मपदविषे स्थित होवै, तब संकल्परूप जगत् बहुरि भासै सो भी आत्मरूप भासे जैसे वायुको स्पंद निस्पंद दोनों रूप अपना आप भासता है, तैसे इसको भासता है, जैसे वायुविषे स्पंदता वायुरूप स्थित है. तैसे आत्माविषे जगत् आत्मरूपकरि स्थित है, जैसे तेज अणुका प्रकाश मंदिरविषे होता है. तब बाहर भी प्रकाश प्रगट होता है तैसे जब केवल संवित् मात्रविषे संवेदन स्थित होता है; तब फुरणेविषे भी संवित्मात्र ही भासता है. हे रामजी ! जैसे रस तन्मात्राविषे जल स्थित होता है, तैसे आत्माविषे जगत् स्थित है, जैसे गंधतन्मात्राके अंतर संपूर्ण पृथ्वी स्थित है, तैसे किंचनरूप जगत् आत्माविषे स्थित है, सो आत्मसत्ता निराकार चिन्मात्ररूप है, उदय अरु अस्तते रहित अपने आपविषे स्थित है, प्रपंचभ्रम तिसविषे कोऊ नहीं. हे रामजी ! जो

ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनको दृढीभूत जगत् भी आकाशरूप भासता है अरु जो अज्ञानी हैं, तिनको असत्‌रूप जगत् भी सत्‌रूप होइ भासता है. हे रामजी ! जैसा जैसा संवेदन चित्तसंवित्‌विषे फुरता है, तैसा तैसा रूप जगत् होइ भासता है, यह जेते तत्त्व हैं. अरु तन्मात्रा हैं सो सब चित्तसंवेदनके फुरणेकरि स्थित हुए हैं; जैसा जैसा तिसविषे फुरणा होता है, सोई होइ करि भासता है, काहेते जो आत्मा सर्वशक्तिमान् है, जिस जिस पदार्थका फुरणा फुरता है, सोई अनुभवविषे सत्‌रूप होइकरि भासता है; अरु जो कछु पंचज्ञानेंद्रिय छठा मनका विषय होता है सो सब असत्‌रूप है अरु आत्मसत्ता इनते अतीत है अरु विश्व भी क्या रूप है, जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् स्थित है; जैसे तेज अरु प्रकाश अनन्यरूप हैं, तैसे आत्मा अरु जगत् अनन्यरूप हैं, जैसे स्तंभविषे शिल्पी पुतलियां देखता है, जैसे मृत्तिकाके पिंडविषे कुलाल वर्तन देखता है, जैसे भींत ऊपर चितेरा मूर्ति रंगमें लिखता है सो अनन्यरूप है,तैसे परमात्माविषे सृष्टि अनन्यरूप है, हे रामजी ! जैसे मरुस्थलविषे मृगतृष्णाका जल अरु तरंग असत् ही सत्‌रूप हो भासता है तैसे आत्माविषे असत्‌रूप जगत् त्रिलोकी भासती है, जब चित्तसंवित्-विषे संवेदन फुरता है,तब जगत् भासता है अरु जब संवेदन नहीं फुरता तब जगत् भी नहीं भासता अरु जगत् कछु ब्रह्मते भिन्न नहीं; जैसे बीज अरु वृक्षविषे कछु भेद नहीं; जैसे क्षीर अरु मधुरताविषे भेद नहीं; जैसे मिरच अरु तीक्ष्णताविषे कछु भेद नहीं; जैसे समुद्र अरु तरंगविषे कछु भेद नहीं; जैसे वायु अरु स्पंदविषे कछु भेद नहीं; तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे कछु भेद नहीं; जैसे अग्निविषे उष्णता स्वाभाविक स्थित है, तैसे निराकार आत्माविषे सृष्टि स्वाभाविक ही स्थित है. हे रामजी !यह जगत् ब्रह्मरूपी रत्नका किंचन है, जैसा जैसा किंचन होता है,तैसा तैसा होइकरि भासता है, जो किंचनरूप है, अकारण हुए जो पदार्थ अकारक होता है, अरु जिस अधिष्ठानविषे भासता है, तिससों अनन्यरूप होता है, अधिष्ठानते भिन्न उसकी सत्ता नहीं होती, तैसे यह जगत् आत्माविषे अनन्यरूप होता है, कछु उपजा नहीं; परंतु संवेदनके फुरणेकरि भासता

है, जेता जगत् है अरु वासना है, तिनका बीज संवेदन है, इसकरि जगत्भ्रम है, ताते संवेदनके अभावका पुरुषार्थ करौ, जब संवेदनका अभाव होवैगा, तब जगत्भ्रम नष्ट होजावैगा अरु वास्तवते न कछु उपजा है न कछु नष्ट होता है, सर्व शांतरूप चिद्घन ब्रह्मशिला घनकी नाईं अपने आपविषे स्थित है. हे रामजी! चित्तपरमाणुविषे चैत्यताकरिके अनेक सृष्टि भासती हैं, तिन सृष्टिविषे जो परमाणु हैं, तिन परमाणुओंविषे अंतर और सृष्टि स्थित है, तिनकी संख्या कछु नहीं; जैसे जलविषे तरंग अनेक होते हैं; कई गुप्तरूप होते हैं, कई प्रगट होते हैं, सो जलकी शक्तिरूप हैं; जैसे जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति अवस्था जीवोंके अंतर स्थित हैं; कई गुप्त हैं; कई प्रगटरूप हैं. हे रामजी! जबलग इसका संवेदन द्वैतसाथ मिला हुआ है, तबलग सृष्टिका अंत नहीं, जब चित्त उपशम होवैगा, तब जगत्भ्रम मिटि जावैगा, जब कछु भी भोगोंविषे वृत्ति न उपजे तब जानिये कि, आत्मपद प्राप्त होवैगा, यह श्रुतिका निश्चय है. हे रामजी! ज्यों ज्यों इसका ममत्व दूर होता है, त्यों त्यों बन्धनोंते मुक्त होता है; जब अहंभाव जो जीवत्वभाव है तिसका निर्वाण होता है, तब जन्मोंकी जो परंपरा संपदा है, सो भी नष्ट होजाती है, केवल शुद्धरूप ही होता है तब तिन पुरुषोंको स्थावरजंगमरूप जगत् सब आत्मरूप होता है, जैसे समुद्रको तरंग बुद्बुद सब अपना आपरूप भासता है, तैसे ज्ञानवान्को सब जगत् आत्मरूप भासता है. हे रामजी! शुद्ध आत्मसत्ताविषे जो संवेदन फुरा है, सो आपको ब्रह्मारूप जानत भया है, तिस ब्रह्माने आगे भावना करिकै संकल्परूप नानाप्रकारका जगत् रचा है, तिसको असत्यरूप अंतर अनुभव करता भया है, तिसविषे कहूं निमेषविषे अनेक युगोंका अंत भासता है, कहूं अनेक युगोंविषे निमेषका अनुभव होता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जगत्किंचनवर्णनं नाम एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ६२.

दैवशब्दार्थविचारवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! चिद् परमाणुविषे जो निमेष होता है, तिसके लाखवें भागविषे जगतोंके अनेक कल्प फुरते हैं, तिन सृष्टिविषे जो परमाणु हैं, तिनविषे सृष्टि फुरती है, जैसे समुद्रविषे तरंग फुरते हैं, सो जलरूप हैं; तरंग शब्द अरु तिसका अर्थ भ्रमरूप है, तैसे ही आत्माविषे भ्रमरूप अनेक सृष्टि फुरती हैं; जैसे मरुस्थलविषे मृगतृष्णाकी नदी चलती दृष्टि आती है, तैसे आत्माविषे यह जगत् भासता है, जैसे स्वप्नसृष्टि भासती है, जैसे गंधर्वनगर भासता है,जैसे कथाका अर्थ चित्तविषे आय फुरता है, जैसे संकल्पपुर भासता है, तैसे जगत् असत्‌रूप सत् हो भासता है. राम उवाच-हे ज्ञानवानोंविषे श्रेष्ठ ! जिस पुरुषको विचारद्वारा सम्यक् ज्ञान हुआ अरु निर्विकल्प आत्मपदकी प्राप्ति भई है, तिसको देह अपने साथ कैसे भासता है ? अरु देह उसका कैसे रहता है. अरु देह प्रारब्धकरिके उसका शरीर कैसे रहता है ? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! आदि जो ब्रह्मशक्ति विषे संवेदन फुरा है,तिसका नाम नीति हुआ है, तिसविषे जो संभावना धारी है कि, यह पदार्थ ऐसे होवैगा अरु इसकारि होवैगा, एता काल रहैगा. सो अनेक कल्पपर्यंत ऐसे ही होता है ? जेता काल उसने धारा है तेता कालका नाम नीति है, महासत् भी तिसको कहते हैं; महाचेतना भी तिसको कहते हैं, महाशक्ति भी तिसको कहते हैं, महाअदृष्ट, महाकृपा भी तिसको कहते हैं, महाउद्भव भी तिसको कहते हैं, अर्थ यह जो अनंत ब्रह्मांडोंकी उपजानेहारी है, जैसा फुरणा दृढ हुआ है तैसा रूप होइकारि स्थित है; जो यह स्थावररूप है, यह जंगमरूप है,यह दैत्य है, यह देवता है, यह नाग है, यह नागिनी है, ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत जैसे तिसविषे अध्यास है तैसे ही तिस प्रकार स्थित है, स्वरूपते ब्रह्मसत्ताका व्यभिचार कदाचित् नहीं हुआ, सदा अपने आपविषे स्थित है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनको सब ब्रह्मस्वरूप

भासता है अरु जो अज्ञानी हैं, तिनको जगत् अरु नीति भी भिन्न भासती है, ज्ञानवान्‌को सब अचल ब्रह्मसत्ता ही भासती है; अज्ञानीको चलनरूप जगत् भासता है, सो जगत् कैसा है ? जैसे आकाशविषे वृक्ष भासता है, जैसे शिलाके उदरविषे मूर्ति होती है, सो शिलारूप ही होती है, तैसे यह जगत् ब्रह्मविषे है, जो ज्ञानवान् हैं, तिनको सर्ग अरु निमित्त सब ज्ञानरूपी भासता है; जैसे अवयवीके अवयव अपना रूप होता है, तैसे ब्रह्मसत्ताके अवयव ब्रह्म नित्य सर्गादिक अपना रूप है, हे रामजी ! तिस नीतिको दैव कहते हैं, जो कछु किसीको प्राप्त होता है, सो तिस दैवकी आज्ञा करिकै प्राप्त होता है. काहेते जो आदि यही निश्चय धरा है, जो इस साधन करि यह फल इसको प्राप्त होवेगा; जैसा साधन होवै तैसा फल अवश्य सर्वको दैवते प्राप्त होता है, इसकारणते नीतिको दैव कहते हैं, और दैवको नीति कहते हैं. हे रामजी ! यह पुरुष जो कछु पुरुषार्थ करता है, तिसके अनुसार फलको प्राप्त होता है, इस कारणते इसका नाम नीति है, तिसहीका नाम पुरुषार्थ है, तुम जो मुझको दैव अरु पुरुषोंका निर्णय पूछा अरु मैंने कहा, तिसकी तुम पालना करौ इसका नाम पुरुषार्थ है, तिसका जो फल तुमको प्राप्त हुआ, तिसका नाम दैव है. हे रामजी ! जो पुरुष ऐसे दैवपरायण हुआ, जो मुझको दैव भोजन करावैगा, सो करौंगा अरु मौन धारिकै अक्रिय होइ बैठे, तिसको जो आय प्राप्त होवै सो भी नीति है अरु जो पुरुष भोगोंके निमित्त पुरुषार्थ करता है, सो भोगोंको भोगैगा अरु अनेक शरीरोंको मोक्षपर्यंत धारेगा यह भी नीति है. हे रामजी ! जो आदि संवित्‌विषे संवेदन फुरिकरि भवितव्यता धरी है, तिस ही प्रकार स्थित है, तिसका भी नाम नीति है, तिस नीतिके उल्लंघनको ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक भी समर्थ नहीं, सब तिनके अनुसार स्थित हैं, तौ और कैसे उल्लंघन सकै ?. हे रामजी ! जो पुरुष पुरुषार्थको त्याग बैठे हैं, तिनको फल नहीं प्राप्त होता, यह भी नीति है अरु जो पुरुष फलके निमित्त पुरुषार्थ करता है, तिसको फल प्राप्त होता है, यह भी नीति है अरु जो प्रयत्नको त्याग करि निष्क्रिय होइ बैठे हैं अरु मनकरि विषयोंकी चित्तमें वासना करते हैं, सो निष्फल

ही रहते हैं अरु जो पुरुष और कर्तव्यको त्यागकरि चित्तकी वृत्तिमें शून्य दैवपरायण हो रहे हैं, विषयोंकी चित्तमें वासना नहीं करते, तिनको सफलता ही होती है. काहेते कि; फुरणेते रहित होना भी पुरुषार्थ है यह नीति है, जो अर्थ चिंतवणेवालेको भी नहीं प्राप्त होता अरु अयाचकको प्राप्त होता है. हे रामजी ! सोई पुरुषार्थ सफल है, जो आत्मबोधके निमित्त होवै, जब ब्रह्मसत्ताकी ओर तीव्र अभ्यास होता है, तब परमपदकी अवश्य प्राप्ति होती है, जब परमपद पाया, तब सब जगत् चिदाकाशरूप होय भासता है, नीति आदिक जो विस्तार कहा है, सो सर्व भ्रमरूप है ब्रह्मसत्ता ही ऐसे होइ भासती है, जैसे पृथ्वीविषे रससत्ता ही तृण, वेलि, गुच्छे, फूलरूप होइकरि स्थित है, तैसे नीति आदिक सब जगत् होइकरि ब्रह्म ही स्थित है और वस्तु कछु नहीं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे दैवशब्दार्थविचारवर्णनं नाम द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ६३.

चित्ताविकारवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जो कछु तुझको भासता है, सो सर्व प्रकार सर्वकाल सर्व ओरते ब्रह्मतत्त्व सर्व ओर करि सर्वात्मा होइकरि स्थित भया है, सो अनन्त आत्मा है, जब तिसविषे चितशक्ति प्रगट होती है, अर्थ यह जो शुद्ध चेतनमात्रविषे अहंफुरणा होता है, तब आगे जगत् भासता है, कहूं उपजता भासता है, कहूं नष्ट होता भासता है, कहूं हुल्लास भासता है, कहू चित्त भासता है, कहूं अकिंचन भासता है , कहूं प्रगट, कहूं अप्रगट भासता है; नानाप्रकारका जगत् है, जहां जैसा तीव्र अभ्यास होता है, तहाँ तैसा होइकरि भासता है, काहेते जो आत्मा सर्वशक्ति सर्वरूप है, जैसा जैसा फुरणा तिसविषे दृढ होता है, सोईरूप होइकरि भासता है. हे रामजी ! यह जो नानाप्रकारकी शक्तियां कहीं

हैं, सो वास्तव आत्माते इतर कछु नहीं, बुद्धिमानोंने समुझावनेके निमित्त नानाप्रकारकी विकलपजाल कही है, आत्माविषे विकलपजाल कोऊ नहीं, जैसे जलतरङ्गविषे कछु भेद नहीं, जैसे सुवर्णभूषणोंविषे भेद कछु नहीं, जैसे अवयवी अरु अवयवविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु शक्तिविषे भेद नहीं. हे रामजी ! एक संवित् है, एक संवेदन है, संवित् जो है, सो वास्तव है अरु संवेदन कल्पना है, जब संवित्‌विषे चिन्मात्र संवेदन फुरता है, तब वह जैसे चेतता जाता है, तैसे आगे होइ-करि स्थित होता है, शुद्धचिन्मात्र संवित्‌विषे अंतर अरु बाहिर कल्पना कोऊ नहीं, जब स्वभावते किंचनरूप संवेदन होता है, तब आगे कछु देखता है, तिस देखनेकारि नानाप्रकारके आकार भासते हैं, सो और तौ कछु नहीं, सर्व ब्रह्म ही है. हे रामजी ! शक्ति अरु शक्तिमान्‌विषे भेद अज्ञानी देखते हैं अरु अवयवीअवयव भेद भी कल्पते हैं, परमार्थते भेद कछु नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है; तिसके आश्रय संकल्पजाल आभास होती है, जिस संकल्पकी तीव्रता होती है, सो सत होवै अथवा असत् होवै, परंतु तिसहीका भान होता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्ताविकारो नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ६४.

बीजांकुरवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह जो सर्वगत देव परमात्मा महेश्वर है, सो स्वच्छ अनुभव परमानंदरूप है; आदि अंतते रहित है; तिसशुद्ध चिन्मात्र परमानंदते प्रथम जीव उपजा नहीं; तिसते चित्त उपजा; चित्तते आगे जगत् उपजा है. राम उवाच– हे भगवन् ! अनुभव परिणाम करिकै जो शुद्ध ब्रह्मतत्त्व सर्वव्यापी द्वैतते रहित स्थित है, तिसविषे तुच्छरूप जीव कैसे सत्यताको पाता भया है !. वसिष्ठ उवाच– हे रामजी ! ब्रह्म

सदाभास है, अर्थ यह जो असत्‌रूप जगत् जिसकरि सत् भासता है अरु स्वच्छ है, अर्थ यह जो आभासरूपी जगत्‌ते भी रहित है अरु बृहत् अर्थ यह जो बड़ा है, सो बडा भी दो प्रकारका है, अविद्याकृत और विद्याकृत जगत्‌करि जो बडा है, सो अविद्याकी बडाई है, मिथ्या है अरु ब्रह्म बडा है, सो सर्वात्मकरूप है, सो सर्व देश सर्व काल सर्व वस्तुसों पूर्ण है, अविद्याकृत देशकालवस्तुते रहित निराकार है, सो ज्ञानीका विषय है,ताते बृहत् है अरु परम चेतन है अरु भैरव है, अर्थ यह जो जिसके भयकरि चन्द्रमा सूर्य अग्नि वायु अरु जल अपनी मर्यादामें चलते हैं, परमानंद अविनाशी है, सर्व ओरते पूर्ण सम है, शुद्ध है, अचिंत्य है, अर्थ यह जो वाणीकरि कहा नहीं जाता, ऐसा परमशांत पद है, क्षोभते रहित चिन्मात्र है, ऐसी जो आत्मसत्ता ब्रह्म है, तिसका जो स्वभावसंपत् है, तिसका नाम जीव है, अर्थ यह जो शुद्ध चिन्मात्रविषे अहम् ऐसे जो फुरणा है, तिसका नाम जीव है, तिस अनुभवरूपी दर्पणविषे अहंरूपी प्रतिबिंब फुरणेका नाम जीव कहते हैं, सो जीव अपने शांतपदको त्यागकी नाईं स्थित होता है, सो चिदात्मा ही फुरणेद्वारा आपको जीवरूप जानता भया है, जैसे समुद्र ही द्रवता करिकै तरंगरूप होता है; समुद्रतरंगविषे भेद कछु नहीं तैसे ब्रह्म ही जीवरूप है, ब्रह्म अरु जीवविषे भेद कछु नहीं, जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद कछु नहीं, जैसे बर्फ अरु शीतलताविषे भेद कछु नहीं; तैसे ब्रह्म अरु जीवविषे भेद कछु नहीं. हे रामजी ! चित्तरूपी जो आत्मतत्त्व है, सो अपने स्वभाववशते मायाकरिकै संवेदनसहित जीवरूप कहते हैं, सो जीव आगे फुरनेकरिकै बडे विस्तारको धारता है जैसे इंधनकरिके अग्निके बहुत अणु होते हैं अरु बडे प्रकाशको प्राप्त होते हैं, तैसे जीव फुरणेकरि जगत्‌रूपको प्राप्त होता है जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, सो नीलता कछु भिन्न वस्तु नहीं, तैसे अहंभावकरिकै ब्रह्मविषे जीवरूप भासता है अरु अहंकृतिको अंगीकारकरिकै कल्पित रूपकी नाईं स्थित होता है; जैसे घनकी शून्यताकरिकै आकाशमें नीलता भासती है, तैसे स्वरूपके प्रमाद करिकै देशकालवस्तुके परिच्छेदसहित अहंकाररूपी जीव

भासते हैं, वास्तवते चिदाकाश ही चिदाकाशविषे स्थित है जैसे वायुकरिकै समुद्र तरंगरूप होता है; तैसे संवेदनके फुरणेकरि आत्मसत्ता जीवरूप होती है, सो जीव चैत्योन्मुखत्वकरिके एती संज्ञाको पाता है, चित्त कहिये, जीवकहिये मन बुद्धि अहंकार माया प्रकृतिसहित सब तिसहीके नाम हैं,सो जीव संकल्प करिकै पंचभूत तन्मात्राको चेतता भया, तब तिन पंच तन्मात्राके आकारते अणुरूप होइकरि स्थित भया; तिसते अनउपजे ही उपजेकी नाईं स्थित भये अरु भासने लगे, बहुरि वही चित्तसंवेदन सो अणु अगीकार करिकै जगत्को रचता भया, जैसे बीजते सत् अंकुर वृक्ष होता है, तैसे संवेदन विस्तारको पावत भया, प्रथम एक अंडरूपी होइकरि स्थित भया, तिस अंडको फोडत भया तब तिसविषे जगत् भासने लगा, जैसे गंधर्वनगर भासता है, जैसे स्वप्न-सृष्टि भासती है, तैसे जगत् भासने लगा, तिसते भिन्न भिन्न देह अरु भिन्न भिन्न नाम कल्पे, जैसे मृत्तिकाकी सेना बालक कल्पता है, तिसके भिन्न भिन्न नाम रखता है, तैसे स्थावर जंगम आदिक नाम कल्पना-करी यह पृथ्वी, यह जल, अग्नि, वायु, आकाश हैं, तिन पांचों भूतोंकी सृष्टि संकल्पते उपजत भई. हे रामजी ! आदि ब्रह्मते जो जीव फुरे तिसका नाम ब्रह्मा है, सो ब्रह्मा आत्माविषे आत्मरूप होइकरि स्थित है, तिसते आगे क्रमकरिकै जगत् हुआ है, जैसे वह चेतता है, तैसा होइकरि स्थित होता है, जैसे समुद्रविषे द्रवताकरिकै तरंग होते हैं, तैसे ब्रह्मविषे चित्त स्वभावकरिके जीव होता है, सो जीव जब प्रमादकरिके अनात्म-भावको धरने लगा तब कर्मोंकरि बध्यमान होने लगा.जैसे जल जब दृढ जडताको अंगीकार करता है, तब बर्फरूप होइकरि पत्थरसमान होता है, तैसे जीव जब अनात्मविषे अभिमान करता है, तब कर्मोंके बंधनमें आता है हे रामजी ! कर्मोंका बीज संकल्प है अरु संकल्प जीवते फुरता है अरु जीवत्व भाव इसको तब होता है, जब शुद्ध चेतनमात्र स्वरूपते इसका उत्थान होता है, उत्थान अर्थ यह, जब प्रमाद होता है तब इसको प्रमाद जीवत्व भाव होता है, जब जीवत्वभाव होता है,तब आगे अनेक संकल्प-कल्पना फुरती हैं; तिन संकल्पकल्पनाते कर्म होते हैं; कर्मोंते जन्ममरण

आदिक नानाप्रकारके विकार होते हैं; जैसे बीजते अंकुर पत्र होते हैं; आगेते फूल फल टास होते जाते हैं; तैसे संकल्प कर्मोंते नानाप्रकारके विकार होते हैं, जैसे जैसे कर्म जीव करता है, तिनके अनुसार जन्म मरण अधः ऊर्ध्वको प्राप्त होता है. हे रामजी ! कर्म नाम मनके फुरणेका है; फुरणेका नाम चित्त है अरु फुरणेका नाम कर्म है; फुरणेका नाम दैव है; तिसहीकरि इसको शुभ अशुभ जगत् प्राप्त होता है, सबका आदिकारण ब्रह्म है, तिसते प्रथम मन उत्पन्न भया है; तिस ही मनने संपूर्ण जगत् की रचना करी है, जैसे बीजते अंकुर होता है, बहुरि पत्र फूल फल टास होते हैं, तैसे ब्रह्मते मन अरु जगत् उपजा है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे बीजांकुरवर्णनं नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

पंचषष्टितमः सर्गः ६५.

जीवविचारवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! आदिकारण ब्रह्मते मन उत्पन्न भया है; सो मन संकल्परूप है अरु मनकरि संपूर्ण जगत् भया है अरु मन आत्माविषे मनस्त्वभावकरिकै स्थित है, तिस मनने भाव अभावरूपी जगत् कल्पा है, जैसे गंधर्वकी इच्छाकरिकै गंधर्व नगर होता है, तैसे मनकरि जगत् होता है. हे रामजी ! अत्माविषे द्वैतभेदकी कल्पना कछु नहीं, इस मनकरिकै ऐसी संज्ञा भई है, ब्रह्म अरु जीव अरु मन अरु माया कर्म जगत् द्रष्टा सब भेद मनकरि हुए हैं, आत्माविषे भेद कोऊ नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग उछलते हैं अरु बडे विस्तारको धारते हैं, तैसे चित्तरूपी समुद्रविषे संवेदनकरिकै नानाप्रकारका जगत् विस्तारको पाता है, सो असत्रूपी जगत् है, काहेते कि, स्थिर नहीं रहता, सदा चलरूप है अरु जो अधिष्ठान स्वरूप भावकरि देखिये तौ सत्रूप है, ताते द्वैत कछु न हुआ. जैसे स्वप्नका जगत सत् असत्रूप चित्तकरिकै

भासता है, तैसे सत् असत्रूप यह जगत् भासता है सो वास्तव कछु उपजा नहीं, चित्तके भ्रमकरिकै भासता है, जैसे इंद्रजालकी बाजीविषे नानाप्रकारके वृक्ष औषधि भासते हैं, सो भ्रममात्र हैं, तैसे यह जगत् भ्रममात्र है. हे रामजी ! यह जगत् दीर्घ कालका स्वप्न है, मनके भ्रम करिकै सत् होइ भासता है, जसे स्थाणुविषे पुरुष असम्यक् ज्ञानकरिकै भासता है अरु चोर जानके भयको प्राप्त होता है, तैसे जीव अनित्य-भावको प्राप्त होइकरि शोकको करता है, जैसे बालक भ्रमकरिकै परछाँई-विषे भूत कल्पता है अरु भयको प्राप्त होता है तैसे यह पुरुष चित्तके संयोगकरि द्वैतको कल्पिकै भयको प्राप्त होता है. जैसे विचार कियेते बैतालका भय नष्ट होता है, तैसे आत्मज्ञानकरिकै भय आदिक विकार नष्ट होजाते हैं. हे रामजी ! आत्मा अनादि दिव्यस्वरूप है अरु अंशांशीभावते रहित है, शुद्ध चैतन्यरूप है, जब वह चेतन संवित् चेत्यो-न्मुख होता है तब चित्त होता है अर्थ यह जो चेतनताका लक्षण है तिसते आगे जीवकल्पना होती है, तिस जीवविषे अहंभाव होता है जो मैं हौं; जब अहंभाव हुआ तब तिसके चित्त फुरता है, चित्तते इंद्रियें होती हैं, तिन इंद्रियोंते देहभाव होता है, तिस देह भ्रमकरि मलिन हुआ नरक स्वर्ग, बंध, मोक्षकी कल्पना होती है, जैसे बीजते अंकुर पत्र फूल फल टास होते हैं तैसे अहंभावते जगत् विस्तार होता है. हे रामजी ! जैसे देह अरु कर्मोंविषे कछु भेद नहीं, जैसे ब्रह्म अरु चित्तविषे कछु भेद नहीं, जैसे चित्त अरु जीवविषे कछु भेद नहीं, जैसे चित्त अरु देहविषे कछु भेद नहीं, जैसे देह अरु कर्मोंविषे कछु भेद नहीं, जैसे जीव अरु ईश्वरविषे भेद नहीं, तैसे ईश्वर अरु आत्माविषे भेद नहीं. हे रामजी ! सर्व ब्रह्मस्वरूप है, द्वैत कछु नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जीवविचारवर्णनं नाम पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ६६.

संसृत्युपशमयोगवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! यह जो नानात्व भासता है सो वास्तव एक ब्रह्मस्वरूप है, चेत्यताकरिकै एक सो अनेक रूप हो भासता है,जैसे एक दीपते अनेक दीप होते हैं,तैसे एक परब्रह्म अनेकरूप हो भासता है. हे रामजी! यह असत्‌रूपी जगत् जिसविषे आभास है, तिस आत्मतत्त्वका जब पदार्थज्ञान होता है,तब चित्तविषे जो अहंभाव है, सो नष्ट होजाता है, तिस अहंभावके नष्ट हुएते सब शोक नष्ट होजाता है. हे रामजी! यह पुरुष चित्तरूपी है अरु चित्तविषे जगत् हुआ है, जब चित्त नष्ट होवैगा, तब जगत्‌भ्रम भी नष्ट होजावैगा, जैसे अपने चरणविषे चर्मकी जूती पहिरते हैं, तब सर्व पृथ्वी चर्मकरि लपेटी भासती है; अरु ताप कंटक मिट जाते हैं, तैसे जब चित्तको शांति प्राप्त होती है; तब सर्व जगत् शांतरूप होता है. जैसे केलेका स्तंभ होता है, तिसविषे पत्रोंते अन्य सार कछु नहीं निकसता; तैसे सब जगत् भ्रममात्र है और सार कछु नहीं निकसता. हे रामजी! एता भ्रम चित्तकरिकै होता है,जो बाल अवस्थामें क्रीडा करता फिरता है, बहुरि यौवन अवस्थाको धारता है, परंतु विषयोंको सेवता है, वृद्ध अवस्थामें चिंताविषे जर्जर होजाता है, बहुरि मृत्युको प्राप्त होता है, कर्मोंके अनुसार नरक स्वर्गको चला जाता है. हे रामजी! यह सब मनका नृत्य है, मन ही पड़ा भ्रमता है, जैसे नेत्र दूषणकरिकै आकाशविषे चंद्रमा भासता है; तैसे अज्ञानकरिकै जगत्‌भ्रम भासता है; जैसे मद्यपानकरिकै वृक्ष भ्रमते भासते हैं,तैसे चित्तके संयोग भ्रमकरिकै जगत् द्वैत भासता है, जैसे बालक लीला करिकै भ्रमता है; तब सब जगत्‌को चक्रकी नाईं भ्रमता देखता है, तैसे चित्तकेभ्रमकरिकै यह जीव जगत्‌भ्रमको देखता है. हे रामजी! जब चित्त द्वैतका नहीं चेतता,तब यह द्वैतभ्रम मिट जाता है, जबलग चित्तसत्ता फुरती है, तबलग नानाप्रकारका जगत् भासता है. शांतिको नहीं प्राप्त होता

अरु जब घन चेतनताको प्राप्त होता है, तब शांतिको प्राप्त होता है अरु जगत्भ्रम मिटि जाता है, जैसे पपैया बकता है और शांतिमान् नहीं होता अरु जब घन वर्षाको प्राप्त होता है तब बकनेते शांत होता है, तैसे जब यह महाचेतन घनताको प्राप्त होता है, तब शांतिमान् होता है, व्यवहारविषे होवै अथवा तूष्णीं हो रहे, सदा शांतिमान् होता है. हे रामजी ! जब चित्तकी चेतनता फुरती है, तब जगत्भ्रम नाना प्रकारके विकार देखता है अरु भ्रम करिकै ऐसे देखता है जो मैं उपजा हौं, अब बडा भया हौं; मरौंगा, इत्यादिक विकार असत्रूप अपनेविषे जानता है, अरु स्वरूपते चेतन ब्रह्मते अनन्य है. जैसे वायु अरु स्पंदविषे कछु भेद नहीं तैसे ब्रह्म अरु चेतनताविषे कछु भेद नहीं. जब वायु स्पंदरूप होता है, तब स्पर्श करिकै भासता है, तैसे चेतनता मिटती नहीं अरु ब्रह्मकी चेतनता होवै तब जगत्भ्रम मिटि जाता है; केवल ब्रह्मसत्ता ही पडी भासती है. जैसे जेवरीके अज्ञानकरिकै सर्पभ्रम होता है अरु जेवरीके यथार्थ जाननेते सर्पभ्रम मिटिजाता है, तब जेवरी पडी भासती है, तैसे ब्रह्मके अज्ञानते जगत् भ्रमकरिकै भासता है; जब चित्तसों दृढ चैत्यता भासती है तब भ्रमका पदार्थज्ञान होता है तब जगत्भ्रम मिटि जाता है, केवल ब्रह्मसत्ता भासती है. हे रामजी ! दृश्यरूपी इसको व्याधिरोग लगा है, तिस रोगका नाशकर्त्ता संवित्मात्र है जबलग चित्त बहिर्मुख होइकरि दृश्यको चेतता है तबलग शांत नहीं होता अरु जब चित्त सर्ववासनाको त्यागिकरि अंतर्मुख अपने स्वभावविषे स्थित होवैगा तब तिस ही कालमें मुक्तिरूप शांत होवैगा, इसविषे संशय कछु नहीं, जैसे जेवरीके दूरसों देखने करि सर्प भासता है अरु जब निकट होइकरि देखै है, तब सर्पभ्रम मिटि जाता है, जेवरी ही भासती है, तैसे आत्माका विवर्तरूप जगत् है, जब बहिर्मुख होइके देखता है तब जगत् ही भासता है, जब अंतर्मुख होइके देखता है तब जगत्भ्रम मिटिजाता है आत्मा ही भासता है. हे रामजी ! जिस जिसविषे अभिलाषा होवै तहां तिसको त्यागि दे, जैसे निश्चयकरि मुक्ति प्राप्त होती है, सो त्यागनेविषे यत्न कछु नहीं. महात्मा जो पुरुष हैं, सो प्राणोंको तृणकी नाई त्यागि देते हैं अरु

बडे दुःखको सहि रहते हैं, तुझको अभिलाषा त्यागनेविषे क्या कठिनता है ?, हे रामजी ! आत्माके आगे अभिलाषा ही आवरण है, अभिलाषाके होते आत्मा नहीं भासता है, जैसे बादलोंके आवरणकरिकै सूर्य नहीं भासता, जब बादलोंका आवरण नाश होता है, तब सूर्य भासता है, तैसे अभिलाषाके निवृत्त हुए आत्मा भासता है, ताते जो कछु अभिलाषा उठै तिसको त्याग अरु निरभिलाष होइकारि आत्मपदविषे स्थित होइ अरु प्रकृत आचार जो कछु देह इंद्रियोंकारि ग्रहण करना अरु जो कछु त्याग करना होवै तिसको त्याग करौ अरु देहविषे ग्रहणत्यागकी बुद्धि न होवै. हे रामजी ! जो तू संपूर्ण दृश्यकी इच्छा त्यागैगा तब तुझको प्रत्यक्ष आत्मपद भासैगा, जैसे हाथविषे बिल्वफल प्रत्यक्ष होता है, जैसे नेत्रोंके आगे प्रतिबिंब प्रत्यक्ष भासता है,तैसे अभिलाषाके त्यागते आत्मपद तुझको प्रत्यक्ष भासैगा अरु सब जगत् भी आत्मरूप भासैगा, जैसे महाप्रलयविषे सब जगत् जलमय भासता है और कछु दृष्टि ही नहीं आता,तैसे आत्मपदते इतर तुझको कछु न भासैगा आत्मतत्त्वको न जानना, इसीका नाम बन्धन है अरु आत्मपदका जानना इसीका नाम मोक्ष है और मोक्ष कोऊ नहीं ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे संसृत्युपशमयोगवर्णनं नाम षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ६७.

सत्योपदेशवर्णनम् ।

राम उवाच-हे भगवन् ! मन क्योंकारि उत्पन्न हुआ है? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! ब्रह्म अनंतशक्ति है, तिसविषे अनेक प्रकारका किंचन होता है, जहां जहां जैसी जैसी शक्ति फुरती है, तैसा तैसा रूप होइकारि भासता है; जब शुद्ध चिन्मात्र सत्ता चेतनविषे फुरती है, जो अहम् अस्मि;तब तिस फुरनेकारि जीव कहाता है;सो चित्तशक्ति संकल्पका

कारण भासती है, जब दृश्यकी ओर फुरती है तब जगत् दृश्य होइकारि भासता है, बहुरि नानाप्रकारके कार्य कारण होइ भासता है. राम उवाच–हे मुनिविषे श्रेष्ठ! जो इस प्रकार है तौ देव किसका नाम है? अरु कर्म क्या है? अरु कारण किसको कहते हैं?. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! फुरणा अफुरणा दोनों चिन्मात्रसत्ताका स्वभाव है जैसे फुरणा अफुरणा दोनों वायुका स्वभाव है परंतु जब फुरता है, तब आकाशविषे स्पर्श होइ कारि भासता है; जब चलनेते रहित होता है, तब शांत होजाता है, तैसे शुद्ध चिन्मात्रविषे चैत्यताका लक्षण जो है, 'अहम् अस्मि' अर्थ 'यह जो मैं हौं' तब तिसका नाम स्पंदबुद्धीश्वर कहते हैं, तिसकारि जगत् दृश्यरूप हो भासता है तिस जगत् दृष्टिते रहित होना तिसको निस्पंद कहते हैं. चित्तके फुरणेकारि नानाप्रकार जगत् होइ भासता है, अरु चित्तके अफुर हुए जगत्भ्रम मिटि जाता है, नित्य शांत ब्रह्मपदकी प्राप्ति होती है. हे रामजी! जीव अरु कर्म अरु कारण यह सब चित्तस्पंदके नाम हैं, अरु चित्तस्पंदते अनुभव भिन्न नहीं अरु अनुभव ही चित्तस्पंद हुएकी नाईं भासता है, जीव कर्म कारणका बीजरूप चित्तस्पंद है, चित्तस्पंदकारिके आगे दृश्य होइकारि भासता है, बहुरि चिदाभासद्वारा देहविषे अहंप्रतीति होती है, तिस देहविषे स्थित होइकारि चित्तसंवेदन दृश्यकी ओर संसरता है; सो संसरना दो प्रकारका है, एक बडा है, एक अल्प है; तिनको संसरणेविषे अनेक जन्म व्यतीत होते हैं, अरु किन्हींको एक जन्म होता है, आदि ही फुरकर स्वरूपविषे स्थित है; तिनको प्रथम जन्म होता है; अरु जो आदि उपजिकरि प्रमादी हुए हैं; सो फुरिकरि दृश्यकी ओर चले जाते हैं; तिनको बहुतेरे जन्म होते हैं, चित्तके फुरणेकारि ऐसा अनुभव करता है, पुण्यक्रिया करिके स्वर्गको जाते हैं. पापक्रिया करि नरकको जाते हैं, इस प्रकार दृश्यभ्रमको देखते हैं; अज्ञानकरिके बंधनविषे रहते हैं; जब ज्ञानकी प्राप्ति होती है, तब मोक्षका अनुभव करता है, सो बडा संसरना है; अरु जो एक ही जन्म पायकारि आत्माकी ओर आते हैं सो अल्प संसरना है. हे रामजी! जैसे स्वर्ण ही भूषणरूपको धारता है तैसे संवेदन ही काष्ठ लोष्ट आदिक रूप

होइके भासता है; इस चित्तके संयोगकरि अज अविनाशी पुरुषको नानाप्रकारके देह प्राप्त होते हैं, अरु जानता है कि मैं उपजा हौं, अब जीता हौं, बहुरि मर जाऊंगा, इत्यादिक भ्रमको देखता हूं; जैसे नौका-विषे बैठे हुएको भ्रमकरि तटके वृक्ष भ्रमते दृष्टि आते हैं, तैसे भ्रमकरिके अपनेविषे जन्मादि अवस्था भासती है, आत्माके अज्ञानकरिकै जीवको आदि कल्पना फुरती है; जैसे मथुराके राजा लवनको स्वप्नमें चंडालका भ्रम भया था, तैसे चित्तके फुरणेकरिकै यह जीव जगत्भ्रमको देखते हैं. हे रामजी ! यह सब जगत मनके भ्रमकरिकै पडा भासता है, शिव जो परम तत्त्व हैं सो चिन्मात्र है, तिसविषे जब चेत्योन्मुखत्व होता है, जो मैं हौं तिसका नाम जीव हैं, जैसे सोमजलविषे कछुक द्रवता होती है, तिसविषे चक्र फुरते हैं बहुरि तरंग होते हैं; तैसे ब्रह्मरूपी सोमजल है तिसविषे जीवरूपी चक्र फुरते हैं, बहुरि चित्तरूपी तरंग उदय होते हैं; बहुरि सृष्टिरूपी बुद्बुदे होते हैं; उपजिकरि लीन होते हैं. हे रामजी ! चेतन फुरणेद्वारा जीवकी नाईं भासता है, जैसे समुद्र ही द्रवता करिकै तरंगरूप होइ भासता है; चित्त चैत्यके संयोगकरि जीव कहाता है, तिस जीवते जब संकल्पका फुरणा होता है; तब मन कहाता है; अरु संकल्प निश्चयरूप होता है, तब बुद्धि होइकरि स्थित होता है अरु जब अहंभाव होता है, तब अहंप्रतिकार कहाता है; तिस अहंभावको पाइकरि तन्मा-त्राकी कल्पना होती है. पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश यह सूक्ष्मभूत होते हैं तिनके आगे जगत् होता है. हे रामजी ! असत्रूपी चित्तके संसरणे करिकै जगत्रूप होइ भासता है, जैसे नेत्रदूषणकरिकै आकाश-विषे मुक्तामाला भासती है, जैसे भ्रममात्र गंधर्वनगर भासता है, जैसे स्वप्नभ्रमकरि स्वप्नजगत् भासता है, तैसे चित्तके संसरणे करिकै जगत्भ्रम भासता है. हे रामजी ! शुद्ध आत्मा नित्य तृप्त शांतरूप है, अरु शम अपने आपहीविषे स्थित है, तिसविषे चित्त संवदनने जग-त्को रचा है, तिस जगत्को भ्रमकरिकै सत्यकी नाईं देखता है, जैसे स्वप्नसृष्टिको भ्रमकरि देखता है, तैसे यह जगत् फुरनेकरि सत्य भासता है. हे रामजी ! मनके संसरनेका नाम जाग्रत् है, अरु अहंकारका

नाम स्वप्न है, अरु चित्त जो सजातीयरूप चेतनेवाला है, तिसका नाम सुषुप्ति है, अरु चिन्मात्रका नाम तुरीयपद है, जब शुद्ध चिन्मात्रविषे अत्यंत परिणाम होवै, तिसका नाम तुर्यातीत पद है, तिसविषे स्थित हुआ बहुरि शोकवान् कदाचित् नहीं होता, तिस ब्रह्मसत्ताते सब उदय होते हैं; तिसविषे ही सब लीन होते हैं अरु वास्तवते न कोऊ उपजा है; न कोऊ लीन होता है; चित्तके फुरणेकरि सब भ्रम भासता है. जैसे नेत्रदूषणकरि आकाशविषे मुक्तमाला भासती है, तैसे चित्तके फुरणेकरि यह जगत् भासता है. हे रामजी ! जैसे वृक्षके बढ़नेको आकाश ठौर देता है, जेती कछु बीजकी सत्ता होवै तेता आकाशविषे बढता जावै, तैसे सबको आत्मा ठौर देता है, अकर्तारूप भी संवेदनकरिकै कर्त्ता भासता है. हे रामजी ! जैसे लोहा निर्मल किया हुआ आरसीकी नाईं प्रतिबिंबको ग्रहण करता है, तैसे आत्माविषे संवेदनकरिकै जगत्का प्रतिबिंब होता है अरु वास्तवते जगत् भी कछु दूसरी वस्तु नहीं; जैसे एक बीज ही पत्र फूल फल टास होइ भासता है, तैसे आत्मा संवेदन करिकै नानारूप जगत् होइ भासता है; जैसे पत्र फूल वृक्षते भिन्न नहीं, तैसे अबोधरूप जगत् भी बोधरूप आत्माते भिन्न नहीं, अरु जो ज्ञानवान् है, तिसको अखण्ड सत्ता भासती है अरु अज्ञानीको भिन्न भिन्न नामरूप सत्ता भासती है. जैसे समुद्र ही तरंग बुद्बुद होइकरि भासता है, जैसे बीज ही पत्र फूल फल टास होइकरि भासता है; जो मूर्ख देखता है तौ तिनके नामरूप सत् मानता है अरु ज्ञानवान् देखिकै एक रूप ही जानता है,तैसे जो मूर्ख अज्ञानी हैं,सो भिन्न भिन्न नामरूप जगत्को जानते हैं अरु ज्ञानवान्को एक ब्रह्मसत्ता अनंत भासती है और जगत्भ्रम उनको कोऊ नहीं भासता है. राम उवाच—बड़ा आश्चर्य बडा आश्चर्य है, जो असत्‌रूपी जगत् सत होइकरि भासता है अरु बडे विस्तारकरि स्पष्ट भासता है अरु यह जगत् ब्रह्मका आभास है; अनेक तन्मात्रा तिसके जल अरु बूँदोंकी नाईं हैं अरु अविद्याकरके फुरती हैं, ऐसे भी मैं श्रवण किया है. हे मुनीश्वर ! यह कैसे फुरणा बहिर्मुख होती है, अरु अंतर्मुख कैसे होती है ?. वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! इस प्रकार दृश्यका

अत्यंत अभाव है, अनहोते दृश्यके फुरणेकरि अनुभव होता है, शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्म सत्ताविषे फुरणेकरि जीवत्व हुआ है, सो जीवत्व असत् है अरु सत्की नाईं होता है अरु जीव ब्रह्मके साथ अभिन्न है, फुरणेकरिकै भिन्नकी नाईं स्थित होता है, तिस जीवविषे संकल्प कलना होती है, तब मनरूप होके स्थित होता है अरु स्मरणकरिकै चित्त होता है, निश्चयकरिकै बुद्धि होती है; अहंभावकरिकै अहंकार होता है. बहुरि काकतालिकी नाईं चिद्‌अणुविषे तन्मात्रा फुर आती है, जब शब्द श्रवणकी इच्छा भई तब श्रवणइंद्रिय प्रगट भई, जब देखनेकी इच्छा भई तब नेत्र इंद्रिय प्रगट भई, गंध लेनेकी इच्छा करिकै नासिका इंद्रिय प्रगट भई, जब स्पर्शकी इच्छा भई तब त्वचा इंद्रिय प्रगट भई, जब रस लेनेकी इच्छा भई तब रसना इंद्रिय प्रगट भई इस प्रकार पांचों इंद्रियें प्रगट भईं. भावनाकरिकै सत् ही असत्की नाईं भासने लगी है. हे रामजी ! इस प्रकार आदि जीव हुए हैं, तिसकी भावनाकरिकै अंतवाहक शरीर होय आये हैं, चलते भासते हैं, तौ भी अचलरूप हैं, ताते जेता कछु जगत् भासता है, सो सब ब्रह्मरूप है, इतर कछु नहीं प्रमाता भी ब्रह्म है, प्रमाण भी ब्रह्म है, प्रमेय भी ब्रह्म है अरु संवेदन ब्रह्मकरिकै अनेकरूप नानाप्रकार भासते हैं, जैसा जैसा संवेदन फुरता है, तैसा तैसा रूप होइकरि भासता है, जब दृश्यको चेतता है, तब नानाप्रकारका दृश्य भासता है, अरु जब अन्तर्मुख ब्रह्मको चेतता है, तब ब्रह्मरूप होइकरि भासता है. हे रामजी ! दृश्य कछु उपजा नहीं, आत्मा सदा अपने आपविषे स्थित है, तौ दृश्यका असंभव हुआ तब बन्धन किसको कहिये ? अरु मोक्ष किसको कहिये ? विचार किसका करिये ? सर्व कल्पनाका अभाव है, यह जो तेरा प्रश्न है, तिसका उत्तर सिद्धांतकालविषे होवैगा, यहां नहीं बनैगा, जैसे कमलफूलोंकी माला जो होती है सो अपने कालविषे बनती है, समय विना शोभा नहीं देती, तैसें तेरे प्रश्न सिद्धांतकालविषे शोभा पावैंगे, समयविना सार्थ शब्द भी निरर्थक होता है, इस कारणते कहिये जो सिद्धांतकालविषे शोभा पावैंगे, सिद्धांतकालविना यह प्रश्न शोभा नहीं पाता. हे रामजी ! जेते कछु पदार्थ हैं, तिनका

फल भी समय पायके होता है, समय विना नहीं होता अब पूर्व प्रसंग सुन. हे रामजी ! ब्रह्मविषे चेत्योन्मुखत्वकरिकै वह आदिजीव आपको पिता माता जानत भया, जैसे स्वप्नविषे आपको कोऊ देखै, तैसे ब्रह्माजी आपको जानता भया सो ब्रह्मा प्रथम ॐ शब्दको उच्चारता भया, तिस शब्दतन्मात्राते चारों वेद देखता भया, तिसते अनंतर मनोराज्य करिकै सृष्टिको रचता भया, तब असत्‌रूप सृष्टि भावनाकरिकै सत्य हो भासने लगी, जैसे स्वप्नविषे सर्प भासते हैं, जैसे गंधर्वनगर भासि आवता है, तैसे असत्यरूप सृष्टि सत्य भासने लगी. हे रामजी ! ब्रह्म सत्ताते जैसे ब्रह्मा आदिका उपजना भया है, तैसे और जीवों कीटआदिका उपजना भया है. जगत्‌का कारण संवेदन है, संवेदन भ्रमकरिकै जीवोंको जगत् भासता है, तिनको भौतिक शरीरविषे जो अहंप्रतीति भई है, तिसकरि अपने निश्चयके अनुसार शक्ति भई है, ब्रह्माविषे ब्रह्माकी शक्तिका निश्चय भया है, चींटीविषे चींटीकी शक्तिका निश्चय भया है. हे रामजी ! जैसी जैसी वासना संवित्‌विषे होती है,तिसके अनुसार ही अनुभव होता है, शुद्ध चिन्मात्रविषे जो चेत्योन्मुखत्व हुआ है, तिसका नाम जीव हुआ है, तिसविषे जो ज्ञानरूप सत्ता है, सो पुरुष है, तिसविषे जो फुरणा है सो कर्म है, जैसे जैसे फुरता है, तैसे तैसे भासता है. हे रामजी ! आत्मसत्ताविषे जो अहं हुआ है, तिसका नाम चित्त है, तिसते आगे जगत् रचा है, सो भी अविचारसिद्ध है, विचार कियेते नष्ट होजाता है, जैसे अविचारकरिकै अपने परछांईविषे भूत पिशाच कल्पता है तिसते भय उत्पन्न होता है. विचार कियेते पिशाच अरु भय दोनों नष्ट होजाते हैं, हे रामजी! तैसे आत्मविचारते चित्त अरु जगत् दोनों नष्ट होजाते हैं. हे रामजी ! ब्रह्मसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है,तिसविषे चित्त कल्पना कोऊ नहीं अरु प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय भी ब्रह्मते इतर कछु नहीं, तौ द्वैतकी कल्पना कैसे होवै ? जैसे शशेके शृंग असत् हैं तैसे आत्माते द्वैतकल्पना असत्य है. हे रामजी ! यह ब्रह्मांड भावनामात्र है, जिसको सत्य भासता है, तिसको बंधनका कारण है.

जैसे घुराण अपना गृह बनाती है, सो अपने बंधनका कारण होता है, तिसविषे आप फँसि मरती है, तैसे जगत्को सत्य मानते हैं; तिसको अपना मानना ही बंधन कर्ता है, तिसकरि जन्म मरणको देखता हैं, अरु जिसको जगत्का असत्य निश्चय हुआ है, तिसको बंधन नहीं होता, उसको उल्लास है, अरु हे रामजी ! अनुभवसत्ता सबकी अपनी आप है, तिसविषे जैसा जैसा निश्चय किया तिसको अपने अनुभवके अनुसार पदार्थ भासते हैं, कोऊ निमेषविषे कल्पका अनुभव करते हैं; अरु वास्तवते जगत् उपजा ही नहीं, जगत्का उपजना भी मिथ्या है, बढना भी मिथ्या है, रस भी मिथ्या है, रस लेनेवाला भी मिथ्या है, शुद्ध ब्रह्म सर्वगत नित्य अद्वैत सदा अपने आपविषे स्थित है; परंतु अज्ञानकरिकै शुद्ध भी अशुद्ध भासता है; सर्व जगत् भी परिच्छिन्न भासता है, ब्रह्म भी अब्रह्म भासता है, नित्य भी अनित्य भासता है; अद्वैत भी द्वैतसहित भासता है. हे रामजी ! अज्ञानकरि ऐसा भासता है, जैसे जल अरु तरंगविषे भेद मूर्ख मानते हैं परंतु भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद अज्ञानी देखते हैं, जैसे सुवर्ण अरु भूषणोंविषे भेद अज्ञानी देखते हैं, जैसे जेवरीविषे सर्प मूर्ख देखते हैं तैसे ब्रह्मविषे नानात्व मूर्ख देखते हैं, ज्ञानीको सब चिदाकाश हैं. हे रामजी ! जब आत्मसत्ताविषे अनात्मरूप दृश्यकी चेत्यता होती है, तब कल्पना उत्पन्न होती है, सो कल्पना मनरूप होइकै स्थित होती है; तिसते अनंतर अहंभाव होता है, बहुरि तन्मात्राकी कल्पना होती है, बहुरि शब्द अर्थकी कल्पना होती है, इसी प्रकार चिद्सत्ताविषे जैसी जैसी चेत्यता फुरती है; तैसा तैसा रूप भासने लगता है, सत् असत् पदार्थ वासनाके वशते फुरि आते हैं, जैसे स्वप्नसृष्टि फुरि आती है; सो अनुभवरूप ही होती है, तैसे यह जगत् फुरि आया है, सो अनुभवरूप है, ताते सृष्टिविषे भी चिन्मात्र है, अरु चिन्मात्रहीविषे सृष्टि है, सर्वकी सत्तारूपी अंतर्बाह्य ऊर्ध्व अधः चिन्मात्र ही है. प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, सर्वपद चिन्मात्रहीविषे धारे हैं, नित्य उपशांतरूप है, समस्त

जगत्की सत्ता तिसहीकरि होती है, सो एक ही सम है,अरु तुरीया अतीत पद है; नित ही स्थित है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सत्योपदेशो नाम सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमः सर्ग ६८.

राक्षसीवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच- हे रामजी ! इस प्रसंगऊपर एक पुरातन इतिहास है तिसविषे महाप्रश्नोंका समूह है सो श्रवण कर-एक महाश्याम काजलके पर्वतकी नाईं कर्कटी नाम राक्षसी हिमालय पर्वतके शिखरके ऊपर होती भई, विषूचिका भी तिसका नाम हुआ, अथिर बिजलीकी नाईं तिसके नेत्र, अरु अग्निकी नाईं बडी जिह्वा तिसकी चमत्कार करै, बडे नख अरु ऊँचा शरीर जिसका; जो भोजनकरि तृप्ति कदाचित् न होवै, जैसे वडवाग्नि तृप्त नहीं होता, तैसे तृप्ति न होवै, तब उसके मनविषे उपजा कि, जंबूद्वीपके संपूर्ण जीवोंको भोजन करौं तब तृप्त होऊं अन्यथा तृप्ति नहीं होती अरु आपदा उद्यम कियेते दूर होती है, ताते उद्यम करौं, जो अखंड चित्त होइकारि तप करौं. हे रामजी ! ऐसे विचार करिकै एकान्त हिमालय पर्वतकी कंदराविषे एक टंगकारि स्थित भई, दोनों भुजा ऊर्ध्वको धारी अरु नेत्र आकाशकी ओर किये, मानो मेघको पकडती है, शरीर अरु प्राण स्थित करत भई, मूर्तिकी नाईं हो गई, शीत अरु उष्णके क्षोभते रहित भई, पवनकारि शरीर जर्जरीभाव हुआ.

इति श्री योगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीवर्णनं नाम अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ६९.

विषूचिकामंत्रकथनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जब इस प्रकार सहस्र वर्ष व्यतीत भये, दारुण तप किया, तब ब्रह्माजी आये तब राक्षसीने देखके मनकारि नमस्कार किया, अरु मनविषे विचार किया जो मेरे वरके निमित्त आये हैं, तब ब्रह्माजीने आयकर कहा–हे पुत्रि ! तुझने बडा तप किया है, उठखडी हो, जो कछु चाहती है सो वर माँग. कर्कटयुवाच–हे भगवन् ! मैं लोहेकी नाईं वज्रसूचिका होऊं, जो जीवोंके हृदयविषे प्रवेश करि जाऊं. हे रामजी ! जब ऐसे मूर्ख राक्षसीने कहा, तब ब्रह्माजीने कहा, ऐसे ही होवै, तेरा नाम भी प्रसिद्ध विषूचिका होवैगा. हे राक्षसी ! जो दुराचारी जीव होवैं, तिनके हृदयविषे तू प्राणवायुके मार्गकरि जाय प्रवेश करैगी. अरु जो गुणवान् तेरेको निवृत्त करनेके निमित्त "ॐ ह्रीं ह्रां रीं रां विष्णुशक्तये नमः ॥ ॐ नमो भगवति विष्णुशक्तिमेनां ॐ हर हर नय नय पच पच मथ मथ उत्सादय दूरे कुरु स्वाहा । हिमवंतं गच्छ जीव सः सः चन्द्रमण्डलगतोऽसि स्वाहा" मंत्रको पढैंगे, जो हिमालयके उत्तरशिखरविषे कर्कटी नाम राक्षसी विषूचिका है; सो दूर होवै, अरु दुःखी चंद्रमाके मंडलविषे चितवै कि, अमृतके कुंडविषे बैठा हौं. अरु राक्षसी हिमालयके शिखरको गई, ऐसे चिंतवन करै, इस मंत्रको लिखकर मंत्रवेत्ता अपने बायें हाथमें बांध ले और बांया हाथ दाहिने हाथमें लगाये हुए दाहिने हाथसे मंत्र पढता हुआ शुचि पवित्र होकर रोगीका मार्जन करे, तब तुम तिसको त्याग जाना, यह मंत्र जिनके पास है, तिनविषे तू प्रवेश न करि सकैगी. हे रामजी ! जब इसप्रकार ब्रह्माजी कहिकै आकाशको उडे तब इंद्रके अरु सिद्धोंके गण साथ गये अरु वह मंत्र जो ब्रह्माजीने कर्कटीको कहा था, सो सिद्धोंने श्रवण किया था, तिन्होंने तिस मंत्रको प्रसिद्ध किया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे विषूचिकामंत्रकथनं नामैकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमः सर्गः ७०.

विषूचिकाव्यवहारवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! तब कर्कटीका शरीर सूक्ष्म होने लगा, जैसे संकल्पका पहाड संकल्पके क्षीण हुएते क्षीण होजाता है तैसे क्रमकरिकै प्रथम जो मेघवत् आकार था सो घटिकारि वृक्षवत् होगया, फिर पुरुषरूप, फिर हस्तमात्र; फिर प्रादेशमात्र फिर लोहेकी सुईकी नाईं सूक्ष्म होगई, जैसे संकल्पका तंतु होता है, तैसे होगई. हे रामजी! ऐसे रूप को कर्कटी धारती भई, तिसको देखि मूर्ख अविचारी पुरुष तृणकी नाईं शरीरको त्यागते हैं, अरु जो पुरुष परस्परको विचारते हैं, सो पाछेते कष्ट नहीं पाते, जो पूर्वापर विचारते रहित हैं, सो पीछे कष्ट पाते हैं, अनर्थ होइकारि औरोंको कष्ट देते हैं, एक पदार्थको भला जानिकै तिसके निमित्त यत्न करते हैं, न धर्मकी ओर देखते हैं, न सुखकी ओर देखते हैं, इस प्रकार मूर्ख राक्षसीने भोजनके निमित्त बडे गंभीर शरीरको त्यागकरि तुच्छ शरीरका अंगीकार किया; सो एक शरीर सूक्ष्म हुआ, दूसरा पुर्यष्टक भया; सूक्ष्म शरीर जाको इंद्रियां ग्रहण न कर सकैं, तैसे शरीरसे कहूं विषूचिका प्रवेश करै, कहूं पुर्यष्टक साथ जाय प्रवेश करै, प्राणवायु साथ प्रवेश करिकै दुःख देवै, प्राणोंको विपर्यय करै, तब प्राणी कष्टको पावै, रक्त आदिक जो रस हैं तिनका पान करै, एक बूंदकारि उदर पूर्ण हो जावै; परंतु तृष्णानिवृत्ति न होवै; अरु शरीरते बाह्य निकसै, तब भी कष्ट पावै, वायु चलै तिसकारि गर्तविषे गिरै, चिकडविषे गिरै, चरणोंके तले आवै, देशोंविषे रहै, घास तृणोंविषे रहै; जो नीच पापी जीव है, तिसको कष्ट देवै, अरु जो गुणवान् होवैं, तिनको कष्ट देनेको समर्थ न होवै, जो मंत्र पढ़ै, तिसते निवृत्त होजावै, जो आप किसी छिद्रविषे गिरै, तब जानै कि, बडे कूपविषे गिरी हौं. हे रामजी! मूर्खता करिकै एते कष्टको पाती भई. वाल्मीकिरुवाच-इस प्रकार जब वसिष्ठजीने कहा, तब सूर्य अस्त भया, सायंकालका समय हुआ, सब सभा परस्पर

नमस्कार करिकै स्नानको गई, विचारसंयुक्त रात्रिको व्यतीत करिकै सूर्यकी किरणें जब उदयभई, तब बहुरि आयके बैठे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे विषूचिकाव्यवहारवर्णनं नाम सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः ७१.

सूचीपरिदेवनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जब इसप्रकार प्राणियोंके मारनेविषे केतेक वर्ष इसको व्यतीत भये, तब उसके मनविषे विचार उत्पन्न भया कि, बडा कष्ट है, बडा कष्ट है, यह विषूचिका शरीर मुझको कैसे प्राप्त भया है, मैं मूर्खता करिके यह वर ब्रह्माजीसों मांगा था, मूर्खता बडे दुःखको प्राप्त करती है, कैसा मेघकी नांई मेरा शरीर था, जो सूर्यादिकको मैं आच्छादि लेती थी, मंदराचल पर्वतकी नांई मेरा उदर कहां गया, वडवाग्निकी नांई मेरी जीभ कहां गई, जैसे कोऊ अभागी पुरुष चिंतामणि त्यागि देवै अरु काचको अंगीकार करै, तैसे मैंने बडे शरीरको त्यागिके तुच्छ शरीरका अंगीकार किया, कैसा तुच्छ है; जो एक बूंदकरि भी तृप्त होजाता है; परंतु तृष्णा पूरी होती नहीं. उस शरीरसाथ मैं निर्भय विचरती थी, यह शरीर पृथ्वीके कणके साथ भी दब जाता है अब मैं बडे कष्टको पाती हौं, अब मैं मृतक होऊं तब छूटौं, परंतु मांगा मृत्यु भी हाथ नहीं आता.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सूचिकापरिदेवनं नामैकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमः सर्गः ७२.

सूचीतपःप्रभाववर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इस प्रकार पश्चात्ताप करके उसने यह निश्चय किया कि मैं बहुरि उस शरीरके निमित्त तप करौं, वह कौन पदार्थ है, जो उद्यम कियेते हाथ न आवै. हे रामजी ! इस प्रकार पूर्वके शरीरके निमित्त तप करनेको समर्थ भई, तब हिमालय पर्वतके वन निरंजन स्थानविषे एक पदके आधार स्थित भई, मुख ऊर्ध्व कारिकै तपको करने लगी, हे रामजी ! जब पवन चलै सो इसके मुखमें फल मांस जलके कणके राखै, परंतु वह अंतर ग्रहण न करै मुखको मूँदि लेवै, पवन देखिकै आश्चर्यमान होवै कि, जो मैं सुमेरु आदिकको भी चलायमान किया है; परंतु इसका निश्चय चलायमान नहीं होता, मेघके वर्षाकारि भी चिकडविषे दब गई, परंतु ज्योंकी त्यों रही, मेघके बडे शब्दकारि भी चलायमान नहीं भई. हे रामजी ! इस प्रकार सहस्र वर्ष उसको व्यतीत भये, तब दृढ वैराग्यकारिकै उसका नाम चित्त निर्मल भया, तब सब संकल्पके त्यागते तिसको परमपदकी प्राप्ति भई अरु बडे ज्ञानका प्रकाश उदय हुआ, परब्रह्मका तिसको साक्षात्कार हुआ, तिसकारि परम पावनरूप भई, तब चित्तशुची होत भई अर्थ यह जो चेतनविषे उसका एकत्व भाव हुआ, तिसके तपकारि सप्त लोक तपायमान हुए, तब इंद्रने नारदजीसों प्रश्न किया कि, ऐसा तप किसने किया है, जिसके तपकारि लोक जलने लगे हैं, तब नारदने कहा, हे इंद्र ! सात सहस्र वर्ष कर्कटी नाम राक्षसीने बडा दारुण तप किया है, तिसकारि सूचिका भई थी, तिसकारि बहुत कष्ट पाया अरु लोकोंको कष्ट दिया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सूचीतपःप्रभाववर्णनं नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः ७३.

सूचीतपोवर्णनम् !

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! ऐसे सूचीका कटुवृत्तान्त सुनके इन्द्रने फिर पूछा तब नारदने कहा जैसे विराट् आत्माने सबविषे प्रवेश किया है, जैसे चित्तशक्तिने सबविषे प्रवेश किया है,तैसे सब देहविषे सूचीने प्रवेश किया परंतु जहां मंत्रजाप होवै, ताते निवृत्त हो जावै; अरु जहां मंत्रजाप न होवै तिनके अंतर प्रवेश करिकै रक्त मांस भोजन करै, परंतु तृप्त न होवै मनविषे तृष्णा रहै, सूक्ष्म शरीरकरि धूडविषे दबी जावै, बहुत कष्टको पाइकै विचार किया कि, उद्यमकरि सब कछु प्राप्त होता है, ताते पूर्वके शरीरके निमित्त बहुरि एकांत स्थानविषे तप जाइ करौं,तब एक गीधपक्षी वहां आन बैठा कछु भोजन करने लगा, तिसकी चंचूके मार्गसों विषूचिका अंतर चली गई, तब वह पक्षी कष्ट पाइकै उड़ा, वह विषूचिका उसकी पुर्यष्टकके साथ मिलिकै उसको प्रेरिके हिमालय पर्वतकी ओर ले चली; जैसे वायु मेघको ले जाता है तैसे हिमालय पर्वतके वनमें ले गई, वहां इस गीधने छर्द करि डारी;जैसे योगीश्वर संवेदनको त्यागिकै निर्विकल्प पदविषे जाता है, तैसे छर्दको डारिकरि पक्षी उड गया; जैसे पेंडोई बिगार पोटको त्यागिकरि सुखी होता है, तैसे पक्षी छर्दको त्यागिकरि सुखी भया, तब उसी शरीर साथ विषूचिका तप करने लगी. हे रामजी! इसप्रकार इंद्रने सुनिकरि उसको देखनेके निमित्त पवनको चलाया, तब पवन आकाशको छोडिकै भूतलविषे उतरा; लोकालोक पर्वतको लंघिकरि स्वर्णकी पृथ्वी लंघी,फिर समुद्र,फिर द्वीपको लंघिकै क्रमसों हिमालयके वनविषे सूक्ष्म शरीर साथ उसको देखत भया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सूचीतपोवर्णनं नाम त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः ७४.

सूचीतपःपाकवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! पवन चल रहा, सूर्य तप रहा, परंतु चलायमान न भई, प्राणवायुका भी भोजन करै, तब पवनने भी आश्चर्यवान् होइकै कहा. हे तपस्विनी! तू किस निमित्त तप करती है? हे रामजी! ऐसे जब पवनने कहा तब भी विषूचिका न बोली, पवनने कहा, भगवती! विषूचिकाने बडा तप किया है, अब कोऊ कामना इसको नहीं ऐसे कहिकै उडा, क्रमसों इंद्रके पास गया, इंद्रने विषूचिकाके दर्शनके माहात्म्यकरि पवनको कंठ लगाया, मिला, आदर किया कि, तू बडे पुण्यवान्का दर्शन कर आया है, पवनने भी सब वृत्तांत कहि सुनाया अरु कहा-हे राजन्! उसके तपतेजकरि हिमालयकी शीतलता आच्छादी गई है, तुम और ब्रह्माजी उसकेपास चलौ, नहीं तौ उसके तपकरि जगत् जलैगा. हे रामजी! जब इसप्रकार पवनने कहा तब इंद्र पवन देवता गणोंसहित ब्रह्माजीके पास आये, प्रणाम करिकै बैठ गये, तब ब्रह्माजीने कहा कि, तुम्हारा वृत्तांत मैंने जाना है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पतिप्रकणे सूचीतपःपरिपाकवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

पंचसप्ततितमः सर्गः ७५.

सूचीशरीरलाभवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! ब्रह्माजी इंद्रको कहिकारि विषूचिका जिसका नाम सूची था, तिसके पास आय प्राप्त भये, तिसको देखके आश्चर्यवान् हुए कि, तृणकी नाईं विषूचिकाने सुमेरुते भी अधिक धैर्य धरा है, जैसे मध्याह्नका सूर्य तेजवान् होता है, तैसे इसका तपतेज भया है, अरु परब्रह्मविषे स्थित भई है, अरु जगत् इसका अब शांत होगया है, ताते वंदन करने

योग्य है, हे रामजी ! जब आकाशतलविषे स्थित होइकारि ब्रह्माजीने कहा, हे पुत्रि कर्कटि ! तू अब वरको ग्रहण करु, तब विषूचिका विचार करिकै कहने लगी, जो कछु जानने योग्य था, सो मैं जाना है, अरु शांतरूप भई हौं, संपूर्ण संशय मेरे नष्ट हुए हैं, अब वरसाथ मेरा क्या प्रयोजन है? यह जगत् अपने संकल्पते उपजा है, जैसे बालकको अपने परछाँईविषे वैतालबुद्धि होती है, तिसकरि भयको प्राप्त होता है, तैसे मैं स्वरूपके प्रमादकरि भटकती फिरी हौं, अब इष्ट अनिष्ट जगत्की मुझको इच्छा कछु नहीं, अब मैं निर्विकल्प शांतिविषे स्थित हौं. हे रामजी ! ऐसे कहिकारि सूची तूष्णीं हो रही, तब ब्रह्माजी वीतराग प्रसन्नबुद्धि उसके भावको देखिकै कहत भये. ब्रह्मोवाच–हे कर्कटि ! तू कछुक वरको ग्रहण करु, कछुक काल तुझे भूतलविषे विचरना है, भोगोंको भोगिकै तू विदेहमुक्त होवैगी अब तू जीवनमुक्त होइकारि विचरैगी, नीतिके निश्चयको लंघि कोऊ नहीं सकता, अरु जब तू तप करने लगीथी, तब पूर्व देह पानेका संकल्प किया था, वह संकल्प अब सफल भया है, जैसे बीजविषे वृक्षका सद्भाव होता है, सो काल पाय विस्तारको धरता है, तसे तेरेविषे पूर्व शरीरका संकल्प था, सो अब प्राप्त होवैगा. उसी जैसा शरीर पाइकै तू हिमालयके बनविषे विचरैगी ॥ हे पुत्रि ! तेरे तौ अनिच्छित योग हुआ है. जैसे कोऊ छायाके निमित्त आंबफलके निकट आन बैठे अरु तिसको छाया भी प्राप्त होवै अरु फल भी प्राप्त होवै है, तैंने शरीरकी वृद्धिवास्ते यत्न किया था सो तृप्ति करनेहारा तेरे ताईं हुआ है, अरु तेरे ताईं ब्रह्मतत्त्व हुआ है, हे पुत्रि ! तू राक्षसीशरीरविषे जीवन्मुक्त होइकै विचरैगी, और जन्म तुझको नहीं आवैगा इस जन्मविषे तू परम शांत रहैगी, अरु शरत्कालके आकाशकी नाईं निर्मल होवैगी, जब तेरी वृत्ति बहिर्मुख फुरैगा, तब सब जगत् तुझको आत्मरूप भासैगा, व्यवहारविषे समाधि रहैगी, अरु समाधिविषे भी समाधि रहैगी, पापी जीवको तू भोजन करैगी, न्यायबांधव तेरा नाम होवैगा, अरु विवेकपालक तेरा देह होवैगा, ताते पूर्वके शरीरको अंगीकार कर. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! ऐसे कहिकारि ब्रह्माजी अंतर्धान होत भये,

तब सूचीने कहा, ऐसे ही होवै, हमको दोनों तुल्य हैं तब जैसे बीजते वृक्ष होता है, तैसे क्रमकारि तिसका शरीर बढ गया, कैसे बढा जो प्रथम प्रादेशमात्र हुआ, फिर हस्तमात्र, फिर वृक्षमात्र, फिर योजनमात्र होगई, जैसे संकल्पका वृक्ष एक क्षणते बढ जाता है, तैसे उसका शरीर बढ गया ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सूचीशरीरलाभो नाम पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः ७६.

अन्यायबाधकत्त्ववर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जैसे वर्षाकालका बादल सूक्ष्मते स्थूल होजाता है, तैसे सूची सूक्ष्म शरीरते बहुरि कर्कटी राक्षसी होती भई, जैसे सर्प कंचुकीको त्यागिके फिर ग्रहण नहीं करता, तैसे राक्षसीने शरीरको आत्मतत्त्वके कारण नहीं ग्रहण किया;ऐसे शरीरको पायके बहुरि पद्मासन बांधिके संवित्सत्ताविषे निर्विकल्पपदविषे स्थित भई, षट्मासपर्यंत पहाडके शिखरकी नाईं समाधिस्थित रही; बहुरि प्रारब्ध वेगकारि जाग आई, तब वृत्ति बहिर्मुख भई, तब क्षुधालगआई, काहेते कि, शरीरके स्वभाव शरीरपर्यंत रहते हैं तब विचारत भई; जो विवेकी हैं; तिनका मैं भोजन न करौंगी, तिसके भोजनते मेरा मरना श्रेष्ठ है, जो न्यायकर भोजन करने योग्य है, तिसको करौंगी, जो शरीर नष्ट होवै तो भी न्याय विना भोजन न करौंगी, देहादिक सब संकल्पमात्र हैं, मुझे न मरनेकी इच्छा है, न जीनेकी इच्छा है. हे रामजी ! ऐसे विचारिकरि सूची तूष्णीं होइ बैठी, राक्षसी स्वभावका त्याग किया, तब सूर्य भगवान् आकाशवाणीकरि कहत भया. हे कर्कटि ! तू जाइकै मूढ जीवोंका भोजन कर जब तू भोजन करैगी तब उनका कल्याण होवैगा, मूढोंका उद्धार करना भी संतोंका स्वभाव है, जो विवेकी पुरुष हैं, तिनका तुम भोजन नहीं

करना, अरु जो तेरे उपदेशकरि ज्ञानको पावैं तिनको भी न मारना अरु जो उपदेशकरि भी बोधात्मा न होवैं तिनका भोजन करना यह न्याय है, तब राक्षसीने कहा. हे भगवन् ! तुमने अनुग्रह करिकै कहा है. इसी प्रकार मुझको ब्रह्माजीने भी कहा था.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे अन्यायवाधकत्ववर्णनं नाम षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः ७७.

राक्षसीविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! ऐसे कहि करि सूची हिमालयके शिखरते उतरी, तहां किरात देश था, बहुत मृग पशु रहते थे, तिनविषे विचरने लगी, रात्रि भी श्याम, अरु राक्षसी भी श्याम, अरु तमाल वृक्ष भी श्याम, महा अंधकार भासै, जैसे भ्रमरेकी पीठ श्याम होती है. मानो कज्जलका मेघ आय स्थित भया है, ऐसी श्यामताविषे किरात देशका राजा मंत्री और वीर यात्राको निकले, तिनको आते देखिकै राक्षसी विचारत भई कि, मुझे भोजन आय प्राप्त भया, यह मूढ अज्ञानी हैं, इनको देह अभिमान है, इन मूर्खोंके जीनेकरि कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता, न यह लोक सिद्ध होता है, न परलोक सिद्ध होता है, ऐसे जीवोंका जीना दुःखके निमित्त है. इनको यत्नकरि भी मारना योग्य है, इनको पालना अनर्थके निमित्त है, पापको उदय करते हैं, आदि ब्रह्मा की नीति है कि पापी मारने योग्य हैं; अरु जो गुणवान् हैं सो मारने योग्य नहीं. कदाचित् गुणवान् होवै तौ मैं न मारौंगी; गुणवान् भी दो प्रकारके हैं, जो अमानी अदंभी अहिंसक शांतिमान् हैं, सो गुणवान् हैं, अरु पुण्यकर्म करनेवाले हैं; सो भी गुणवान् हैं अरु महागुणवान् तो ब्रह्मवेत्ता हैं, तिनके जीनेकरि बहुतका कार्य सिद्ध होता है, जो मेरा शरीर भोजन विना नष्ट होजावै, तौ भी गुणवान्को न मारौंगी,

जो उदार पुरुष है, सो पृथ्वीका चंद्रमा है, तिसकी संगतिकरि स्वर्ग भी होता है, अरु मोक्ष भी होता है, जैसे संजीवनी बूटीकरि मृतक भी जीता है, तैसे संतोंके संगकरि अमृत होता है, ताते मैं प्रश्न करिकै इनकी परीक्षा करौं ,कदाचित् यह भी गुणवान् होवैं, यह कमलनयन ज्ञानवान् भासते हैं; जो ज्ञानवान् पुरुष हैं. सो तौ पूजने योग्य हैं, अरु जो मूर्ख हैं, सो दंड देने योग्य हैं मैं इनको भोजन करौंगी.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीविचारो नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः ७८.

राक्षसीवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच– हे रामजी ! तब वह राक्षसी उनको देखिकै मेघकी नाईं गर्जने लगी अरु कहत भई, अरे अटवीरूपी आकाशके चंद्रमा, सूर्य, तुम कौन हौ. बुद्धिमान हौ, अथवा दुर्बुद्धि हौ, अरु कहांते आये हौ ? और तुम्हारा क्या आचार है ?तुम तौ मुझको ग्रास आन प्राप्त भये हौ, अब मैं तुमको भोजन करौंगी. राजोवाच–अरे इस भौतिक तुच्छ शरीरको पाइकरि तू कहां रहती हैं; हमको देखके जो तू गर्जती है. सो तेरा शब्द हमको भ्रमकरिकै शब्दवत् भासता है.कछु हमको भय नहीं होता. हे राक्षसी ! यह शरीर तेरा मायापात्र है, इस तुच्छ स्वभावको त्यागिकरि जो कछु तेरा अर्थ है सो कहौ, हम पूर्ण करि देवैंगे. हे रामजी ! जब इसप्रकार राजाने कहा, तब तिनके चलावने निमित्त राक्षसी प्रलयकालके मेघोंकी नाईं बहुरि बडा शब्द करत भई,जो पहाड भी चूर्ण होजावै, तैसा शब्द करने लगी,सबदिशा शब्दकरि भर रहीं, ग्रीवाको अरु भुजा ऊर्ध्व करिकै भयानक शब्द करै, बिजलीकी नाईं नेत्रोंको चमकावै तिसकी मूर्ति देखके राक्षस अरु पिचाश भी कंपायमान होवैं, ऐसे भयानक स्वभावको देखके भी दोनों धैर्यविषे रहे, तब मंत्रीने कहा, अरे राक्षसी ! ऐसे शब्द तू व्यर्थ करती है. इनकरि तो तेरा प्रयोजन कछु

सिद्ध न होवैगा, इस आरंभको त्यागिकै अपना अर्थ होवै सो कह, बुद्धिमान् जो पुरुष होते हैं, सो तिस अर्थको ग्रहण करते हैं, जो अपना विषयभूत होता है,जो अपना विषयभूत नहीं होता तिसके निमित्त यत्न नहीं करते सो हम तेरा विषयभूत नहीं, तुझ जैसे सहस्रों मर्दन किये हैं. हे राक्षसी ! हमारे धैर्यरूपी पवनकरि तुझ जैसी अनंत मक्खियां तृणवत् उडती फिरती हैं, ताते नीच स्वभावको त्याग, स्वस्थचित्त होइकै जो कछु अपना प्रयोजन है; सो प्रकट करु, बुद्धिमान् जो व्यवहार करते हैं; सो स्वस्थचित्त होइकै करते हैं. स्वस्थ हुएविना व्यहार भी सिद्ध नहीं होता, यह आदि नीति है, ताते स्वस्थचित्त होइकरि अपना वृत्तांत अर्थ कहि दे. हम तेरा अर्थ सिद्ध करि देवैंगे हमारे पासते स्वप्नविषे भी कोऊ अर्थी व्यर्थ नहीं गया, सबका अर्थ हम पूर्ण करते हैं, ताते अपना प्रयोजन कहि दे. हे रामजी ! जब ऐसे मंत्रीने कहा, तब राक्षसी चितवत भई. कि, यह उदारात्मा दृष्टि आते हैं अरु उज्ज्वल आचारवान् हैं, अपर जीवोंके समान नहीं यह बडे प्रकाशवान् हैं अरु धैर्यवान् हैं उदारता करिकै इनके वचन ज्ञानवानोंके साथ मिलते हैं, अब इनको जाना है अरु इनने मुझको जाना है, मुझसों इनका नाश भी न होवैगा. काहेते कि, यह अविनाशी पुरुष हैं,ब्रह्मसत्ताविषे स्थित हैं ताते ज्ञानवान् हैं,ऐसा निश्चय ज्ञानविना और किसीका नहीं होता, परंतु कदाचित् अज्ञानी होवैं तो बहुरि संदेहको अंगीकारकरिके पूछती हौं;संदेहवान् होकरि बोधवान्‌को नहीं पूछते हैं, सो भी, नीचबुद्धि है. हे रामजी ! ऐसे मनविषे धारिकै बहुरि पूछत भई,तुम कौन हो अरु तुम्हारा आचार क्या है!निष्पाप महापुरुषोंको देखिकै मित्रभाव उपज आता है. मंत्र्युवाच–हे राक्षसी ! किरात देशका यह राजा है अरु मैं इसका मंत्री हौं अरु रात्रिविषे तुमसारिखे दुष्टोंको मारणेनिमित्त उठे हैं,रात्रि दिनविषे हमारा यही आचार है, जो जीव धर्मोंके मर्यादाको त्यागनेहारे हैं, तिनका हम नाश करते हैं,जैसे इंधनोंको अग्नि नाश करता है,तैसे हम दुष्टोंका नाश करते हैं. राक्षस्युवाच–हे राजन् ! यह तेरा दुष्ट मंत्री है, जिस राजाका मंत्री भला नहीं होता, वह राजा भी भला नहीं, अरु जिस राजाका

मंत्री भला होता है, तिसकी प्रजा भी शांतिमान् होती है, भला मंत्री सो कहाता है,जो राजाको न्यायविषे अरु विवेकविषे जोडै,जो राजा विवेकी होता है, वह शांतात्मा होता है, जो राजा शांतिमान् हुआ तब प्रजा भी शांतिमान् होती है, सब गुणोंते जो उत्तम गुण है, सो आत्मज्ञान है जो आत्माको जानता है, सोई राजा है अरु सोई मंत्री है, जिसविषे प्रभुता भी होवै अरु समदृष्टि होवै अरु जो प्रभुता अरु समदृष्टिते रहित है सो न राजा है, न मंत्री है. हे राजन् ! जो तुम आत्मज्ञानवान् पुरुष हौ, तौ तुम कल्याणरूप हो अरु जो ज्ञानते रहित हौ, तब मैं तुमको भोजन करौंगी तुमको छूटनेका उपाय यही है; कि मैं प्रश्नोंका समूह पूछती हौं; तिनका उत्तर देना, जो प्रश्नोंका उत्तर दिया तब मेरे पूजने योग्य हौ अरु जो मेरा अर्थ होवैगा सो कहौंगी; तुम पूर्ण करौगे अरु जो प्रश्नोंका उत्तर न दिया, तब तुम्हारा भोजन करौंगी.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीवर्णनं नाम अष्टसततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमः सर्गः ७९.

राक्षसीप्रश्नवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जब इस प्रकार राक्षसीने कहा, तब राजाने कहा तू प्रश्न कर हम उत्तर देवैंगे राजस्युवाच–हे राजन् ! यह एक अणु कौन है, जिसते अनेक प्रकार हुए हैं ? एकके अनेक नाम हैं अरु वह कौन अणु है, जिसविषे अनेक ब्रह्मांड होते हैं ? जैसे समुद्रविषे अनेक बुद्बुदे उपजिकरि लीन होते हैं, तैसे एक अणुविषे अनेक ब्रह्मांड उपजते हैं, अरु लीन होते हैं, अरु वह आकाश कौन है, जो पोलते रहित है, अरु वह कौन अणु है, जो न किंचित् है, न अकिंचित् है ? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे तेरा अहम् अरु मेरा अहं फुरता है ? अरु अहं त्वम् एकविषे जनाते हैं, सो कौन है? अरु वह कौन है, जो चला जाता है, अरु कदाचित् नहीं चलता ? अरु सो कौन है,

जो तिष्ठत भी है, अरु अतिष्ठत भी है, अरु वह कौन है, जो पाषाणवत है, अरु वह कौन है, जिसने आकाशविषे चित्त किये हैं; अरु वह अग्नि कौन है, जो दाहकशक्तिते रहित है, अरु अग्निरूप है, अरु वह अग्नि कौन है, जिसते अग्नि उपजा है ? अरु वह कौन अणु है, जो सूर्य, अग्नि चन्द्रमा ताराके प्रकाशते रहित है, अरु अविनाशी है ? अरु वह कौन है, जो नेत्रोंकरि देखा नहीं जाता, अरु सब प्रकाशोंको उत्पन्न करता है ? अरु वह कौन ज्योति है, जो फूल फल वेलिको प्रकाशती है ? अरु जन्मांधको भी प्रकाशती है ? अरु वह कौन अणु है, जो आकाशादिक भूतोंको उपजाता है ? अरु वह कौन अणु है, जो स्वाभाविक प्रकाशमान है ? अरु वह भंडार कौन है, जिसते ब्रह्मांडरूपी रत्न उपजते हैं ? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे प्रकाश अरु तम इकट्ठे रहते हैं ? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे सत् असत् दोनों इकट्ठे रहते हैं ? अरु वह कौन अणु है; जो दूर भी अदूर है; अरु वह कौन अणु है; जिसविषे सुमेरु आदिक पर्वत समाय रहे हैं ? अरु वह कौन अणु है; जिसविषे निमेषमें कल्प है, अरु कल्पमें निमेष है? अरु वह कौन है, जो प्रत्यक्ष है, अरु असतरूप है ? अरु वह कौन है, जो सतरूप है, अरु अप्रत्यक्षरूप है और वह कौन चेतन है, जो अचेतन है ? अरु वह कौन वायु है, जो अवायुरूप है? अरु वह कौन है, जो अशब्दरूप है ? अरु वह कौन है, जो सर्व है ? अरु निष्किंचित है ? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे अहं नहीं अरु है भी ? अरु वह कौन है, जो अनेक जन्मोंके यत्नकरि पाता है ? अरु पायके कहता है कि कछु नहीं पाया अरु सब कछु पाया है ? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे सुमेरुआदिक तीनों भुवन तृणसमान हैं ? अरु वह कौन है, जो अनेक योजनोंको पूर्ण करता है ? अरु वह कौन अणु है, जिसके देखनेकारि जगत् फुरि आता है ? अरु वह कौन अणु है; जो अणुताको त्यागेविना सुमेरुआदिक स्थूल आकारको प्राप्त होता है ? अरु वह कौन अणु है, जो बालका सौवाँ भाग सुमेरुते भी ऊँचा भया है ? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे सब अनुभव स्थित हैं? अरु वह कौन अणु है, जो अत्यंत निस्वाद है? अरु आप ही सब स्वाद होता है ? अरु

वह कौन अणु है, जो अपने ढांपनेको समर्थ नहीं अरु सर्वको ढांपिरहा है ? अरु वह कौन अणु है; जिसकरि सब जीवते हैं ? अरु वह कौन अणु है, जिसका अवयव कोऊ नहीं, अरु सर्व अवयवको धारि रहा है ? अरु वह कौन निमेष है, जिसविषे बहुतेरे कल्प स्थित हैं ? अरु वह कौन अणु है, जिसविषे अनंत जगत् स्थित हैं जैसे बीजविषे वृक्ष होता है? अरु वह कौन अणु है; जिसविषे बीजते आदि अरु फल-पर्यंत न उदय हुए भी भासते हैं ? अरु वह कौन हैं, जो प्रयोजनते अरु कर्तृत्वते रहित है, अरु प्रयोजनवान् अरु कर्तृत्ववान्की नाईं स्थित है ? अरु वह कौन द्रष्टा है, जो दृश्यको मिलिकरि दृश्य होता है ? अरु वह कौन है, जो दृश्यके नष्ट हुए भी आपको अखंड देखता है ? अरु वह कौन है जिसके जाननेते द्रष्टा, दर्शन, दृश्य तीनों लय होजाते हैं ? जैसे सोनेको जाननेते भूषणभाव लीन होजाते हैं, अरु वह कौन है, जिसते भिन्न कछु नहीं, जैसे जलते भिन्न तरंगोंका अभाव है अरु वह एक ही कौन है? जो देश, काल, वस्तुके परिच्छेदते रहित सत् असत्की नाईं स्थित है ? अरु वह कौन अद्वैत है जिसते द्वैत भी भिन्न नहीं, जैसे समुद्रते तरंग भिन्न नहीं? अरु सो कौन है? जिसके देखते सत्ता असत्ता सब लीन होता है ? अरु वह कौन है, जिसविषे भ्रमरूपी अनंत जगत् स्थित हैं, जैसे बीजविषे वृक्ष होता है ? अरु वह कौन है, जो सबके अंतर है, जैसे वृक्षविषे बीज होते हैं ? अरु वह कौन है, जो सत्ता असत्तारूपी आप ही भया है- जैसे बीज वृक्षरूप है, अरु वृक्ष बीजरूप है ? अरु वह अणु कौन है, जिसविषे तंतु भी सुमेरुकी नाईं स्थूल है, जिसके अंतर कोटि ब्रह्मांड हैं ? हे राजन् ! सो अणुको देखा है तौ कहौ. हे राजा ! यह मुझको संशय है, तिसको तुम अपने मुखकरि दूर करौ, जिसके विद्यमान संशय दूर निवृत्त न होवै, तिसको पंडित नहीं कहना अरु जो ज्ञानवान् है, तिसको इन प्रश्नोंका उत्तर कहना सुगम है, इस संशयको वह शीघ्र ही छेद डारता है अरु जो अज्ञानी हैं, तिनको उत्तर कहना कठिन है ॥ हे राजन् ! जो तुम मेरे प्रश्नोंका उत्तर दिया, तौ तुम मेरे पूजने योग्य हो; अरु जो मूर्खताकरिकै प्रश्नोंका उत्तर न देवोगे

अरु प्रश्नोंका विपर्यय जानोंगे, तब तुम मेरे उदररूपी जठराग्निके इंधन हौ, दोनों मेरे उदरविषे जाइ पडौगे, तिसके अनंतर तुम्हारी सब प्रजाको ग्रास करि लेऊंगी. काहेते कि, मूर्ख पापियोंको मारना श्रेष्ठ है आगे पाप करनेते छूटेंगे, तुम्हारा भोजन करिकै पीछे तुम्हारी सब प्रजाको भोजन करि लेउँगी. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! श्याम मेघकी नाई जिसका आकार है, ऐसी राक्षसी इस प्रकार कहिकारि शुद्ध आशयको लेकरि तूष्णीं भई; जैसे शरत्कालविषे मेघमंडल निर्मल होता है तैसे निर्मल भावको प्राप्त भई ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीप्रश्नवर्णनं नामै-
कोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अशीतितमः सर्गः ८०.

राक्षसीप्रश्नभेदवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! यह जो अर्धरात्रिके समय महाशून्य वनविषे महाराक्षसीने महाप्रश्नोंको जब किया, तब महामंत्री तिसको उत्तर कहत भया. महामन्त्र्युवाच-हे राक्षसी ! यह जो तैंने संशयोंसों प्रश्न किये हैं तिनका मैं क्रमकारि उत्तर कहता हौं अरु तेरे संशयको छेदन करता हौं, जैसे उन्मत्त हस्तीको केसरी सिंह नष्ट करता है, तैसे मैं तेरे संशयको छेदन करता हौं. हे राक्षसी कमलनयनी ! जेते कछु तैंने प्रश्न किये हैं, सो एक परमात्माहीके किये हैं, ताते तेरा सब प्रश्नोंका एक ही प्रश्न है, परंतु तुमने अनेक प्रकार कर दिये हैं सो ब्रह्मवेत्ताके योग्य हैं. हे राक्षसी ! जो अनामाख्य है, अर्थ यह जो सर्व इंद्रियोंका विषय नहीं अरु अगम है अरु मनकी चिंतनाते रहित है, ऐसी सत्ता चिन्मात्र है अरु आकार भी सूक्ष्म है, इस कारणते सूक्ष्म कहाता है, सूक्ष्मता करिकै तिसकी अणु संज्ञा है, कछु परमाणुताकरिकै तिसकी अणु संज्ञा नहीं है, काहेते कि सर्वात्मा है, तिस अणुविषे

सत् असत्की नाईं जगत् स्थित है अरु तिस ही चिद्अणुविषे जब कछुक संवेदन फुरता है, तब वही संवेदन सत्य असत्य जगत्की नाईं भासता है, तिसकरिकै चित्त कहते हैं, अरु सृष्टिते पूर्व तिसविषे कछु न था, तिसकरि निष्किंचन कहाता है, अरु इंद्रियोंका विषय नहीं ताते न किंचित् है, अरु वही चिद्अणुविषे सबका आत्मा है,ताते अनंत भोक्ता पुरुष किंचन है तिसतै इतर कछु नहीं, ताते न किंचन है, अरु सोइ चिद्अणु सबका आत्मा है,अरु सोइ चिद्अणु एक ही आभासकरिकै अनेकरूप भासता है, जैसे सुवर्णते नाना प्रकारके भूषण भासते हैं, अरु वही चिद्अणु परमाकाशरूप है, जो आकाशते भी सूक्ष्म है अरु मनवाणीते अतीत है; सो सर्वात्मा है, शून्य कैसे होवै; सत्को जो शून्य कहते हैं, सो उन्मत्त कहाते हैं. काहेते कि असत् भी सत् विना सिद्ध नहीं होता, जिसके आश्रय असत् भी सिद्ध होता है, सो सत् है, अरु वही चिद्अणु पंचकोशोंविषे छिपता नहीं, जैसे कर्पूरकी गंध प्रगट होती है, छिपती नहीं, तैसे प्रगट होता है,पंचकोशोंविषे आत्मा छिपता नहीं, अनुभवरूप है, अरु वही चिन्मात्र सर्वरूपकारि किंचित् है, अरु अचेतन चिन्मात्र है, ताते अकिंचित् है, इंद्रियौंते रहित है,ताते निर्मल है, तिस ही चिद्अणुविषे फुरणेकारि अनेक जगत् स्थित जैसे समुद्रविषे फुरणेकरिकै तरंग उपजते हैं, बहुरि लीन होते हैं; तैसे चिद्अणुविषे फुरणेकारि अनेक जगत् उपजिकै लीन होते हैं, मन अरु इंद्रियोंके अतीत है, ताते चिद्अणु शून्य कहाता है, अपने आपहीकारि प्रकाशता है, ताते अशून्य है.हे राक्षसि ! मेरा अहम् अरु तेरा अहं भया है,सो आत्मा एकही भया है, अहंकी अपेक्षा करिकै त्वं है, अरु त्वंकी अपेक्षा करिकै मैं परिच्छिन्न हौं; परंतु दोनोंका उत्थान जो है, सो एक आत्मतत्त्वते ही है; तिस ही चिद्अणुके बोधते ब्रह्मरूप होता है,अरु तिस ही बोधविषे अहं त्वं सब लीन होते हैं, अथवा सर्व आप ही होता है,त्रिपुटीरूप भी वही है, अरु वही चिद्अणु अनेक योजनोंपर्यंत जाता है, अरु कदाचित् चलायमान नहीं भया, काहेते जो संवित् अनंतरूप है, योजनोंके समूह तिसके अंतर हैं न कोऊ आता है, न जाता है. अपने आकाशकोशविषे सब देशकाल

स्थित हैं, जिसविषे सब कछु होवै, तिसको प्राप्ति वास्तवते कहां होवै ? यह जेता जगत् है, सो तौ आत्माविषे है, फेर आत्मा कहां जावै, जैसे माताकी गोदविषे पुत्र होवै, तिसनिमित्त वह कहां जावै, तैसे आत्माविषे यह जगत् स्थित है, फिर आत्माको जाता कहां कहना, अरु चलता जो भासता है, सो देहकी अपेक्षाकरि भासता है, वह कदाचित् चला नहीं, जैसे आकाशविषे घटादिक स्थित हैं, तैसे चिद्अणुविषे देशकाल स्थित हैं, जैसे घट एक देशते देशांतरको जावै, तौ घट गया है, आकाश नहीं गया है, घटकी अपेक्षाकरि आकाश जाता भासता है, घटाकाश कहूं गया नहीं, काहेते जो आकाशविषे सब देश स्थित हैं, यह कहां जावै तैसे आत्मा जाता है, अरु नहीं जाता; तिस ही चिन्मात्र परमात्मविषे संवेदना आकार रचे हैं. आदि अंतते रहितविषे विचित्ररूपी जगत् रचा है, अरु सोई चिद्-अणु अग्निकी नाईं प्रकाशरूप है, अरु जलानेते रहित है, ज्ञान अग्निकरि प्रकाशमान है, अग्नि भी तिसते उपजा है, अरु सर्वगत वही है, अरु द्रव्यों-को पचाता भी वही है; प्रलयविषे सब भूत तिस विषे लीन होते हैं, अरु पुष्कल मेघ इकट्ठा होवैं तौ भी उसको आवरण नहीं करैं, सदा प्रकाशरूप अरु ज्ञानरूप है, आकाशते भी निर्मल है, अरु प्रकाशरूप है, जो अग्नि भी तिसते उत्पन्न होता है, अरु सबको सत्ता देनेहारा है, सूर्यादिक भी तिसके प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, अरु अनुभवरूप है, नेत्रोंविना भासता है, ऐसा हृदय-रूपी मंदिरका दीपक है सो आत्मा है, अनंत परम प्रकाशरूप है, अरु मन इंद्रियोंका विषय नहीं, अरु लता फूल फल आदिक सबको आत्म-त्वकरिकै प्रकाशता है, सबका अनुभवकर्ता वही है, काल आकाश क्रिया आदिक पदार्थको सत्ता देनेहारा वही चिद्अणु है, अरु सबका स्वामी कर्त्ता वही है, सबका पिता वही है, अरु सबका भोक्ता भी वही है, अरु स्व-रूपते सदा अकर्त्ता अभोक्ता है रूप जिसका, जैसे स्वप्नविषे कर्त्ता भोक्ता भासता है, अरु अकर्ता अभोक्ता है, तिसते इतर कछु नहीं, इसकारणते किंचन रूप है, जगत्को धारनेहारा है. स्वरूपते माता मान मेय जिस-करि प्रकाशते हैं, उपजा कछु नहीं ।चिदात्माका किंचन है, किंचन करिकै जगत्की नाईं भासता है; जो तुझने पूछा था; कि दूर अरु निकट कौन है,

सो अलखभाव करिकै दूर भी वही है; अरु चिद्रूप भावकरिकै अदूर भी वही है, अथवा ज्ञानकरिकै अदूर भी वही है; अरु अज्ञानकरिकै दूरते दूर है, अरु अज्ञानकरिकै तमरूप अरु ज्ञानकरिकै प्रकाशरूप भी वही है, अरु तिस ही चिद्अणुविषे संवेदनकरिकै सुमेरु आदिक स्थित हैं. हे राक्षसि! जेता कछु जगत् भासता है सो सब संवेदनरूप है, सुमेरु आदिक पदार्थ कछु उपजे नहीं, चिद्सत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है, तिसविषे जैसा संवेदन फुरता है तैसा आकार होइ भासता है! जहां निमेषका संवेदन फुरता है, तहां निमेष कहाता है, अरु जहां संवेदन कल्पका फुरता है; तहां कल्प कहते हैं, कल्प क्रिया आदिक जगत्विलास सब निमेषविषे फुरि आये हैं, जैसे मनके फुरणेकरिकै बहुत योजनोंपर्यंत पुरुष भासआता है अरु जैसे अल्प मुकुरविषे बडे विस्तार नगरका प्रतिबिंब समाइ जाता है, तैसे निमेषके फुरणेविषे सब जगत् फुरि आता है, अरु निमेषविषे कल्पसमुद्र पुर अनंत योजनोंका विस्तार चिद्अणुविषे स्थित है, अरु द्वैतभ्रमते रहित है. हे राक्षसि! यह जगत् स्वरूपते अवस्तुरूप है, संवेदनकरिकै भासता है; जैसे जैसे संवेदनविषे दृढ प्रतीति होती है, तैसा तैसा अनुभव होता है, तू देख.क्षणके स्वप्नविषे सत् असत् जगत् फुरि आता है अरु बहुत कालका अनुभव होता है, जो दुःखी होते हैं, तिनको थोडे कालविषे बहुत काल भासता है, अरु जो सुखी होते हैं, तिनको बहुत कालविषे थोडा काल भासता है, जैसे हरिश्चन्द्रको एकरात्रीविषे द्वादश वर्षका अनुभव भया; ताते जेता जेता संवेदन दृढ होता है, तैसे देशकाल होइ भासता है, सत भी असत्की नाईं भासता ह, जसे सुवर्णविषे भूषणबुद्धि होती है; तब भूषण भासते हैं, अरु समुद्रविषे तरंगोंकी दृढताते तरंग भिन्न भासते हैं; तैसे निमेषविषे कल्प भासते हैं; अरु वस्तुते न निमेष है, न कल्प हैं, न दूर है, न निकट है, सब चिद्अणु आत्माका आभास है. हे राक्षसि! प्रकाश अरु तम, दूर, अदूर, सब चेतना संपुटविषे रत्नोंकी नाईं है, वस्तुते अनन्यरूप है, भेदाभेद कछु नहीं. हे राक्षसी! जबलग दृश्यका सद्भाव दृढ होता है, तबलग द्रष्टा नहीं भासता, जैसे जबलग भूषणबुद्धि होती है, तबलग स्वर्ण नहीं भासता अरु जब स्वर्ण जाना

तब भूषणबुद्धि नहीं रहती, स्वर्ण ही भासता है, तैसे जबलग दृश्यका स्पंदभाव होता है, तबलग द्रष्टा नहीं भासता, अरु जब आत्मज्ञान होता है, तब केवल ब्रह्मसत्ता निर्मल ही सद्रूपकरिकै सर्वत्र भासती है अरु दुर्लक्षताकरिकै अर्थ यह जो मन इंद्रियोंके अविषयते असत्रूप कहते हैं, चेत्यताकरिकै तिसको चेतन कहते हैं, अरु चेत्यके अभावते अचेतनारूप कहते हैं, अर्थ यह जो चेत्यके अभावते अचेत्य चिन्मात्र कहते हैं, सो चेतन चमत्कारते जगत्की नाईं होइ भासता है. हे राक्षसी! और जगत् तिसविषे कोऊ नहीं जैसे वायुका विरोला वृक्षाकार होय भासता है, अरु जैसे सघन धूपकरिकै मृगतृष्णाकी नदी भासती है, तैसे एक अद्वैतचेतन है; सो घन चेतनता करिकै जगत्की नाईं होइ भासता है, जैसे सघन शून्यताकरिकै आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे दृढ सघन चेतनताकरिकै जगत् भासता है जैसे सूर्यकी सूक्ष्म किरणोंका किंचन मृगतृष्णाका जल होता है, तिस नदीका प्रमाण कछु नहीं; तैसे इस जगत्की अवस्था भासती है, सब आकाशरूप है, जैसे भ्रमकरिकै धूडके कणमें स्वर्णकी नाईं चमत्कार होते हैं; तैसे जगतकल्पना चित्तके फुरने करिकै भासती है जैसे स्वप्नपुर अरु गंधर्वनगर आकारसहित भासते हैं; सो न सत् है, न असत् है, तैसे यह जगत् दीर्घ स्वप्न है, न सत् है, न असत् है. हे राक्षसि! जब तिसका आत्माविषे अभ्यास होवै तब यह कुंडादिक ऐसे ही रहैं अरु आकाशरूप ही भासैं, स्वरूपते कुंडादिक भी आकाशरूप हैं, आकाश अरु कुंड आदिकोंविषे भेद कछु नहीं, मूढताकरिकै भेद भासता है, ज्ञानीको सब चित्ताकाशरूप भासता है, हे राक्षसि! ब्रह्माते तृणपर्यंत संवेदनविषे कल्पना दृढ होरही है. तैसे ही भासती है अरु वास्तवते वही चिदाकाश प्रकाशता है, घन चेतनताकरिकै वही चिदाकाश आकारोंकी नाईं प्रकाशता है; तिसीका यह प्रकाश है; सो अनन्यरूप है; जैसे बीज अरु वृक्ष अनन्यरूप हैं, तैसे असंख्यरूप जगत् ब्रह्मसत्ताविषे स्थित है सो अनन्यरूप है, जैसे बीजविषे वृक्षका भाव स्थित है, सो आकाशरूप है, तैसे ब्रह्मविषे जगत् स्थित है सो अक्षोभरूप है, अन्यभावको नहीं प्राप्त हुए, सो ब्रह्मसत्ता सब ओरते शांतरूप है, अज है, एक है,

आदि मध्य अंतते रहित है, तिसविषे एक अरु द्वैतकी कल्पना कोई नहीं, अनउदय ही उदय हुई है, निर्मल स्वप्रकाश आत्मा ही है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीप्रश्नभेदवर्णनं नामाशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमः सर्गः ८१.

परमार्थनिरूपणम्।

वसिष्ठ उवाच-बडा आश्चर्य है,बडा आश्चर्य है; मंत्रीने तौ यह परम पावन परमार्थ वचन कहे हैं; अब कमलनयन राजा भी कछु कहता है. राजोवाच-हे राक्षसि ! यह जो जागृत जगत्की प्रतीति होती है, सो इसका जब अभाव होवै तब आत्मप्रतीति होती है; जब सब संकल्पकी चेत्यताका नाश होवै; तब आत्माका साक्षात्कार होवै सो आत्मसत्ता कैसी है जिसविषे संवेदन फुरणेकरि जगत् होइ भासता है अरु संवेदनके संकोचकरि सृष्टिका प्रलय होता है, तिसका अधिष्ठानरूप आत्मसत्ता है तिसको वेदांतवाक्य जतावनेके अर्थ कछुक कहते हैं, काहेते जो वाणीते अतीत पद है. हे राक्षसि ! यह जो द्रष्टा, दर्शन, दृश्य है; तिसके अंतर अनुभवसत्ता है; सो परमात्मा है;सो परमात्मा ही द्रष्टा, दर्शन, दृश्यरूप होइकरि भासता है, तिसविषे जगत् लीला है नानात्व भावकरिकै भी कछु खंडितभावको नहीं प्राप्त भया, अखंड ही रहा है; तिस चिन्मात्रसत्ताको ब्रह्मकरि कहते हैं. हे भद्रे ! सोई चिद्अणु संवेदन करिकै वायुरूप हुआ है अरु वायु तिसविषे अत्यंत भ्रांतिमात्र है, काहेते कि, वह केवल शुद्ध चिन्मात्र है; जब तिसविषे शब्दका संवेदन फुरता है, तब शब्दरूप होइ भासता है अरु शब्दरूप तिसविषे भ्रांतिमात्र है; तिसविषे शब्द अरु शब्दका अर्थ देखना दूरते दूर है. काहेते कि, केवल चिन्मात्र है, तिसविषे अहं त्वं कछु नहीं, अरु वह, निष्किंचन है, ऐसे रूप होइ करि भासता है, काहेते सो सब शक्तिरूप आत्मा है; तिसविषे जैसी प्रतिभा फुरती है तैसा ही होइ करि भासता है,ताते फुरणा ही इस जगत्का कारण

है, अरु अनेक यत्नोंकारि पावने योग्य है, सो भी आत्मसत्ता है, जब तिसको पावता है तब उसने कछु नहीं पाया अरु सब कछु पाया है, तौ इस कारणते नहीं कि आगे भी अपना आप था, अरु सब कछु पाया, इस कारणते कि आत्माके पायेते कछु और पावना नहीं रहता. हे राक्षसि ! अज्ञानरूपी वसंतऋतुकरिकै जन्मोंकी परंपरा वेलि तबलग बढती जाती है जबलग इसका काटनेहारा बोधरूपी खड्ग नहीं उदय भया, जब बोधरूपी खड्ग उदय होता है तब जन्मरूपी वेलिको काटता है. हे राक्षसि ! चिदूअणु संवेदनद्वारा आपका दृश्यविषे प्राप्त करता है, जैसे किरणोंका चमत्कार जलरूप होइकरि स्थित होता है, सो शुद्ध ही आपको संवेदनद्वारा फुरता देखता है, तैसे चिदूअणुद्वारा जगत् हुआ है, सो मेरुते आदि लेकरि तीनों भुवन किरणोंकी नाई स्थित होते हैं, अरु वस्तुते मायामात्र हैं, भ्रमकरिकै पडे भासते हैं, स्वप्नविषे रागीको स्वप्नस्त्रीका आलिंगन होता है, तैसे यह जगत् मनके फुरणेकरिकै पडा भासता है, सो भ्रममात्र है. हे राक्षसि ! सर्व शक्तिरूप आपविषे जैसे सृष्टिका आदि फुरणा हुआ है, तैसा रूप होइ-करि भासने लगा है, जैसे संकल्प किया है तैसे स्थित भया है, ताते सब जगत् संकलपमात्र है, जैसा जिसविषे बालकका मन लगता है, तैसा रूप उसका होइ भासता है, तैसे संवित्के आश्रय जैसा संवेदन फुरता है तैसा रूप होइ भासता है. हे राक्षसि ! चिदूअणु परमाणुते भी सूक्ष्म है; अरु तिसने ही सब जगत्को पूर्ण किया है, सब जगत् अनंतरूप आत्मा है, तिसविषे संवेदनकरिकै जगत्की रचना हुई है; जैसे नट-नायक होता है. सो जसे जैसे बालकको नेत्रोंकर जतावता है; तैसे वह नृत्य करता है; अरु जब वह जतावनेते ठहर जावे तब वह ठहर जावे हैं, तैसे चित्तके अवलोकनते कारिक सुमेरु आदिक तृणपर्यंत जगत् नृत्य करता है; जैसे चित्तसंवेदन फुरता है; अनंतशक्ति आत्मविषे तैसे तैसे होइ भासती है. हे राक्षसि ! देश काल वस्तुके परिच्छेदते आत्मसत्ता रहित है, इसकारणते सुमेरु आदिकते स्थूल है; तृणके समान सुमेरु आदिक है अरु बालके अग्रते सौवां भाग होवे, तैसे सूक्ष्म है, सो

अल्पताकरि ऐसा सूक्ष्म नहीं, जिसविषे सरसोंका दाना भी सुमेरुवत् स्थूल है, मायाकी कला बहुत सूक्ष्म है, तिसते भी चिदूअणु सूक्ष्म है काहेते जो निर्मायिक पद परमात्मा है, जैसे स्वर्ण अरु भूषणकी शोभा समान नहीं, अथ यह जो स्वर्णविषे भूषण कल्पित है, समान कैसे होवे तैसे माया परमात्माके समान नहीं, काहेत कि कल्पित है. हे राक्षसि ! जेते कछु सूर्य आदिक प्रकाश हैं, सो सब अनुभवकरि प्रकाशते हैं, इनका सद्भाव कछु न था, तिस ही सत्ताकरि इनका प्रगट होना भया है, अरु बहुरि जर्जरीभूत होते हैं, प्रकाशरूप शुद्ध चिन्मात्र सत्ता है, सो सदा अपने आपविषे स्थित है, तिस चिदूअणुके अंतर बाह्य प्रकाश है अरु यह जो सूर्य चन्द्रमा अग्नि आदिक प्रकाश हैं, सो तमसाथ मिले हुए हैं, अर्थ यह जो भेदरूप हैं यह भी तमरूप हैं. काहेते जो आपेक्षिक प्रकाश है इन्होंविषे एता भेद है, जो प्रकाश शुक्लरूप है अरु तम कृष्णरूप है, रंगका भेद है, प्रकाशरूप कोऊ नहीं, जसे श्याम कुहिड मेघकी होती है, अरु शुद्ध कुहिड बर्फकी होती है अरु दोनों कुहिड हैं, तैसे तम अरु प्रकाश दोनों तुल्य हैं, अरु आत्मसत्ता दोनोंको प्रकाशती है, ताते दोनोंको आश्रयभूत केवल एक आत्मसत्ता है. हे राक्षसि ! रात्रिदिन अंतर बाहिर नतियां पहाड आदिक सब लोक आत्मसत्ताके प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, जैसे कमल अरु नीलोत्पल दोनोंको सूर्य प्रकाशता है, कमल श्वेत है अरु नीलोत्पल श्याम है, जहां श्वेत कमल है, तहां नीलोत्पलका अभाव है,अरु जहां नील कमल है, तहां श्वेतकमलका अभाव है, अरु दोनोंका प्रकाशक सूर्य है, तैसे तम अरु प्रकाश दोनोंका प्रकाशक चिदात्मा है,जैसे रात्रि अरु दिन दोनों सूर्यकरिके सिद्ध होते हैं, तैसे अरु प्रकाश दोनों आत्माकरि सिद्ध होते हैं;जैसे दिन तब कहाता है. जब सूर्य उदय होता है, अरु जब सूर्य अस्त होता है, तब रात्रि होती है परंतु आत्मा तैसा नहीं; आत्मप्रकाश सदा उदय अरु अस्तते रहित है, तिसविना कछु सिद्ध नहीं होता,सबका प्रकाशक चिदूअणु है. हे राक्षसि ! तिस अणुके अंतर विचित्र अनुभव अणु है, जैसे वसंतऋतुके अंतर पत्र फूल फल टास होते हैं, तैसे चिदूअणुते सब अनु-

भव अणु होते हैं, जैसे एक बीजते अनेक वृक्ष क्रमकरिकै होजाते हैं, तैसे अनेक चिदूअणुते अनेक अनुभव अणु होते हैं कई व्यतीत भये हैं, कई वर्तमान हैं, अरु कई भविष्यत् होवैंगे, जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं सो कई अब वर्तते हैं, कई आगे होवैंगे, तैसे आत्माविषे तीनों कालकी सृष्टि वर्तती हैं,. हे राक्षसि! चिदूअणु आत्मा उदासीन है, अरु आसीनकी नाईं स्थित होता है; सबका कर्त्ता भी है, भोक्ता भी है, अरु स्पर्श किसी साथ नहीं किया, जगत्की सत्यता तिसीते उदय होती है, इस कारणते सबका कर्त्ता है, अरु सबका अपना आप है, ताते सबको भोगता है, अरु वास्तवते न उपजा है, न कछु लीन होता है, चिन्मात्रसत्ता ज्योंकी त्यों सदा अपने आपविषे स्थित है, अरु अखंड है. सूक्ष्म है; इस कारणते किसीके साथ स्पर्श नहीं किया. हे राक्षसि! जेता जगत् दीखता है, सो सब आत्मरूप है, आत्मा अरु जगत्विषे कछु भेद नहीं, आत्मा अरु जगत् कहने मात्र दोनों नाम हैं, वस्तुते एक आत्मा ही है, आत्माका चमत्कार ही जगत्रूप होइ भासता है, जगत् कछु बना नहीं, चिन्मात्रसत्ता सदा अपने आपविषे स्थित है, और जेता कछु कहना है सो उपदेश जतावनेके निमित्त है, वास्तवते दूसरी वस्तु कछु बनी नहीं, तीनों जगत् चिदाकाशरूप हैं. हे राक्षसि! द्रष्टा जब दृश्यपदको प्राप्त होता है, तब स्वाभाविक अपने भावको नहीं देखता; जैसे नेत्र जब घटको देखता है, तब घट ही भासता है, अपना नेत्रत्वभाव दृष्टिमें नहीं आता; तैसे दृश्यके होते द्रष्टा नहीं भासता, अरु जब दृश्य नष्ट होवै, तब द्रष्टा भी अवास्तव है. काहेते कि, द्रष्टा भी इसको दृश्यके संबंधकरि कहाता है, जब दृश्य नष्ट होजावै, तब द्रष्टा किसको कहिये? दृश्य विषयभूत सो होता है, जो अदृश्य है सो विषयभूत किसीका नहीं, इस कारणते तिसविषे और कल्पना कोई नहीं बनती. अरु यह जगत् भी तिसका आभास है, हे राक्षसी! जैसे भोक्ता विना भोग नहीं होते, तैसे द्रष्टा विना दृश्य नहीं होते; जैसे पिता विना पुत्र नहीं होता, तैसे एक विना द्वैत नहीं होते. हे राक्षसि! द्रष्टाको दृश्य उपजानेकी समर्थता है, परंतु दृश्यको द्रष्टा उपजानेकी समर्थता नहीं

काहेते कि दृश्य जड है, जैसे सुवर्णते भूषण बनता है, भूषणते स्वर्ण नहीं बनता, तैसे द्रष्टाते दृश्य होता है, दृश्यते द्रष्टा नहीं होता. हे राक्षसि ! स्वर्णविषे जैसे भूषण हैं, तैसे द्रष्टाविषे दृश्य है, सो भ्रमरूप है, इसीसे जडरूप है, जब द्रष्टा दृश्यको देखता है तब दृश्य भासता है, द्रष्टृत्वभाव नहीं भासता, अरु जब द्रष्टा अपने स्वभावविषे स्थित होता है, तब दृश्य नहीं भासता, जैसे जबलग भूषणबुद्धि होती है तबलग स्वर्ण नहीं भासता भूषण ही भासता है, अरु जब सुवर्णका ज्ञान होता है; तब सुवर्ण ही भासता है, भूषण नहीं भासता, अरु एक सत्ताविषे दोनों नहीं सिद्ध होते, जैसे अंधकारविषे पुरुष देखिकारि तिसविषे पशुत्व भासै तब जबलग पशुबुद्धि होती है तबलग पुरुषका निश्चय नहीं होता, अरु जब निश्चय करिकै पुरुष जाना तब बहुरि पशुबुद्धि नहीं रहती, तैसे जब द्रष्टा दृश्यको देखता है तब द्रष्टाभाव नहीं दीखता, दृश्य ही भासता है, जैसे जेवरीके ज्ञानते सर्पका अभाव होजाता है तैसे बोधकरिकै दृश्यका अभाव होता है, तब एक ही परमात्मसत्ता भासती है, द्रष्टासंज्ञा भी नहीं रहती; जैसे दूसरेकी अपेक्षा करिकै एक कहाता है, दूसरेके अभाव हुए एक कहना भी नहीं रहता, तैसे दृश्यके अभाव हुए द्रष्टा कहना नहीं रहता, शुद्ध संवित्पद मात्र शेष रहता है, तिसविषे वाणीको गम नहीं, जैसे दीपक पदार्थोंको प्रकाशता है तैसे द्रष्टा दर्शन अरु दृश्यको प्रकाशता है, अरु बोधकरिकै माता, मान, मेय त्रिपुटी लीन होजाती हैं, जैसे सुवर्णके जाननेते भूषणकल्पनाका अभाव होजाता है, तैसे ज्ञानकरिकै त्रिपुटीका अभाव होजाता है, केवल शुद्ध अद्वैतरूप रहता है. हे राक्षसि ! परम अणु जो अत्यंत निस्वादरूप है सो सर्व स्वादोंको उपजाता है, जहां रससहित होता है तहां चिद्‌अणु करिकै होता है, जैसे आदर्शविना प्रतिबिंब नहीं होता, तैसे सब स्वाद चिद्‌अणु विना नहीं होते, सबको रस देनेहारा चिद्‌अणु है, सब आत्मभावकरिकै सबका अधिष्ठान है, अरु सूक्ष्मते सूक्ष्म है ताते निस्वाद है, सोई चिद्‌अणु अपने गोप करणेको समर्थ नहीं; अरु सब जगत्‌को ढांप रक्खा है, आप किसीकारि आच्छादा नहीं जाता, सो सुन. जो चिदाकाशरूप है अरु सब पदा-

र्थोंको सत्ता देनेहारा है अरु सबका आश्रयभूत है, जैसे घासके वनविषे हस्ती नहीं छिपता, तैसे आत्मा किसी पदार्थकरि नहीं छिपता. हे राक्षसि ! जिसकरि सब पदार्थ सिद्ध होते हैं, अरु सदा प्रकाशरूप है, सो मूर्खोंको नहीं भासता यह आश्चर्य है, सो अनुभवरूप है, यह सब जगत् तिसहीकरि जीता है, जैसे वसंतऋतुकरि फूल फल टास पत्र फूलते हैं तैसे सब जगत् आत्माकरि फूलता है, वही चिदात्मा जगत्रूप होइकै भासता है, अरु सर्वात्मभावकरिकै सर्व तिसके अवयव परमार्थ निरवयवरूप निराकाररूप हैं, कछु तिसविषे उदय नहीं भया. हे राक्षसि ! एक निमेषके अबोधकरिकै चिद्अणुविषे अनेक कल्पोंका अनुभव होता है, जैसे एक क्षणके स्वप्नविषे आपको बालक बहुरि वृद्ध अवस्था देखने लगता है अरु तीनों कल्पोंविषे जो निमेष हैं तिनविषे अनेक कल्प व्यतीत होते हैं, काहेते जो अधिष्ठान सर्वशक्तिमान् है, जैसा संवेदन जहां फुरता है तैसा रूप तहां होइ भासता है, जैसे स्वप्नविषे अभोक्ताको भोक्तृत्वका अनुभव होता है तैसे निमिषविषे कल्पना अनुभव होता है, वासनाकरि आविष्ट हुआ अभोक्ता ही आपको भोक्ता देखता है, जैसे स्वप्नविषे अपना मरण प्रत्यक्ष देखता है तैसे यह जगत्भ्रम भासता है, जैसे फुरण जहां दृढ होता है, तैसा होइकरि तहाँ भासता है. हे राक्षसि ! जेते कछु आकार भासते हैं, सो भ्रांतिमात्र हैं, जैसे निर्मल आकाशविषे नीलता भासती है तैसे ही आत्मविषे विश्व भासता है. आत्मा सर्वगत है अरु सबका अनुभवरूप है. हे राक्षसि ! तिसविषे व्याप्यव्यापकभाव भी नहीं, काहेते जो सर्व आत्मा है अरु सर्वरूप भी वही है, जब शुद्ध चित्तसंवित्विषे संवेदन फुरता है, तब पृथक् पृथक् भावको चेतता है इच्छाकरिके जिस पदार्थकी उपलब्धि होती है तिसविषे व्याप्यव्यापकभाव कल्पना होती है, वस्तुते जो इच्छा है सोई पदार्थ भया;जैसे जलविषे द्रवता होती है, तिसकरि तरंग फेन बुद्बुदे होते हैं, सो जलरूप हैं, जलते इतर तो कछु नहीं तैसे इच्छाकरि उपजे पदार्थ आत्मरूप हैं इतर कछु नहीं, आत्मा देश काल वस्तुओंके परिच्छेदते रहित है, केवल शुद्ध चिन्मात्र है अरु सर्वरूप होइकरि स्थित

भया है, सबका अनुभव भी तिसविषे भया है,सो तो शुद्ध सत्तामात्र है, तिसविषे द्वैतकल्पना कैसे कहिये. हे राक्षसि! जब कछु द्वैत होता है, तब एक भी होता है, जो द्वैत ही नहीं तो एक कैसे कहिये, जैसे धूपकी अपेक्षाकरि छाया है अरु छायाकी अपेक्षाकरि धूप है, तैसे एककी अपेक्षाकरि द्वैत कहाता है इस कल्पनाते रहित है, सो चिन्मात्ररूप है, अरु जगत् भी तिससे व्यतिरिक्त नहीं, जैसे जल अरु द्रवताविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे कछु भेद नहीं. हे राक्षसि! नानाप्रकारके आरंभ दृष्ट आते हैं तौ भी आत्मसत्ता सम है. हे राक्षसि! जब इसको सम्यक् बोध होता है, तब द्वैत भी अद्वैतरूप भासता है, काहेते कि अज्ञानकरि द्वैतकल्पना होती है, वास्तव कछु नहीं, अज्ञानके अभावते द्वैतका भी अभाव होजाता है, वास्तवते ब्रह्म अरु जगत्‌विषे कछु भेद नहीं,जैसे जल अरु द्रवताविषे भेद कछु नहीं,जैसे वायु अरु स्पंदताविषे कछु भेद नहीं,जैसे आकाशविषे अरु शून्यताविषे कछु भेद नहीं तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे कछु भेद नहीं.हे राक्षसि! द्वैत अरु अद्वैत जानना दुःखका कारण है, द्वैत अद्वैतकी कल्पनाते रहित होना इसीको परमपद कहते हैं, अरु दृष्टारूप जो जगत् है सो चिद्‌परमाणुविषे स्थित है, तिसविषे सुमेरु आदिक स्थित हैं,ताते बडा आश्चर्य है,माया ही महाआश्चर्य है, सो चिद्‌परमाणुविषे त्रिलोकी परंपरा स्थित है, इसीते असंभवरूप मायामय है, जैसे बीजविषे वृक्ष स्थित है, तैसे चिद्‌अणुविषे जगत् स्थित है, जसे शाखा पत्र फूल फलकरि बीज अपने बीजत्वको नहीं त्यागता अरु अखंड रहता है, तैसे चिद्‌अणुके अंतर जगत्‌का विस्तार है अरु अणुत्वभावको नहीं त्यागता, अखंड ही रहता है. हे राक्षसि! बीज भी परिणामकरिक वृक्षभावको प्राप्त होता है, अरु चिद्‌अणु ही परिणाम करिकै जगत्‌रूप होता है, चिद्‌अणुका किंचनरूप है. चिद्‌अणु ही ऐसे दिखाई देता है, वास्तवते न द्वैतरूप है, न अद्वैत हैं, न बीज है न अंकुर है, न स्थूल है, न सूक्ष्म है, न कछु उपजा है, न नष्ट होता है, न अस्ति है, न नास्ति है, न सम है, न असम है, न जगत् है, न अजगत् है, केवल चिदानन्द आत्मसत्ता अचिंत्य चिन्मात्र अपने आपविषे स्थित है, सोई

सर्वात्मा है, जसी जैसी भावना होती है तैसे तैसे हो भासता है. हे राक्षसि ! वह अन उदय ही संवेदनके वशते उदय होइकरि भासता है. जैसे बीजते वृक्ष अनन्यरूप अनेक होइ भासता है तैसे एक आत्म अनेकरूप होइ भासता है, न कछु उदय हुआ है, न मिटता है. हे राक्षसि ! तिस चिद्‍अणुते भीहकी तंतु सुमेरुकी नाईं स्थूल है, जैसे भीहकी तंतुते सुमेरु स्थूल है तैसे चिद्‍अणुते भीहकी तंतु स्थूल है, अरु दृश्य रूप है, अरु चिद्‍अणु दृश्य नहीं, मनसहित षट्‍ इंद्रियोंका विषय नहीं, इस कारणते भीहकी तंतुते सूक्ष्म है, तिस चिद्‍अणुविषे अनंतसुमेरु आदिक स्थित हैं, सो क्यारूप है, जैसे आकाशविषे शून्यता होती है. तैसे आत्माविषे जगत् है. हे राक्षसि ! जिसको आत्माका बोध हुआ है, तिसको जगत् सुषुप्तिकी नाईं होता है, सो आत्मसत्ता सदा अद्वैतरूप है. अरु परिणामते रहित है तिसविषे मुक्त पुरुष सदा स्थित है, परमार्थते जगत् भी ब्रह्मरूप है, भिन्नभाव कछु नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सूच्युपाख्याने परमार्थनिरूपणं नामैकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमः सर्गः ८२.

राक्षसीसौहृदवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इसप्रकार राजाके मुखते श्रवण करिकै कर्कटीने बनके मर्कटीरूप जीवोंके मारनेकी चपलताका त्याग किया, अरु अंतरते शीतल भई, अरु विश्रामको प्राप्त भई, अरु अंतरते तप्तता मिट गई अरु परमानंदको प्राप्त भई, जैसे वर्षाकालविषे मोरनी प्रसन्न होती है, अरु जैसे चंद्रमाको देखिकै चंद्रवशी कमल प्रफुल्लित होता है, जैसे मेघके शब्दकरि बगली गर्भवती होती है, तैसे राजाके वचन श्रवण करिकै कर्कटी परमानंदको प्राप्त भई. राक्षस्युवाच–बडा आश्चर्य है ! बडा आश्चर्य है. हे राजा! तुमने महापावन वचन कहे हैं, ताते तुम्हारा बोध मैंने विमल देखा है, अरु अमृतसार है, अरु बोधरूपी सूर्य है, अरु शीतल

है, समरसकरि पूर्ण है अरु शुद्ध है, रागद्वेष आदिक मलते रहित है. जैसे पूर्णिमाका चंद्रमा शीतल अमृतकरि पूर्ण शुद्ध होता तैसे तुम्हारा बोध है, विवेकी जगत्विषे पूज्य है, तुम्हारे वचनोंकारि मेरी बुद्धि प्रफुल्लित हो आई, जैसे चंद्रमाको देखिकै कमलिनी प्रफुल्लित हो आती है, जैसे फूलोंके साथ मिलिकरि वायु सुगंधित होता है, जैसे सूर्यके उदय हुए सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित हो आते हैं, तैसे संतोंकी संगतिकरि बुद्धि सुखको प्राप्त होती है. हे राजन्! वह कौन है, जो दीपक हाथविषे होवै अरु टोयेविषे गिरै ? तैसे वह कौन है, जो संतोंके संगकरि दुःखी रहै, वह कौन है, जिसके हाथविषे दीपक होवै अरु तमको देखै, तैसे वह कौन है, जो संतोंकी संगति करै अरु दुःखी रहै, संतोंके संगकरि सबही दुःख नष्ट होते हैं. हे राजन्! तुम जो इस वनविषे आये हो, सो क्या प्रयोजन है? तुम तौ पूजने योग्य हौ, अपना प्रयोजन कहौ. राजोवाच-हे राक्षसि! मेरे नगरविषे जो मनुष्य रहते हैं तिनको एक विषूचिका रोग आनि लगा है, तिस विषूचिकाकरि वह बहुत कष्टमान भये हैं, औषध भी बहुत करि रहे हैं, परंतु दुःख दूर नहीं होता, अरु हमने सुना है, कि एक राक्षसी है, वही जीवोंको कष्ट देती है, अरु तिसका मंत्र भी है, तिस मंत्रके पढते निवृत्त होजाती है, तिस तुमसरीखेके मारने निमित्त मैं रात्रिको वीरयात्रा करने निकसा हौं. हे राक्षसी! जो वह राक्षसी है सो तू ही है तौ हमारा तुम्हारा संवाद भी हुआ है, तिसका अंगीकार करिकै प्राणियोंकी हिंसा करनी छोड देहु, किसीको कष्ट न देहु. राक्षस्युवाच-हे राजन्! तुमने सत्य कहा है, अब मैंने हिंसाधर्मका त्याग किया है, किसी जीवको न मारौंगी राजोवाच-हे राक्षसि! तैंने कहा कि मैं अब किसी जीवको न मारौंगी, सो तेरा आहार तौ जीव हैं, जीवोंको मारेबिना तेरे शरीरका निर्वाह कैसे होवैगा? राक्षस्युवाच-हे राजन्! छःसौ वर्ष मैं समाधिविषे स्थित रही थी, तिसते उपरांत समाधि खुली, तब क्षुधा लगी अब बहुरि हिमालय पर्वतकी कंदराविषे जाइकरि निश्चल समाधिविषे जुटौंगी; जैसे मूर्ति लिखी होती है, तैसी स्थित होऊंगी, जब समाधिते उतरौंगी, तब अमृतकी

धारणाविषे विश्राम करौंगी, जब तिसते उतरौंगी, तब शरीरका त्याग करौंगी, परंतु हिंसा न करौंगी. हे राजन् ! जिस प्रकार मैं हिंसाधर्मको अंगीकार किया है, सो सुन, मुझको क्षुधा जब बडी लगी, तब तिसके निवारणके अर्थ हिमालय पर्वतके उत्तर शिखर ऊपर एक वन है, तिसविषे एक सोनेकी शिला है, तिसके पास मैं लोहके स्तंभकी नाई आकाशसाथ जीवोंके नाशनिमित्त तप करने लगी, जब बहुत वर्ष व्यतीत भये, तब मनवांछित वर मुझको ब्रह्माजीने दिया, तब मेरे दो शरीर भये, एक आधारभूत सूर्यकी नाई अरु दूसरा पुर्यष्टकरूप भया, तब मैं विषूचिका नाम राक्षसी भई, तिस शरीरसाथ मैं अनेक जीवोंको भोजन करौं, अन्तर जाय प्रवेश करौं परंतु ब्रह्माजीने मुझको कहा है,जो गुणवान् होवेंगे, तिनपर तेरा बल न चलैगा अरु जहां ॐमंत्रपढैंगे तहां भी बल न चलैगा तू निवृत्त होजावैगी. हे राजन् ! वही मंत्रका उपदेश अब तुम भी अंगीकार करौ, तिस मंत्रके पाठकरि सबके व्याधि रोग नष्ट होवेंगे,ब्रह्माजीका जो उपदेशहै,तिसको तुम नदीके तटपर जाइकरि पवित्र होइकरि शीघ्र ही ग्रहण करौ, तिसके पाठकरि तेरी प्रजाका दुःख नष्ट होजावैगा. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इस प्रकार जब अर्ध-रात्रिके समय राक्षसीने कहा, तब निकट ही नदीके तीरपर राजा, मंत्री अरु राक्षसी तीनों गये अरु अन्वयव्यतिरेककरिकै आपसमें सुहृद् भये तीनों पवित्र होइकरि नदीके तीरपर बैठे,तब जो मंत्र राक्षसीको ब्रह्माजीने उपदेश किया था,सोई मंत्र विषूचिका प्रीतिसंयुक्त राजाको उपदेश करती भई, जिसके जपनेकरि कार्य सिद्ध होवै; तिस मंत्रका क्रमकरि उपदेश किया अरु चलने लगी, तब राजाने कहा, हे महादेवि ! तू हमारी गुरु है, तुम्हारे विद्यमान हम कछु प्रार्थना करते हैं, सो अंगीकार करना; जो महापुरुष हैं, तिनका सुंदर सुहृद्पना बढता जाता है अरु तुम्हारा शरीर भी इच्छाचारी है, ताते लघु शरीरको धारौ, मनके हरनेहारे भूषण वस्त्र-संयुक्त स्त्रीका शरीर धारिकै कोई काल हमारे नगरविषे निवास करौ. राक्षस्युवाच–हे राजन् ! मैं तौ लघु आकार भी धरौंगी, परंतु मेरे भो-जन देनेको तुम समर्थ न होहुगे, जो लघु स्त्रीका शरीर धरागी तौ भी

मेरा स्वभाव राक्षसीका है, इसको तृप्त करना सामान्य जनोंकी नाईं तौ है नहीं; जैसे कछु शरीरोंका स्वभाव है सो सृष्टिपर्यंत तैसे ही रहता है, अन्यथा नहीं होता. राजोवाच-हे कल्याणरूपी ! तू स्त्रीसमान शरीर धारिकै हमारे नगरविषे चलकरि रहु, जो चोर पापी मेरे मंडलविषे आवैंगे सो हम तेरे विद्यमान करेंगे, तब तू स्त्रीरूपको त्यागिकरि राक्षसी शरीरसाथ तिनको ले जाओ अरु एकांत ठौर बैठ हिमालयकी कंदराविषे जाइके भोजन करना, काहेते कि, बडे भोजन करनेवालेको एकांतमें खाना सुखरूप है तिनको भोजन करिकै तृप्त होवैगी, तब सोय रहना, जब निद्राते जागै तब समाधिविषे स्थित होना जब समाधिते उतरै तब बहुरि हमारे पास आना, हम तेरे निमित्त बंदी-जन इकट्ठेकरि रक्खैंगे तिनको ले जाना और भोजन करना, जो धर्मके निमित्त हिंसा है, सो हिंसा पापरूप नहीं अरु जिसकी हिंसा करता है तिसका मरण भी नहीं, उसके ऊपर दया करना है काहेते कि, वह पाप करनेते छूटता है. राक्षस्युवाच-हे राजन्! तुमने युक्त वचन कहे हैं, मैं स्त्रीका शरीर धरकरि तुम्हारे साथ चलती हौं, युक्तिपूर्वक वचनको सब कोऊ मानते हैं. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इस प्रकार कहिकरि राक्षसी महासुंदररूप स्त्रीका शरीर धारिकै बहुत कंकण आदिकके नानाप्रकारके भूषण धारे अरु पट वस्त्र बनाइकरि राजाके साथ चली, राजा अरु मंत्री आगे चले जावैं अरु स्त्री पाछे चली जावै, तब तिसी रात्रिके समय राजा तिसको अपने ठाममें ले आया और एकान्त स्थानविषे तीनों जाय बैठे, रात्रिको परस्पर चर्चा करते रहे, जब प्रातःकाल हुआ, तब सौभाग्यवती स्त्री राक्षसी, राजाके अन्तःपुरविषे जाइ बैठी, जो कछु स्त्रियोंका व्यवहार है, सो करती रहे, राजा अरु मंत्री अपने व्यवहारविषे लगे, जब षट्दिन व्यतीत भये, तब राजाके मंडलविषे तीन सहस्र चोर बांधे हुए थे वह सब ही राजाने तिस कर्कटीके विद्यमान किये, तब उसने राक्षसीका शरीर धारिकै उनको भुजामंडलविषे लिये जसे मेघ बूँदोंको धारता है, तैसे धारिकरि हिमालयके शिखरको चली, जैसे किसी दरिद्रीको स्वर्ण प्राप्त होता है, तब प्रसन्न होता है, तैसे वह प्रसन्न

भई अरु लेकरि हिमालयके शिखरको गई, तृप्त होइके भोजन किया अरु सुखी होइके सोइ रही, दो दिनपर्यंत सोइ रही, उपरांत जागिके समाधिविषे जुरी, पंच वर्षपर्यंत जुरी रही, तिसते जब उतरी तब बहुरि राजाके पास आई, इस ही प्रकार जब आवै तब वह राजा पूजा करै, जेते कछु दुष्ट जन इकट्ठे किये होवैं, सो तिसके विद्यमान करै, वह ले जावै अरु हिमालयकी कन्दराविषे भोजन करै, भोजन करिकै बहुरि ध्यानविषे जुरै, जब ध्यानते उतरै, तब बहुरि तहां आवै, बहुरि ले जावै. हे रामजी! इस प्रकार जीवन्मुक्त होइकरि उस राक्षसीके प्राकृत स्वभावको करते २ अनेक वर्ष व्यतीत भये, तब राजा विदेहमुक्त हुआ, बहुरि जो कोऊ उस मंडलका राजा होवै, तिस राजासाथ भी राक्षसीका सौहृद होवै.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीसौहार्दवर्णनं नाम द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमः सर्गः ८३.

कंदरापूजनवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जब राक्षसी आवै, तब किरात देशका राजा पूर्वकी नाईं उसकी पूजा करै अरु जो कछु उनकी प्रजाविषे उत्पात होवै और विषूचिका अथवा कोई रोग होवै, सो राक्षसी निवृत्त कारि देवै; इस प्रकार अनेक वर्ष व्यतीत भये तब एकवार उसको ध्यानविषे जुरे बहुत वर्ष व्यतीत भये, तब किरातदेशका राजा वाका दुःख निवारने अर्थ एक तिसकी प्रतिमा ऊँचे स्थानपर स्थापन करत भया, तिस प्रतिमाका एक नाम कंदरादेवी, दूसरा नाम मंगलादेवी, तिसका ध्यान करके पूजा करनेलगे, तिसकारि भी तिसका कार्य सिद्ध होने लगा. हे रामजी! तिस प्रतिमाके विषे वह देवी आप निवास करती भई, जो कोऊ जिस फलके निमित्त प्रतिमाकी पूजा करै, तिसका कार्य सिद्ध होवै अरु न पूजै तौ दुःखित होवै, जब पूजन करै, तब दुःख

नष्ट होवे, तिसका कार्य सिद्ध होवै, ताते जो कछु कोऊ कार्य करने लगै, सो प्रथम मंगलादेवीकी पूजा करै, तब उनका कार्य सिद्ध होवै, अरु विधिकरिकै तिसकी पूजा करै, तिसकरि बहुत प्रसन्न होवै. हे रामजी ! अबलग वही प्रतिमा किरातदेशविषे स्थित है, जिस जिस फलके निमित्त उसकी कोऊ सेवा करता है, तैसा तैसा फल उसको देती है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे कंदरापूजनवर्णनं नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमः सर्गः ८४.

मनोऽकुरोत्पत्तिकथनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! यह अनिंदित कर्कटीका आख्यान जैसे पूर्व व्यतीत भया है, तैसे मैंने तुझको कहा है. राम उवाच-हे भगवन् ! राक्षसीका कृष्णवपु किस निमित्त था अरु कर्कटी इसका नाम क्यों था ? जैसे हुआ है, तैसे कहो. वसिष्ठ उवाच -हे रामजी ! यह राक्षसोंके कुलकी कन्या थी, सो राक्षसोंका शुक्ल वपु भी होता है अरु कृष्ण वपु भी होता है, रक्त पीत भी होता है. हे रामजी ! एक जलजंतु कर्कट नाम प्राणी होता है, उसका श्याम आकार होता है, तिसके समान कर्कट नाम राक्षस था, तिसके समान उसकी यह पुत्री भई इस कारणते इसका नाम कर्कटी भया. हे रामजी ! यहां और कर्कटीका प्रयोजन कछु न था, यहां अध्यात्मप्रसंग था, शुद्ध चेतनके निरूपणनिमित्त मैं तुझको कहा है, यह आश्चर्य है, जो असतरूप जगतके पदार्थ हैं सो सतरूप होइकरि भासते हैं अरु जो आत्मसत्ता सदा संपन्नरूप है, सो अविद्यमानकी नाईं भासते हैं. हे रामजी ! वस्तुते तो एक अनादि अनंत परमकारण आत्मसत्ता स्थित है, तिसविषे भावनाके वास्ते जगतरूप भासता है अरु स्वरूपते अनन्य रूप है, जैसे जल अरु तरंगविषे भिन्नता कछु नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगतविषे कछु भिन्नता नहीं, आत्माविषे जगत् कछु द्वैतरूप हुआ नहीं, सदा आत्मसत्ता अपने आपहीविषे

स्थित है, तिसविषे जैसा जैसा चित्तस्पंद दृढ होता है, तैसा रूप होइकारि भासता है, जैसे नर रतिकाको इकट्ठी करिकै तिसविषे अग्निकी भावना करते हैं अरु तापते हैं तब उनका शीत निवृत्त होता है, तैसे सम स्थिर शांतरूप आत्माविषे जब जगत्की भावना फुरती है, तब नानाप्रकारका जगत् भासता है. जैसे स्तंभविषे पुतलियां अनउदय ही शिल्पीके मनविषे उदयकी नाईं भासती हैं, तैसे भावनाके वशते जगत् होइ भासता है, जैसे बीजविषे पत्र फूल टास गुच्छ अनन्यरूप होते हैं, तैसे ब्रह्मविषे जगत् अनन्यरूप है, जैसे बीजवृक्षविषे कछु भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं,अविचारकरिकै भेद भासता है, विचार कियेते जगत्भेद नष्ट होजाता है. हे रामजी ! अब यह विचार नहीं करना कि, कैसे उपजा है, कहांसे आया है, अरु कबका हुआ है जैसे हुआ तैसे हुआ, अब इसके निवृत्तिका उपाय करिये. जब तू जागेगा तब हृदयकी चिज्जड ग्रंथि टूट जावैगी, शब्द अरु अर्थकी जेती कछु कल्पना उठती हैं, सो मेरे वचनोंकारि स्वरूपस्थित भयेते नष्ट हो जावैंगी. हे रामजी ! यह सब जगत् अनर्थरूप चित्तते उपजा है, सो मेरे वचनोंके श्रवण कियेते शांत होजावैगा, इसविषे संशय नहीं करना, सब जगत् ब्रह्मते उपजा है, अरु सब ब्रह्म ही स्वरूप है, जब तू ज्ञानविषे जागेगा तब ज्योंका त्योंही जानैगा. राम उवाच-हे भगवन् ! जो जिसते होता है सो तिसते व्यतिरेक होता है, अर्थ यह पंचमीविभक्तिकारि जो निरूपण करता है, सो व्यतिरेकके अर्थ है, जैसे कुलालते घट होता है सो कुलालते भिन्न होता है, तुम कैसे कहते हौ, कि सब जगत् ब्रह्मते उपजा है, अरु ब्रह्मस्वरूप है. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! यह जगत् ब्रह्मते उपजा है जेते कछु प्रतियोगीसहित शब्द शास्त्रोंने कहे हैं, सो दृश्यविषे हैं,शास्त्रने उपदेश जतावनेके निमित्त कहे हैं;वास्तव यह शब्द कोऊ नहीं. जैसे किसी बालकको परछाईंविषे वैताल भासता है अरु कोऊ पूछता है कि, इस बालकको वैतालने किस भागविषे स्थित होइकारि भय दिया है, तिसको कहता है. अमुक ठौरविषे वैतालने भय दिया है, सो व्यवहारके निमित्त उसको कहता है और वैताल तौ वहां कोऊ नहीं, तैसे आत्माके उपदेश निमित्त भेदकल्पना करी है,

वास्तवते तिसविषे द्वैतकल्पना कोऊ नहीं. हे रामजी ! ब्रह्मते जगत् हुआ, यह अर्थ केवल व्यतिरेकविषे नहीं होता है; जो कुलाल दंडते घट उपजाता है, सो व्यतिरेकके अर्थ है; स्वामीका टहलुआ यह भिन्नके अर्थ है अरु यह अभिन्नरूप भी होते हैं, जैसे अवयवीके अवयव हैं, सुवर्णते भूषण हुए हैं, मृत्तिकाते घट हुए हैं, सो यह अभिन्नरूप हैं, अवयवी कोशरूप है, भूषण स्वर्णरूप है, घट मृत्तिकारूप है, तैसे ब्रह्मते उपजा जगत् ब्रह्मरूप ही है अरु वास्तवते भिन्न अभिन्न कारण परिणाम भाव विकार अविद्या अरु विद्या सुखदुःख आदिक मिथ्या कल्पना अज्ञानकरि उठती हैं. हे रामजी ! अबोधकरिकै भेदकल्पना हुई है अरु ज्ञानकरिकै सब कल्पना शांत होजाती हैं, अशब्दपद शेष रहता है, जब तू ज्ञानयोग्य होवैगा, तब ऐसे जानैगा जो आदि मध्य अंतते रहित अविभाग अखंडरूप एक आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है, अज्ञानकरिकै अथवा जिज्ञासुको उपदेशनिमित्त द्वैतवादकल्पना है, बोध हुएते द्वैतभेद कछु नहीं रहता. हे रामजी ! वाच्यवाचकभाव द्वैतविना सिद्ध नहीं होता, जब बोध हुआ तब वाच्यका मौन होता है, ताते महावाक्यके अर्थविषे निष्ठा करौ अरु जेती कछु भेदकल्पना मनने रची है, तिनके निवृत्ति अर्थ मेरे वचन श्रवण करौ. हे रामजी ! यह मन ऐसे उपजा है, जैसे गंधर्वनगर होता है, तिसते आगे जगत्की रचना करी है, जैसे मैं देखा है, तैसे तुझको दृष्टांत कहता हौं, जिसके जाननेते सब जगत् तुझको भ्रांतिमात्र भासैगा अरु निश्चयको धारिकै जगत्की वासना दूरते त्यागिदेवैगा, बोधकरिकै सब जगत् मनका मननरूप भासैगा, अरु आत्मरूप होइकरि अपने आपविषे निवास करैगा, अर्थ यह जो जगत्की कल्पना त्यागिकारि अपने स्वभावसत्ताविषे स्थित होवैगा ताते सावधान होइकारि सुन. हे रामजी ! यह मनरूपी बडा रोग है, विवेकरूपी औषधकरि तिसको शांत करै अरु सब जगत् चित्तकरि कल्प्या है, सो शरीरआदिक वास्तव कछु नहीं, जैसे रेतसों तेल नहीं निकसता, तैसे जगत्ते वास्तव कछु नहीं निकसता, चित्तकरिकै भासता है, सो चित्तरूपी संसार स्वप्नकी नाईं है अरु राग द्वेष आदिक संकल्पकरिकै युक्त है,

तिसते जो रहित हुआ तो संसार समुद्रके पारको प्राप्त हुआ है, ताते शुभगुणोंकरिकै चित्तकी शुद्धता करो अरु जो विवेकी हैं, सो शुभकार्य करते हैं अशुभको नहीं करते आहार अरु व्यवहार सब विचारिकै करते हैं, तैसे ही आर्यकी नाईं तुम सच्चेष्टा शास्त्रानुसार करौ, जब ऐसे अभ्यास तुमको होवैगा, तब शीघ्र ही ज्ञानवान् होहुगे अरु ज्ञानके प्राप्त हुए सब कल्पना मिटिजावैंगी, आत्मस्थिति होवैगी यह सब जगत्रूपी चित्र मन ही रचे हैं,जैसे मोरका अंडा काल पाइकरि अनेक रंगोंको धारता है, तैसे मन अनेक प्रकारके जगत्को धारता है, सो मन जड अरु अजडरूप है, जो मनविषे चेतनभाग है, सो सब अर्थका बीजरूप है बीज कहिये सबका उपादान है अरु तिसका जो जडभाग है, सो जगत्रूप है. हे रामजी ! सर्गके आदिविषे पृथ्वीआदिक तत्त्व अविद्यमान थे, तिनको विद्यमानकी नाईं ब्रह्मा देखत भया, तैसे स्वप्नविषे जगत विद्यमानकी नाईं भासता है, तैसे देखत भया सो प्रमादकरि देखता भया, जड संवेदन करि पहाड आदिक जगत् देखत भया अरु चेतन संवेदनकरि जंगमरूप जगत्को देखत भया, सो सब जगत् दीर्घवेदना है, वास्तवते सब देहादिक शून्यरूप हैं; सब आत्माकरि व्यापे हुए हैं अरु तिसका शरीर कोऊ नहीं, अपने करिके जो दृश्यरूप मन चेता है; सोई मन आत्माका शरीर है, सो आत्मा विस्तरणरूप है अरु निर्मल स्थित है, मन तिसका आभासरूप है. जैसे सूर्यकी किरणोंकरि जलभास होता है, तैसे आत्माका आभास मन है, सो मनरूपी बालक जगत्रूपी पिशाचको अज्ञानकरि देखता है अरु ज्ञानकरिके परमात्मपद शांतरूप निरामयको देखता है. हे रामजी ! जब आत्मा चेत्यताको प्राप्त होता है, तब वही चित्तरूप दृश्य द्वैत एक ब्रह्मको देखता है, तिसके निवृत्तिअर्थ मैं तुझको कथा कहता हौं, तू श्रवण करु. जो वचन दृष्टांत दार्ष्टांत सहित होता है, अरु वाणी भी मधुर होती है अरु स्पष्ट होवै तब गुरुका वचन श्रोताके हृदयविषे पसर जाता है. जैसे जलविषे तेलकी बूँद पसर जाती है, तैसे पसर जाता है अरु जिसका वचन दृष्टांत दार्ष्टांतते रहित होता है अरु अर्थ स्पष्ट नहीं होता अरु क्षोभसंयुक्त वचन कहता है,

अरु अक्षरपूर्ण नहीं होता, सो वचन श्रोताके हृदयविषे नहीं ठहरता, उपदेष्टाका वचन भी निष्फल होजाता है अरु मैं तुझको आख्यान कहता हौं सो नानाप्रकारके दृष्टांतसहित मधुर वाणीसहित कहता हौं अरु स्पष्ट अर्थ करके कहता हौं. जैसे चंद्रमा अपने गृहऊपर उदय होवै अरु मंदिर शीतल हो जावै, तैसे मेरे स्पष्ट वचन अरु प्रकाशरूप अर्थ श्रवण कियेते तेरा भ्रम निवृत्त होजावैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मनोऽङ्कुरोत्पत्तिकथनं नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

पंचाशीतितमः सर्गः ८५.

ब्रह्मादित्यसमागमवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! पूर्व जो मुझको ब्रह्माने सर्गका वृत्तांत कहा, सो मैं तुझको कहता हौं; एक कालमें मैं ब्रह्माजीके पास गया था अरु पूछा था कि, हे भगवन् ! ये जगत्गण कहांते आये हैं अरु कैसे उत्पन्न भये हैं ? तब पितामहजी मुझको इंद्र ब्राह्मणका आख्यान कहत भया. ब्रह्मोवाच–हे मुनीश्वर ! यह सब जगत् मनते उपजा है अरु मनकारिकै भासता है, जैसे जलते द्रवताकारिकै नानाप्रकारके तरंगचक्र पडे फुरते हैं; सो मनके फुरनेकारि सब जगत् फुरते हैं अरु मनरूप हैं. हे मुनीश्वर ! पूर्व कल्पविषे एक वृत्तांत देखा है, सो सुन. एक समय दिनका क्षय हुआ, मैं संपूर्ण सृष्टिको संहार कारिकै एकाग्रभाव होकारि रात्रिको स्वस्थभाव होयकरि रहा, जब मेरी रात्रि व्यतीत भई अरु मैं जागा, तब उठिकारि संध्यादिक कर्म विधिसंयुक्त करत भया अरु बडे आकाशकी ओर मैं देखत भया, सो तम व्याप्त अरु प्रकाशते रहित शून्यरूप इतरते रहित मैं देखत भया, अरु चिदाकाशविषे चित्तको जोडा अरु सर्गके उपजानेका संकल्प चित्तविषे धारा, तब मुझको शुद्ध सूक्ष्म चिदाकाशविषे सृष्टि दृष्टि आई, सो कैसी सृष्टि भासी, जो बडे विस्तार सहित अरु परस्पर अदृष्टरूप, जो एक सृष्टिको दूसरी न देखै अरु एक एक

सृष्टिविषे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तीनों देवता रहैं अरु देवता, गंधर्व, किन्नर, मनुष्य, सुमेरु, मंदराचल, कैलास, हिमालय आदिक पर्वत, पृथ्वी, नदियां, सातों समुद्र आदिक सब सृष्टिके विस्तारको मैं देखत भया, सो दश सृष्टिकी संख्या देखी, तिनविषे दशब्रह्मा देखे, मानों मेरा ही प्रतिबिंब है, मेरी ही मूर्ति कमलते उत्पन्न हुई है अरु राजहंसके ऊपर आरूढ हुए दश ही ब्रह्मा देखे, अरु भिन्न भिन्न तिनकी सृष्टि देखी, बडे नदीके प्रवाह चलते हैं, वायु आकाशविषे चलता है, सूर्य चंद्रमा उदय होते हैं, देवता स्वर्गविषे क्रीडा करते हैं, मनुष्य पृथ्वीविषे फिरते हैं, दैत्य नाग पातालविषे भोगोंको भोगते हैं, कालचक्र फिरता है, द्वादश मास तिसके द्वादश लोक हैं, षट् ऋतु वसंत आदिक हैं, वासनाके अनुसार शुभ अशुभ आचार करिकै नरक स्वर्ग भोगते हैं अरु मोक्षफलको पाते हैं; सृष्टिसृष्टिविषे सप्त द्वीप हैं, उत्पत्ति प्रलय कल्पकरि होते हैं, गंगाजीका प्रवाह है, जगत्के गलेमें यज्ञोपवीत है, कहूं ऐसे स्थित है, जहां सदा प्रकाश रहता है, कहूं अंधकार रहता है, तिसविषे स्थावर जंगम प्रजा मैं देखत भया, बिजलीकी नाईं सृष्टि उपजी है, अरु मिट जाती है, जैसे वृक्षके पत्र उपजते हैं, अरु नष्ट होजाते हैं; अरु गंधर्वके नगरवत सृष्टि देखी. एक एक ब्रह्मांडविषे स्थावर जंगम प्रजा देखी, जैसे गूलरके फलविषे अनेक मच्छर होते हैं, तैसे एक एक ब्रह्मांडविषे जीव देखे, आत्माविषे कालका भी अभाव है, सो क्षण लव दिन मास वर्षोंका प्रवाह चला जाता मैंने देखा. हे मुनीश्वर ! अंतवाहक दृष्टिकरके मैं उन सृष्टियोंको देखा, जब मैं चर्मदृष्टिकरि देखौं, तब कछु न भासै, दिव्यदृष्टिकरि सब कछु भासै चिरकालपर्यंत मैं देखता रहा, जो कदाचित् चित्तभ्रम होवै अरु स्पष्ट ही भासै, तब एक सृष्टिके सूर्यको देखिकै मैं आवाहन किया, तब सूर्य मेरे निकट आइके प्राप्त भया, तिसको कहत भया. हे देवदेवेश ! भास्कर ! तुमको कुशल है, ऐसे कहिकर मैं बहुरि कहा कि, हे सूर्य ! तू कौन है ? अरु यह सृष्टि कहांते उपजी है; यह एक जगत् है वा ऐसे अनेक जगत् हैं; जैसे तुम जानते हो तैसे कहो, तब वह सूर्य भी त्रिकालज्ञान रखता था, मुझको जानिकै प्रणाम किया,

अरु आनंदित वाणी कहत भया. भानुरुवाच–हे ईश्वर! इस दृश्यरूपी पिशाचके तुम नित्य ही कारण होते हौ, तुम आप ही जानते हौ; मेरेको किसनिमित्त पूछते हौ, अरु जो लीलाके अर्थ पूछते हौ, तौ जैसे वृत्तांत हुआ है, तैसे मैं तुम्हारे विद्यमान प्रार्थना करता हौं. हे भगवन्! यह जो सत् असत्‌रूपी नानाप्रकारोंके व्यवहारों संयुक्त जगत् भासता है, सो सब मनके फुरनेविषे स्थित है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे ब्रह्मादित्यसमागमवर्णनं नाम पञ्चाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

षडशीतितमः सर्गः ८६.

ऐंदवसमाधिवर्णनम्।

भानुरुवाच–हे भगवन्! तुम्हारा जो कल्पका दिन व्यतीत भया है, तिस कल्पविषे जो जंबूद्वीप था, तिसकी कोणविषे कैलास पर्वत था; तिसकी कंदराविषे स्वर्णज्येष्ठ नाम एक तुम्हारा पुत्र था; सो वहां कुटी रचता भया था. तहां जाइ साधुजन निवास करते थे. तहां वेदका वेत्ता शांतरूप इंदु नाम ब्राह्मण कश्यप ऋषिके कुलते प्रगट हुआ था. सो तिस कुटीके विषे जाइके स्त्रीसहित निवास करत भया, तिस स्त्रीविषे प्राणोंकी नाईं स्नेह था, सो स्त्री पुत्रते रहित होत भई जैसे मरुस्थलविषे घास नहीं उपजता, तैसे उसते संतान न उपजै अरु बहुत सुन्दर पुत्रते रहित थी, जैसे शरत्कालकी वेलि बहुत सुंदर होती है, परंतु फलते शून्य होती है, तैसे वह थी, तब दोनों पुरुष अरु स्त्री पुत्रके निमित्त तप करने लगे, कैलासके निकट निर्जन स्थानमें कुंजविषे एक वृक्ष था. तिसके ऊपर चढि बैठे, तहां बैठिकरि तप करने लगे, जलपान करैं अरु भोजन कछु न करैं, इसप्रकार रात्रि दिन व्यतीत करैं. बहुरि एक ही अंजली पान करनेलगे, फिर तिसका भी त्याग किया, फुरनेते रहित वृक्षकी नाईं होके बैठे रहे, तिनको तप करते त्रेता अरु द्वापर युग व्यतीत

भये, तब शशिकलाधारी रुद्र तुष्टमन होइकरि तिनके निकट भवानी-शंकर दोनों आये, तिनके सन्मुख देखते भये, जो स्त्रीपुरुष दोनों वृक्षके ऊपर बैठे हैं, तब तिन्होंने शिवको देखिकै प्रणाम किया अरु दोनों प्रफुल्लित हो आये जैसे दिनकी तपत करि सकुचि हुई चन्द्रमुखी कमलिनी चन्द्रमा उदय हुए प्रफुल्लित होजाती हैं, तैसे महाहिमकी नाईं शिवको देखिकरि प्रफुल्लित भई, मानो आकाश अरु पृथ्वी दोनों रूप धारिकै आन खडे हुए हैं, ऐसे भवानीशंकर तिस ब्राह्मणको कहते भये. ईश्वर उवाच-हे ब्राह्मण ! तू वर माँग, मैं तुझपर तुष्ट हुआ हौं, जो कछु तुझको वांछित वर है, सो तू माँग. हे ब्रह्माजी ! जब ऐसे शिवने कहा तब ब्राह्मण प्रफुल्लित होकारि कहत भया. हे भगवन् ! देवदेवेश ! मेरे गृहविषे दश पुत्र होवैं, सो बडे बुद्धिमान् होवैं अरु कल्याणमूर्ति होवैं, जिसकरि मुझको बहुरि शोक कदाचित् न होवै. भानुरुवाच-हे भगवन् ! इस प्रकार जब ब्राह्मणने कहा, तब ईश्वरने कहा, ऐसे ही होवैगा ऐसे कहिकारि अंतर्धान भये, जैसे समुद्रका तरंग उछलिकै मिटजाता है, तैसे शिव अंतर्धान भये, तब वह पुरुष स्त्री दोनों शिवके चरणोंको ग्रहण करिकै प्रसन्न भये, जैसे सदाशिव अरु भवानीकी मूर्ति है, तैसे वह प्रसन्न होइकरि अपने गृहविषे आवत भये, तब ब्राह्मणी गर्भवती भई, जैसे वर्षाकालके बादल जलकरि पूर्ण होते हैं, तैसे वह गर्भकरि पूर्ण भई, समय पायके दश ही पुत्र तिसको होत भये; जैसे द्वितीयाके चंद्रमाकी शोभा होती है, तैसे उनकी शोभा भई अरु षोडश वर्षके आकारकी नाईं ब्राह्मणीका आकार रहा, वृद्धभावको न प्राप्त भई अरु वह दशही संस्कारको ले उपजे अरु थोडे कालविषे बड़े होगये, जैसे वर्षाकालकी बादली थोडी भी शीघ्र बड़ी होजाती है, तैसे वह थोडे कालविषे बड़े होगये, जब सप्त वर्षोंके भये, तब सब वाणीके वेत्ता भये, तब उनके माता अरु पिता दोनों शरीरको त्यागिकै अपनी गतिको प्राप्त भये, वह दश ही ब्राह्मण मातापिताते रहित भये; अपने गृहको त्यागिकरिकै कैलासके शिखरऊपर चढे अरु परस्पर विचार करने लगे कि, वह कौन ईश्वर है, जो परमेश्वर है अरु वह कवन ईश्वरपद है, जिसके पायेते

बहुरि दुःखी न होवै अरु जिसका नाश भी न होवै, जिसके पायेते सबका ईश्वर होवै, तब एक भाईने कहा कि, सबते बड़ा ऐश्वर्य मंडलेश्वरका है, सबके ऊपर तिसकी आज्ञा चलती है, बहुरि दूसरे भाईने कहा, मंडलेश्वर विभूति भी कछु नहीं, काहेते कि, वह भी राजाके अधीन होता है, ताते राजाका पद बड़ा होता है, बहुरि और भाईने कहा, राजाकी विभूति भी कछु नहीं, काहेते कि; राजा चक्रवर्तीके अधीन होता है, ताते चक्रवर्तीका पद बडा है; बहुरि और भाईने कहा चक्रवर्ती भी कछु नहीं, वह भी यमके अधीन होता है, ताते यमका पद बड़ा है; बहुरि और भाईने कहा कि, इंद्रके आगे यमकी विभूति कछु नहीं; ताते इंद्रका पद बडा है, तब और भाईने कहा इन्द्रकी विभूति भी कछु नहीं ब्रह्माके एकमुहूर्त्तविषे इंद्र नष्ट होजाता है, तब सबसे ज्येष्ठ बडे भाईने कहा, जैसे मृगके समूहको मृग कहै, तैसे छोटे भाईको बुद्धिमान् बडा भाई गंभीर वचनकरि कहत भया जेती कछु विभूति हैं, सो सब ब्रह्माके कल्पविषे नष्ट होजाती हैं, ताते बडा ऐश्वर्य ब्रह्माजीका है, इसते बड़ा और कोऊ नहीं. हे भगवन्! इस प्रकार जब बडे भाईने कहा; तब सबने कहा, भली कही भली कही! और फिर सबते बडे भाईसे कहा; हे तात! जो सब दुःखका नाशकर्त्ता जगत् पूज्य ब्रह्मपद है, तिसको हम कैसे प्राप्त होवैं जिस उपायकरि प्राप्त होवैं, सो उपाय कहौ, बहुरि भाई कहत भया, हे भ्राता! और सब भावनाको त्याग करौ अरु यह भावना निश्चयकरिके करौ कि, हम ब्रह्मा हैं अरु पद्मासनपर बैठे हैं, मैं ब्रह्मा हौं. अरु सब सृष्टिका कर्त्ता हौं, अरु सबकी पालना कर्त्ता हौं अरु संहारकर्त्ता मैं ही हौं जेती कछु जगज्जाल है, तिसका आश्रयभूत मैं ही हौं सब सृष्टि मेरे अंगविषे स्थित है; ऐसे निश्चयको धारिकै बैठो अरु सजातीय भावनाको धारि बैठोगे तब तुमको ब्रह्माका पद प्राप्त होवैगा. हे भगवन्! जब इस प्रकार बडे भाईने कहा, तब छोटे भाइयोंने कहा, हे तात! तुमने यथार्थ कहा है, जैसे तुमने कहा है, तैसे ही हम करते हैं, ऐसे मानिकरि बडे भाईसहित सब ध्यानविषे स्थित भए, जैसे कागजऊपर मूर्ति लिखी होती है, तैसे ही दशों ध्यानविषे जुरि गये अरु मनविषे यही चिंतवना करते भये कि मैं ब्रह्मा

हा; कमल आसन मेरा है, मैं सृष्टिकर्त्ता हौं, भोक्ता भी मैं ही हौं; महेश्वर भी मैं हीं हो, सांगोपांग जगत् कर्म मैंने ही रचे हैं अरु सरस्वती गायत्री-सहित जो वेद है, सो मेरे आगे आय खडे हैं यह लोकपाल अरु सिद्धोंके मंडलोंको पालनेवाला हौं सो सब मैंने ही रचे हैं, स्वर्गलोक, भूमिलोक, पाताललोक, पहाड, नदियां, समुद्र सब मैंने ही रचे हैं अरु महाबाहु वज्रके धारनेहारा यज्ञोंका भोक्ता इंद्र मैंने ही रचा है अरु सूर्य मेरी आज्ञासे तपता है अरु जगत्की मर्यादानिमित्त सब लोकपाल मैंने ही रचे हैं. जैसे गौको गोपाल पालता है; तैसे लोकपाल मेरी आज्ञा पाइकरि जीवोंको पालते हैं अरु जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं; बहुरि मिट जाते हैं, तैसे जगत् मुझते उपजा है; बहुरि मेरेहीविषे लीन होता है अरु मैं सदा आत्मपद विषे स्थित हौं अरु क्षण दिन मास वर्ष युग आदिक काल मेरा ही रचा हुआ है. मैंने ही सब कालके नाम रक्खे हैं मैं ही दिनको उत्पन्न करता हौं; अरु रात्रिको लीन करिलेता हौं. सदा आत्मपदविषे स्थित हौं; पूर्ण परमेश्वर मैं ही हौं. हे ब्रह्माजी ! इस प्रकार वह दश ही भाई भावना धारिकरि बैठे रहे; मानो कागज ऊपर मूर्ति लिख छोडी है; तैसे सब वृत्तिके जालको अंतरते त्यागिकरि एक ब्रह्माके ध्यानविषे जुरि गये.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे ऐंदवसमाधि-वर्णनं नाम षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमः सर्गः ८७.

जगद्रचनानिर्वाणवर्णनम् ।

भानुरुवाच-हे भगवन् ! इस प्रकार इंद्रके दशों पुत्र पितामहकी भावना धारिकरि बैठे, तब तिनके देह धूप अरु पवनकरिकै सूख गये, जैसे ज्येष्ठ आषाढविषे कमलपत्र सूखकरि गिरपडते हैं, तैसे तिनके देह सूखकरि गिरपडे, तब वनचर जीव तिनको भक्षण करि गये, अरु शरीरको आपोआप खैंचे, जैसे फलको वानर पकडते हैं अरु विदारण

करते हैं, तैसे इनके देहको विदारने लगे अरु तिनकी वृत्ति ध्यानते छूटके बाह्य देहादिक अध्यासविषे न आई, ब्रह्माकी भावनाविषे ही लगी रही, इस प्रकार जब चतुर्युगका अंत भया अरु तुम्हारे कल्पदिनका क्षय होने लगा, द्वादश सूर्य तपने लगे, पुष्कल मेघ गार्जके वर्षने लगे, बडा भूचालन भया, वायु चलने लगा, समुद्र उच्छल पडे, सब जल ही जल होगया सब भूत क्षयको प्राप्त भये, सबको संहार करके रात्रिको तुम आत्मपदविषे जाय स्थित भये, तब उनके शरीर भी नष्ट होगये, अरु पुर्यष्टक उनके आकाशविषे आकाशरूप होयके ब्रह्माके संकल्पको लेकरि तीव्र भावनाके वशते दशों सृष्टिसहित दश ब्रह्मा होत भये, भिन्न भिन्न अपनी अपनी सृष्टिके ब्रह्मा भये, अब तुम जाइकरि देखो हौ जो आकाशविषे फुरते हैं. हे भगवन्! तिन दश ब्राह्मणोंके चित्ताकाशमें ही सृष्टि स्थित हैं, तिन दशसृष्टिके मध्यविषे एक सृष्टिका सूर्यमैं हौं, आकाशविषे मेरा मंदिर है, काल जो है क्षण दिन पक्ष मास सब युग सो मुझहीकरि होते हैं, इस क्रियाविषे मुझको उन्होंने जोडा है. हे भगवन्! इस प्रकार मैं तुझको दश ब्रह्मा अरु दश सृष्टि कहीं हैं सो सृष्टि सब मनोमात्र है, आगे जैसी तुम्हारी इच्छा है तैसे करौ भिन्न भिन्न कल्पना जगज्जाल विस्तारको प्राप्त भई है, सो इंद्रजालकी नाईं है, चित्तके भ्रमकरिकै पडे भासते हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जगद्रचनानिर्वाण-
वर्णनं नाम सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमः सर्गः ८८.

ऐन्दवनिश्चयकथनम्।

ब्रह्मोवाच-हे ब्राह्मण! ब्रह्मवेत्ताविषे श्रेष्ठ, इस प्रकार जब ब्रह्माके सूर्यने ब्रह्माको कहिकरि सो तूष्णीं हुआ, तब तिसके वचनोंको विचारकरि मैं कहत भया, हे भानु! तुमने सृष्टि दश कही तिसते अब मैं क्या रचौं? यह तौ दश सृष्टि हुई हैं, अरु दश ही ब्रह्मा हैं, अब मेरे रचनेकरि क्या सिद्ध होवैगा. हे मुनीश्वर! जब इसप्रकार मैंने कहा तब सूर्य विचार

कर कहत भया. सूर्य उवाच–हे प्रभो ! तुम तौ निरिच्छित हो, तुम्हारेविषे सृष्टि रचनेकी इच्छा कछु नहीं सृष्टिका रचना तुमको विनोदमात्र है, किसी कामनाके निमित्त नहीं रचते, तुम निष्कामरूप हो, जैसे जलकरिकै सूर्यका प्रतिबिंब होता है जल विना प्रतिबिंबकी कल्पना नहीं होती, तैसे- संवेदनकरिकै तुम्हारेविषे सृष्टिकी रचना होती है, अज्ञानीको तुम सृष्टिकर्त्ता भासते हो, तुम सदा ज्योंके त्यों निष्क्रियरूप हौ. हे भगवन् ! तुमको शरीरादिककी प्राप्ति अरु त्यागविषे रागद्वेष कछु नहीं, उत्पत्ति अरु संहारकी तुम्हारेविषे कल्पना कछु नहीं, लीलामात्र तुमते सृष्टि होती है, जैसे सूर्यकरिकै दिन होता है अरु सूर्यके अस्त होनेकरि दिन लय होता है अरु सूर्य असंसक्तरूप हैं, तैसे तुम्हारेविषे संवेदनके फुरनेकरि सृष्टि होती है संवेदनके अस्फुर हुए सृष्टिका लय होता है अरु तुम सदा असंसक्त हौ, अरु जगत्की रचना तुम्हारा नित्यकर्म है, तिन कर्मके त्याग कियेते तुमको कछु अपूर्व वस्तु भी प्राप्त नहीं होती, तातें जो कछु तुम्हारा नित्यकर्म है, सो तुम करौ. हे जगत्पते ! महापुरुष जो होते हैं, सो जो कछु उनको प्राप्त होता है, तिसमें यथाप्राप्त असंसक्त होइकरि विचरते हैं, कार्यको करते हैं, जैसे निष्कलंक दर्पण प्रतिबिंबका अंगीकार करता हैं, तैसे महापुरुष यथाप्राप्त कर्मको असंसक्त होइकरि अंगीकार करते हैं, जैसे ज्ञानवान्को कर्म करनेविषे कछु प्रयोजन नहीं, तैसे तिसको अकरनेविषे कछु प्रयोजन नहीं; करणा अकरणा दोनों तिसको सम हैं, इस कारणते दोनोंविषे सुषुप्तिरूप हौ. हे भगवन् ! तुम तौ सदा सुषुप्तिरूप हौ, तुमको उत्थान किसी प्रकार नहीं, तातें तुम सुषुप्ति प्रबोध होइकरि अपने प्राकृत आचारको करौ, जो इंद्र ब्राह्मणोंके पुत्रोंकी सृष्टिको देखौ, तब भी विरुद्ध कछु नहीं, जो ज्ञानदृष्टिकरि देखौ तौ एक ही ब्रह्म अद्वैत है, और कछु नहीं बना अरु जो चित्त दृष्टिकरि देखौ तब संकल्परूप अनेक सृष्टि फुरती हैं, तिनविषे आस्था करनी क्या है ? अरु जो चर्मदृष्टि करिकै देखौ तौ तुम्हारी सृष्टि भासती ही नहीं, उनके साथ तुम्हारा क्या है ? उनकी सृष्टि उनहीके चित्तविषे स्थित है अरु उनकी

सृष्टिको तुम नाश भी न करि सकोगे, काहेते कि; जो कछु इंद्रियोंके साथ कर्म होता है, तिसके नाश करनेको समर्थ होता है, परंतु मनके निश्चयको नाश नहीं कर सकता. हे भगवन्! जो दृढ निश्चय जिसके चित्तविषे हो-गया है, तिसको वह निवृत्त करै, तब निवृत्त होता है और कोऊ निवारणेको समर्थ नहीं देह नष्ट होवै, परंतु निश्चय नष्ट नहीं होता, जो चिरकालका निश्चय दृढ होइ रहा, तिसका स्वरूपते नाश नहीं होता. हे भगवन्! जो मनविषे दृढ निश्चय हो रहा है, सोई पुरुषका रूप है, तिसका निश्चय और किसीकारि नहीं होता; जैसे जलके सींचनेकारि पर्वत नहीं चलायमान होता, तैसे चित्तका निश्चय औरकारि नहीं चलायमान होता.

इति श्रीयोगवासिष्ठ उत्पत्तिप्रकरणे ऐंदवनिश्चयकथनं
नाम अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

एकोननवतितमः सर्गः ८९.

कृत्रिमेंद्रवाक्यम्।

भानुरुवाच–हे देवेश! इसपर एक पूर्व इतिहास हुआ है, सो तुम श्रवण करौ, एक इंद्रद्युम नाम राजा था; तिसकी कमलनयनी स्त्री थी, तिसका नाम अहल्या था, तिसके नगरविषे इंद्र नाम एक पुरुष था, सो ब्राह्मणका पुत्र बहुत सुंदर बडा बलवान् था अरु अहल्या राजाकी पट्टराणी थी, तब तिस राणीने पूर्वकी अहल्या गौतमकी स्त्री इंद्रकी कथा सुनी, तब एक सहेलीने कहा, हे राणी! जैसे पूर्व अहल्या थी तैसे तू है अरु जैसा वह इद्र सुंदर था, तैसे तुम्हारे नगरविषे भी एक इन्द्र ब्राह्मण है. हे भगवन्! जब इसप्रकार राणीने सुना तब उस इंद्रविषे भी राणीका अनुराग हुआ, परंतु वह राणीको प्राप्त न होवै, राणीका शरीर इसी कारणते सूखता जावै, तब राजाने सुना कि इसको गर-मीका कछु रोग है, तिसके निवारणअर्थ केलेके पत्र और शीतल औषध तिस-को दिलवाये, परंतु इसको वांछित पदार्थ कोऊ दृष्ट न आवै, खानपान शय्या-दिक जेते कछु इन्द्रियोंके वांछित पदार्थ हैं, सो तिसको सुखरूप कोऊ न

भासैं, वह दिनादिनविषे पीत वर्ण होती जावै अरु इन्द्रके वियोगकरिकै तलफत रहै जैसे जलविना मछली मरुस्थल विषे तलफती हैं, तैसे वह तलफती रहै अरु कहै, हा इन्द्र ! हा इन्द्र! ऐसे विलाप करती रहै, लोकलाजको त्यागदीनी; उस इन्द्रविषे बहुत स्नेह बढि गया, तब विचारकरि एक सखीने कहा; हे राणी! मैं इन्द्र ब्राह्मणको ले आती हौं; जब इसप्रकार सखीने कहा; तब राणी सावधान हो आई, जैसे चन्द्रमाको देखिके कमलिनी खिल आती है, तैसे उसके शब्दकरि राणी खिल आई; तब वह सखी ब्राह्मणके घर गई, इस इंद्रको प्रबोध करिकै रात्रिके समय अहल्याके पास ले आई, तब गोप्य स्थानविषे इकट्ठे भये, तहां परस्पर लीलाकरि अरु दोनोंका चित्त परस्पर स्नेहकरि बंधायमान भया अरु बहुत प्रसन्न भी भये, जैसे चकवी अरु चकवेका आपसमें स्नेह होता है, तैसे उनका स्नेह भया, जैसे रति अरु कामदेवका स्नेह होता है, तैसे उनका स्नेह भया, एक दूसरे विना एक क्षण भी रहि न सकै. और सब क्रिया उनकी निवृत्त होगई, अरु लज्जा भी दूर होगई, जैसे चंद्रमाको देखिकै चंद्रमुखीकमल प्रसन्न होवै, तैसे एक दूसरेको देखिकै वह प्रसन्न होवैं. हे भगवन् ! ब्रह्माजी उस रानीका भर्त्ता भी बडा गुणवान् था, परंतु रानीने भर्ताको त्याग किया, अरु इंद्रके साथ उसका परस्पर स्नेह भया, जब राजाने उनका संपूर्ण वृत्तांत श्रवण किया, तब बलकरि इनको दंडताड़ना करावने लगा, परंतु उनको खेद कछु न होवे, जब चिक्कडविषे उसको डारै तब कमलकी नईं ऊपर ही रहैं, कष्ट कछु न होवै, बहुरि बर्फविषे उनको डारि दिये तौ भी खेदवान् न हुवे. तब राजाने कहा, हे दुर्मतियो ! तुमको दुःख कछु क्यों नहीं होता ? उन्होंने कहा, हमको दुःख कैसे होवै, हम तौ आपको भी नहीं जानते तब अहल्याने कहा, मुझको सब इंद्र ही भासता है, भिन्न दुःख कहाँ होवै, इंद्रने कहा मुझको सब अहल्या ही भासती है, भिन्न दुःख कहां होवै, तेरे दंड करनेकरि हमको कछु दुःख नहीं होता, परस्पर हम हर्षवान् हैं, तब राजाने उनको बांध डारे, बहुरि अग्निविषे डार दिये, तौ भी जले नहीं, बहुरि हस्तिके चरणोंविषे डार दिये तो भी कष्ट कछु न भया, तब राजाने कहा, रे पापियो ! तुमको अग्नि आदिक-

विषे दुःख क्यों नहीं होते, तब इंद्रने कहा, हे राजन्! जेती कछु जगज्जाल है. सो मनविषे स्थित हैं अरु जैसा मन है, तैसा रूप पुरुषका है जैसा निश्चय मनविषे दृढ होता है, तिसको दूरकरनेको कोऊ समर्थ नहीं भावै सो दंड हमको दो, परंतु कछु दुःख नहीं होवैगा, काहेते कि हमारे हृदयविषे परस्पर प्रतिभा हो रही है, जो कुछ अनिष्ट हमको होवै तब दुःख भी होवै, अनिष्ट तो कुछ हुआ नहीं, तब दुःख कैसे होवै?हे राजन्! जो कछु मनविषे दृढीभूत होता है, सोई पडा भासता है, तिसका निश्चय दूर कोऊ नहीं करि सकता; शरीर नष्ट होजाता है, परंतु मनका निश्चय नाश नहीं होता. हे राजन्! जो मनविषे तीव्र संवेग होता है, सो वर अरु शापकरि भी दूर नहीं होता, जैसे सुमेरु पर्वतको मंद मंद वायु चलाय नहीं सकता, तैसे मनके निश्चयको कोऊ नहीं चलाय सकता, इसी कारणते कहा है कि, मेरे हृदयविषे इसकी मूर्ति स्थिरीभूत है, इसके हृदयविषे मेरी मूर्ति स्थिरीभूत है, इसको सब जगत् मैं ही भासता हौं अरु मुझको सब जगत् यही भासती है, जो कछु दूसरा भासै तब दुःख भी होवै, जैसे लोहेके कोटविषे होवै तिसको दुःख देनेको कोऊ समर्थ नहीं, तैसे मुझको दुःख कोऊ नहीं, जहां मैं जाता हौं, तहां सब ओरते अहल्या ही भासती है, ताते दुःख कोऊ नहीं, जैसे ज्येष्ठ आषाढकी वर्षाविषे पर्वत चलायमान नहीं होता, तैसे हमको दुःख नहीं होता. हे राजन्! मनका नाम अहल्या है अरु मनका नाम इंद्र है अरु मनने सब जगत् रचा है. जैसा जैसा मनविषे दृढ निश्चय होता है, तैसा ही भासता है, सुमेरुकी नाईं स्थिर होजाता है, नष्ट नहीं होता जैसे पत्र, फूल, फल, टासके काटते वृक्ष नष्ट नहीं होता, जब बीज ही नष्ट होवै, तब वृक्ष नष्ट होता है, तैसे शरीके नष्ट हुएते मनका निश्चय नष्ट नहीं होता, जब मनका निश्चय ही उलट पड़े तब ही दूर होता है, एक शरीर जब नष्ट होता है, तब और शरीर धारि लेता है, जैसे स्वप्नविषे यह शरीर रहता है अरु और शरीर धारिकै चेष्टा करता है, तो शरीरके अधीन हुआ क्या? तैसे शरीरके नष्ट हुए मनका निश्चय दूर नहीं होता, जब मन नष्ट होवै, तब शरीरके होते भी कछु क्रिया

सिद्ध नहीं होती, ताते सबका बीज मन है, जैसे पत्र टास फल फूल तिन सबनका कारण जल है, तैसे सब पदार्थका कारण मन है जैसा चित्त है, तैसा रूप पुरुषका है, ताते जहां जाता है, तहां सब ओरते रानी भासती है, मुझको दुःख कैसे होवै ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे कृत्रिमेंद्रवाक्यवर्णंन नामैकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

नवतितमः सर्गः ९०.

अहल्यानुरागसमाप्तिवर्णनम् ।

भानुरुवाच--हे भगवन् ! इस प्रकार जब इंद्र ब्राह्मणने कहा, तब कमलनयन राजाके समीप जो भरत नाम मुनीश्वर बैठा था, तिसको राजा कहत भया, हे सर्व धर्मोंके वेत्ता भरत मुनीश्वर! तुम देखौ कैसे यह ढीठ पापात्मा हैं, जैसा इनका पाप है, तिनके अनुसार इनको शाप देहु, जो यह मरि जावैं, जो मरने योग्य न होवै, तिसको राजा मारै; तब राजाको पाप होता है, जैसे तिसके मरनेते पाप होता है, तैसे पापीको न मारनेते भी पाप होता है, ताते इन पापियोंको शाप देहु, जिससे नष्ट होजावैं. हे भगवन् ! जब इस प्रकार राजा शार्दूलने कहा, तब भरत मुनिने तिनके पापको विचारिकै कहा, अरे पापियो ! तुम मर जाओ, तब इस प्रकार मुनीश्वरने कहा, तब उस इंद्र ब्राह्मणने कहा, रे दुष्टो ! तुमने शाप दिया तिससे कहा होवैगा? तिसकारिकै शरीर नष्ट होवैगा, तिस करिकै हमारा मन तौ नष्ट होनेका नहीं तुम भावै लक्ष यत्न करौ, तिस मनकारि शरीर होवैंगे हमारेको मनके नष्ट हुए विना विपर्ययदशा नहीं होती, ऐसा कहिकारि दोनों पृथ्वीपर गिरपड़े, जैसे मूलके काटेते वृक्ष गिरपडता है, तैसे वे गिरपडे अरु वासनासंयोग जो थे, तिसकारि दोनों मृग भये ! तहां भी परस्पर स्नेहविषे रहे, बहुरि तिस जन्मको त्यागिकै पक्षिजन्मको पाया. हे ब्रह्माजी ! तिस देहका भी त्याग किया, अब हमारी सृष्टिविषे तप करता पुण्यवान् ब्राह्मण अरु ब्राह्मणी भये हैं, ताते तुम देखौ, जो भरत मुनिने शाप

दिया, तब उनके शरीर नष्ट हुए, परन्तु मनका जो कछु निश्चय था, सो नष्ट न भया, जहां शरीर पावै, तहां दोनों इकट्ठे रहैं, आपसमें अकृत्रिम प्रेमवान् भये, सो और किसीकरि आनंदवान् न होवैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे अहल्यानुरागसमाप्तिवर्णनं नाम नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

एकनवतितमः सर्गः ९१.

जीवक्रमोपदेशवर्णनम् ।

भानुरुवाच–हे नाथ ! तुम देखो कि, जैसा मनका निश्चय होता है तिसीके अनुसार आगे भासता है, इंद्रके पुत्रकी सृष्टिवत् मनके निश्चयको कोऊ दूर नहीं कर सकता है, जगत्के प्रति मन ही जगत्का कर्त्ता है अरु मन ही पुरुष है, मनका किया होता है, शरीरका किया कार्य नहीं होता, जो मनविषे दृढ निश्चय होता है, सो किसी औषधकरिकै दूर नहीं होता. जैसे मणिविषे प्रतिबिंब होता है; सो मणिके उठाये विना दूर नहीं होता, तैसे मनके निश्चय भी किसी ओरकरि दूर नहीं होता, जब मन ही उलटै तब ही दूर होवै, इसते कहा है, जो अनेक सृष्टिके भ्रम चित्तविषे स्थित हैं, ताते हे ब्रह्माजी ! तुम भी चिदाकाशविषे सृष्टिको रचौ. हे नाथ ! तीन आकाश हैं, एक भूताकाश है, एक चित्ताकाश है, एक चिदाकाश है, सो तीनों अनंत हैं, इनका अंत कहूँ नहीं, भूताकाश चित्ताकाशके आश्रय स्थित है अरु चित्ताकाश चिदाकाशके आश्रय स्थित है, भूताकाश अरु चित्ताकाश ये दोनों चिदाकाशके आश्रय प्रकाशते हैं, ताते चिदाकाशके आश्रय जेती तुम्हारी इच्छा होवै, तेती सृष्टि तुम भी रचौ, चिदाकाश अनंतरूप है, इंद्र ब्राह्मणके पुत्रोंने तुम्हारा क्या लिया है ? अपना नित्य कर्म तुम भी करौ. ब्रह्मोवाच–हे वसिष्ठजी ! इस प्रकार जब सूर्यने मुझको कहा, जो सब जगत्जाल मनते उठी है, तब मैं विचार करिकै कहा. हे भानु ! तुमने युक्त वचन कहे हैं कि, एक भूताकाश है, एक चित्ताकाश है, एक चिदाकाश है, सो तीनों अनंत हैं, परंतु भूताकाश और चित्ताकाश

दोनों चिदाकाशके आश्रय फुरते हैं, ताते हम भी अपने नित्यकर्मको करते हैं अरु जो कछु मैं तुमको कहता हौं, सो तुम भी मानौ, मेरी सृष्टिके तुम मनुप्रजापति होहु, जैसे तुम्हारी इच्छा होवै, तैसे रचौ, ऐसे जब मैं कहा, तब सूर्य मेरी आज्ञा मानिकै अपने दो शरीर करत भया, एक तौ पूर्वका सूर्यरूप कियो, उस सृष्टिका सूर्य हुआ अरु दूसरा शरीर उस स्वयंभू मनुका किया. हे वसिष्ठजी ! मेरी आज्ञाके अनुसार उसने सृष्टि रची; ताते मैंने तुझको कहा है, जो यह जगत् सब मनका रचा हुआ है, जो मनविषे दृढ निश्चय होता है, सोई सफल होता है; जैसे इंद्र ब्राह्मणकी सृष्टि हुई. हे मुनीश्वर! देहके नष्ट हुए भी मनका निश्चय दूर नहीं होता, चित्तविषे वही भासि आता है, सो चित्त आत्माका किंचनरूप है, जैसे तिसविषे फुरना होता है, तैसा ही होय भासता है, प्रथम जो शुद्ध संविद्रूपविषे उत्थान हुआ है, सो अंतवाहक शरीर है, बहुरि जो उसविषे दृढ अभ्यास हुआ है अरु स्वरूपका प्रमाद हुआ है, तब अधिभूतका शरीर हुए, जब अधिभूतकका अभिमानी भया तब इसका नाम जीव हुआ, अरु देहाभिमानकरि नानाप्रकारकी वासना होती है; तिसके अनुसार घटीयंत्रकी नाईं भटकता है, जब बहुरि आत्माका बोध होवै; तब देहते आदि लेकरि दृश्य शांत होजाता है. हे मुनीश्वर ! जेता कछु दृश्य भासता है, सो ब्रह्मकरिकै भासता है; वास्तवते न कोऊ उपजा है, न कोऊ जगत् है, यह भ्रम सब चित्तकरि रचा है, तिसके अनुसार घटीयंत्रकी नाईं भटकता है, जब बहुरि आत्माका बोध होता है, तब देहते आदि लेकर सब प्रपंच शांत होता है. हे मुनीश्वर ! जेता कछु दृश्य भासता है, सो मनकरिकै भासता है, वास्तवते न कोऊ माया है, न कोऊ जगत् है, यह सब भ्रम भासता है. हे वसिष्ठजी ! और द्वैत कछु नहीं, चित्तके फुरणेकरिकै अहं त्वम् आदिक भ्रम भासता है, जैसे इंद्र ब्राह्मणके पुत्र मनके निश्चयकरिकै ब्रह्मारूप होत भये, तैसे मैं ब्रह्मा हौं; शुद्ध आत्माविषे चेत्यता होती है; सोई चेत्यता ब्रह्मारूप होइकरि स्थित है अरु शुद्ध आत्माविषे जो चेत्यता होती है, सोई मनरूप है, तिस मनके संयोगकरि चेतनको जीव कहते हैं, जब इसविषे जीवत्व होता है, तब अपनी देहको देखता है;

बहुरि नानाप्रकारके जमत्भ्रमको देखता है; जैसे इंद्र ब्राह्मणके पुत्रकी सृष्टि हुई,तैसे यह जगत् है, जसे भ्रमकरि आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, सो जगत् सत्य भी नहीं अरु असत्य भी नहीं, प्रत्यक्ष देखनेकरि सत्य भासता है अरु नाश-भावकरि असत्य है; सो सब मनविषे फुरता है अरु मनके दो रूप हैं, एक जड़रूप है,दूसरा चेतनरूप है, जडरूप मनका दृश्यरूप है अरु चेतनरूप मनका ब्रह्म है, जब दृश्यकी ओर फुरता है, तब दृश्यरूप होता है, जब चेतन भावकी ओर स्थित होता है, तब जडभाव दृश्यरूप इसका नष्ट होजाता, जैसे स्वर्णके जाननेते भूषणभाव नष्ट होजाता है अरु जब जडभावविषे फुरता है, तब नानाप्रकारके जगत्को देखता है, वास्तवते ब्रह्मादि तृणपर्यंत सब ही चेतनरूप है. जड तिसको कहते हैं, जो अभावरूप होवै, जैसे लकडीविषे चित्त नहीं भासता. अरु प्राणधारियोंविषे चित्त भासता है, परंतु स्वरूपते दोनों तुल्य हैं, काहेते जो सब परमात्मा करिकै प्रकाशता है. हे वसिष्ठजी ! स्वरूपते सब चेतनस्वरूप हैं, जो चेतनस्वरूप न होवैं, तो क्यों भासैं चेतनताकरि उपलब्धरूप होते हैं, जड अरु चेतनका विभाग अवाच्य ब्रह्मविषे नहीं पाता, जडचे-तनका विभाग प्रमाद दोषकरिकै है, वास्तवते नहीं, जैसे स्वप्नविषे दो प्रकारके भूत भासते हैं, जड अरु चेतनरूप तिस रूपका प्रमाद होता है, तिस चेतनभूत प्राणीको जड चेतनविभाग भासता है,अरु स्वरूपदर्शीको सब एकस्वरूप है. हे मुनीश्वर ! ब्रह्माविषे चेत्यता भई सो मन भया तिस मनविषे जो चेतनभाग है;सो ब्रह्मा है, अरु जडभाग है,सो अबोध है; जब अबोधभाव होता है; तब दृश्य भ्रमको देखता है; जब चेतनभाव-विषे स्थित होता है; तब शुद्धरूप होता है. हे मुनीश्वर ! चेतनमात्रविषे अहंकार उत्थान दृश्य है अरु परमार्थते कछु भेद नहीं जैसे तरंग जलते भिन्न नहीं, तैसे अहं चेतनमात्रते भिन्न नहीं होता; सबकी प्रतीति ब्रह्महीविषे होती है, सो परमपद है, सब दुःखोंते रहित है, सोई शुद्ध चित्त जीव चेत्यभावको चेतता है; तब जड़भावको देखता है, जैसे स्वप्नविषे कोऊ अपना मरणा देखता है, तैसे वह चित्त

जडभावको देखता है, सो आत्मा सर्वशक्तिमान् है, कर्त्ता है, तौ भी कछु नहीं करता तिसके समान और कछु नहीं. हे मुनीश्वर ! यह जगत् कछु वास्तवते उपजा नहीं, चित्तके फुरनेकरिकै भासता है, जब चित्तका फुरणा होता है, तब जगज्जाल भासता है, जब चेतन आत्माविषे स्थित होता है, तब मनका जड़भाव नहीं रहता, जैसे पारसमणिके मिलापते लोहा स्वर्ण होजाता है, बहुरि लोहभाव तिसका नहीं रहता तैसे जब मन आत्माविषे स्थित होता है, तब मनकी जडताका दृश्यभाव नहीं रहता अरु जैसे सुवर्णको शोधन करता है, तब मैल जलता है, शुद्ध ही शेष रहता है, तैसे चित्त जब आत्माविषे स्थित होता है, तब जडभाव इसका जलजाता है, शुद्ध चेतनमात्र शेष रहता है, अरु वास्तवते पूछैं तौ शुद्ध भी द्वैतविषे होता है, आत्माविषे द्वैत कछु नहीं, ताते शुद्ध कैसे होवै, जैसे आकाशके फूल वृक्ष वास्तवते कछु नहीं, तैसे शोधन भी वास्तवते कछु नहीं. हे मुनीश्वर ! जबलग आत्माका अज्ञान है, तबलग नानाप्रकारका जगत् भासता है, जब आत्माका बोध होता है, तब जगद्भ्रम नष्ट होजाता है, यह जगद्भ्रम चित्तविषे है, जैसा निश्चय चित्तविषे होता है, तैसा ही हो भासता है, इसके ऊपर अहल्या अरु इंद्रका दृष्टांत कहा है, ताते जैसी भावना दृढ होती है, तैसा होइ भासता है. हे वसिष्ठजी ! जिसको यही भावना दृढ है, कि मैं देह हौं, सो पुरुष जो कछु चेष्टा करता है, सो देहके निमित्त करता है, तिस कारणते बहुत कालपर्यंत कष्ट पाता है, जैसे बालक वैतालकी कल्पना करता है, तिसकरि आप भय पावता है, तैसे देहविषे अभिमान करिकै पुरुष कष्ट पावता है अरु जिसकी भावना देहविषे निवृत्त भई है अरु शुद्ध चेतनभावविषे प्राप्त भई है, तिसका देहादिक जगद्भ्रम शांत होजाता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जीवक्रमोपदेशवर्णनं नामैकोनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

द्विनवतितमः सर्गः ९२.

मनोमाहात्म्यवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जब इस प्रकार ब्रह्माजीने मुझको कहा, तब मैंने बहुरि प्रश्न किया, कि हे भगवन्! तुमने कहा जो शापविषे मंत्रादिकोंका बल होता है सो शाप भी अचलरूप है, मिटता नहीं, सो मैं ऐसे भी देखा है, जो शापकरिकै मन, बुद्धि, इंद्रियां भी जडीभूत हो जाती हैं ऐसे तौ नहीं, जो देहको शाप होवै अरु मनको न होवै. हे भगवन्! मन अरु देह तौ अनन्यरूप हैं, जैसे वायु अरु स्पंदविषे भेद नहीं, जैसे घृत अरु चिकनाईविषे भेद नहीं, तैसे मन अरु जगत्‌विषे भेद नहीं अरु जो कहिये देह कछु वस्तु नहीं, चैतन्य ही चित्त है, देह भी चित्तविषे कल्पित है, जैसे स्वप्नदेह होता है, जैसे मृगतृष्णाका जल होता है, जैसे दूसरा चन्द्रमा भासता है, सो एकके नष्ट हुए, दोनों क्यों नहीं नष्ट होते, तैसे देहके शापकरि चाहिये कि, मनको शाप भी लगि जावै, सो मैंने देखा है, जो शापकरि भी जड़ीभूत होगये हैं अरु तुम कहते हौ, देहका कर्म मनको नहीं लगता, सो कैसे जानिये? ब्रह्मोवाच-हे मुनीश्वर! ऐसा पदार्थ जगत्‌विषे कोऊ नहीं, जो सब कर्मको त्यागिकै पुण्यरूप पुरुषार्थ कियेते सिद्ध न होवै, पुरुषार्थ कियेते सब कछु होता है, ब्रह्मा आदि चींटीपर्यंत जिस जिसकी भावना होती है, तैसा रूप हो भासता है अरु सब जगत्‌के दो शरीर हैं, एक मनरूपी शरीर है सो चंचलरूप है, दूसरा अधिभूतक मांसमय शरीर है, तिसका किया कार्य निष्फल है, अरु जो मनकरिकै चेष्टा होती है; सो सफल होती है. हे मुनीश्वर! जिस पुरुषको मांसमय शरीरके साथ अहंभाव है; तिसको आधि व्याधि अरु शाप भी अवश्य लगता है; अरु मांसमय शरीर जो मूक है; गूँगा है अरु दीन है अरु क्षणनाशी है, इसके साथ जिसका संयोग है, सो दीन रहता है अरु चित्तरूपी शरीर चंचल है, अपना चित्त वश किसीको नहीं होता अर्थ यह कि, वश करना महाकठिन है, जब दृढ वैराग्य अभ्यास होवै, तब वश होवै, अन्यथा नहीं होता,

मन महाचंचल है अरु यह जगत् मनविषे है, जैसा जैसा मनविषे निश्चय है, सो दूर नहीं होता, मांसमयका किया सफल नहीं होता अरु जो मनविषे निश्चय है, सो दूर नहीं होता. हे मुनीश्वर ! जिन पुरुषोंने चित्तको आत्मपदविषे स्थित किया है, तिनको अग्निविषे डारिये तौ भी दुःख कछु नहीं होता अरु जलविषे डारिये तौ भी दुःख नहीं होता, काहेते कि, उनका चित्त बाह्य शरीरादिक भावको ग्रहण नहीं करता, आत्माविषे स्थित होता है. हे मुनीश्वर ! जो सब भावको त्यागिकरि मनका निश्चय जिसविषे दृढ होता है, सोई भासता है; जहां मन दृढीभूत होइकरि लगता है, तिसको वही भासता है और किसी संसारके कष्टकरि अरु शापकरि मन चलायमान नहीं होता अरु जो किसी दुःख शापकरि मन विपर्ययभावको प्राप्त होजावै तौ जानिये कि यह दृढ लगा न था, अभ्यासकी शिथिलता है. हे मुनीश्वर ! मनकी तीव्रताके हिलावनेको किसी पदार्थकी शक्ति नहीं, काहेते जो सृष्टि मानसी है, ताते मनके साथ मनको समाय चित्तको परमपदविषे जोडौ जब चित्त आत्माविषे दृढ होता है, तब जगत्के पदार्थोंकरि चलायमान नहीं होता; जैसे मांडव्य ऋषीश्वर शूलीपर चढा था, अरु तिसका जो चित्त आत्मपदविषे लगा हुआ था तिसको शूलीपर भी खेद न हुआ. हे मुनीश्वर ! जिसविषे मन दृढ होइकरि लगता है, तिसको चलाय कोऊ नहीं सकता, जैसे इंद्र ब्राह्मण चलायमान न भये ,तैसे मन आत्माविषे स्थिर हुआ, चलायमान नहीं होता. हे मुनीश्वर ! जैसा जैसा मनविषे तीव्र भाव होता है, तिसीकी सिद्धता होती है. दीर्घतपा एक ऋषि था, यह अंधे कूपविषे किसी प्रकार गिर पडा, तिस कूपविषे मनकरि यज्ञ करने लगा, मनविषे दृढकरि यज्ञको किया, तिस यज्ञकरि मनविषे देवता होइकरि फल इंद्रपुरीविषे भोगने लगा अरु जैसे इंद्र ब्राह्मणके पुत्र मनुष्योंके समान थे अरु मनविषे जो ब्रह्माकी भावना करी, तिसकरि दश ही ब्रह्मा भये अरु दश ही तिनने अपनी अपनी सृष्टि रची, सो कैसी सृष्टी हैं, जो मुझकरि भी खंडित नहीं होतीं ताते जो कछु दृढ अभ्यास होता है,सो नष्ट नहीं होता और भी जो देवता

महाऋषि आदि धैर्यवान् हुए हैं, जिनकी एक क्षण मात्र भी वृत्ति चलायमान नहीं होती, तिनको संसारका ताप, आधि, व्याधि, शाप, मंत्र, पाप कर्म इसते लेकरि जो संसारके क्षोभ दुःख हैं, तिनको कोऊ नहीं स्पर्श करता, जैसे कमलफूलका प्रहार शिलाको फोड़ नहीं सकता, तैसे धैर्यवान्को संसारका ताप नहीं खंडन करि सकता अरु जिसको आधि व्याधि दुःख करते हैं, सो जानिये कि यह परमार्थदर्शनते शून्य है. हे मुनीश्वर! जो पुरुष स्वरूपविषे सावधान भये हैं, तिनको कोई दुःख स्पर्श नहीं करते स्वप्नविषे भी तिनको दुःखका अनुभव नहीं होता, काहेते कि तिनका चित्त सावधान है, ताते दृढ पुरुषार्थकरि मनके साथ मनको मारो, तिसकरि जगद्भ्रम नष्ट होजावैगा. हे मुनीश्वर ! जिसको स्वरूपका प्रमाद होता है, तिसको क्षणविषे जगद्भ्रम दृढ होजाता है, जैसे बालकको क्षणविषे वैताल भासि आता है, तैसे प्रमादकरि जगत् भासता है. हे मुनीश्वर ! मनरूपी कुलाल है अरु वृत्तिरूपी मृत्तिका है, तिस मनकरि वृत्ति अनेक आकार क्षणविषे धारती है, जैसे मृत्तिका कुलालकरि घटादिक अनेक आकारको धारती है; तैसे निश्चयके अनुसार वृत्ति अनेक आकारोंको पाती है, जैसे सूर्यविषे उलूकादिक भावनाकरिकै अन्धकारको देखते हैं, अरु तिनको चंद्रमाकी किरणें भी भावनाकरिकै अग्निरूप भासती हैं, जिनको विषविषे अमृतकी भावना होती है, तिनको विष भी अमृतरूप होइ भासता है; इसी प्रकार कटुक अम्ल नोन भी भावनाके अनुसार भासता है, जैसा मनविषे निश्चय होता है तैसा ही इसको भासता है, मनरूपी बाजीगर है, जैसी रचना चाहता है तैसी रच लेता है अरु मनका रचा जगत् है, सो सत्य नहीं अरु असत्य भी नहीं, प्रत्यक्ष भाषणकरि सत्य है, असत्य नहीं, अरु नष्ट भावते असत्य है, सत्य नहीं अरु सत्य असत्य भी मनकरिकै भासता है, वास्तव कछु नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिकरणे मनोमाहात्म्यवर्णनं नाम द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमः सर्गः ९३.

वासनात्यागवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! इस प्रकार प्रथम ब्रह्माजीने मुझको कहा था, सो मैंने अब तुझको कहा है, जो प्रथम ब्रह्म अहंशब्द पदविषे स्थित था, तिसविषे चित्त हुआ, अर्थ यह जो अहम् अस्मि चेतनताका लक्षण हुआ, तिसकी जब दृढ़ता हुई, तब मन हुआ, तिस मनने पंचतन्मात्राकी कल्पना करी, सो तेजाकार ब्रह्मा परमेष्ठी कहाता है. हे रामजी ! सो ब्रह्माजी मनरूप है अरु मन ही ब्रह्मारूप है, तिसका रूप संकल्प है, बहुरि आगे जैसा संकल्प करता है, तैसा ही होता है, तिस ब्रह्माने एक अविद्याशक्ति कल्पी है,अनात्मविषे आत्माभिमान करना इसका नाम अविद्या है, बहुरि अविद्याकी निवृत्ति विद्या कल्पी; इसी प्रकार पहाड, तृण, जल, समुद्र, स्थावर, जंगम पूर्ण जगत्को उत्पन्न किया. इस प्रकार ब्रह्मा हुआ अरु इस प्रकार जगत् हुआ; जैसे तुमने कहा सो जगत् कैसे उपजता है अरु कैसे मिट जाता है; सो श्रवण करहु; जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं अरु समुद्रहीविषे लीन होते हैं; तैसे संपूर्ण जगत् ब्रह्मविषे उपजता है अरु ब्रह्मविषे लीन होता है. हे रामजी ! शुद्ध आत्मसत्ताविषे जो अहंकार उल्लेख हुआ है, सो मन है अरु सोई ब्रह्मा है, तिसहीने नानाप्रकार जगत् रचा है; सो सर्व चित्तशक्ति पसरी है सो चित्तके फुरनेकरि नानात्व भासता है. हे रामजी ! जेते कछु जीत हैं; तिन सर्वोंविषे आत्मसत्ता स्थित है, परंतु अपने स्वरूपके प्रमाद करिकै पडे भटकते हैं; जैसे वायु करिकै वनके कुंजोंविषे सूखे पात भटकते हैं तैसे कर्मरूपी वायुकरि जीव भटकते हैं, अध अरु ऊर्ध्वविषे घटीयंत्रकी नाईं अनेक जन्मोंको धरते हैं, जब काकतालीयवत् सत्संगकी प्राप्ति होवै अरु अपना पुरुषार्थ करै, तब मुक्त होवै, इसकी जबलग प्राप्ति नहीं भई तबलग कर्मरूपी जेवरीसाथ बाँधे हुए अनेक जन्मविषे भटकते हैं, जब ज्ञानकी प्राप्ति होवै तब ही दृश्यभ्रमते छूटैं, अन्यथा न छूटैंगे. हे रामजी ! इस प्रकार ब्रह्माते जीव उपजते हैं, अरु मिटते हैं, अनंत संकटोंका कारण वासना

ही नानाप्रकारके भ्रम दिखाती है अरु जगतरूपी वनकी जन्मरूपी वैतालवेलि वासना जलकरि बढती है, जब सम्यक्‌ज्ञान प्राप्त होवै; तब सोई कुठारकरिकै काटौ, जब मनविषे वासनाका क्षोभ मिटै, तब शरीररूपी अंकुर मनरूपी बीजते उपजै नहीं, जैसे भूना बीज अंकुर नहीं लेता; तैसे वासनाते रहित मन शरीरको नहीं धारता.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे वासनात्यागवर्णनं नाम त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

चतुर्नवतितमः सर्गः ९४.

सर्वब्रह्मप्रतिपादनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जेती कछु भूतजाति हैं, सो ब्रह्मते उपजी हैं, जैसे समुद्रते तरंग बुद्बुदे कई बडे कई छोटे, कई मध्यमभावके होते हैं, सो सब जल हैं, तैसे यह जीव ब्रह्मते उपजे हैं, सो ब्रह्मरूप हैं, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है, जैसे अग्निते चिनगारे उपजते हैं, तैसे ब्रह्मते जीव उपजते हैं, जैसे कल्पवृक्षकी मंजरी नानारूपको धरती है, तैसे ब्रह्मते जीव हुए हैं, जैसे चंद्रमाते किरणोंका विस्तार होता है, अरु जैसे वृक्षते पत्र, फूल, फल आदिक होते हैं, तैसे ब्रह्मते जीव होते हैं जैसे सुवर्णते अनेक भूषण होते हैं, तैसे ब्रह्मते जगत होता है; जैसे झरनोंते जलके कणके उपजते हैं; तैसे परमात्माते भूत उपजते हैं, जैसे आकाश एक ही है, तिसविषे घटमठकी उपाधिकरि घटाकाश मठाकाश कहाता है, तैसे संवेदनके फुरणेकरि जीवकल्पना होती है, जैसे जल ही द्रवताकरिकै तरंग आवर्तरूप होइ भासता है, तैसे ब्रह्म ही संवेदनकरिकै जगद्रूप होइ भासता है, द्रष्टा दर्शन दृश्य सब ब्रह्मते उपजा है; जैसे सूर्यके तेजकरि मृगतृष्णाकी नदी भासती है, तैसे संवेदनकरिकै ब्रह्मविषे द्रष्टा दर्शन दृश्य त्रिपुटी भासती है, वास्तवते द्रष्टा दर्शन दृश्य कल्पना कोऊ नहीं. जैसे चंद्रमा अरु शीतलताविषे कछु भेद नहीं, जैसे सूर्य अरु प्रकाशविषे कछु भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु

जगत्विषे कछु भेद नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, अरु समुद्रमें ही लीन होते हैं, तैसे जीव ब्रह्महीते उपजते हैं अरु ब्रह्महीविषे लीन होते हैं. कई सहस्रों जन्मके अनंतर प्राप्त होते हैं, कई थोडे, कई बहुत जन्मकरि प्राप्त होते हैं. हे रामजी ! इस प्रकार जगत् परमात्माते हुआ है अरु तिसकी इच्छानुसार व्यवहार करते हैं, सोई व्यवहारकी नाईं होइ भासते हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सर्वब्रह्मप्रतिपादनं नाम चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

पचनवतितमः सर्गः ९५.

कर्मपौरुषयोरैक्यप्रतिपादनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! कर्त्ता अरु कर्म यह अभिन्नरूप हैं अरु इकट्ठे ही ब्रह्मते उत्पन्न हुए हैं, जैसे फूल अरु सुगन्ध वृक्षते इकट्ठे उत्पन्न होते हैं, तैसे कर्त्ता अरु कर्म इकट्ठे उत्पन्न हुए हैं, जब जीव सब संकल्प-कलनाको त्यागता है; तब निर्मल ब्रह्म होता है, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे आत्माविषे जगत्कल्पना फुरती है, आत्मा अद्वैत सदा अपने आपविषे स्थित है,अरु यह भी अज्ञानीके बोध जतावनेको कहता है, जो जीव ब्रह्मते उपजे हैं अरु इसप्रकार सात्त्विक राजस तामस गुणोंके भेद स्थित हैं, जो ज्ञानवान् हैं, तिन्हों प्रति यह कहना भी नहीं बनता, जो ब्रह्मते उपजे हैं, तौ भी दूसरा कछु नहीं, दूसरेको अंगीकार करिकै उपदेश करता है, वास्तवते ब्रह्मसत्ताविषे कोऊ कल्पना नहीं; सदा अपने स्वभावविषे स्थित है, जो ज्ञानवान् हैं, तिनको सदा ऐसे ही प्रत्यक्ष भासता है अरु अज्ञानी दूरते दूर चले जाते हैं, तिनको सुमेरु अरु मंदराचलकी नाईं आत्मा अरु जीवका अंतर भासता है, जैसे वसंतऋतुकरिकै नानाप्रकारके नूतन अंकुर उपजते हैं अरु वसंतऋतुके अभाव हुए नष्ट होते हैं; तैसे चित्तके फुरणेकरि जीवराशि उपजते हैं अरु चित्तके अफुर हुए नष्ट होते हैं; मन अरु कर्मविषे भेद कछु नहीं, मन

अरु कर्म इकट्ठे ही उत्पन्न होते हैं, जैसे वृक्षसों फल अरु सुगन्ध इकट्ठे उपजते हैं, तैसे आत्मासों मन अरु कर्म इकट्ठे ही उपजते हैं, बहुरि आत्माविषे लीन होते हैं. हे रामजी! दैत्य, नाग, मनुष्य, देवता आदिक जेते कछु जीव तुझको भासते, सो आत्माते उपजते हैं अरु बहुरि आत्माविषे लीन होते हैं, इनका उत्पत्तिकारण अज्ञान है, आत्माके अज्ञानकरिके भटकते हैं, जब आत्मज्ञान उपजता है, तब संसारभ्रम निवृत्त होजाता है. राम उवाच-हे भगवन्! जो पदार्थ शास्त्रप्रमाणकरिकै सिद्ध है, सोई सत्य है अरु शास्त्रप्रमाण वही है, जिसविषे रागद्वेषते रहित निर्णय है अरु अमानित्व अदंभित्व आदिक गुण प्रतिपादन किये हैं, तिस सब दृष्टिकारि जो उपदेश किया है, सो पदार्थ प्रमाण हैं, तिनके अनुसार जो जीव विचरते हैं, सो भली उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं, अरु जो शास्त्रप्रमाणते विपरीत वर्तते हैं, सो अशुभगतिको प्राप्त होते हैं अरु लोकविषे भी प्रसिद्ध सुनाता है कि, कर्मोंके अनुसार जीव वर्त्तते उपजते हैं, जैसे बीज़ते अंकुर उपजता है,सो जैसा बीज होता है. तैसा ही तिसते अंकुर उपजता है, तैसे जैसा कर्म होता है; तैसी गति इसको प्राप्त होती है, अरु कर्त्ताकरिकै कर्म होता है, यह परस्पर अभिन्न हैं; इनका इकट्ठा होना क्योंकारि होवे, कर्ताकारि कर्म होते हैं, अरु कर्मकरिकै गति प्राप्त होती है अरु तुम कहते हौ मन अरु कर्म ब्रह्मते इकट्ठे ही उत्पन्न हुए हैं,इसकरिकैशास्त्रके वचन अरु लोकके वचन अप्रमाण होते हैं;हे देवताविषे श्रेष्ठ! यह संशय दूर करनेको तुम ही योग्य हौ, जैसे सत्य है, तैसे ही कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! यह प्रश्न तुझने भला किया है, तिसका उत्तर मैं तुझको कहता हौं, जिसके श्रवण कियेते तुझको ज्ञानप्रकाश आवैगा. हे रामजी! शुद्ध संवितमात्र आत्मतत्त्वविषे जो संवेदन फुरा सो कर्मका बीज मन हुआ सो सबका कर्मरूप है, तिस बीजते सब फल होते हैं, ताते कर्म अरु मनमें कछु भेद नहीं, जैसे सुगन्ध अरु कमलविषे कछु भेद नहीं, तैसे मन अरु कर्मविषे कछु भेद नहीं; मनविषे संकल्प होता है, सो अंकुर कर्म ज्ञानवान् कहते हैं. हे रामजी! पूर्व इसका देह मन ही है, तिस मनरूपी शरीरसाथ कर्म होते हैं, सो फलपर्यंत सिद्ध

होता है, मनविषे जो फुरना होता है, सोई क्रिया है, अरु सोई कर्म है तिस मनकरि किया कर्म अवश्य सिद्ध होता है, अन्यथा नहीं होता, ऐसा पर्वत कोऊ नहीं, न आकाश है, न कोऊ लोक है, जिसको प्राप्त होइकरि कर्मोंते छूटै, जो कछु मनके संकल्पसाथ किया है, सो अवश्यमेव सिद्ध होता है, पूर्व जो पुरुषार्थ प्रयत्न कछु किया है, सो निष्फल नहीं होता, अवश्यमेव तिसकी प्राप्ति होती है. हे रामजी ! ब्रह्मविषे जो चेत्यता हुई है, सोई मन है, अरु मन कर्मरूप है, अरु सर्व लोकोंका बीज है, इतर कछु नहीं. हे रामजी ! जब कोऊ देशते देशांतरको जाने लगता है, तब जानेका संकल्प ले जाता है, सो चलना कर्म है, ताते फुरणरूप कर्म हुआ, अरु फुरणा मनकारूप है मन अरु कर्मविषे भेद कछु नहीं, अक्षोभ समुद्ररूपी ब्रह्म है, तिसविषे द्रवतारूपी चेत्यता है, सो चेत्यता जीवरूप है, अरु तिसहीका नाम मन है, सो मन कर्मरूप है, जैसे मन फुरता है, सोई सिद्ध होता है, जो कछु मनकरिकै कार्य करता है, सोई सिद्ध होता है, शरीरकरि चेष्टा सिद्ध नहीं होती; इस कारणते कहा है कि, मन अरु कर्मविषे भेद कछु नहीं, भिन्न भिन्न भासते हैं; सो मिथ्या कल्पना मूर्ख करते हैं,बुद्धिमान् नहीं करते, जैसे समुद्र अरु तरंगोंविषे मूर्ख भेद मानते हैं, बुद्धिमान्को भेद कछु नहीं भासता, प्रथम परमात्मासों मन अरु कर्म इकट्ठे ही उपजे हैं,जैसे समुद्रसे तरंग द्रवताकरि उपजते हैं, तैसे चित्तके फुरणेकरि कर्म आत्माते उपजते हैं, जसे तरंग समुद्रविषे लीन होते हैं, तैसे मन अरु कर्म परमात्माविषे ही लीन होते हैं,जैसे जो पदार्थ दर्पणके निकट होते हैं, तैसे ही प्रतिबिंब भासते हैं तैसे जो कछु मनका कर्म होता है, सो आत्मारूपी दर्पणविषे प्रतिबिंब भासता है, जैसे बर्फका रूप शीतल है, शीतलताबिना बर्फ नहीं होता, तैसे चित्त कर्म है, कर्मों विना चित्त नहीं होता, जब चित्तसों स्पंदता मिट जाती है,तब चित्त भी नष्ट होजाता है, चित्तके नष्ट हुए कर्म भी नष्ट होजाते हैं अरु कर्मके नाश हुए मनका नाश होता है,जो पुरुष मनते मुक्त हुआ है,सोई मुक्त है, जो चित्तते मुक्त नहीं हुआ सो बंधनमें है, एकके नाश हुए दोनोंका नाश

होता है, जैसे अग्निके नाश हुए उष्णता भी नाश होती है अरु जब उष्णता नाश होती है, तब अग्नि भी नाश होता है, तैसे मनके नष्ट हुए कर्म भी नाश होते हैं अरु कर्म नाश हुए मन भी नष्ट होता है, एकके अभाव भये दोनोंका अभाव होता है, कर्मरूपी चित्त है अरु चित्तरूपी कर्म है, परस्पर अभेदरूप हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे कर्मपौरुषयोरैक्यप्रतिपादनं नाम पञ्चनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥

षण्णवतितमः सर्गः ९६.

मनःसंज्ञाविचारवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच- हे रामजी! मन भावनामात्र है, भावना नाम फुरणेका है अरु फुरणा क्रियारूप है, तिस क्रिया फुरणेकरि सर्व फलकी प्राप्ति होती है. राम उवाच-हे ब्राह्मण! इस मनका रूप विस्तारिकै कहौ, जड़ अजड़रूप मनका है, तिसको विशेषकरि कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! आत्मतत्त्व अनंतरूप सर्वशक्तिमान् है, जब तिसविषे संकल्पशक्ति फुरती है, तब तिसको मन कहते हैं जड़ अजड़के मध्यविषे दोलायमान होता है, तिस मिश्रितरूपका नाम मन है. हे रामजी! भावरूप जो पदार्थ है, तिसके मध्यविषे जो सत्य असत्यका निश्चय करता है, तिसका नाम मन है, तिसविषे जो यह निश्चय करना कि, मैं चिदानंदरूप नहीं, मैं कृपण हौं, देहसों मिलिकरि ऐसे फुरता है, सो मनका रूप है, जो कल्पना करता रहता है, इसते रहित मन नहीं होता, जैसे गुणों विना गुणी नहीं रहता, तैसे कर्मकल्पना विना मन नहीं रहता, जैसे उष्णताकी सत्ता अग्निते भिन्न नहीं पड़ती, तैसे कर्मोंकी सत्ता मनते भिन्न नहीं पाते, तथा मन अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं. हे रामजी! मनरूपी बीज है, तिसते संकल्परूपी नानाप्रकारके फूल होते हैं, तिसकरिकै नानाप्रकारके शरीर होते हैं, तिसकरि संपूर्ण जगत् देखता है, जैसी जैसी मनविषे वासना होती है, तिसके अनुसार फलकी प्राप्ति होती है, ताते मनका फुरणा ही

कर्मोंका बीज है, तिसकरि जो भिन्न क्रिया होती है, सो तिस वृक्षकी शाखा है अरु नानाप्रकारके विचित्र फल हैं. हे रामजी ! जिस ओर मनका निश्चय होता है, तिसी ओर कर्म इन्द्रियां भी प्रवर्तती हैं अरु जो कर्म है, सोई मनका फुरणा है अरु मन ही फुरणरूप है, इसी कारणते कहा है, कि मन कर्मरूप है, तिस मनकी एती संज्ञा कही हैं; मन, बुद्धि, अहंकार, कर्म, कल्पना, स्मृति, वासना, अविद्या, इन्द्रियांपर्यंत प्रकृति, माया इत्यादिक कल्पना संसारका कारण है, चित्तको जब चेत्यका संयोग होता है; तब संसारभ्रम होता है, अरु इह जेती संज्ञा तुझको कही है, सो चित्तके फुरणेकरिकै काकतालीयवत् अकस्मात् फुरी है. राम उवाच–हे भगवन् ! अद्वैततत्त्व परम संवित् आकाशविषे एती कलना कैसे हुई है अरु तिनविषे अर्थरूप दृढता कैसे हुई है ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! शुद्ध संवित्मात्र जो सत्ता है, सो फुरणेकी नाईं स्थित होवै तब तिसका नाम मन है अरु जब वह वृत्ति निश्चयरूप होवै है, जो भाव अभाव पदार्थोंको निश्चय करत भई; जो यह पदार्थ ऐसा है, यह पदार्थ ऐसा है, तिस वृत्तिका नाम बुद्धि है, अनात्मविषे आत्मभाव परिच्छिन्नरूप जब मिथ्या अभिमान दृढ हुआ, तब तिसका रूप अहंकार हुआ, सोई मिथ्या अहंवृत्ति संसारबंधनका कारण है, किसी पदार्थको ग्रहण करती है, किसीको त्याग करती है. बालककी नाईं विचारते रहित धावती है, तिसका नाम चित्त है अरु वृत्तिका फुरणा धर्म है, तिस फुरणेविषे फलको आरोप करि तिसकी ओर धावना अरु कर्तव्यका अभिमान फुरै, तिसका नाम कर्म है अरु पूर्व जो कार्य किये हैं तिस पदार्थको त्यागिके तिसका संस्कार चित्तविषे धारिकरि स्मरण करना, तिसका नाम स्मृति है, अथवा पूर्व तिसका अनुभव नहीं हुआ अरु हृदयविषे फुरि आवै, कि यह पूर्व मैंने किया था, तिसका नाम भी स्मृति है अरु जिस पदार्थका अनुभव होवै, तिसका संस्कार हृदयविषे दृढ होवै, तिसके अनुसार जो चित्त फुरै, तिसका नाम वासना है. हे रामजी ! आत्मतत्त्व अद्वैत है, तिसविषे अविद्यमान द्वैत विद्यमान होइकरि भासता है, जिसकरि तिसका नाम अविद्या है अरु अपने स्वरूपको भुलायकरि अपने नाशके नि-

मित्त स्पंद चेष्टा करता है अरु शुद्ध आत्माविषे विकल्प उठते हैं, तिसका नाम मूलअविद्या है अरु शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इन पांचों इंद्रियोंको दिखावनेहारा परमात्मा है अरु अद्वैततत्त्व आत्माविषे जिसने दृढ जलको रचा है, तिस स्पंदकलनाका नाम प्रकृति कहाता है अरु असत्यको सत्यकी नाईं दिखाती है अरु सत्यको असत्यकी नाईं दिखाती है, सो माया कहाती है अरु शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये कर्म हैं अरु जिसकरि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध होते हैं, सो कर्त्ता कहाता है, सोई कार्यकारण कहाता है अरु शुद्ध चेतन चैत्यो प्राप्त होता है, सो कलनाकी नाईं होता है, तिस फुरणवृत्तिको विपर्यय कहे हैं सो फुरणे करिकै संकल्पजाल उठती है, तब यह जीव कहाता है, मन भी इसका नाम है, चित्त भी इसका नाम है, बंध भी इसका नाम है. हे रामजी ! परमार्थ शुद्ध चित्तही चेत्यके संयोगकरि स्वरूपते बर्फकी नाईं स्थित भया है. राम उवाच-हे भगवन् ! यह मन जड है, किंवा चेतन है ? सो एकरूप मुझको कहौ, जो मेरे हृदयविषे स्थित होवै. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! मन जड नहीं अरु चेतन भी नहीं जडचेतनकी जो गांठ है, मध्यभाव तिसका नाम मन है अरु संकल्प विकल्पविषे कल्पितरूप मन है, तिस मनते यह जगत उत्पन्न हुआ है, जड़ अरु चेतन दोनों भावविषे दोलायमान है, अर्थ यह जो कबहूं जडभावकी ओर आता है; कबहूं चेतनभावकी ओर आता है; तिसका नाम मन है, शुद्ध चेतनमात्रविषे जो फुरणा हुआ; तिसका नाम मन है; मन बुद्धि चित्त, अहंकार, जीव आदिक अनेक संज्ञाको मन ही प्राप्त हुआ है; जैसे एक नटवा स्वांगोंकरिकै अनेक संज्ञाको पाता है, तिसका स्वांग ले आता है, तिसी नामकरि कहाता है, तैसे संकल्पकरिकै मन अनेक संज्ञाको पाता है, जैसे पुरुष विचित्र कर्मोंकरि अनेक संज्ञाको पाता है, पाठकरि पाठक कहाता है, रसोईकरि रसोइया कहाता है, तैसे मन अनेक संकल्पकरि अनेक संज्ञाको पाता है. हे रामजी ! यह जो मैंने तुझे चित्तकी अनेक संज्ञा कही है, सो अन्यथा अन्यथाकरि बहुत प्रकार वादियोंने नाम रक्खे हैं, जैसा२ मत है, तैसा२स्वभाव लेकरि मन बुद्धि इंद्रियोंको

मानते हैं, जो मनको जड़ मानते हैं अरु जिसको मनते भिन्न मानते हैं अरु अहंकारको भिन्न मानते हैं, सो मिथ्या कल्पना करते हैं, नैयायिक कहते हैं, सृष्टि तत्त्वोंके सूक्ष्म परमाणुते उपजती है, जब प्रलय होता है, तब स्थूलतत्त्व लय होजाते हैं, तिनके सूक्ष्म परमाणु दूने रहते हैं, बहुरि उत्पत्तिकालविषे वही सूक्ष्म परमाणु दूने तिगुने आदिक होइकरि स्थूलताको प्राप्त होते हैं, तिस पांचों तत्त्वोंते सृष्टि होती है अरु सांख्यमतवाले कहते हैं, प्रकृति मायाके परिणामते सृष्टि होती है, अरु चार्वाक पृथ्वी, जल, तेज, वायु चारों तत्त्वोंके इकट्ठे होनेकरि सृष्टि उपजती मानते हैं अरु चारों तत्त्वोंके शरीरको पुरुष मानते हैं, जब तत्त्व आपोआपविषे बिछुरि जाते हैं, तब प्रलय होता है अरु आर्हत और ही प्रकार मानते हैं, बौद्ध वैशेषिक आदिक और प्रकारकरि मानते हैं, पांचरात्रिक और प्रकार ही मानते हैं, परंतु सबहीका सिद्धांत एक ही ब्रह्म आत्मतत्त्व है, जैसे एक ही स्थानके अनेक मार्ग होवैं सो अनेक मार्गोंकरि वही स्थानको पहुँचता है, तैसे अनेक मतोंका अधिष्ठान आत्मसत्ता है अरु जो भिन्न भिन्न मत न मानिके वाद करते, हैं, सो आत्मतत्त्वके अज्ञानकरि करते हैं, सिद्धांत सबका एक है, तिसविषे वाद कोऊ नहीं प्रवेश करता. हे रामजी ! जेते कछु मतवाले हैं, सो अपने अपने मतकी ओर मानते हैं, दूसरेका अपमान करते हैं, जैसे मार्गके चलनेवाले अपने अपने मार्गकी उपमा करते हैं, दूसरेकी नहीं करते, तैसे मनके भिन्न भिन्न रूप करिकै अनेक प्रकार जगत्को कहते हैं, एक मनकी अनेक संज्ञा हुई हैं, जैसे एक पुरुषको अनेक प्रकारकरि कहते हैं, स्नान करनेते स्नानकर्त्ता, दान करनेते दानकर्त्ता, तप करनेते तपस्वी इत्यादि क्रियाकरिकै अनेक संज्ञा होती हैं, तैसे अनेक शक्ति मनकी कही हैं, अनेक नामकरि कहता है, मनहीका नाम जीव है, वासना भी मनहीका नाम है, कर्म भी तिसहीका नाम है. हे रामजी ! चित्तहीके फुरणेकरिकै संपूर्ण जगत् हुआ है अरु मनहीके फुरणेकरि भासता है, जब वह पुरुष चेत्यके फुरणेते रहित होता है, तब देखता है, तौ भी कछु नहीं देखता अरु यह प्रसिद्ध जानिये जिस पुरुषको शब्द,

स्पर्श, रूप, रस, गंध जो इंद्रियोंके विषय हैं,सो इष्ट अनिष्टविषे हर्ष शोक देते हैं, जो इष्ट सुखविषे हर्ष देते हैं, अनिष्ट दुःखविषे शोक होता है, तिसका नाम जीव है, मनहीकरि सिद्ध होता है, सब अर्थोंका कारण मन ही है, जो पुरुष चेत्यते छूटा है,सो मुक्तरूप है अरु जिसको चेत्यका संयोग है, सो बंधनमें बांधा है. हे रामजी ! जो पुरुष इस मनको केवल जड मानते हैं, तिनको अत्यंत जड जानना अरु जो पुरुष इस मनको केवल चेतन मानते हैं, सो भी जड हैं, यह मन केवल जड नहीं अरु केवल चेतन भी नहीं, जो एक ही मनका रूप होवै;तब सुखदुःख आदिक विचित्रता न चाहिये अरु जगत्की लीनता भी नहीं होती जो केवल चेतन ही रूप होवै तब जगत्का कारण नहीं होता अरुजो केवल जडरूप होवै तब भी जगत्का कारण नहीं होता; काहेते कि, केवल जड पाषाणरूप होता है, सो पाषाणते कछु क्रिया नहीं उत्पन्न होती, तैसे केवल जड जगत्का कारण नहीं होता, अरु मन केवल चेतन भी नहीं,केवल चेतन आत्मा है, तिसविषे कर्तृत्व आदि कल्पना नहीं होती, ताते मन केवल चेतन भी नहीं अरु केवल जड भी नहीं चेतन अरु जडके मध्य भावमें सोई जगत्का कारण है. हे रामजी ! सब अर्थोंका कारण मन है, जैसे प्रकाश पदार्थोंका कारण है, जबलग चित्त है, तब लग चेत्य भासता है; जब चित्त अचित्त होवै, तब सर्व भूतजाल लीन होजाता है, जैसे एक ही जल रसकरिके अनेक रूप होइ भासता है;तैसे एक ही मन अनेक पदार्थरूप होइकरि भासता है अरु अनेक संज्ञा इसको शास्त्रोंके मतवालोंने कल्पी हैं. सबका कारण मन ही है अरु मन भी परमदेव परमात्मा सर्वशक्तिकी एक शक्ति है, तिस परमात्माते यह फुरी है,जडभाव फुरि बहुरि तिसहीविषे लीनहोती है;जैसे ववोहा आप ही सों तंतुको पसारता है, बहुरि आपविषे लीन करिलेता है, तैसे परमात्माते जडभाव उपजता है. हे रामजी ! नित्य शुद्ध बोधरूप ब्रह्म है, सोई जब प्रकृतभावको प्राप्त होता है, तब अविद्याके वशते नानाप्रकारके जगत्को धारता है; तिसहीके सर्व पर्याय हैं. जीव, मन, चित्त,बुद्धि,अहंकार इत्या-

दिक संज्ञा मलिनचित्तकी होती हैं, तिनकी संख्या भिन्न भिन्न वादीने कल्पी है, हमको संख्यासाथ क्या प्रयोजन है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मनःसंज्ञाविचारो नाम षण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥

सप्तनवतितमः सर्गः ९७.

चित्ताकाशमाहात्म्यवर्णनम् ।

राम उवाच–हे भगवन् ! यह सब जगत् आडंबर मनहीने रचा है, सब मनरूप है, अरु मन ही कर्मरूप है, यह तुम्हारे कहनेकरि मैंने निश्चय किया है, परंतु इसका अनुभव कैसे होवे ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह मन भावनामात्र है, जैसे प्रचंड सूर्यका धूप होता है, सो मरुस्थलविषे जल होय भासता है, तैसे आत्माका आभासरूप मन होता है, तिस मनकरि जेता कछु जगत् भासता है, सो सब मनरूप है, कहूँ मनुष्यरूप होइकरि भासता है, कहूँ देवता होइके भासता है, कहूँ दैत्य, कहूँ यक्ष, कहूँ गंधर्वरूप भया है, नागपुर पत्तन आदिक जेते कछु रूप भासते हैं, सो सब ही मनकरि विस्तारको प्राप्त भये हैं, सो कैसे हैं ? तृण अरु काष्ठके तुल्य हैं, तिनके विचारनेकरि क्या है, यह सब मनकी रचना है सो मन अविचारसिद्ध है विचार कियेते नष्ट होजाता है, मनके नष्ट हुएते परमात्मा ही शेष रहता है, सो साक्षीभूत सर्वपदते अतीत है अरु सर्वव्यापी सर्वका आश्रयभूत है, तिसके प्रमादकरिकै मन जगत्को रचनेको समर्थ होता है, इस कारणते कहा है, कि मन अरु कर्म एकरूप हैं अरु शरीरोंका कारण है. हे रामजी ! जन्म मरण आदिक जेते कछु विकार हैं सो मनकरिकै भासते हैं अरु मन अविचारसिद्ध है; विचार कियेते लीन होजाता है, जब मन लीन हुआ तब कर्म आदिक भ्रम भी सब नष्ट होजाता है जो इस भ्रमते छूटा सो मुक्त है, सो पुरुष बहुरि जन्म अरु मरणविषे नहीं आता,

सब भ्रम उसका नष्ट होजाता है. राम उवाच-हे भगवन्! तीन प्रकारके सात्त्विकी राजसी तामसी जीव तुमने कहे, तिनका कारण प्रथम सत्य असत्यरूपी मन कहा, सो मन अशुद्धरूप शुद्ध चिन्मात्र तत्त्वते उपजत भया अरु उपजिकारि बडे विस्ताररूपी विचित्र जगत्को कैसे प्राप्त भया? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! आकाश तीन हैं, एक चिदाकाश है अरु एक चित्ताकाश है, तीसरा भूताकाश है, सो आकाश भावकरिकै समानरूप है अरु अपनी अपनी सत्ता हुई है चिदाकाश चित्ताकाशकरि नित्य उपलब्धरूप है, चेतनमात्र सबके अंतर बाहिर स्थित है अरु अनुमातारूप है, बोधरूप है, सर्व भूतोंविषे सम व्यापी है सो चिदाकाश है अरु जो भूतोंका कारणरूप है अरु आप जिसने विस्तारा है सो चित्ताकाश कहाता है अरु दश दिशाको विस्तारिकरि जिसका वपु परिच्छेदको नहीं प्राप्त होता अरु शून्य है स्वरूप जिसका अरु पवनआदिक भूतोंका आश्रयभूत है, सो भूताकाश कहाता है. हे रामजी! चित्ताकाश अरु भूताकाश ये दोनों चिदाकाशते उपजे हैं अरु सर्वका कारण हैं, जैसे दिनकरि सब कार्य होते हैं, तैसे चित्तकरि सब पदार्थ प्रगट होते हैं, सो चित्त जड भी नहीं अरु चेतन भी नहीं. आकाश भी तिसते उपजता है. हे रामजी! तीन आकाश भी अप्रबोधके विषय हैं ज्ञानीका विषय नहीं अरु ज्ञानवान् तीन आकाश कहते हैं, सो अज्ञानीको उपदेश जतावनेके निमित्त कहते हैं, ज्ञानवान्को एक परब्रह्म पूर्ण सर्व कल्पनाते रहित भासता है, द्वैत अरु अद्वैत शब्द भी उपदेशके निमित्त कहते हैं, प्रबोधका विषय कोई नहीं. हे रामजी! जबलग प्रबोध आत्मा नहीं भया, तबलग मैं तीन आकाश कहता हौं, वास्तवते कल्पना कोऊ नहीं, जैसे दावाग्नि लगेते वन जल जाता है, सो शून्य जैसा भासता है, तैसे ज्ञानाग्निकरि जले हुए चित्ताकाश अरु भूताकाश चिदाकाशविषे शून्य कल्पना भासती है, सो फुरणेद्वारा भासती है, मलिन चेतन जो चेत्यताको प्राप्त होता है, इसकरि यह जगत् भासता है, जैसे इंद्रजालकी बाजी होती है, तैसे यह जगत् है, बोधहीनको यह जगत् भासता है, जैसे असम्यग्दर्शीको सीपीविषे रूपा भासता है, तैसे

अज्ञानीको जगत् भासता है, आत्मतत्त्व नहीं भासता; जब दृश्यभ्रम नष्ट होजावे, तब मुक्तरूप होवै.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्ताकाशमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

अष्टनवतितमः सर्गः ९८.

चित्तोपाख्यानवर्णनम्

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह जो कछु उपजा है, सो तू चित्तते उपजा जान, सो जैसे उपजा तैसे उपजा, अब तू इसके निवृत्तिवास्ते यत्न करिकै आत्मपदविषे चित्तको जोड़, तब यह जगद्भ्रम नष्ट होजावेगा. हे रामजी ! यह इस चित्तऊपर एक चित्ताख्यान हुआ है सो श्रवण करु, जैसे मैंने देखा है, तैसे तुझको कहता हौं, एक महाशून्य वन था, तिसके कोऊ कोणविषे यह आकाश स्थित है, तिस उजाडविषे मैं एक पुरुष देखत भया, सो कैसा था, कि सहस्र जिसके कर अरु लोचन थे अरु चंचलरूप अरु व्याकुलरूप अरु बडा आकार जिसका अरु सहस्र ही भुजाके साथ अपने शरीरको ताडना करै (मारै) बहुरि आप ही कष्टमान होइकरि भागै, तब बहुतेरे योजनोंपर चला जावै अरु दौड़ता दौड़ता थक पड़ै अंग चूर्ण होजावैं, एक कृष्ण रात्रिकी नाइं भयानकरूप कूपविषे जाय पडे, जब केताक काल व्यतीत होवै, तब वहांते निकसिकरि करजूवेके वनविषे जाय पडे, तहां कंटक चूभै तब कष्ट पावै, जैसे पतंग दीपकको सुखरूप जानिकै तिसविषे प्रवेश करै अरु नाश पावै, तैसे वह जहां सुखरूप जानिकै तिसविषे प्रवेश करै तहां ही कष्ट पावै; बहुरि करजूवेके वनविषे जाय पड़े, बहुरि निकसिकरि आपको हाथोंकरि प्रहार करै, तब तिसकरि कष्टमान होवै; बहुरि दौड़ता दौड़ता अन्धे कूपविषे जाय पड़े वहांते निकसिकरि कदलीके वनविषे जाय प्रवेश करै, तिसते निकसिकरि बहुरि आपको प्रहार करने लगै, जब कदलीवनविषे जावै, तब कछुक शांतिमान् होवै,

अरु प्रसन्नताको प्राप्त होवै, बहुरि दौड़े, आपको प्रहार करै कष्टमान होइकै दूरते दूर जाय पड़, इसी प्रकार अपना किया आप ही कष्ट भोगै, इस प्रकार भटकता फिरै, तब मैं उसको पकडिकरिकै पूँछत भया, अरे तू कौन है? अरु क्या करता है? अरु किस निमित्त करता है? अरु तेरा नाम क्या है? अरु यहां क्यों मिथ्या जगत्‌विषे मोहको प्राप्त हुआ है? हे रामजी! जब इस प्रकार मैंने पूछा, तब वह मुझको कहत भया, कि, न मैं कछु हौं, न कछु यह है, न मैं कछु करता हौं अरु तू तौ मेरा शत्रु है, तेरे देखनेकारि मैं नाशको प्राप्त होता हौं, इस प्रकार वह कहिकारि अपने अंगोंको देखत भया, देखै अरु रुदन करै क्षणविषे उसका वपु नाश होनेलगा, मेरे देखते देखते वह पुरुष अपने अंगोको त्यागत भया, प्रथम उसका शीश गिर पड़ा, बहुरि भुजा गिर पडीं, बहुरि वक्षस्थल, बहुरि उदर इस प्रकार क्रमकरिकै वह पुरुष अपने शरीरको त्यागत भया, जैसे स्वप्नते जागे स्वप्नका शरीर नष्ट होता है, तब मैं नीतिशक्तिको विचारकरिकै आगे गया, तब और एक पुरुष मैंने देखा, सो भी इसी प्रकार आपको आप ही प्रहार करै अरु कष्टमान होयके दौडै, जाइकारि एक कूपविषे गिर पडे, वहांते निकसिकरि बहुरि प्रहार करै, बहुरि वनविषे जावै, कहूं करजूवेके वनविषे कबहूँ कदलीके वनविषे जावै, जब कदलीवनविषे जावै, तब पुष्ट होवै अरु हर्षको प्राप्त होवै, जब वहांते निकसै तब बहुरि आपको प्रहार करै, बहुरि दौडे करजूवे कदली आदिक वनोंविषे जाय पडै, तब उसने मुझको देखा, देखिकै प्रसन्न भया अरु बडे हर्षको प्राप्त भया अरु हँसा तब तिसको रोकिकै मैंने इसी प्रकार पूँछा, जब मैंने पूछा तब वह भी मेरे देखते देखते अपने अंगोंको त्यागत भया, त्यागते कष्टमान् हुआ अरु हर्षमान भी हुआ, उसको देखिकारि मैं बहुरि आगे गया, तब और एक पुरुष देखा, वह भी इस प्रकार करता है, अपने हाथोंसे आपको प्रहार करै, बडे अंधकूपविषे जाय पड़े. हे रामजी! चिरकालपर्यंत मैं उसको देखत भया, जब कूपते निकसा तब मैं उसपर प्रसन्न होकरि उससों पूछत भया, जैसे उसे पूछा था, तब वह मूर्ख मुझको न जानिकै दूरते

त्यागि गया और जो कछु अपना व्यवहार था, तिसविषे जाइ लगा, तिसके अनंतर चिरकालपर्यंत मैं उस वनविषे विचरता रहा, तब उसी प्रकार मैं बहुरि पुरुष देखता रहा, जो आप ही आपका नाश करै, जिसको मैं पूछौं अरु वह मेरे पास आवै, तिसको मैं कष्टते छुडाय देऊं, अरु आनंदको प्राप्त करौं अरु मेरे निकट ही न आवै मुझको त्यागि जावै, उस अटवीविषे तिसका वही हाल होवै अरु व्यवहार करे. हे रामजी ! वह अटवी तुमने भी देखी है परंतु तुमने वह व्यवहार नहीं किया और उस अटवीविषे तू जाने योग्य भी नहीं. तू बालक है अरु वह अटवी महाभयानक है, तिसको प्राप्त हुए कष्टते कष्टको प्राप्त होता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठ उत्पत्तिप्रकरणे चित्तोपाख्यानं नामा-
ष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

नवनवतितमः सर्गः ९९.

चित्तोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

राम उवाच-हे ब्राह्मण ! वह कौन अटवी है अरु मैंने कब देखी है, अरु वे कौन हैं अरु वे पुरुष अपने नाशके निमित्त क्यों उद्यम करते थे सो कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! वह अटवी दूर नहीं अरु वे पुरुष भी दूर नहीं, यह जो गंभीर बडा आकाररूप संसार है, सो अटवी है, कैसी अटवी है, जो शून्य है अरु विकारोंकरि पूर्ण है अरु यह अटवी भी आत्माकरि सिद्ध होती है अरु तिसविषे जो पुरुष रहते हैं सो सब मन हैं, दुःखरूपी चेष्टा करते हैं अरु विवेक ज्ञानरूपी जो मैं था सो उनको पकडता था, जो मेरे निकट आते थे, सो मेरे प्रकाशकरिकै प्रफुल्लित होते थे, जैसे सूर्यके प्रकाशकरिकै सूर्यमुखी कमल खिल आते हैं, तैसे मेरे प्रबोधकरिकै वह महामति हुए अरु वह चित्तते उपशम हुए वे परमपदको प्राप्त हुए अरु जो मेरे निकट न आये और अविवेककरिकै मोदे हुए मेरा निरादर करत भये, सो मोहकष्टहीविषे रहे, तब तिनके अंग

अरु प्रहार अरु कूप अरु करजुवे अरु केलेके वनका उपमान सुन, हे रामजी! जेती कछु विषयअभिलाषा हैं, सो तिस मनके अंग हैं, अरु हाथोंकरि प्रहार करना यह है, जो सकाम कर्म करते हैं, तिनकरि फटे हुए दूरते दूर दौडते हैं, सो मृतक होते हैं,सोई अंधकूपविषे गिरते हैं; सो विवेकका त्याग करना यही है, इस प्रकार वे पुरुष आपसोंकरि आपही प्रहार करते भटकते फिरते हैं अरु अभिलाषारूपी सहस्र अंगीकार वावरे हुए मृतक होकरि नरकरूपी कूपविषे पडे हुए जब बाह्य निकसे तब पुण्यकर्मोंकरि स्वर्गविषे जाइ प्राप्त होवैं, सोई कदलीके वनसमान है, तहां कछुक सुख पावैं, तिसते जब निकसै तब करजुवेके वनविषे पडैं, स्त्री पुत्र कलत्र आदिक जो कुटुम्ब है, सो करजुवेके वन हैं अरु करजुवेसाथ कंटक होते हैं सो पुत्र धन अरु लोकोंकी कामना करते हैं तिनकरि पडे कष्ट पाते हैं,जब महापापकर्म करते हैं, तब नरकरूपी अंधकूपविषे पडते हैं अरु पुण्यकर्म करते हैं तब कदलीवनकी नाईं स्वर्गको प्राप्त होते हैं तब कछुक उल्लासको प्राप्त होते हैं. हे रामजी ! गृहस्थाश्रम महादुःखरूप है; करजुवेके वनकी नाईं है, यह मनुष्य ऐसे मूर्ख हैं, जो अपने नाशके निमित्त ही यत्न करते हैं बहुरि वही दुःखरूप कर्म करते हैं अरु जो तिनविषे विहित करिकै विवेकके निकट आते हैं सो शुभ अशुभ कर्मोंके बंधनतें मुक्त होइकरि परमपदको प्राप्त होते हैं अरु जो विवेकसाथ हित नहीं करते, सो दूरतें दूर भटकते हैं. हे रामजी ! जो पुरुष भोग भोगनेके निमित्त यत्न करते हैं, तप आदिक पुण्यकर्म करते हैं,सो उत्तम शरीरको धारिकै स्वर्गसुख भोगते हैं अरु वह जो मुझको देखिकै मनरूपी पुरुष कहता था, जो तू हमारा शत्रु है, तुझकरि हम नष्ट होते हैं अरु रुदन करते थे, सो विषय भोग त्यागनेके निमित्त मूर्ख चित्त कष्ट पाता है, मूर्खकी प्रीति विषयविषे होती है, तिसके त्यागनेते कष्टमान होते हैं अरु विवेकको देखिकै रुदन करने लगते हैं; काहेते कि अर्धप्रबुद्ध हैं; जिनको परमपदकी प्राप्ति नहीं भई सो भोगोंको त्यागते कष्टमान होते हैं अरु रुदन करते हैं अरु जब अज्ञानको मूर्ख चित्त अर्धप्रबोध अभिलाषारूपी अंगोंको तपायमान न हुआ त्यागता है अरु विवेकको प्राप्त होता है, तब

परम तुष्टमान हुआ हँसने लगता है, ताते विवेकको प्राप्त होइकरि संसारकी वासनाको त्यागौ तब आनंदमान होहुगे, पूर्वका स्वभाव अरु नीच चेष्टाको त्यागिकरि हँसता है कि, मैं मिथ्या चेष्टा करता था, चिरकालपर्यंत मूर्खता करिके कष्ट पाता रहा. हे रामजी! इस प्रकार विवेकको प्राप्त होइकरि चित्त परमपदविषे विश्राम पाता है, तब पूर्वकी दीन चेष्टाको स्मरण करिकै हँसता है. हे रामजी ! जब मैं उस मनरूपी पुरुषको रोकिकरि पूछता था अरु वह अपने अंगोंको त्यागता जाता था, सो भी सुन; मैं विवेकरूप हौं, जब उस चित्तरूपी पुरुषको मिला, तब उसके सहस्र कर अरु लोचनरूपी अभिलाषाका त्याग भया अरु अपने प्रहार करनेतें भी रहगया अरु उसका शीश जो प्रथम गिरपडा, सो परिच्छिन्न देह अभिमानी जो अहंकार है, सोई शीश था; जब वह गिर पडा, तब दुर्वासनारूपी अंगोंको त्यागत भया, तिनको त्यागिकरि आप भी नष्ट होगया, सो अहंकार अपनी निर्वाणताको देखत भया, अर्थ यह जो परमब्रह्मविषे लीन होगया. हे रामजी ! इस पुरुषको बंधनका कारण वासना है, जैसे बालक विचारते रहित चंचलरूपी चेष्टा करता है, सो कष्ट पाता है, अग्निविषे हाथ डारै गढेविषे गिर पडै; अथवा और कोऊ कार्य ऐसा करै अरु जैसे घुराणकीट आप ही अपने बैठनेकी गुफा बनाइके फँस मरती है, तैसे यह पुरुष अपनी वासनाकरि आपही बंधनमें पडता है, जैसे मर्कट लकडीविषे हाथ डारिकै कीलीको काढने लगता है, लीला करता है, तब उसका हाथ फँस पडता है, बहुरि कष्ट पाता है, तैसे अज्ञानीको अपनी चेष्टा ही बंधन करती है, काहेते जो विचारविना करता है. ताते हे रामजी ! इस चित्तसाथ शास्त्र अरु संतोंके गुणोंकरि चिरपर्यंत चलौ,जो कछु शास्त्रविषे अर्थ प्रतिपाद्य है, तिसकी दृढभावना करौ, जब अभ्यासकरि तेरा चित्त स्वस्थ होवैगा, तब मुझको शोक कोऊ न होवैगा. हे रामजी ! जब चित्त आत्मपदविषे स्थित होवैगा तब राग अरु द्वेषकरि चलायमान न होवैगा अरु जो कछु देहादिक साथ प्रच्छन्न अहंकार है, सो नष्ट होवैगा, जैसे सूर्य उदय हुए बर्फ गलि जाता है, तैसे तुच्छ अहंकार नष्ट होजावैगा, अरु सर्व आत्मा ही भासैगा.

हे रामजी! जबलग इसको आत्मज्ञान नहीं प्राप्त भया, तबलग शास्त्रके अनुसार अनिंदित आचारविषे विचारे अरु शास्त्रके अर्थविषे अभ्यास करे अरु मनको रागद्वेषादिकते मौन करे, तब पाछे पाने योग्य अजन्मा शुद्ध शांतरूप पदको प्राप्त होवैगा; तब सर्व शोकको तरैगा, शांतरूप होवैगा. हे रामजी! जबलग आत्मतत्त्वका प्रमाद है, तबलग अनेक दुःख वृद्ध होते जाते हैं; शांति नहीं होती अरु जब आत्मपदकी प्राप्ति हुई, तब सब दुःख नष्ट होजाते हैं.

इति श्रीयोवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तोपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम नवनवतितमः सर्गः ॥ ९९ ॥

शततमः सर्गः १००.

चित्तचिकित्सावर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! यह चित्त परब्रह्मते उपजा है, सो आत्मरूप है और आत्मरूप नहीं, जैसे समुद्रते तरंग होते हैं, सो तन्मय भी हैं अरु भिन्न भी हैं, तैसे चित्त है, जो ज्ञानवान् हैं, तिनको चित्त ब्रह्मरूप ही है, इतर कछु नहीं, जैसे जिसको जलका ज्ञान है, तिसको तरंग भी जलरूप भासता है अरु जो ज्ञानते रहित हैं, जिनको मन संसारभ्रमका कारण है, जैसे जिसको जलका ज्ञान नहीं, तिसको भिन्न भिन्न तरंग भासते हैं, तैसे जो अज्ञानी हैं, तिनको भिन्न भिन्न जगत् भासता है अरु ज्ञानवान्को केवल ब्रह्मसत्ता ही भासती है. हे रामजी! जो ज्ञानवान् भेद कल्पते हैं, सो अज्ञानीको उपदेशनिमित्त भेद कल्पते हैं, अपनी दृष्टिविषे उनको सर्व ब्रह्म ही भासता है अरु मन आदिक भी तुझको भासते हैं, सो ब्रह्मसों भिन्न नहीं अनन्यरूप हैं, शक्तिरूप हैं, तिसते अन्य कोऊ पदार्थ नहीं, सर्वशक्त परब्रह्म है, सो नित्य है अरु सब ओरते पूर्ण है अविनाशी है तिसते अन्य कोऊ पदार्थ नहीं, सब ही ब्रह्मसत्ताविषे है, सर्वशक्तिमान् आत्मा है, जैसे उसको रुचती है, सोई शक्ति प्रत्यक्ष होती है, सर्व शक्तिरूप होइकरि पसरा है,

चेतनशक्ति जीवोंविषे ज्ञानरूपकरिकै प्रत्यक्ष है, वायुविषे स्पंदशक्ति वही है, पत्थरविषे जडशक्ति है, जलविषे द्रवताशक्ति, अग्निविषे तेज-शक्ति अरु आकाशविषे शून्यशक्ति है; भावशक्ति स्वर्गविषे है, नाश शक्ति कालविषे है, शोकविषे शोकशक्ति है, मुदितोंविषे आनंदशक्ति है, वीरोंविषे वीरशक्ति है, सर्गके उपजानेविषे उत्पत्ति शक्ति वही है, कल्पके अंतविषे सर्वका नाशक वही है,नाशविषे नाशशक्ति उसकी है,इसते आदि लेकरि जेती कछु भाव अभाव पदार्थ शक्ति है, सो सब ब्रह्मकी शक्ति है, जैसे फूल, फल, वेली, पत्र, शाखा, वृक्ष, जेता कछु विस्तार है, सो बीजके अंतर्भाव होता है, तैसे सब जगत् ब्रह्मविषे स्थित होता है, जीव, चित्त अरु मन आदिक भी ब्रह्महीविषे ब्रह्मस्थित हैं, जैसे नानाप्रकारके पत्र, फूल, फल, बीजके अंतर स्थित होते हैं, तैसे सब ब्रह्मविषे स्थित हैं. हे रामजी ! जैसे वसंतऋतुकरिकै एक ही रस नानाप्रकारके फूल, फल,टास; बहुत रूपोंको धारता है, तैसे एक ही आकाश ब्रह्मचैतन्यताकरि जगत्रूप होइ भासता है, तिसविषे और देश काल आदिक विचित्रिता कोई नहीं, संपूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूप है, सो ब्रह्म आत्मा सर्वज्ञ है,नित्य उदितरूप हैं, बृहद्रूप है, अर्थ सबते बडा है, वपु जिसका. हे रामचंद्रजी! तिसविषे कछु मननकलना होती है, तब तिसको मन कहते हैं, जैसे आकाशविषे आँख-सों तरवरे भासते हैं,जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है, तैसे आत्मा-विषे मन है. हे रामजी ! ब्रह्मविषे जो चित्त होता है, सो मनका रूप है, तैसे मन ब्रह्मकी शक्तिरूप है, इसी कारण ब्रह्मते इतर कछु नहीं, ब्रह्म ही है, ब्रह्मते इतर कछु कल्पना करनी अज्ञान है, ब्रह्मविषे मैं ऐसा उत्थान होता है, इसका नाम मन है, जड अजडरूप मनते आगे जगत् हुआ, मनहीके आगे प्रतियोगी व्यवच्छेदक संख्यारूप यह सब मनके कल्पे हैं, प्रतियोगी व्यवच्छेद संख्या इनका भेद यह है, प्रतियोगी कहिये,जैसे चेत-नका प्रतियोगी जड अरु व्यवच्छेदक कहिये, जैसे घटाच्छिन्न पटा-च्छिन्न इत्यादिक संज्ञा कहिये, अनेकरूप जो दृश्य है, सो सब मनके कल्पे हैं जैसे जैसे ब्रह्मविषे दृढ मन होता है,तैसे तैसे भासता है; इंद्र ब्राह्मण के पुत्रोंकी नाईं, जैसे समुद्रविषे द्रवता करिकै तरंगचक्र होइ भासते हैं, तैसे

शुद्ध चिन्मात्रविषे जीव फुरणेकरिकै नानाप्रकारका जगत् होइ भासता है, परंतु कछु हुआ नहीं, ब्रह्म ही अपने आपविषे स्थित है, जैसे तरंगोंके होने अरु मिटनेविषे जल एक ही रस है, तैसे जगत्के उपजने अरु मिटनेविषे ब्रह्म ज्योंका त्यों है, जैसे सूर्यकी किरणोंमें दृढ तेजकरिकै जल हो भासता है, तैसे आत्मतत्त्वविषे विचित्रता भासती है, परंतु सदा अपने आपविषे स्थित है. हे रामजी! कारण कर्म कर्त्ता जन्म मरणादिक जेते कछु भासते हैं सो सब ब्रह्मरूप हैं ब्रह्मते इतर कछु नहीं अरु आत्मा शुद्धरूप है, तिसविषे न लोभ है न मोह है, न तृष्णा है, काहेते कि अद्वैतरूप है अरु सर्वात्मा है जैसे सुवर्णते नानाप्रकारके भूषण हो भासत हैं, तैसे ब्रह्मते जगत् हो भासता है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं तिनको सदा ऐसे ही भासता है अरु जो अज्ञानी हैं, तिनको भिन्न भिन्न कल्पना भासती है, जैसे किसीका बांधव होवै अरु दूरते दूर देशते चिरकाल पाछे आवै. तब देशकालके व्यवधानकरि बांधवको अबांधव जानता है तैसे अज्ञानके व्यवधानकरिकै अभिन्नरूप आत्माको भिन्नरूप जानता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि भासता है तैसे सत्य असत्यरूप मन आत्माविषे भासता है, तिस मनने शब्द अर्थरूप भिन्न भिन्न कल्पना रची हैं अरु आत्मतत्त्व सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे बंध मोक्ष कल्पनाका अभाव है. राम उवाच–हे भगवन्! जो मनविषे निश्चय होता है सोई होता है, अन्यथा नहीं होता अरु मनविषे बंधका निश्चय होता है, सो बंध कैसे सत्य है? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! बंधकी कल्पना मूर्ख करते हैं, ताते मिथ्या है, जो बंधकी कल्पना मिथ्या भई, तौ बंधकी अपेक्षाकरि जो मोक्ष है सो भी मिथ्या है, ताते बंधमोक्षकी कल्पना मूर्ख मिथ्या करते हैं वास्तवते न बंध है, न मोक्ष है. हे महामति रामजी! अज्ञानकरिकै अवस्तु भी वस्तुरूप होइ भासती है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है अरु ज्ञानवान्को अवस्तु सत्य नहीं भासती, जैसे जेवरीके ज्ञानते सर्प नहीं भासता, ताते बंध मोक्ष कलना मूर्खोंको भासती है, ज्ञानवान्को बंध मोक्ष कलना कोई नहीं भासती. हे रामजी! आदि परमात्माते मन उपजा, तिस मनने बंध अरु मोहकरि कल्पा है, बहुरि दृश्यप्रपंचको रचा है, सोई प्रपंच कल्प-

नामात्र है, बालककी कथावत् मूर्खोंको रुचती है, अर्थ यह जो विचारते रहित हैं, तिनको यह जगत् सत्य भासता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तचिकित्सावर्णनं नाम शततमः सर्गः ॥ १०० ॥

एकोत्तरशततमः सर्गः १०१.

बालकाख्यायिकावर्णनम्।

राम उवाच–हे मुनिश्रेष्ठ ! बालककी कथा क्या है, सो क्रमकरिकै मुझको कहो. वसिष्ठ उवाच–हे रामचंद्र ! एक मूर्ख बालक था, सो धात्री जो दाई, तिससों पूछता भया कि, कोई अपूर्व कथा कह; जो तुझको आती है, जो आगे न हुई होवै. सो मुझको कह. हे रामजी ! जब इस प्रकार कहा, तब तिसके विनोदनिमित्त महाबुद्धिमती धात्री कथा कहत भई. धात्र्युवाच–हे पुत्र ! सुन. एक बडा शून्य नगर था, तिसका एक राजा था, तिस राजाके तीन पुत्र थे, सो पुत्र शुभ आचारवान् थे अरु बडे सुंदर तेजवान् थे, जैसे आकाशविषे तारे हैं, तैसे सुंदर तेजवान् थे, सो दोऊ तौ उपजे न थे अरु एक गर्भविषे आया न था, सो तीनों शुभ आचारवान् शुभ क्रियाकर्त्ता द्रव्यके अर्थ जीतनेको चले, शून्य नगरते बाहिर निकसे निर्मार्गरूप तिसके नगर थे, निर्बुद्ध अरु शोकसहित इकट्ठे जावैं, जैसे बुध शुक्र अरु शनैश्चर इकट्ठे चले. तैसे चलैं अर्थ यह कि, इकट्ठे चलनेका दृष्टांत शुक्र शनैश्चर अरु बुधका नहीं है; निर्बुद्ध अरु शोकका ग्रहणरूप दृष्टांत है अरु सरसोंके फूलकी नाईं तिनके अंग कोमल थे; सो मार्गमें थके, ऊपरते सूर्यकी धूप तपै, जैसे ज्येष्ठ आषाढके धूपकरि कमल कुँभलाइ जाते हैं, तैसे कुँभलाइ गये अरु तप्त चरण करि तपने लगे; महाशोकको प्राप्त हुए, चरणोंविषे डाभके कंटक लगे अरु मुख धूलकरि धूसर होगया तीनों कष्टमान होयके आये, आगे तीन वृक्ष देखे सो कैसे वृक्ष हैं, जो दो तौ उपजे नहीं अरु तीसरेका बीज भी नहीं बोया, सो तीनों

एक एक वृक्षके नीचे आइकरि विश्राम करते भये, जैसे कल्पवृक्षके नीचे स्वर्गविषे इंद्र अरु यम आइ बैठैं, तैसे आइ बैठे अरु तिनके फल भक्षण किये अरु फलोंका रस काटिकै पान किया अरु तिन्होंके फूलोंकी माला गलेविषे पहरी अरु चिरकालपर्यंत तहां विश्राम किया, बहुरि चले, दूरते दूर गये, ऊपर मध्याह्नका समय हुआ, तिसकरि तपायमान हुए तब आगे तीन नदियां देखीं, तिनके निकट गये, तरंगोंकारि लीलायमान हैं, और दोनोंविषे जल कछु नहीं, अरु तीसरी सूखी पडी है, तिसविषे चिरकालपर्यंत क्रीडा करते भये, जैसे स्वर्गकी गंगाविषे ब्रह्मा, विष्णु अरु रुद्र कल्लोल करते हैं, तैसे तिसविषे कल्लोल करैं अरु जलपान करैं जब दिन अस्त होने लगा तब वहांते चले, एक भविष्यत् नगरको देखत भये, बडी ध्वजाकरिकै संपन्न अरु रत्न मणि सुवर्णकरिकै जडी है, मानों सुमेरुका शिखर है, तिसविषे हीरा मणिकरिकै जडा एक मंदिर देखा; कैसा मंदिर जो निर्भयरूप, अर्थ यह जो निराकाररूप है, तिसविषे जाय प्रवेश किया, तहां बहुत अंगना हैं तिस मंदिरविषे जायकरि विचारत भये, कि रसोई करिये, अरु ब्राह्मणोंको भोजन खवाइये, तब कंचनकी तीन बटलोइयां मँगाईं, सो कैसी कि, दोका करनेवाला उपजा नहीं, अर्थ यह कि आधारते रहितरूप अरु तीसरी चूर्णरूप, तिंस चूर्णरूप बटलोईविषे तिन्होंने षोडश सेर रसोई चढाई अरु ब्राह्मण अरु आप जो कछु विदेहरूप देहहीन थे, तिन्होंने अरु निर्मुख ऋषियोंने भोजन किया, तिसकारि सैकडों ब्राह्मणोंको भोजन कराये, आप भी भोजन करत भये, अर्थ यह जो षोडश सेरका एक द्रोण होता है, तीनोंने चावल रांधे, अर्थ यह कि साढे उनतालीस मन अरु चालीस सेर तिनका तोल होता है, तीनोंने साढे उनतालीस मन चार सेर घट रांधा, इस प्रकार वह तीन राजपुत्र आजपर्यंत सुखसाथ स्थित हैं. हे पुत्र! यह रमणीक कथा मैं तुझको अब सुनाई है, जब तू इसको हृदयविषे धारैगा, तब पंडित होवैगा. हे रामजी! इस प्रकार धात्रीने बालकको कथा सुनाई, तब बालकके मनविषे सांच आय गई, जैसे उस कथाका रूप संकलपते इतर कछु न था

तैसे यह जगत् है; सब संकल्पमात्र है, अज्ञानकरिकै हृदयविषे स्थिर हो रहा है, भ्रमकरिकै इसविषे आस्था भई है, बंध मोक्ष भी कल्पनामात्र है, संकल्पते इतर इसका स्वरूप कछु नहीं. हे रामजी ! शुद्ध आत्मा निष्किंचनरूप है, संकल्पके वशते किंचनरूप हो भासता है, पृथ्वी, वायु आकाशपर्यंत नदियां देश आदिक जो पंचभूतक सृष्टि है, सो सब संकल्पमात्र है; जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकार सृष्टि भासती है अरु है कछु नहीं, उपजी भी नहीं; तैसे यह जगत् जान. जैसे कल्पित राजपुत्र भविष्यत नगरविषे स्थित हुए,सो रचनासंकल्प बालकको स्थिरीभूत भया, तैसे यह जगत् संकल्पमात्र मनके फुरनेकरि दृढ भया है, जैसे द्रवताकरिकै जलते तरंग होते हैं, सो जल ही जलविषे है, तैसे आत्मा ही आत्माविषे स्थित है यह सब जगत् संकल्पकरि उपजा है अरु बडे विस्तारको प्राप्त भया है, जैसे दिनकरिकै व्यवहार विस्तारको प्राप्त होता है. तैसे संकल्पजालकरि उपजा जगत् विस्तारको प्राप्त होता है अरु चित्तका विलास है, चित्तके फुरनेकरिकै भासता है. ताते हे रामजी ! संकल्परूपी मैलको त्यागिकरि निर्विकल्प आत्मतत्त्वका आश्रय करो, जब तिस पदविषे स्थित होहुगे, तब परम शांतिकी प्राप्ति होवैगी ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे बालकाख्यायिकावर्णनं नामैकोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥

द्व्युत्तरशततमः सर्गः १०२.

मनोनिर्वाणोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जो मूढ अज्ञानी पुरुष है सो अपने संकल्पकरिकै आप ही मोहको प्राप्त होता है अरु जो पंडित है, सो मोहको नहीं प्राप्त होता; जैसे मूर्ख बालक अपने परछाईंविषे पिशाच कल्पिकरिकै भयको प्राप्त होता है, तैसे मूर्ख अपनी कल्पनाकरि दुःखी होता है. राम उवाच–हे भगवन् ! ब्रह्मवेत्ताविषे श्रेष्ठ, वह संकल्प क्या है अरु छाया क्या है, जो असत्य ही सत्यरूप, पिशाचकी नाईं

दीखता है ? वसिष्ठ उवाच- हे रामजी ! पांचभौतिक शरीर परछायेकी नाईं है, काहेते कि, अपनी कल्पनाकरि रचा है अरु अहंकाररूपी पिशाच है, जैसे मिथ्या परछायविषे पिशाचको देखिकै भयमान होता है, तैसे देहविषे अहंकारको देखिकै खेदको प्राप्त होता है. हे रामजी ! एक परमात्मा सर्वविषे स्थित है, तब अहंकार कैसे होवै, वास्तवते अहंकार कोई नहीं, परमात्मा ही अभेदरूप है तिसविषे अहंबुद्धि भ्रमकरिकै भासती है, जैसे मिथ्यादर्शीको मरुस्थलविषे जल भासता है, तैसे मिथ्या ज्ञानकरिकै अहंकारकल्पना होती है, जैसे मणिका प्रकाश मणिके ऊपर पडता है, सो मणिते इतर कछु नहीं मणिरूप है, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, सो आत्माहीविषे स्थित है, जैसे जलविषे द्रवताकरिकै चक्रतरंग होइ भासते हैं, सो जलरूप हैं, तैसे आत्माविषे चित्तकरिकै नानात्व होइ भासता है, सो आत्माते इतर कछु नहीं, असम्यक् दर्शन करिकै नानात्व भासता है ताते असम्यक् दृष्टिको त्यागिकै आनंदरूपका आश्रय करौ, मोहके आरंभको त्यागिकरि शुद्धबुद्धिसहित विचरौ; विचार करिकै सत्यको ग्रहण करौ. असत्यका त्याग करौ. हे रामजी ! तुम मोहका माहात्म्य देखो, जो देह स्थूलरूप नाशवंत है, तिसके रखनेका उपाय करता है, सो रहता नहीं, अरु जिस मनरूपी शरीरके नाश हुएते कल्याण होता है, तिसको पुष्ट करता है. हे रामजी ! सब मोहका आरंभ मिथ्याभ्रमकरिकै दृढ हुआ, अनंत आत्मतत्त्वविषे कल्पना कोऊ नहीं कौन किसको कहै? जेता कछु नानात्व भासता है सो है नहीं अरु जीव ब्रह्मसाथ अभिन्न है, तिस ब्रह्मतत्त्वके विषे कौन बंध कहिये ? अरु कौन मोक्ष कहिये ! वास्तवते न कोऊ बंध है, न मोक्ष है काहेते कि आत्मसत्ता अनंतरूप है. हे रामजी ! वास्तव कछु द्वैतकल्पना हुई नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे है जो आत्मतत्त्व अनंत है सोई अज्ञानकरिकै अन्यकी नाईं भासता है, जब अनात्मविषे आत्माभिमान करता है, तब परिच्छिन्न कल्पना होती है, तब शरीरको अच्छेदरूप जानिकै कष्टमान होता है, अरु आत्मपदविषे भेद अभेद विकार कोऊ नहीं काहेते कि, वह नित्य शुद्धबोध अविनाशी पुरुष है. हे रामजी ! आत्माविषे न कोई विकार है, न बंध

है, न मोक्ष है, काहेते कि, आत्मतत्त्व अनंतरूप निर्विकार अच्छेदरूप है, निराकार अद्वैतरूप है, तिसको बंधविकारकल्पना कैसी होवै ? हे रामजी! देहके नष्ट हुए आत्मा नष्ट नहीं होता, जैसे चमड़ीविषे आकाश होता है, सो चमडीके नाश हुएते आकाशका नाश न हीं होता; तैसे देहके नाश हुएते आत्माका नाश नहीं होता, जैसे फूलके नाश हुएते गंध आकाशविषे लीन होता है, जैसे कमलऊपर बर्फ पडता है, तब कमल नष्ट होजाता है, भ्रमर नाश नहीं होता, तैसे देहके नाश हुएते आत्माका नाश नहीं होता; जैसे मेघके नाश हुएते पवनका नाश नहीं होता. हे रामजी ! सबका शरीर मन है, सो मन आत्माकी शक्ति है, तिस मनविषे आगे यह शरीर आदिक जगत् रचा है, तिस मनका ज्ञानविना नाश नहीं होता, तौ बहुरि शरीर आदिक नष्ट हुएते आत्माका नाश कैसे हो ? हे रामजी ! शरीरके नष्ट हुएते तेरा नाश नहीं होता, तू क्यों मिथ्या शोकवान् होता है? तू तो नित्य शुद्ध ज्ञानरूप आत्मा है. हे रामजी ! मेघके क्षीण हुएते पवन क्षीण नहीं होता, कमलोंके सूखेते भ्रमर नष्ट नहीं होता, तैसे देहके नष्ट हुएते आत्मा नष्ट नहीं होता संसारविषे क्रीडाकर्त्ता जो मन है, तिसका भी संसारविषे नाश नहीं होता तौ आत्माका नाश कैसे होवै ? जैसे घटके नाश हुएते घटाकाशका नाश नहीं होता. हे रामजी ! जैसे जलका कुंड होता है; तिसविषे सूर्यका प्रतिबिंब पडता है, तिस कुंडके नाश हुएते प्रतिबिंबका नाश नहीं होता; तिस जलको और ठौर ले जाय तब प्रतिबिंब भी चलता भासता है, तैसे देहविषे जो आत्मा स्थित है, सो देहके चलनेते चलता भासता है जैसे घटके फूटेते घटाकाश महाकाशविषे स्थित होता है, तैसे देहके नाश हुएते आत्मा निरामय पदविषे स्थित होता है. हे रामजी ! सब जीवोंको देह मनरूपी है जब मृतक होता है, तब कोई काल मुहूर्तपर्यंत देश काल पदार्थका अभाव होजाता है, तिसके अनंतर बहुरि पदार्थ भासते हैं, तिस मूर्च्छाका नाम मृतक है और आत्माका नाश तौ नहीं होता, चित्तकी मूर्च्छाकरिकै देश काल पदार्थोंका अभाव होना इसीका नाम मृतक है. हे रामजी ! संसारभ्रमको रचनेहारा जो मन है, तिसका ज्ञान-

दर्ता: ९०३३

रूपी अग्निकरि नाश होता है; आत्मतत्त्वका नाश कैसे होवे? हे रामजी! देश काल वस्तुकरि मनका निश्चय विपर्ययभावको प्राप्त होता है, परंतु ज्ञानविना नष्ट नहीं होता अनेक यत्न करै. हे रामजी! जन्मकल्पित रूपका नाश नहीं होता;जगत्‌के पदार्थकरि आत्मसत्ताका नाश कैसे होवे तिस कारणते शोक किसीका नहीं करना.हे महाबाहो! तुम तौ नित्य शुद्ध अविनाशी पुरुष हौ,यह संकल्प वासनाकरिकै तेरेविषे जन्ममरण आदिक भासते हैं सो भ्रममात्र हैं; ताते इस वासनाको त्यागिकरिकै शुद्ध चिदाकाशविषे स्थित होहु; जैसे गरुडपक्षी अंडेको त्यागिकरिकै आकाशको उडता है, तैसे वासनाको त्यागिकरि तुम चिदाकाशविषे स्थित होहु. हे रामजी! शुद्ध आत्माविषे जो मनन फुरता है,सोई मन है, सो मननशक्ति इष्ट अनिष्टकरिकै इसको बंधनका कारण है, सो मन मिथ्या भ्रांतिकरिकै उदय हुआ है, जैसे स्वप्नद्रष्टा भ्रांतिमात्र होता है, तैसे जाग्रत सृष्टि भ्रांतिमात्र है.हे रामजी! यह जगत् अविद्याकरिकै बंधनमय है अरु दुःखका कारण है; सो अविद्याको तरना कठिन है, अविचार करिकै अविद्या सिद्ध है, विचार कियेते नष्ट होती है, तिस अविद्याने जगत्‌को विस्तारा है, यह जगत् बर्फकी कंद है, जब ज्ञानरूपी अग्निका तेज होवे तब निवृत्ति होजावैगी. हे रामजी! यह जगत् आकाशरूप है,अविद्या भ्रांति दृष्टिकरि आकार होइ भासता है.असत्य अविद्याकरिकै बडे विस्तारको प्राप्त होता है, दीर्घ स्वप्न है; विचार कियेते निवृत्त होजाता है. हे रामजी! यह जगत् भावनामात्र है,वास्तवते कछु उपजा नहीं,जैसे आकाशविषे भ्रांतिकरिकै मोरपुच्छकी नाईं तरुवरे भासते हैं, तैसे भ्रांतिकरिकै जगत् भासता है.जैसे बर्फकी शिला तप्त करिकै लीन होजाती है तैसेआत्मविचारते जगत् लीन होजाता है. जैसे बर्फकी शिला उष्णताविना शीतत्वभावको त्यागती नहीं, तैसे आत्मविचारते जगत् लीन होजाता है. हे रामजी! यह जगत् अविद्याकरिकै बँधा है,सो अनर्थका कारण है,जैसे जैसे चित्त फुरता है, तैसे तैसे होय भासता है, जैसे इंद्रजाली सुवर्णको वर्षा आदिक माया रचता है, तैसे चित्त जैसे फुरता है, तैसा होइके भासता है.जेती कछु चेष्टा आत्माके प्रमादकरिकै मन करता है,सो अपने नाशके

कारण होती है.जैसे घुराणकी चेष्टा अपने बंधनका कारण होती है, तैसे मनकी चेष्टा अपने नाशके निमित्त होती है,अरु जैसे नटवा अपनी क्रिया करिकै नाना प्रकारके रूपोंको धारता है,तैसे मनअपने संकल्पको विकल्प करिकै नानाप्रकारके भाव अभावरूपोंको धारता है,अरु जब चित्त अपने संकल्प विकल्पको त्यागिकरि आत्माकी ओर देखता है,तब चित्त नष्ट हो-जाता है,जबलग आत्माकी ओर नहीं देखता,तबलग जगत्को पसारता है सो दुःखका कारण होता है,हे रामजी!संकल्पमात्र होना इसविषे तौ यत्न कछु नहीं, संकल्प आवरणको दूर करौ, तब आत्मतत्त्व प्रकाशैगा. संक-ल्पविकल्प ही आत्मविषे आवरण हैं, जब दृश्यको त्यागौगे तब आत्म-बोध प्रकाशैगा. हे रामजी ! मनके नाशविषे बडा आनंद उदय होता है अरु मनके उदय हुएते बडा अनर्थ होता है, ताते मनके नाश करनेका यत्न करो, मनको बढावनेका यत्न मत करो.हे रामजी! मनरूपी किसा-नने जगत्रूपी वन रचा है; तिस वनविषे सुखदुःखरूपी वृक्ष है अरु मनरूपी सर्प तिसविषे रहता है, सो विवेकते रहित जो पुरुष हैं, तिनको भोजन करता है. हे रामजी ! यह मन परमदुःखका कारण है, ताते इस मनरूपी शत्रुको वैराग्य अरु अभ्यासरूपी खड्ग मारौ, तबसे आत्मपदको प्राप्त होहुगे. वाल्मीकिरुवाच–इस प्रकार जब वसिष्ठजीने कहा, तब सायंकालका समय हुआ, सब श्रोता परस्पर नमस्कार करिकै स्नानको गये बहुरि सूर्यकी किरणोंके उदय हुए अपने २ स्थान-पर आय बैठे.

इति श्रीयोगवासिष्ठ उत्पत्तिप्रकरणे मनोनिर्वाणोपदेशवर्णनं नाम द्व्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥

त्र्युत्तरशततमः सर्गः १०३.

चित्तमाहात्म्यवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह चित्त भी परमात्माते उठे हैं, जैसे समुद्रते लीलाकरिकै जलकणिका होती हैं, तैसे परमात्माते मन

हुआ है, बहुरि मनने जगत् रचा है, सो जगत् बडे विस्तारको प्राप्त हुआ है, छोटेको बडा करि लेता है अरु बडेको छोटा करता है, जो अपना आपरूप है, तिसको अन्यकी नाईं दिखावता है अरु जो अन्यरूप है, तिसको अपना रूप दिखाता है. अर्थ यह जो आत्माको अनात्मभाव प्राप्त करता है अरु अनात्माको आत्मभाव प्राप्त करता है, ऐसा जो भ्रांतिरूप मन है, सो निकट वस्तुको दूर देखता है अरु दूर वस्तुको निकट करि देखता है, जैसे निकट वस्तु स्वप्नविषे दूर होय भासती है अरु दूर वस्तु निकट होय भासती है. हे रामजी ! एक निमेषविषे मन संसारको उत्पन्न करता है अरु निमेषविषे लीन करि लेता है, जेता कछु स्थावर जंगमरूप जगत् भासता है, सो सब मनहीते उपजता है, देश काल क्रिया द्रव्य अनेक शक्तिविपर्ययरूप मन ही दिखाता है, अपने फुरणेकारिकै नानाप्रकारके भावअभावको मन ही प्राप्त होता है, जैसे नट लीला करिकै नानाप्रकारके स्वांगोंको प्राप्त होता है, साँचको असाँच अरु असाँचको साँच करि दिखाता है, तैसे मनविषे जैसा फुरना दृढ होता है, तैसे ही भासता है, जैसा जैसा निश्चय चंचल मनविषे होता है, तिनके अनुसार इंद्रिय भी विचरती हैं, अन्यथा नहीं विचरतीं. हे रामजी ! जो मनकरि चेष्टा होती है, सोई सफल होती है, शरीरकी करी चेष्टा मन विना सफल नहीं होती, जैसा जैसा वेलिका बीज होता है, तैसा ही उसका फल होता है और प्रकार नहीं होता, तैसे जो कछु मनविषे निश्चय होता है, सोई सफल होता है, जैसे बालक मृत्तिकाकी सेना बनाता है अरु नानाप्रकारके नाम रखता है, तैसे मन भी संकल्पकरिकै जगत्को रचि लेता है, जैसे माटीकी सेना माटीसों भिन्न नहीं, तैसे आत्माविषे नानाप्रकारका जगत् कल्पा है, सो आत्माते भिन्न कछु नहीं जैसे मन संकल्पविषे अर्थोंको नानाप्रकार कल्पता है तैसे यह जागृत् जगत् भी भ्रमकारि कल्पा है. हे रामजी ! एक गोपदविषे मन अनेक योजनको रचि लेता है, अरु कल्पका क्षण अरु क्षणका कल्प रचि लेता है, जैसा कछु मनविषे तीव्र संवेग होता है, तैसा ही होइकारि भासता है, तिसको रचनेविषे विलंब नहीं लगता, रचनेको

समर्थ है, जैसा तीव्र संवेग होता है, तैसा ही भासता है, जेते कछु देश काल पदार्थ हैं, सो मनते उपजे हैं, सबका कारणरूप मन है, जैसे पत्र, फूल, फल, टास वृक्षते उपजे हैं, सो वृक्षरूप हैं, अरु जैसे समुद्रते लहरी तरंग होते हैं, सो जलरूप हैं अरु जैसे अग्नि उष्णतारूप है, तैसे नानाप्रकारके स्वभाव मनते उपजे दृष्ट आते हैं, सो मनरूप हैं. हे रामजी ! कर्त्ता कर्म क्रिया, द्रष्टा दर्शन दृश्य; सब मनका ही पसारा है, जैसे सुवर्णते नानाप्रकारके भूषण भासते हैं; अरु जब सुवर्णका ज्ञान हुआ तब सर्व भूषण एक सुवर्ण ही भासता है, भूषणभाव नहीं भासता, तैसे जब लग आत्माका प्रमाद है, तबलग द्वैतरूप जगत् भासता है, जब आत्मज्ञान हुआ तब सब भ्रम मिटि जाता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्ति प्रकरणे चित्तमाहात्म्यवर्णनं नाम त्र्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥

चतुरुत्तरशततमः सर्गः १०४.

नृपमोहवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! अब एक वृत्तांत तुझको कहता हौं, जो पूर्व व्यतीत हुआ है; यह जगत् इंद्रजालवत् है, जैसे मनरूपी इन्द्रजालविषे यह जगत् स्थित है, तैसे तू सुन. हे रामजी ! इस पृथ्वीविषे एक उत्तरपाद नाम देश था, तहां तिसविषे एक बड़ा वन था, तिसविषे नानाप्रकारके वृक्ष अरु फूल, फल, ताल थे, तहां विद्याधरी आयकरि कल्लोल करती थीं, अरु बड़े सुंदर स्थान थे, केलेके वृक्ष अरु खजूर अरु जोवेके वृक्ष थे, तहां मोर शब्द करते थे, और अनेक प्रकारके पक्षी शब्द करते थे अरु अनेक प्रकारके फूलोंते सुगंध निकस रही थी. तहां विद्याधर अरु सिद्धगण देवता आय विश्राम करते थे, किन्नर आय गान करते थे, मंद पवन चलता था, तिस स्थानविषे महासुंदर रचना बनी थी, सुवर्णवत् महाकल्पवृक्ष पारिजातक वृक्ष लगे थे, तिस देशका लवण नाम राजा हरिश्चंद्रके कुलविषे उपजा, सो बडा धर्मात्मा होत

भया, मानौ दूसरा सूर्य वडा तेजवान् पृथ्वीविषे आय उदय हुआ है, जेते कछु शत्रु हैं, तिन सबका कुहाडेसे नाश किया अरु जो साधु पुरुष पुण्यवान् थे, तिनकी रक्षा करी और दुष्टोंको मारा. हे रामजी! ऐसा तेज उसका हुआ कि, जो शत्रु राजाका नामस्मरण करै तब उसको ताप चढि जावै अरु श्रेष्ठ पुरुषकी पालना करै, तिस राजाके यशकरि संपूर्ण पृथ्वी पूर्ण भई स्वर्गविषे देवता विद्याधर यश गावैं, लोकपाल भी जिसका यश सुनैं, सब लोकविषे उसका यश प्रसिद्ध भया. हे रामजी! तिस राजाके समान और कोऊ स्वप्नविषे भी दृष्टि न आवै, कुटिलता अरु लोभ तिसविषै कछु दृष्टि न आवै अरु बड़ा बुद्धिमान् अरु उदार था, जैसे ब्रह्माजीके कंठ हाथविषे रुद्राक्षकी माला प्रत्यक्ष पाइये तैसे उसकी उदारता अरु तेज दृष्टि आवै. सो धर्मात्मा एक दिन सभासंयुक्त बैठा था अरु दो मुहूर्त दिन रहा तब बडे सिंहासनपर बैठा था, जैसे देवताकी सभाविषे इंद्र बैठे तैसे बैठा था अरु मंडलेश्वरकी सेना अंतर प्रवेश करि बाहिर निकसै, स्त्रियोंका नृत्य होता था, वाजित्र वाजते थे; मधुर ध्वनि होती थी; चमर शीशपर झूलता था, मंत्री आगे खड़े थे, जैसे देवगुरु बृहस्पति है, तिसके समान राजाको मंत्री देशमंडलकी वार्ता सुनाते थे; अरु इतिहास कथाका पुस्तक वाँचिकै ढांप रक्खा था, भट्ट कवि स्तुति करते थे, तिस कालविषे एक इंद्रजाली बाजीगर उसकी सभामें आडंबरसंयुक्त आया; जैसे वर्षाकालका मेघ जलकरि पूर्ण हो आता है, तैसे आया, अरु राजा सुमेरुके शिखर जैसे ऊँचे आसनपर ग्रीवाको ऊँचे कर बैठा था अरु जैसे पहाड़के ऊपर वृक्ष होता है अरु तिसके फल लटकते हैं, तैसे राजा ऊँचे सिंहासनपर बैठा था, अरु चरण लटकते थे, तिस राजाके निकट इंद्रजाली आया, जैसे वृक्षके निकट मर्कट आते हैं तैसे आयके कहत भया-हे राजन्! एक तुम मेरा कौतुक देखो. हे रामजी! ऐसे कहिकरि उसने पेटारा खोला, तिसते एक मोरका पुच्छ भ्रमावने लगा तिसते भ्रमणकारि नाना प्रकारकी रचना भासने लगी, मानों परमात्माकी माया है, तिसते नानाप्रकारके रंगोंको राजा

देखत भया जैसे इंद्रधनुष आकाशविषे भासता है, तैसे सूर्यकी किरणवत् प्रकाशवान् रंग भासने लगे, बहुरि तिसी क्षणविषे एक मंडलेश्वरका दूत आया जैसे आकाशकेविषे तारामंडलको लंघिकरि मेघ आता है, तैसे हाथविषे घोड़ा अरु सभाको लंघिकरि आया अरु कहता भया हे राजन् ! यह महाबलवान् घोडा मेरे राजाने तुमको दिया है, सो कैसा घोडा है, जैसे उच्चैःश्रवा इंद्रका घोडा समुद्रके मथनेते निकसा है, तैसा यह घोड़ा है अरु पवनकी नाईं इसका वेग है, मानो पवनकी मूर्ति है, मेरे स्वामीने कहा कि, जो उत्तम पदार्थ है, सो बडेको देना योग्य है इस कारणते यह घोडा रत्न तुमको दिया है, तुम्हारे योग्य है, ताते लेहु, हे रामजी ! जब इस प्रकार दूतने कहा, तब इंद्रजाली बोला, जैसे मेघ गर्जिकरि चुप होता है अरु पाछे बबीहा बोलता है, तैसे इंद्रजालीने कहा-हे राजन् ! इस घोडेपर तुम आरूढ होकरि विचरौ. आप शोभा पाओगे, जैसे आकाशविषे सूर्य शोभता है अरु जगत्को भी शोभा देता है, तैसे तुम शोभोगे. हे राजन् ! तुम भी शोभोगे अरु घोडा भी शोभैगा. हे रामजी ! जब इस प्रकार इंद्रजालीने कहा तब राजा घोडेकी ओर देखत भया; देखिकरि मूर्छित भया, जैसे कागजपर मूर्ति लिखी होती है, तैसे दो मुहूर्त पर्यंत राजा मूर्च्छित होगया. जैसे वीतराग मुनीश्वर परमानंद आत्मपदविषे स्थित होता है तैसे राजा होगया. हे रामजी ! तिस राजाके भयकरिकै मंत्री भी जगावे नहीं. हाथ पाँव राजाके कछु हिले नहीं, शिरपर चमर होवै, जैसे चिक्कडविषे कमल अचल होता है, तैसे राजा अचल होगया, जैसे मृत्तिकाको कमल स्पष्ट होता है, तैसे राजा होगया; भट कवि शब्दस्तुति करते थे, सो भी चुप हो रहे, जैसे वर्षाकालका मेघ गर्जिकरि शांत होजाता है, तैसे शांत होगये, अरु मंत्री टहलुए सब भय संशयके समुद्रविषे डूब गये, जानत भये कि राजाके मनविषे कोऊ बडी चिंता उपजी है अरु सब सभाके लोक आश्चर्यवान् हुए.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे इंद्रजालोपाख्याने नृपमोहो नाम चतुरुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥

पंचोत्तरशततमः सर्गः १०५.

राजप्रबोधवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! तब राजा दो मुहूर्त उपरांत चैतन्य हुआ, जैसे वर्षाकालके मेघते छूटिकरि कमल प्रफुल्लित होइ आता है. तैसे राजा जागिकै सिंहासनपर कँपने लगा, जैसे भूकंपविषे पर्वत हिलते हैं, तैसे राजाके अंग हिलने लगे. जैसे समुद्रके मंथनते मंदराचल कँपता था, तैसे कंपिकरि राजा गिरने लगा, तब मंत्री अरु टहलुए भुजा पकडिके राजाको थांभते भये, जैसे प्रलयकालविषे सुमेरु गिरने लगे अरु पासके पर्वत थांभ गिरने न देवे, तैसे राजाको गिरने न दिया; परंतु राजाकी बुद्धि व्याकुल होगई, तब राजा बोलत भया-यह नगर किसीका है अरु सभा किसीकी है अरु राजा कौन है, यह क्या है? हे रामजी! जब इस प्रकार राजाका वचन सुना; तब मंत्री कछुक शांत भये, जैसे सूर्य राहुते छूटता है, तब कमल खिल आते हैं अरु तिनको देखिके भ्रमर प्रसन्न होते हैं अरु शब्द करते हैं, तैसे मंत्री टहलुए प्रसन्न होइके कहत भये, जैसे प्रलय क्षोभते भ्रमते हुए मार्कंडेय ऋषिको देवता पूछते भये तैसे पूछत भये. हे राजन्! तू क्यों व्याकुलताको प्राप्त भया है? तेरा तौ निर्मल मन है तू तौ उदारात्मा है. हे देव! जिन पुरुषोंकी प्रीति पदार्थविषे है; अरु आपातरमणीय भोगोंविषे जिनका चित्त है, तिनका मन मोहविषे भर जाता है अरु जो संतजन उदारचित्त हैं; तिनका मन निर्मल होता है, तिनका मन मोहविषे कैसे पडै? हे देव! जिनका चित्त भोगोंकी तृष्णाविषे बंधमान है; तिनका मनमोहको प्राप्त होता है; अरु जो महापुरुष संतजन हैं; तिनका मन मोहविषे डूबता नहीं; जिनका चित्त पूर्ण आत्मतत्त्वविषे स्थित हुआ है; अरु जे बडे गुणों करिकै संपन्न हैं, तिनको शरीरके रहनेविषे अरु नष्ट होनेविषे कछु मोह नहीं उपजता; अरु जिनको आत्मतत्त्वका अभ्यास नहीं प्राप्त भया अविवेकी हैं तिनका चित्त देश काल मंत्र औषधके वशकरि मोहको प्राप्त होता है, तुम्हारा चित्त तौ

विवेकभावको ग्रहण करता है, जो नित्य ही नूतन उदार कथा अरु शब्द सुनते हौ अब कैसे मोहकरि चलायमान हुए हौ ? जैसे वायुकरिकै पर्वत चलायमान होवै तैसे तुम चलायमान हुए हौ यह आश्चर्य है, तुम अपनी उदारताको स्मरण करौ. हे रामजी ! जब इस प्रकार मंत्री टहलुए कहत भये, तब राजा सावधान भया अरु मुखकी कांति उज्ज्वल भई, जैसे शरत्कालकी मंजरी सूखी हुई वसंतऋतुविषे प्रफुल्लित होती है तैसे राजा नेत्रोंको खोलिकरि देखता भया, जैसे सूर्य राहुकी ओर देखता है, जैसे सर्प नोलेकी ओर देखता है, तैसे इंद्रजालकी ओर देखकरि कहा-हे दुष्ट इंद्रजाल ! तैंने यह क्या कर्म किया ? राजासे भी कोऊ ऐसा कर्म करता है, जैसे जलविना मछली कष्ट पायके बहुरि जलविषे प्रसन्न होवै तैसे मैं हुआ हौं, बडा आश्चर्य है, परमात्मा अनंतशक्ति है, अनेक प्रकारके पदार्थ फुरते हैं, मैं दो मुहूर्तविषे क्या भ्रम देखा, मेरा मन सदा ज्ञानके अभ्यासविषे था, सो मोह गया, तौ प्राकृत जीवोंकी बात क्या कहनी? मैंने बडा आश्चर्यभ्रम देखा है सो सब ही मुझते सुनो, यह जो इंद्रजाली है, सो मानो शंबर दैत्य है, जिसने दो मुहूर्तविषे मुझको अनेक देश, काल, पदार्थ दिखाये, जैसे ब्रह्मा एक मुहूर्त्तविषे नानाप्रकारके पदार्थ रचि लेवै, तैसे एक मुहूर्त्तविषे इसने मुझको अनेक भ्रम दिखाये हैं, सो सब ही मैं तुम्हारे आगे कहता हौं मानौ सारी सृष्टि इसके पेटारेविषे है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राजप्रबोधवर्णनं
नाम पंचोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥

षडुत्तरशततमः सर्गः १०६.

चांडालीविवाहवर्णनम्।

राजोवाच-हे साधो ! इस पृथ्वीका मैं राजा हौं, सब पृथ्वीविषे मेरी आज्ञा चलती है, अरु मैं इंद्रजालकी नाईं सिंहासनपर बैठता हौं जैसे स्वर्गविषे इंद्रके आगे देवता होते हैं, तैसे मेरे आगे भृत्य मंत्री हैं, ऐसी

उदारताकरि मैं संपन्न हौं, सो मैं बडे भ्रमको देखता भया. हे साधो ! जब इस इंद्रजालीने पेटारेसों काढिकरि मोरके पूछको भ्रमाया, तब वह पुच्छ मुझको सूर्यकी किरणोंकी नाईं भासा, जैसे बडा मेघ गर्जिकै शांत होता है, अरु पाछेते इंद्रधनुष दृष्टि आता है, तैसे विचित्ररूप पुच्छ मुझको दृष्ट आया, तब तिसके अनंतर एक दूत घोडा लेआया, तिस घोडेपर मैं आरूढ भया, सो चित्तही कारि घोडा मुझको दूरते दूर ले गया, यहां ही बैठा रहा, अरु घोडा मुझको दूरते दूर लेगया, जैसे भोगोंकी वासना-करिकै मूर्ख घर ही बैठे दूरते दूर भटकते फिरैं, तैसे मुझको घोडा दूरते दूर ले गया, एक महाभयानक निर्जन देशविषे लेगया, जैसे प्रलयकालके विषे जले हुए स्थान होते हैं, तैसे स्थानविषे मुझे लेगया, मानौ दूसरा आकाश है. मानौ सात समुद्र हैं, तिन समान अष्टम समुद्र है, चारों दिशोंके जो चार समुद्र वर्णन किये हैं, तिन समान मानौ पांचवां समुद्र है, महाभयानक स्थानोंको लेगया, देशोंको लंघिकारि महाअटवीविषे ले आया जैसे आकाशवत् ज्ञानीका चित्त होता है अरु जैसे अज्ञानीका चित्त कठोर होता है अरु शून्य होता है तैसे स्थानविषे लेगया, जहां घास वृक्ष जीव मनुष्य कोऊ दृष्टि न आवै तहां मैं महा कष्टवान् दीन-ताको प्राप्त हुआ, जैसे धन अरु बांधवोंते तथा देश अरु बलते रहित पुरुष कष्ट पावता है, तैसे मैं कष्टवान् हुआ, तब दिनका अंत होगया, तहां उजाडविषे कष्टसाथ मैं रातको व्यतीत कीनी, रात्रिको पृथ्वीपर शयन किया, परंतु निद्रा न आई. कल्पसमान रात्रि होगई, दुःख करिकै जब सूर्य उदय हुआ तब मैं वहांते चला, आगे गया, पक्षियोंका शब्द सुना, बहुरि वृक्ष दृष्टि आये, परंतु खानपान कछु न पाया, तिन वृक्षोंको देखिकै प्रसन्न भया, जैसे मरणेते छूटे पुरुष रोगकरि भी प्रसन्न होवै, तैसे मैं वृक्षोंको देखिकारि प्रसन्न हुआ. एक जामनके वृक्षका मैंने आश्रय लिया, जैसे मार्कंडेय ऋषिने प्रलयके समुद्रविषे भ्रमता हुआ वटका आश्रय लिया था तैसे मैंने वृक्षका आश्रय किया, तब घोडा मुझको छोडिकै चल दिया, जैसे गंगाविषे डुबकी लेनेकारि पाप चल देते हैं, तैसे घोडा मुझको छोडिगया, बहुरि सूर्य अस्त भया, तहां रात्रि

मार्कं

में व्यतीत करी, न कछु भोजन किया, न जलपान किया, न स्नान किया, महादीनताको मैं प्राप्त हुआ, जैसे कोऊ बिकाया मनुष्य दीन होजाता है अरु जैसे अंधकूपविषे गिरा मनुष्य कष्टवान् होवे, तैसे कष्टवान् हुआ अरु कल्पके समान रात्रि व्यतीत भई, दिन हुआ कोऊ फूल, फल, पत्र, जल वहां दृष्टि न आवै. जैसे मूर्खके शरीरविषे कोऊ गुण दृष्टि न आवै तैसे वहां अन्नपान कछु दृष्टि न आवै, तब मैं आगे गया. तहां पक्षी शब्द करते थे, अरु आधा प्रहर दिन रहा एक कन्या मुझे दृष्टि आई, तिसके हाथविषे मृत्तिकाकी मटकी, तिसविषे रँधे चावल, अरु जांबूके रसकी टीड भरी हुई लेजाती है, तिसको देखिकरि मैं तिसके सन्मुख आया, जैसे रात्रिके सन्मुख चन्द्रमा आता है तैसे मैं आइके कहा—हे बाले ! मुझको भोजन दे, मैं क्षुधाकरिकै आतुर हौं जो कोऊ दीन आर्तको अन्न देताहै, सो बडी संपदाको प्राप्त होता है, ताते तू भोजन मुझको देहु. हे साधो ! जब मैंने वारंवार कहा, तब उसने कहा, तू तौ कोल राजा भासता है; जो नानाप्रकारके भूषण वस्त्र पहिरे हुए है, तू जो भोजन माँगता है, सो मैं न देऊँगी, ऐसे कहिकारि आगे चली जावै, अरु मैं भी तिसके पाछे जैसे छाया जावे तैसे चला जाऊँ. मैं कहता जाऊँ—हे बाले ! मुझे भोजन देहू, जो मेरी क्षुधा शांत होवै, तब उसने कहा—हे राजन् ! हम नीच लोक हैं, अपने प्रयोजनविना किसीको नहीं देते, जो तू मेरा भर्त्ता होवै; तब मैं देवौं, यह अन्न मैं पिताके निमित्त लेचली हौं, वह स्मशानविषे वैतालकी नाईं अवधूत होइ बैठा है, अरु धूरसे अंग भरे हैं, जो तू मेरा भर्त्ता होवै, तब मैं देती हौं, काहेते कि, भर्त्ता प्राणोंते भी प्यारा होता है, पितासों क्षमा कराय लेऊँगी. हे साधो ! जब चांडालीने ऐसे कहा, तब मैंने कहा—भला मैं भर्त्ता होऊंगा, मुझे भोजन दे. हे साधो ! ऐसा कौन है, जो ऐसी आपदाविषे अपने वर्णाश्रमके धर्मको दृढ राखै ? तब उसने मुझको अर्धभाग भोजन दिया, अरु अर्ध जांबूका रस दिया, तिसका भोजन पान किया, तब कछुक शांतिमान् हुआ परंतु मेरा मोह निवृत्त न भया, तब दोनों मेरे हाथ पकडिकरि मुझको आगे लगाय लिया और अपने पिताके निकट लेगई, जैसे पापीको यमदूत लेजाते हैं, तब

उसने कहा-हे पिता! यह मैंने भर्त्ता किया है. पिताने कहा, भला किया ऐसे कहकरि चावल अरु जांबूके रसका भोजन कराया, भोजन करिकै पिताने कहा, हे पुत्रि! इसको अपने घर लेजा, तब मुझको अपने घर लेगई, जब घरके निकट गये, तब मैंने देखा कि अस्थि, मांस, रुधिर बहुत पड़ा है, कुत्ते कूकुर गर्दभ हस्ती आदिक जीवोंकी खालडियां पडी हैं, तिनको लंघिकरि अपने घरविषे लेगई, जैसे पापीको नरकविषे यमदूत लेजाते हैं, एक बगीचा निकट था, तिसके आगे अपनी माताके पास मुझे लेगई, अरु कहा हे माता! यह तेरा जवाँई हुआ है, माताने कहा, भली बात है, तब उनके घर हम विश्राम किया, उस चांडालीने मुझको भोजन दिया तिसका भोजन किया, मानों अनेक जन्मोंके पाप भोगते हैं, बहुरि विवाहका दिन स्थापन किया, तिस दिनविषे विवाह किया, चांडाल हँसैं, अरु नृत्य करैं, मानौं मेरे पाप नृत्य करते हैं, वह चांडाली मुझको विवाहि दीनी, जैसे पापीको शासन देते हैं तैसे चांडाली का वस्त्र आदिक पदार्थसहित मुझको विवाह कर दिया॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चांडालीविवाहवर्णनं नाम षडुत्तरशततमः सर्गः॥ १०६॥

सप्तोत्तरशततमः सर्गः १०७.

इंद्रजालोपाख्यानोपद्रववर्णनम्।

राजोवाच-हे साधो! बहुत कहनेकरि क्या है? वहां मैं बडा चांडाल होता भया, सप्त दिन विवाहका उत्साह होता भया, तहाँ अष्टमास मैं रहा, तिसके अनंतर मैं और स्थानोंविषे रहा, तब वह चांडाली गर्भवती भई, तिसते एक कन्या उत्पन्न भई, जैसे पाप कियेते दुःख उत्पन्न होते हैं, तैसे दुःखनाम्नी कन्या भई, अरु शीघ्र ही बढ गई, जैसे मूर्खके चित्तविषे चिंता बढजाती है, बहुरि तीसरे वर्ष पीछे तिसको बालक उत्पन्न होगया, जैसे दुर्बुद्धिते अनर्थ उत्पन्न होता है, बहुरि पुत्र बहुरि कन्या उपजी, इसीप्रकार तीन पुत्र अरु तीन

कन्या उत्पन्न हुए तब मैं बड़ा चांडाल परिवारवान् हुआ, तिस चांडाली-साथ मैं चिरकालपर्यंत चांडालोंविषे विचरता रहा, जैसे ब्रह्महत्यारा नरकोंविषे चितासहित वसता रहै, तैसे मैं रहा, अरु तिसके साथ मेरा बहुत स्नेह भया, जैसे जालविषे पक्षी बंधायमान होता है,तैसे मैं तिन्हों-विषे बंधमान भया. हे साधो ! तिनविषे मैं बडा कष्ट पाया, प्रथम जो पटका वस्त्र भी चूभता था ऐसे तिस शिरविषे मैं भार उठाऊं, अरु नीचे चरण तपायमान होवें, अरु शिरपर सूर्य तपै, रात्रिको कंटकोंपर शयन करौं, तिसकरि मैं बडे कष्टको पाता भया, ऊपर वस्त्र कोऊ प्राप्त न होवे; अरु पुरातन कौपीन जीवजंतोंके लोहूसे भरे हुए, अरु आर्द्र शिराने देवैं, अरु कुक्कुट हस्ती आदिक अशुचि पदार्थोंका भोजन करै अरु रुधिरका पान करै ऐसी हमारी चेष्टा हुई. जालसे पक्षी मारौं, केडीसे मच्छ कच्छ आदिक मारौं, अनेक प्रकारके क्रूर नीच कर्म हम करते भये. जैसी तैसी जो वस्तु पाई सो भोजन करै, विचारते हीन हम चिरकाल-पर्यंत ऐसी चेष्टा करते रहैं, अरु ऐसी अवस्था भई कि, अस्थि मांसके निमित्त हम आपसमें लडैं, पुत्र अरु स्त्री सब लडैं, अरु शीतकालमें शीतकरि कष्ट पावैं, उष्णकालमें उष्णताकरि कष्टवान् होवैं, मेरा शरीर बहुत कृश होगया, अवस्था भी वृद्ध भई; स्मशानोंविषे हमारा बहुत काल व्यतीत भया, मांस अरु रक्तपान करैं, अरु जो वैतालजन आवैं, तिनको हम मारैं, जैसे चंडिकाने दैत्योंको मारा था, आंतडे अरु चमडे तले बिछाइके शयन करैं, अरु शिरके शिराने राखैं, ऐसे चिरकालपर्यंत हम चेष्टा करते रहे; बांधवोंमें स्नेह बहुत बढ़गया, ऐसी नीचताको भी हम प्राप्त भये अरु तृष्णा बढती जावै जैसे वर्षाकालकी नदी बढती जाती है, तैसे तृष्णा बढती जावै; मृत्तिकाके पात्रोंविषे आगे चंडाल भोजन करिजावैं; तिन्हीं वासनोंविषे हम भोजन करैं; बहुरि वर्षा होनेते रहिगई, काल पड़ा, सूर्य तपने लगा, मानौ द्वादश सूर्य इकट्ठे तपे हैं, अरु दावाग्नि वनको लगा, वनके जीव अन्न जलके निमित्त कष्ट पाने लगे, अपने देशको छोडिके देशांतरको जावैं, वहां उपद्रव आय प्राप्त हुआ, समयविना मानौ प्रलय आया है, क्षुधा अरु तृष्णाकरिकै

कई जीव मृतक होजावैं; कई गिर पडैं, बहुत कष्ट आय पडा तब हम वहांसों निकसे; तीन पुत्र, तीन कन्या, स्त्रीसहित मैं निकला, जहां अन्न जल सुनैं, तहां जावैं, मांस खावैं, जल अथवा रक्त पान करैं, बहुरि यह भी हाथ न आवै, तब बहुत शोकवान् हुए, शरीर निरस जैसा होगया, ऐसे कष्टवान् हुए, पुत्र पिताको न संभाले, अरु पिता पुत्रको न संभाले बांधवोंका स्नेह आपसमें छूटगया, अपने वास्ते सब दौडे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे इंद्रजालोपाख्याने उपद्रववर्णनं नाम सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥

अष्टोत्तरशततमः सर्गः १०८.

अकांडदुर्भिक्षवर्णनम् ।

राजोवाच–हे सभा! इस प्रकार हम चिरकाल विचरते फिरे, मेरा शरीर वृद्ध हो गया, अरु बाल बर्फकी नाईं श्वेत हो गये, जैसे सूखा पात वायुकरिकै विचरता है, तैसे हम कर्मोंके वशते भ्रमते रहे, जो कछु अपने राजाका अभिमान था, सो मुझे विस्मरण हो गया, अरु चंडालभाव मेरेविषे दृढ होगया, तब मैं तहां कंपायमान हुआ, तुम्हारी दृष्टिमें आया, अब कछु सावधान भया, अरु शब्द तुरीयां वाजने लगे, जैसे पंखोंके टूटते पहाड अचल भये, तैसे चंडाल कल्प मेरेविषे दृढ होगया अरु व्याकुलता करिकै हम महाकष्टवान् हुए ऐसा दुर्भिक्ष पडा कि तृण, फूल, फल, जल कहूं दृष्टि न आवै, अरु अनेक मृगतृष्णा की नदियां दृष्टि आवे जब वायु चलै तब रेतीके कणके उडते मेघकी नाईं दृष्टि आवैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे अकांडदुर्भिक्षवर्णनं नामाष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०८ ॥

नवोत्तरशततमः सर्गः १०९.

शाम्बरिकोपाख्यानवर्णनम् ।

राजोवाच–सब जीव कष्टमान होइके कलत्रको छोडि जावैं, कोऊ पहाडऊपर चढिकरि दुःखके निमित्त गिर गिर पडे, जैसे चिडीका बाज भोजन करता है, तैसे जीवोंको बिघाड भोजन करे, बहुरि एक वृक्ष पाया तिसके नीचे मैंने विश्राम किया, तब एक बालक जो सबते छोटा था; सो मेरे पास आया, अरु कहा हे पिता ! मुझको मांस देहु, जो मैं भोजन करौं, नहीं तौ मेरे प्राण निकसते हैं, तब मैंने कहा, मांस तौ है नहीं. तब वह कहत भया, भावे तहां सो देहु, तब स्नेहकरि बांधा अरु छोटा पुत्र सबते प्यारा होता है, तिसकारि मैंने कहा, हे पुत्र ! मेरा मांस है, सो खाता है ? तब उस दुर्बुद्धिने कहा देहु, तब मैंने वनते लकडियां इकट्ठा करिके अग्नि जलाई, अरु कहा, हे पुत्र ! मैं अग्निविषे प्रवेश करता हौं, जब परिपक्व होऊं, तब तू भोजन करना. हे सभा ! इसप्रकार मैंने स्नेहकरिके कहा, कि किसीप्रकार यह जीते रहैं ऐसे कहिकरि मैंने चिताविषे प्रवेश किया जब मुझको उष्णता लगी तब मैं कंपायसान हुआ तुमको दृष्ट आया, बहुरि कछुक सावधन भया, अरु शब्द तुरीयां बाजने लगीं. हे साधो ! मैंने इसप्रकार चरित्र देखा है, तैसे तुम्हारे आगे कहा है, जैसे मार्कंडेयने प्रलयविषे क्षोभको देखा, अरु देवताको कहा तैसे मैंने तुमको अपना वृत्तांत कहा है. जब इंद्रजालीने पूछको भ्रमाया तिसके भ्रमाणेसाथ मैं घोडेपर आरूढ भया, तिसकारि एता काल मैं भ्रमको प्रत्यक्ष देखता रहा, ताते बडा आश्चर्य है, जो मेरे जैसे विवेकवान् राजाको इसने मोहित किया है; तौ और प्राकृत जीवोंकी क्या वार्त्ता है ? माया महाआश्चर्य है. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जब इसप्रकार तेजवान् राजाने कहा, तब वह सांबरीक अंतर्धान होगया. अरु सभाविषे जो मंत्रीते आदि लेकरि बैठे थे, सो सब आश्चर्यवान् हुए अरु देखिकै परस्पर कहने लगे, बड़ा आश्चर्य है, बड़ा आश्चर्य है, भगवान्‌की माया विचित्ररूप है, यह सांबरी माया नहीं,

काहेते जो सांबरी अपने लोभके निमित्त दिखाता है, पाछे यत्नकरिकै धन आदिक पदार्थ मांगता है अरु यह लिये बिना अंतर्धान होगया है यह ईश्वरकी माया है. तिसकरि ऐसा विवेकवान् राजा मोहको प्राप्त हुआ है, जो बड़ा तेजवान् अरु शूरमा राजा मोहित भया, तौ सामान्य जीवोंकी क्या बात है. हे रामजी! ऐसे संदेहमान होकरि सब स्थित भये, अरु मैं भी उस सभाविषे बैठा था, यह वृत्तांत मैंने प्रत्यक्ष देखा है, किसीके मुखते श्रवण करिकै नहीं कहा. हे रामजी! यह जो अणुरूप मन है, सो महामोह है, अरु अविद्या है, इसके फुरणेकरि अनेक प्रकारोंका मोह दीखता है, जब यह मन उपशम होवै, तब हीं कल्याण है, ताते मन जो बहुत कल्पना उठाता है, तिसको त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित करो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे शाम्बरिकोपाख्यानसमाप्ति-
वर्णनं नाम नवोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०९ ॥

दशोत्तरशततमः सर्गः ११०.

चित्तवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! आदि जो शुद्ध परमात्माते चित्त संवेदन फुरा है, सो कलनारूप होइके स्थित भया है; तिसकरि दृश्य सत्य होइ भासता है, आत्माके प्रमादकरिकै मोहको प्राप्त हुआ है, सो चित्तके फुरणेकरिकै चिरपर्यंत जगत्विषे मग्न हो रहा है. सो मन असत्यरूप है, अरु मनने ही संपूर्ण जगत्को विस्तारा है, तिसकरि अनेक दुःखको प्राप्त हुआ है, जैसे बालक अपने परछाईंविषे वैताल कल्पिकरि आप ही भयवान् होता है, अरु वही मन जब संसारकी वासनाको त्यागिकरि आत्मपदमें स्थित होता है, तब एक क्षणविषे सब दुःख नष्ट होजाते हैं, जैसे सूर्यकी किरणोंकरि अंधकार नष्ट होजाता है. हे रामजी! ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं जो अभ्यास कियेते प्राप्त न होवै, ताते जब आत्मपदका अभ्यास करिये तब प्राप्त होता है, आत्मपदके अभ्यास कियेते

आत्मा निकट भासता है, अरु संसार दूर भासता है, अरु जब जगत्का अभ्यास दृढ होता है, तब जगत् निकट भासता है, आत्मा दूर भासता है. हे रामजी ! जो मूर्ख मनुष्य हैं, तिनको अभयपदविषे भय होता है, जैसे पथीको दूरते वृक्षविषे वैताल कल्पना होती है और भयको पाता है, तैसे चित्तकी वासनाकरि जीव भयको प्राप्त होता है. हे रामजी ! जो वासनासहित मलिन मन होता है तिसविषे नानाप्रकार संसारभ्रम उठता है, जब आत्मपदविषे स्थित होता है, तब भ्रम मिटजाता है, अरु जैसा मनविषे निश्चय होता है, तैसा ही हो भासता है,जब मित्रविषे शत्रु बुद्धि होती है, तब निश्चयकरि शत्रु होजाता है, अरु जो मदकरि उन्मत्त होता है तिसको संपूर्ण पृथ्वी भ्रमती दृष्ट आती है, अरु व्याकुल मन होता है, तब चंद्रमा भी श्याम जैसा भासता है, जो अमृतविषे विषकी भावना होती है, तब अमृत भी विषकी नाईं भासता है, जेते कछु जागृत पदार्थ देश, काल, क्रिया, पत्तन भासते हैं, सो मनकरि भासते हैं. हे रामजी ! संसारका जो कारण है सो मोह है, तिस मोहकरिकै जीव भटकता है, ताते ज्ञानरूपी कुहाडेकरिकै वासनारूपी मलिनताको काटौ. आत्मपद पानेविषे वासना ही आवरण है. हे रामजी ! वासनारूपी जालकरिके मनुष्यरूपी हरिण आवृत है, अरु संसाररूपी वनविषे भटकता है, जिस पुरुषने विचार करिकै वासनाको नष्ट की है, तिसको परमात्मप्रकाश भासता है, जैसे बादलते रहित सूर्य प्रकाशता है, तैसे वासनारहित चित्तविषे आत्मा प्रकाशता है. हे रामजी ! मनहीको तू पुरुष जान, देहको मनुष्य नहीं जानना, काहेते कि देह जड है अरु मन जड अरु चेतनते विलक्षण है, जो मनकरि कार्य करता है सो कार्य सफल होता है, जो मनकरि दिया है अरु जो मनकरि लिया है, सोई दिया अरु लिया है, जो देहकरि किया है सो मनने ही किया है. हे रामजी ! यह संपूर्ण जगत् मनरूप है; मन ही पर्वत है, मन ही आकाश, वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी सब मन ही है,सूर्य आदिकोंका प्रकाश मन ही करि होता है अरु शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध सब मन ही करि ग्रहण होते हैं, अरु नानाप्रकारकी वासनाकरिकै नानाप्रकारके रूप मन ही

धरता है जैसे नटवा नानाप्रकारके स्वांगोंको धरता है, तैसे नानाप्रकारके रूप मन ही धरता है, लघु पदार्थको दीर्घ मन ही करता है, सत्यको असत्यकी नाईं अरु असत्य जगत्के पदार्थको सत्यकी नाईं करता है मित्रको शत्रु करता है, शत्रुको मित्र करता है. हे रामजी ! जैसी वृत्ति मनकी दृढ होती है, सोई सत्य होइ भासती है. हरिश्चंद्रको एक रात्रिविषे बारह वर्ष हो भासे अरु इंद्रको एक मुहूर्तविषे युगोंका अनुभव हुआ, अरु मनहीके दृढ निश्चयते इंद्र ब्राह्मणके पुत्र दश ही ब्रह्मपदको प्राप्त भये. हे रामजी ! जो सुखसाथ बैठा है अरु मनविषे कोऊ चिंता आन लगी, तो सुखहीविषे उसको रौरव नरक होजाता है, अरु जो दुःखविषे बैठा है अरु मनविषे शांत है, तो दुःख भी सुख होजाता है; ताते जैसा निश्चय मनविषे होता है; तैसा ही होइ भासता है, अरु जिस ओर मनका निश्चय होता है, तिसी ओर मन इंद्रियोंका समूह विचरता है, अरु इंद्रियोंका आधारभूत मन है जो मन टूट पडता है, तब इंद्रियां भिन्न भिन्न होजाती हैं, जैसे तागेके टूटेते मणके भिन्न भिन्न होइ पडते हैं, तैसे मनते रहित इंद्रियां अर्थोंते रहित भिन्न होती हैं, अरु वास्तव आत्मतत्त्व सबविषे अधिष्ठान स्थित है, सो स्वच्छ निर्विकार सूक्ष्म समभाव नित्य है, अरु सबका साक्षीभूत है, अरु सब पदार्थोंका ज्ञाता है, अरु देहते भी अधिक सूक्ष्मरूप है, अर्थ यह कि अहंभावके उत्थानते रहित चिन्मात्र है, तिसविषे मनके फुरणेकरिकै संसार भासता है, वास्तव द्वैतभ्रमते रहित है,सब जगत् आत्माका किंचनमय रचा है, सबविषे चेतन शक्ति व्यापी है, वायुविषे स्पंदरूप वही है, पृथ्वीविषे कठोरता वही है, सूर्य अग्नि आदिकविषे प्रकाश वही है, जलविषे द्रवतारूपी वही है, आकाशविषे शून्यता वही है, सब पदार्थोंविषे चेतनशक्ति व्यापि रही है, सो अनेकता वास्तव नहीं, मनकरिकै अनेकता भासती है, शुक्ल पदार्थको कृष्ण करता है, देश, काल, पदार्थ, क्रिया, द्रव्यको मन ही विपर्यय करता है . हे रामजी ! जैसे निश्चय मनविषे दृढ होता है, सोई सिद्ध होता है, मनविना किसी पदार्थका ज्ञान नहीं होता. हे रामजी ! जिह्वा करिकै नानाप्रकारके भोजन

करता है, परंतु मन और ठौर होता है, तब उसका स्वाद कछु नहीं आता अरु नेत्रोंकरि चित्तसहित देखता है, बहुरि रूपका ज्ञान होता है, इसकारण मनविना किसी इंद्रियका विषय सिद्ध नहीं होता, अंधकार अरु प्रकाश भी मनविना नहीं भासता, अरु हे रामजी! सब पदार्थ भासते हैं सो मनकरि भासते हैं, जैसे नेत्र भी होता है, परंतु प्रकाश नहीं होता; तौ नहीं भासता, तैसे विद्यमान पदार्थ मनविना नहीं भासते हैं. हे रामजी! इंद्रियोंते मन नहीं उपजा; परंतु मनते इंद्रियां उपजी हैं, अरु जेता कछु इंद्रियोंका विषय दृश्य जाल है, सो सब मनते उपजा है, जिन पुरुषोने मनको वश किया है सोई महात्मा पुरुष पंडित हैं, तिनको नमस्कार है. हे रामजी! नानाप्रकारके भूषण अरु फूल पहिरे हुए स्त्री प्रीतिसाथ कंठ मिलै, अरु जो चित्त इसका आत्मपदविषे स्थित है, तब वह उसको मृतककी कंधके समान है. अर्थ यह कि, उसको इष्ट अनिष्टका राग, द्वेष कछु नहीं उपजता, इष्ट अनिष्टविषे राग द्वेष मन उपजाता है; मनके स्थित हुएते राग द्वेष कछु नहीं उपजता. हे रामजी! एक वीतराग ब्राह्मण ध्यानस्थित वनविषे बैठा था तिसके हाथको कोऊ वनचर जीव तोड लेगया. परंतु तिसको कछु कष्ट न भया, काहेते कि मन स्थिर था, यही मन फुरनेकरि सुखको भी दुःख करता है, अरु अपने विषे स्थित हुए दुःखको भी सुख करता है. हे रामजी! कथाके श्रवणविषे बैठा है. अरु जो मन चिंतवनाविषे जाता है तब कथाके अर्थ समझविषे नहीं आते. अरु अपने गृहविषे बैठा है अरु मनके संकल्प करिकै पहाड ऊपर दौड़ता टूट पडता है. तब उसको प्रत्यक्ष अनुभव होता है, सो मनका भ्रम है, जैसी फुरणा मनविषे फुरती है सोई भासती है. जैसे स्वप्नविषे एक क्षणमें नदी, पहाड, आकाश आदि पदार्थ भासने लगते हैं तैसे यह पदार्थ भासते हैं. हे रामजी! अपने अन्तर सृष्टि भी मनके भ्रमते भासती है, जैसे जलके अन्तर अनेक तरंग होते हैं, जैसे वृक्षके अन्तर पत्र, फूल, फल, होत टास हैं, तैसे एक मनके अन्तर जाग्रत् स्वप्न आदिक भ्रम होते हैं, जैसे सुवर्णते भूषण अन्य नहीं होते, तैसे जाग्रत् अरु स्वप्न अवस्था

भिन्न नहीं होती, जैसे तरंग बुद्बुद जलते भिन्न नहीं, जैसे नटवा नाना प्रकरके स्वांगोंको लेकर अनेकरूप धरता है, तैसे मन वासना-करिकै अनेक रूपोंको धरता है. हे रामजी! जैसे स्पंदविषे दृढ होता है, तैसा ही अनुभव होता है, जैसे लवणराजाको भ्रमकरिकै चांडालीका अनुभव भया; तैसे यह जगत्का अनुभव मनोमात्र है; चित्तके भ्रमकरिकै भासता है. हे रामजी! जैसी जैसी प्रतिमा मनविषे होती है, तैसा ही इसको अनुभव होता है यह संपूर्ण जगत् मनोमात्र है. जैसे तेरी इच्छा होवै तैसे कर, जैसा जैसा फुरणा मनविषे होता है, तैसा होय भासता है, मनके फुरणेकरि देवता भी दैत्य होजाते हैं, अरु दैत्य भी मनके फुरणे करि देवता होजाते हैं मनुष्य नाग होजाते हैं; वृक्ष होजाते हैं, जैसे लवणराजा आपदा अनुभव करता भया. हे रामजी! मनके फुरणे करि मरणा होता है, बहुरि मनके फुरणेकरि जन्म होता है, संकल्प-करि पुरुषते स्त्री होजाती है अरु स्त्रीते पुरुष होजाता है, पिता पुत्र होजाता है, अरु पुत्र पिता होजाता है, जैसे नटवा शीघ्र ही अपने स्वांगकरि अनेक रूपोंको धारता है, तैसे अपने संकल्पकरि मन भी अनेक रूपोंको धारता है. हे रामजी! जीव निराकार है अरु मनक-रिकै आकारकी नाईं भासता है, तिस मनविषे जो मनन है, सो मूढता है तिस मूढताकरिकै जो वासना हुई है, तिस वासनारूपी पवनकरिकै यह जीवरूपी पत्र भटकता है, संकल्पके वश हुआ सुख दुःख भयको प्राप्त होता है, जैसे तेल तिलोंविषे रहता है, तैसे सुखदुःख मनविषें रहते हैं; जैसे तिलोंको कोल्हूविषे पीडता है, तब तेल प्रगट भासता है, तैसे मनको मनके संयोगते सुख दुःख प्रगट भासते हैं; जो संकल्प देश, काल, क्रियाकरिकै घनत्व होता है; अरु देश काल आदिक भी मनविषे स्थित होते हैं; अरु जिनका मन फुरता है; तिनको नानाप्रकारका क्षोभवान् जगत् भासता है. हे रामजी! जिनका मन आत्मपदविषे स्थित भया है तिनको क्षोभ भी दृढ आता है; परंतु मन आत्मपदते चलायमान नहीं होता; जैसे घोडेका असवार रणविषे जाय पडता है, तौ भी घोडा उसके वश रहता है; तैसे उसका मन जो विस्तारकी ओर जाता है; तौ भी

अपने वश ही रहता है; हे रामजी! जब मनकी चपलता वैराग्यकरिकै दूर होती है, तब मन वश होइजाता है; जैसे बंधनोंकरिके हस्ती वश होता है; तैसे जिस पुरुषका मन वश होता है; अरु संसारकी ओरतें निवृत्त होइकरि आत्मपदविषे स्थित भया है; सो श्रेष्ठ महापुरुष कहाते हैं अरु जिनका मन संसारकी ओर धावता है सो चिक्कडके कीट हैं अरु जिसका मन अचपल है शास्त्रके अर्थरूपी संगकरि अरु संसारकी ओरते निवृत्त होकरि एकाग्रभावविषे स्थित हुआ है, अरु आत्मपदके ध्यानविषे लगा हुआ है, सो संसारके बंधनते मुक्त होता है. हे रामजी! जब मनसों मनन दूर होता है, तब इसको शांति प्राप्त होती है, जैसे क्षीरसमुद्रते मंदराचल निकसा, तब शांतिको प्राप्त भया, जिस पुरुषका मन भोगोंकी ओर प्रवृत्त होता है, सो पुरुष संसाररूपी विषयके वृक्षका बीज होता है. हे रामजी! जिनका चित्त स्वरूपते मूढ हुआ है, अरु संसारके भोगोंविषे लगा है, सो बडे कष्टको पाते हैं, जैसे तृण जलके चक्रविषे आय क्षोभमान होता है, तैसे यह जीव मनभावको प्राप्त हुआ भ्रमको प्राप्त होता है, ताते इस मनको स्थित करौ, जो शांतात्मा होवो.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तवर्णनं
नाम दशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११० ॥

एकादशोत्तरशततमः सर्गः १११.

मनःशक्तिरूपप्रतिपादनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! यह चित्तरूपी महाव्याधि है, तिसकी निवृत्तिअर्थ मैं तुझको श्रेष्ठ औषध कहता हौं, सो तू सुन, यत्न भी अपना होवै अरु आप ही साध्य होता है अरु औषध भी आप होता है, सब पुरुषार्थ आपहीकरि सिद्ध होता है, ताते यत्नकरिकै चित्तरूपी वैतालको नष्ट करौ. हे रामजी! जो कछु पदार्थ तुमको रससंयुक्त दृष्टि आवै तिसको त्याग करौ, जब वांछित पदार्थका त्याग करौगे, तब मनकी जीत होवैगी, अचल पदको प्राप्त होहुगे, जैसे लोहेके साथ लोहेको

काटता है, तैसे मनसाथ मनको काटौ, अरु यत्नकरिकै शुभ गुणोंकरिकै चित्तरूपी वैतालको दूर करौ, अवस्तु देहादिकविषे जो वस्तुकी भावना है, तिसको त्याग, अरु वस्तु आत्मतत्त्वविषे जो देहादिककी भावना है, तिसका त्याग करके आत्मतत्त्वमें भावना जोडो. हे रामजी ! जैसे चित्तविषे पदार्थोंकी चिंतना होती है, तैसे आत्मपद पानेकी चिंतना कर, सत्य कर्मकी शुद्धता लेकर चित्तको यत्नकरिके चेतनसंवित्की ओर लगाओ अरु सब वासनाको त्यागिकै एकाग्रता करौ, तब परमपदकी प्राप्ति होवैगी. हे रामजी ! जिन पुरुषोंको अपनी इच्छा त्यागनी कठिन हुई है, सो विषयोंके कीट हैं, काहेते जो अशुभ पदार्थ मूढताकरिके रमणीय भासते हैं, तिन अशुभको अशुभ अरु शुभको शुभ जानना यह पुरुषार्थ है. हे रामजी ! शुभ अशुभ दोनों पहलवान हैं, तिन दोनोंविषे जो बली होता है, तिसका जय होता है, ताते शीघ्रही पुरुष प्रयत्न करिकै अपने चित्तको जीतै, जब तू अचित्त होवैगा, तब यत्नविना आत्मपदको प्राप्त होवैगा, जैसे बादलोंके अभाव हुएते यत्नविना सूर्य भास आता है, आत्मपदके आगे चित्तका फुरणा जो बादलवत् आवरण है, सो चित्तका फुरणा जब अभाव होवैगा, तब अयत्नसिद्ध आत्मपद भासैगा, सो चित्तके स्थित करनेका मंत्र भी आपकारि होता है, अरु जिसको अपना चित्त वश करनेकी भी शक्ति नहीं, तिसको धिक्कार हैं, वह मनुष्यविषे गर्दभ है, अपने पुरुषार्थकारिकै मनको वश करना सो अपनेसाथ परम मित्रता है, अरु अपने मनको वश किये विना अपना आपही शत्रु है, अर्थ यह जो मनको उपशम कियेविना घटीयंत्रकी नाईं संसारचक्रविषे भटकता है, अरु जिन मनुष्योंने मनको उपशम किया है, तिनको परमलाभ हुआ है. हे रामजी ! मनके मारणेका मंत्र यही है, कि दृश्यकी ओरते चित्तको निवृत्त करना, अरु आत्मचेतन संवित्विषे लगाना; ऐसा ही मनको जीतना है, आत्मचिंतनाकरिकै चित्तको मारना, आप करिकै सुखरूप है. हे रामजी ! इच्छाकरिकै मन पुष्ट रहता है, जब अंतरते इच्छा निवृत्त भई, तब मन उपशम होता है, जब मन उपशम हुआ, तब गुरुशास्त्रोंके उपदेश अरु मंत्र अर्थ आदिकोंकी अपेक्षा

नहीं रहती है. रामजी ! जब यह पुरुष असंकल्परूपी औषधकरिकै चित्तरूपी रोगको काटै, तब तिस पदको प्राप्त होवै, जो सर्व है, अरु सर्वगत शांतरूप है, अरु जो देह है, सो निश्चय करिकै मूढ मनने संकल्पकरिकै कल्पी है, ताते पुरुषार्थकरिकै चित्तको अचित्त करौ, तब इस बंधनते छूटौगे. हे रामजी ! शुद्ध चित्त आकाशविषे यत्नकरिकै चित्तको जोडौ, जब चिरकालपर्यंत मनका तीव्र संवेग आत्माकी ओर होवैगा तब चेतन चित्तका भक्षण करि लेवैगा, जब चित्तका चित्तत्व निवृत्त होजावैगा, तब केवल चेतन मात्र ही शेष रहैगा. हे रामजी ! जब जगत्की भावनाते तू मुक्त होवैगा, तब तेरी बुद्धि परमार्थ तत्त्वविषे जुडैगी अर्थ यह कि, बोधरूप होजावैगी, ताते इस चित्तको चित्तकरिकै ग्रासकरि ले, जब तू परमपुरुषार्थकरिकै चित्तको अचित्त करैगा तब महाअद्वैतपदको प्राप्त होवैगा. हे रामजी ! मनके जीतनेविषे और तुझको यत्न कछु नहीं, एक संवेदनका प्रवाह उलटावना है जो दृश्यकी ओरते निवृत्त करिकै आत्माकी ओर लगाना, इसकारि चित्त अचित्त होजावैगा, जित्तके क्षोभते रहित होना परमकल्याण है, ताते क्षोभते रहित होहु. जिनने मनको जीता है, तिनको त्रिलोकीका जीतना तृणसमान है. हे रामजी ! ऐसे शूरमा हैं, जो शस्त्रोंके प्रहारको सहते हैं, अरु अग्निकरि जलना भी सहते हैं, अरु शत्रुको मारते हैं, तब स्वाभाविक फुरणेके सहनेविषे तुझको क्या कृपणता है, जो समर्थ नहीं होता. हे रामजी ! जिसको अपने चित्तके उलटावनेकी समर्थता नहीं, सो नरोंविषे अधम है, जिसका यह अनुभव होता है, कि मैं जन्मा हौं, अरु मरौंगा, मैं जीव हौं. सो असत्यरूप प्रमाद चपलता करिकै भासता है,जैसे किसी स्थानविषे बैठा होवै, अरु मनके फुरणेकारि और देशविषे कार्य करने लगै, सो भ्रमरूप है. तैसेही आपको जन्म मरण भ्रमकरिकै मानता है. हे रामजी ! यह पुरुष मनरूपी शरीरसाथ इस लोक अरु परमलोकविषे भटकता है, सो मोक्ष होनेपर्यंत चित्तविषे भटकता है, जो चित्त भी मोक्षपर्यंत नाश नहीं होता, तब मुझको मृत्युका भय कैसे होता है ? तेरा स्वरूप नित्य शुद्ध बुद्ध सर्व विकारते रहित है; अरु यह लोक आदिक भ्रम चित्तविषे

मनके फुरनेते उपजा है, मनते इतर चित्तका रूप कछु नहीं अरु पुत्र भाई टहलुए आदिक जो स्नेहका स्थान हैं तिनके क्लेशकरि आपको क्लेश मानता है, सो भी चित्तकरि मानता है जब चित्त अचित्त होजावै, तब सर्व बंधनते मुक्त होवे. हे रामजी ! मैंने ऊर्ध्व अध सब स्थान देखे हैं; अरु सब शास्त्र भी देखे हैं, तिनको एकांत बैठिकरि वारंवार विचारे हैं, कि शांति प्राप्त होनेका और उपाय कोई नहीं, चित्तका उपशम करना ही उपाय है, जबलग चित्त दृश्यको चितवता है, तबलग शांति प्राप्त नहीं होती, अरु जब चित्त उपशम होवै तब इसको तिस पदविषे विश्राम होता है, जो नित्य है अरु शुद्ध है, सर्वात्मा है, सर्वके हृदयविषे चेतन आकाश है, परम शांतरूप है, तिस पदविषे विश्राम पावैगा. हे रामजी ! हृदयाकाशविषे जो चैतन्यचक्र है तिसका अर्थ यह कि, ब्रह्माकार वृत्ति है, जब मनका तीव्र संवेग तिसकी ओर होवै, तब सब ही दुखोंका अभाव होजावै, मनका मनभाव तिस ब्रह्माकार वृत्तिरूपी चक्रकरि नष्ट होजावेगा. हे रामजी ! जो संसारके भोग मनकरि रमणीय भासते हैं, सो जब रमणीय भासैं नहीं, तब जानिये कि मनके अंग काटे हैं, जेते कछु अहम् अरु त्वम् आदि शब्दार्थ भासते हैं, सो सब मनोमात्र भासते हैं, जब दृढविचार करिकै इनकी अभावना होवै तब मनकी वासना नष्ट होजावै, जैसे दात्रकरिके खेती नष्ट होजाती है, तैसे वासना नष्ट होनेते परमतत्त्व शुद्ध भासैगा, जैसे घटाके अभाव हुए शरदूकालका आकाश निर्मल भासता है, तैसे वासनाते रहित मन शुद्ध भासैगा. हे रामजी ! मन इसका परमशत्रु है, सो मन इच्छा संकल्पकरिकै पुष्ट होजाता है, अरु जब इच्छा कोऊ न उपजै तब आपही निवृत्त होजावैगा, जैसे अग्निविषे काष्ठ डारिये तब अग्नि बढ जाता है, अरु जब काष्ठ नहीं डारै, तब अग्नि आप ही नष्ट होजाता है, हे रामजी ! इस मनविषे जो संकल्पकलपना उठती है, तिसका त्याग करै, तब मन स्वतः नष्ट होवैगा जहां शस्त्र चलते हैं, अरु अग्नि लगता है, तहां शूरमा निर्भय होयके जाय पडते हैं, अरु शत्रुको मारते हैं प्राण जानेका भय रखते नहीं, तब तुझको संकल्प

त्यागनेमें क्या भय होता है? हे रामजी ! चित्त पसारनेविषे अनर्थ होता है, अरु चित्तके अस्फुरण हुएते कल्याण होता है, यह वार्ता बालक भी जानता है, जैसे पिता बालकको अनुग्रह करिकै कहता है, तैसे मैं तुझको समझाता हौं. जो मनरूपी एक शत्रुने भयको प्राप्त किया है, संकल्पकल्पना करिकै जेती कछु आपदा हैं, सो मनते उपजती हैं; जैसे सूर्यकी किरणोंकरिकै मृगतृष्णाका जल दीखता है, तैसे सब आपदा मनते दीखती हैं, जिसका मन स्थित हुआ है, तिसको क्षोभ कोऊ नहीं होता. हे रामजी ! प्रलयकालका पवन चलै अरु सप्तसमुद्र मर्यादाको त्यागिके इकट्ठे होजावैं अरु द्वादश सूर्य इकट्ठे होइके तपैं तौ भी मनते रहित जो पुरुष है, तिसको विघ्न कोऊ नहीं होता, वह सदा शान्तरूप है. हे रामजी ! मनरूपी बीज है, तिसते संसारवृक्ष उपजा है सप्तलोक तिसके पत्र हैं, अरु शुभ अशुभ सुख दुःख तिसके फल हैं, सो मन संकल्पते रहित नष्ट होजाता है, संकल्पके बढनेते अनर्थका कारण बढता है, ताते संकल्पते रहित जो चक्रवर्ती राजपद है, तिसविषे आरूढ हुआ परमपदको प्राप्त होवैगा, जिसपदविषे स्थित हुए चक्रवर्ती राजा तृणवत् भासता है. हे रामजी ! मनके क्षीण होने करिकै यह परमानंद उत्तम पदको प्राप्त होवैगा. हे रामजी ! संतोषकरिकै मन वश होता है, तब नित्य उदयरूप निरीह परमपावन निर्मल शम अरु अनंत सर्व विकार विकल्पते रहित आत्मपद शेष रहता है; सो तुझको प्राप्त होवैगा.

इतिश्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मनःशक्तिरूपप्रतिपादनं नामैकादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ १११ ॥

द्वादशोत्तरशततमः सर्गः ११२.

सुखोपदेशकथनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जहां जिसके मनविषे तीव्र संवेग होता है तिसको मन देखता है; अज्ञानकरिकै जो दृश्यका तीव्र संवेग भया है, तिस-

करिकै चित्त जन्ममरणादिक विकारोंको देखता है; जिसका निश्चय मनविषे दृढ होता है, तिसीका अनुभव करता है, जैसा मनका फुरणा फुरता है, तैसा रूप होजाता है, जैसे बर्फका शीतल शुक्लरूप है, अरु काजलका कृष्ण रूप है तैसे मनका रूप चंचल है. राम उवाच-हे ब्राह्मण! यह जो मनवेग आवेगका कारण चंचल रूप है, तिस मनकी चपलता जैसे निवृत्त होवैगी सो प्रकार तुम कहो. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! तू सत्य कहता है, चंचलताते रहित मन कहूं नहीं दीखता, काहेते कि मनका चंचल स्वभाव है. हे रामजी! जो मनविषे चंचल फुरणाशक्ति है, सो मानसी शक्ति है, सोई जगत् आडंबरका कारणरूप है; जैसे वायुका स्पंद रूप है; तैसे मनका चंचलरूप है, जहां चंचलताते रहित मन है तिसको मृतक कहते हैं. हे रामजी! तपका अरु शास्त्रका जो सिद्धांत है सो यही है, मनके मृतक रूपको मोक्ष कहते हैं, मन क्षीण हुएते सब दुःख नष्ट होजाता है, जब चित्तरूपी राक्षस उठता है, तब बडे दुःखको प्राप्त होता है, चित्तके लय हुएते अनंत सुखभोग प्राप्त होते हैं, अर्थ यह कि, परमानंद स्वरूप आत्मपद प्राप्त होता है. हे रामजी! मनविषे जो चंचलता है, सोई अविचारसिद्ध है, विचारते नष्ट होजाती है, चित्तकी चंचलतारूप जो वासना अंतर स्थित है, जब यह नष्ट होवैगी तब परमसारकी प्राप्ति होवैगी, ताते यत्नकरिकै चपलतारूप अविद्याका त्याग करौ, जब चपलता निवृत्त होवैगी, तब मन शांत होजाता है, सो मनका रूप सुन. हे रामजी! सत्य असत्यके मध्ये जडचेतनके मध्ये जो डोलायमान है, तिसका नाम मन है. हे रामजी! जब यह तीव्रताकरिकै जडकी ओर लगता है, तब आत्माके प्रमादकरि जडरूप होजाता है, अर्थ यह कि अनात्मविषे आत्मप्रतीति होती है, अरु जब विवेक विचारविषे लगता है, तब तिस अभ्यासकरि जडता निवृत्त होजाती है, केवल चेतन आत्मतत्त्व पडा भासता है, जैसे अभ्यास दृढ होता है, तैसा अनुभव इसको होता है, जैसे पदार्थकी एकता चित्तविषे होती है; अभ्यासके वशते चित्त तैसारूप होजाता है. हे रामजी! जिस पदके निमित्त मन पुरुषप्रयत्न करता है, तिस पदको प्राप्त होता है, अरु अभ्या-

सकी तीव्रताते भावितरूप होजाता है, इसी कार्यते तुझको कहता हौं कि, चित्तको चित्त करिकै स्थिर करौ, अरु अशोकपदका आश्रय करौ, जेते कछु भाव अभावरूप संसारके पदार्थ हैं, सो सब मनते उपजे हैं ताते मनके उपशम करनेका प्रयत्न करौ. मनके उपशम विना और उपाय छूटनेका कोई नहीं, अरु मनको मन ही निग्रह करता है, कोऊ समर्थ नहीं, जैसे राजासाथ राजा ही युद्ध करता है, और कोऊ समर्थ नहीं, तैसे मनसाथ मन ही युद्ध करता है. ताते तू मनहीके साथ मनको मार, जो शांतिको प्राप्त होवै. हे रामजी ! यह पुरुष बडे संसारसमुद्रविषे पडा है, तिसविषे तृष्णारूपी तंतुने इसका आवरण किया है, तिसकरि अधःको चला जाता है, अरुरागद्वेषरूपी घूमर घेरविषे कष्ट पाता है, तिसविषे तरनेके निमित्त भी मनरूपी बेडा है, जब शुद्ध मनरूपी बेडापर आरूढ होवै, तब संसार समुद्रते पार पहुँचै, अन्यथा कष्टको प्राप्त होवै. हे रामजी ! अपना मन ही बंधनका कारण फांसी है; तिसको मन ही साथ छेदन करौ, सो किसप्रकार छेदिये, दृश्यकी ओर मन जो सदा धावता है, तिसते वैराग्य करै, अरु आत्मतत्त्वका अभ्यास करै, तब छूटै; और उपाय छूटनेका नहीं, जहां जैसी वासनाकरि मन आशाकरि उठै तिसको तहां ही बोधकरिके त्यागेते तेरी अविद्या नष्ट होजावैगी. हे रामजी ! जब प्रथम भोगोंकी वासनाका त्याग करैगा, तब यत्नविना जगत्की वासना छूटि जावैगी, जब भाव अभावरूप जगत्का त्याग किया, तब निर्विकल्प सुखरूप होवैगा, जब सब दृश्य भाव पदार्थोंका अभाव होता है, तब भावना करनेहारा मन भी नष्ट होता है. हे रामजी ! जो कछु संवेदन फुरता है, इस संवेदनका होना जगत् है, अरु असंवेदन होना इसीका नाम निर्वाण है, अरु संवेदन होनेकरि दुःख है, ताते प्रयत्न करिकै संवेदनका अभाव करना कर्तव्य है, जब भावनाकी अभावना होवै, तब कल्याण होवै, जेते कछु भाव अभाव पदार्थोंका राग द्वेष उठता है, सो मनके अबोधकरि होता है, वे पदार्थ मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्या हैं, ताते इनकी आस्थाका त्याग करौ, यह सब अवस्तुरूप हैं, अरु तेरा स्वरूप नित्यतृप्त अपने आपविषे स्थित है.

इति श्रीयोग० उत्पत्ति० सुखोपदेशकथनं नाम द्वादशोत्तरशततमः सर्गः ११२

त्रयोदशोत्तरशततमः सर्गः ११३.

अविद्यावर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! यह जो वासना है, सो भ्रांतिकरिके उठी है जैसे आकाशविषे दूसरा चन्द्रमा भ्रांतिकरिकै भासता है, तैसे आत्माविषे जगत् भ्रांतिकरि भासता है इसकी वासना दूरते त्याग करौ. हे रामजी! जो ज्ञानवान् हैं, तिनको जगत् नहीं भासता अरु जो अज्ञानी हैं तिनको अविद्यमान विद्यमान भासता है अरु संसार नाम करिकै संसारको अंगीकार करते हैं अरु ज्ञानवान् सम्यक्दर्शीको आत्मतत्त्वते इतर सब अवस्तुरूप भासता है, जैसे समुद्र द्रवताकरिकै तरंग बुद्बुद होइके भासता है, परंतु जलते इतर कछु नहीं, तैसे अपने विकल्प करिकै भाव अभावरूप जगत्को देखता है, वस्तुते असत्यरूप है; आत्मतत्त्व ही अपने आपविषे स्थित है, सो नित्य शुद्ध सम अद्वैत तेरा अपना आप है, न तु कर्ता है न अकर्ता है, अरु कर्त्ता अकर्त्ता ग्रहण अरु त्याग भेदको लेकरि कहता है, तू दोनों विकल्पको त्यागिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु अरु जो कछु क्रिया आचार आय प्राप्त होवै, तिसको कर अरु अंतरते अनासक्त होहु, अर्थ यह कि, कर्तृत्व भोक्तृत्व अपनेविषे माननेते रहित होहु, काहेते कि, कर्तव्य आदिक तब होते हैं, जब कछु ग्रहण करना होता है, कछु त्याग करना होता है, अरु ग्रहण त्याग तब होते हैं, जब पदार्थ सत्य भासता है, सो तौ यह सब पदार्थ मिथ्या इंद्रजालकी मायावत् हैं. हे रामजी! मिथ्या पदार्थोंविषे आस्था करनी तिसकरि ग्रहण अरु त्याग करना क्या है, सब संसारका बीज अविद्या है, सो अविद्या स्वरूपके प्रमादकरि अविद्यमान ही सत्यकी नाईं हो भासती है. हे रामजी! चित्तविषे चेत्यमय वासना फुरती है, सो मोहका कारण है, संसाररूपी वासनाका चक्र है, जैसे कुम्हार चक्रपर चढायके मृत्तिकाते अनेक प्रकारके घट आदिक बर्त्तन रचता है, तैसे चित्तते जो चेत्यमय वासना फुरती है, सो संसारके पदार्थोंको उत्पन्न करती है अरु यह अविद्यारूप संसार देखनेमात्र बड़ासुंदर भासता है, परंतु अंतरते शून्य है अरु जैसे बाँस बडे

विस्तारको प्राप्त होते हैं अरु अंतरते शून्य हैं अरु जैसे केलेका वृक्ष देखनेको विस्तारसहित भासता है अरु अंतर तिसके सार कछु नहीं तैसे संसार असाररूप है अरु जैसे नदीका प्रवाह चला जाता है, तैसे संसार नाशरूप है. हे रामजी ! यह अविद्या कैसी है, जो पकडिये तौ ग्रहण कछु नहीं होती अरु कोमल भासती है अरु अत्यंत क्षीणरूप है प्रगटआकार भी दृष्ट आती है अरु मृगतृष्णाके जलसमान असत्यरूप है, अविद्या माया कहूं विकाररूप भासती है, कहूं स्पष्टरूप भासती है, कहूं दीर्घरूप भासती है, जिसकरि यह जगत् उपजता है अरु आत्माते व्यतिरेक भावको प्राप्त होती है अरु जड है, परंतु आत्माकी सत्ता पाइके चेतन होती है, चेतनरूप भासती है, तौ भी असत्यरूप है अरु एक निमेषके भूलने करिकै बडे भ्रमको दिखाती है, जहां निर्मल प्रकाशरूप आत्मा है, तिसविषे तमको दिखाती है, कि, मैं आत्माको नहीं जानता, जैसे उलूकको सूर्यविषे अंधकार भासता है; तैसे मूर्खोंको अनुभवरूप आत्मा नहीं भासता, जगत् भासता है अरु स्वरूपते असत्यरूप है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी विस्तारसहित भासती है, तैसे अविद्या नानारंग विलास; विकाररूप, विषमरूप, सूक्ष्मरूप, मृदु कहत कोमलरूप अरु कठिनरूप है अरु स्त्रीकी नाईं चंचल है अरु क्षोभरूप सर्पिणी है, सो तृष्णारूपी जिह्वासाथ मार डारती है अरु दीपककी शिखावत् प्रकाशमान है, जबलग स्नेह होता है, तबलग दीपकवत् प्रज्वलित होता है, जब तेल पूर्ण भया, तब निर्वाण होजाता है, तैसे जबलग भोगोंविषे प्रीति है, तबलग अविद्या वृद्ध रहती है जब भोगोंविषे स्नेह क्षीण भया, तब नष्ट होजाता है, रागरूप अविद्या तृष्णाविना नहीं रहती, अरु भोगरूप प्रकाश बिजलीकी नाईं चमत्कार करती है, इनके आश्रय मैं जो कार्य करौं, सो नहीं होता, क्षणभंगुररूप है, जैसे बिजली मेघके आश्रय है, तैसे अविद्या जडोंमूर्खोंके आश्रय रहती है अरु अविद्या तृष्णा देनेहारी है अरु भोगपदार्थ बड़े यत्नकरिकै प्राप्त होते हैं अरु जब प्राप्त होवैं तब अनर्थको उत्पन्न करते हैं, जो भोगोंके निमित्त यत्न करते हैं, तिनको मेरा धिक्कार है, काहेते जो भोग बडे यत्न करिकै प्राप्त होते हैं, फिर स्थिर

भी नहीं रहते, अरु अनर्थको उत्पन्न करते हैं,तिनकी तृष्णाकरिकै भटकते हैं,सो महामूर्ख हैं.हे रामजी!ज्यों ज्यों उसका स्मरण होता है त्योंत्यों अनर्थ होते हैं अरु ज्यों ज्यों इसका विस्मरण होता है,त्यों त्यों सुख होता है इस कारणते अत्यंत सुखका निमित्त विस्मरण है अरु स्मरण दुःखका निमित्त है. जैसे जिसकी दृष्टिमें क्रूर स्वप्न आता है बहुरि तिसके स्मरणविषे कष्टवान् होता है, जैसे और किसी उपद्रव प्राप्त होनेकी स्मृतिविषे अनर्थ जानता है; तैसे अविद्या जगत्के स्मरणविषे कष्ट अर्थ होता है; अविद्या एक मुहूर्तविषे त्रिलोकीको रचिलेती है; अरु एक क्षणविषे ग्रास लेती है, हे रामजी! जो स्त्रीका वियोगवान् रोगी पुरुष होता है, तिसको रात्रि कल्पकी नाईं व्यतीत होती है अरु जो बहुत सुखी होता है, तिसको रात्रि क्षणकी नाईं व्यतीत होजाती है, दुःखीको दीर्घरूप होती है, काल भी अविद्या प्रमादकरिके विपर्ययरूप होजाता है. हे रामजी! ऐसा कोऊ पदार्थ नहीं जो अविद्याकरिकै विपर्यय न होवै, शुद्ध निर्विकार निराकार अद्वैत तत्त्वविषे इसकरि कर्तृत्व भोक्तृत्वका स्पंद फुरता है. हे रामजी! जेता कछु जगज्जाल तुझको भासता है, सो अविद्याकरि भासता है जैसे दीपकका प्रकाश इंद्रियोंको रूप दीखाता है,तैसे अविद्या पदार्थोंको दिखाती है, सो सब असत्यरूप है, जैसे नाना प्रकारकी सृष्टि मनोराज्यविषे भासती है अरु जैसे स्वप्नसृष्टि भासती है, तिसविषे अनेक शाखासंयुक्त वृक्ष भासते हैं, सो तिसविषे असत्यरूप हैं, तैसे यह जगत् असत्यरूप है; जैसे मृगतृष्णाकी नदी बडे आडंबर सहित भासती है, तैसे यह जगत् है, जैसे मृगतृष्णाकी नदीको देखिकै मूर्ख मृग पानके निमित्त दौड़ते हैं अरु कष्टवान् होते हैं, तैसे मनुष्य नहीं दौड़ते हैं, जगत्के पदार्थोंको देखिकरि अज्ञानी दौडिके यत्न करते हैं, तैसे ज्ञानवान् यत्नतृष्णा नहीं करते. ज्यों ज्यों मूर्ख मृग दौड़ते हैं, त्यों त्यों कष्ट पाते हैं, शांतिको नहीं प्राप्त होते, तैसे अज्ञानी जगत्के भोगोंकी तृष्णा करते हैं, परंतु शांतिको नहीं प्राप्त होते, जैसे तरंग बुद्बुद सुंदर भासते हैं,परंतु ग्रहण कियेते कछु नहीं निकसते, तैसे शांतिका कारण जगतविषे सार पदार्थ कोऊ नहीं निकसता

जडरूप अविद्या चिदाकार हुई है, सो चेतनसाथ अभिन्नरूप है, परंतु भिन्नकी नाईं स्थित भई है,जैसे बबोहा अपनी तंतुको पसारता है, बहुरि अपनेविषे लीन करि लेता है, सो तंतु बबोहेसाथ अभिन्नरूप है, परंतु भिन्नकी नाईं भासती है. हे रामजी ! अग्निते धूमते निकसिकरि बादलका आकार होता है; सो रसको खैंचता है, बहुरि मेघ होइकरि वर्षा करता है, तैसे अविद्या आत्माते उपजिकरि आत्माकी सत्ता पाइकरि जगत्‌को रचती है, तिस जगत्‌विषे यह जीव घटीयंत्रकी नाईं भटकता है जैसे जेवरीसे बांधी हुई टीडी अध ऊर्ध्वको भटकती है, तैसे तिनकी वासनासाथ बांधाहुआ जीव भटकता है, जैसे चिक्कडते भेह उपजती है अरु तिसके अंतर छिद्र होते हैं, तैसे अविद्यारूपी चिक्कडते यह जगत उपजा है अरु विकाररूपी दृश्य इसविषे छिद्र हैं, सारभूत इसविषे कछु नहीं वही रूप है अरु जैसे अग्नि घृत अरु इंधनके संयोगते बढता जाता है, तैसे अविद्या विषयोंकी तृष्णाकरि बढ़ती जाती है, जैसे अग्नि घृत अरुइन्धनोंते रहित शांत होजाता है, तैसे तृष्णाते रहित अविद्या शांत होजाती है. जब विवेकरूपी जलका सिंचन होवै तृष्णारूपी घृत न पडै, तब अग्निरूप अविद्या नष्ट होजाती है, अन्यथा नहीं होती. हे रामजी ! यह अविद्या दीपककी शिखावत् है, अरु तृष्णारूपी तेलकरिकै अधिक प्रकाशमान होती है, जब तृष्णारूपी तेलते रहित होवै, अरु विवेकरूपी वायु चलै; तब दीपक शिखारूप अविद्या निर्वाण होजावैगी, अरु न जानिये कि, गहां कई अरु अविद्या कुहिडकी नाईं आवरण करती भासती है; परंतु ग्रहण करिये तौ कछु नहीं हाथ आती देखनेमात्र स्पष्ट दृष्टि आती है; परन्तु विचार कियेते अणुमात्र भी नहीं रहती, जैसे रात्रिको बड़ा अंधकार भासता है, परंतु जब दीपक लेकरि देखिये तब अंधकार अणुमात्र भी नहीं दृढ आता; तैसे अविद्या विचार कियेते नहीं रहती, बहुरि कैसी है, जैसे आकाशविषे नीलता अरु दूसरा चंद्रमा भ्रांतिकरि भासता है, जैसे स्वप्नकी सृष्टि भ्रममात्र भासती है जैसे बेडीपर चढेते तटके वृक्ष किनारे चलते भासते हैं; जैसे मृगतृष्णाकी नदी भ्रांतिकरिकै भासती है; अरु जैसे सीपीविषे रूपा अरु. जेवरीविषे सर्प

भ्रमकरिकै भासता है, तैसे अविद्यारूपी जगत् अज्ञानीको सत्य भासता है. हे रामजी ! यह जाग्रत जगत भी दीर्घकालका स्वप्न है; जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जलबुद्धि मृगके चित्तविषे आई है तैसे जगत्की सत्यता मूर्खके चित्तविषे रहती है. हे रामजी ! जिन पुरुषोंकी पदार्थोंविषे रति आरूढ हो रही है, तिनकी भावनाकरिकै उनका चित्त खैंचता है, अरु तिन पदार्थोंको अंगीकार करिकै बडे कष्टको पाते हैं, जैसे पक्षी आकाशको उडता है, अरु दाणेविषे उसकी प्रीति होती है, चुगनेके निमित्त पृथ्वीपर आता है, जब सुखरूप जानिकै चुगने लगता है तब जालविषे फँसता है, बहुरि कष्टमान होता है, जैसे कणकी तृष्णा पक्षीको दुःख देती है, तैसे जीवोंको भोगोंकी तृष्णा दुःख देती है. हे रामजी ! यह भोग प्रथम तौ अमृतकी नाईं सुखरूप भासते हैं अरु परिणामविषे विषकी नाईं होते हैं, मूर्ख अज्ञानीको यह सुंदर भासते हैं, जैसे मूर्ख पतंग दीपकको सुखरूप जानिकै वांछा करता है, परंतु जब दीपकसाथ स्पर्श करता है, तब नाशको प्राप्त होता है, तैसे यह भोगोंके स्पर्शकरि जीव नाश होते हैं; जैसे संध्याकालमें आकाशविषे लाली भासती है, तैसे अविद्याकरि जगत् भासता है, जैसे दूर वस्तु निकट भासती है अरु निकट वस्तु भ्रमकरिकै दूर भासती है, जैसे स्वप्नविषे बहुत कालमें थोडा भासता है अरु थोडे कालमें बहुत भासता है, तैसे यह जगज्जाल सब अविद्याकरिकै भासता है, सो अविद्या आत्मज्ञान करिकै नष्ट होजाती है, ताते यत्नकरिकै मनके प्रवाहको रोकौ. हे रामजी ! जो कछु दृश्यमान जगत् है. सो सब तुच्छरूप है; मिथ्या भावनाकरिकै जगत अंध हुआ है, बडा आश्चर्य है. हे रामजी ! अविद्याका रूप निराकार है अरु शून्य है, तिसने सत्य होइकरि जगत्को अंध किया है. अर्थ यह कि, जो असत्‌रूप पदार्थोंको सत् जानिकै यत्न करते हैं, जैसे सूर्यके प्रकाशविषे उलूकको अंधकार भासता है, भ्रांतिकरिकै सूर्य उनको नहीं भासता, तैसे चिदानंद आत्मा सदा अनुभवकरि प्रकाशता है अरु अविद्याकरिके नहीं भासता है, असत्यरूप अविद्याने जगत्को अंध किया है, जो विकर्मोंको कराती है अरु विचार कियेते रहती भी नहीं, तिसकरि अपना आप नहीं भासता,

बडा आश्चर्य है, जो धैर्यवान् धर्मात्माको भी अपने वश करिकै समर्थ होने नहीं देती अरु अविचारित सिद्ध अविद्यारूपी स्त्रीने पुरुषको अंध किया है, अनंत दुःखोंका विस्तार पसारती है, उत्पत्ति अरु नाश सुखदुःखको करती है, आत्माको भ्रमाती है, अनंत दुःख अज्ञानकरि दिखाती है, बोधते हीन करती है, काम क्रोध उपजाती है, मनविषे वासनाकरि यही भावना वृद्ध करती है. हे रामजी! यह अविद्या कैसी है, जो निराकार रूप है अरु इसने जीवको बांधा है, अनहोता जैसे स्वप्नविषे कोई आपको बांधा देखै, तैसी अविद्या है. स्वरूपते प्रमादका नाम अविद्या है और कछु नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे अविद्यावर्णनं नाम त्रयोदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११३ ॥

चतुर्दशोत्तरशततमः सर्गः ११४.

दोषपरिहारोपदेशवर्णनम्।

राम उवाच–हे भगवन्! जेता कछु जगत् दृष्टि आता है, सो सब अविद्याकरिकै उपजा है, सो अविद्या किस भाँत निवृत्त होती है? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जैसे बर्फकी पुतली क्षणविषे सूर्यके तेजकरिकै नष्ट होजाती है, तैसे अविद्या आत्माके प्रकाशकरिकै नष्ट होजाती है, जबलग आत्माका दर्शन नहीं भया, तबलग अविद्या पुरुषको भ्रम दिखाती है अरु नाना प्रकारके दुःखोंको प्राप्त कराती है, जब आत्माके दर्शनकी इच्छा होती है तब वही इच्छा मोहको नाश करती है, जैसे धूपकरि छाया क्षीणहोजाती है, तैसे आत्मपदकी इच्छाकरि अविद्या क्षीण होजाती है अरु सर्वगत देव आत्माके साक्षात्कार हुएते नष्ट होजाती है, जैसे द्वादश सूर्य उदित हुएते सब दिशाकी छाया नष्ट होजावै है. हे रामजी! जो दृश्य पदार्थकी इच्छा उपजती है; इसीका नाम अविद्या है, अरु तिस इच्छाके नाशका नाम विद्या है अरु तिस विद्याहीका नाम मोक्ष है; सो अविद्याका नाश संकल्पमात्र है, जेता कछु दृश्य

पदार्थ है तिसकी इच्छा न उपजै अरु केवल चिन्मात्रविषे चित्तकी वृत्ति स्थित होवै यह अविद्यानाशक उपाय है, जब सब वासना निवृत्त होवैं, तब आत्मतत्त्व प्रकाश आवै, जैसे रात्रिके क्षय हुएते सूर्य प्रकाशता है, तैसे वासनाके क्षय हुएते आत्मा प्रकाशकता है, जैसे सूर्यके उदय हुएते नहीं जानता कि रात्रि कहां गई, तैसे विवेकके उपजे नहीं जानता कि; अविद्या कहां गई. हे रामजी! यह पुरुष संसारकी दृढ़ वासनाकरिकै बांधा है, जैसे संध्याकालविषे मूर्ख बालक पर छाईविषे वैताल कल्पिकरि भयवान् होता है, तैसे यह पुरुष अपनी वासनाकरि भयको पाता है. राम उवाच- हे भगवन्! जो कछु दृश्य है, सो अविद्याकरि हुआ है अरु अविद्या आत्मभावकरि नाश होती है सो आत्मा कैसा है? वसिष्ठ उवाच- चेत्योन्मुखत्वते रहित अरु सर्वगत समान अनुभवरूप ऐसा जो चेतन तत्त्व अशब्दरूप है, सो आत्मा परमेश्वर है. हे रामजी! ब्रह्मते लेकरि तृणपर्यंत जो जगत् है सो सब आत्मा है और अविद्या कछु नहीं. हे रामजी! सब देहोंविषे नित्य चेतनघन अविनाशी पुरुष स्थित है तिसविषे मनोनाम्नी कल्पना आभास अन्यकी नाईं होइकरि भासती है अरु आत्मतत्त्वते इतर कछु नहीं. हे रामजी! कोऊ न जन्मता है, न मरता है, न कोऊ विकार है, केवल आत्मतत्त्व प्रकाशसत्ता समान है; अविनाशी चेत्यते रहित शुद्ध चिन्मात्र तत्त्व अपने आपविषे स्थित है, सो नित्य सर्वगत है, शुद्ध चिन्मात्र है, निरुपद्रव है, शांतरूप सत्ता समान; निर्विकार अद्वैत आत्मा है. हे रामजी! तिस एक सर्वगत देव सर्वशक्ति महात्माकी जब विभाग कलनाशक्ति होती है; तब तिसका नाम मन है, जैसे समुद्रविषे द्रवताकरिकै लहरी होती है, तैसे शुद्ध चिन्मात्रविषे जो चेत्यता होती है, तिसका नाम मन होता है, संकल्पकलनाकरिकै दृश्यकी नाईं भासती है, तिसी संकल्पकल्पना का नाम अविद्या है, संकल्पहीकरि उपजी संकल्पहीकरि नाश होजाती है, जैसे वायुकरि अग्नि उपजता है, अरु वायुकरि ही लीन होता है, तैसे संकल्पकरिकै अविद्यारूपी जगत् उपजता है अरु संकल्पहीकरि नष्ट होजाता है जब चित्तकी वृत्ति दृश्यकी ओर फुरती है, तब अविद्या बढती है, जब वृत्ति

दृश्यकी नष्ट होजावै, दृश्यको त्यागकरि स्वरूपकी ओर आवै, तब अविद्या नष्ट होजाती है. हे रामजी! जब संकल्प करता है; कि, मैं ब्रह्म नहीं, तब मन दृढ बंधनमय होता है अरु जब यही संकल्प दृढ करता है कि, सब ब्रह्म है, तब मुक्त होता है, अरु जब अनात्मविषे अहं अभिमानका संकल्प दृढ करता है, तब बंधन होता है अरु सर्व ब्रह्मके संल्कपकरि मुक्त होता है, दृश्यकासंकल्प बंध है अरु असंकल्प मोक्ष है, आगे जैसी तेरी इच्छा होवै तैसे कर, जैसे बालक आकाशविषे स्वर्णके कमलोंकी कल्पना करै, जो सूर्यवत् प्रकाश अरु सुगंधकरि पूर्ण है, सो भावनामात्र होते हैं, तैसे अविद्या भावनामात्र है, जो अज्ञानी जानता है, मैं कृश हौं, अति दुःखी हौं, वृद्ध हौं, हस्तपाद इंद्रियवाला हौं ऐसे व्यवहारकरि बंधमान होता है, अरु जब ऐसे जानै कि, मैं दुःखी नहीं, न मेरा देह है, न मेरे बंधन हैं, तब भावनाकरि मुक्त होता, न मैं मांस हौं, न अस्थि हौं, देहते अन्य साक्षी हौं, ऐसे निश्चयवान्को अन्तर अविद्याते मुक्त कहते हैं; जैसे सूर्यविषे अंधकार नहीं मणिके प्रकाशविषे अंधकार नहीं तैसे आत्माविषे अविद्या नहीं, जैसे पृथ्वीपर स्थित पुरुष आकाशविषे नीलता कल्पता है, तैसे अज्ञानी आत्माविषे अविद्या कल्पता है, वास्तव कछु नहीं. राम उवाच–हे भगवन्! सुमेरुको छाया आकाशविषे पडती है, अथवा तमकी प्रभा है अथवा और कछु है, यह आकाशविषे नीलता कैसे भासती है! वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! आकाशविषे नीलता है नहीं, यह शून्यता गुण है, न सुमेरुकी छाया है अरु न तम है, आकाश पोलमात्र है. हे रामजी! यह ब्रह्मांड तेजरूप है, इसका प्रकाश ही स्वरूप है; तमका स्वभाव नहीं, तम ब्रह्मांडके बाह्य है; अन्तर नहीं, ब्रह्मांडका प्रकाश स्वभाव है, अरु यह जो नीलता भासती है, सो दृढ शून्यताकरिकै आकाशविषे नीलता भासती है और नीलता कछु नहीं, जिसकी मन्द दृष्टि है तिसको नीलता भासती है; जिसकी दिव्य दृष्टि है, तिसको नीलता नहीं भासती, पोल भासती है, जैसे मन्द दृष्टिको आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे अज्ञानीको अविद्या सत्य भासती है, जैसे दिव्यदृष्टिवालेको

नीलता नहीं भासती, तैसे ज्ञानवान्को अविद्या नहीं भासती, ब्रह्मसत्ता ही भासती है. हे रामजी! जहांलग इसके नेत्रोंकी दृष्टि जाती है. तहांलग अवकाश भासता है अरु जहां वृत्ति कुण्ठित होती है, तहां इसको नीलता भासती है. हे रामजी! जैसे जिसकी दृष्टि क्षय होती है, तहां तिसको नीलता भासती है, तैसे जहां इस जीवकी आत्मदृष्टि क्षय होती है, तहां इसको अविद्यारूपी सृष्टि भासने लगती है, सो यह दुःखरूप है. हे रामजी! चेतनको छोडिकरि जो कछु स्मरण करता है, तिसका नाम अविद्या है अरु जब चित्त अचल होता है, तब अविद्या नष्ट होजाती है, असंकल्प होनेकरि अविद्या नष्ट होती है, जैसे आकाशके फूल तैसे अविद्या है, यह भ्रमरूप जगत् मूर्खोंको सत्य भासता है, वास्तवते कछु नहीं, मनके फुरणेते रहित होवै, तब जगत् कछु नहीं, भावनामात्र जगत् है, तिसीका नाम अविद्या है, सो मोहका कारण है, जब वही भावना उलटिकरि आत्माकी ओर आवै, तब अविद्या नाश होवै,जो वारंवार चिंतवना करणी इसका नाम भावना है जब भावना आत्माकी ओर वृद्ध होती है, तब आत्माकी प्राप्ति होती है, तथा अविद्या नष्ट होजाती है,मनके संसरणेका नाम अविद्या है, जब संसरण आत्माकी ओर हुआ, तब अविद्या नष्ट भई. हे रामजी! जैसे राजाके आगे मंत्री टहलुए कार्यको करते हैं,तैसे मनके आगे इंद्रियां कार्यको करती हैं. हे रामजी! बाह्यके विषय पदार्थोंकी भावना छोडिकै तुम अंतर आत्माकी भावना करौ, तब आत्मपदको प्राप्त होहुगे जिन पुरुषोंने अंतर आत्माकी भावनाका यत्न किया है, सो शांतिको प्राप्त भये हैं. हे रामजी! जो पदार्थ आदिविषे नहीं होता, सो अंतविषे भी नहीं रहता, ताते जो कछु भासता है, सो सब ब्रह्मसत्ता है. इतर कछु नहीं, जो कछु इतर भासता है, सो मननमात्र है अरु तेरा स्वरूप निर्विकार आदिअंतते रहित ब्रह्मतत्त्व है, तू क्यों शोक करता है, अपने पुरुषार्थ करिकै संसारके भोगवासना चित्तसों मूलते उखाडौ, अरु आत्मपदका अभ्यास करौ, जो दृश्यभ्रम मिटि जावै. हे रामजी! यह संसारकी वासनाका उदय होना, जरा मरण मोहको देनेहारा है, जब

स्वरूपका प्रमाद होता है, तब इसको यह कल्पना उठती है, आशारूपी अनंत फाँसियोंकरि बंधमान होता है अरु वासना वृद्ध होजाती है, कहता है, मेरे पुत्र हैं, मेरा धन है, मेरे बांधव हैं, यह मैं हौं वह और है, इसते लेकरि वासना तिसके चित्तविषे पत्पन्न होती है. हे रामजी! ऐसे शरीरसाथ मिलकरि यह कल्पना करता है, सो शरीर शून्यरूप है, जैसे वायुविरोलेसाथ तृण उड़ते हैं, तैसे अविद्यारूपी वासनाकरिकै शरीर उड़ते हैं. अहं त्वम् आदिक जगत् सब अज्ञानीको भासता अरु ज्ञानवान्को केवल ब्रह्म सत्य भासता है, पृथिवी, नदियांते लेकरि जगत् अज्ञानमात्रकरिकै भासता है अरु ज्ञानते नष्ट होजाता है, जैसे जेवरिके न जाननेकरि सर्प भासता है अरु जेवरीके सम्यक् ज्ञानकरि नष्ट होता है; तैसे आत्माके अज्ञानकरिकै जगत् भासता है आत्माके सम्यक् ज्ञान हुएते जगद्भ्रम नष्ट होजाता है, ताते आत्माकी भावना करौ. हे रामजी! जेवरीविषे दो विकल्प होते हैं, एक जेवरीका, दूसरा सर्पका, सो दोनों विकल्प अज्ञानीको होते हैं, ज्ञानीको दो विकल्प नहीं होते, जो जिज्ञासु होता है, तिसकी वृत्ति सत्य अरु असत्यविषे दोलायमान होती है अरु जो अज्ञानवान् है; तिसको विचारते रहित ब्रह्मतत्त्व ही भासता है, ताते तू अज्ञानी मत होहु, ज्ञानवान् होहु, जेती कछु जगत्की वासना हैं, उन सबको त्याग करु, तब शांतिमान् होवैगा. हे रामजी! संसारभोगकी वासना भी तब होती है, जब आनात्मविषे आत्माभिमान होता है, सो तू देहके साथ किसका अभिमान करता है, यह देह तौ मूक जड़ है अरु अस्थिमांसकी थैली है, ऐसी देह तू क्यों होता है, जबलग देहविषे अभिमान होता है, तबलग सुख अरु दुःखको भुगतता है अरु इच्छा करता है, जैसे काष्ठ अरु लाखका संयोग होता है अरु जैसे घट अरु आकाशका संयोग होता है, तैसे देह अरु देहीका संयोग होता है, जैसे चमडीके अंतर आकाश होता है, सो चमडीके नष्ट हुए आकाश नष्ट नहीं होता अरु जैसे घटके नष्ट हुएते घटाकाश नष्ट नहीं होता, तैसे देहके नष्ट हुएते आत्मा नाश नहीं होता. हे रामजी! जैसे मृगतृष्णाकी नदी भ्रांतिकरिकै भासती है तैसे अज्ञानकरिकै सुखदुःखकी कल्पना होती है, ताते सुख-

दुःखकी कल्पनाको त्यागिकरि अपने स्वभावसत्ताविषे स्थित होहु. बड़ा आश्चर्य है, जो ब्रह्मतत्त्व सत्यस्वरूप है, सो मनुष्य भूल गया है अरु जो असत्य अविद्या है, तिसको वारंवार स्मरण करता है, ऐसी अविद्याको तू मत प्राप्त होहु. हे रामजी! मनका जो मनन है, सोई अविद्या है, अरु यह अनर्थका कारण है, इसकरि जीव अनेक भ्रमको देखता है, मनके फुरणेकरि चन्द्रमाका बिंब अमृतकरि पूर्ण भी नरकके अग्निसमान भासता है, अरु बडी लहरी तरंगसहित अरु कमलोंसंयुक्त जलभी मरुस्थलकी नदीके समान भासता है; जैसे स्वप्नविषे मनके फुरणेकरिके नानाप्रकारके सुख अरु दुःखका अनुभव होता है, तैसे यह सब जगद्भ्रम चित्तकी वासनाकरिकै भासता है, जाग्रत् अरु स्वप्नविषे यह जीव विचित्र रचनाको देखता है, सो मनके फुरणेकरिकै देखता है; जो स्वर्गविषे बैठा होता है अरु स्वप्नविषे उसको नरकोंका अनुभव होता है तैसे आनंदरूप आत्माविषे प्रमादकरि इसको दुःखका अनुभव होता है. हे रामजी! अज्ञानी मनके फुरणेकरिकै शून्य अणुविषे संपूर्ण जगद्भ्रमको देखताहै, जैसे राजा लवण सिंहासनपर बैठा हुआ चांडालकी अवस्थाका अनुभव करत भया, ताते संसारकी वासना चित्तते त्याग देहु, यह संसारवासना बंधनका कारण है, सर्व भावोंविषे वर्तौ, परंतु राग, किसीविषे न होवै, जैसे स्फटिकमणि सब प्रतिबिंबको लेता है, परंतु रंग किसीका नहीं लेता, तैसे तुम सब कार्य करौ, परंतु द्वेष किसी विषे न होवै; ऐसा जो पुरुष है, सो निर्बंधन है, जिसको शास्त्रका उपदेश नहीं वह निजरूप है. हे रामजी जो कछु प्रकृत आचार तुमको आय प्राप्त होवै, देना, लेना, बोलना, चलना, आदिक सब कार्य करौ, परंतु अंतरते अभिमान कछु न करौ, निरभिमान होकरि कार्य करौ, यह ज्ञान सबते श्रेष्ठ है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे यथाकथितदोषपरिहारोपदेशवर्णनं नाम चतुर्दशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११४ ॥

पंचदशोत्तरशततमः सर्गः ११५.

सुखदुःखभोक्तव्योपदेशकथनम्।

वाल्मीकिरुवाच-इसप्रकार जब महात्मा पुरुष वशिष्ठजीने कहा तब कमलनयन रामजी वशिष्ठजीकी ओर देखत भया अरु अंतःकरण प्रफुल्लित होआया; जैसे रात्रिके मुँदेहुए कमल सूर्यके उदय हुए प्रफुल्लित हो आते हैं तैसे प्रफुल्लित होइकरि रामजी बोलत भये. राम उवाच-बडा आश्चर्य है, जो पद्मकी तंतुके साथ पर्वत बांधा है, अविद्यमान जो है अविद्या तिसने संपूर्ण जगत् वश किया है, अविद्यमान जगत्को वज्रसारवत् दृढ किया है, सब जगत् असत्यरूप है, सत्यकी नाईं स्थित किया है. हे भगवन्! इस संसारकी नटिनी जो माया है, तिसका रूप क्या है? अरु लवणराजा महापुण्यवान् था; सो ऐसी बडी आपदाको कैसे प्राप्त हुआ? अरु इंद्रजाल जो भ्रम दीखता भया, सो कौन था अरु उसको अपना अर्थ कछु न था सो इंद्रजाल कहां गया? अरु इस देही अरु देहका संबंध कैसे हुआ है? अरु शुभ अशुभ कर्मोंके फल भोगनेको कैसे समर्थ होता है? एते प्रश्नोंका उत्तर मेरे बोधके निमित्त कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! यह देहकाष्ठ माटीके समान है, जैसे स्वप्नविषे चित्तके फुरणेकरिकै देह भासता है, तैसे यह देह चित्तका कल्पित हुआ है अरु चित्त चेत्यसंबन्धकरिकै जीवपदको प्राप्त भया है, सो जीव चित्तसत्ताकरि शोभायमान है, तिस चित्तके फुरणेकरिकै संसार उपजा है, सो चित्त वानरके बालकसमान चंचल है, अरु अपने फुरणेरूप कर्मोंकरि नानाप्रकारके शरीरोंको धरता है, तिस चित्तके एते नाम हैं, अहंकार, मन, जीव इत्यादिक नाम चित्तके हैं, सो चित्त ही अज्ञान करिकै सुखदुःखको भोगता है, शरीर नहीं भोगता, अरु जो प्रबोध चित्त है, सो शांतरूप है, जबलग मन अप्रबोध है अरु अविद्यारूपी निद्रा करिकै सोया है, तबलग स्वप्नरूप अनेक सृष्टिको देखता है अरु जब अविद्यानिद्राते जागता है, तब नहीं देखता है.

हे रामजी! जबलग जीव अविद्यासाथ मलिन है, तबलग संसारभ्रमको देखता है अरु जब बोधवान् हुआ, तब संसारभ्रम निवृत्त होता है, जैसे रात्रिकरि कमल मुँद जाते हैं अरु सूर्यके उदय हुएते खिलि आते हैं, तैसे अविद्याकरि जगद्भ्रम देखता है, बोधकरिकै अद्वैतरूप होता है, ताते अज्ञान ही दुःखका कारण है, अविवेककरिकै पंचकोश जो देह है, तिस-विषे अभिमानी होइकरि जैसे कर्म करता है, तैसे ही भोगता है, शुभ करता है, तब सुख भोगता है; अशुभ करता है तब अशुभ दुःख भोगता है; जैसे नटवा अपनी क्रियाकरिकै अनेक स्वांगोंको धरता है, तैसे मन अपने फुरणेकरिकै अनेक शरीरोंको धरता है. जैसे कछु इष्ट अनिष्ट सुख-दुःख हैं; सो एक मनके फुरणविषे हैं, शरीरविषे स्थित होइकरि मन करता है. जैसे रथऊपर आरुढ होइकरि रथवाही चेष्टा करता है, जैसे कोटरविषे बैठिकै सर्प चेष्टा करते हैं, तैसे शरीरविषे स्थित होइ-करि मन चेष्टा करता है. हे रामजी! अचलरूप शरीरको मन चंचल करता है, जैसे वृक्षको वायु चंचल करता है, तैसे जड शरीरको मन चंचल करता है, जेती कछु सुखदुःखकी कलना हैं; सो मन ही करता है मन ही भोगता है, मन ही मनुष्य है. हे रामजी! अब लवणका वृत्तांत सुन, लवण राजा मनके भ्रमणे करिकै चांडाल हुआ, जेता कछु मन करिकै करता है; सो सफल होता है. हे रामजी! एक कालमें हरिश्चन्द्रके कुलते उपजा जो राजा लवण, सो एकांत बगीचेमें बैठिके विचारत भया कि, मेरा पितामह बडा राजा हुआ है अरु मेरे बडोंने राजसूय यज्ञ किये हैं, अरु मैं भी उनके कुलविषे उत्पन्न भया हौं, मैं भी राजसूय यज्ञ करौं, इस प्रकार चिंतना करिकै लवणने मानसी यज्ञका आरंभ किया, देवता, ऋषीश्वर, मुनीश्वर, सबनकी मनकरि पूजा करत भया. अग्नि, पवन आदिक देवताओंको पूजत भया, मंत्र अरु सामग्री जो कछु राजसूय यज्ञका कर्म है, सो संपूर्ण करत भया अरु मनहीकरि सब दक्षिणा देत भया. सवा वर्ष पर्यंत यज्ञ पूर्ण किया अरु मनहीकरि तिसका फल भोगत भया, ताते हे रामजी! मनहीकरि सब कर्म होता है, अरु मन ही भोगता है, जैसा चित्त है तैसा ही पुरुष है, पूर्ण चित्तकरि पूर्ण होता है अरु

नष्ट चित्तकरि नष्ट होता है, अर्थ यह कि, जिसका चित्त आत्मतत्त्वकरि पूर्ण है, सो पूर्ण है, अरु जो आत्मतत्त्वते नष्टचित्त है; सो नष्ट पुरुष है. हे रामजी ! जिसको यह निश्चय है कि, मैं देह हौं, सो नीचबुद्धि है, अनेक दुःखको प्राप्त होवैगा अरु जिसका चित्त पूर्ण विवेकविषे जागा है, तिसको सब दुःखोंका अभाव होजाता है, जैसे सूर्यके उदय हुएते कमलोंका सकुचना दूर होजाता है. अरु खिलि आते हैं, तैसे विवेकरूपी सूर्यके प्रकाशते रहित पुरुष दुःखोंकारि सकुच रहते हैं अरु जो विवेकरूपी सूर्यके प्रकाशकारि प्रफुल्लित भये हैं, सो संसारके दुःखको तरि जाते हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सुखदुःखभोक्तव्योपदेशकथनं नाम पंचदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११५ ॥

षोडशोत्तरशततमः सर्गः ११६.

सात्त्विकजन्मावतारवर्णनम् ।

राम उवाच-हे भगवन् ! राजा लवण राजसूर्ययज्ञ मनकारि करत भया अरु मनहीकारि तिसका फल भोगा, परंतु ऐसा साँबरी कौन था, जिसने उसको भ्रम दिखाया ? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जब वह साँबरी लवणराजाकी सभाविषे आया, तब मैं वहां था, मैं उसे देखा था, तब तहां मुझसों लवण अरु मंत्री पूछत भये कि, यह कौन था, तब मैंने उनको जो कछु कहा था, सो तुझको कहता हौं. हे रामजी ! जो पुरुष राजसूययज्ञ करता है, तिसको द्वादश वर्षकी आपदा प्राप्त होती है, तिस द्वादश वर्षमें अनेक दुःखको देखता है, तब राजा लवण जो मनकरि यज्ञ करत भया, तिसको आपदा भी मनकरि प्राप्त भई, स्वर्गते इंद्रने अपना दूत पठाया, आपदा भुगतावने निमित्त साँबरी आकारवान् होइकरि आया राजाको चांडालकी आपदा भुगताइकारि बहुरि स्वर्गको चला गया. हे रामजी ! जो कछु मैंने प्रत्यक्ष देखा था, सो तुझको कहा, ताते मन ही करता है अरु मन ही भोगता है, जैसा जैसा दृढ संकल्प मनविषे फुरता है, तिसके अनुसार इसको सुख दुःखका अनुभव होता है. हे रामजी ! जबलग

चित्त फुरता है, तबलग इसको आपदा प्राप्त होती है, जैसे ज्यौं ज्यों किंकरका वृक्ष बढता है, त्यों त्यों कंटक बढ़ते जाते हैं; तैसे मनके फुरणेकरि आपदा बढती जाती है अरु जब मन स्थिर होता है, तब आपदा मिट जाती है. ताते हे रामजी ! इस चित्तरूपी बर्फको विवेकरूपी तप्त करि डालौ, तब परमसारकी प्राप्ति होवैगी; यह चित्त ही परम सकल जगत् आडंबरका कारण है, तिसको तू अविद्या जान, जैसे वृक्ष, विटप, तरु; सो एकही वस्तुके नाम हैं, तैसे अविद्या, जीव, बुद्धि, अहंकार, सब फुरणेके नाम हैं, इसको विवेककरि लीन करौ. हे रामजी ! जैसा संकल्प इसविषे दृढ होता है, तैसा देखता है. हे रामजी ! वह कवन पदार्थ है, जो यत्न कियेते सिद्ध न होवै ? जो हठकारि पाछे न फिरै तौ सब कछु सिद्धता है, जैसे बर्फके वासनोंको जलविषे डारिये तब जलकी एकता ही होजाती है, तैसे आत्मबोधकरि सब पदार्थोंकी एकता होजाती है. राम उवाच-हे भगवन् ! तुमने कहा कि, सुखदुःख सब मनहीविषे स्थित हैं अरु मनकी वृत्ति नष्ट हुएते सब नष्ट होजाती है, सो चपल वृत्ति कैसे क्षय होवै ? वसिष्ठ उवाच-हे रघुकुलरूप आकाशके चन्द्रमा ! मैं तुझको मनके उपशमकी युक्ति कहता हौं, जैसे सवारके वश घोडा होता है, तैसे मन तेरे वश रहैगा. हे रामजी ! सब भूत ब्रह्महीते उपजे हैं, सो तिनकी उत्पत्ति तीन प्रकारकी है, एक सात्त्विकी, एक राजसी, एक तामसी. प्रथम जो शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्मविषे कलना उठी है, तिस बाह्यमुखी फुरणेका नाम मन हुआ; सो ब्रह्मारूप है, सो ब्रह्मासंकल्परूप आगे संकल्प करत भया, जैसा संकल्प किया तैसा आगे देखत भया, तिसने यह भुवनआडंबर कल्पा, तिसविषे जन्ममरण सुखदुःख मोह आदिक संसरणा कल्पा, इस प्रकार अपने आरंभसंयुक्त जैसे बर्फका कणका समुद्रते उपजिकारि सूर्यके तेजकरि लीन होजावै, तैसे आरंभकरि निर्वाण होगया, बहुरि संकल्पके वशते उपजा, बहुरि लीन होगया, इसप्रकार कई अनंत कोटि ब्रह्मांड ब्रह्माते उपजि उपजि लीन होगये हैं अरु; कई होवैंगे, अब जैसे ब्रह्मतत्त्वते उपजे हैं अरु जैसे मुक्त होते हैं, सो सुन. हे रामजी ! शुद्ध ब्रह्मतत्त्वते प्रथम मनसत्ता उपजी है, सो जब आका-

शको चेतती भई तब आकाश हुआ, तिसते बहुरि पवन हुआ, बहुरि अग्नि भया, तिसते आगे जल हुआ, तिसकी दृढताते पृथ्वी भई, तब चित्तशक्ति दृढ संकल्पकरि पांच भूतको प्राप्त भई, तब अंतःकरण जो सूक्ष्म प्रकृति है, सो पृथ्वी, तेज, वायुसाथ मिलकारि धान्यविषे आय प्राप्त होती है, तिसको पुरुष भोजन करते हैं, तब वह परिणाम होइकारि वीर्य रुधिररूप गर्भविषे निवास करती हैं, जिसते पुरुष उपजता है, सो पुरुष जन्ममात्रते वेदको पढने लगता है, बहुरि गुरुके निकट जाता है, बहुरि क्रमकरिकै तिसकी बुद्धि विवेकसों चमत्कारवान् होजाती है, ग्रहण अरु त्याग शुभअशुभविषे विचार उसको उपजता है, तब निर्मल अंतःकरणसहित पुरुष स्थिर होता है, तब क्रमकरिकै सप्त भूमिका चन्द्रमाकी नाईं तिसके चित्तविषे प्रकाशती हैं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सात्त्विकजन्मावतारो नाम षोडशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११६ ॥

सप्तदशोत्तरशततमः सर्गः ११७.

अज्ञानभूमिकावर्णनम्।

राम उवाच—हे सर्वशास्त्रोंके तत्त्ववेत्ता भगवन् ! कैसे वह सप्त भूमिका ज्ञानसे निवास करनेहारी हैं, सो संक्षेपते मुझको कहो. वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! सप्त भूमिका अज्ञानकी हैं अरु सप्त भूमिका ज्ञानकी हैं, तिनके अंतर्गत और अवस्था बहुत हैं, तिनकी संख्या कछु नहीं; ज्ञानकी अज्ञानकी असंख्य हैं; परंतु सप्तके अंतर्गत हैं; हे रामचंद्र ! आत्मरूपी वृक्ष है, अपना पुरुषार्थरूपी वसंतऋतु है, तिसकरि दो प्रकारकी वेलि उत्पन्न होती है, एक शुभ अरु एक अशुभ है, तिस पुरुषार्थरूपी रसके बढनेकरि फलकी प्राप्ति होती है, अब ज्ञान किसको कहते हैं सो सुन; प्रथम शुद्ध चिन्मात्रविषे चेत्य दृश्य फुरणेते रहित होइकारि स्थित होना इसीका नाम ज्ञान है, अरु शुद्ध चिन्मात्र अद्वैतविषे अहं संवेदना उठती है, सो स्वरूपते

गिरना है, सोई अज्ञानदशा है, हे रामचन्द्र! यह मैंने तुझको संक्षेपते ज्ञान अरु अज्ञानका लक्षण कहा है. शुद्ध चिन्मात्रविषे जिनकी निष्ठा है अरु सत्य स्वरूपते चलायमान नहीं होता अरु राग द्वेष किसी विषे नहीं सो ज्ञानी है अरु ऐसे शुद्ध चिन्मात्र स्वरूपते जो गिरे हैं, सो अज्ञानी हैं, जगत्के पदार्थोंविषे मग्न हैं, सो मूढधी हैं, इसते परे मोह कोऊ नहीं न हुआ है, यही परम मोह है, अरु स्वरूपस्थिति किसका नाम है, एक अर्थको छोडिकै जो संवित् और अर्थको प्राप्त होता है, जैसे जाग्रत्को त्यागकरि सुषुप्तिको प्राप्त होता है, तिसके मध्यविषे जो निर्मननरूप सत्ता है तिसाविषे स्थित होना, सो स्वरूप स्थिति कहाती है. हे रामचन्द्र! भलीप्रकार सर्व संकल्प जिसके शांत हुए हैं, अरु शिलाके अंतरवत् शून्य है कैसी शून्यता है कि निद्रा अरु जडताते रहित है तिस सत्ताविषे स्थित होना सो स्वरूपस्थिति कही है, कैसा स्वरूप है, अहं त्वम् आदिक फुरणेते रहित है, भेदविकारते रहित है, जडते रहित अचेत्य चिन्मात्र है, सो आत्मस्वरूप कहाता है, तिस तत्त्वतें फिरिकरि जो जीवोंकी अवस्था हुई है, सो सुन, हे रामचंद्र! बीजजाग्रत् १, जाग्रत् २, महाजाग्रत् ३, जाग्रत्स्वप्न ४, पंचम स्वप्न ५, स्वप्नजाग्रत ६, सुषुप्ति ७, ये सप्तप्रकार मोहकी अवस्था हैं, इनके अंतर्गत और अनेक हैं, मुख्य ये सप्त हैं, अब इनके लक्षण सुन, हे रामजी! प्रथम जो शुद्ध चिन्मात्र अशब्द पद तत्त्वसों चेतनताका अहं है, तिसका भविष्यत् जीव नाम होता है, सो आदि सर्व पदार्थोंका बीजरूप है, सो तिसका नाम बीजजाग्रत् है अरु तिसके अनंतर जो अहम् अरु यह मेरा इत्यादिक प्रतीति दृढ होगई, जन्मांतरविषे भासै, तिसका नाम जाग्रत् है अरु यह है, सो मैं हौं, इत्यादिक शब्दसाथ तन्मय होना, और जन्मांतरविषे जो यह दृढ प्रतीति होजावे, तिसका नाम महाजाग्रत है अरु महाजाग्रत्विषे बैठे हुए मन फुरता है, मनोराज्यविषे यह फुरणा दृढ हो भासै, अथवा अदृढ होवै, सो जाग्रतस्वप्न कहाता है, अरु दूसरा चंद्रमा भासै सीपीविषे रूपा भासै, मृगतृष्णाका जल भासै, इत्यादिक विपर्यय भासना

सो जागृत स्वप्न है अरु निद्रा आई तिसविषे मन फुरणे लगा, नाना-प्रकारके पदार्थ चित्तके फुरणेकरि भासने लगे, जब जाग उठा तब कहता है, मैं अल्पकालविषे केते पदार्थ देखे, निद्राकालविषे जो पदार्थ देखे थे, तिनको असत्यरूप जागृत्में जानता भया, तिस निद्राकालविषे फुरणेका नाम स्वप्न है अरु स्वप्न आया, तिसविषे दीर्घकाल बीत गया, प्रफुल्लित अपना बड़ा वपु देखत भया, तिसविषे अहं मम भाव दृढ हुआ अरु आपको सत्य जानिकरि जन्म मरण आदिक देखता भया यहां देह रहै, अथवा न रहैं, तिसका नाम स्वप्नजाग्रत है, वह स्वप्न महाजाग्रत रूपको प्राप्त होता है यह स्वप्नजाग्रत है; अरु इस छठि अवस्थाका जहां अभाव होजावै; जडरूप होवे; अरु भविष्यत् होवै; तिसका नाम सुषुप्ति है; तिस अवस्थाविषे घास, पत्थर, वृक्ष आदिक स्थित हैं. हे रामजी ! यह अज्ञानकी सप्त भूमिका कही हैं, तिनके एकएकविषे अवस्थाभेद हैं. हे रामचंद्र ! स्वप्न चिरकालकरिकै जाग्रतरूप होजाता है, तिसके अंतर्गत और स्वप्नजाग्रत् है, तिसके अंतर और है इसप्रकार एकएकके अंतर अनेक हैं, यह मोहकी घनता है, तिसकरि जीव भ्रमते हैं,जैसे जल नीचेते नीचेको जला जाता है, तैसे मोहते अनंतर मोहको पाते हैं. हे रामजी ! यह तुझको अज्ञानकी अवस्था कही हैं, नानाप्रकारके मोहभ्रम विकार हैं, तिनते तू विचारिकरि मुक्त होहु,जब तू महात्मा पुरुष आत्मविचार करिकै निर्मल बोधवान् होवैगा तब इस भ्रमको तर जावैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे अज्ञानभूमिकावर्णनं नाम सप्तदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११७ ॥

अष्टादशोत्तरशततमः सर्गः ११८.

ज्ञानभूमिकोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामचंद्र ! अब तू ज्ञानकी सप्तभूमिका सुन, भूमिका कहिये चित्तकी अवस्था सो ज्ञानकी भूमिका जाननेते बहुरि

मोहरूप चिक्कड़विषे डूबता नहीं. हे रामचंद्र ! मतोंवाले भूमिकाको बहुत प्रकारकरि कहते हैं अरु मेरा अभिमत पूछे तौ यह है, इसकरि सुगम निर्मल बोधको प्राप्त होता है, स्वरूपविषे जागनेका नाम ज्ञान है, तिस ज्ञानकी सप्त भूमिका हैं अरु जो मुक्त इन सप्त भूमिकाके परे हैं, सो विदेहमुक्त हैं. अब भूमिकाके नामभेद सुन. प्रथम शुभेच्छा, दूसरी विचारणा, तीसरी तनुमानसा, चतुर्थ सत्त्वापत्ति, पंचम असंसक्ति, षष्ठी पदार्थाभाविनी, सप्तम तुरीया. इसके सारको प्राप्त हुआ बहुरि शोक नहीं करता, अब इसका अर्थ श्रवण करु. हे रामजी ! जिसको यह विचार फुरि आवै कि, मैं महामूढ हो रहा हौं, मेरी बुद्धि सत्यविषे नहीं अरु संसारकी ओर लगी है, ऐसे विचार करिकै सच्छास्त्र अरु सज्जनोंकी संगति वैराग्यपूर्वक सत्यकी इच्छा होवै, इसका नाम शुभेच्छा है अरु सच्छास्त्रोंको विचा- I
रणा अरु संतोंकी संगति अरु विषयोंते वैराग्य सत्यमार्गका अभ्यास इनसहित सत्य आचारविषे प्रवर्त्तना, सत्यको सत्य जानना, अरु असत्यको असत्य जानिकरि त्याग करना इसका नाम विचार है, विचार अरु II
शुभेच्छासहित तत्त्वका अभ्यास करना. अरु इंद्रियोंके विषयोंते वैराग्य करना अरु मन सूक्ष्म होता है, सो तीसरी भूमिकाका नाम तनुमानसा III
है, तीन भूमिकाका अभ्यास करना अरु इंद्रियोंके अर्थते वैराग्य करना जगत्ते वैराग्य करना अरु श्रवण मनन निदिध्यासनकरि सत्य आत्माविषे स्थित होना, इसका नाम सत्त्वापत्ति है, तामें सत्य आत्माका IV
अभ्यास होता है यह चार भूमिका जो हैं संयमरूप तिसका फल जो है शुद्ध विभूति, तिस फलविषे असंसक्त रहना, तिसका नाम असंसक्ति V
है, दृश्यका विस्मरण अरु आत्मारामीपना अंतर बाहिरते नाना प्रकारके पदार्थोंका तुच्छ भासना, तिसका नाम पदार्थाभाविनी है, सो छठी भूमि- VI
का है. हे रामचंद्र ! चिरपर्यंत जो छठी भूमिकाका अभ्यासकरि भेदकलनाका अभाव होजाता है, स्वरूपविषे दृढ परिणाम होता है. छः भूमिका जहां एकताको प्राप्त होवैं, तिसका नाम तुरीया है, यह जीवन्मुक्तकी VII
अवस्था है, जीवन्मुक्त तुरीया पदविषे स्थित हैं, अर्थ यह कि तीनभूमिका

जगतकी जाग्रत अवस्थामें हैं अरु चौथी तत्त्वज्ञानीकी है, अरु पाँचवीं छठी अरु सातवी जीवन्मुक्तकी अवस्था हैं अरु तुरीयातीत पदविषे विदेहमुक्त होता है. हे रामचंद्र! जो पुरुष महाभाग्यवान् है, सो सप्तभूमिकाविषे स्थित होता है, सो आत्मारामी महापुरुष परमपदको प्राप्त होता है. हे रामचंद्र! जो जीवन्मुक्त पुरुष है, सो सुखदुःखविषे मग्न नहीं होते, शांतरूप होइके अपने प्रकृत आचारको करते हैं, अथवा नहीं करते, तौ भी तिनको बंधन कछु नहीं, तिनको क्रियाका बोध कछु नहीं रहता, जैसे सुषुप्त पुरुषके निकट जाइके क्रिया करै, तब बोध कछु नहीं, तैसे उसको क्रिया बोध कछु नहीं; सुषुप्तिवत् उन्मीलितलोचन हैं. हे रामचंद्र! जैसे सुषुप्त पुरुषको रूप अरु इंद्रियाँ इनका अभाव होजाता है, तैसे सप्त भूमिकाविषे अभाव होजाता है, यह सप्त भूमिका ज्ञानकी ज्ञानवान्का विषय हैं, पशु वृक्ष म्लेच्छवत् जो मूर्ख हैं, अरु पापाचारी हैं, तिनके चित्तविषे इनका अधिकार नहीं होता, जिसका मन निर्मल है, तिसको इन भूमिकाविषे अधिकार है अरु पशु म्लेच्छ आदिको भी इनका अभ्यास होवै तब वह भी मुक्त होजाते हैं, इसविषे संशय कछु नहीं है. हे रामचंद्र! आत्मज्ञानकरि जिनके हृदयकी गांठ टूटि गई है, तिनको संसार मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्या भासता है, वह मुक्तरूप है अरु जो संसारते विरक्त होइकरि इन भूमिकाविषे आये हैं अरु मोहरूपी समुद्रको तरे नहीं, पूर्णपदको प्राप्त नहीं भये अरु सप्त भूमिकामेंसे किसी भूमिकाविषे लगे हैं, सो भी आत्मपदको पाइकरि पूर्ण आत्मा होवैंगे, हे रामचंद्र! ए सप्त भूमिकाको प्राप्त हुए हैं, कोऊ चौथी, एकभूमिकाको, कोऊ दूसरीको, कोऊ तीसरीको प्राप्त हुए हैं, कोऊ चौथी, कोऊ पाँचवीं, कोऊ छठीको अरु कोऊ अर्ध भूमिकाको प्राप्त भया है, कोऊ गृहविषे स्थित है, कोऊ वनविषे है, कोऊ तापसी है, कोऊ अतीत है, इसते आदि लेकरि सो पुरुष धन्य हैं, अरु बड़े शूरमें वही हैं; जो बड़े दिक्पाल हस्ती हैं अरु बड़े बड़े शूरमे हैं, सो तिनके शूरत्व आगे तृणवत् हैं, काहेते जो और शूरत्व सुगम है, परंतु इंद्रियांरूपी शत्रुको जीतना कठिन है, जिन पुरुषोंने इनको जीता है, सो बडे शूरमे हैं,

जिस पुरुषने किसी भूमिकाको जीती है सो वंदना करने योग्य है तिसको चक्रवर्ती राजा जानना, राज्य अरु और बड़ा ईश्वरविभूति सब तिनको तृणवत् है, वह परमपदको प्राप्त हुए हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे ज्ञानभूमिकोपदेशवर्णनं नामाष्टादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११८ ॥

एकोनविंशोत्तरशततमः सर्गः ११९.

युक्तोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जैसे सुवर्णविषे भूषण फुरै अरु सो अपना सुवर्णभाव भूलि जावै अरु कहै मैं भूषण हौं, तैसे चित्तसंवेदन जिसस्वरूपते फुरा है, तिसते भूरिकारि अहंवेदना हुई है, ताते अहंकाररूप भया है, जो मैं यह कछु हौं. राम उवाच–हे भगवन्! सुवर्णविषे जो भूषण होते हैं, सो मैं जानता हौं; परंतु आत्माविषे अहंभाव कैसे होता है? सो कहो. वसिष्ठ उवाच–हे रामचंद्र! अहंकार आदिकोंका जो होना है सो असत्यरूप आगमापायी है, तिसका कछु भिन्नरूप नहीं, यह आत्माका चमत्कार है, वास्तवते द्वैत कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे अधऊर्ध्व जल ही जल और है कछु नहीं, तैसे परम तत्त्वविषे और विभागकल्पना कोई नहीं, शांतरूप है, जैसे समुद्रविषे द्रवताकरिकै तरंग आदिक भासते है, तैसे संवेदनकरिकै जगद्भ्रम भासते हैं, आत्माविषे नानाप्रकारका भ्रम भासता है, परंतु और कछु नहीं. जैसे सुवर्णविषे भूषण भासते हैं, जैसे जलविषे द्रवता और वायुविषे स्पंद भासते हैं तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, फुरणेते रहित शांतरूप परमपद है. हे रामजी! जैसे मृत्तिकाकी सेना होती है, तिसविषे हस्ती घोडा पशु ही होते हैं, सो सब मृत्तिकारूप हैं, इतर कछु नहीं, तैसे सब जगत् आत्मरूप है, भ्रमकरिकै नानात्व भासता है; आत्मा ही पूर्णरूप है, आपविषे स्थित है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है तैसे ब्रह्मविषे ब्रह्म स्थित है, सत्यविषे सत्य स्थित है, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब

होता है; तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे स्वप्नविषे दूर पदार्थ अदूर भासते हैं अरु अदूर दूर भासते हैं, सो भ्रममात्र है, तैसे आत्माविषे विपर्यय दृष्टिकरि जगत् भासता है. हे रामजी ! असत्य जगत् भ्रमकरिकै सत्‌रूप भासता है, वस्तुते असत्यरूप है, जैसे दर्पणविषे नगरका प्रतिबिंब होवै, जैसे मृगतृष्णाका जल होता है, जैसे आकाशमें दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे यह जगत् आत्माविषे भासता है, जैसे इंद्रजालके योगकरि आकाशविषे नगर भासै तैसे यह असत्यरूप जगत् अज्ञानकरिकै सत्य भासता है, जबलग आत्मविचाररूपी अग्निकरि अविद्यारूपी वल्लीको तू नहीं जलावैगा तबलग जगद्रूपी बेलि निवृत्त न होवैगी, अनेक प्रकारके सुखदुःख दिखावैगी, जब विचार करिकै मूल सहित इसको जलावैगा, तब शांतपदको प्राप्त होवैगा.

इतिश्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे युक्तोपदेशो नामैकोनविंशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११९ ॥

विंशोत्तरशततमः सर्गः १२०.

चांडालीशोकवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामचंद्र ! जैसे सुवर्णविषे भूषण होते हैं, सो मिथ्यारूप हैं; तैसे आत्माविषे अहं त्वम् आदिक अविद्यारूप हैं, जो लवणकी कथा तैंने सुनी है, सो अब बहुरि सुन. हे रामजी ! वह जो लवण राजा था, सो दूसरे दिन विचार करने लगा कि, यह जो मुझको भ्रम भासा है; परंतु सत्यरूप होइकरि देखा है, देश नगर मनुष्य आदिक पदार्थ मुझको प्रत्यक्ष दृष्टि आये हैं, सो बहुरि जायकरि देखौं कि, कैसी वार्त्ता है ! ऐसे विचारकरिकै दिग्विजय मान करिकै मंत्री अरु सेनाको साथ लेकर दक्षिण दिशाकी ओर चला; देशको लंघता लंघता विंध्याचल पर्वतको जाय प्राप्त हुआ; पूर्व अरु दक्षिण समुद्रके मध्यविषे अटवीको भ्रमता भ्रमता जाय प्राप्त हुआ, जैसे आकाशकी वीथियोंविषे सूर्य भ्रमता है, तैसे राजा भ्रमता देखता भया; जो वृत्तांत अरु देश ग्राम पदार्थ

भ्रमविषे देखे थे, सो प्रत्यक्ष देखता भया; तब विस्मयको प्राप्त भया. हे देव! यह क्या है, जो कछु मैं भ्रमविषे देखा था, सो अब मुझको प्रत्यक्ष भासता है, यह बडा आश्चर्य है! ऐसे विचारिकै आगे गया, तो क्या देखा कि, अग्निकरि वृक्ष जले हैं अरु अकाल दुर्भिक्ष पडा था, तिसकरि जो संबन्धी देखे थे, तिनकी चेष्टाके स्थान देखे अरु उनकी कथा सुनी इस प्रकार देखते देखते आगे गया, तो क्या देखा कि, चांडालशरीरकी सासु बैठी रुदन करती है. हे देव! मेरा पुत्र कहां गया? हे पुत्र! तुम कहां गये? मेरी कन्या जीर्णदेह होगई है चंद्रमाकी नाईं जिसका मुख; ऐसा राजकुमार था अरु मृगनयनी मेरी बेटी थी; अरु दुहिता दुहितियां थीं सो दुर्भिक्षताकरि सब जाते रहे; तिनके यह खानेके पदार्थ हैं, चेष्टाके स्थान हैं, रतिकाकी माला कंठविषे डारते थे अरु चेष्टा करते थे, जीवोंके मांस खाते थे अरु रुधिरपान करते थे वह कहां गये? इसते लेकरि पुत्र, पुत्री, भर्त्ता, जँवाईका नाम लेकरि रुदन करै और लोग आय बैठें, वह भी रुदन करैं, तब राजाने उसको रुदनते छुडाई अरु वृत्तांत पूछने लगा कि, तू किसनिमित्त रुदन करती है; किससे तेरा वियोग हुआ है?

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चांडालीशोकवर्णनं नाम विंशोत्तरशततमः सर्गः॥ १२०॥

एकविंशोत्तरशततमः सर्गः १२१.

चित्ताभावप्रतिपादनम्।

चांडाल्युवाच–हे राजन्! एक काल वर्षा होनेते रहिगई, काल पडा, जीवोंको बड़ा दुःख प्राप्त भया, सब मेरे पुत्र अरु दुहिते, दुहितियां, जँवाई, भर्त्ता आदिक बांधव थे, सो निकस गये वह कहूं कष्टको पावत मरिगये, उनके वियोग करिकै मैं दुःखी होइकारि रुदन करती हौं; तिनविना मैं शून्य होगई हौं, जैसे बिछुरी हुई कुंद कुम्हलाती है तैसे मैं कुम्हलाती हौं. हे रामचंद्र! जब इसप्रकार चांडालीने कहा, तब राजा

विस्मयको प्राप्त भया अरु मंत्रीके मुखकी ओर देखने लगा, जैसे कागजके ऊपर पुतली होती है, तैसे राजा होगया, विचारे और आश्चर्यवान् होवै, उस चांडालीसों वारंवार पूछै, वह बहुरि कहै और राजा आश्चर्यवान् होवै तब राजा इसको यथायोग्य धन देकारि चिरपर्यंत रहा, बहुरि अपने राजमंदिरको आता भया, जब प्रातःकाल हुआ, तब सभाविषे राजा मुझसे पूँछत भया. हे मुनीश्वर ! यह स्वप्न मुझको प्रत्यक्ष कैसे भया, उसको देखिकारि मैं आश्चर्यवान् हुआ हौं, जब इसप्रकार राजाने कहा, तब मैंने प्रश्नानुसार उसको युक्तिसों उत्तर दिया, उसके चित्तका संशय दूर किया, जैसे मेघको वायु दूर करै, सो तुझको कहता हौं. हे रामजी ! अविद्या ऐसी है; जो असत्यको शीघ्र ही सत्य दिखाती है अरु सत्यको असत्य कारि दिखाती है, बडे भ्रमको दिखानेहारी है. राम उवाच—हे भगवन् ! स्वप्न सत्य कैसे हुआ, यह मेरे चित्तविषे भारी संशय स्थित भया है, तिसको दूर करो. वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! इसविषे क्या आश्चर्य है ? अविद्याविषे सब कछु बनता है, स्वप्नविषे तू प्रत्यक्ष देख कि, घटते पट होजाता है अरु पटते घट होजाता है, स्वप्नमें अरु मृत्युविषे मूर्च्छाके अनंतर बुद्धि विपर्यय होजाती है, वासनाकारि वेष्टित जिनका चित्त है, तिनको जैसा संवेदन फुरता है, तैसे भासता है. हे रामजी ! जिनका चित्त स्वरूपते गिरा है, तिनको अविद्या अनेक भ्रम दिखाती है. हे रामजी ! जैसे मद्यपान करनेवाला अरु विष पीनेवाला भ्रमको प्राप्त होता है तैसे अविद्याकारि जीव भ्रमको प्राप्त होता है; एक और राजा था, तिसको यह अवस्था प्राप्त हुई थी सो सब लवण राजाके चित्तविषे फुर आई, जैसे उसकी चेष्टा हुई थी तैसे इसको फुरि आई, तब जानता भया कि, मैंने यह क्रिया करी है, जैसे अभोक्ता पुरुष आपको स्वप्नविषे भोक्ता देखता है कि, मैं राजा हुआ हौं अरु तृप्त हौं अरु भूखा सोया हौं अरु सोया तौ अकर्त्तारूप अरु आपको कर्त्ता देखता है कि, यह क्रिया मैंने करी है, स्वप्नविषे जैसे देशांतरको जावै, तब अचलरूप ही चलता भासता है, तैसे लवणको फुरि आया, सो प्रतिमा भासमात्र है, सभाविषे बैठे, चांडालीकी चेष्टा

लवणको फुरि आई, अथवा विंध्याचल पर्वतके चांडालोंको लवणकी प्रतिमा फुरी, लवणके चित्तका भ्रम उनको दृढ होगया है जैसे एक ही सदृश भ्रम अनेकको फुरि आता है, स्वप्न सदृश होता है, एक ही जेवरीविषे अनेकको सर्प भासता है, इसीप्रकार अनेक जीवोंको एक भ्रम अनेक हो भासता है. हे रामजी ! जेते कछु पदार्थ भासते हैं, तिनकी सत्तारूप संवेदन है, जैसे तिसविषे संकल्प दृढ होता है, तैसे होइकरि भासता है, जो पदार्थ सत्यरूप होइ भासता है, सो सत्य होता है अरु असत्यरूप हो भासता है, सो असत्य होजाता है, सब ही पदार्थ संवेदनरूप हैं. तीनोंकाल संवेदनकरि उपजे हैं, इनका बीज संवेदन है, सब पदार्थ अविद्यारूप हैं, अरु जैसे रेतीविषे तेल है, तैसे आत्माविषे अविद्या है. आत्माको अविद्याका संबंध कदाचित् नहीं. काहेते कि, जो संबंध तिसका होता है. जो समरूप होता है. जैसे काष्ठ अरु लाखका संबंध होता है, सो आकारसहित है, जो आकारते रहित होवै, तिसका संबंध कैसे होवै ? जैसे प्रकाश अरु तमका संबंध नहीं होता. चेतनके साथ चेतनका संबंध होता है सो सजातीयरूपका संबंध होता है, विजातीयका संबंध नहीं होता; ताते अविद्यारूप देहका आत्माके साथ संबंध नहीं, जो जड़के साथ आत्माका संबंध होवै तो आत्मा जड़ होवै, सो तौ आत्मा सदा चेतनरूप है, सर्वदा अनुभवकरिकै प्रकाशता है, तिसको जड़ कैसे कहिये ? जैसे स्वादको जिह्वा ग्रहण करती है और अंग नहीं करते, तैसे चेतके साथ चेतनकी, जडके साथ जडकी, जलके साथ जलकी, माटीके साथ माटी, अग्निके साथ अग्निकी, प्रकाशके साथ प्रकाशकी, तमके साथ तमकी, इसी प्रकार सर्व पदार्थोंकी सजातीयके साथ एकता होती है, विजातीयकी नहीं होती, ताते सब चैतन्याकाश हैं और पाषाणादिक दृश्यवर्ग कोऊ नहीं भ्रमकरिकै इनके आकार भानरूप भासते हैं, जैसे स्वर्णबुद्धिको त्यागिकरि नानाप्रकारके भूषण भासते हैं, तैसे जब अहंवेदना आत्माविषे फुरती है, तब अनेकरूप होइकरि विश्व भासता है. जैसे सुवर्णकी ओर देखिये तब भूषण स्वर्णरूप भासते हैं, जैसे जब ब्रह्मसत्ताकी ओर देखिये तब

सर्व जगत् ब्रह्मरूप भासता है. जैसे मृत्तिकाकी सेना बालकको अनेकरूप भासती है अरु बुद्धिमान्‌को एक मृतिकारूप है. तैसे अज्ञानीको यह जगत् नानारूप भासता है, ज्ञानवान्‌को एक ब्रह्मसत्ता ही भासती है, सो कौन ब्रह्म है, जो द्रष्टा दर्शन दृश्य, जिसविषे फुरे हैं, इनके मध्य अरु इनते रहित जो सत्ता है, सो ब्रह्मसत्ता है. हे रामचन्द्र! जो सत्ता अजड़रूप है अरु शिलाके कोशवत् निर्विकल्प है, तन्मयरूप है, तिसविषे जब स्थित होवै, जब समाधिविषे रहै, अथवा उत्पत्ति न होवैगी तब तुझको सब वही रूप भासैगा, हे रामचंद्र! जो पुरुष निर्मन सत्ताविषे स्थित भया है, सो शरीरके इष्टविषे हर्षवान् नहीं होता अरु अनिष्टविषे शोकवान् नहीं होता, निर्मनरूप होईकरि स्थित होता है, जैसे भविष्यत् नगरविषे जीव वसते हैं अरु अनेक चिंताकारि संयुक्त भासते हैं, सो सब तिसके चित्तविषे स्थित होते हैं जैसे पुरुष देशांतरको जाते हैं, ताको अनेक पदार्थ मार्गविषे इष्ट अनिष्टरूप भासते हैं, परंतु जहां जाना है, तिसकी ओर वृत्ति रहती है, मार्गके पदार्थोंविषे उनको राग द्वेष नहीं होता, तैसे तू होजा जैसे पत्थरसों जल नहीं निकसता जैसे जलसों अग्नि नहीं निकसता, तैसे आत्माविषे चित्त नहीं, अविचार भ्रमकरिकै चित्त जानता है, विचारकरिकै नहीं पाता, जैसे भ्रमकरिकै आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे आत्माविषे चित्त भासता है, वास्तवते कछु नहीं, सो सत्ता नित्य शुद्ध परमानन्दस्वरूप अपने आपविषे स्थित अनुभवरूप है, तिसके विस्मरणकरिकै दुःखको प्राप्त होता है, सो महामूर्ख है, तिसको अमृतरूपी चंद्रमाविषे अग्नि प्राप्त होता है, ताते हे रामचंद्र! तू सावधान होउ, यह जो फुरणा उठती है, इसीका नाम चित्त है, और तौ चित्त कोऊ नहीं, इस चित्तको दूरते त्याग करि,जो तू है सोई स्थित है. हे रामचंद्र! असत्यरूप चित्त ही संसार है, जो तिसको असत्य जानिकै त्याग नहीं करता है, सो आकाशके वनविषे विचरता है;तिसको धिक्कार है अरु जिनका मननभाव नष्ट हुआ है, सो महापुरुष संसारके पारको प्राप्त हुए हैं, परमपद निश्चितरूप हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्ताभावप्रतिपादनं नामेकविंशोत्तरशततमः सर्गः ॥ १२१ ॥

द्वाविंशोत्तरशततमः सर्गः १२२.

परमार्थनिरूपणम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! यह पुरुष भूमिकाको प्राप्त होता है तिसका क्रम सुन; प्रथम जन्मते पुरुषको कछुक बोध होता है, बहुरि क्रमकरिकै बडा होकारि संतोंकी संगति करता है, सदा दृश्यरूप जो संसारका प्रवाह है, तिसके तरनेको सत्य शास्त्र अरु संतजनोंकी संगति विना समर्थ नहीं होता, जब संतोंका संग अरु सच्छास्त्रोंका विचार करणेलगता है तब इसको ग्रहण अरु त्यागकी बुद्धि उपजती है कि यह कर्तव्य है, अरु यह त्यागने योग्य है, यह विचार उपजता है इसका नाम शुभेच्छा है, जब यह इच्छा हुई तब शास्त्रद्वारा इसको विचार उपजता है कि यह शुभ है अरु यह अशुभ हैं शुभको ग्रहण करना अशुभका त्याग करना; यथाशास्त्र विचरना इसका नाम विचार है, जब सम्यक् विचार दृढ होता है, तब मिथ्यारूप संसारकी वासना त्यागता है अरु सत्यविषे स्थित होता है इसका नाम तनुमानसा है, जब संसारकी वासना क्षीण होती है अरु सत्यका दृढ़ अभ्यास होता है, तब तिस वैराग्य अरु अभ्यासकारि सम्यक् ज्ञान उपजता है, आत्माका साक्षात्कार होता है, तिसका नाम सत्त्वापत्ति है, मनते वासना नष्ट होजाती है अरु तिसकारि सिद्धि आदिक पदार्थ प्राप्त होते हैं, तिनकी प्राप्तिविषे भी संसक्ति नहीं होती, स्वरूपविषे सदा सावधान रहता है, सिद्धि आदिक पदार्थ प्रारब्धकारि प्राप्त होते हैं, तिनको स्वप्नरूप जानता है और कर्मोंके फलविषे बंधमान नहीं होता, इसका नाम असंसक्ति है, इसके अनंतर मनकी तनुता होगई अरु स्वरूपकी ओर चित्तका परिणाम होता है, तब दृढ परिणाम करिकै व्यवहारका भी अभाव होजाता है, जो पलपलविषे कर्म करना, अथवा प्रारब्धवेगकारि करता है; परंतु उसके चित्तविषे फुरणा कछु नहीं फुरती, मन क्षीणभावको प्राप्त होता है, कर्ता हुआ भी वह कछु करता नहीं, देखता है तौ भी नहीं देखता, अर्ध सुषुप्तवत् होता है, कर्तव्यकी भावना नहीं फुरती, मन नहीं फुरता, इसका

नाम पदार्थाभाविनी योगभूमिका है, इसविषे चित्त लीन होजाता है, इस अवस्थाविषे जो अभ्यास होता है, सो स्वाभाविक चित्तका जब केतिक काल इस अभ्यासविषे व्यतीत होता है; अरु अंतरते पदार्थोंका अभाव दृढ होता है, तब तुरीयारूप होता है, तब जीवन्मुक्त कहाता है, इष्टको पायके हर्षवान् नहीं होता अरु तिसकी निवृत्तिविषे शोकवान् नहीं होता, केवल विगतसन्देह होता है, सो उत्तम पदको प्राप्त होता है. हे रामचन्द्र ! तू भी अब ज्ञातज्ञेय हुआ है, जो कछु जानने योग्य है, सो तुमने ज्योंका त्यों जाना है, सब पदार्थोंकी भावना तेरी तनुताको प्राप्त भई है, अब तेरे साथ शरीर रहै अथवा न रहै, हर्षशोकते रहित तू निरामय आत्मा है, तू स्वच्छ आत्मतत्त्वविषे स्थित है, सर्वगत सदा उद्योतरूप है, जन्ममरण जरा सुखदुःखते रहित तू आत्मरूप है, बोधरूप शोकते रहित है; तू अद्वैतरूप अपने आपविषे स्थित है, देह उदय भी होता है अरु लीन भी होजाता है, देश काल वस्तुके भेदते रहित जो आत्मा है; सो उदय अरु अस्त कैसे होवै ! हे रामचंद्र ! तू अविनाशी है, आपको नाशरूप जानिकरि शोक काहेको करता है, तू अमृत स्वच्छरूप है, जैसे घटके फुटणेकरि घटाकाश नाश नहीं होता, तैसे शरीरके नाश हुएते तू नाश नहीं होता; जैसे सूर्यकी किरणोंके जानेते मृगतृष्णाके जलका नाश होजाता है, कछु किरणें नाश नहीं होतीं, तैसे हे रामचन्द्र ! जेते कछु जगत्के पदार्थ भासते हैं, सो असत्यरूप हैं, तिनकी वासना भ्रांति करिकै होती है, तू तौ अद्वैतरूप है, यह सब तेरी छायामात्र है, तू किसकी वांछा करता है, शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये जो पांचों विषयरूप दृश्य हैं, सो तुझते भिन्न रंचकमात्र भी नहीं; सब तेरा स्वरूप है, तू भ्रमको मत प्राप्त होहु. हे रामजी! सर्वशक्ति आत्मा है, सोई आभासकरिकै अनेकरूप करिकै भासता है, जैसे आकाशविषे शून्यता शक्ति है, सो आकाशते भिन्न नहीं, तैसे आत्माविषे सर्वशक्ति है, जो जगत् द्वैतरूप होइकरि भासता है, सोई चित्तकरिकै दृढ हुआ है, सो तीन प्रकारके क्रमकरि त्रय लोक जगत् जीवको भ्रम हुआ है, एक सात्त्विक, एक राजस, एक तामस जब इन तीनोंको उपशम

होवै, तब कल्याण होता है, जब वासना क्षय होवैं, तब तिसके कर्म क्षय होजाते हैं, तिसकरि भी भ्रमनाश होजाता है, चित्तके संसरणेका नाम वासना है, सो कर्म संसार मायामात्र है, इसके नष्ट हुएते सब शांत होजाता है. हे रामजी ! यह संसार घटीयंत्रकी नाईं है, जीवरूपी टीडी वासनारूपी रस्सीके साथ बँधी हुई भ्रमती है, तू आत्मविचाररूपी शस्त्रकरिकै यत्नसों इसको काट अरु अविद्याको जबलग जानता नहीं, तबलग यह बडे मोहभ्रमको दिखाती है अरु जब इसको जानता है, तब बड़े सुखको प्राप्त करती है, अर्थ यह कि जबलग अविद्याको वस्तुतः नहीं जानता कि, क्या है? तबलग संसार सत्य भासता है तिसविषे अनेक भ्रम भासते हैं, जब इसको स्वरूपते जाना कि, वस्तु कछु नहीं, भ्रमरूप है, तब संसारवृत्तिको त्याग करता है अरु स्वरूपको प्राप्त होता है, यह संसार भ्रमते उपजा है अरु उसीकरि भोग भोगता है; लीला करता है, बहुरि ब्रह्महीविषे लीन होजाता है. हे रामचंद्र ! शिवतत्त्व जो है; सो अनंतरूप है, अरु अप्रमेय निर्दुःखरूप है, सब भूत तत्त्वते उपजते हैं, जैसे जलते तरंग अरु अग्निते उष्णता होती है, तैसे ब्रह्मते जगत् होता है, अरु तिसविषे स्थित है सो वहीरूप है, सो सबका आत्मा है, सो आत्मा ही ब्रह्मकरि कहाता है; तिसके जाननेते जगत् जानता है, अरु तीनों लोकोंको जाननेते उसको नहीं जानता अच्युत निर्वाणरूप है, तिसके जानने निमित्त शास्त्रकारोंने ब्रह्म आत्मा आदिक नाम कल्पे हैं, वास्तवते नामसंज्ञा कोऊ नहीं. हे रामचंद्र ! जो पुरुष रागद्वेषते रहित है, इंद्रियों अरु विषयोंके संयोगवियोगविषे द्वेषको नहीं प्राप्त होता जो एक चेतन शुद्ध संवित् अनुभवरूप है, अविनाशी अरु आकाशते भी स्वच्छ निर्मल है, तिसविषे जगत् ऐसे स्थित है, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब होता है, अन्तर्बाह्यरूप होइकरि स्थित है, ऐसे जो जानता है, तौ लोभ मोहादिकते भिन्न नहीं अरु बोध आत्माते व्यतिरेक नहीं, वहीरूप है, ताते द्वैतरूप कछु नहीं. हे रामचंद्र ! देहते रहित निर्विकल्प चेतन तेरा आकार है, लज्जा मोह आदिक विकार तुझको कहां है, तू आदिरूप है, लज्जा हर्ष भय आदिक असत्यरूप हैं, तू क्यों दुर्बुद्धि

मूर्खकी नाईं विकल्पजालको प्राप्त होता है? तू चेतन आत्मा अखंडरूप है; देहके खंडित हुएते आत्माका अभाव नहीं होता, असम्यक्दर्शी भी ऐसे मानते हैं, तो बोधवानोंकी क्या कहानी है? हे रामचंद्र ! चित्तसंवेदन जो जानता है, तिसके अनुभव करनेवाली जो सत्ता है जो सूर्यके मार्ग करिकै भी नहीं रोकी जाती, तिसको तू चित्तसत्ता जान, सोई पुरुष है, शरीर पुरुषरूप नहीं. हे रामचंद्र ! शरीर सत्य होवै अथवा असत्य होवै, पुरुष तौ शरीर नहीं, देहके रहने अरु नष्ट होनेकरि आत्मा ज्योंका त्योंही है; अरु यह जो सुखदुःखको ग्रहण करते हैं, सो देह इंद्रियादिक चिदात्माको नहीं ग्रहण करते, जिन पुरुषोंका अज्ञानकरिकै देहविषे अभिमान हुआ है, तिनको सुखदुःखका अभिमान होता है, ज्ञानवान्को नहीं होता, आत्माको दुःख स्पर्श नहीं करता, सब विकारोंते रहित है, मनके मार्गते अतीत शून्यकी नाईं स्थित है, तिसकों सुखदुःख कैसे होवैं ? अरु देहसाथ मिला हुआ भासता है, सो स्वरूपको त्यागिकरि दृश्यके चेतनेकरि देहादिक भ्रम भासते हैं अरु वासनाके अनुसार देहके साथ संबंध होता है, जैसे भ्रमर अरु कमलोंका संयोग होता है, सो देहपिंजरेके नाश हुएते आत्माका नाश तौ नहीं होता; जैसे कमलके नाश हुएते भ्रमरका नाश नहीं होता ताते तू क्यों वृथा शोक करता है. हे रामजी ! जगत्को असत्य जानिकरि अभावना करै, मन निरिच्छित हो; साक्षीभूत सम स्वच्छ निर्विकल्प चिदात्माविषे जगत् होइ भासता है, जैसे मणि प्रकाशरूप होइ भासता है, बहुरि जगत अरु आत्माका संबंध कैसे होवै ? जैसे अनिश्चित दर्पणविषे प्रतिबिंब आय प्राप्त होता है, तैसे आत्माको जगत्का संबंध भासता है. जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब द्वैतरूप होता है, तैसे आत्माविषे जगत्भेद भी अभेदरूप है, जैसे सूर्यके उदयकरि सब जीवोंकी क्रिया होती है, जैसे दीपककरिकै पदार्थोंका ग्रहण होता है, तैसे आत्मसत्ताकरि, जगत् पदार्थका अनुभव होता है, यह जगत चैतन्यतत्त्व के स्वभावते उपजा है, प्रथम आत्माते मन उपजा है, तिस मनकरि यह जगज्जाल रचा है, वास्तवते आत्मसत्ताविषे आत्मसत्ता स्थित है; जैसे

शून्याकाश शून्यताविषे स्थित है तिसविषे जगत् भासा है; सो ऐसे है, जैसे आकाशविषे नीलता; इंद्रधनुष भासता है; सो नानारूप होता है; परंतु स्वरूपते शून्य है, हुआ तौ कछु नहीं तैसे यह जगत् कछु हुआ नहीं. हे रामचंद्र! यह जगत् चित्तविषे स्थित है; सो चित्त संकल्परूप है, जब संकल्प क्षय होता है, तब चित्त नष्ट होजाता है; जब चित्त नष्ट हुआ तब संसाररूपी कुहिड नष्ट होजाती है, निर्मल शरत्कालके आकाशवत् आत्मसत्ता प्रकाशती है. सो चेतनमात्र सत्ता एक अज आदि अन्त मध्यते रहित है, तिसते स्पंद फुरा है; सो संकल्परूप ब्रह्मा होकरि स्थित भया है, तिसते आगे नाना प्रकारका जगत् रचा है, सो जगत् शून्यरूप है, मूर्ख बालकको सत्यरूप भासता है, जैसे बालकको परछाईंविषे वैताल भासता है, जैसे जीवोंको अज्ञानकरि देहाभिमान होता है, असत्यरूप ही सत्य होइकरि भासता है जब सम्यक् ज्ञान होता है, तब लीन होजाता है, अपने आपते उपजिकरि लीन होजाता है. जैसे समुद्रते तरंग उपजिकरि समुद्रविषे लीन होता है; तैसे आत्माविषे जगत् उपजिकरि आत्माविषे लीन होता है.

इतिश्रीयोगवासिष्ठे आर्षे महारामायणे शतसाहस्र्यां संहितायामुत्पत्तिप्रकरणे मोक्षोपाये परमार्थनिरूपणं नाम द्वाविंशोत्तरशततमः सर्गः ॥ १२२ ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठे तृतीयमुत्पत्तिप्रकरणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

॥ ॐ सच्चिदानन्दाय नमः ॥

अथ श्रीयोगवासिष्ठे चतुर्थस्थितिप्रकरणम् ४.

प्रथमः सर्गः १.

जगन्निराकरणवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! अब स्थितिप्रकरण श्रवण कर, जिसके सुननेते जगत् निर्वाणताको प्राप्त होवै; कैसा है, जगत् ?अहंता है आदि जिसके ऐसा जो दृश्यरूप जगत् है, सो भ्रांतिमात्र है, जैसे आकाशविषे नाना प्रकारके रंगसहित इंद्रधनुष भासता है, सो असत्‌रूप है; तैसे यह जगत् है, जैसे द्रष्टा विना अनुभव होता है; अरु जैसे निद्रा बिना स्वप्न भासता है, तैसे भविष्यत् नगर चित्तके फुरणेकरि भासता है, तैसे भ्रमकरिकै जगत् चित्तविषे स्थित हुआ है, जैसे वानर रत्तिकाको इकट्ठी करि अग्निकी कल्पना करते हैं; सो तिसकरि शीत निवृत्त नहीं होता, भावनामात्र अग्नि होता है, तैसे यह जगत् भावनामात्र है, जैसे आकाशविषे रत्नमणिका प्रकाश अरु गंधर्वनगर भासता है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी भासती है, तैसे यह जगत् असत्‌रूप भ्रमकरिकै सत्‌रूप हो भासता है, जैसे संकल्प दृढ अनुभवकरिकै भासता है, तौ भी असत्‌रूप है, जैसे कथाके अर्थ चित्तविषे भासते हैं; तैसे निःसाररूप जगत् चित्तविषे साररूप हो भासता है, जैसे स्वप्नविषे पहाड, नदियां भास आती हैं, तैसे सब बडे भूत भी भासते हैं, तौ भी आकाशवत् शून्यरूप हैं, जैसे स्वप्नविषे अंगनाके साथ प्रेम करता है, सो अर्थते रहित असत्‌रूप है, जैसे मूर्तिके लिखे अग्नि सूर्य होते हैं, परंतु तिनते अर्थ सिद्ध कछु नहीं होता तैसे यह जगत् भी प्रत्यक्ष भासता है; परंतु वास्तव कछु नहीं होता, अर्थते रहित है, जैसे चित्रकी लिखी कमलिनी सुगंधते रहित होती है तैसे यह जगत् शून्यरूप है, जैसे आकाशविषे इंद्रधनुष भासता है, जैसे केलेका स्तंभ सुंदर भासता है; परंतु तिसविषे सार कछु नहीं निकसता; तैसे यह जगत् देखनेमात्र रमणीय भासता है, परंतु अत्यंत अस-

तद्रूप है, इसविषे सार कछु नहीं निकसता, प्रत्यक्ष देखनेविषे अनुभव होता है, परंतु मृगतृष्णाकी नदीवत् असत्‌रूप है; है कछु नहीं. राम उवाच-हे भगवन्! सर्व संशयके नाशकर्त्ता! जब महाकल्पक्षय होता है, तब दृश्यमान जगत् सब आत्मारूप बीजविषे जाय लीन होता है, जैसे बीजविषे अंकुर रहता है, बहुरि तिसते उपजता है, तिसकरि स्थित होता है, बहुरि तिसीविषे लीन होता है, यह जो बुद्धि है, सो ज्ञानकी है, किंवा अज्ञानकी है? याते सर्व संशयोंके निवृत्तिके अर्थ मुझको स्पष्ट करिकै कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! इस प्रकार महाकल्पके क्षय हुए बीजरूप आत्माविषे जगत् स्थित होता है, ऐसे कहते हैं, सो परम अज्ञानी हैं, वे महामूर्ख बालक हैं, जो ब्रह्मको जगत्‌का कारण बीजते अंकुरकी नाईं कहते हैं, सो मूर्खका कहना है, बीज तौ दृश्यरूप इंद्रियहूका विषय होता है, जैसे वटबीजते अंकुर होता है, बहुरि विस्तारको पाता है, सो इंद्रियहूका विषय है अरु जो मनसहित षट् इंद्रियते अतीत है, अर्थ यह जो इंद्रियहूँका विषय नहीं, आकाशते भी अधिक निर्मल है, तिसको जगत्‌का बीज कैसे कहिये? आकाशते भी अधिक सूक्ष्म परम उत्तम अनुभवकरि उपलब्ध है; नित्य प्राप्त है तिसको बीजभाव कहना नहीं बनता. हे रामजी! जो शांत सूक्ष्म सदा प्रकाश सत्ता है, अरु दृश्य जगत जिसविषे असत्‌रूप है, तिसको बीजरूप कैसे कहिये? जो बीजरूप कहना नहीं बनता तब तिसते जगत कैसे कहिये! आकाशते अधिक सूक्ष्म निर्मल परमपदविषे, सुमेरु समुद्र आकाश आदिक जगत् नहीं बनता, जो किंचन अरु अकिंचन है; निराकार सूक्ष्मकी नाईं सत्ता है, तिसविषे विद्यमान जगत् कैसे होवै? महासूक्ष्मरूप है, दृश्य तिसविषे विरुद्धरूप है जैसे धूपविषे छाया नहीं, जैसे सूर्यविषे अंधकार नहीं, जैसे अग्निविषे बर्फ नहीं, जैसे अणुविषे सुमेरु नहीं होता, तैसे आत्माविषे जगत् नहीं होता, सत्यरूप आत्माविषे असत्यरूप जगत् कैसे होवै? वटका बीज भी साकाररूप होता है अरु निराकाररूप आत्माविषे साकाररूप जगत् होना अयुक्त है, हे रामजी! कारण दो प्रकारका होता है, एक समवायिकारण, दूसरा निमित्तकारण है, सो आत्मा दोनों

कारणभावते रहित है, निमित्तकारण तब होता है, जब कार्यते कर्ता भिन्न होता है, आत्मा अद्वैत है, तिसते निकट दूसरी वस्तु है ही नहीं, कर्ता कैसे होवै अरु किसका होवै ? सहकारी भी नहीं, जिसकारि कार्यको करे, मन अरु इंद्रियहूते रहित निराकार अविकृतरूप है अरु समवायिकारण भी परिणामकरिकै होता है, जैसे वटबीज परिणामकरि वृक्ष होता है, सो आत्मा अच्युतरूप है, परिणामको कदाचित् प्राप्त नहीं होता, समवायिकारण कैसे होवै ? अस्ति, जायते, वर्धते, विपरिणमते, क्षीयते, नश्यति, इन षट् विकारहूते रहित निर्विकार आत्मा जगत्का कारण कैसे होवै ? ताते यह जगत् अकारणरूप भ्रांतिकरिकै भासता है, जैसे आकाशविषे नीलता अरु सीपीविषे रूपा भासता है, जैसे निद्रादोषकरिकै स्वप्नसृष्टि भासती है, तैसे यह जगत् भ्रांतिकरिकै भासता है, जब स्वरूपविषे जागै तब जगद्भ्रम मिटि जाता है, ताते कारण कार्य भ्रमको त्यागिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, दुर्बोधकरि संकल्परचना हुई है, तिसको त्यागिकरि आदि मध्य अरु अंतते रहित जो सत्ता है, तिसविषे स्थित होहु, तब जगद्भ्रम मिटि जावै.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जगन्निराकरण-
वर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः २.

स्मृतिबीजोपन्यासः ।

वसिष्ठ उवाच—हे ज्ञाताओंविषे श्रेष्ठ रामजी ! बीजते अंकुरवत् आत्माते जगत्का होना अंगीकार करिये तौ नहीं बनता, आत्मा सर्व कल्पनाते रहित महाचैतन्य निर्मल आकाशवत् है, तिसको जगत्का बीज कैसे मानिये ? बीज परिणामकरि अंकुर होता है अरु कारण समवायिकरि होता है, आत्माविषे समवायि अरु निमित्त सहकारी कदाचित् नहीं बनते, जैसे वंध्यास्त्रीका संतान किसीने नहीं देखा, तैसे आत्माते जगत् नहीं होता, जो समवायि अरु निमित्तकारणविना सहकारी पदार्थ भासै, तौ जानिये कि, यह है नहीं, भ्रांतिमात्र भासता है, आत्मसत्ता

अपने आपविषे स्थित है, सृष्टि स्थिति प्रलय करिकै ब्रह्मसत्ता ही अपने आपविषे स्थित है, जो इस प्रकार स्थित है, तौ कारणकार्यका क्रम कैसे होवै ? जो कारणकार्यका भाव न हुआ तौ पृथ्वी आदिक भूत कहां-ते उपजें ? कहूं हैं भी नहीं अरु जो कारण कार्य मानिये तौ पूर्व जो विकार कहे हैं; तिनका दूषण आता है; ताते न कोऊ कारण है; न कार्य है; कारणकार्य विना जो पदार्थ भासै तिसको सत्‌रूप जानै सो मूर्ख बालक है, वह विवेककते रहित है, ताते वह जगत् न आगे था; न अब है; न पाछे होवैगा स्वच्छ चिदाकाशसत्ता अपने आपविषे स्थित है; जब जगत्‌का अत्यन्ताभाव होता है; तब संपूर्ण ब्रह्म ही दृष्टि आता है; जैसे समुद्रविषे तरंग भासते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् भासता है, अन्यथा कारणकार्यभाव कोऊ नहीं, प्रागभाव अरु प्रध्वंसाभाव अन्योन्याभाव कोऊ नहीं. प्रागभाव कहिये जो प्रथम न था, जैसे प्रथम पुत्र नहीं होता; अरु पाछे उत्पन्न होता है, जैसे मृत्तिकासों घट उत्पन्न होता है; अरु प्रध्वंसाभाव वह है, जो प्रथम होकरि नष्ट हो जाता है, जैसे घट था अरु नष्ट होगया; अरु अन्योन्याभाव कहिये जैसे घटविषे पटका अभाव है अरु पटविषे घटका अभाव है, यह तीन प्रकारका अभाव जिसके हृदय-विषे है, तिसकरि जगत् दृढ होता है; उसको शांति नहीं प्राप्त होती जब जगत्‌का अत्यंताभाव दीखता है; तब चित्त शांतिमान् होता है, सो जगत्‌के अत्यन्ताभावका इस युक्ति विना और उपाय कोई नहीं अरु अशेष जगत्‌की निवृत्तिविना मुक्ति नहीं होती, सूर्यते आदि लेकरि जितना कछु प्रकाश है अरु पृथ्वी आदिक तत्त्व हैं, अरु क्षण वर्ष कल्प आदिक जो काल है, यह मैं हौं, यह और है अरु रूप आलोक मन संस्कार इत्यादिक जगत् सब संकल्पमात्र है, कल्प अरु कल्पक ब्रह्मांड अरु ब्रह्मा विष्णु रुद्र इंद्र अरु कीटते आदि लेकरि जेता कछु जगज्जाल है, सो उपज उपज अन्तर्धान होजाता है, महाचैतन्य परम आकाशविषे अनंत वृत्ति उठती हैं, जैसे जगत्‌के पूर्व शांत सत्ता थी, तैसे तू अब भी जान, अपर कछु हुआ नहीं, परमाणुका सहस्रांश होवै तिसकी नाईं सूक्ष्म चित्तकला है, तिस चित्तकलाविषे अनंत कोटि सृष्टियाँ

स्थित हैं, वही चित्तसत्ता फुरनेकरि जगतरूप हो भासती है अरु प्रकाशरूप है, निराकार शांतरूप है, न उदय होता है, न अस्त होता है, न आता है, न जाता है, जैसे शिलाविषे रेखा होती है, तैसे आत्माविषे जगत् है; जैसे आकाशविषे आकाशसत्ता फुरती है, तैसे आत्माविषे जगत् फुरता है अरु आत्माहीविषे जगत् स्थित है, निराकार निर्विकाररूप विज्ञानघनसत्ता अपने आपविषे स्थित है, उदय अरु अस्तते रहित विस्तृतरूप है. हे रामजी! जो सहकारी कारण कोऊ न हुआ, तौ जगत् शून्य हुआ, क्योंकि ऐसे जाननेते सर्व कलंककलना शांत होजाती हैं, दीर्घ निद्राविषे सोया है, तिसका अभाव करिकै ज्ञानभूमिकाको प्राप्त होहु, जागेते निःशोकपद प्राप्त होवैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठ स्थितिप्रकरणे स्मृतिबीजोपन्यासो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ३.

जगदनंतवर्णनम्।

राम उवाच–हे भगवन्! महाप्रलयके अंतविषे अरु सृष्टिकी आदिविषे जो प्रजापति होता है, सो जगत्को पूर्वकी स्मृतिकरिकै तिसी भांति रचता है, तौ, जगत् स्मृतिरूप क्यों न होवै? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! महाप्रलयके आदिविषे जो प्रजापति होता. अरु वह स्मरण करिकै पूर्वकी नाईं जगतको रचता है, ऐसे मानिये तौ नहीं बनता, काहेते कि, महाप्रलयविषे प्रजापति कहां रहता है, जो आप ही न रहै, तिसकी स्मृति कैसी मानिये? जैसे आकाशविषे वृक्ष नहीं होता, तैसे महाप्रलयविषे प्रजापति नहीं होता. राम उवाच–हे ब्रह्मण्य! जगत्के आदिविषे जो ब्रह्मा था अरु तिसने जगतको रचा था, महाप्रलयविषे तिसकी स्मृतिका नाश तौ नहीं होता, सुषुप्तिते उठेकी नाईं बहुरि स्मृतिकरि जगत्को रचता है, तौ बनता है, तुम कैसे कहते हौ कि, नहीं बनता? वसिष्ठ उवाच–हे शुभव्रत रामजी! महाप्रलयके पूर्व जो ब्रह्मादिक होते हैं, सो महाप्रलयविषे सब निर्वाण होजाते हैं. अर्थ यह कि, विदेह-

मुक्त होते हैं, ब्रह्मतत्त्वविषे लीन होते हैं, जो स्मृति करनेवाले अंतर्धान होगये तौ स्मृति कहां रही, जो स्मृतिनिर्मूल भई, तो तिसको जगत्का कारण कैसे कहिये? महाप्रलय तिसका नाम है,जहां सर्व शब्द अर्थसहित निर्मूल होजाते हैं,जहां सर्व अंतर्धान होगये तहां स्मृति किसकी कहिये? जो स्मृतिका अभाव भया, तौ कारण किसका किसकी नाईं कहिये? ताते सर्व जगत् चित्तके फुरनेमात्र है,जब महाप्रलय होता है,तब सब यत्न-विना मोक्षभागी होते हैं, जो आत्मज्ञान होवै तौ जगत्के होते भी मोक्ष-भागी होते हैं, अरु जो आत्मज्ञान नहीं होवै तौ जगत् दृढ होता है, निवृत्त नहीं होता, जब दृश्य जगत्का अभाव होवै, तब स्वच्छ चैतन्य-सत्ता प्रकाशती है, सो आदि अंतते रहित है, जगत् भी सब वहीरूप भासता है, अनादिसिद्ध ब्रह्मतत्त्व ही प्रकाशता है तिसविषे जो आदि संवेदन फुरता है, सो ब्रह्मरूप है, अंतवाहक देह विराट् जगत् हो भासता है, तिसका एक परमाणुरूप यह तीनों जगत् हैं, तिसविषे देश, काल, क्रिया, द्रव्य, दिन, रात्रि क्रम हुआ है, बहुरि तिसके अणुविषे जगत् पडे फुरते हैं, सो क्या है? सब संकल्परूप है, ब्रह्मसत्ताका प्रकाश है, जो प्रबुद्ध आत्मज्ञानी है, तिसको सब जगत् एक ब्रह्मरूप हो भासता है, अरु जो अज्ञानी है, तिसके चित्तविषे अनेक प्रकार जगत्की भावना होती है, द्वैतभावनाकरिकै वह पड़ा भ्रमता है, जैसे इस ब्रह्मांडके अनेक जीव परमाणु हैं, तिनके अंतर अनंत सृष्टियाँ हैं, तिनके अंतर और अनंत स्रष्टा हैं, तैसे और जो अनंत स्रष्टा हैं, तिनके अंतर और अनंत सृष्टियाँ फुरती हैं, सो ब्रह्मतत्त्वका प्रकाश है, जैसे बडे स्तंभविषे अनेक पुतलियाँ शिलपी कल्पै तिसके अंतर और अनेक पुतलियाँ कल्पै, तिनके अंतर और अनेक पुतलियाँ होवैं तैसे परमाणुपरमाणुके अंतर त्रिलोकी स्थित है,सो अभिन्नरूप है और कछु हुआ नहीं जैसे पहा-डके अंतर्गत असंख्य परमाणु होते हैं,सो तिसके साथ अभिन्नरूप हैं,तैसे ब्रह्मरूपी महासुमेरु है, तिसके अंतर अनेक जगतरूपी परमाणु हैं, सो अभिन्नरूपी हैं. हे रामजी! सूर्यहूकी किरणका समूह होवै तिनविषे सूक्ष्म त्रसरेणु होते हैं;तिनकी संख्या करनेको कोऊ समर्थ भी होवै; परंतु आदि

अंतते रहित जो आत्मरूपी सूर्य है तिसके त्रिलोकरूपी परमाणुकी संख्या करनेको कोऊ समर्थ नहीं; जैसे समुद्रविषे जलते परमाणु होते हैं, जैसे पृथ्वीविषे धूरने परमाणु होते हैं, सो असंख्य हैं तैसे आत्माविषे असंख्य परमाणु सृष्टियाँ हैं, जैसे आकाश शून्यरूप है तैसे आत्मा चिदाकाश जगतूरूप है, यह जो मैंने उसको सृष्टि कही है, जो इनको तू जगत शब्दकरि जानैगा, तौ अज्ञानबुद्धि है अरु दुःख भ्रमको देखैगा अरु जो इनको ब्रह्मशब्दका अर्थकरि जानैगा तौ इस बुद्धिकरि परमसारको प्राप्त होवैगा; सर्व विश्व ब्रह्मते फुरता है अरु विज्ञानघन ब्रह्मरूप है और, द्वैत कछु हुआ नहीं, जब जागैगा तब तुझको ऐसे ही भासैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जगदनंतवर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४.

अंकुरवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इंद्रियनका जो ग्राम है तिसके साथ युद्ध करना, तिनका जीतना सो संसाररूपी समुद्रके पार करनेको बेड़ा है. अर्थ यह कि, इंद्रियनहूको जीतना मोक्षका कारण है और किसी क्रम उपायकरि संसारसमुद्र तरा नहीं जाता, संतका संग करना अरु सच्छास्त्रका विचारना, इसकरि जब आत्मतत्त्वका बोध होता है, तब इंद्रियनका जीतना होता है अरु जगत्का अत्यंत अभाव होता है, जब लग संसारका अत्यँत अभाव नहीं होता, तबलग आत्मबोध नहीं होता, यह मैंने तुझको क्रम कहा है, सो संसारसमुद्र तरनेका उपाय है, बहुत कहनेते क्या है ? सब कर्मका बीज मन है, मनके छेदेते सब जगत्का छेद होता है, जब मनरूपी बीज नष्ट होता है तब जगतूरूपी अंकुर भी नष्ट होजाता है, सर्व जगत् मनका रूप है, इसके अभावका उपाय करौ, मलिन मनते अनेक जन्मके समूह उत्पन्न होते हैं, इसके जीतनेते सर्व लोकमें जय होता है, सब जगत् मनकरिकै हुआ है मनरहित हुएते देह भी नहीं भासता, जब मनसों दृश्यका अभाव होता है तब मन मृतक होजाता है और उपाय कोऊ नहीं. हे रामजी ! मन-

रूपी पिशाच है, तिसका नाश और किसी उपायकरि नहीं होता अनेक कल्प बीतगये हैं अरु बीतजाँय, तब भी नाश नहीं होता, तातें जबलग दृश्यमान है, तबलग इसका उपाय करे, जगत्का अत्यंत अभाव चिंतवना अरु स्वरूप आत्माका अभ्यास करना, यह परम औषध है, इस उपायकरि मनरूपी द्रष्टा नष्ट होता है, जबलग मन नष्ट नहीं होता, तबलग मनके मोहकरि जन्ममरणको पावैगा, जब ईश्वर परमात्माकी प्रसन्नता होती है, तब मन बंधनते मुक्त होता है, संपूर्ण जगत् मनके फुरणेकरि भासता है, जैसे आकाशविषे शून्यता भासती है, अथवा जैसे गंधर्वनगर भासता है, तैसे संपूर्ण जगत् मनविषे भासता है, जैसे पुष्पमें सुगंध रहता है, जैसे तिलमें तेल रहता है, जैसे गुणीमें गुण रहता है, जैसे धर्मीमें धर्म रहता है, तैसे यह सत् असत् स्थूल सूक्ष्म कारण कार्यरूप जगत् मनमें रहता है, जैसे समुद्रमें तरंग फुरते हैं, जैसे आकाशमें दूसरा चंद्रमा फुरता है, जैसे मरुस्थलमें मृगतृष्णाका जल फुरता है, तैसे चित्तविषे जगत् फुरता है, जैसे सूर्यविषे किरणें हैं, जैसे तेजविषे प्रकाश है, जैसे अग्निविषे उष्णता है, तैसे मनविषे जगत् हैं, जैसे बर्फविषे शीतलता है, जैसे आकाशविषे शून्यता है, जैसे पवनविषे स्पंदता है, तैसे मनविषे जगत् है, संपूर्ण जगत् मनरूप है अरु मन जगत्रूप है, परस्पर एकरूप है, दोनोंमेंते एक नष्ट होवै तब दोनों नष्ट होजाते हैं, जब जगत् नष्ट होवै तब मन भी नष्ट होजाता हैं, जैसे वृक्षके नष्ट हुएते पत्र, टास, फूल, फल सभी नष्ट होजाते हैं, फूलफलके नष्ट हुएते वृक्ष नष्ट नहीं होता.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे अंकुरवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥४॥

पंचमः सर्गः ५.

भार्गवसंविद्रमनवर्णनम्।

राम उवाच–हे भगवन्! सर्वधर्मोंके वेत्ता! पूर्व अपरके ज्ञाता! मनके फुरणेकरिकै जगत् कैसे फुरता है? अरु कैसे भया है? जैसे प्राप्त भया है तैसे दृष्टांत दृष्टिकरिकै हमको कहौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जैसे इंद्र

ब्राह्मणके पुत्रहूकी दश सृष्टियाँ होत भई अरु दश ही ब्रह्मा होत भये,सो मनके फुरणेते उपजिकरि मनके फुरणेविषे स्थित भये अरु जैसे लवणराजाको इंद्रजालकी मायाकरिके चांडालकी प्रतिमा दृढ होकरि भासी, तैसे यह जगत् मनमें फुरणेविषे स्थित भया है, जैसे भार्गव शुक्र मनके फुरणेकरि चिरकाल स्वर्गको भोगता रहा अरु अपर अनेक भ्रम देखे, सो मनहीका भ्रम दृष्टि होकरि भासा, तैसे यह जगत् मनके भ्रमकरि स्थित भया है. राम उवाच–हे भगवन् ! भृगुऋषीश्वरके पुत्रने मनके भ्रमकरि कैसे स्वर्गसुख भोगे हैं ? अरु कैसे भोगका अधिपति हुआ है ? अरु कैसे संसारी होकरि भ्रमको देखता भया है ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! भृगुके पुत्रका वृत्तांत सुन, भृगु अरु कालका संवाद मंदराचल पर्वतविषे हुआ है. एक कालमें भृगु अरु शुक्र दोनों मंदराचल पर्वतविषे स्थित थे, चंद्रमाकी नाई शुक्रका मुख अरु बडा प्रकाशी है अरु भृगुजी बड़ा उदार आत्मा तहां स्थित है, जहां कल्पवृक्ष अरु मंदारवृक्ष आदिक बहुत सुंदर स्थान दिव्य मूर्ति है, जहां भृगुजी तप करते थे अरु शुक्रजी टहल करते थे, एक समय भृगुजी निर्विकल्प समाधिमें स्थित भये, तब निर्मल मूर्ति शुक्र एकांत जाय बैठे, कंठविषे मन्दारकल्पवृक्षके फूलनकी माला पहरे हुए,सो शुक्रविद्या अरु अविद्याके मध्यमें स्थित था, जैसे त्रिशंकु राजा चण्डाल था, सो विश्वामित्रके वरको पायके स्वर्गमें गया, तब देवताओंने अनादर किया,स्वर्गते गिराय दिया कि,यह चंडाल है, तब विश्वामित्रने देखिके कहा कि, यहां ही खडे रहौ, तब वह भूमि अरु आकाशके मध्य स्थित भया, तैसे शुक्र बैठा है और एक महासुंदर अप्सरा तिसके ऊर्ध्व स्वर्गकी ओर चली जाती देखत भया, जैसे लक्ष्मीकी ओर विष्णुजी देखैं, तैसे अप्सराको देखा जो महासुंदर अनेक प्रकारके भूषण पहरे हुए थी अरु दिव्य वस्त्र धारण किये थी और जिसके शरीरसे महासुगंध उठती थी, जिसकरि आकाशमार्ग भी सुगंधित भया है, पवन जो तिसको स्पर्श कर चलता है, तिसकी सुगंधि पसरती है, अरु महामदकारि उसके घूर्ण नेत्र हैं, ऐसी अप्सराको देखिके शुक्रका मन क्षोभायमान हुआ, जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाको देखिके क्षीरसमुद्र क्षोभित

होता है, तैसे उसकी वृत्ति और मार्गते रहित होकरि अप्सराविषे जाय स्थित भई, कामदेवका बाण जो है स्मृति करना, सो आय लगा.

इति श्रीयोवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवसंविद्रमनवर्णनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ६.

भार्गवमनोराज्यवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इस प्रकार उस अप्सराको देखके नेत्र मूँदता भया, मूँदके मनोराज्यको पसारत भया, चिंतने लगा कि यह जो लगना मृगनयनी स्वर्गको गई है, मैं तिसके निकट जाय प्राप्त होऊँ, ऐसे विचारिके उसके पाछे चला; जाते जाते मनसों स्वर्गमें जाय प्राप्त भया, तहां मंदार कल्पतरु हैं, तिनको फूलकी सुगंधतासहित देखता भया, द्रवत स्वर्णकी नाईं शरीर जिनके हैं, ऐसे देवता अरु हास्य विलास संयुक्त हरिणकी नाईं नेत्रवाली स्त्रियां देखता भया, मणिके समूह देखे, अन्योन्य परस्पर उनविषे प्रतिबिंब पड़ते हैं, विश्वरूपकी उपमा स्वर्गलोकमें देखी, मंद मंद पवन चलता है, मंदारवृक्षमें मंजरी प्रफुल्लित हैं, तहां अप्सरोंके गण विचरते हैं, आगे इंद्र भागसे गया, तो ऐरावत हस्ती बडे मदसों मस्त खडा है, जिसने युद्धमें दंतनसे दैत्य चूर्ण कियेहैं अरु देवतोंके आगे अप्सरा गायन करती हैं अरु स्वर्णके कमल लगे हुए हैं, तहां ब्रह्माके हंस अरु सारसपक्षी विचरते हैं, गंगाका प्रवाह चला जाता है, देवताके नायक तहां विश्राम करते हैं, बहुरि लोकपालके स्थान देखे, यम, चंद्रमा, सूर्य, इंद्र, वायु, अग्नि, लोकपाल सब देखता भया, महाज्वालावत् प्रकाश है जिनका, ऐसे देवताके समूह देखता भया, ऐरावतके दंतमें दैत्यनहूकी पंक्ति देखी, आगे देवता देखे, जो विमानपर आरूढ हुए फिरते हैं, भूषणसहित तिनके हार मणिकारिके जडे हुए हैं; सुंदर विमानकी पंक्ति विचरती है, कहूँ मंदारवृक्ष हैं, कहूँ कल्पवृक्ष हैं, तिनके साथ सुंदर वल्लियां

हैं, गंगाका प्रवाह चलता है, तहां अप्सरोंके गण बैठे हैं, कहूँ सुगंधता- लिये पवन चलता है, कहूँ झरणेमेंते जल चलता है, सुंदर नंदनवन है, कहूं अप्सरा बैठी हैं, कहूं नारद आदिक बैठे हैं, अपर लोग जिनने पुण्य किये हैं, सो बैठे सुख भोगते हैं, विमानपर आरूढ हुए फिरते हैं, कहूं इंद्रको अप्सरा सेवती हैं, कामदेवसों मस्त हैं शरीर जिनके, जैसे वनकी लता वनको सेवती हैं, तैसे अप्सरा इंद्रको सेवती हैं, जैसे कल्पवृक्षमें पक्के फल लगते हैं, तैसे रत्न अरु चिंतामणि लगे हैं, कहूँ चंद्रकांतमणि स्रवती हैं, इस प्रकार मनसों स्वर्गकी रचना शुक्र देखता भया, कैसी रचना देखी, मानों त्रिलोकीकी रचना यहां ही है तब शुक्रको देखिकै इंद्र उठ खडा हुआ, मानो दूसरा भृगु आया है, बडे प्रकाशसंयुक्त शुक्रकी मूर्त्तिको इंद्रने प्रणाम किया अरु हाथ ग्रहण करिकै अपने पास बैठाया अरु कहत भया. हे शुक्रजी ! आज हमारे धन्य भाग्य हैं, जो तुम्हारा आगमन भया है, आज हमारा स्वर्ग तुम्हारे आनेसे सफल शोभित निर्मल भया है, अब तुम चिरपर्यंत यहांही स्थित होहु, जब इंद्रने ऐसे कहा तब शुक्रजी शोभत भये, तिसको देखिकै सुरके समूह प्रणाम करत भये, कि भृगुका पुत्र शुक्रजी आया है. हे रामजी ! इस प्रकार शुक्रजी मनसों इंद्रके पास जाय बैठा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवमनोराज्यवर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ७.

भार्गवसंगमवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जब इस प्रकार शुक्रजी इंद्रके पास जाय बैठा, तब अपना जो कोऊ निज भाव था, तिसको भुलाय दिया, वह जो मंदराचल पर्वतपै अपना शरीर था, सो भूल गया अरु वासनासों मनोराज्यका शरीर दृढ होगया, एक मुहूर्तपर्यंत इंद्रके पास बैठा रहा परंतु चित्त उस अप्सरामें रहा तिसके अनन्तर उठ खडा हुआ स्वर्गको देखने लगा, देवताओंने कहा, कि चलौ स्वर्गकी रचना देखौ, तब शुक्रजी

देखत देखत जहां वह अप्सरा थी तहां गये अरु और भी अप्सरा बहुत थीं, तिनमें वह अप्सरा भी बैठी है, जिसके मृगके ऐसे नेत्र हैं तिसको शुक्रजीने देखा, जैसे चंद्रमा चांदनीको देखै, तैसे देखके शुक्रका शरीर द्रवीभूत होगया, प्रस्वेदसों पूर्ण होता भया, जैसे चन्द्रमाको देखिकै चंद्रकांतमणि द्रवीभूत होता है, तैसे शरीर होगया. कामदेवके बाण तिसके हृदयमें आय लगे, तिसकरि व्याकुल होगया अरु शुक्रको देखिकै उसका चित्त भी मोहित होगया, शुक्रविषे कामका बाण उसको भी आय लगा, वह भी कामसों पूर्ण होगई, जैसे वर्षाकालकी नदी जलसों पूर्ण होती है, तैसे परस्पर स्नेह बढा, तब शुक्रजीने मनसों तहां तमको रचा तब सब स्थानमें तम होगया; जैसे लोकालोक पर्वतके तटविषे तम होता है, तैसा सूर्यका अभाव होगया, तब भूतजात सब अपने अपने स्थानमें गये, जैसे दिनके अभाव हुए पशुपक्षी अपने अपने गृहको जाते हैं, तैसे तमके होनेते सब वनको चलेगये, तब वह अप्सरा शुक्रके निकट आई, शुक्रजी श्वेत आसनपर बैठ गया, अप्सरा भी चरणके निकट बैठी; सुंदर वस्त्र अरु भूषण पहिरे हुए हैं, स्नेहकरि दोनों कामवश हुए; तब अप्सरा मधुरवाणीसों कहत भई. हे नाथ! मैं निर्बल होकर तुम्हारी शरण आई हौं, मुझको कामदेव दहन करता है, तुम रक्षा करौ, मैं इसकरि पूर्ण होगई हौं अरु स्नेहरूपी जो रस है, तिसको सोई जानता है, जिसको प्राप्त भया है जिसको रसका स्वाद नहीं आया, सो क्या जानै? हे साधु! ऐसा सुख त्रिलोकीमें और कोऊ नहीं, जैसा सुख परस्पर स्नेहसों होता है, अब तुम्हारे चरणोंको पायके आनंदवती भई हौं, जैसे चंद्रमाको पायके कमलिनी आनंदवती होती है, जैसे चकोर चंद्रमाकी किरणोंको पायके आनंदवान् होता है, तैसे मुझको स्पर्श करिकै आनंद होवैगा, जब इस प्रकार अप्सराने कहा, तब दोनों कामके वश होइकरि क्रीडा करने लगे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवसंगमवर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८.

भार्गवोपाख्याने विविधजन्मवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इस प्रकार तिसको पायके शुक्र आपको आनंदवान् मानत भया; मंदार अरु कल्पवृक्षके नीचे क्रीडा करते हैं, दिव्य वस्त्र अरु भूषण फूलोंकी माला पहिरे हुये वन बगीचे अरु किनारेविषे क्रीडा करते हैं, चंद्रमाकी किरणोंके मार्गसों अमृतपान करते रहैं, स्वर्गमें विचरैं, विद्याधरोंके गणनके साथ रहैं, तिनके स्थानमें नंदनवन इत्यादिक स्थानविषे क्रीडा करत भोगते कैलास पर्वतमें गये. अप्सरासहित तहां वनकुंजमें फिरते रहैं, बहुरि लोकालोक पर्वतपर क्रीडा करते भये, मंदराचल पर्वतके कुंजमें विचरते भये, श्वेतद्वीपविषे रहे, अर्धशत युगपर्यंत बहुरि गंधर्वके नगरविषे रहे, इंद्रके वनविषे रहे बत्तीस युगपर्यंत स्वर्गमें रहे, जब पुण्य क्षीण भया तब भूमिलोकमें गिराय दिये गये, गिरते गिरते तिनके शरीर टूटि गये. जैसे झरणेमेंते जल बंद होवै तैसे शरीर अंतर्धान होगया; तब चितासंयुक्त उनकी पुर्यष्टक आकाशमें निराधार हो रही. जैसे पक्षी नीड विना स्थित है, तैसे उनकी पुर्यष्टक चितासहित निराधार भई, तब वासनारूप दोनों चंद्रमाकी किरणोंविषे जाय स्थित हुए, बहुरि किरणोंद्वारा धान्यमें आय निवास किया, तब दशारण्य नाम ब्राह्मण था, तिसने धान्यका भोजन किया, तब वह चावल वीर्य होकरि ब्राह्मणीके गर्भमें जाय रहा, फेर उस धान्यका मालवदेशका राजा भोजन करत भया, तिसके वीर्यद्वारा अप्सरा स्त्रीके उदरविषे जाय स्थित भई अरु दशारण्य ब्राह्मणके गृहमें शुक्र पुत्र हुआ, अरु वह मालव देशके राजाके यहां अप्सरा पुत्री हुई, तब क्रमकरिकै बडी हुई; जब षोडशवर्षकी भई, पिताके गृहविषे यौवनवती हुई; तब महादेवकी पूजा करत भई और प्रार्थना करी कि, हे देव ! मुझको पूर्वके भर्त्तारकी प्राप्ति कर देहु, इस प्रकार नित्य पूजन करे अरु वर मांगे वहां वह यौवनवान् हुआ, यहां यह यौवनवती हुई, तब राजाने यज्ञका आरंभ किया, तिसमें सब राजा अरु ब्राह्मण आये, तहां दशारण्य ब्राह्मण पुत्रस-

हित आया, तब राजपुत्रीने तिस पूर्वजन्मके भर्त्तारको देखा. जैसे चंद्रमाको देखिकै चंद्रकांतमणि द्रवीभूत होता है, तैसे राजकन्या होगई अरु स्नेहसों नेत्रते जल चलने लगा तब राजकन्याने दशारण्यके पुत्रको देखिकै तिसके कंठविषे फूलनकी माला डारिकै अपना भर्त्तार किया, तब यज्ञमें देखिकै राजा आश्चर्यवान् हुआ अरु निश्चय किया कि, भला हुआ; बहुरि क्रमसों विवाह किया, तब राजा, पुत्री अरु जँवाईको राज्य देके आप वनको तप करनेलिये चला गया. यहां यह पुरुष अरु स्त्री मालवदेशका राज्य करने लगे चिरकाल राज्य करते रहे, बहुरि दोनों वृद्ध भये, शरीर जर्जरीभूत होगये, तब तिसको शरीरमें वैराग्य हुआ कि, स्त्री महादुःखरूप है, सो दुःखरूप अवस्था देखिकै सामान्य वैराग्य हुआ, विशेष वैराग्य न उपजा, जर्जरीभूत अंगविषे सेवनेते अशक्त भये; परंतु तृष्णा निवृत्त नहीं भई, राजा मृत्यु अवस्थाको प्राप्त भया, सो बांधवोंने जलाय दिया, यह महा अंधकूप मोहविषे ज्ञानकी प्राप्ति विना जाय पडा. हे रामजी ! मृत्यु मूर्च्छाके अनंतर परलोक तिसको भासि आया, तहां कर्मके अनुसार सुखदुःखको भोगिकै अंग वंग देशमें धीमर हुआ, तहां अपने धीमरकर्म करत भया; बहुरि वृद्ध अवस्था आई, तब शरीरविषे वैराग्य हुआ कि यह संसार महादुःखरूप है, ऐसे जानिकै सूर्य भगवान्का तप करने लगा, जब मृतक हुआ तब तपके वशते सूर्यवंशविषे राजा भया, सो भावनाके वशते तहां कछुक ज्ञानवान् हुआ, योग करै, अरु वेद पढै, योगकी भावनाकरि जो शरीर छूटा; तब बड़ा गुरु हुआ, सर्वको उपदेश करै, मंत्रसिद्धि करत भया, वेदमें बहुत परिपक्क हुआ, तब मंत्रके वशते विद्याधर हुआ, चिरकालपर्यंत विद्याधरमें एक कल्पपर्यंत रहा, जब कल्पका अंत भया, तब सशरीर अंतर्धान होगया, तब इसका पवनरूपी शरीर वासनासहित होरहा, जब ब्रह्माकी रात्रि क्षय हुई अरु दिन हुआ बहुरि सृष्टि रची, तब एक मुनीश्वरके गृहमें पुत्र हुआ, तहां बडा तप करत भया; बहुरि सुमेरु पर्वतपर जाय स्थित भया, एक मन्वंतरपर्यंत वहां रहा, इकहत्तर चौकडी युग व्यतीत भया, तहां भोगकरि हरणीका पुत्र हुआ अरु मनुष्यका आकार तहां रहा, तिस पुत्रके स्नेहसों मोहको

प्राप्त भया कि, जो इस मेरे पुत्रको धन होवै, गुण आयुर्दाय बल बहुत होवै, निरंतर यही चिंतन करने लगा. इस कारणते अपने तप धर्मते विरक्त हुआ, आयुष्य क्षीण भया, मृगरूप सर्पने ग्रास लिया, तपोभ्रष्ट निमित्त अरु तपके बलकरि शरीर छूटा, तब भोगकी चिंतासंयुक्त मद्रदेशके राजाके गृहविषे पुत्र हुआ, तिस देशका राजा भया; चिरपर्यंत राजभोग करि वृद्ध अवस्थाको प्राप्त भया, शरीर जर्जरीभूत होगया तहां तपकी अभिलाषामें शरीर छूटा, तिसकरि तपेश्वरके गृहविषे पुत्र हुआ अब संतापते रहित होइकरि गंगाजीके किनारेपर तप करनेको लगा है, हे रामजी ! इसप्रकार मनके फुरणेकरिकै शुक्र अनेक शरीरको भोगता भया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने
विविधजन्मवर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९.

भार्गवकलेवरवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच- हे रामजी ! इसप्रकार शुक्र मनसों भ्रमता फिरा, तब भृगुके पास जो शरीर था, सो निर्जीव हुआ, पुर्यष्टक निकरि गई थी, पवन अरु धूपसों शरीर जर्जरीभूत होगया, जैसे मूलते काटा वृक्ष गिर पडता है, तैसे शरीर गिर पडा, मन जो चंचल है सो भोगकी तृष्णासों वहीं गया था, जैसे हरिण वनविषे भ्रमता है अथवा जैसे चक्रपर चढा बासन भ्रमता है, तैसे भ्रमते भ्रमांतरको देखा, जब मुनीश्वरके गृहमें जन्म लिया, तब चित्तमें विश्राम हुआ. गंगाके तटपर तप करने लगा, मंदराचल पर्वतवाला शरीर नीरस होगया, अस्थि चर्म मात्र शेष रह गया अरु लोहू सूख गया; शरीरके रंध्रमार्गकरि पवन चलै, तब बांसुरीवत् शब्द होवै, मानो चेष्टाको त्यागिकै शरीर आनंदवान् हुआ है, जब बडा पवन चलै तब भूमिविषे लोटने लगै, नेत्र आदिक जो रंध्र थे सो गर्त गढेलेवत् होगये अरु मुख पसर गया मानौ अपने पूर्व स्वभावको देखिकै हँसता है, जब वर्षाकाल आवै, तब चलकरि पूर्ण होजावै,

अरु जल तिसविषे प्रवेशकारि रंध्रके मार्गसों निकसै, जैसे झरणेसों जल निकसता है, तैसे निकसै, जब उष्णकाल आवै तब धूपसों सूख जावै, महाकाष्ठकी नाईं वनविषे मौनरूप होकारि स्थित भया अरु मृग पक्षी शरीरको नाश न करत भये; सो एक तौ यह कारण है, कि रागद्वेषते रहित पुण्य आश्रम था, तथा भृगुजी महातपस्वी तेजवान् थे, तिनके निकट कोऊ आय न सकै, इस कारणते देहको नष्ट न करत भये. यहां शरीरकी यह अवस्था भई अरु वहां शुक्र पवनके शरीरसों चेष्टा करतभया

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवकलेवर-
वर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः १०.

कालवाक्यवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच- हे रामजी! जब सहस्र वर्ष व्यतीत भये, सो भूमिलोकके तीन लाख अरु आठ सहस्र वर्ष भये, तब भगवान् भृगुजी समाधिते उतरे, जागिकै देखते भये, तो अपने आगे शुक्रका शरीर दृष्टि न आया, जब भलीप्रकार नेत्र पसार देखा तब तहां देखा कि, कृश जैसा होयके शरीर गिर पडा है, तब जानत भया कि, कालने इसको भक्षण किया है, शरीर धूप अरु वायु मेघकारि जर्जरीभूत होगया है, नेत्र गढ़ेलारूप होगये हैं, शरीरमें कीट आय स्थित भये हैं, जीवोंने आलयस्थान बनाये हैं, घुराण मक्खियां आती जाती हैं, श्वेतदंत निकसि आये हैं, मानौ शरीरकी दशाको देखिकै हँसते हैं, मुख ग्रीवा महाभयानकरूप हैं, खपरी श्वेत होगई है, नासिका श्रवणस्थान सब जर्जरीभूत होगये हैं, वायु चलै तब बांसुरीवत् बाजने लगते हैं, महा आश्चर्यरूप शरीर कृश होयके गिर पडा है, रागद्वेषते रहित होइकारि स्थित भया है, मृग पक्षी भक्षण न करते भये, सो एक तौ पुण्यस्थान, दूसरा भृगुजीका तेज था, इस कारणते हिंसक भक्षण न करत भये, शरीरकी यह दशा देखिकै भृगुजी उठ खडे हुए, क्रोधवान् होकारि कहने लगे कि, कालने क्या समझा है? जो मेरे पुत्रको

मारा है, शुक्र परम तपस्वी अरु सृष्टिपर्यंत रहनेवाला था, सो विना काल मेरे पुत्रको क्यों मारा है ? यह कौन रीति है ? मैं कालको शाप देकर भस्म करौंगा, मेरे पुत्रको समय विना मारा है, तब कालका रूप जो काल है, सो अद्भुत शरीर धारिकारि आया, षण्मुख, षट्भुजा, हाथविषे खड्ग, त्रिशूल अरु फाँसी अरु कानमें मोती पहिरे हुए, मुखसों ज्वाला निकसती हैं, महाश्याम शरीर, अग्निवत् जिह्वा है, कमलकी नाईं ज्वाला निकसती हैं, त्रिशूलके अग्रते अग्निकी लपटें निकसती हैं, जैसे प्रलय कालके अग्निते धूम निकसता है, तैसे श्याम शरीर बडे पहाडकी नाईं उग्ररूप है, जहां चरण रक्खे तहां पृथ्वी पहाड कांपने लगैं, महा भयानकरूप काल भगवान् भृगु ऋषीश्वरके निकट आये अरु भृगु जो महाप्रलयके समुद्रवत् क्रोधकारि पूर्ण था, तहां आगमन कारि कहता भया-हे मुनीश्वर ! जो मर्यादाके वेत्ता हैं अरु परावरपरमात्माके वेत्ता हैं, सो पुरुष क्रोधको नहीं प्राप्त होते. जो कोऊ क्रोध करनेको आवै, तौ भी मोहके वश होइकारि क्रोधवान् नहीं होते, तुम कारणविना काहेको मोहित होयके क्रोधको प्राप्त भये हौ? तुम ब्रह्मतनय तपस्वी हौ, अरु हम नीतिके पालक हैं, हमारेकारि तुम पूजने योग्य हौ, यही नीतिकी इच्छा है अरु तपके बलकारि तुम क्षोभ मत करौ, तुम्हारे शापकारि मैं भस्म भी नहीं होता, प्रलयकालका अग्नि भी मुझको दग्ध नहीं कारि सकता, तौ तुम्हारे शापकारि मैं कब भस्म होता हौं ? हे मुनीश्वर ! मैं तौ अनेक ब्रह्मांड भक्षण कारि गया हौं; कई कोटि ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र ग्रासलिये हैं, तेरा शाप मुझको क्या कारि सकता है? जैसे आदिनीति ईश्वरने रची है, तैसे स्थित है, हम सबके भोक्ता हुए हैं, तुम सरीखे हमारा भोग हुए हैं, यह आदिनीति हुई है. हे मुनीश्वर ! अग्नि स्वभाव कारि ऊर्ध्वको जाता है अरु जल स्वभावकारि अधःको जाता है अरु भोग जो है, सो भोक्ताको प्राप्त होता है, सृष्टि सब कालके मुखमें प्राप्त होती है, आदि परमात्माकी नीति ऐसे ही हुई है, जैसे रची है, तैसे स्थित है अरु जो निष्कलंक ज्ञानदृष्टिकारि देखिये, तौ न कोऊ कर्ता है, न कोऊ भोक्ता है, न कारण है, न कार्य है, एक अद्वैतसत्ता ही है, जो अज्ञानकलंक

दृष्टिकारि देखिये, तौ कर्ता भोक्ता अनेक प्रकारके भ्रम भासते हैं. हे ब्राह्मण! कर्त्ता भोक्ता आदिक जो भ्रम है सो असम्यक् ज्ञानकारि होता है, जब सम्यक् ज्ञान हुआ तब कर्त्ता कार्य भोक्ता कोऊ नहीं. जैसे वृक्ष-साथ पुष्प स्वभावते उपजि आते हैं अरु स्वाभावते ही नष्ट हो जाते हैं, तैसे भूतप्राणी सृष्टिविषे स्वभाविक फुरि आते हैं, बहुरि स्वाभाविक रीतिसों नष्ट होजाते हैं, ब्रह्मा उत्पन्नकर्त्ता है, बहुरि नष्टकर्त्ता है, जैसे चंद्रमाका प्रतिबिंब जलविषे पड़ता है, जलके हिलनेकारि हिलता भासता है, ठहरनेकारि ठहरा भासता है, तैसे मनके फुरणेकारि आत्मविषे कर्तव्य भोक्तव्य भासता है, वास्तव कछु नहीं, मिथ्या ही मलके फुरणेकरि लोक-विषे कर्तव्य आदिक भासते हैं, जैसे जेवरीविषे सर्प भ्रमकारि भासता है, तैसे आत्माविषे कृतव्य भोक्तव्य भ्रमकरिकै भासता है, वास्तव कछु नहीं ताते क्रोध मत करौ, यह दुष्ट कर्म आपदाका कारण है. हे मुनीश्वर! मैं जो तुझको यह वचन कहता हौं, सो अपनी विभुता अरु अभिमान-कारि नहीं कहता, यह स्वतः ईश्वरकी नीति है, हम तिसीविषे स्थित हैं, जो बोधवान् पुरुष हैं, सो अपने प्रकृतिआचारविषे विचरते हैं, वे अभि-मानकारिकै नहीं विचरते, जो कर्तव्यके वेत्ता हैं, सो बाह्य प्राकृत आचारको करते हैं, जैसा आनि प्राप्त होवै अरु अंतरते सुषुप्तिकी नाईं स्थित है, यह ज्ञानदृष्टि कहाँ, वह धैर्य कहाँ, अरु उदारदृष्टि कहाँ जो शास्त्रकारि प्रसिद्ध है, तुम क्यों अंधकी नाईं मोहमार्गविषे मोहित होते हौ? हे साधु! तुम तौ त्रिकालदर्शी हो, अविचार करिकै मूर्खकी नाईं जगतयंत्रविषे क्यों मोहको प्राप्त होते हो? तुम्हारा पुत्र अपने कर्मनके फलको प्राप्त भया है अरु तुम मूर्खकी नाईं मुझको शाप दिया चाहते हौ. हे मुनीश्वर! इस लोक-विषे जीवनके दो दो शरीर हैं, एक मनरूप है, दूसरा अधिभूतरूप है अधि-भूतरूप जड है, अत्यंत विनाशी है. जहां इसको मन प्रेरता है, तहां चला जाता है, आपते कछु कारि नहीं सकता; जैसे सारथी भला होता है, तौ रथको भले स्थान लेजाता है अरु जो सारथी भला नहीं होता, तौ रथको दुःखके स्थान लेजाता है; तैसे जब मन भला होता है, तब उत्तमलोकको प्राप्त करता है, जब दुष्ट होता है, तब नीच स्थानको प्राप्त

करता है, जिसको मन असत् करता है सो असत् भासता है, जिसको मन सत् करता है, सो सत् भासता है, जैसा कमलका पत्ता है, तैसा ही हो भासता है. जैसे माटीकी सेना बालक बनावते हैं, बहुरि भंग करते हैं, कबहूं सत् करते हैं, कबहूं असत् करते हैं, जैसे करते हैं, तैसे देखते हैं. हे साधो ! यह चित्तरूपी पुरुष है, जो चित्त करता है सो किया होता है, जो चिंतन करता है, सो न किया होता, यह जो फुरणा है यह देह है, यह नेत्र हैं, यह शिर है, ये अंग हैं इत्यादिक सब मनरूप है, जीव भी मनका नाम है, मनका जीवना जीव है, वही मनकी वृत्ति निश्चयरूप होती है, तब तिसका नाम बुद्धि होता है, अहंरूपको धरता है. तब तिसका नाम अहंकार होता है, देहको स्मरण करता है, तब तिसका नाम चित्त होता है, तातें पृथ्वीरूप शरीर कोऊ नहीं; मन दृढभावनाकरि शरीररूप होता है, सोई अधिभूत हो भासता है, जब शरीरकी भावनाको त्यागता है, तब चित्त परमपदको प्राप्त होता है, जेता कछु जगत् है, सो मनके फुरणेविषे स्थित है, जैसा मनको फुरणा होता है, तैसा ही रूप हो भासता है अरु तेरा जो पुत्र था शुक्र, सो भी मनके फुरणेकरि अनेक स्थानको देखत भया, जब तुम समाधिविषे स्थित थे, तब विश्वाची देवसुन्दरी जो अप्सरा थी तिसके पाछे मनकरि चला गया, इंद्रलोक स्वर्गको जाय प्राप्त भया, देवता होकरि मंदार वृक्षविषे विचरने लगा, पारिजात वृक्ष तमाल और नंदनवनविषे विचरता रहा; लोकपालहूंके स्थानविषे विचरा, बत्तीस युगपर्यंत विश्वाची अप्सराके साथ विचरता रहा. जैसे भँवरा कमलको सेवता है, तैसे तीव्र संवेगकरि भोगता रहा, जब पुण्य क्षीण हुआ तब तहांते गिराया गया, जैसे पका फल वृक्षते गिरता है; तब देवताका शरीर आकाशमार्गविषे अंतर्धान होगया; भूमिलोकविषे आनि पडा, धान्यविषे आयकरि ब्राह्मणके वीर्यद्वारा ब्राह्मणीका पुत्र भया; मालवदेशका राज्य किया, बहुरि धीमरका जन्म पाया, बहुरि सूर्यवंशी राजा हुआ, बहुरि विद्याधर हुआ, कल्पपर्यंत विद्याधरविषे बुद्धिमान् रहा, इस प्रकार अनेक शरीरनको पायकरि अब गंगाके तटपर ब्राह्मणका पुत्र होकरि तप करता है, वसुदेव तिसका नाम है. हे मुनीश्वर ! इस प्रकार तेरा पुत्र वासनाक-

रिकै अनेक शरीर पाता रहा है, विंध्याचल पर्वतविषे गैब हुआ, क्रांत देशविषे धीमर हुआ, तरंगित देशविषे राजा हुआ, क्रांतदेशविषे हरिण हुआ, वनमें विचरा, बहुरि विद्यावान् गुरु हुआ, बहुरि विद्याधर श्रीमान् हुआ, बहुरि कुंडलादिक भूषणहू करि संपन्न बड़ा ऐश्वर्यवान् गंधर्वहूंका मुनिनायक भूषण हुआ, कल्पपर्यंत वहां रहा, जब प्रलय होने लगा, तब सब लोक पूर्व भस्म होगये; जैसे अग्निविषे पतंग भस्म होते हैं, तब तेरा पुत्र निराधार निराकार वासनाकरिकै आकाशमार्गविषे भ्रमता रहा, जैसे आलय विना पक्षी रहता है, तैसे रहा; जब ब्रह्माकी रात्रि व्यतीत भई, तब सृष्टिकी रचना बनी, अब वह सतयुगविषे ब्राह्मणका बालक वसुदेव नाम गंगाके तटपर तप करता है, आठ सौ वर्ष तिसको तप करते बीते हैं, तू भी ज्ञानदृष्टिकरि देखैगा, तौ सब ही वृत्तांत उसका तुझको भास आवैगा; ताते देख कि, इसीप्रकार है. अथवा किसी और प्रकार है ?

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे कालवाक्यवर्णनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ११.

संसारावर्त्तवर्णनम्।

काल उवाच-हे मुनीश्वर ! महातरंग उछलते हैं अरु झनकार शब्द होते हैं, ऐसी गंगाके तटपर तेरा पुत्र तप करता है, शिरपर बडी जटा है, सर्व इंद्रियके भ्रमको तिसने जीता है, जो तुमको इसके मनका विस्तार देखनेकी इच्छा है तौ इन नेत्रनको मूँदिकर ज्ञानके नेत्रनसों देखौ हे रामजी ! जब इस प्रकार जगत्के ईश्वर कालने कहा, कैसा काल है ? कि जिसकी समदृष्टि है, तब मुनीश्वर चितवता भया. इन नेत्रनको मूँदिकर ज्ञाननेत्रसे देखा; एक मुहूर्त्तविषे अपने पुत्रका सब वृत्तांत देखता भया. जैसे कोऊ अपनी बुद्धिविषे प्रतिबिंबको देखै, तैसे देखिके बहुरि मंदराचल पर्वत जो भृगुशरीर था, तिसविषे प्रवेश किया,

अंतवाहक शरीरकरि अरु अपने अग्रभागविषे काल भगवान्‌को देखता भया; पुत्रको गङ्गाके तटपर देखा; आश्चर्यको प्राप्त हुआ, तब विकार-दृष्टिको त्यागिकरि निर्मल दृष्टिसे वीतराग मुनीश्वर वचन कहत भया. भृगुरुवाच- हे भगवन्‌ ! तीनहूँ कालके ज्ञाता ईश्वर ! हम बालक हैं, इसीते निर्दोष हैं, तुमसरीखे बुद्धिमान्‌ हैं, तीन काल अमलदर्शी हैं. हे भगवन्‌ ! ईश्वरकी माया महाआश्चर्यरूप है,जीवनको अनेक भ्रम दिखावती है, बुद्धिमान्‌को भी मोह करती है, मूर्खनकी क्या बात है? तुम सब कछु जानते हो, जीवनकी वार्त्ता सब तुम्हारे अंतर्गत है,जीवको मनकी वृत्ति है, तिसके अनुसार भ्रमते हैं, सो मनकी वृत्ति सब तुम्हारे अंतर्गत फुरती है, इन सबनहूके तुम वेत्ता हौ, जैसे इंद्रजाली अपनी बाजीका वेत्ता होता है. हे भगवन्‌ ! मैं जो भ्रमको प्राप्त होकरि क्रोध किया, सो इस कारणते कि, मेरे पुत्रका मृत्यु न था, चिरजीवी था अरु तिसको मैं मृतक हुआ देखिकै भ्रमको प्राप्त भया अरु हमारा जो क्रोध है, सो आपदाका कारण नहीं, काहेते कि, मैं पुत्रका शरीर निर्जीव देखा, तब कहा कि, अकालमें मृतक हुआ है, इस कारणते क्रोध हुआ, सो क्रोध भी नीतिरूप है, अर्थ यह कि जो क्रोधका स्थान होवे, तहां क्रोध रहता है, मैं संसारकी गति विचारिकै क्रोध नहीं किया, अर्थ यह कि, पुत्रकी अवस्था देखिकै क्रोध नहीं किया, निर्जीव शरीरको देखिकरि क्रोध किया है, इसीते यह क्रोध आपदाका कारण नहीं, अयुक्ति कारणकरि जो क्रोध है सो आपदाका कारण है, युक्तिकरि जो क्रोध है, सो संपदाका कारण है, यह कर्तव्य संसारकी सत्ताविषे स्थित है, यह नीति है.जबलग जीव है,तबलग जगत्क्रम है,जैसे जबलग अग्नि है, तबलग उष्णता भी है, तैसे जो कर्तव्य है, सो करना है, जो त्यागने योग्य है सो त्यागना है, यह नीति जगत्‌विषे स्थित है,जो हेयोपादेय नहीं जानता तिसको त्यागना योग्य है, ताते मैं पुत्रका अकालमृत्यु देखिके क्रोध किया था, परंतु विचारकरिकै जब तुमने स्मरण कराया; तब मैं विचारकरि देखा कि, मेरा पुत्र अनेक भ्रमको पाता अब गंगाके तटपर तप करता है. हे भगवन्‌ ! तुमने जो कहा जीवनके दो दो शरीर हैं; एक

मनोमय, दूसरा अधिभूतक अरु मैं तौ यह मानता हौं कि, शरीर एक मन ही है, दूसरा कोऊ नहीं; मनहीका किया सफल होता है; शरीरका नहीं होता. काल उवाच-हे मुनीश्वर ! तुमने यथार्थ कहा है; शरीर एक मन ही है; स्थूल देह मनकरि रचा है;जैसे घटको कुलाल रचता है; तैसे मन देहको रचता हे; जो मन शरीरते रहित निराकार होता है; क्षण-विषे आकारको रचि लेता है; जैसे बालक परछाईंविषे वैतालको रचता है;भ्रमकरिकै मनविषे जो फुरणसत्ता है;स्वप्नभ्रम तिसकरि दिखाता है;बडे आकार अरु गंधर्वनगर भासि आते हैं; सो मनहीकी सत्ता है, स्थूलदृष्टि-करि जीवको दो शरीर भासते हैं;बोधवान्को तीनों जगत् मनरूप भासते हैं; सब मनकरि रचे हैं ज़ब भेदवासना होती है, तब असत्‌रूप जगत् नानाप्रकार हो भासता है, जैसे असम्यक् दृष्टिकरि दो चंद्रमा भासते हैं सम्यक्‌दर्शीको एक चंद्रमावत् सब शांतरूप आत्मा ही भासता है, भेद भावनाकरि घटपटआदिक अनेक पदार्थ भासते हैं कि,मैं दुर्बल हौं,मोटा हौं,सुखी हौं,दुःखी हौं,यह जगत् है,यहकाल है इत्यादि अनेक भ्रमको देखता है, सो संसार वासनामात्र है, ज मनब शरीरकी वासनाको त्यागिकरि परमार्थकी ओर आवता है, तब भ्रमको प्राप्त होता है. हे मुनीश्वर ! समुद्रते तरंग उठिकरि ऊर्ध्वको जाता है, जो वह जानै कि, मैं तरंग हूं तो मूर्ख है, यही अज्ञानदृष्टि है, ऊर्ध्वको जावैगा तब जानैगा मैं ऊर्ध्वको गया हौं, नीचे जावैगा तब जानैगा,मैं पातालको गया हौं, यह कल्पना अज्ञान है; वास्तव नहीं. वास्तव दृष्टि यह है, कि अधः होय, अथवा ऊर्ध्व होय परंतु आपको जलरूप जानै, तैसे जो पुरुष परिच्छिन्न देहादिकविषे अहंप्रतीति करता है सो अनेक भ्रमको देखता है; सम्यक्‌दर्शी सब आत्मरूप जानता है. सर्व जीव आत्मरूप समुद्रके तरंग हैं, अज्ञानकरि भिन्न हैं, अरु ज्ञानकरि वहीरूप हैं, आत्म-रूपी समुद्र सम है, स्वच्छ है, शुद्ध है, आदिरूप है, शीतल अविनाशी विस्तृतरूप अपने महिमाविषे स्थित है, सदा आनंदरूप है. जैसे कोऊ जलविषे स्थित है, और तटके ऊपर पहाड़ है, तिसको अग्नि लगी होवै, अग्निका प्रतिबिंब जलविषे पडता है अरु वह कहै मैं दग्ध होता हौं,

सो जैसे भ्रमकरि उसको ज्वलनता भासती है, तैसे जीवको आभासरूप जगत् दुःखदायक भासता है. जैसे तटके वृक्ष पर्वतादिपदार्थ जलमें प्रतिबिंबित भासते हैं अरु उनको देखिके नानाप्रकार भासैं, तैसे आभासरूप जगत्को जीव नानारूप मानते हैं, जैसे एक समुद्रविषे नाना तरंग भासते हैं, तैसे आत्माविषे अनेक आकार जगत् भासता है, वास्तवते द्वैत कछु नहीं, सर्वशक्तिरूप ब्रह्मसत्ता है, तिसकरि विचित्ररूप चंचल भासता है, तौ भी एकरूप है, अपने आपविषे स्थित है, ब्रह्मविषे जगत् फुरता है, बहुरि तिसीविषे लीन होता है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, बहुरि तिसविषे लीन होते हैं और भेद कछु नहीं. पूर्णविषे पूर्ण ही स्थित है, जैसे जलते तरंग भिन्न नहीं, तैसे ईश्वरते जगत् भिन्न नहीं, जैसे पत्र, डार, फूल, फल, वृक्षरूप हैं, तैसे सब जगत् आत्मरूप है, सो आत्मा अनेक शक्तिरूप है, जैसे एक पुरुष अनेक धर्मका कर्त्ता होता है, जैसा कर्म करता है, तैसे संगको पाता है, पाठ करनेते पाठक कहाता है, पाक करनेते पाचक कहाता है, जापक, तापक आदि अनेक नामको धारता है, तैसे एक आत्मा अनेक शक्तिको धारता है, जैसे एक परछाया जिस आकारकी पड़ती है, तैसा आकार भासता है, जैसे एक मेघविषे अनेक रंगसहित इंद्रधनुष भासता है,तैसे यह अनेक भ्रमको पावता है. हे साधो ! जगत् ब्रह्मते फुरे हैं, जड भासते हैं, सो भी चैतन्यसत्ताते फुरे हैं, जैसे बबोहा अपने मुखसों तंतु निकासिकरि आपहीको ग्रास लेता है, तैसे चैतन्यते जड उत्पन्न होते हैं, बहुरि लीन होजाते हैं, चैतन्यजीवते सुषुप्ति जड़ता उपजती है, बहुरि तिसीविषे निवृत्त होती है, ताते अपनी इच्छाकरि यह पुरुष बंधमान होता है, अरु अपनी इच्छाकरि मुक्त होता है, जब बहिर्मुख देहादिक अभिमानके साथ मिलता है, तब आपको बंधमान करता है, जैसे घुरान आप ही गृह रचिके बंधमान होती है अरु जो पुरुषार्थ करिके अंतर्मुख होता है, तब मुक्तिको पाता है, जैसे अपने हाथके बलकरि बंधनको तोड़िके कोऊ बली निकसि जाता है. हे साधो ! ईश्वरकी विचित्ररूप शक्ति है, जैसी शक्ति फुरती है, तैसा रूप दिखावती है, जैसे ओस

आकाशविषे उपजती है, तिसीको आच्छादि लेती है, तैसे आत्माविषे जो इच्छाशक्ति उपजती है, सोई आवरणकरि लेती है, तन्मयरूप होजाता है अरु वास्तवते इनको बंधनते बंधन नहीं, मोक्षसों मोक्ष नहीं, बंध अरु मोक्ष दोनों शब्द भ्रांतिमात्र हैं, मैं जानता नहीं कि, बंध अरु मोक्ष लोकविषे कहांते आये हैं, आत्माको न बंधन है, न मोक्ष है, ऐसे सत्‌रूपको असत्य रूपने ग्रसा है, जो कहता है, मैं दुःखी हौं, सुखी हौं, दुबला हौं, मोटा हौं इत्यादिक भ्रमनको देखता है, माया महाआश्चर्यरूप है, जिसने जगत्‌को मोहित किया है. हे मुनीश्वर! जब चित्त संवित् कलनारूप होता है, अर्थ यह कि, जब दृश्यके साथ मिलिकै फुरणारूप होता है, तब घुरानकी नाईं आप ही आपको बंधन करता है, अरु जब दृश्यते रहित अंतर्मुख होता है, तब शुद्ध मोक्षरूप भासता है, बंध अरु मुक्ति दोनों मनकी शक्ति हैं, जैसा जैसा मन फुरता है, तैसा तैसा रूप भासता है, सो अनेक शक्ति आत्मासाथ अनन्यरूप हैं, सब आत्माते उपजी हैं अरु आत्माविषे स्थित हैं, तिसविषे भिन्न होइकरि भासती हैं, तिसविषे लीन होती हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, तिसविषे स्थित होकरि लीन होजाते हैं, जैसे चंद्रमाते किरणैं उदय होइकरि भिन्न भासती हैं, बहुरि तिसीविषे लीन होती हैं, तैसे परमात्मारूपी महासमुद्र है, चेतनारूपी तिसविषे जल है, तिसते जीवरूपी अनेक तरंग उपजते हैं. तिसविषे स्थित हैं, बहुरि लीन होजाते हैं, कोऊ तरंग ब्रह्मरूप, कोऊ विष्णुरूप, कोऊ रुद्ररूप होइकरि प्रकाशते हैं, जिसते उपजे हैं, तिसी स्वभावविषे स्थित होते हैं, प्रमादते रहित कोऊ लहरी यम, कोऊ कुबेर, कोऊ इंद्र, कोऊ सूर्य, कोऊ अग्नि, कोऊ मनुष्य, कोऊ देवता, कोऊ गंधर्व, कोऊ विद्याधर, यक्ष, किन्नर आदिक रूप होइकरि उपजते हैं, बहुरि लीन होजाते हैं, कोऊ स्थित होइकरि चिरकालपर्यंत रहते हैं, जैसे ब्रह्मादिक हैं कोऊ उपजिकरि कछु काल रहिकरि विध्वंस होजाते हैं, सो देवता मनुष्य आदिक अरु कोऊ कीट सर्प आदिक फुरते हैं, चिरकाल भी रहते हैं, अल्पकालविषे नष्ट होजाते हैं, आत्मसमुद्रते तरंगवत् फुरते हैं, बहुरि तिसविषे लीन होजाते हैं, कोऊ ब्रह्मादिक

उपजिकरि अप्रमादी रहता है; कोऊ प्रमादी होजाता है, तुच्छशरीर होते हैं, यह संसार स्वप्न आरंभ है अरु दृढ होकरि भासता है, कोऊ कैसे कोऊ कैसे रूपकरि स्थित हैं, स्वरूपके प्रमादकरि दीनताको प्राप्त होता है, ऐसे मानते हैं; मैं दुःखी हौं, मैं कृश हौं इत्यादिक भ्रमको मूढताकरि देखते हैं. सो सब आत्मरूपके तरंग बडे फुरते हैं, कोऊ जंगमरूप, कोऊ स्थावर-रूप, मनुष्य, देवता, दैत्य, तिर्यक् पशु पक्षी सब आत्मसमुद्रकी लहरी हैं, उपजिकरि बहुरि लीन होजाते हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे संसारावर्त्तवर्णनं नाम एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२.

उत्पत्तिविस्तारवर्णनम् ।

काल उवाच- हे मुनीश्वर ! देवता, दैत्य, मनुष्य आदिक जो आकार हैं, सो ब्रह्मसाथ अभिन्नरूप हैं, यह सत् है, जब मिथ्या संकल्पके साथ जीव कलंकित होता है, तब जानता है कि, मैं ब्रह्म नहीं, इस निश्चयको पायके मोहित होता है, मोहित हुआ अधःको चला जाता है, यद्यपि ब्रह्मसाथ अभिन्नरूप है अरु तिसविषे स्थित है, तौ भी भावनाके वशते आपको भिन्न जानिके मोहको प्राप्त होता है. शुद्ध ब्रह्मविषे संवितका उल्लेख होता है; सो कलंकितरूप कर्मका बीज होता है, तिसते आगे विस्तारको पाता है, जैसे जल जिस जिस बीजके साथ मिलता है, तिसी तिसी रसको प्राप्त होता है, तैसे संवित्का फुरना जैसे कर्मसाथ मिलता है, तैसी गतिको प्राप्त होता है, संकल्पकरि कलंकित हुआ अनेक दुःख पाता है, यह प्रमादरूप कर्म कैसा है, जैसे करजुएका बीज है, तिसको मुष्टि भरि भरि बोताहै, सो अपने दुःखका कारण है, यह जगत् आत्मरूप समुद्रकी लहरियां हैं, विस्तारकरि फुरती हैं, कोऊ ऊर्ध्वको जाती हैं, कोऊ अधःको जाती हैं, बहुरि लीन होजाती हैं; ब्रह्माआदि तृणपर्यंत इन सबनका यही धर्म है; जैसे पवनका स्पंद धर्म है, तैसे इनका भी है, तिनविषे कई निर्म-

ल पूजने योग्य हैं, सो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक हैं, कईक कछुक मोहसंयुक्त हैं, जैसे देवता, मनुष्य, सर्प हैं, कईक अनंत मोहविषे स्थित हैं; जैसे पर्वत वृक्ष आदिक हैं, कईक अज्ञानकरिकै मूढ हैं, सो कृमि, कीट, आदिक योनिको प्राप्त हुए हैं, यह दूरते दूर चले गये हैं. जैसे जलके प्रवाहकरि तृण चला जाता है. देवता, मनुष्य, सर्प आदि कईक भ्रमवान् भी होते हैं, कईक तटके निकट आयके बहुरि वहि जाते हैं, अर्थ यह, जो सत्संग अरु सच्छास्त्रोंको पायके बहुरि मायाके व्यवहारमें वहे जाते हैं, यमरूप जो चूहा है सो तिनको पडा काटता है, एक अल्पमोहको प्राप्त होकरि बहुरि, ब्रह्मसमुद्रविषे लीन भये हैं अरु कईक अन्तर्गत ब्रह्मसमुद्रको जानिकै स्थित हुए हैं, तम अज्ञानको तरे हैं कईक अनेक कोटि जन्मकरि प्राप्त होते हैं, कई अधःते ऊर्ध्वको चले जाते हैं; बहुरि ऊर्ध्वते अधः चले जाते हैं, प्रमादकरि अनेकयोनि दुःखहूंको पडे भोगते हैं;जब आत्मज्ञान होता है, तब आपदाते छूटिकै शांतिमान् होते हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे उत्पत्तिविस्तारणं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः १३.

भृग्वाश्वासनवर्णनम् ।

काल उवाच- हे साधो ! यह जैता कछु जगत् भूतजात विस्तार है सो सब आत्मरूप समुद्रके तरंग हैं, एक ही अनेक विचित्र विस्तारको प्राप्त भया है, जैसे वसंतऋतुविषे एक ही रस अनेक प्रकारके फूलफलको धारता है, तैसे इस जीवनविषे जिनने मनको जीतिकरि सर्वात्मा ब्रह्मका दर्शन किया है, सो जीवन्मुक्त हुए हैं और मनुष्य, देवता, यक्ष, किन्नर, गंधर्व आदिक सब पडे भ्रमते हैं. इनते इतर भी स्थावर मूढ अवस्थाविषे हैं, तिनकी क्या बात करनी है, लोकविषे तीन प्रकारके जीव हैं, एक अज्ञानी महामूढ हैं, दूसरे जिज्ञासु हैं, तीसरे ज्ञानवान् हैं, जो मूढ हैं, तिनको शास्त्रके श्रवण अरु विचारविषे कछु रुचि नहीं अरु जो जिज्ञासु

हैं, तिनके निमित्त ज्ञानवान्ने शास्त्र रचे हैं जिस जिस मार्गकरि वह प्रबुद्ध आत्मा हुए हैं, तिस तिस प्रकारके तिनने शास्त्र रचे हैं, तिस मार्गकरि अपर जीव भी मोक्षभागी होते हैं, हे मुनीश्वर ! सच्छास्त्र जो ज्ञानवान्ने किये हैं, सो जब निष्पाप पुरुष तिनको विचारता है, तब उसको निर्मल बोध उपजता है, तिसकरि मोह निवृत्त होता है, जब विमलबुद्धि होती है, तब सच्छास्त्रके अभ्यासकरि मोह नष्ट होता है; जैसे सूर्यके प्रकाशकरि तम नष्ट होजाता है अरु जो मूढ अज्ञानी हैं, सो आत्माके प्रमादकरि विषयको तृष्णाते मोहको प्राप्त होते हैं, जैसे अंधेरी रात्रि होवै अरु ऊपरते कुहिड भी होवै, तब तमते तम होता है, तैसे मूढ मोहते मोहको प्राप्त होते हैं, अपने संकल्पकरि आप ही दुःखी होते हैं, जैसे बालक अपने परछायेविषे वेताल कलिपकरि आप ही दुःखी होता है, ताते जेते कछु भूतजात हैं, तिन सबको सुखदुःखका कारण मनरूपी शरीर है, जैसे वह फुरता है, तैसी गतिको प्राप्त होता है, मांसमय शरीरका किया कछु सफल नहीं होता, असत् मांस आदिकका मिला हुआ जो आधिभौतिक शरीर है, सो मनके संकल्पकरि रचा है, सो वास्तव कछु नहीं, संकल्पकी दृढ़ताते आधिभौतिक भासने लगा है, स्वप्नशरीरकी नाईं है, मनरूपी शरीरकरि जो तेरे पुत्रने किया है तिसी गतिको प्राप्त भया है, इसमें हमारा कछु अपराध नहीं है. हे मुनीश्वर ! अपनी वासनाके अनुसार जैसा कोऊ कर्म करता है, तैसे फलको प्राप्त होता है, मांस शरीरमें कछु नहीं होता, जैसे जैसे तीव्र भावनाकरि तेरे पुत्रका मन फुरता गया है, तैसी तैसी गतिको पाता भया है, स्वर्ग नरक सबका भोक्ता भया है, अपने मनका होइकरि सब देखा है, बहुत कहनेकरि क्या है, उठहु, अब तहां ही चलिये, जहां वह ब्राह्मणका पुत्र होकरि तपकरने लगा है गंगाके तटपर तहां उसको देखैं. वाल्मीकिरुवाच–हे भारद्वाज ! इस प्रकार जब काल भगवान्ने कहा, तब दोनों जगतकी गतिको हँसते उठि खडे हुए, हाथमें हाथ पकडिके कहते भये, बड़ा आश्चर्य है, ईश्वरकी नीति आश्चर्यरूप है जीवको बडे भ्रमको प्राप्त करती है, जैसे उदयाचल पर्वतते सूर्य उदय

होता है अरु आकाशमार्गविषे चलता है, तैसे प्रकाशके निधि उदार आत्मा दोनों चले, इस प्रकार वसिष्ठजीने रामजीको कहा तब सूर्य अस्त हुआ सर्व सभा स्नानको गई, दिन हुए बहुरि अपने अपने आसनपर आनि स्थित भये.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भृग्वाश्वासनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः १४.

भार्गवजन्मांतरवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच– हे रामजी ! काल अरु भृगुजी दोनों मंदराचल पर्वतसों भूमिपै उतरे, जहां पुत्र बैठा था, तहाँ चले, देवताओंके महा सुंदर स्थानोंको लंघते लंघते तहां गये जहां ब्राह्मण शरीरके साथ समंगानदीके किनारे वह तप करता था. समाधिविषे स्थित है, तिसको देखत भये; मनरूपी जो मृग है, सो अचलहोइकरि विश्रामको प्राप्त भया है,जैसे चिरकालका थका चिरकालपर्यंत विश्राम पावै, तैसे विश्राम पाया है, अनेक जन्मकी चिंतनाविषे भटकता भटकता अब तपविषे लगा है अरु विश्रामको पाया है, जैसे चक्र भ्रमता ठहर जाता है तैसे ठहर गया है, संसाररूपी महासमुद्र है, तिसके आवर्त्तते निकसिकरि एकांत स्थित भया है, इंद्रिय अरु मनकी चपलताको त्यागिकै निर्विकल्प समाधिविषे स्थित भया है; स्थावरकी नाईं अचल भया है, आधि व्याधि आदिक संपूर्ण कल्पनाजालते मुक्त परम शांतिको प्राप्त हुआ है, रागद्वेषते रहित होइकरि परमानंदविषे स्थित भया है, परमबोधरूप उदारताविषे समाधिस्थित तिसको देखिकै कालने कहा–हे भृगु ! देख, समाधिविषे स्थित है, अब जगाइये इस प्रकार मेघकी नाईं बड़े शब्दकरि काल भगवान्ने कहा, तब तिसकी कलना फुरणेकरि अरु बाहिर शब्दकरि शुक्रजी जागे, जैसे मेघके शब्दकरि मोर जागै, तैसे जागे, अर्धोन्मीलित नेत्र खोलिकै काल अरु भृगुको अपने आगे देखत भया अरु

पहँचानता न भया अरु देखा कि, दोनोंके श्याम आकार हैं अरु बडे प्रकाशरूप हैं, जैसे विष्णुजी अरु सदाशिवजी होवैं, तिनको देखिकै उठि खडा हुआ अरु प्रीतिपूर्वक चरणवंदना करी अरु कहा कि, मेरे बड़े भाग्य हैं, जो प्रभुके चरण इस स्थानविषे प्राप्त भये हैं, बहुरि नम्रतासहित आदर किया, तब एक शिला पडी थी, तिसपर दोनों बैठि गये अरु वसुदेव नाम जो शुक्र है, तपके संयोगकरि तिसका नाम शातातप भया, तिस तपस्वीने शांत हृदय अगमवचन कालअरुभृगुसे कहे- हे प्रभो! मैं तुम्हारे दर्शनकरि शांतिको प्राप्त भया हौं, तुम सूर्य अरु चंद्रमा इकट्ठे मेरे आश्रम आये हौ, जो शास्त्रहू अरु तपकरिकै भी मोह निवृत्त होना कठिन है, सो तुम्हारे दर्शनकरि मेरे मनका मोह नष्ट भया है. हे साधो! ऐसा सुख ऐश्वर्यकरि नहीं प्राप्त होता अरु अमृतकी वर्षाकरि भी ऐसा सुख नहीं प्राप्त होता, जैसा सुख महापुरुषके दर्शनकरि होता है. तुम्हारे दर्शनकरि हमारा मोह नष्ट भया है, तुम ज्ञानके सूर्य अरु चंद्रमा हौ. हे ऋषीश्वरो! तुमने हमारा स्थान पवित्र किया है, मैं शांतात्मा हुआ हौं, तुम कौन हौ? जो प्रकाशरूप उदार आत्मा मेरे इस स्थानपर आये हौ? जब इस प्रकार जन्मांतरके पुत्रने भृगुजीको कहा तब भृगुजीने कहा. हे साधो! तू आपको स्मरण कर कि, कौन है, अज्ञानी तौ नहीं; तू प्रबोध आत्मा है जब इस प्रकार भृगुजीने कहा, तब नेत्र मूंदिकरि वही ध्यानविषे जुडि गया, एक मुहूर्तविषे अपना सब वृत्तांत देखिकै नेत्र खोले अरु विस्मय होकरि कहत भया कि, ईश्वरकी गति विचित्ररूप है, इसके वश हुआ मैं बडे भ्रमको प्राप्त हुआ हौं, जगत्रूपके चक्रपर आरूढ हुआ अनंत जन्मविषे भ्रमा हौं, तिन सबनको स्मरण करिकै आश्चर्यवान् होता हौं कि, मैं बहुत दुःख भोगे हैं अरु अनेक अवस्था भोगी हैं, स्वर्गविषे रहा हौं, मंदराचल कल्पवृक्षके नीचे रहा हौं सुमेरु कैलासादिक वनकुंजविषे रहा हौं, अनेक स्थानविषे ऐसा पदार्थ पावनेका नहीं, जो मैं नहीं पाया, ऐसा कोऊ कार्य नहीं; जो मैंने नहीं किया, ऐसा कोई इष्ट अनिष्ट नरक स्वर्ग पदार्थ नहीं, जो मैंने नहीं देखा. अब जो कछु जानने योग्य है; सो पाया हौं, अब मैं आत्मतत्त्वविषे

विश्रामवान् भया हौं, संकल्पभ्रम मेरा नष्ट होगया है, अब चलिये मेरा शरीर जहाँ मंदराचल पर्वतपर पड़ा है. हे भगवन् अब मुझको इच्छा कछु नहीं है, हेयोपादेय मुझको कछु रहा नहीं तथापि नीतिकी रचना देखिकै कहता हौं, जो बोधवान् हैं सो प्रकृत आचारविषे विचरते हैं, आगे जैसे इच्छा होवे तैसे करिये; बोधवान् उसी आचारको अंगीकार करते हैं ताते अपने अपने प्रकृत आचारको ग्रहण करिकै व्यवहारविषे विचरै.

इति श्रीयोग० स्थितिप्रकरणे भार्गवजन्मांतरवर्णनं
नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः १५.

शुक्रप्रथमजीवनवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच- हे रामजी! इस प्रकार विचार करिकै तीनों आकाशमार्गको चले; शीघ्र ही मेघमंडलको उल्लंघिकै सिद्धके मार्गसों मंदराचल पर्वतपर स्वर्णकी कंदराविषे आय स्थित भये, तब पूर्व जो शुक्रका शरीर था तिसको देखते भये अरु ब्राह्मण तपस्वीने कहा. हे तात! मेरा पूर्व शरीर देखौ, जो तुमने बहुत पालन किया था, कपूरके सुगंधिकरि शोभित किया था, फूलकी शय्यापर शयन करता था, सो अब माटीविषे लपटा पडा है अरु सूख गया है, जिस शरीरको देवस्त्रियां देखिकै मोहित होती थीं अरु मुक्तामाला कंठविषे शोभतीं थीं; मानौ तारेकी पंक्ति हैं, सो शरीर अब पृथ्वीपर गिर पड़ा है, नंदनवनविषे इसने अनेक भोग भोगे हैं; आत्मरूप जानिकै इसको मैं पुष्ट करता था, सो अब मुझको भयानक भासता है. जो शरीर देवांगनोंके साथ मिलता था अरु रागवान् होता था, तिनकी चिंताते सूख जाता था, जिन२विलासोंको चाहता था, तिनको करता था, अब तौ चिंताते रहित स्थित हो रहा है, महाअभागी हुआ धूपकरिकै सूख गया है, महाविकराल भयानक जैसा भासता है, जिसको मैं आत्मरूप जानता था, जिसविषे अहंकरिकै विलास करता था, जिस शरीरविषे

फूल कमल पडते थे अरु तारागण प्रकाशते थे, तिसविषे कीडियां फिरती हैं, जो शरीर द्रवते स्वर्णवत् सुंदर प्रकाशरूप था, सो धूपकारि सूखा भयानक भासता है, सब गुण इसको छोडि गये हैं, मानौ विरक्त आत्मा भया है, विषयते मुक्त निर्विकल्प समाधिविषे स्थित भया है, हे शरीर! तू अदृष्ट तनुको प्राप्त भया है, अब तेरेविषे क्षोभ कोऊ नहीं. चित्तरूपी वैताल तेरेविषे शांत होगया है, आनेजानेते रहित विश्रामवान् हुआ है, सब कल्पना तेरी नष्ट भई हैं, संकल्पजाल मिट गया है, सुखसे सोया है; चित्तरूप मर्कटते रहित शरीररूप वृक्ष ठहरि गया है, हलनेते रहित भया है सब अनर्थते रहित पहाडकी नाईं अचल भया है, यह देह अब सर्वदुःखते रहित परमानन्दविषे स्थित भया है. हे साधो! सब अनर्थका कारण चित्त है, जबलग चित्त शांतिमान् नहीं होता, तबलग जीवको आनंद प्राप्त नहीं होता, जब अमनशक्तिपदको प्राप्त होते हैं, तब महा आधि व्याधि जगत्के दुःखको तर विगत जो परमानंद तिसको प्राप्त होता है. राम उवाच−हे भगवन्! सर्व धर्मके वेत्ता, भृगुका जो पुत्र था, तिसने तौ अनेक शरीर धारे थे, अरु बहुरि बहुरि भोग भोगे थे, अरु भृगुते जो शरीर उत्पन्न भया था, तिसको बहुत परिदेवना करी अरु औरका चिंतवना न किया सो क्या कारण है? वसिष्ठ उवाच− हे रामजी! शुक्रकी जो संवेदनकलना थी, सो जीवभावको प्राप्त भई थी, सो कर्मात्मक होइकारि भृगुते उपजी थी, सो सुन. आदि जो परमात्मतत्त्वते चितकला फुरी है, सो भूताकाशको प्राप्त भई है, वही बात कलाविषे स्थित होइकारि प्राण अपानके मार्गसों भृगुके हृदयविषे प्रवेश करती भई, वीर्यके स्थानको प्राप्त होइकरि गर्भमार्गसों उत्पन्न भई, क्रमकरिकै बडी हुई, विद्या अरु गुणसंपन्न शुक्रशरीर होत भया, तिसको जो चिरकाल सेवन किया था, तिस कारणते उसकी परिदेवना करी, यद्यपि वीतराग अरु निरिच्छित था तौ भी जो चिरकालका अभ्यास किया था, सोई फुरि आया. हे रामजी! ज्ञानी होवै, अथवा अज्ञानी होवै व्यवहार दोनोंका तुल्य होता है, परंतु शक्ति अशक्तिका भेद है, ज्ञानवान् असंसक्त निर्लेप रहता है, अज्ञानी प्रियविषे बंधमान होता है

ज्ञानवान् मोक्षरूप है अरु अज्ञानी दरिद्री है. जैसे वनविषे जालमें पक्षी फँसता है, तैसे अज्ञानी लोक व्यवहारविषे बंधमान होता है. व्यवहार जैसे ज्ञानी करता है, तैसे अज्ञानी करता है; वासनारहित सो निर्बंध है वासनासहित बंध है, वासनामात्र भेद है, जबलग शरीर है तबलग सुखदुःख भी होता है, परंतु ज्ञानवान् दोनोंविषे शांतबुद्धि रहता है, अज्ञानी हर्षशोककरि तपायमान होता है, जैसे स्तंभका प्रतिबिंब जलविषे पडता है, सो जलके हिलनेकरि हिलता भासता है, परंतु स्वरूपते स्थित ही है; तैसे अज्ञानविषे सुखदुःखकरि सुखी दुःखी भासता है, परंतु स्वरूप ज्योंका त्यों है, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब जलके हिलनेकरि हिलता भासता है, परंतु स्वरूपते ज्योंका त्यों है, तैसे ज्ञानवान् इंद्रियकरि सुखी दुःखी भासता है, स्वरूपते ज्योंका त्यों है अरु अज्ञानी बाह्यते क्रियाका त्याग करता है, तौ भी बंध रहता है, ज्ञानवान् क्रिया करता है, तौ भी मोक्षरूप है, अन्तःकरण इंद्रियकरि जो अनात्मधर्मविषे बंधमान है, बाह्य कर्म इंद्रियकरि मुक्ति है तौ भी, बंधनमें है अरु अन्तःकरणकरि मुक्ति है, कर्म इंद्रियकरि बंधन भासता है, तौ भी मुक्तिरूप है, जो सब क्रीडाको त्यागि बैठा है अरु अन्तर जगत्की सत्यता हैं. भावै कछु करै, भावै न करै, तौ भी वह बंधनमें है, अरु बाह्य भावै तैसा व्यवहार करै, अन्तरते अद्वैत ज्ञान है, तौ वह मुक्तिरूप है, तिसको कर्म बंधन नहीं करता, ताते हे रामजी! सब कार्य करौ अरु अंतरते शून्य रहौ; सर्व ईषणाते रहित आत्मपदविषे स्थित होहु, अपने प्रकृति व्यवहारको करौ यह संसाररूपी समुद्र है, तिसविषे आधिव्याधिरूपी गढेले हैं, अहंममतारूपी गर्त हैं, तिसविषे जो गिरा है, सो ऊर्ध्वते अधःको जाता है ताते संसारके भावविषे मत स्थित होहु, शुद्धबुद्धि आत्मस्वभावविषे स्थित होहु, ब्रह्म है, शुद्ध है, सर्वात्मा है, निर्विकार निराकार आत्मपदविषे जो स्थित है, तिसको नमस्कार है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे शुक्रप्रथमजीवनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्ग १६.

भार्गवजन्मांतरवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इस प्रकार जब शुक्रने शरीरका वर्णन किया, अरु विकरालरूप देखिकै उसविषे त्यागबुद्धि करी, तब काल भगवान् शुक्रके वचनको न मानिकै गभीर वाणीसों बोलत भया-काल उवाच-हे शुक्र ! तू इस तपरूपी शरीरका त्याग कर अरु भृगुके पुत्रका जो शरीर है भार्गव तिसको अंगीकार कर, जैसे राजा देशदेशांतरको भ्रमता अपने नगरविषे आता है, तैसे तू इस शरीरविषे प्रवेश कर, काहेते जो भार्गव तनुके साथ असुरका गुरु होना है, यह आदि परमात्माकी नीति है, महाकल्पपर्यंत तेरा आयुर्बल है, महाकल्पका अंत होवैगा तब भार्गवतनु नष्ट होवैगा, तुझको बहुरि शरीरका ग्रहण न होवैगा, जैसे रस सूखेते पुष्प गिर पडता है, तैसे प्रारब्धवेगके पूर्ण हुएते तेरा शरीर गिर पड़ैगा अरु शरीरके होते जीवन्मुक्तिपदको प्राप्त हुआ प्रकृत आचारविषे विचरैगा, ताते तू शुक्रशरीर था, दैत्यका महागुरु होकरि स्थित होहु, यह ईश्वरकी नीति है,ताते इस शरीरको त्यागिकरि भार्गव शरीरविषे प्रवेश करु अब हम जाते हैं, तुम दोनोंका कल्याण होवै, तुम अपने वांछितको प्राप्त होवहु. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! काल भगवान् ऐसे कह दोनोंके ऊपर पुष्प डारे अरु अंतर्धान होगया, तब तपस्वी नीतिको विचारने लगा कि, क्या होना है ? विचारकरि देखा, जैसे काल भगवान्‌ने कहा तैसे ही होना है, ऐसे विचारकरि महाविकृतरूप जो शरीर था तिसविषे प्रवेश किया अरु तपस्वी ब्राह्मणका देह त्यागि दिया; जैसे वसंतऋतुविषे वल्लीमें रस प्रवेश करता है, तैसे भार्गव शरीरमें प्रवेश किया, जैसे सर्प कंचुकीको त्यागता है, तैसे तपस्वीशरीरका त्याग किया, तब उस शरीरकी शोभा जाती रही. कंप कंप पृथ्वीपर गिरा पडा. जैसे मूलके काटेते वल्ली गिर पडती है, तैसा वह देह गिरा अरु शुक्रदेह जीवकलासंयुक्त हो आया, तब भृगुजी जीवकलासंयुक्त देह कृश जैसा देखिके उठि खडे हुए, हाथविषे जलका कमं-

डलु लिया, अरु मंत्रविद्या जो पुष्टिशक्ति है, तिसको पाठ कर पुत्रके शरीर ऊपर जल डारा, तिसके पानेकरि शरीरकी नाडी सब पुष्ट होगई, जैसे वसंतऋतुविषे कमलिनी प्रफुल्लित होती है, तैसे शरीर प्रफुल्लित हो आया, श्वास आने लगे, तब पिताके सन्मुख होइकरि नमस्कार करत भया, जैसे मेघ जलसों पूर्ण होइकरि पर्वतके आगे नमता है, तैसे विधिसंयुक्त नमस्कार कर नमता भया अरु स्नेहकरि नेत्रते जल चलने लगा, तब पुत्रको देखिके भृगुजी कंठ लगाया कि मेरा पुत्र है, ऐसे स्नेहकरि पूर्ण होगया. हे रामजी ! जबलग देह है, तबलग देहके धर्म फुरि आते हैं. इस प्रकार ज्ञानीको ममता स्नेह फुरि आई; तौ अपरकी क्या बात कहनी है? पिता अरु पुत्र दोनों बैठि गये, एक मुहूर्तपर्यंत कथा वार्त्ता करते रहे बहुरि उठिकरि तपस्वी शरीरको जलाया. जो बुद्धिमान् हैं सो शास्त्राचारविषे स्थित होते हैं. तिसके अनंतर दोनों मंदराचल पर्वतविषे स्थित भये तपकरिके प्रकाशित है वपु जिनका अरु श्याम कांति है, जीवन्मुक्त उदार आत्मा होइकरि वहां रहते भये, समयकरिकै शुक्रजी दैत्यका गुरु होवैगा अरु भृगुजी समाधिविषे स्थित होवैगा, ताते जो सब विकारते रहित जीवन्मुक्त पुरुष जगद्गुरु हैं, सो सबको पूजने योग्य है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवजन्मांतरवर्णनं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः १७.

मनोराज्यसंमीलनवर्णनम् ।

राम उवाच–हे भगवन् ! जैसे भृगुके पुत्रको यह प्रतिभा फुरती गई, अरु सिद्ध होती गई तैसे अपर जीवको सिद्धि क्यों नहीं होती ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! शुक्रका जो ब्रह्मतत्त्वते फुरणा हुआ है, सो भार्गवजन्मसें हुआ है, अपर जन्मकरि कलंकित नहीं भया, सर्व ईषणाते रहित शुद्ध चैतन्य था, निर्मल हृदयको जैसी फुरणा होती है, तैसी सिद्ध

होजाती है; अरु मलिन हृदयवान्का शीघ्र ही संकल्प सिद्ध नहीं होता जैसे भृगुके पुत्रको मनोराज्य हुआ अरु भ्रमता फिरा तैसे सब ही स्वरूपके प्रमादकरि भ्रमते हैं, जबलग स्वरूपका साक्षात्कार नहीं होता तबलग शांति प्राप्ति नहीं होती, यह मैंने भृगुके पुत्रका वृत्तांत तुझको सुनाया है, मनोराज्यकी दृढताअर्थ जैसे बीजते अंकुर फूल फल अनेक भावको प्राप्त होते हैं. तैसे सब भूतजातको मनका भ्रमणा अनेक भ्रमको प्राप्त करता है, जेता कछु जगत् तुझको भासता है, सो सब मनके फुरनेका रूप है, मिथ्या भ्रमकरिके नानात्व भासता है और कछु हुआ नहीं, एक एक प्रति ऐसा भ्रम है, सब संकल्पमात्र है; न कछु उदय होता है, न अस्त होता है, कदाचित् किसीको सब मिथ्यारूप मायामात्र है, जैसे स्वप्नपुर अरु संकल्पनगर भासता है, परस्पर व्यवहार दृष्टि आते हैं, अरु हुआ कछु नहीं तैसे यह जाग्रत्भ्रम भी अज्ञानकरि दृष्टि आता है, भूत पिशाच आदिक जेते कछु जीव हैं, तिनका भी संकल्पमात्र शरीर है; जैसे उनको सुख दुःखका भोग होता है, तैसे तुम हमको होता है, जैसे यह जगत् है, तैसे अनंत जगत् पडे वसते हैं, परस्पर अज्ञानत्व है, एकको दूसरा नहीं जानता, जैसे एक स्थानविषे बहुत पुरुष शयन करते हैं, तिनको मनोराज्य स्वप्नभ्रम परस्पर अज्ञात होता है, तैसे यह जगत् है, वास्तवते कछु हुआ नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जो इस जगत्को सत् जानता है, तिसका पुरुषार्थ नष्ट होता है; जो भ्रांतिकरि वस्तु भासती है, तिसका सम्यक् ज्ञानकरि अभाव होजाता है, यह जाग्रत् जगत् भी दीर्घ स्वप्न है, चित्तरूप हस्तीको बन्धन है, चित्तसत्ताकरिके जगत् सत् भासता है अरु जगत्सत्ताकरिके चित्त है, एकके नाश हुएते दोनोंका नाश होजाता है, जब जगत्का सत्भाव नष्ट होता है, तब चित्त नहीं रहता, जब चित्त उपशम होता है, तब जगत् शांत होता है, इसप्रकार एकके नाश हुएते दोनोंका नाश होता है, सो दोनोंका नाश आत्मविचार करिकै होता है, अरु विचार तहां उपजता है जहां हृदय निर्मल होता है,जैसे उज्ज्वल वस्त्र पर केसरका रंग शीघ्र ही चढि जाता है, मलिन वस्त्रपर नहीं चढता, सो निर्मल हृदय तब होता

है जब शास्त्रके अनुसार क्रिया करता है. हे रामजी ! एक एक जीवको हृदयविषे अपनी अपनी सृष्टि है, मलिन चित्तकरि एकको दूसरा नहीं जानता, जब चित्त शुद्ध होता है, तब औरकी सृष्टिको भी जान लेता है, जैसे शुद्ध धातु परस्पर मिलि जाती है, इसको जब दृढ अभ्यास चिरपर्यंत होता है, तब सब कछु भासने लगता है, काहेते कि, सबका अधिष्ठाता एक आत्मा है, तिसविषे स्थित होनेते सबका ज्ञान होता है. राम उवाच-हे भगवन् ! शुक्रको प्रतिभा मात्र आभास हुआ था, तिसविषे देश, काल, क्रिया, द्रव्य उसको दृढ होइकारि कैसे भासे-हैं ? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जो कछु जगत् शुक्रने देखा है, सो अपने अनुभवरूप भंडारविषे मनकरि देखा है, जैसे मोरके अंडेसों अनेक रंगवान निकसते हैं, तैसे उसको अपने अंतर भ्रम भासि आया, जैसे बीजसों पत्र, टास, फूल, फल, निकसते हैं तैसे जीव जीवको अपने अपने अनुभवविषे संसार खंड पडे फुरते हैं, यहां स्वप्नदृष्टांत प्रत्यक्ष है; जैसे एक एकके स्वप्नविषे जगत् होता है, तैसे यह जगत् है, दीर्घ स्वप्न जाग्रत् हो भासता है; जैसा दृढ होता है, तैसा भासने लगता है. राम उवाच-हे भगवन् ! सृष्टिके समूह परस्पर कैसे मिलते हैं अरु कैसे नहीं हैं ? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! मलिन चित्त है, सो परस्पर नहीं मिलता है. जो शुद्ध है, सो मिलता है, जैसे शुद्ध धातु मिलिजाती है, सुषुप्तरूप आत्मासों सब फुरते हैं, सो तन्मयरूप हैं, जिसको तिसविषे विश्राम होता है, सो ज्ञानदृष्टिकरि सबके साथ मिलिजाता है,जैसे जल-के साथ जल मिलिजाता है, तैसे वह सबके साथ मिलिकरि सबको जानता है; और कोई नहीं जानता.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे मनोराज्यसंमीलनवर्णनं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः १८.

जीवपदवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जेते कछु संसार खंड हैं, तिन सबका बीजरूप आत्मा है, सब आत्माहीका अभास है, सो आभासके उदय अस्त होनेविषे आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है, अपने स्वभावके त्यागते रहित है अरु सर्व जीवका अपना आप वास्तवरूप है अरु सुषुप्तकी नाईं अस्फुरण है, तिस सत्ताते जीव फुरते हैं, सब स्वप्नवत् जगत् भ्रमको देखते हैं, सो जीव जीव प्रति अपनी सृष्टि स्थित है, जो पुरुष उलटिकै आत्मपरायण होता है, सो आत्मपदको प्राप्त होता है, जिन पुरुषोंको आत्मब्रह्मके साथ एकता भयी है, तिनको परस्पर औरकी सृष्टि भासती है, अंतःकरणविषे सृष्टि होती है, सो तिनका अंतःकरण मिलता है, तिस अंतःकरण जीवकलाके मिलते परस्पर सृष्टि भासि आती है; वह जानते हैं, जीवको अपनी अपनी सृष्टि है, सबको अपनी आप सन्मात्रसत्ता है, तिसविषे सब सृष्टि स्थित होती है, जैसे कपूरका पर्वत होवै, तिसके अणु अणुविषे सुगंधता होती है अरु सर्व अणुकी सुगंधताको पर्वतविषे एकता होती है, तैसे सब जीवका अधिष्ठान आत्मसत्ता है, जैसे सब नदीके जलका अधिष्ठान समुद्र है, तैसे सब जीवका अधिष्ठान आत्मा है, सो सृष्टि कहूँ परस्पर मिलती हैं, कहूँ भिन्नभिन्न स्थित हैं, जहां चैतन्यमात्र सत्ताके साथ एकता है, तहां चित्तकी वृत्ति जिसके साथ मिला चाहै, तिसको मिलजाती है: मलिनचित्तवाला नहीं मिल सकता अरु एक एक जीवविषे सहस्र सृष्टि परस्पर गुप्तरूप होती हैं, जहां जैसा फुरना दृढ होता है तहां तैसा ही भासता है, जहां मनका फुरना कोमल होता है, सो सफल नहीं होता अरु जहां दृढ होता है, सो भासने लगता है. हे रामजी ! जब देहकी भावना मिटि जाती है अरु प्राणपवनहीके स्थित करनेते चित्तकी वृत्ति स्वभावकरि स्थित होती है, तब अपरके चित्तकी चेष्टा इसके चित्तविषे फुरि आती है, अरु जबलग चित्त मलिन होता है देहकी भावनाको नहीं त्यागता तबलग किसी पदार्थके साथ एकता नहीं होती अरु जिसका चित्त

निर्मल होता है तिसको जैसे औरके चित्तका ज्ञान हो आता है; तैसे और सृष्टिविषे भी मिलनेकी शक्ति हो आती है अशुद्धको नहीं होती अरु सर्व जीवकी तीन अवस्था जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति होती हैं, यह तीनों ही अवस्था आत्माविषे जीवत्वके लक्षण हैं, जैसे मृगतृष्णाकी नदीके तरंग किरणोंविषे होते हैं, तिनका अभाव है अरु जीवको आत्माविषे प्रमाद है, तिसकरि तीनहू अवस्थाविषे पड़ा भटकता है, जब चित्तकला तुरीयाविषे स्थित होती है, तब जीवन्मुक्त होता है, आत्मसत्ता स्वभावविषे स्थित हुए ते आत्माके साथ एकताको प्राप्त होता है, अरु सब जीवनके साथ सुहृद्भाव होता है, जब अज्ञानी सुषुप्त आत्मसत्ताते जागता है, अर्थ यह कि संसारको चितवता है, तब संसारको प्राप्त होता है, वह संसारविषे और संसार, तिसविषे इस प्रकार प्रमादकरिकै अनेक सृष्टिको देखता है, जैसे केलेके स्तंभसों पत्रका समूह निकसि आता है; तैसे सृष्टिसों सृष्टिको देखता है, शांतिको नहीं प्राप्त होता, अनेक भ्रमको देखता है, जब उलटिकै अपने स्वभावविषे स्थित होता है, तब नानात्वभाव मिटि जाता है, शांतरूप होता है, जैसे केलेका अंतर शीतल होता है. हे रामजी ! जगत्के समूह भासते हैं, तौ भी आत्माविषे कछु द्वैत नहीं, आत्माके साथ एकरूप हैं, जैसे केलेके अंतर पत्रते इतर कछु नहीं निसकता, तैसे आत्माते इतर जगत् कछु नहीं, जैसे बीज फूल भावको प्राप्त होता है, फूलते बहुरि बीज होता है. तैसे ब्रह्मते मन होता है. बहुरि बुद्धिकरि ब्रह्म होता है; बीजका कारण वही रस है, आत्माविषे कारण कार्यभाव कछु बनता नहीं, अद्वैत अचिंत्यरूप है, आदि परमात्मा अकारणरूप है, सोई विचारने योग्य है. औरके साथ क्या प्रयोजन है ? बीज जब अपने भावको त्यागता है, तब फूलभावको प्राप्त होता है अरु ब्रह्मसत्ता अपने स्वभावको कदाचित् नहीं त्यागती अरु बीज परिणामकरि आकाररूप है, आत्मा अकृत्रिम निराकार अच्युतरूप है,इस कारणते आत्मा बीजकी नाईं भी कहना नहीं बनता, आकाशते आकाश नहीं उपजता है अरु अभिन्नरूप है. न कोऊ उपजता है, न किसीको उपजाया है, केवल ब्रह्म आकाश अपने आपविषे

स्थित है, जब द्रष्टा पुरुषको देखता है तब आपको नहीं देख सकता. काहेते कि; मनोराज्यका जगत्‌विषे परिणाम जाता है. तब विद्यमानवस्तुकी संभाल नहीं रहती, देहादिकविषे आत्माभिमान होता है. जो पुरुष आत्मसत्ताको देखता है, तिसको जगत्‌भाव नहीं रहता अरु जो जगत्‌को देखता है, तिसको आत्मसत्ता नहीं भासती, जैसे मृगतृष्णाकी नदीको झूठ जानता है, तिसको जलभाव नहीं रहता अरु जल जानता है, तिसको असतबुद्धि नहीं होती. आकाशकी नाईं पूर्ण पुरुष द्रष्टा है, जब इस दृश्यकी ओर जाते हैं, तब आपको देखि नहीं सकते, आकाशकी नाईं ब्रह्मसत्ता सब ठौर पूर्ण है, सो अज्ञानीको नहीं भासती अरु जो दृश्यका अत्यंत भाव है सोई पड़ा भासता है, अनुभवका भासना दूर होगया है. हे रामजी ! जो कोऊ स्थूल पदार्थ होता है, पहाड वृक्ष आदिक तिसके आगे पटल आवता है, तब वह नहीं भासता तौ जो सूक्ष्म निराकार द्रष्टा पुरुष है, तिसके आगे आवरण आवै, तब वह कैसे भासे ? द्रष्टा पुरुष अपने ही भावविषे स्थित है; दृश्यभावको नहीं प्राप्त होता अरु दृश्य भासता है, तब द्रष्टा देखनेविषे नहीं आता; अरु दृश्य कछु वस्तु नहीं है, ताते द्रष्टा एक परमात्मा ही अपने आपविषे स्थित है, जो आत्मरूप सर्व शक्तिमान् देव है, जैसा फुरणा तिसविषे होता है, तैसा ही शीघ्र भास आता है, जैसे वसंतऋतुविषे एक रस अनेकरूपको धारता है, टास, फूल, फल होते हैं, तैसे एक आत्मसत्ता अनेक जीवदेह होके भासती है, जैसे अपने ही अंतर अनेक स्वप्नभ्रमको देखता है, तैसे अहम्‌आदिक जगत दृश्यभ्रमको अनुभव प्राप्त ही होता है अरु स्वरूपते कछु अपर हुआ नहीं; जैसे एक बीजके अंतर पत्र, टास; फूल,फल अनेक होते हैं, तिसविषे और बीज होता है, बीजके अंतर और वृक्ष, तिसके अंतर और बीज; इसी प्रकार एक बीजके अंतर अनेक वृक्ष होते हैं, तैसे एक आत्माविषे चिद्‌अणु अनेक फुरते हैं; तिनके अंतर सृष्टि, बहुरि सृष्टिके अंतर चिद्‌अणु, बहुरि चिद्‌अणुके अंतर सृष्टि, इसी प्रकार आत्माविषे अनेक सृष्टि ब्रह्मांड हैं, तिनकी संख्या कछु कही नहीं जाती अपने आपकरि फुरते हैं, आप स्वाद लेता है; एक एक चिद्‌अणुके

अंतर अनेक सृष्टि हैं, जैसे तिलविषे तेल है, तैसे चिद्अणुविषे आकाश पवन आदिक अनेक सृष्टि स्थित हैं, आकाशविषे पवन, अग्निविषे जल, सर्व भूतविषे पृथ्वी सृष्टि स्थित है, ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं, जो चित्तसत्ताते रहित होवै अरु जहां चित्त है, तहां तिसका आभासरूप द्रष्टा भी स्थित है, जैसे एक डब्बेविषे लोग होते हैं तिनके नष्ट हुएते डब्बा नष्ट नहीं होता. जैसा जैसा तिसविषे फुरना होता है, तैसा स्थित होता है, सबका अधिष्ठानरूप आत्मा है, जैसे जेते कछु कमल हैं तिनको पूरणहारा जल है, तिसकरि सब विस्फूर्जित होते हैं अरु प्रकाशते हैं, तैसे सब नष्टहूंको सत्ता देने हारा आत्मा है, सबका आश्रयरूप आत्मतत्त्व है अरु यह जगत् दीर्घ स्वप्नरूप अपने अनुभवते उदय हुआ है, सो बाह्यरूप होइकरि भासता है, तिस स्वप्नते आगे और स्वप्नांतर होता है, तिसते आगे और स्वप्न,इसी प्रकार सृष्टिकी स्थिति भई है, जैसे एक बीजते अनेक वृक्ष होते हैं, तैसे एक चिद्अणुविषे अनेक सृष्टि स्थित हैं, जैसे जलविषे अनेक तरंग भासते हैं, तैसे आत्मानुभवविषे अनेक जगत् भासते हैं, सो अभिन्नरूप हैं ताते द्वैतभ्रमको त्यागि दे, न कोऊ देश है, न कालक्रिया जगत् है केवल एक अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, जैसे अकाशविषे आकाश स्थित है तैसे आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है. ब्रह्म आदि कीटपर्यंत जेता कछु जगत् भासता है, सो एक परमात्मा ही अपने आपविषे किंचनरूप होता है, जैसे एक रस सत्ता कहूं फूल सुगंधसहित भासती है, कहूं काष्ठरूपको प्राप्त होती है तैसे एक परमात्मसत्ता कहूं चेतनरूप होइकरि भासती है, कहूं जडरूप होइकरि देखाई देती है, जो सर्वगत अविनाशी आत्मा है, सोई सबका बीजरूप है तिसीके अंतर सब जगत् स्थित है, जिसको आत्माका प्रमाद है, उसको नानारूप भासता है, जैसे जलविषे डूबै, बहुरि निकसै, बहुरि डूबै, बहुरि निकसै अरु जैसे स्वप्नविषे और स्वप्नांतरको प्राप्त होता है, तैसे प्रमाददोषकरिकै भ्रमते भ्रमांतर नानाप्रकारके जगत्को देखता है, जगत् अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं, जगत् कछु हुआ नहीं, काहेते कि,

आत्मा ही जगत् जैसा हो भासता है, भ्रांतिकरिकै जगत् भासता है,जैसे विचाररहितको स्वर्णविषे भूषणबुद्धि होती है, विचार कियेते भूषणबुद्धि नष्ट होजाती है, एक ही स्वर्ण भासता है तैसे जो विचारते रहित है, तिसको यह जगतूपदार्थ भासता है कि, यह मैं हौं, यह जगत् है, यह उपजा है, यह लीन होता है अरु जिसको सत्संग शास्त्रके संयोगते विचार उपजा है, तिसको दिनप्रतिदिन भोगकी तृष्णा घटती जाती है आत्मविचार दृढ होता जाता है, जैसे किसीको ताप आता है, सो औषधकरिकै निवृत्त हो जाता है. सो दो लक्षण तिसविषे प्रत्यक्ष होते हैं; एक तृषा बहुत थी सो निवृत्त होजाती है, दूसरी शरीरसों ताप निवृत्त होजाता है शीतलता प्रगट होती है, तैसे ज्यों ज्यों विवेक दृढ होता है त्यों त्यों इंद्रियका जीतना होता है; संतोषकरि अंतर शीतल होता है, सर्व आत्मा ही भासता है, यह विवेकका फल है. हेरामजी! जिस पुरुषको वचनका विवेक है अरु निश्चयविषे नहीं, तिसका विवेक कछु कार्य सिद्ध नहीं करता, जैसे मूर्तिका अग्नि लिखा होता है, तिसते कछु कार्य सिद्ध नहीं होता, तैसे निश्चयते रहित वचनका विवेक है दुःखको निवृत्त नहीं करता, शांति नहीं प्राप्त होती है, जैसे जब पवन चलता है, तब पत्र वृक्ष हिलते हैं, उसका लक्षण भासता है अरु वाणी-कारि कहिये तब हिलते नहीं, तैसे जब विवेक हृदयविषे आता है, तब भोगकी तृष्णा घट जाती है, मुखके कहनेकारि तृष्णा घटती नहीं; जैसे चित्रकी मूर्तिपर अमृत लिखा होवै, सो पान करने अरु अमर होनेका कार्य नहीं करता अरु मूर्तिका लिखा अग्नि तिसको निवृत्त नहीं करता अरु मूर्तिकी लिखी स्त्री स्पर्श करने अरु संतान उपजनेका कार्य नहीं करती, तैसे मुखका विवेक वाणीविलास है अरु भोगकी तृष्णाको निवृत्त कर शांतिको प्राप्त नहीं करता, जैसे मूर्तियां देखनेमात्र हैं; तैसे वह विवेक वाग्विलास है. हे रामजी! प्रथम जो विवेक आता है तब रागद्वेषको नाश करता है अरु ब्रह्मलोकपर्यंत जेते कछु विषय भोगरूप हैं, तिनकी तृष्णा अरु वैरभावको नष्ट करता है, जैसे सूर्यके उदय हुएते

अंधकार नष्ट होताहै, तैसे विवेकके उदय हुएते अज्ञान नष्ट होजाता है अरु पावनपदकी प्राप्ति होती है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जीवपदवर्णनं
नाम अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशतितमः सर्गः १९.

जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीयारूपवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! सर्व जीवका बीज परमात्मा है, सो सर्व ओरते आकाशकी नाईं स्थित है, तिसके फुरनेका नाम जीव है, सो जीव जीवके अन्तर जगत् है, तिसके आगे और नाना प्रकारकी रचना है, वस्तुते चिद्घन जीवके रूपसो अंतर स्थित भया है. ताते सब जीव चिद्घनरूप हैं, जैसे केलेके स्तंभविषे पत्र होते हैं, तैसे आत्मसत्ताके अन्तर जीव स्थित हैं; जैसे पुष्पके अन्तर कीट होते हैं तैसे आत्माके अन्तर जीवराशि हैं; जैसे प्रस्वेद करिकै जुवां लीखैं आदिक जीव उपजते हैं; और पदार्थते कीट उपज आते हैं, तैसे आत्मासों चित्कलाके फुरनेकरि जीवके समूह फुरि आते हैं, बहुरि जीव जैसी जैसी सिद्धताके निमित्त यत्न उपासना करते हैं, तैसी गतिको प्राप्त होते हैं, उपासनाकी विचित्रताते नाना प्रकारकी गतिको प्राप्त होते हैं, जो देवताकी उपासना करते हैं सो देवताको प्राप्त होते हैं, यक्षके उपासक यक्षको प्राप्त होते हैं, इसी प्रकार जिसकी उपासना करते हैं; तिसीको प्राप्त होते हैं, ब्रह्मके उपासक ब्रह्मको प्राप्त होते हैं, ताते जो अतुच्छ पद है; तिस महत्पदका आश्रय करो, जैसे शुक्र जब दृश्यकी ओर लगा, तब अनेक प्रकारके दृश्यभ्रमको प्राप्त हुआ, जब शुद्ध बुद्धकी ओर आया, तब निर्मल बोधको प्राप्त हुआ, जैसे जिसकी कोऊ उपासना करता है, सो तिसको प्राप्त होता है, अन्यको नहीं प्राप्त होता. राम उवाच–हे भगवन् ! जाग्रत् अरु स्वप्नका जो भेद है सो कहो कि जाग्रत् क्या है अरु स्वप्न क्या है. ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! स्थिर प्रतीतिका नाम जाग्रत्

अरु अस्थिर प्रतीतिका नाम स्वप्न है, जो चिरकाल रहता है, तिसका नाम स्थिर है अरु जो कल्पकाल रहै, तिसका नाम अस्थिर है, दीर्घ काल प्रतीतिका नाम जाग्रत् है, अल्पकालका नाम स्वप्न है. और भेद कोऊ नहीं, दोनोंका अनुभव सम होता है, जो शरीरके अंतर स्थित होइकरि शरीरको जिवावता है, तिसका नाम जीव है, तेजरूप है; बीजरूप है; जीव धातु है, यह सब तिसके नाम हैं, जब जीवधातु स्पंदरूप होता है, जीवतके रंध्रविषे पसरता है तब मन वाणी देहकरि सब व्यवहार होता है, रंध्र खुलि जाते हैं; तब इसको जाग्रत् कहते हैं, अरु जब चित्तकला जाग्रत् व्यवहारविषे स्पष्टरूप होती है अरु अंतर होइकरि फुरती है, तिसकरि अन्तर जगद्भ्रम भासने लगता है, तब स्वप्न कहाता है, अब सुषुप्तिका क्रम श्रवण कर. मन, वाणी अरु शरीरकरि जहां क्षोभ कोऊ नहीं अरु स्वच्छवृत्ति जीवधातु अन्तर स्थित होता है; हृदय-कोशविषे प्राणवायुकरि क्षोभ नहीं होता, नाडी रसकरि पूर्ण होती हैं, उस मार्गते प्राण आनेजानेसों रहित होते हैं,क्षोभते रहित सम वायु चलता है, तिसका नाम सुषुप्ति है,जैसे वायुते रहित दीपक गृहविषे एकांत उज्ज्वल प्रकाशता है, तैसे तहां संवितसत्ता अपने आपका अनुभव लेती है, जैसे तिलविषे तेल स्थित होता है, तैसे जीव संवित् कलनाकरिकै जो कल्पता है; सो तिस कालमें अपने आपविषे स्थित होता है, जैसे बर्फविषे शीतलता होती है, घृतविषे चिक-नाई होती है; तैसे तहां संवित्विषे संवित्सत्ता स्थित होती है, तिसका नाम सुषुप्तिअवस्था है; जडरूप तिस सुषुप्तिअवस्थाते जागै अरु दृश्य-भावको प्राप्त न होवै, निर्विकल्प प्रकाशताविषे स्थित होवै; सो ज्ञानरूप तुरीया है, तब व्यवहार पडा करै तौ भी जीवन्मुक्त है, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिविषे बन्धमान नहीं होता. हे रामजी ! आत्मसत्ताते फुरना होता है अरु स्वरूप विस्मरण होजाता है अरु फुरना दृढ होकारि स्थित होता है, इसीका नाम जाग्रत् है अरु स्वरूपते प्रमाददोषकरिके फुरै, जगत् भासै तिसको सत्‌रूप जानै, यह प्रतीति थोडा काल रहिकारि बहुरि निवृत्त होजावै, तिसका नाम स्वप्न है अरु दृश्य फुरनेका अभाव होजावै

अरु अज्ञातवृत्ति जडतारूप तिसका नाम सुषुप्ति है अरु अनुभवविषे ज्ञान स्थित है, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीनोंका व्यवहार होवै अरु निश्चयविषे इनका सद्भाव रंचक भी न होवै, केवलज्ञानविषे अहंप्रतीति होवै, वृत्ति तिसते चलायमान न होवै, तिसका नाम तुरीयापद है, तिसविषे स्थित भया जीवन्मुक्त होता है और जो जीव हैं, सो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीन अवस्थाविषे स्थित होते हैं, जब नाडी अन्नके रससों पूर्ण होजाती हैं; प्राणवायु हृदय नाम्नी नाडीविषे नहीं आता, तब चित्तसंवित् अक्षोभरूप सुषुप्त होता है, जब अन्न उस नाडीसों पचता है अरु प्राणवायु चलने लगता है, तब चित्तसंवित् क्षोभरूप फुरणे लगता है, तिस फुरणेकरि अपने अंतरही बडे जगद्भ्रमको देखता है, जैसे बीजते वृक्ष होता है. जब वायुका रस नाडीविषे बहुत होता है, तब चित्तसत्ता आकाशविषे उडना अरु वायु अँधारियादिक पदार्थको देखता है अरु जब कफका रस नाडीविषे अधिक होता है, तब फूल, बेलियां, बाबलियां, जल, मेघ, बगीचे आदिक पदार्थ भासते हैं, जब पित्तकी अधिकता होती है, तब उष्णरूप अग्नि रक्त वस्त्र आदिक भासने लगते हैं, इस प्रकार वासनाके अनुसार जगद्भ्रमको देखता है, जैसी जैसी भावना दृढ होती है, तैसा ही पदार्थ दृढ हो भासता है अरु जब पवन क्षोभायमान होता है, चित्तसंवित् नेत्र आदिक द्वारसों बाह्य निकसिकारि रूपादिकका अनुभव करती है, सत् जानिके चिरपर्यंतका नाम जाग्रत् है, वासनाके अनुसार मनरूपी शरीरसाथ नेत्र जिह्वादिक विना रूपरसादिकका अनुभव होता है, तिसका नाम स्वप्न है, स्वरूपते न कोऊ स्वप्न है, न जाग्रत् है, न सुषुप्ति है, केवल सत्ता अपने आपविषे स्थित है, तिसके फुरनेका नाम जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति है, चिरकाल फुरनेका नाम जाग्रत् है. अल्प कालका नाम स्वप्न है, सो प्रतीतिका भेद हुआ, वस्तुतः भेद कछु नहीं, जो वस्तुसे भेद हुआ, तौ जगत्स्वरूप हुआ क्यों ? ताते यही भावना दृढ करहु कि, जगत् असत्रूप स्वप्नवत् है, इसविषे सद्भावना करनी दुःखका कारणहै

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयारूप-वर्णनं नाम एकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशतितमः सर्गः २०.

भार्गवोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह मैंने तुझको मनका रूप निरूपण करि दिखाया है, अवस्थाका निरूपण भी इसी निमित्त किया है और प्रयोजन कछु नहीं ताते जैसा निश्चय चित्तविषे होता है, तैसा ही हो भासता है, जैसे अग्निविषे लोहा डारिये सो अग्निरूप होजाता है, तैसे मन जिस पदार्थके साथ लगता है. तिसका रूप होजाता है; भाव, अभाव, ग्रहण, त्याग, सब मनहीकारि होते हैं और न कोऊ सत् है, न असत् है, केवल मनकी चपलता करि पडे फुरते हैं, मनके मोहकरि जगत् भासता है, मनके नष्ट हुएते जगत् नष्ट होजाता है. जो मलिन मन है, सो अपने फुरनेकरि जगतको रचता है, यह मन ही पुरुष है, इसको तुम अशुभ मार्गविषे नहीं जोड़ना, जब मनको जीतोगे, तब सर्व जगत्विषे तुम्हारी जय होवैगी, मनके जीते सब जगत् जीता जाता है, तब बड़ी विभूति प्राप्त होती है, जो शरीरका नाम पुरुष होवै, तौ शुक्रका शरीर पड़ा था सो. और शरीर न रचता, शरीर वहाँ पडा रहा अरु मन और शरीरको रचता फिरा. ताते शरीरका नाम पुरुष नहीं. मनहीका नाम पुरुष है, शरीर चित्तका किया होता है, शरीरका किया चित्त नहीं होता, जिस ओर चित्त जाय लगता है, तिसी पदार्थकी प्राप्ति होती है, इसविषे संशय नहीं, ताते अति तुच्छ पद है, आत्मसत्ताका चित्तविषे सदा अभ्यास करै और भ्रमको त्यागि देहु, जब मन दृश्यकी ओर संसरता है, तब अनेक जन्मके दुःखको प्राप्त होता है अरु जब आत्माकी ओर इसका प्रवाह होता है, तब परमपदको प्राप्त होता है, ताते दृश्य भ्रमको त्यागिकै आत्मपदविषे स्थिति करहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्यान-समाप्तिवर्णनं नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशतितमः सर्गः २१.

विज्ञानवादवर्णनम् ।

राम उवाच–हे भगवन्! सब धर्मके वेत्ता! मेरे हृदयविषे बड़ा संशय उत्पन्न भया है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिकै पसर जाता है, तैसे मेरे हृदयविषे संशय पसर गया है; जो देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित नित्य निर्मल विस्तृत निरामय आत्मसत्ता है, तौ तिस विषे मन नामक मलिन संवित् जो है सो कहांते आया अरु कैसे स्थित भया जिसते इतर और वस्तु ही कछु नहीं, न आगे होवैगी, तिसविषे कलंकता कहांते आई? वसिष्ठ उवाच– हे रामजी! तुझने भला प्रश्न लिया है, अब तेरी बुद्धि मोक्षभागी हुई है, जैसे नंदनवनके कल्पवृक्षके साथ कल्पमंजरी लगती है, तैसे तेरी बुद्धि पूर्व अपरके विचारते जागी है, तू अब तिस पदको प्राप्त होवैगा, जिस पदको शुक आदिक प्राप्त हुए हैं अरु तेरे प्रश्नका उत्तर मैं सिद्धांतकालविषे कहौंगा अरु तिस काल-विषे तुझको आत्मपद हस्तामल भासैगा. हे रामजी! सिद्धांतका प्रश्न उत्तर सिद्धांत कालविषे शोभता है, जिज्ञासु कालविषे जिज्ञासु शोभता है, जैसे वर्षाकालविषे मोरकी वाणी शोभती है अरु शरत्कालविषे हंसकी वाणी शोभती है अरु जैसे वर्षाकालके नष्ट हुएते स्वाभाविक ही आकाशकी नीलता पडी भासती है अरु जैसे वर्षाकालविषे मेघकी घटा शोभती है, तैसे प्रश्न उत्तर भी जैसा समय होवै तैसा ही शोभता है. हे रामजी! मैं तुझको अनेक प्रकारके दृष्टांत युक्तिकरि कहौंगा, मनका स्वरूप अरु जिसप्रकार यह निवृत्त होता है सो भी क्रमकरि बहुत प्रकार कहौंगा. मनकी शांतिका उपाय वेदने निर्णय किया है अरु शास्त्रकारोंने कहा है, तिनके लक्षण तू श्रवण कर. चंचल जो मन है, तिसने जैसा जैसा भाव अंगीकार किया है, तैसा ही रूप होइकरि भासने लगा है, जैसे पवन जैसी सुगंधिके साथ मिलता है, तैसा तिसका स्वभाव होजाता है, जैसे जल जिस रंगके साथ मिलता है, तैसा रूप हो भासता है, तैसे मन जिस पदार्थके साथ मिलता है, तिसका रूप होजाता है,

जो मनते रहित शरीरके साथ क्रिया करता है, तिसका फल कछु नहीं होता अरु मनकरिकै करता है तिसका फल पूर्ण होता है, जिस ओर मन जाता है, शरीर भी तिसी ओर लग जाता है. जो कर्म इंद्रिय क्षोभवान् होवैं अरु बुद्धि इंद्रिय जो मनरूप हैं; सो क्षोभको प्राप्त होवैं, अरु देह इंद्रिय स्थिर होवैं, तौ कार्य होता है. जैसे धूलि क्षोभायमान होवै, तौ पवन विना आकाशको उड नहीं सकती अरु पवन क्षोभायमान होवै तौ भावै तैसी धूलि स्थित होवै तिसको उड़ाय लेजाता है, तैसे देह पड़ा रहता है, मन अपने फुरनेकरि स्वप्नविषे अनेक अवस्थाको प्राप्त होता है अरु जाग्रत्‌विषे भी जिस ओर मन फुरता है. देहको भी तहां ले जाता है, ताते सब कार्य का बीज मन है, मनते सब कर्म होते हैं, मन अरु कर्म परस्पर अभिन्नरूप हैं, जैसे फूल अरु सुगन्ध अभिन्नरूप होते हैं, तैसे मन अरु कर्म हैं. जिस कर्मका अभ्यास मनविषे दृढ होता है, तिस कर्मकी शाखा पसरती है अरु तिसी फलको प्राप्त होता है अरु तिसी स्वादका अनुभव करता है; जिस जिस भावको चित्त ग्रहण करता है तिसी तिसी भावको प्राप्त होता है अरु तिसीको कल्पनारूप मानता है. धर्म, अर्थ, काम मोक्ष ये चार पदार्थ हैं, तिनविषे जिसकी भावना मन दृढ करता है, तिसको सिद्ध करता है, कपिलदेवने जो सब शास्त्र किये, सो मनकी सत्ताकरि किये हैं, तिसने निर्णय किया है कि, प्रकृति जो माया है, तिसके दो स्वभाव हैं; एक अनुलोमपरिणाम है, दूसरा प्रतिलोमपरिणाम है, प्रतिलोमपरिणाम होता है तब दृश्यभावको प्राप्त होता है अरु अनुलोमपरिणाम होता है, तब अंतर्मुख आत्माकी ओर आता है. आत्मा शुद्धरूप है, आत्माकी ओर अनुलोमपरिणाम मोक्षका कारण है और उपाय कोऊ नहीं. अरु वेदांतवादीने यह निश्चय किया है कि, यह सर्व ब्रह्म ही है, शम दमआदिककरि जब मन सम्पन्न होता है, तब यह निश्चय धारण होता है कि, सर्व ब्रह्म है, ब्रह्मज्ञान विना और यत्नकरि मोक्ष नहीं होता, उनके चित्तविषे यही निश्चय है अरु विज्ञानवादी कहते हैं, जबलग बुद्धि पडी फुरती है, तबलग संसार है, जब इसका फुरणा अपने स्वभावविषे होता है,

तब उस कालविषे स्वरूप स्थित होता है, जब वह काल आवैगा, तब मोक्षकी प्राप्ति होवैगी. अर्हंत जैसे बडे हैं, तिनको अपने निश्चय अनुसार भासता है. मीमांसा, पातंजल, वैशेषिक, न्यायते आदिक लेकरि शास्त्रकार हैं, सो अपनी बुद्धिकरि जैसा निश्चय तिनने धरा है, तैसा ही तिनको भासता है, स्वरूपते न कोऊ मत है, न शास्त्र है, सबका कारण मन है, मनको अंगीकार करिकै सब मत डूबे हैं, सबका कारण मन है, न निंब कटु है, न मधु मिष्ट है, न अग्नि उष्ण है न चंद्रमा शीतल है, जैसा जैसा जिनके मनविषे निश्चय होता है, तैसा तैसा तिसको भासता है, किसीको निंब प्यारी होती है, मधु कटु लगता है, नीमका जो कीट है, तिसको मधु नहीं रुचता, तौ मधु कटुक होगया क्यों ? इसी कारणते वास्तव नहीं; विरहिणी स्त्रीको चंद्रमा अग्निवत् भासता है; चकोर अग्निको भक्षण करिलेता है, जैसी जैसी भावना पदार्थविषे होगयी है, तैसा तैसा हो भासता है, सब जगत् भावनामात्र है, जिस पुरुषको दृश्यविषे भावना है, सो अनेक दुःख भ्रमको देखता है, अरु जिसको शमदमादिक साधनकरिकै अकृत्रिमपदकी प्राप्ति हुई है अरु मन तदाकार भया है, सो शांतिको प्राप्त भया है और नहीं प्राप्त होता. हे रामजी ! यह जगत् दृश्य तेरे मनके स्मरणविषे स्थित भया है, सो तुच्छरूप है. इसका मनते त्याग करहु, यह सुख दुःख आदिक महाभ्रमको देनेहारा है, यह संसार अपवित्र अरु असत् मोहरूप महाभयका कारण है, आभासरूप है, मायामात्र अविद्यारूप है, इसकी भावना भयका कारण है. जगत्के साथ संवित्की तन्मयता होती है, इसका नाम बुद्धीश्वर कर्म कहते हैं, जब द्रष्टाको दृश्यके साथ संयोग होता है, तब बडे मोहको प्राप्त होता है, दृश्यके साथ मिलिके भ्रमकरि अनात्मविषे आत्माभिमान करता है देहादिकको अपना आप जानता है, संसाररूप मदकरिकै उन्मत्त हो जाता है, स्वरूपकी संभाल इसको नहीं रहती, इसका नाम बुद्धीश्वर अविद्या कहते हैं, जो दृश्यके साथ मिला है, तिसका कल्याण नहीं होता. जिसके आगे मनका पटल है तिसको स्वरूपका भान नहीं होता, जैसे सूर्यके आगे मेघका आवरण आता है,

तौ नहीं भासता, तैसे मनके आवरणकरि आत्मा नहीं भासता, ताते मनरूपी आवरणको दूर करहु मनका रूप जो है सो फुरणा है, तिसको संकल्प कहिये, जो जो संकल्प फुरै तिसका त्याग करहु, असंकल्प होनेते मन नष्ट होजावैगा. हे रामजी ! जब तू सर्व भावविषे असंग होवैगा, तब सर्व पदार्थविषे द्रष्टा पुरुष प्रसन्न होवैगा, तिसकरि निर्विकल्प चिदात्माकी प्राप्ति होवैगी, तहां न जगत्की सत्ता है, न सुख है, न दुःख है, केवल केवलीभाव है, सो अपने आपविषे प्रकाशता है, जब संसारकी भावना तेरे हृदयते उठ जावैगी, तब निर्मल स्वरूपविषे स्थित होवैगा, तब दृश्यभ्रम निवृत्त होजावैगा, जैसे जेवरीके सम्यक् ज्ञानते सर्पभ्रम नष्ट होजाता है, तैसे चिदात्माके सम्यक् ज्ञानते जगद्भ्रम नष्ट होजावैगा, ताते दृश्य भावनाको त्यागिकै चिदात्माकी भावना कर. जैसे भावना होती है, तैसे हो भासता है. जब प्रथम भावनाको त्याग करि और भावना करता है, जब प्रथमका अभाव होजाता है, जैसे दिन हुएते रात्रिका अभाव होजाता है, तैसे आत्मभावनाते दृश्य भावनाका अभाव होता है. जैसे लोहेको लोहा काटता है, तैसे भावनाको भावना काटती है,ताते अतुच्छपद निरुपाधि निःसंशयरूपका आश्रय करहु,जब तिसकी भावना दृढ होवैगी, तब भ्रमते रहित सिद्धपदको प्राप्त होवैगा. हे रामजी !तेरा स्वरूप आत्मा है, तू बुद्धिआदिककी कल्पना मत करु, जैसे बालकको कहिये कि,शून्यविषे सिंह है, तब वह भयवान् होताहै,तैसे जब शून्य शरीरादिकविषे विचारतें बुद्धि नहीं पाती यह मैं हौं यह अपर है, इत्यादिक जो कल्पना होती है, आत्माकेविषे सो ऐसे है, जैसे बालकको अपने परछाईंविषे वैतालकल्पना होती है, तैसे इसको अपनी कल्पनाके वशते भाव अभाव शुभ अशुभ क्षणक्षणविषे प्राप्त होते हैं, कोऊ सत्रूप कोऊ असत्रूप भासते हैं, जैसी जैसी भावना होती है, तैसा तैसा भासता है. परस्त्रीविषे कामबुद्धि होती है, तब स्पर्श स्त्रीवत् आनंददायक होता है, अरु जो स्त्रीकेविषे माताकी भावना करता है, तब तिसते कामबुद्धि जाती रहती है, ताते तू देख, जैसी जैसी भावना होती है, तैसा ही हो भासता है, भावनाके अनुसार इसको

फल होता है, तत्काल तिसी आकारको देखता है, ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं, जो सत् नहीं अरु ऐसा कोऊ नहीं जो असत् नहीं, जैसा जैसा जिसने निर्णय किया है, तैसा ही तिसको भासता है, ताते इस संसारकी भावनाको त्यागिकै स्वरूपविषे स्थित होहु. हे रामजी ! मणिविषे जो प्रतिबिंब पड़ता है, तिसके दूर करनेको मणि समर्थ नहीं होता, तू तौ मणिवत् जड नहीं, तू चैतन्यरूप आत्मा है, तेरेविषे जो दृश्यका प्रतिबिंब पडता है, तिसका त्याग करहु, कैसे त्यागो कि, जो संकल्प दृश्यका उठै तिसको असतरूप जानिकै त्यागि देहु; अरु प्रकृति व्यवहार आन प्राप्त होवै, तिसको करहु अरु मणिकी नाईं अंतरते रंजते रहित होहु, जैसे प्रतिबिंब बहिर्दृष्टि आता है अरु अंतरते रंग नहीं चढता तैसा बहिर्दृष्टि व्यवहार तेरेविषे भासै अरु अंतर राग दोषस्पर्श न करै.

इति श्रीयोगवासिष्ठ स्थितिप्रकरणे विज्ञानवादो नाम एकविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशतितमः सर्गः २२.

अनुत्तमविश्रामवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच– हे रामजी ! जब जीवको संतके संग अरु सच्छास्त्रके विचारकरि विचार उपजता है, तब अपर ओरते वृत्ति उपरत होती है, अरु संसारका मनन निवृत्त होजाता है, विवेकरूप बुद्धि आनि उदय होती है, तब संसार दृश्यकी त्यागबुद्धि होती है, द्रष्टा आत्माविषे अंगीकारबुद्धि होती है, द्रष्टा पुरुष प्रकट होताहै ; दृश्य जो है सो अदृश्यताको प्राप्त होता है, अर्थ यह जो द्रष्टाके लक्षकरि दृश्यको असतरूप जानता है,जब यह पुरुष ज्ञान ज्ञेय होता है, तब परमतत्त्वविषे जागता है, अरु संसारकी ओरते घन सुषुप्त मृतकी नाईं होता है, संसारकी ओरते वैराग्य भोगविषे अभोग रसविषे नीरस बुद्धि उपजती हैं; जब ऐसी बुद्धि हुई तब मन अपनी सत्ताको त्यागिकरि आत्मरूप होता है. जैसे बर्फका पूतला सूर्यके तेजकरि जलरूप होजाता है, जब मनविषे

संसारकी सत्ता होती है, तिस फुरनेकरि जडभागी होता है, जब विवेकरूपी सूर्य उदय होता है, तब मन गलिकै आत्मरूप होजाता है, जैसे जबलग मरुस्थलविषे धूप होता है तबलग वहांते मृगतृष्णाकी नदी नष्ट नहीं होती, जब वर्षा होती है, तब नष्ट होजाती है, तैसे जबलग संसारकी सत्यता होती है, तबलग मन नष्ट नहीं होता. जब ज्ञानकी वर्षा होती है, तब दृश्यसहित मन नष्ट हो जाता है. हे रामजी! संसाररूपी वासनाकी जाल है, तिसविषे जीवरूपी पक्षी फँसे हैं, जब वैराग्यरूपी चूहा इसको कतर जाता है, तब जीव निर्बंध होता है; जैसे मलिन जल निर्मल होता है, तैसे वैराग्यके वशते जीवका स्वभाव निर्मल होता है. जब जीव निराग निरुपाधि असंग होता है अरु रागद्वेष मोहते रहित होता है, तब जैसे पिंजर टूटेते पक्षी निर्बंध होता है, तैसे जीव निर्बंध होती है. संदेहकी जो दुर्मति है, सो शांत होजाती है, जगद्भ्रम नष्ट होता है, अंतर पूर्ण हो जाता है,जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है तैसे ज्ञानवान् शोभता है, सबते उत्तम सौंदर्यको प्राप्त होता है; उदय अस्त राग द्वेष नष्ट होजाता है अरु सर्व समताअभाव आनि वर्तता है, न्यूनता और विशेषता भाव नष्ट हो जाता है, जैसे पवनते रहित सोम समुद्र अचलरूप होता है तैसे असंग पुरुष मूक जड अंध कर्मकी वासनाते रहित अचल होजाता है वह सब चेतन प्रकाश देखता है तिसकी बुद्धि विवेककरि प्रफुल्लित हो आती है. जैसे सूर्य के उदय हुएते सूर्य मुखी कमल प्रफुल्लित हो आते हैं, तैसे वह पुरुष परम लक्ष्मीकरि शोभता है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है अरु बहुत कहनेकरि क्या है, ज्ञान ज्ञेय पुरुष जो है, सो आकाशवत् होजाता है, न उदय होता है, न अस्त होता है; विचारकरिकै जिसने आत्मतत्त्वको जाना है, सो तिस पदको प्राप्त होता है. जहां ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र स्थित हैं; सब ही तिसपर प्रसन्न होते हैं; प्रकट आकार उसका भासता है अरु अंतर अहंकारते रहित है, विकल्पके समूह तिसको खैंच नहीं सकते, जैसे जलका अभाव जाननेवालेको मृगतृष्णाकी नदी खैंच नहीं सकती, हे रामजी! आविर्भाव अरु तिरोभावरूप जो संसार है, तिसको रमणीयरूप जानिकै

ज्ञानवान् खेद नहीं पाता, देहके नाशविषे अपना नाश नहीं मानता उपजनेविषे उपजना नहीं मानता, जैसे घट उपजेते आकाश उपजता नहीं; काहेते जो आगे सिद्ध है अरु घटके अभावते आकाशका अभाव नहीं होता, तैसे देहके उपजेते आत्मा उपजता नहीं, देहके नष्ट हुएते नष्ट नहीं होता जब ऐसा विवेक उदय होता है तब वासनाका जल नष्ट होजाता है; कोऊ भ्रम नहीं रहता. जैसे मृगतृष्णाकी नदी ज्ञानकरिकै अभावहोजाती है जबलग इसको यह विचार नहीं उपजता कि, मैं कौन हौं अरु जगत् क्या है, तबलग संसाररूपी अंधकार रहता है अरु जो पुरुष ऐसे जानता है कि, संसारभ्रम मिथ्या उदय हुआ है, परम आपदाका कारण देह अनात्मरूप है, आत्माते भिन्न यह जगत् कछु नहीं, सब आत्मसत्ताकरिकै स्थित है, जो ऐसे देखता है सोई यथार्थ देखता है, सब चैतन्यसत्ता है, मैं अनंत चिदाकाशरूप हौं देश कालवस्तुके परिच्छेदते रहित हौं, आधि व्याधि भय उद्वेग जरा मरण जन्म आदिक संयुक्त देह है, सो मैं नहीं ऐसे जो देखता है सोई देखता है बालके अग्रके लक्षभाग करिये बहुरि एक भागके कोटि भाग करियें ऐसा सूक्ष्म सर्वव्यापी है, ऐसे जो देखता है सोई देखता है, मैं सर्वशक्त अनंत आत्मा हौं; सर्व पदार्थविषे स्थित मैं अद्वैतचिदादित्य हौं ऐसे जो देखता है सोई देखता है, अध ऊर्ध्व मध्य सबविषे व्यापी हौं मुझते इतर द्वैत कछु नहीं ऐसे जो देखता है सोई देखता है. जैसे सूत्रकरि मणके परोये होतेहैं, तैसे सर्व मुझकरि परोये हैं ऐसे जो देखता है सोई देखता है न मैं हौं न यह जगत् है. केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है, सत् असत्के मध्यविषे जो एक देव प्रकाशक है, त्रिलोकीविषे जो एक है सो मैं एक अविनाशी पुरुष हौं जैसे समुद्रविषे तरंग फुरते हैं अरु लीन होते हैं, तैसे मेरेविषे जगत् फुरते हैं, अरु लीन होते हैं, ऐसे जो देखता है अथवा प्रथम अहं है, तब पाछे दृश्य जगत् होता है, सो न मैं हौं न जगत् है, केवल एक आत्मसत्ता है, अहं अरु मम तिसविषे कोऊ नहीं, ऐसे जो देखता है सो देखता है, दृश्यते रहित मैं चैतन्यस्वरूप भैरव अपार हौं, मैं जगज्जालको पूर्ण करि रहा हौं, ऐसे जो देखता है सो देखता है. जो पुरुष ज्ञानवान्

है सो सुखदुःख भावअभावविषे चलायमान नहीं होता, केवल ब्रह्मरूप विषे स्थित है और जगत्‌के भावअभावते रहित अनाभास सन्मात्ररूप है; जो हेयोपादेय बुद्धिते रहित आकाशवत् सर्वात्मभावविषे स्थित भया है,कोऊ पदार्थ जगत्‌का उसको अपने वश नहीं कर सकता;सो महात्मा पुरुष महेश्वर तमप्रकाशते रहित है, सर्व कल्पनाते मुक्त शम स्वच्छरूप है, उदय अस्तते रहित समवृत्त है, जिसको ऐसी परम बोध अनंत सत्ताविषे स्थिति है तिसको मेरा नमस्कार है.

इतिश्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे अनुत्तमविश्रामवर्णनं नाम द्वाविंशततमः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशतितमः सर्गः २३.

शरीरनगरवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! उत्तम पदका जिसने आश्रय किया है ऐसा जो जीवन्मुक्त पुरुष है, जिसका कुंभकार चक्रकी नाईं प्रारब्ध शेष रहा है सो पुरुष शरीररूपी नगरविषे राज्य करता है अरु लेपायमान नहीं होता, तिसको भोग अरु मोक्ष दोनों सिद्ध होते हैं; जैसे इंद्रका वन सुखरूप है, तैसे उसका शरीररूपी नगर सुखरूप होता है, शरीरके सुखकारि सुखी नहीं होता, दुःखकारि दुःखी नहीं होता है, अपने स्वरूपविषे स्थित रहता है. राम उवाच–हे महामुनीश्वर ! शरीररूपी नगर कैसा है अरु इसविषे रहिके योगीराज कैसे करता है अरु सुख कैसे भुगतता है ? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! ज्ञानीका शरीररूपी नगर रमणीय होता है, सर्वगुणसंयुक्त ज्ञानवान्‌को अनंत आनंद विलास दिखाता है, जैसे सूर्य प्रकाशको उदय करता है तिस नगरका स्वरूप और लक्षण श्रवण करहु; शरीरविषे गांठी हैं, सो ईंटें हैं अरु रुधिर मांस चिक्कडके स्थान हैं, अस्थि लकडियां स्तंभ हैं; अरु किंवार पट हैं अरु रोम वनस्पती हैं, उदर खाई है, छाती चौक है, नवद्वार हैं तिनविषे नेत्र झरोखे हैं, तिस द्वारकरि त्रिलोकीका प्रकाश होता है, हाथ गली हैं, जिसकरि लेता देता

है, मुख बडी कंदरा है; ग्रीवा शीश बड़े मंदिर हैं अरु रेखा माला हैं; भिन्न भिन्न लगी हुई हैं अरु नाडी विभाग करनेके स्थान हैं अरु प्राण-वायु आदिककरि नाडीविषे जीव विचरते हैं, आत्मचिंतामणिरूपी तिस-विषे श्रेष्ठबुद्धिरूपी स्त्री रहती है अरु जिनने इंद्रियरूपी वानर बांधि छोड़े हैं, हँसनेरूप जिसविषे महासुंदर फूल हैं, ऐसा शरीररूपी पुर ज्ञानवान्‌को महासुखके निमित्त है, सौभाग्य सुंदररूप है, शरीरके सुखदुःख-कारि ज्ञानवान् सुखी दुःखी नहीं होता. हे रामजी ! जो अज्ञानी है, तिसको शरीररूपी नगर अनंत दुःखका भंडार है, अज्ञानकरिकै शरीरके नष्ट हुएते आपको नष्ट हुआ मानता है; अरु ज्ञानवान् इसके नाश हुएते नाश नहीं पाता, जबलग रहता है, तबलग शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इनको ग्रहण करता है, इष्टरूप होके भासता है अरु शरीररूपी नगरविषे भ्रमते रहित निष्कंटक राज्य करता है, लोभते रहित है, इसकारणते शत्रु कछु लेता नहीं अरु उनको अपने स्थानविषे आने नहीं देता, सो शत्रु कौन है? काम, क्रोध, मान, मोहादिक अज्ञान देशके हैं. तिनके विषे आप भी प्रवेश नहीं करता अरु अपने देशविषे तिनको आने नहीं देता, साव-धान ही रहता है सो अपना देश कौन है? उदारता, धैर्य, संतोष, वैराग्य शमता, मित्रता, मुदिता, उपेक्षा, ज्ञानदेश है, तिसविषे अज्ञानको प्रवेश करने नहीं देता अरु आप ध्यानरूपी नगरविषे रहता है, सत्यता अरु एकता दोनों स्त्रियोंको साथ रखता है, तिनकरि सदा शोभायमान रहता है, जैसे चंद्रमा चित्रा विशाखा दोनों स्त्रियोंकरि शोभता है, तैसे ज्ञानवान् सत्यता अरु एकताकरि शोभता है, मनरूपी घोडेपर आरूढ होके तीर्थके स्ना-नको गमन करता है, विचाररूपी तिसको लगाम रखता है अरु जीव ब्रह्मकी एकतारूपी संगम तीर्थविषे स्नान करता है, सदा आनंदवान रहता है, भोग अरु मोक्ष दोनोंकरि संपन्न होता है, जैसे इंद्र अपने पुरविषे शो-भता है; तैसे ज्ञानवान् देहविषे शोभता है अरु जैसे घटके फूटेते आका-शकी कछु न्यूनता नहीं होती, तैसे देहके नाश हुएते ज्ञानीकी कछु हानि नहीं होती, ज्योंका त्यों रहता है जो देह होता है तौ भी तिसके साथ स्पर्श नहीं करता, जैसे घटके साथ आकाश स्पर्श नहीं करता, सर्व

क्रियाका कर्त्ता भोक्ता है; परंतु किसीकरि लेप नहीं पाता, सदा एकरस भगवान् आत्मदेवविषे रहता है. जब विमानपर आरूढ होइकै शरीररूप नगरविषे विचरता है, तब मैत्रीरूप नेत्रोंके साथ सबको देखता स्थित होता है, मैत्रीभाव सदा तिसविषे रहता है अरु सत्यता एकता सदा तिसके पास है, तिसकरि शोभता है, सदा आनंदवान् विचरता है, अपर जीवको दुःखरूपी आरेके साथ कटते देखता है जैसे, कोऊ पहाडके ऊपर चढ़िकै पृथ्वीविषे लोकको जलता देखै अरु आप आनंदवान् होवै, तैसे ज्ञानवान् जीवको दुःखी देखता है अरु आप आनंदवान् है. उसीकी दृष्टिविषे तौ सदा अद्वैतरूप है, अरु आत्मानंदकी अपेक्षाकरि अनात्मधर्मको दुःखी देखता कहता है, उसके निश्चयविषे जगत् जीव कोऊ नहीं अरु चारों प्रयोजन धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तिनके पूर्णताको प्राप्त, होता है, किसी ओरते उनको न्यूनता नहीं, सर्व संपदासंपन्न विराजमान होता है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा न्यूनताते रहित विराजता है, यद्यपि भोगको सेवता तौ भी तिसको दुःखदायक नहीं होते. जैसे कालकूट विषको सदाशिवने पान किया था परंतु तिसको दुःखदायक न भया, तैसे वह भी समर्थ है, ताते भोग दुःखदायक नहीं होते जैसे चोरको जानिकै अपने वशवर्ती किया तब मित्रभाव होजाता है, तैसे भोग उसको दुःख नहीं देते. जब भोगको जानता है कि, यह कछु वस्तु नहीं तब सुखका कारण होते हैं, जबलग इनको सत् जानिकै आसक्त होता है, तबलग दुःखके कारण होते हैं. हे रामजी ! जैसे कोऊ यात्राको जाता है अरु मार्गविषे स्त्रियां पुरुष मिलते हैं, उनविषे इकट्ठा बैठना अरु चलना भी होता है, परंतु आपसमें आसक्त नहीं होते, आगे पाछे चले जाते हैं, तैसे ज्ञानवान् संसारके पदार्थोंविषे चित्तको नहीं लगता, जैसे कोऊ कासिद किसी देशविषे जाता है अरु मार्गविषे कई सुंदर रमणीय स्थान दृष्टि आते हैं, कई मलिन कष्टके स्थान भासते हैं, परंतु रागद्वेष किसीविषे नहीं करता, जैसे तैसे देखता चला जाता है, तैसे ज्ञानवान् भोगक्रियाविषे रागद्वेषकरि बंधमान नहीं होता, सर्व संशय तिसके सम्यक्ज्ञानकरि शांत होजाते हैं, कोऊ पदार्थ उसको आश्चर्य-

ताकरि दिखाई नहीं देता, वासनाके समूह नष्ट होजाते हैं, चक्रवर्ती राजाकी नाईं शोभता है, परिपूर्ण होके स्थित होता है; जैसे क्षीरसमुद्र अपने आपविषे पूर्ण समाता नहीं; तैसे ज्ञानी अपने आपविषे पूर्ण समाता नहीं. हे रामजी! इन जीवनकी भोगकी इच्छा दीन करती है, तिसकरि आत्मपदते गिरते हैं, अनात्मविषे प्राप्त हुए कृपण होजाते हैं, तिनको देखिकै आत्म उत्तमपद आलंबी हँसते हैं कि, यह मिथ्या दीनभावको प्राप्त हुए हैं, जैसे स्वामी स्त्रीके वश होवै, स्त्री स्वामीकी नाईं होवै अरु भर्त्ता दीन होजावै अरु तिसको देखिकै लोक हँसते हैं, तैसे ज्ञानवान् भोगकी तृष्णावालेको दीन देखिके हँसते हैं, चंचल मन ही परमसिद्धांतसुखते जीवको गिरावता है, ताते मनरूपी हस्तीको विचाररूपी कुंदेसे वश करहु; तब सिद्धपदको प्राप्त होवोगे, जिसका मन विषयकी ओर पड़ा धावता है सो संसाररूपी विषका बीज बोता है, ताते प्रथम इस मनको ताड़न कर, तब शांतिकी प्राप्ति होवैगी, जो मानी होता है अरु कोऊ उसका मान करता है, तब वह उपकार कछु नहीं मानता, जब प्रथम उसको ताडन करता है तब बडे थोडे उपकार कियेते प्रसन्न होता है, जैसे धान्य जलकरि पूर्ण होते हैं, तब जलके सींचनेकरि उनको उपकार नहीं होता अरु जो ज्येष्ठ आषाढकी धूपकरि तप्त होते हैं; तब थोडा जल सींचनेकरि भी उनको अमृतवत् होता है, तैसे जब प्रथम मनका सन्मान करिये तब मित्रभाव नहीं होता, अरु जब ताडन करिकै पाछे सन्मान करिये, तब उपकार मानिकै मित्रभाव हो रहैगा, सो ताडन करना यह है कि, विषयते संयम करना, जब संयम करिकै निर्माण हुआ तब यह सन्मान करना कि, संसारके पदार्थविषे वर्तावना, तब शत्रुभावको त्यागिकै मित्र होजाता है, जैसे वर्षाकालविषे नदी जलकरि पूर्ण होती है, तिसविषे जलका उपकार नहीं होता, शरत्कालविषे जलका उपकार होता है, जैसे राजाको अपर देशका राज्य प्राप्त होवै, तब वह कछु प्रसन्नताको नहीं प्राप्त होता, प्रथम बंदीस्थानविषे डारिये, पाछे एक थोडा ग्रास दीजिये, तिसकरि प्रसन्न होता है, तैसे जब प्रथम मनको ताडन करिये, तब पाछे

थोडे सन्मानकरि भी सुखदायक होता है, ताते हाथसों हाथ मीडके अरु दंतसों दंत मिलाइके अरु अंगसों अंग रोकिके इंद्रियको जीति ले; इस पुरुषके हृदयविषे मनरूपी सर्प कुंडल मार बैठा है अरु कल्पनारूपी विषकरि पूर्ण है, जिस पुरुषने उसको मर्दन किया है, तिसको मेरा नमस्कार है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे चतुर्थे स्थितिप्रकरणे शरीरनगरवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशतितमः सर्गः २४.

मनस्विसत्यताप्रतिपादनम् ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! अज्ञानी जीव महानरकको प्राप्त होता है, आशारूपी बाणकी शलाका तिनको लगती है, इंद्रियरूपी शत्रु मारते हैं, इंद्रियां बडी दुष्ट कृतघ्न हैं, जिस देहके आश्रय रहती हैं, तिसको शोक अरु इच्छाकरि पूर्ण करती हैं, अरु महादुष्ट दुःखदायक भंडार हैं, इनको तुम जीतहु, इंद्रियां मनरूपी चली पक्षी हैं, जब विषय नहीं होते, तब ऊर्ध्वको उडते हैं जब विषय प्राप्त होते हैं, तब नीचेको आय गिरते हैं, जिस पुरुषने विवेकरूपी जालसे इनको बांधा है, तिसको ये भोजन नहीं करिसकते, जैसे पाषाणके कमलको हस्ती भोजन नहीं कर सकता. हे रामजी ! ये भोग आपातरमणीय हैं, अत्यंत विरस हैं, जो पुरुष इनविषे रमण करता है, सो अंत नरकको प्राप्त होवैगा, जो पुरुष ज्ञानके धनकरि संपन्न है अरु देहरूपी देशविषे रहता है, सो परमशोभाको पाता है अरु आनंदवान् होता है काहेते कि, बडे ऐश्वर्यकरि तिसने इंद्रियरूपी शत्रु जीते हैं. हे रामजी ! स्वर्णके मंदिरविषे रहनेकरि ऐसा सुख नहीं प्राप्त होता, जैसा निर्वासनिक ज्ञानवान्को होता है, जो अपने शरीरनगरविषे रहता है, जिस पुरुषने इंद्रियां अरु असतरूपी शत्रुको जीता है सो परम शोभाकरि शोभता है, जैसे हिमऋतुको जीतिकै वसंतऋतुविषे मंजरी शोभती है, जिस पुरुषके चित्तका गर्व नष्ट

भया है, अरु इंद्रियांरूपी शत्रु जीते हैं, तिसकी भोगवासना नष्ट होजाती है, जैसे शीतलकालविषे पद्मिनियां नष्ट होजाती हैं. हे रामजी! वासनारूपी वैतालनिशाचर तबलग विचरते हैं, जबलग एक तत्त्वका दृढ अभ्यास करिकै मनको नहीं जीता, जब विवेकरूपी सूर्य उदय होता है तब अंधकार नष्ट होजाता है, जब विवेककरि मनको वश करता है, तब इंद्रियां भृत्य टहलुए होजाते हैं अरु मनरूपी सब मित्र होजाते हैं, आप राजा होके राज्य स्वरूपको भुगतता है. हे रामजी! विवेकीकी इंद्रियां पतिव्रता स्त्रीवत् होजाती हैं अरु मन सीताकी नाईं पालना करनेवाला होता है अरु चित्त सुहृद् होजाता है, जब निश्चयवान् पुरुष सच्छास्त्रको विचारता है तब परम सिद्धांतको प्राप्त होता है, अरु मन अपने मननभावको त्यागिकै शांतरूप सो पितावत् प्रतिपालक होजाता है, तातें मनको विवेककरिकै वश करहु, जैसे मणिको घिसाय छेद पाडिकै धागेके साथ परोते हैं अरु कंठविषे पहनते हैं, तब बडी शोभाको प्राप्त होते हैं, तैसे मनरूपी मणि है, तिसको आत्मविचार शिलाके साथ घिसावना, वैराग्य जलकरि उज्ज्वल करना, अभ्यासरूपी छेद पाडिकै विवेकरूपी तागेके साथ परोय कंठविषे स्थित करनेसे शोभा होती है, विवेक कैसा है जो जन्मरूपी वृक्षको कुहाडा जैसा काटि डारता है अरु मनरूपी शत्रुको मित्र करता है, सदा शुभकर्मको करता है; अरु विषयके परिणामिक दुःखको निकट आने नहीं देता, तातें मनको वश करना आनंदका कारण है, जो मन वश नहीं होता तौ दुःख देता है, जब वश होता है, तब सुखदायक होता है. हे रामजी! मनरूपी मणि है, सो भोगकी तृष्णाकरि कलंकित हुई है, जब विवेकरूपी जलकरि इसको शुद्ध करै तब शोभायमान होवैगी, यह संसार महाभयका देनेहारा है, अल्पविवेकवान् पुरुष भी मायारूप संसारविषे गिरि पडै हैं तू छलकरि इतर जीवकी नाईं इसविषे मत गिर. यह संसार मायारूप है; अनेक अर्थकी सांकरसंयुक्त है, महामोहरूपी कुहरकरि जीव अंध होगये हैं, तातें तू विवेकपदका आश्रय कर, बोधकरि सतका अवलोकन करि, इंद्रियतें वैराग्यरूपी नौकाकरि संसारसमुद्रको तरिजाहु; शरीर भी

असत् है, इसविषे सुख अरु दुःख भी असत् हैं; तुम दामव्यालकटकी नाईं मत होहु. भीम भास दृढकी स्थितिको ग्रहण करिकै विशोक होहु, अहं मम आदिक जो निश्चय है, सो वृथा है, तिसको त्यागिकै तत्पदका आश्रय करहु, चलते बैठते खाते पीते मनविषे मननका अभाव न होवै.

इति श्रीयोगवासिष्ठ स्थितिप्रकरणे मनस्विसत्यताप्रतिपादनं नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशतितमः सर्गः २५.

दामव्यालकटोत्पत्तिवर्णनम्।

राम उवाच-हे भगवन् ! संसारपापके दूर करनेहारे यह तुमने क्या कहा ? इसको खोलिकारि कहौ दाम व्याल कटकी नाईं कैसे अरु भीम भास दृढकी स्थिति कैसे है ? जैसे वर्षा कालका मेघ तापको दूर करता है मोरको शब्दकरि जगावता है, तैसे तुम अपनी कृपाकरि जगावहु. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! प्रथम इनकी नाईं स्थित होय श्रवण करु, पाछे जो इष्ट होवै तिसविषे विचरना, पाताल कुहरविषे शम्बर नाम दैत्यराजा होत भया, सो मायारूप गणिका समुद्र अरु सर्व आश्चर्यरूप मनके मोहनहारा रमणीय था सो दैत्य अपनी मायाकरिकै आकाशविषे नगर रचता भया; बाग रचे, दैत्यके मंदिर रचे, सूर्य अरु चंद्रमा रचे, अनंत ऐश्वर्यकरि सम्पन्न दैत्य रचे अरु रत्नकी स्त्रियां रचीं, सो गान करैं, तिस गानकरि देवताकी स्त्रियां भी तिनने जीती अरु चंद्रवत् वृक्ष रचे तिनमें फल लगे अरु कमलिनी श्वेत पीत रत्नकी रचीं, स्वर्णके हंस रचे अरु स्वर्णके सारस पक्षी रचे, जो स्वर्णके कमल अरु स्वर्णके वृक्षकी बडीशाखापर बैठे हुए अरु करंजुवेके बूटे, तिनमें कमलवृक्षके फूल लगे रत्नकरि जडे हुए, सुन्दर स्थान, बरफकी नाईं शीतल बगीचे वन स्थान चन्दनके रचे, इन्द्रका नन्दनवन तिसते विशेष, सर्व ऋतुके फूल तिनविषे दैत्यनहूकी स्त्रियां क्रीडा करती फिरैं अरु बड़े ऐश्वर्य रचे, विष्णु अरु सदाशिवके सदृश ऐश्वर्यसंयुक्त अपना नगर किया, रत्नके तारागण रचे, बडे प्रकाश-

संयुक्त जब रात्रि पड़े तब सो चन्द्रमाके साथ उदय होवैं अरु पुतलियां गान करैं अरु मायाके हस्ती ऐसे रचे जो इन्द्रके ऐरावतको जीति लेवैं, त्रिलोकीकी विभूतिते उत्कृष्ट विभूति उसने रची, अन्तर्बाहिर सर्व सम्पदाको पूर्ण किया, सब ऐश्वर्यकरि सम्पन्न अरु सब दैत्यमण्डलेश्वर वन्दना करैं, सो आप सर्व दैत्योंका शासन करनेहारा राजा हुआ, सब इसकी आज्ञामें वर्तें, महाबड़ी भुजा तिनके नीचे सब दैत्य विश्राम करैं, इस प्रकार सम्पूर्ण राज्य अरु स्थानके मण्डलेश्वर तिसने रचे, सेना रची, अरु राज्य करता भया, जब शंबर दैत्य शयन करै, अथवा देशांतरको जावै, तब अवकाश देखिकै देवताके नायक तिसकी सेनाको मारिजावैं अरु स्थान लूटि लेजावैं; तब शंबरने रक्षा करनेहारे सेनापति रचे, बहुरि समय देखिकै देवता तिनको भी मारिगये, तब शंबरने सुनिकै कोप किया कि इनको मारौं, ऐसे विचारिकै अमरपुरीपर चढिकै गया, देवता भयभीत होके सुमेरु पर्वतमें भवानीशंकरके पास जायके छिपते हुए; अपर वन कुंज अरु समुद्रविषे जाय छिपे,जैसे प्रलयकालविषे सब दिशा शून्य होजाती हैं, तैसे अमरपुर स्वर्ग शून्य होगया, तब दैत्यराज अमरपुरीको शून्य देखिकै कोपमान हो अग्नि लगादी, लोकपालके पुर सब जलायदिये, देवताओंको ढूंढ रहा; परंतु कहूं देखनेविषे न आये,जैसे पापी पुण्यको देखै अरु कहूँ दृष्टि न आवै, तैसे देवता कहूं न भासैं, तब शंबर कोपमान होके बडी बली राक्षससेनाको रक्षाके निमित्त माया करिकै रचत भया, मानो कालकी मूर्तियां हैं, ऐसे होकारे स्थित भये, मानो बड़े आकारवाले पर्वत पंखनसंयुक्त हिलते हैं, ऐसे शरीर दाम, व्याल, कट यह तीन तिनके नाम हैं अरु हाथविषे बड़े शस्त्र अरु भुजा कल्पवृक्षकी नाईं, अरु यथाप्राप्त कर्मविषे लगे रहैं, यह उनका धर्म अरु उनको कर्मका अभाव, काहेते जो पूर्व वासना, कर्म उनको न था, निर्विकल्प चिन्मात्र उनका स्वरूप था अरु अपने स्वभावसत्ताविषे स्थित न थे, अरु अनात्मभावको प्राप्त भये न थे एक स्पंदमात्र कर्मरूप चेतना उनविषे थी, सो कर्मका बीज चित्तकलना स्पन्दरूप हुई थी, मननात्मक शस्त्रप्रहारको रचे थे, तिसीको पड़े करैं परन्तु अन्तरविषे स्पष्ट वासना

उनको कोऊ न फुरै, आकाशमात्र स्वभावकरि क्रिया उनकी पडी होवै. जैसे अर्ध सुषुप्त बालक अपने अंगको स्वाभाविक हिलाता है, वासनाते रहित तैसे वह वासना विना चेष्टा करै, गिरना अरु गिरावना कुछ न जानैं अरु न जानैं कि हम इसको मारते हैं न यह जानै हम मरते हैं, न दौडना जानैं, न भागना जानैं न जानैं हम जीते हैं, न जानैं हम मरते हैं, जीत अरु हारको कछु न जानैं, केवल शस्त्रका प्रहार करैं, जैसे यन्त्रकी पूतली तागेपर पडी चेष्टा करती हैं; विना संवेदन तैसे दाम, व्याल कट चेष्टा करैं, महाबली जिनके प्रहारकरि पहाड़ भी चूर्ण होजावैं, तिनको देखिकै शंबर प्रसन्न हुआ कि, ये सैन्यकी रक्षाको बड़े बली हैं, इनका नाश भी उनसों न होवैगा, काहेते कि इनको इष्ट अनिष्ट कछु नहीं, जिनको इष्ट अनिष्टका ज्ञान अरु वासना नहीं, तिनका नाश कैसे होवै अरु भागें कैसे? जैसे देवताके हाथी भी बडे बली हैं, तौ भी सुमेरुको उखारि नहीं सकते, दन्तके चूर्ण होजाते हैं, तैसे देवता बडे बली भी हैं, परन्तु इनको मार नहीं सकैंगे, यह बडे बली रक्षक हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोत्पत्तिवर्णनं नाम पञ्चविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशतितमः सर्गः २६.

दामव्यालकटसंग्रामवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! इस प्रकार निर्णय करिकै शंबरने दाम व्याल कटको स्थापन किये अरु भूतलविषे देवतोंका सैन्य भी आया जब शंबर चढता था, तब भाग जाते थे अरु सैन्यको देखिकै वह भी निकसे, समुद्र अरु पहाड़से उछलिके एक और देवता निकसे, बडी सेनासहित युद्ध करने लगे, जैसे प्रलय कालके समुद्र क्षोभते हैं अरु सब जलमय होजाता है, तैसे देवता अरु दैत्य सर्व ओरते पूर्ण होगये, बडे बाणकरि युद्ध करने लगे, शंखध्वनिकरि शस्त्र चलैं, तिनते शब्द होवे, अरु अग्नि निकसे, ताराकी नाईं चमत्कार करैं, शरीरके शिर काटि जावैं,

अरु धड कम्पि कम्पि गिर पडैं, परस्पर दोनों ओरते शस्त्र चलैं, दाम, व्याल, कट, भाग नहीं जावैं मारते ही जावैं, जिनके प्रहारसे पहाड़ चूर्ण होजावैं, सब दिशाविषे शस्त्र पूर्ण होगये, रुधिरके प्रवाह चलैं तिनविषे देव दैत्य मरे बहते जावैं, महाप्रलयकी नाईं भय उदय हुआ एक एक अस्त्र ऐसा चलै, जिसते, शस्त्रकी नदियां चलैं, कोऊ अग्निका अस्त्र चलावै, कोऊ मेघका अस्त्र चलावै, कोऊ तम अस्त्र चलावै, दूसरा प्रकाशरूप अस्त्र चलावै, कोऊ निद्रारूप, दूसरा प्रबोधरूप, कोऊ सर्परूप, दूसरा गरुडरूप, इस प्रकार परस्पर युद्ध करैं, बहुरि ब्रह्मास्त्र चलावैं, शिलाकी वर्षा होवै, तब सब पृथ्वी रक्तअरु मांसकरि पूर्ण होगई, अनेक जीवनके धड शीश गिरि पडे; जैसे वृक्षते फल गिरते हैं, तैसे देवता दैत्य गिरे, बड़ा युद्ध हुआ गंधर्व, किन्नर, देवता, बहुत नष्ट भये, दैत्य भी बहुत नष्ट हुए, परंतु कछु उनकी जीत रहे, इसप्रकार मायावी शंबरकी सैन्य अरु देवताओंका युद्ध हुआ, जैसे वर्षाकालमें आकाशविषे मेघघटा पूर्ण होजाती हैं, तैसे देवता अरु दैत्यकी सेना इकट्ठी होगई, दिशा विदिशा सब स्थान पूर्ण होत भए.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटसंग्रामवर्णनं नाम षड्विंशतितमः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशतितमः सर्गः २७.

ब्रह्मवाक्यवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इस प्रकार घोर संग्राम हुआ, देवता अरु दैत्यके शरीर गिरे, जैसे पंख टूटेते पर्वत गिरते हैं, रुधिरके प्रवाह चले, बडे शब्द हुए, आकाश, पृथ्वी शब्दकरि पूर्ण होगये, दामने देवताके समूह वेष्टित किये, व्यालने पकडिके देवताओंको पहाडविषे पीसि डारे, कटने देवताओंके समूह चूर्ण किये उनके स्थान तोड डारे, बडा क्रूर संग्राम किया, देवताओंका हस्ती जो मदकरि मस्त था, सो ताडनकरि क्षीण होगया, सो वहांते भागा, भयभीत होइकरि देवता भी भागे तब

दैत्यकी सेना वृद्धि होत भई, जैसे मध्याह्नके सूर्यका बडा प्रकाश होता है, तैसे दैत्य प्रकाशवान् भये, देवता बहुत मारे गये, जैसे जलका प्रवाह पुल टूटेते तीक्ष्ण वेगकारि चलता है, तैसे देवता तीक्ष्ण वेगकरि भागे, जलके प्रवाहवत् मर्यादा छूटि गई, दाम, व्याल, कटकी सेना जीत पाती भई, देवताओंके पाछे लागे मारते जावे, जैसे काष्ठते रहित अग्नि अंतर्धान होजाता है, तैसे बलवान् देवता बलसों हीन भये अंतर्धान हो गये, दैत्य ढूंढते फिरैं, परंतु देवता कहू न पावैं, जैसे जालसों निकसे पक्षी कहूं हाथ नहीं आते, तैसे देवता तिनके हाथ नहीं आये, जैसे मृग बंधनसों छूटा निकस जावै अरु हाथ न आवै, तब दाम, व्याल, कट, तीनों सेनासहित पातालविषे आनि स्थित भये, अपना स्वामी जो शम्बर था, तिसके पास प्रसन्नताके लिये आये अरु वहां देवताओंने श्रवण किया कि, दैत्य पातालविषे जाय स्थित भये, तब विचार करिकै चिंतवते भये कि, किसी प्रकार इनते ईश्वर हमारी रक्षा करे, ऐसी चिंताकारि आतुर भये, तब ब्रह्माजी देवताओंके निकट आनि प्राप्त भये, अमित तेज है जिसका अरु अमित जिसके रक्तवस्त्र हैं, जैसे संध्याकालमें रक्तवर्ण बादल होते हैं तिनविषे चंद्रमा शोभता है, ऐसे प्रकाशवान् ब्रह्माजीको देखिकै इंद्रादिक देवता प्रणाम करत भये, शंबर दैत्यकी शत्रुताकरिकै कहत भये. हे त्रिलोकीके ईश्वर! हम तेरी शरण आये हैं, हमारी रक्षा करौ, शंबर दैत्यने हमको बहुत दुःख दिया है, तिसके सेनापति दाम, व्याल, कट हैं, सो बडे दैत्य हैं, किसी प्रकार हमसों मारे नहीं जाते अरु हमारी सेना उनने बहुत चूर्ण करी. हे रामजी! इस प्रकार संपूर्ण वृत्तांत दाम, व्याल, कटका ब्रह्माजी प्रति कहत भये अरु कहा कि, इनके मारनेका उपाय हमको कहौ, जिस प्रकार यह नष्ट होवैं, तब संपूर्ण जगतपर दया करनेहारा ब्रह्माजी वचन कहत भया, कैसे वचन जो शांतिके कारण हैं. ब्रह्मोवाच-हे अमरेश! ये दैत्य अब तौ नष्ट नहीं होवैंगे जब इनको अहंकार उपजैगा, तब यह मरैंगे, तुम ही उनको जीतौगे, मैं इनकी भविष्यत् देखी है-अरु दाम, व्याल, कट युद्धविषे भागना नहीं जानते अरु मरने मार,

नेका ज्ञान भी इनको नहीं, ये शंबर दैत्यकी मायाकरि रचे हैं, इनका नाश कैसे होवै, जिसको अहंममका अभिमान होवै, तिसका नाश भी होता है, सो अहं मम आदिक शत्रुको ये जानते नहीं, इनका नाश कैसे होवै ? इस प्रकार इनका नाश कदाचित् होना नहीं, जब इनको अहंकार उपजैगा तब इनका नाश होवैगा, सो अहंकार उपजानेका उपाय मैं तुमको कहता हौं तुम उनके साथ युद्ध करते रहौ, और इस प्रकार करौ कि, कभी उनके सन्मुख कभी दाहिने कभी बांये होहु, कभी भागि जाहु, इस प्रकार जब तुम वारंवार करौगे, तब उनके युद्धके अभ्यास वशते अहंकारका अंकुर आनि उपजैगा, जब अहंकारका चमत्कार हृदयविषे उपजा; तब तिसका प्रतिबिंब इदंरूप भी देखैंगे, बहुरि वासना भी फुरि आवैगी कि, हम ये हैं हमको यह कर्तव्य है, यह ग्रहण करने योग्य है, यह त्यागने योग्य है, इत्यादिक वासनाजाल उनके चित्तविषे फुरि आवैगी, आपको दाम, व्याल, कट जानैंगे, तब तुम उनको वश कर लेहुगे, तुम्हारी जय होवैगी; जैसे जालविषे फँसा पक्षी वश होता है, तैसे वे अहंकारकरिके वश होवेंगे. अभी वे वश नहीं होते, सुखदुःखते रहित बड़े धैर्यवान् हैं, अभी उनको तुम्हारा जीतना कठिन है. हे साधो ! जो पुरुष वासनातंतुसे बांधे हुए हैं अरु कीटके कार्यके वश हैं, सो इस लोकविषे वश होजाते हैं, अरु जो निर्वासनिक पुरुष बुद्धिमान् हैं, सर्वत्र असंसक्तबुद्धि हैं, किसीविषे बंधवान् नहीं होते, इष्ट अनिष्टविषे समभाव रहते हैं, सो किसीकरि जीते नहीं जाते; ये अजित पुरुष हैं अरु जिनके अन्तर वासना है, इसी जेवरीके साथ बांधे हुए हैं देहविषे अभिमान है, अथवा सर्वको वेत्ता भी है, तौ बालक भी उसको जीति लेते हैं, अहं मम आदिक कल्पनाकरि जो कलंकित है, सो सब आपदाका पात्र है, सब आपदा तिसविषे आनि प्रवेश करती हैं, यह देहमात्र परिच्छिन्नरूप जो पुरुष आपको जानता है, तिसविषे भावना भावती करी है; जो सर्वज्ञ है, तौ भी वह कृपणताको प्राप्त होता है, उसविषे उदारता कहां है, उसका अपना स्वरूप अनंत आत्मा है, अप्रमेय है, तिस स्वरूपपका जिसको प्रमाद हुआ है अरु देहादिकविषे आत्माभिमान हुआ

है, तिसने आपको आप ही दीन किया है, जबलग आत्मतत्त्वते इतर इसको त्रिलोकीविषे कछु भी सत् भासता है, तबलग तिसकी उपादेय बुद्धि होती है, भावनाके साथ बांधा रहता है, संसारविषे सत्‌भावना करनी अनंत दुःखका कारण है अरु संसारविषे असत्‌बुद्धि सुखका कारण है. हे साधो ! जबलग दाम, व्याल,कटको जगत्‌के पदार्थनविषे आस्था भाव नहीं तबलग तुम इनके जीतनेको समर्थ न होवोगे. जैसे मक्खी वायुके जीतनेको समर्थ नहीं होती, जिसको देहविषे अहंभावना होती है अरु जगत्‌विषे सत्‌बुद्धि होती है सो जीव है अरु दीनताको प्राप्त होता है भावै कैसा बली होवै, उसको जीतना सुगम है अरु तुच्छ कृपण है अरु जिसके अंतर वासना नहीं अरु मक्षिकावत् है, तौ भी सुमेरुकी नाईं गरिष्ठ होजाता है. हे देवताओं ! जो वासनासंयुक्त है, सो परम कृपणताको प्राप्त होता है, सो गुणी गुणोंकरि बांधा जाता है, जैसे मणिके विषे छिद्र होता है, तब तागेकरि परोया जाता है अरु छिद्रते रहित है, सो परोया नहीं जाता, तैसे जिसका हृदय वासना-करि वेधा है, तिसके अन्तर गुणावगुण प्रवेश करते हैं अरु जो निर्वेध है, तिसके अंतर प्रवेश नहीं करते हैं,ताते जिस प्रकार अहम् इदम् आदिक वासना दाम, व्याल, कटके अन्तर उपजै, सोई उपाय करौ तब तुम्हारी जय होवैगी,जिस जिस इष्ट अनिष्टके भाव अभावको जीव प्राप्त होते हैं सो तृष्णारूपी करंजुवेका बूटा है, तिसकरि आपदाको प्राप्त होते हैं, इसते रहित हुएते आपदाका अभाव होजाता है, जो वासनारूपी तंतुके साथ बांधे हुए हैं, सो अनेक जन्म दुःखको प्राप्त होवैंगे, जो बलवान् है अरु सर्वज्ञ है, कुलका अधिष्ठाता बड़ा भी है अरु तृष्णा-संयुक्त है तौ बँधा है जैसे सिंह है अरु साँकरके पिंजरेबिषे बांधा है, तब उसका बल अरु बडाई किसी कार्य नहीं आती, तैसे जो तृष्णाकरि बांधा है सो तुच्छ है, तिसको देहमात्रविषे अहंभाव है, हृदयविषे तृष्णा पडी उत्पन्न होती है, सो पुरुष ऐसा है जैसा पक्षी तागेमें बांधा होवै अरु यम भी तिसको वश करता है, जैसे रज्जुके साथ बांधे हुए पक्षीको बालक भी खैंच वश करता है अरु जो निर्वासनिक पुरुष

है तिसको मारि कोऊ नहीं सकता, जैसे आकाशविषे उडते पक्षीको कोऊ पकड नहीं सकता, ताते शस्त्रयुद्धको त्याग अरु उनको वासना उपजावहु, तब वश होवैंगे. हे इंद्र ! जिसको अहं मम इदम् आदिक वासना नहीं राग द्वेषकरि अंतःकरण क्षोभवान् नहीं होता, तिसको शस्त्रकरि अरु अस्त्रकरि कोऊ जीति नहीं सकता; ताते दाम, व्याल, कटके जीतनेको अपर उपायकरि समर्थ न होहुगे युद्धके अभ्यासकरि जब इनको अहंकार उपजाओगे तब ये तुम्हारे वश होवैंगे, तुम इनके जीतनेको समर्थ होहुगे. हे साधो ! यह तो शंबर दैत्यके रचे हुए यंत्रपुरुष हैं, इनके अंतर वासना कोई नहीं, जैसे उसने रचे हैं तैसेही निर्वासनिक पुरुष हैं, जब तुम उनको युद्धका अभ्यास करावहुगे, तब इनको अहंकार वासना उपजि आवैगी, ये तुमको वश करनेकी परम युक्ति कहीहै, जबलग उनके अंतर वासना नहीं फुरती तबलग तुमकारि ये अजीत हैं.

इति श्रीयोगवसिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामोपाख्याने ब्रह्मवाक्यवर्णनं नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशतितमः सर्गः २८.

सुरासुरयुद्धवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इस प्रकार कहिकै ब्रह्माजी अंतर्धान होत भया, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिकै शब्दकारि लीन होता है तैसे शब्दकारिकै अंतर्धान होगया, तब देवता वचन सुनिकै अपनी वांछित दिशाको गमन करते भये, जैसे कमलकी सुगंधिको पवन लेजाता है; तैसे जायकारि कछु दिन अपने स्थानविषे रहे, जैसे भँवरे कमलविषे रहते हैं तैसे रहिकै अपने कल्याणके निमित्त उनके नाश करनेको उठे, अपने स्थानते उठिकै युद्धको चले, प्रथम देवताओंने शंख बजाए जिनका महाशब्द हुआ, जैसे प्रलयकालविषे मेघ गर्जते हैं, तैसे शब्दकारि संस्थान पूर्ण होगये, तब पाताल छिद्रते शब्द सुनिकै दैत्य निकसे, आकाशमार्गते देवता आये युद्ध होने लगा; तब बरछी, बाण, मुद्गर,

मुसल, गदा, चक्र, वज्र, पहाड, वृक्ष, सर्प अग्नि, आदिक शस्त्र अस्त्र चलने लगे; एक ओर देवता चलावें, एक ओर दैत्य चलावें, शस्त्रअस्त्रके प्रवाह चले, देशप्रदेशविषे पहाड वृक्षकी नदी चलीं, चक्र,मुसल,त्रिशूल, आदिक शस्त्र ऐसे चलैं, जैसे गंगाका प्रवाह चलता है,तैसे शस्त्र अस्त्रके प्रवाह चले जावें और अग्नि लगाई देवता अरु दैत्यके समूह नष्ट होगये, अंग फूटि गये, शीश,भुजा,काटे गये,संपूर्ण पृथ्वी रक्तकरि पूर्ण होगयी जैसे समुद्रके उछलनेकरि पृथ्वी जलसों पूर्ण होजाती है तैसे रुधिरकरि पूर्ण होगयी; आकाश दिशाविषे अग्निका तेज बढ गया, जैसेप्रलयकालविषे द्वादश सूर्यका तेज होता है, बडे पहाडकी वर्षा होवे,रुधिरके प्रवाहविषे पहाड़ भ्रमते फिरैं, जैसे समुद्रविषे तरंग घूमर२ फिरते हैं. हे रामजी ! ऐसा युद्ध हुआ, क्षणविषे पहाडके प्रवाह दृष्टि आवैं; क्षणविषे शस्त्रके प्रवाह, क्षणविषे सूर्यके, क्षणविषे गरुडके, क्षणविषे अप्सरागण अंतरिक्षविषे भासैं, क्षणविषे जलमय होजावैं, क्षणविषे सभास्थान अग्निसों पूर्ण होजावैं, क्षणविषे सूर्यका प्रकाश भासे,क्षणविषे सर्वओरते अंधकार भासे, महाभयानक युद्ध होने लगा, दैत्य आकाशविषे उडैं उड उड युद्ध करैं देवता वज्र आदिक शस्त्र चलावैं, जैसे पंखते रहितपहाड गिरते हैं,तैसे दैत्य गिरैं,सो भूमिलोकविषे आय पडैं, अनेक देवता दैत्यके समूह गिरपडैं, किसीका शिर किसीकी भुजाकाटीगई,चरण हाथ काटे गये जैसे वृक्ष पहाड होते हैं, ऐसे जिनके शरीर हैं, सो गिर गिर पडैं अनेक संकटको देवता अरु दैत्य प्राप्त भये, महादारुण युद्ध होने लगा.

इतिश्रीयोगवासिष्ठेस्थितिप्रकरणे सुरासुरयुद्धवर्णनं नाम अष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशतितमः सर्गः २९.

असुरहननवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इस प्रकार जब देवता अरु दैत्यनका युद्ध हुआ,बहुरि देवताओंका धैर्य नष्ट होगया,युद्धते कृपण होके अंतर्धान

भये, बहुरि पैंतीस वर्षते उपरांत युद्ध करने लगे, कभी पांच दिन उपरांत कभी सात अष्ट उपरांत कभी मासउपरांत युद्ध करैं, बहुरि छिप जावैं, ऐसे विचारकरि छलसों उनके साथ युद्ध करैं, कबहूं दाम, व्याल, कटके निकट जावैं, कबहूँ दाहिने, कबहूं बांये, कबहूं आगे, कबहूं पाछे दौडने लगैं, इधर उधर देखिके मारने लगैं, इस प्रकार जब देवताओंने बहुतउपाय किये तब युद्धके अभ्यासते दाम, व्याल, कट भी देवतोंके पाछे दौडने लगे; वह भी ये भी इधर उधर देखने लगे देहादिकविषे तिनको अहंकार फुरि आया. हे रामजी! जैसे निकटताकरिकै दर्पणमें प्रतिबिंब पड़ता है दूरका नहीं पड़ता, तैसे अतिशय अभ्यासते अहंकार फुरि आता है, अन्यथा नहीं फुरता, जब अहंकार तिनको फुरा तब पदार्थकी वासना भी फुरि आई, बहुरि यह फुरा, हम दाम, व्याल, कट हैं, किसीप्रकार जीते रहे, जीनेकी इच्छाकरि दीनभावको प्राप्त भये, अरु भय पाने लगे कि, इस प्रकार हमारा नाश होवैगा, इस प्रकार हमारी रक्षा होवैगी सो उपाय करैं; जिसकरि हम जीवते रहैं; इस प्रकार आशाकी फांसीविषे बांधे हुए, दीनभावको प्राप्त हुए, आपको देहमात्रविषे आस्था करत भए कि, देहरूपी लता हमारी स्थित रहै हम सुखी होवैं, इस वासनासंयुक्त पूर्वके धैर्यको त्यागते भये और जानने लगे कि ये हमारे शत्रु हैं नाशकर्त्ता हैं इनते हमारी रक्षा होवै, इत्यादिक कृपणताको प्राप्त हुए धैर्य नष्ट होगया जैसे जल विना कमलकी शोभा जाती है, तैसे इनकी शोभा जाती रही, खानपानकी वासना फुरि आई, संसारकी भयानक गतिको प्राप्त भये युद्ध करैं तब आश्रय लेकर करैं, ढाल आदिक आगे रक्खैं, अहंकारकरिकै भयभीत हुए, यह हमको मारते हैं हम इनको मारते हैं, इस चिंताकरिकै इन सबके हृदय फँसिगये, शनैः शनैः युद्ध करने लगे, जब देवता शस्त्र चलावैं तब बच जावै, भयभीत होकरि भागैं, अहंकार जो आय उदय हुआ तिसकरि तिनके मस्तकपर आपदाने चरण आन रक्खे, महादीन जैसे होगये, मुखकी शोभा जाती रही; धैर्य बल नष्ट होगया, ऐसे होगये, जो कोऊ आगे पडै तौ भी तिसको मारि न सकै, जैसे काष्ठते रहित हुआ अग्नि क्षीरको नहीं भक्षण

करता तैसे वे निर्बल होगये, अंग काटे जावें भाग जावें जैसे और सामान्य शूरमें युद्ध करते हैं, तैसे युद्ध करने लगे. हे रामजी ! बहुत कहना क्या है, मरनेते डरने लगे युद्ध करि न सकैं, तब देवता जो वज्र आदिककरि तिनको प्रहार करने लगे तिसकरि चूर्ण होगये, भयभीत होकरि भागे, सब सैन्य दैत्यकी भाग जावै, जो जो देश देशांतरसों आये थे, सो सब भागैं अरु मारैं, कोऊ किसी देशको, कोऊ किसी देशको, पहाड़ कंदरा जलविषे गये, जहां जहां स्थान देखा तहां तहां चले गये, दैत्य भयभीत होकरि हारको प्राप्त भये अरु देवताओंकी जीत भई, दैत्य भागिके पातालविषे जायके छिपे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्याने असुरहननं नाम एकोनत्रिंशतितमः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशत्तमः सर्गः ३०.

दामव्यालकटजन्मांतरवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इस प्रकार भया तब देवता प्रसन्न हुए, अरु दाम, व्याल, कट भयभीत होके पातालको गये, देवताओंका भय पाये अरु शंबरसों भी भय पाये, जैसे प्रलयकालकी अग्नि प्रज्वलित होती है, तैसे शंबर प्रज्वलित अग्निका रूप है तिसके भयकरि दाम, व्याल, कट, सप्तवें पातालविषे जाय स्थित भये, तहां दैत्यके मंडलको छेदिके जहां यमकिंकर रहते हैं, तिसविषे जाय रहे, वहां इनका कुकुहा नाम तहांते भया, नरकरूपी समुद्रके आपालक यमकिंकर हैं, तिनने दयाकरि इनको बैठाया, जैसे पापीको चिंता प्राप्त होती है, तैसे इनको स्त्रियां प्राप्त भई इनसहित सप्तवें पातालविषे रहत भये, आगे इनकी बडी संतान पुत्रपौत्रादिक भये, सहस्र वर्ष व्यतीत किये तहां वासना दृढ होगई, यह मेरी स्त्री है, पुत्र कलत्र बांधवविषे स्नेह बहुत होगया, एककालमें तहां अपनी इच्छाकरि धर्मराज आवत भया, नरकका कछु कार्य करना था, तिसको देखिके सब किंकर उठ खडे हुए प्रणाम किया अरु दाम, व्याल कट,

तिसकी बडाईको जानते न थे और किंकरसमान जानिके प्रणाम कछु न करत भये, तब वैवस्वत यमराजाने क्रोध किया कि, यह दुष्ट मानी हैं इनको शासना देनी चाहिये, इस प्रकार विचारकरिकै किंकरोंको इसारा किया कि, इनको परिवारसंयुक्त अग्निकी खाईविषे डारि देहु, रुदन करते पुकारते रहे अरु इनको डारि दिये. परिवारसंयुक्त नरककी अग्निविषे जलि गये, जैसे दावाग्निविषे पत्र, टास, फूल, फलसंयुक्त वृक्ष जलि जाता है तैसे जलि गये, तब मलिन वासनाकरिकै क्रांत देशका जो राजा था, तिसके किंकर धीवर जाय हुए, तहां जीवकी हिंसा करते रहे, जब धीवरका शरीर छूटा तब कुंजा हुए, बहुरि चील्ह हुये, बहुरि बगले हुए, बहुरि तीरगत देशविषे धीवर हुए, बर्बर देशविषे मच्छर हुए, मगधदेशविषे जाय कीट हुए. हे रामजी ! इस प्रकार दाम व्याल कट तीनों वासनाकरि अनेक जन्मोंको प्राप्त भये, बहुरि अब काश्मीर देशविषे एक ताल है, तिसविषे तीनों मच्छ हुए हैं, वनको अग्नि लगी थी, तिसकरि जल भी सूख गया, अल्प उष्णजल रह गया है, तिसविषे रहते हैं, अरु वही जलपान करते हैं, न मरते हैं, न जीते हैं, जिनकी जो संपदा है, तिनको भी नहीं भोगते, चिंताकरि पडे जलते हैं. हे रामजी ! अज्ञानकरि अनेकवार जन्मते मरते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु मिटते हैं, जैसे जलके भ्रमरविषे तृण आय भ्रमता है, तैसे वासनाकरिकै भ्रमते फिरे, अबलग उनको शांति नहीं प्राप्त भई, अहंकार वासना महादुःखका कारणहै, इसके त्यागेते सुख है, अन्यथा सुख कदाचित् नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठ स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटजन्मांतरवर्णनं नाम त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशत्तमः सर्गः ३१.

निर्वाणोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! तेरे प्रबोधके निमित्त मैंने तुझको दाम, व्याल, व्यालन्याय कहा है कि, तिनकी नाईं तू मत होहु, इसनिमित्त इति-

हास कह्या है, अपर किसी लीलाका प्रयोजन न था, अविवेकीका निश्चय ऐसा है, अनेक आपदाको प्राप्त करता है,जो अनंत दुःखको भुगतता है, कहां शंबर दैत्यकी सेनाके साथ अरु देवताओंके नाशकर्त्ता अरु कहां तप्त जलके मच्छ जर्जरीभावको प्राप्त हुए जिनके शरीर, कहां वह धैर्य अरु बल जिसकरि देवताओंको नाश करना अरु भगावना अरु आप चलायमान न होना अरु कहां क्रांत देशके राजाके किंकर धीवर होना, कहां वह निरहंकार चित्त शांत उदारता अरु धैर्य अरु कहां वासनाकरि मिथ्या अहंकारसों संयुक्त होना ? एते दुःख आपदाको प्राप्त हुए, सो अहंकारकरि हुए हैं, अहंकारकरिके संसाररूपी विषकी मंजरी शाखा प्रतिशाखा बढी हैं, संसाररूपी वृक्षका बीज अहंकार है, जबलग अहंकार है, तबलग अनेक दुःख आपदा प्राप्त होते हैं, ताते तुम अहंकारको यत्नकरिके मार्जन करहु; मार्जन करना यह है कि, अहंवृत्ति है तिसको असत् जानो कि मैं कछु नहीं; इस मार्जनकरि सुखी होवैगा. हे रामजी ! आत्मरूपी अमृतका चंद्रमा है, शीतल शांतरूप तिसका अंग है,अहंकाररूपी मेघ आया है,तिसकरि वह अदृष्ट हुआ भासता नहीं, जब विवेकरूपी पवन चलै, तब अहंकार बादल नष्ट होवै, आत्मारूपी चंद्रमा प्रत्यक्ष भासै, अहंकार पिशाच जब उपजा, तब दाम व्याल कट तीनों मायारूप दानव सत् होके अनेक आपदाको भोगते हैं, अबलग काश्मीरके तालविषे मच्छ हुये पडे हैं, सिवारके भोजन करनेको पडे यत्न करते हैं, जो अहंकार न होता तौ एती आपदाको क्यों प्राप्त होते ? राम उवाच-हे भगवन् ! सत्का अभाव नहीं होता अरु असत्का भाव नहीं होता, असत् दाम, व्याल, कट सत् कैसे भये ? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इस प्रकार है, जो सत् नहीं सो किसीको कबहू कछु भान नहीं होता, परंतु सत् किसीको असत् प्राप्त हुआ देखता है, अरु असत्को न हुआ देखा है जो स्थित हुआ है, इसी तेरे कहनेसों मैं युक्तिकरि तुझको प्रबोध करौंगा, राम उवाच-हे भगवन् ! हम तुम जो ये सब हैं, सो सत्यरूप हैं अरु दामादिक जो थे, सो मायामात्र असत्रूप थे, सत् कैसे भये? सो कहो वसिष्ठ

उवाच-हे रामजी! जैसे द्यामादिक मायारूप असत्कारि मृगतृष्णाके जलवत् स्थित भये तुम हम देवता दानव संपूर्ण संसार असत् मायामात्र सत् होके भासता है वस्तुते कछु हुआ नहीं. जैसे स्वप्नविषे अपना मरणा भासता है सो असत्रूप है, तैसा हम तुम आदिक यह जगत् भासता है, सो असत्रूप है. जैसे स्वप्नविषे अपने मरे बांधव आनि मिलते हैं, और चर्चा करते हैं अरु प्रत्यक्ष भासते हैं सो असत्रूप होते हैं, तैसे यह जगत् असत्रूप है. हे रामजी! यह जो मेरे वचन हैं, सो मूढको विषयभूत नहीं, उनको नहीं शोभते काहेते कि अज्ञानीके हृदयविषे संसारका सद्भाव दृढ होगया है अरु अभ्यासविना इस निश्चयका अभाव नहीं होता जैसा निश्चय किसीके हृदयविषे दृढ हो रहा है, सो दृढ अभ्यासके यत्नविना कदाचित् दूर नहीं होता. जिसको यह निश्चय है कि, जगत् सत् है, सो मूर्ख उन्मत्त है अरु जो ज्ञानवान् है तिसके हृदयविषे जगत्का सद्भाव नहीं होता केवल ब्रह्मसत्ताका भाव होता है, अरु अज्ञानीको जगत् सत् भासता है अज्ञानीके निश्चयको ज्ञानी नहीं जानता अरु ज्ञानीके निश्चयको अज्ञानी नहीं जानता, जैसे मदकरि मत्त होवै तिसके निश्चयको अमत्त नहीं जानता अरु अमत्तके निश्चयको मत्त नहीं जानता तैसे ज्ञानी अज्ञानीका निश्चय इकट्ठा नहीं होता, जैसे प्रकाश अरु अंधकार इकट्ठा नहीं होता, धूप अरु छाया इकट्ठी नहीं होती, तैसे ज्ञानी अरु अज्ञानीका निश्चय इकट्ठा नहीं होता, जिसके चित्तविषे जो निश्चय है तिसको वही अभ्यास यत्नकरि दूर करै तब दूर होता है अन्यथा नहीं होता. ज्ञानी भी अज्ञानीके निश्चयको दूर नहीं करसकता. जैसे मृतककी जीवकलाको मनुष्य ग्रहण नहीं करिसकते कि, उसके निश्चयविषे क्या है. जो ज्ञानवान् है तिसके निश्चयविषे सर्व ब्रह्मका भान होता है और जगत् द्वैत कछु नहीं तिसीको मेरे वचन शोभते हैं आत्मअनुभव सर्वदा सत्रूप है और सब असत् पदार्थ हैं यह वचन प्रबुद्धका विषय है, तिसीको शोभते हैं अरु अज्ञानीको जगत् सत् भासता है ताते ब्रह्मवाणी तिसको शोभा नहीं देती, ज्ञानीको यह निश्चय है कि, जगत् रंचकमात्र भी

सत्य नहीं एक ब्रह्म ही परमसत्ता स्वरूप है और यह अनुभव बोधवान्का है तिसके निश्चयको कोऊ दूर नहीं करि सकता, परमात्माते व्यतिरेक कछु नहीं, जैसे स्वर्णविषे भूषणभाव नहीं तैसे आत्माविषे सृष्टिभाव नहीं अरु अज्ञानीको पंचभूतते व्यतिरेक कछु नहीं भासता, जैसे स्वर्णविषे भूषण नाममात्र होता है, तैसे वह आपको नाममात्र जानता है, सम्यक्दर्शीको इसते विपरीत भासता है अरु जो पुरुष होवै और कहै मैं घट हौं, जैसे यह निश्चय उन्मत्त है, तैसे हम तुम आदिक असत्रूप हैं, सत् वही है जो शुद्ध संवित्‌बोध आकाश निरंजनरूप है, सर्वगत शांतरूप है उदय अस्तते रहित है,जैसे नेत्रदूषणवालेको आकाशविषे तरुवरे भासते हैं, तैसे अज्ञानीको जगत् सत्रूप भासता है, आत्मसत्ताविषे जैसा जैसा किसीको निश्चय होगया है, तैसा ही तत्काल हो भासता है, वस्तुते जैसे दामादिक अणु होते थे; तैसे तुम हम आदिक जगत् है, अनंत चेतन आकाश सर्वगत निराकारविषे फुरना होता है, सोई देहाकार हो भासते हैं, जैसे संवित्‌का किंचन दामादिक निश्चयसों आकारवान् हो भासे; तैसे हम तुम भी फुरनेमात्र हैं, संवेदनके फुरनेहीकरि स्थित भए हैं, जैसे स्वप्ननगर भासता है जैसे मृगतृष्णाकी नदी भासती है तैसे हम तुम आदिक जगत् आत्मरूप भासता है, प्रबुद्धको सब चिदाकाश ही भासता है, अपरको सब मृगतृष्णा अरु स्वप्ननगरभासता है. जो आत्माकी ओर जागे हैं अरु जगत्‌की ओर सोये हैं, सो मोक्षरूप हैं अरु जो आत्माकी ओरते सोये हैं जगत्‌की ओर जागे हैं, सो अज्ञानी बंधरूप हैं अरु वास्तवते न कोऊ सोये हैं, न जागते हैं, न बँधे हैं, न मोक्ष हैं, केवल चिदाकाश है, सोई जगत्रूप हो भासता है, निर्वाणसत्ता ही जगत्‌लक्ष्मी होइकरि स्थित भई है अरु जगत् निर्वाणरूप है, दोनों एक वस्तुके पर्याय हैं जैसे तरु अरु विटप एक ही वस्तुके दो नाम हैं, तैसे ब्रह्म अरु जगत् एक ही वस्तुके पर्याय हैं, जैसे आकाशविषे तरुवरे भासते हैं अरु हैं नहीं, आकाश ही है, तैसे अज्ञानीको ब्रह्मविषे जगत भासता है, सो है नहीं ब्रह्म ही है जैसे किसीको नेत्रविषे तिमिरका रोग होता है, तिसकरि तरुवरे भासते हैं, सो तरुवरे नेत्ररोगते भिन्न नहीं तैसे

अज्ञानीको अपना आप ही अन्यतरूप हो भासता है, सो चिदाकाश स्थान विषे भासता है, सो चिदाकाश सर्व ओर व्यापकरूप है, तिसते इतर जगत् असत् हैं, कछु वस्तु नहीं, सत्यरूप एक विस्तृत आकार वही सत्ता है, महाशिलावत् घन स्वच्छ निस्पंदउदय अस्तते रहित है, सर्व कलनाको त्यागिकारि तिसी अपने आपविषे स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे निर्वाणोपदेशवर्णनं नाम एकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ३२.

देशाचारवर्णनम्।

राम उवाच–हे भगवन्! असत् ही सत्की नाईं होके स्थित भया है, जैसे बालकको अपने परछाईंविषे वैताल हो भासता है, सो जैसे हुआ तैसे हुआ है, अब यह कहो, दाम व्याल कटके दुःखका अन्त कैसे होवैगा? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जब तिनको अग्निविषे यमराजने भस्म कराये तब यमराजसों किंकर पूछते भए कि, हे प्रभो! इनका उद्धार कब होवैगा? तब यमराजने कहा, हे किंकरो! जब यह तीनों आपसमें बिछुरि जावेंगे अरु अपनी संपूर्ण कथा श्रवण करैंगे, तब निःसंदेह होके मुक्त होवैंगे, यह नीति है. राम उवाच–हे भगवन्! यह वृत्तांत कहाँ सुनैंगे अरु कब सुनैंगे अरु कौन निरूपण करैगा? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! काश्मीरदेशविषे एक बडा ताल है अरु कमलोंकारि पूर्ण है, तिसके निकट एक छोटा ताल है, तिसविषे चिरपर्यंत वारंवार मच्छ होवैंगे फिर मच्छका शरीर त्यागिकारि सारस पक्षी होवैंगे, कमलोंके तालऊपर रहैंगे, कमल अरु कमलनियां उत्पल आदिक फूलोंविषे विचरैंगे, सुगंधको लेते चिरकाल व्यतीत करैंगे, तब दैवसंयोगकारि उनके पाप नष्ट होवैंगे अरु बुद्धि निर्मल हो आवैगी, तब तीनों आपसमें बिछुरि जावैंगे अरु मुक्तियुक्तिको प्राप्त होवैंगे; जैसे राजसी तामसी सात्त्विक गुण आपमें स्वेच्छित बिछुरि जाते हैं, तैसे वे स्वेच्छित

बिछुरि जावैंगे, काश्मीर देशविषे एक पहाड है, तिसके शिखरपर एक नगर बसैगा तिसका नाम प्रद्युम्न होवैगा, तिस शिखरपर कमलोंकरि पूर्ण एक ताल होवैगा तहां एक राजाका स्थान होवैगा ईशानकोणकी ओर राजाका मंदिर होवैगा, तिस मंदिरके एक छिद्रविषे घास तृणकरि आलय बनाय व्याल नाम दैत्य चिडिया होकरि तहां रहैगा कैसा आलय कि, वायुकरि तिसके तृण पडे हिलैंगे, तहां वह शब्द करैगा. कैसा कि, तिसका अर्थ कछु समझिये नहीं निरर्थक शब्द होवैगा तिस कालमें श्रीशंकर नाम राजा होवैगा, गुण अरु भूतिकरि संपन्न मानो दूसरा इन्द्र है, तिसके मंदिरकी छतकी कडीके छिद्रविषे दामनाम दैत्य मच्छर होकरि रहैगा, भूं भूं शब्द करता विचरैगा अरु कट नाम दैत्य तहां क्रीडाका पक्षी होवैगा, रत्नोंकरि जडे हुए पिंजरेविषे रहैगा, तिस राजाका मंत्री बडा बुद्धिमान् होवैगा जैसे हाथविषे आंवला होता है तैसे उस मंत्रीको बंध अरु मुक्तिका ज्ञान प्रसिद्ध होवैगा अरु नरसिंह मंत्रीका नाम होवैगा, सो मंत्री राजाके आगे दाम व्याल कटकी कथा, श्लोक बांधिकरि कहैगा, तब करकर नामा पक्षी हुआ जो कट दैत्य है सो पिंजरेविषे श्रवण करैगा तिस श्रवण करनेसों उसको अपना वृत्तांत सब स्मरण होवैगा, तिसको विचारैगा तब मिथ्या अहंकार शांत होवैगा, परम निर्वाण सत्ताको प्राप्त होवैगा, इसी प्रकार राजाके मंदिरविषे चिडिया हुआ व्याल नाम दैत्य भी श्रवण करैगा वह भी परमनिर्वाणसत्ताको प्राप्त होवैगा, इस प्रकार लकडीके छिद्रविषे मच्छर हुआ दाम नाम दैत्य भी श्रवण करिकै मोक्ष होवैगा. हे रामजी ! करकर पक्षी अरु चिडिया अरु मच्छर तीनों पहाडके शिखरपर राजमंदिरविषे वसनेहारे मोक्ष होवैंगे, यह संपूर्ण क्रम तुझको कहा है सो संसारभ्रम मायामय है, अत्यंत भास्वर प्रकाशरूप भासता है, तौ भी महाशून्य अविचारते सिद्ध है, विचार करिकै ज्ञान हुएते शांत होजाता है, जैसे मृगतृष्णाका जल भलीप्रकार देखते शांत होजाता है, यद्यपि अज्ञानी बडे पदको प्राप्त होता है, तौ भी अधोते अधो मोहते चला जाता है जैसे दाम व्याल कट महाजालविषे पडेथे, कहां वह बल भौंहैं टेढी कर-

नेसे सुमेरु मंदराचल जैसे पर्वत पडि जावैं अरु कहां राजाके गृहविषे काष्ठके छिद्रसों मच्छर होना ! कहां वह बल जिसके हाथकी चपेटकारि सूर्य अरु चंद्रमा गिर पडैं, अरु कहां प्रद्युम्नका पहाडके गृह छिद्रविषे चिडिया होना ! कहां वह बल जो सुमेरु पर्वतको पीले फूलकी नाईं लीलाकारि उठाय लेना अरु कहां पहाडके शिखरपर गृहविषे पक्षी होना ! एक अज्ञानरूपी अहंकारकरिकै एती लघुताको जीव प्राप्त होते हैं अज्ञानकरिकै रंजित हुए मिथ्या भ्रमको देखते हैं. प्रकाशरूप चिदाकाश सत्ता विना इनको भासता है, अपनी वासनाकी कल्पना करिकै जगत् सत्रूप भासता है. जैसे मृगतृष्णाका जल भ्रमकरिकै सत् भासता है, तैसे अपनी कल्पनाकरिकै जगत् सत् भासता है, इस संसारसमुद्रके तरणेको वही समर्थ होता है, जो शास्त्रके विचारद्वारा निर्वासनिक पुरुष हुआ है अरु जो संसारनिरूपणका शास्त्र है, तारक कहनेको बड़ा प्रकाशरूप है शब्द जिसका तिसका आश्रय करता है, सो संसारके पदार्थको शुभरूप जानता है तिसकारि अधःको गिरता है, जैसे टोयेको जलरूप जानिकै स्नानके निमित्त जावै अरु गिर पडै. हे रामजी ! अपना अनुभवरूपी जो प्रसिद्ध मार्ग है, तिसविषे जो प्राप्त भये हैं, तिनका नाश नहीं होता, सुखसों स्वच्छन्द चले जाते हैं, जैसे पथिक सूधे २ मार्ग चला जाता है, ब्रह्मनिरूपक जो शास्त्र है सो निर्वेदमार्ग और संसारनिरूपक शास्त्र दुःखदायक मार्ग है यह जगत् असतरूप भ्रांतिमात्र है, जिसकी बुद्धि इसविषे है कि, यह पदार्थ यह सुख मुझको प्राप्त होवै; इस प्रकार संसारके विषयकी तृष्णा करते हैं सो अभागी हैं अरु जो ज्ञानवान् पुरुष है तिसको जगत् घास तृणकी नाईं तुच्छ भासता है, जिस पुरुषके हृदयविषे परमात्माका चमत्कार भया है सो इस ब्रह्मांड खंड लोक अरु लोकपालको तृणवत् देखता है, जैसे जीव आपदाको त्यागता है, तैसे उसके हृदयविषे ऐश्वर्य भी आपदारूप त्यागने योग्य है,ताते अन्तर निश्चयात्मक तत्त्वविषे रहो अरु बाहिर जैसा अपना आचार है तैसा करो, आचारका व्यतिक्रम नहीं करना व्यतिक्रम करनेकारि शुभकार्य भी अशुभ हो जाता है, जैसे राहु दैत्यने जो अमृत-

पान करनेका यत्न किया तौ भी व्यतिक्रमते शरीर कटता भया;ताते शास्त्रानुसार चेष्टा करनी कल्याणका कारण है,संतजनकी संगति अरु सच्छास्त्रकरि बडा प्रकाश प्राप्त होता है,जो पुरुष इनको सेवता है, सो मोहअंधकूपविषे नहीं गिरता. हे रामजी ! वैराग्य, धैर्य, संतोष, उदारताआदिक जो गुण हैं, सो जिसके हृदयविषे प्रवेश करते हैं,सो पुरुष परम संपदावान् होता है, आपदाको नष्ट करता है. जो पुरुष शुभ गुणकरि संतुष्ट है, अरु सच्छाशास्त्रके श्रवणरागविषे राग है.अरु सत्की वासना है सो पुरुष है, और सब पशु हैं; जिसमें वैराग्य, संतोष, धैर्य आदि गुणकारि चांदनी पसरती है अरु हृदयरूपी आकाशविषे विवेकरूपी चंद्रमा प्रकाशता है सो पुरुष शरीर नहीं मानौ क्षीरसमुद्र है, तिसके हृदयविषे विष्णु विराजते हैं, जो कछु तिन्हैं भोगना था सो भोगा है, जो कछु देखना था सो देखा है, बहुरि भोगने अरु देखनेकी तृष्णा नहीं रहती, जिस पुरुषका यथाक्रम यथाशास्त्र आचार है अरु निश्चय है, तिसके भोगकी तृष्णा निवृत्त होजाती है, तिन पुरुषोंके गुण आकाशविषे सिद्ध देवता अप्सरा गायन करते हैं, सो मृत्युको तरते हैं, अपर भोगके तृष्णावाले कदाचित् नहीं तरते. हे रामजी ! जिन पुरुषोंके गुण चंद्रमाकी नाईं शीतल हैं अरु सिद्ध अप्सरा गान करती हैं, सो पुरुष जीवते हैं और सब मृतक हैं ताते परमपुरुषार्थका आश्रय करहु, तब परमसिद्धताको प्राप्त होवोगे. वह कौन वस्तु है जो शास्त्रअनुसार पुरुषार्थ कियेते अनुद्वेग होइकरि प्राप्त न होवै. अवश्यमेव प्राप्त होता है, यथाशास्त्र क्रिया करै अरु चिरकाल व्यतीत होजावै, सिद्धता न होवै तौ भी उद्वेग न करै, वह फल परिपक्व होइकरि प्राप्त होवैगा; जैसे वृक्षसों परिपक्व होके फल उतरता है, तब अधिक मिष्ट अरु सुखदायक होता है, यथाशास्त्र व्यवहार करनेहारा तिस पदको प्राप्त होता है, जहां शोक भय यत्न सब नष्ट होजाते हैं अरु शांतिमान् होता है. हे रामजी ! मूर्ख जीवकी नाईं संसारकूपविषे मत गिरहु, यह संसार मिथ्या है, तुम उदारआत्मा हौ उठि खडे होहु, अपने पुरुषार्थका आश्रय करहु अरु इस शास्त्रको विचारहु, जैसे रणविषे प्राण निकसने

लगैं तौ भी शूरमा भागता नहीं, शस्त्रको पकडिकै युद्ध करता है,सो फिर अमरपदको प्राप्त होता है,तैसे संसाररूपी रणविषे पुरुषार्थ शस्त्र है, ताते यही पुरुषार्थ करौ शास्त्रको विचारौ कि, कर्तव्य क्या है? जो विचारते रहितहै सो दौर्भाग्य दीनता अशुभको प्राप्त करनेहारा है,महामोहरूपी घन निद्रा है, तिसको त्यागिकरिजागो.पुरुषार्थको अंगीकार करौ,सो जरामृतिकेशांतिका कारण है और जेते कछु अर्थ हैं, सो सब अनर्थरूप हैं, भोग सब रोगके समान है, संपदा सब आपदारूप हैं, ये सब त्यागने योग्य हैं, सन्मार्गको अंगीकार करिकै अपने प्रकृत आचारविषे विचारौ, शास्त्र अरु लोकमर्यादानुसार व्यवहार करौ. शास्त्रके अनुसार कर्मका करना सुखदायक होता है. जिस पुरुषका शास्त्रके अनुसार व्यवहार है, ऐसा जो विवेकी पुरुष है; तिसका संसारदुःख नष्ट होजाता है. आयुर्बल, यश, गुण और लक्ष्मीकी वृद्धि होती है; जैसे वसंतऋतुकी मंजरी प्रफुल्लित होती है तैसे वह प्रफुल्लित होता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्याने
देशाचारवर्णनं नाम द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः ३३.

पुरुषार्थजयवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! सर्व दुःखके देनेहारा, सर्व सुखका फल सब ठौर सब कालविषे सबको अपने कर्मके अनुसार होता है, एक दिन नंदीगण एक सरोवरपै जायके सदाशिवका आराधन करत भया, तब सदाशिव प्रसन्न भया, तिसकरि ,उसने मृत्युको जीता अरु प्रथम नंदी था, सो नंदीगण नाम भया अरु मित्र बांधव सबको सुख देनेहारा भया, सो क्योंकरि भया, अपने स्वभाव यत्नकरिकै भया अरु दैत्य शास्त्रके अनुसार यत्न करते हैं, तब क्रमकरिकै देवताको मारते हैं, कैसे देवता हैं, जो सबते उत्कृष्ट वर्तते हैं,जैसे हस्ती कमलको उखाडते हैं;तैसे देवताको दैत्य उखाडते हैं सो अपना ही पुरुषार्थ है अरु मरुत राजाके

यज्ञविषे संवृतनामक एक महाऋषि आया, तिसने देवता दैत्य मनुष्य आदिक अपनी सृष्टि रचलीनी मानो दूसरा ब्रह्मा है. सो ऐसी सृष्टि अपने पुरुषार्थकरि रची अरु विश्वामित्रने वारंवार तप किया, तपकी अधिकताकरि राजर्षिते ब्रह्मर्षि हुआ, सो अपने ही शुद्धाचारकरि हुआ. हे रामजी, एक दुर्भाग्य ब्राह्मण था, उपमन्यु तिसका नाम था, तिसको अपने गृहविषे भोजनकी सामग्री प्राप्त न थी तब इसने एक गृहस्थके घर पितासंयुक्त भोजन किया, दूध चावल खंडसहित भोजन करिकै अपने गृहविषे आया, बहुरि पितासे कहने लगा, मुझको वही भोजन देहु, जो खाया था सो तब पिताने साँवेंके चावल अरु आटेका दूध घोलिकै दिया, उसने भोजन किया तब तैसा स्वाद न लगा, बहुरि पितासे कहा, मुझको वही भोजन देहु जो वहां खाया था, पिताने कहा-हे पुत्र! वह भोजन हमारे पास नहीं, सदाशिवके पास वह भोजन है, जो वे देवैं तो हम खावैं तब वह ब्राह्मण सदाशिवकी उपासना करने लगा, ऐसा तपकिया कि, शरीर अस्थिमात्र हो रहा अरु रक्त मांस सब सूख गया, तब शिवजीने प्रसन्न होकरि दर्शन दिया अरु कहा हे ब्राह्मण! जो तुझको इच्छा है सो वर माँग; ब्राह्मणने कहा दूध अरु चावल देहु, तब सदाशिवने कहा,दूध अरु चावल क्या, कछु और माँग, अरु तुझने कहा है, तौ यही भोजन किया कर, तब उसको वही भोजन प्राप्त हुआ अरु कहा जब तू चिंतन करैगा, तब मैं दर्शन देऊँगा. हे रामजी! यह भी तौ अपना पुरुषार्थ हुआ, त्रिलोकीकी पालना करनेवाले विष्णु हैं, तिनको काल तृणकी नाईं मर्दन करता है, तिस कालको श्वेतने जीता है, सो अपना उद्यम हुआ अरु सावित्रीका भर्ता मृतक हुआ था अरु वह पतिव्रता थी, सो स्तुति नमस्कार करिकै यमको प्रसन्न करती भई, भर्ताको परलोकसों ले आई, यह भी अपना पुरुषार्थ है, श्वेतनामा एक ऋषीश्वर हुआ है, सो अपने पुरुषार्थकरि कालको जीति मृत्युंजय नामको पावत भया; तातें ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं जो यथाशास्त्र उद्यम कियेते प्राप्त न होवै, जो अपने पुरुष प्रयत्नका त्याग नहीं करै, तौ सर्व सुखफलकी प्राप्ति होती है; जो अविनाशी सुखकी इच्छा

होवै, तौ आत्मबोधका अभ्यास करै, अपर जेते कछु संसारके सुख हैं, सो दुःखके साथ मिले हुए हैं अरु आत्मसुख सब दुःखका नाश करता है, किसी दुःखके साथ मिला नहीं, वास्तव कहिये तौ शम अशम सर्व ब्रह्म ही है, यद्यपि ऐसे है तौ भी शम परम कल्याणका कर्ता है, ताते अभिमानका त्याग करि शमका आश्रय करहु अरु निरंतर बुद्धिकरि विचार करहु अरु यत्नकरि संतका संग करौगे, तब परमपदको प्राप्त होवोगे. हे रामजी ! संसारसमुद्रके पार करनेको ऐसा समर्थ तप नहीं, न तीर्थ करनेकरि और सामान्य शास्त्रोंकरिकै तरनेको समर्थ होता है जैसे संतजनके सेवनसों भवसागरते सुखसों तरना होता है, जिस पुरुषके लोभ, मोह, क्रोध आदिक विकार दिन दिन प्रतिक्षीण होजाते हैं अरु यथाशास्त्र तिसका कर्म है, ऐसे पुरुषको संतजन कहते हैं अरु आचार्य कहते हैं, तिनकी संगति संसार पाप कर्मते निवृत्त करती है अरु शुभविषे जोडती है, आत्मवेत्ता जो पुरुष है, तिसकी संगति करि इसकी बुद्धिविषे संसारका अत्यंतअभाव होता है, जब दृश्यका अत्यंत अभाव हुआ तब शेष आत्मा रहता है, इस क्रमकरिकै जीवका जीवनभाव निवृत्त होजाता है, शेष बोधतत्त्व रहता है जगत् न उपजता है न आगे होवैगा, न वर्तमानविषे है, इस प्रकार मैंने तुझको अनंत युक्तिकरि कहा है अरु कहौंगा, ज्ञानवान्‌को सर्वदा ऐसे ही भान होता है, अचल चिदात्माविषे चंचल चित्त फुरा है तिसने जगत् आभासको रचे हैं, जैसे जैसे फुरता है, तैसे तैसे जगत् भासता है अरु वस्तुते अपर कछु हुआ नहीं, आत्मरूपी सूर्य है, जगत् तिसकी किरणेंरूप है, जैसे सूर्य अरु किरणोंविषे भेद कछु नहीं, तैसे जगत् अरु आत्माविषे भेद कछु नहीं. अहंरूप आत्मा है, तिसविषे आपको न जानना, सो आत्माकाशविषे मेघरूपी मलिनता है. जब परमार्थमें अहंभावको जानैगा तब अनात्मविषे अहंभाव लीन होजावैगा तब चिदाकाशके साथ जीवकी अत्यंत एकता होती हे, जैसे घटके फूटेते घटाकाशकी महाकाशके साथ एकता होती हैं, अहम् आदिक जो दृश्य है, सो निश्चयकरि जान, जो वास्तवते कछु नहीं विचार कियेते नहीं रहता, जैसे बालकको परछा-

ईविषे पिशाच भासता है, सो भ्रांतिमात्र होता है, तैसे यह जगत् भ्रांतिसिद्ध है अपनी कल्पनाकरि भासता है अरु दुःखदायक होता है, विचार कियेते नष्ट होजाता है. हे रामजी ! आत्मरूपी चंद्रमा सदा प्रकाश है अरु अहंकाररूपी तिसके आगे मेघ बादल आया है, तिसकरि परमार्थबुद्धिरूपी कमलिनी विकासको नहीं प्राप्त होती, मूँदेमुख हो रही है, ताते विवेकरूपी वायुकरि तिसको नष्ट करौ. नरक, स्वर्ग, बंध, मोक्ष, तृष्णा, ग्रहण, त्याग आदिक सब अहंकारकरि पडे फुरते हैं, हृदयरूपी आकाशविषे अहंकाररूपी मेघ जबलग गर्जता वर्षा करता है, तबलग तृष्णारूपी कंटकमंजरी बढती जाती है, जबलग अहंकाररूपी बादलने आत्मरूपी सूर्यको आक्रमण किया है, तबलग जडता अरु अन्धकार है, प्रकाश उदय नहीं होता. अहंकार वृक्ष है तिसकी अनंत शाखा पसरती हैं, अहं मम आदिक विस्तार अनेक अर्थको प्राप्त करता है; जो कछु संसारविषे सुखदुःख आदिक प्राप्त होता है, सो सब अहंकारकरिकै प्राप्त होता है; संसाररूपी चक्र है, अहंकार तिसकी नाभि है; तिसकरिकै पडा भ्रमता है अरु अहं ममरूपी बीज है तिसते अनेक जन्मरूपी वृक्षकी परंपरा उदय होती है; अक्षय होजाती है, जो नष्ट कबहूँ नहीं होती ताते यत्न करिकै इसको नाश करौ, जबलग अहंकाररूपी अन्धकार है, तबलग चिंतारूपी पिशाचिनी विचरती है; अरु अहंकाररूपी पिशाचने जिसको ग्रहण किया है, तिस नीच पुरुषको मंत्र तंत्र भी दीनताते छुडाय नहीं सकते. राम उवाच—हे भगवन् ! निर्मल जो चिन्मात्र आत्मसत्ता है; सो अपने आपविषे स्थित है तिसविषे अहंकाररूपी मलिनता कहांते प्रतिबिंबित हुई ? वसिष्ठ उवाच—हे राघव ! अहंकारका जो चमत्कार भासता है.सो वास्तव धर्म नहीं, मिथ्या है वासनाभ्रमकरि हुआ है, पुरुष प्रयत्न करिकै नष्ट होजाता है, जो न मैं हौं न मेरा कोई है, अहंममर्मे सार कछु नहीं जब यह शांत होवैगा तब दुःख भी कोऊ न रहेगा जब ऐसी भावनाका निश्चय दृढ होवैगा तब अहंकार नष्ट होजावैगा, आत्माविषे अहं कोऊ नहीं,न दृश्यमें सार है,इसप्रकार जब इसका फुरना शांत हुआ,तब अहंकारभी नष्ट हो जावैगा,जब अहंकारनष्ट हुआ

तब हेयोपादेयबुद्धि भी शांत होजावैगी; समता आदिक प्रसन्नता आय उदय होवैगी, अहंकारकी प्रवृत्ति दुःखका कारण है. राम उवाच-हे प्रभो! अहंकारका रूप क्या है? अरु त्याग कैसे होता है? अरु शरीरते रहित कब होता है अरु इसके त्यागेते फल क्या होता है? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! अहंकार तीन प्रकारका है, दो प्रकारका श्रेष्ठ अंगीकार करने योग्य है अरु तीसरा त्यागने योग्य है सो सुन, इसका त्याग शरीरसहित होता है, यह दृश्य सब मैंही हौं सो मैं परमात्मा अद्वैतरूप हौं, मुझते इतर कछु नहीं, यह निश्चय परम अहंकारका है, मोक्षको देनेहारा है, बंधनका कारण नहीं, इसविषे जीवन्मुक्त विचरते हैं अरु यह अहंकार भी मैं तुझको उपदेशके निमित्त कलिपके कहा है, वास्तवते यह भी नहीं, केवल अचेत चिन्मात्र सत्ता है. अरु दूसरा अहंकार यह है कि, मैं सर्वते व्यतिरेक हौं अरु बालके अग्रते सौवां भाग सूक्ष्म हौं; ऐसा जो निश्चय है, सो भी जीवन्मुक्तिका है, मोक्षदायक बंधनका कारण नहीं यह अहंकार भी तुझको कलिपके कहा है, वास्तवते यह कहना भी नहीं अरु तीसरा अहंकार यह है, कि हाथपादते आदि लेकरि इतना मात्र आपको जानना इसविषे जिसका निश्चय है सो तुच्छ है, बंधनका कारण है, इसको त्याग करौ यह दुष्टरूप परम शत्रु है, इसकारि जो जीव मरे हैं सो परमार्थकी ओर नहीं आते यह अहंकाररूपी जो शत्रु है, सो चतुर अरु बडा बली है. नाना प्रकारके जन्म अरु मानसी दुःख काम, क्रोध, राग, द्वेष आदिकका देनेहारा है, सब जीवको नीच करता है अरु संकटविषे जोडता है इस दुष्ट अहंकारके त्यागेते पाछे जो शेष रहता है, सो आत्मा भगवान् मुक्तिरूप सत्ता है. हे रामजी! लोकविषे जो अहंकार भावना है, सो वपुकी है, मैं यह हौं, एतामात्र हौं, सो दुःखका कारण है, इसको महापुरुषने त्याग किया है, वह जानते हैं हम देह नहीं, शुद्धचिदानंदस्वरूप हैं, प्रथम जो दो अहंकार मैंने तुझको कहे हैं, सो अंगीकार करने योग्य है अरु मोक्षदायक हैं अरु तीसरा अहंकार त्यागने योग्य है; काहेते कि, दुःखका कारण है, तिसी अहंकारको ग्रहण करिकै दाम, व्याल, कट आपदाको प्राप्त हुए, जो महाभयदायक कहनेविषे नहीं आते, जि-

नने भोगे हैं, तिनकी क्या कहनी है, वही जानते हैं. राम उवाच—हे भगवन्! तीसरा अहंकार जो तुमने कहा है, तिसका त्याग कियेते पुरुषका क्या भाव रहता है अरु तिसको क्या विशेषता प्राप्त होती है. वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! जब यह जीव अनात्मा अहंकारको त्यागकरता है, तब परमपदको प्राप्त होता है,जेता जेता त्याग करता है,तेता तेता दुःखते मुक्त होता है, ताते इसको त्यागकरि आनंदमान होहु, इसको त्यागिकै महापुरुष शोभता है, जब तुम इसको त्यागोगे तब ऊँचे पदको प्राप्त होउगे सर्वकाल सर्व यत्न करिकै दुष्ट अहंकार जो लोक कहे हैं, तिसको नष्ट करौ परमानंद बोधके आगे यह आवरण है, इसके त्यागते बोधवान् होता है.जब यह अहंकार निवृत्त होता है तब शरीर पुण्यरूपी हो जाता है अरु परमसारके आश्रयको प्राप्त होता है यही परमपद है, जब स्थूल अहंकारका त्याग किया, तब सर्व व्यवहार चेष्टाविषे आनंदमान होता है, जिस पुरुषका अहंकार शांत हुआ है, तिसको भोग अरु योग दोनों स्वाद नहीं देते, जैसे अमृतकरि जो तृप्त भया है, तिसको खट्टा अरु मीठा दोनों स्वाद नहीं देते,अर्थ यह जो रागद्वेषकरि चलायमान नहीं होता, एकरस रहता है, जिसका अनात्माविषे अहंभाव नष्ट हुआ है, तिसको भोगविषे राग नहीं होता,तृष्णा रागदोष नष्ट होजाता है. जैसे सूर्यके उदय हुएते अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे अपने दृढ पुरुषार्थ करिकै जिसके हृदयसों अहंकारका अनुसंधान नष्ट होजाता है, सो संसारसमुद्रको तरिजाता है. ताते यही निश्चय धारौ कि,न मैं हौं, न कोई मेरा है, अथवा सर्व मैं ही हौं, मुझते इतर कछु वस्तु नहीं यह निश्चय जब दृढ होवैगा, तब संसारकी द्वैतवासना मिटि जावैगी, केवल आत्मतत्त्वका सर्वदा भान होवैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्याने पुरुषार्थजयवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः ३४.

दामव्यालकटोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जब दाम, व्याल, कट, युद्ध करते भाग गये तब शंबरके नगरकी अवस्था हुई सो सुन, कैसा नगर है जो पहाडके समान है, तहां शंबरकी जेती कछु सेना थी सो सब नष्ट होगई, जैसे शरत्कालविषे मेघ नष्ट होजाता है, तैसे नष्ट होगयी, तब देवता जीतिकरि अपने स्थानविषे जाय बैठे अरु शंबर भी क्षोभको पायके बैठि रहा, जब केतेक वर्ष व्यतीत भये तब देवतोंके मारणे निमित्त शंबर युक्ति चिंतवता भया कि, जो दामादिक मायाकरिकै रचे थे सो मूर्ख थे बलवान् थे, परंतु मिथ्या अहंकारका बीज अज्ञान उनको था तिसकरि उनको मिथ्या अहंकार आनि फुरा तब नष्ट हुए अरु भागे. अब मैं ऐसे योद्धे रचौं, जो आत्मवेत्ता ज्ञानवान् निरहंकार होवैं जिनको अहंकार कदाचित् उत्पन्न न होवे, तिनको कोऊ जीति न सकैगा, सब देवतोंकी सेना मारैंगे. हे रामजी ! इस प्रकार चिंतनकरि शंबर मायाकरि दैत्योंको रचता भया; जैसे समुद्र अपने बुद्बुदे रचि लेवै, तैसे शंबरने दैत्योंको रचि लिया. सो कैसे रचे ? सर्वज्ञ, विद्याके वेत्ता, अरु वीतराग आत्मा अरु यथाप्राप्त कामको करते, आत्मभाव निश्चय अरु आत्मरूप ऐसे उत्तम पुरुष उपजे भीम अरु भास अरु दृढ तिनके नाम, सो तीनों इस संपूर्ण जगत्को तृणवत् जानैं, परमपवित्र तिनके हृदय ऐसे पुरुष उपजाये अरु गर्जत भये, महाबलकारि शब्द करैं तिनके शब्दकरि आकाश पूर्ण हो गया, इंद्रादिक देवता स्वर्गविषे शब्द श्रवण करते भये, सुनिकै बडी सेनाको संग लेकरि आये, अरु यह भी बिजलीवत् चमत्कार करते बढचले. बडे महायोद्धे दोनों ओरते युद्ध करने लगे, शस्त्रकी नदियोंके प्रवाह चले अरु भीम, भास, दृढ, धैर्यसों खडे रहे, कबहूं किसी शस्त्रका प्रहार लगै, तब युद्धके अभ्यासकरि देहका मोह आनि फुरै बहुरि विचारविषे सावधान होवैं कि हम तौ अशरीर हैं, चैतन्यमय, निराकार, निर्विकार, अद्वैत, अच्युतरूप

हैं हमारे संग शरीर कहां है, जब जब मोह आवै तब तब ऐसे विचार करै जरा मरण उनको कछु न भासे, निर्भय होकरि वर्तमान युद्धकार्य करते भये. वासनाकी जालते मुक्त हो शत्रुको पकड़ मारैं हेयोपादेयते रहित समदृष्टि युद्धकार्यको करते हैं, दृढ युद्ध आनि हुआ, तब देवतोंकी सेना मारीगई जो शेष रहे सो भीम भास दृढके भयते भागे, जैसे जल पर्वतते उतरता है, तीक्ष्ण वेगकरि चलता है; तैसे देवता तीक्ष्ण वेगकरि भागे सो क्षीरसमुद्रविषे विष्णुभगवान्की शरणको प्राप्त भये; जैसे वायुकरि मेघ बादल चला पर्वतके आश्रय जाय रहता है, तैसे भयकरि भाग गये, तब तिनको देखिकै विष्णु भगवान्ने कहा, तुम यहां स्थित होहु, मैं इनको युद्धकरि मार आता हौं ऐसे कहकरि सुदर्शन चक्रको लिये विष्णु भगवान् शंबरकी ओर आये तब विष्णु भगवान् अरु शंबरका युद्ध होता भया; बडा युद्ध हुआ, मानौ अकाल प्रलय आया है, बडे बडे पर्वत उछले अरु युद्ध होवै, तब शंबर चलि खडा हुआ, महाप्रकाशरूप सुदर्शन चक्रसे विष्णुजीने शंबरको मारि लिया शंबर शरीरको त्यागिकै विष्णुपुरीको प्राप्त भया, तब विष्णु भगवान्ने भीम भास दृढके अंतःपुर्यष्टकविषे जाय प्रवेश किया, उनकी चित्तकला जो प्राणके साथ मिश्रित थी; तिसको असत किया, जैसे पवन दीपकको निर्वाण करता है, तैसे उनकी पुर्यष्टक फुरणेते निर्वाण हुई, आगे जीवन्मुक्त थे, सो विदेहमुक्त भये. हे रामजी! वे भीम भास दृढ निर्वासनिक थे, इस कारणते दीपकवत् निर्वाण होगये, ताते जो वासनासंयुक्त है, सो बंध मान है, जो निर्वासनिक है, सो मुक्तरूप है, तुम भी विवेककरिकै निर्वासनिक होहु. जब यह निश्चय होवै कि, जो सर्व जगत् असतरूप है तब वासनाकी ओर नहीं फुरता; यही यथार्थ देखना है कि, किसी जगत्के पदार्थविषे आसक्त बुद्धि न होवै वासना कहिये, चित्त कहिये ये एक ही वस्तुके नाम हैं, सर्व पदार्थके शब्द अरु अर्थ चित्तविषे स्थित हैं, जब सत्का अवलोकन सम्यक् ज्ञान होवैगा; तब यह लय होजावैगा; परमपद शेष रहैगा; जो चित्त वासना संयुक्त है, तिसविषे अनेक पदार्थकी तृष्णा होती है, तिसते जो मुक्त कहाते हैं; नानाप्रकारके घट पट आदिक आकार भासते

हैं, सो चित्त फुरनेकरि अनेकताको प्राप्त होता है जैसे परछाईंविषे वैताल भ्रम होता है, तैसे नानात्वभ्रम चित्तविषे भासता है. हे रामजी ! जैसी जैसी वासनाको लेकरि चित्त स्थित होता है तैसा ही आकार निश्चय होइकरि भासता है. दाम, व्याल, कटका रूप चित्तके परिणामकरि विपर्यय होगया; तुमको भीम भास दृढका निश्चय होवै, दाम व्याल कटका- निश्चय मत होवै. हे रामजी ! यह वृत्तांत मुझको पूर्व ब्रह्माजीने कहाथा, सो मैंने अब तुमको कहा है, इस संसारविषे कोऊ विरला सुखी है, दुःखदशा अनेक हैं. जब तुम इस संसारकी भावना त्यागोगे, तब देहादिकविषे बंधमान न होहुगे, व्यवहारविषे भी आसक्तता न होवैगी.

इति श्रीयोवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशत्तमः सर्गः ३५.

उपशमवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! अविद्याकरि संसारकी ओर जो मन सन्मुख भया है, तिसको जिस पुरुषने जीता है वही सुखी है, वही शूरमा है, तिसहीकी जय है, यह संसार सर्व उपद्रवका देनेहारा है, इसका उपाय यही है कि, अपने मनको वश करना यह जो मेरा शास्त्र है, सो सर्व ज्ञानसंयुक्त है, इसको सुनिकै आप विचारै कि, यह जगत् क्या है ? ऐसे विचारिकै भोगते उपरांत होना अरु सत्स्वरूप आत्माका अभ्यास करना, जेती कछु भोग इच्छा है, सो बंधनका कारण है, इसके त्यागनेका नाम मोक्ष कहते हैं, और शास्त्रका सर्व विस्तार है, जो विषयभोग हैं, तिनको विषकी नाईं अरु अग्निकी नाईं जानै, जैसे विष अरु अग्नि नाशका कारण है, तैसे विषयभोग नाशका कारण है, ऐसे जानिकै इनका त्याग करै, वारंवार यही विचार करै कि, विषयभोग विषकी नाईं हैं, ऐसे विचारकरि चित्तसों त्यागैगा, तब सेवते हुए भी दुःखदायक न होवैंगे, जैसे मंत्रशक्तिसंपन्नको सर्प दुःखदायक नहीं होता, तैसे तिसको भोग

दुःखदायक नहीं होते, ताते संसारको सत् जानिके वासना फुरती है, सो दुःखका कारण है, जैसे पृथ्वीविषे जो बीज बोता है, सो ऊगता है, कटुकते कटुक उपजता है, मिष्टते मिष्ट उपजता है तैसे जिसकी बुद्धिविषे संसारभोग वासनारूपी बीज है, तिसते दुःखकी परंपरा उत्पन्न होती है, अरु जिस बुद्धिविषे शांतिकी शुभ वासना गर्भित होती है तिसते शुभ गुण वैराग्य, धैर्य, उदारता, शांतिरूप उत्पन्न होते हैं; अरु शुभ वासनाका अनुसंधान होवैगा, मन, बुद्धि, निर्मलभावको प्राप्त होवैंगे जब मन निर्मल हुआ, तब शनैःशनैःकारि अज्ञान नष्ट होजावैगा अरु सज्जनताकी वृद्धि होवैगी, जैसे शुक्लपक्षके चंद्रमाकी कला बढ़ती जाती है, जब इन शुभ गुणनकी परंपरा स्थित होती है, तब विवेक उत्पन्न होता है, तिसके प्रकाशकारि हृदयका मोहरूपी तम नष्ट होजाता है, जैसे सूर्य के उदय हुएते तम नष्ट होता है, तब धैर्य, उदारता, वृद्ध होते हैं; जब सत्संग अरु सच्छास्त्रके अभ्यासद्वारा इसविषे शुभगुण आनि उदय होते हैं, तब महाआनंदका कारण शीतल शांतिरूप प्रगट होता है, जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाकी कांति होती है, आनंददायक शीतलता पसरि जाती है, तैसे सत्संगरूपी वृक्षका फल इसको प्राप्त होता है. हे रामजी ! सत्संगरूपी वृक्ष है; तिसतें विवेकरूपी फल प्रगट होता है, तिस विवेकते समतारूपी अमृत स्रवता है, तिसकारि मन निर्द्वंद्व होजाता है, सर्व कामनाते रहित निरुपद्रव होता है, मनकी चपलता शोक अनर्थका कारण है; सो मनके अचल हुएते शांत होजाता है, शास्त्रके अर्थ धारणेकारि संदेह नष्ट होजाते हैं, नाना प्रकारके कल्पनाजाल शांत होजाते हैं, इससे जीवन्मुक्त अलेप होता है, कोई संसारका क्षोभ तिसको स्पर्श नहीं करता, निरिच्छित, निरुपस्थित, निर्लेप, निर्दुःख होता है शोकरूपकुहिडते रहित हुआ चित्त जड़ ग्रंथिसों मुक्त परमानंदरूप होता है, तृष्णारूपी सूत्रकी जालते जो पुरुष निकसि गया है, सोई शूरमा है अरु जिस पुरुषने तृष्णाको नष्ट नहीं किया, सो अनेक जन्म दुःखविषे पड़ा भ्रमता है; जब तृष्णा घटती है, तब मन भी सूक्ष्म होजाता है, जो भोगकी तृष्णा नष्ट हुई, तब मन भी नष्ट होजाता है. हे रामजी ! जैसे भले टहलुए

होते हैं, सो स्वामीके निमित्त रणविषे तृणवत् शरीरको त्यागते हैं, तिसकरि स्वामीकी जय होती है. जो दुष्ट हैं, सो नहीं त्यागते तिसकरि दुःखका कारण होते हैं, तैसे मनका उदय होना, जीवको दुःखका कारण है अरु मनका नष्ट होना सुखदायक है. ज्ञानवान्का मन नष्ट होजाता है, अज्ञानीका मन वृद्ध होता है, संपूर्ण जगच्चक्र मनोमात्र है यह पर्वतमंडल भी मनोमात्र है; स्थावरजंगमरूप जेता कछु जगत् है सो सब मनरूप है, मन किसको कहते हैं सो श्रवण कर. शुद्ध कला चिन्मात्रविषे जो चित्तकलाका फुरणा हुआ है अरु वही संवेदन संकलपविकलपके साथ मिलिकरि मलीन हुआ है; अरु स्वरूप विस्मरण भया है, तिसका नाम मन है सोई मन वासनाकरिकै संसार भागी होता है, जब चित्त संवेदन दृश्यके साथ मिलता है, तिससाथ तन्मय होनेकरि चित्तसंवित्का नाम जीव होता है, सो जीव दृश्य वर्गके साथ मिलिके संसारदशामें चलाजाता है, अनेक विस्तारको प्राप्त होता है अरु आत्मपुरुष जो है सो परब्रह्म है, संसारी नहीं, सो वह न रुधिर है, न मांस है, न शरीर है, शरीरादिक सर्व जडरूप हैं, आत्मा चैतन्य आकाशवत अलेप है, सो जब शरीरको भिन्नभिन्नकरि देखिये, तब रुधिर मांस अस्थिते इतर कछु नहीं निकसता, जैसे केलेके वृक्षको उधेलि देखिये, तौ पत्रते इतर कछु नहीं निकसता, तैसे मन ही जीव है, जीव ही मन है; मनते इतर आकार कोऊ नहीं, सर्व विकारभावको प्राप्त भया है. हे रामजी ! इस पुरुषको बन्धनका कारण अपनी कल्पना है, जैसे घुराण अपने यत्नकरि आप ही बंधनको प्राप्त होती है तैसे पुरुष अपनी वासनाकरि आप ही संसारबन्धनको पाता है, ताते भोगकी वासना मनते दूर करौ, संसारका बीज वासना ही है; जिस वासनासंयुक्त दिनविषे विचरता है, तैसा स्वप्न आता है; जैसी जैसी वासना होती है, तैसा तैसा पुण्य पाप अनुसार परलोक भासता है. अपनी वासनाकरि जगत भास आता है; जैसे अन्न जिस द्रव्य स्वादके साथ मिलता है, तैसा भासता है. मिष्टसाथ मिष्ट, खट्टासाथ खट्टा; कटुके साथ कटुक होता है, तैसे जैसी वासना जिसके हृदयविषे दृढ होती है, तैसे हो भासती है,

जैसे बड़ा पुण्यवान् होता है, तिसको स्वप्नविषे अपनी इंद्रकी मूर्ति भासती है, नीचको नीच मूर्ति भासती है, भूतके संगीको भूतादिक भास आता है, तैसे वासनाके अनुसार परलोक भासि आता है, जब मनविषे निर्मल भाव स्थित होता है, तब मनकी कल्पना पापवासना मिटि जाती है अरु जब मनविषे मलिन वासना बढती है, तब निर्मलता नहीं भासती, वहीरूप फल प्राप्त होता है, ताते दुर्वासना कलंकको त्यागिकै पूर्णमासीके चंद्रमावत् विराजमान होहु; यह संसार भ्रांतिमात्र है, सत्‌रूप नहीं, अज्ञानकरिकै भेदविकार भासते हैं; वास्तवते न कोऊ बंध है; न मोक्ष है, न कोऊ बन्ध करनेहारा है, सर्व यह इंद्रजालकी नाईं मिथ्याभ्रम भासते हैं. जैसे गंधर्वनगर मिथ्या होता है, जैसे मृगतृष्णाका जल भासता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, सो असत्‌रूप है, तैसे यह जगत् असत्‌रूप है, जीवको अज्ञानकरिकै ऐसा निश्चय हो रहा है कि, मैं अनंत आत्मा नहीं, मैं लघु नीच हौं जब इस निश्चयका अभाव होवै अरु आपको अनंत आत्मा निश्चयकरि जानै, सो प्रथम इसका अभ्यास करै, तब हृदयविषे स्थित होवै, इस निश्चयकरि उस नीच निश्चयका अभाव होता है, सर्व जगत् स्वच्छ निर्मल आत्मा है तिसविषे जिसको देहादिक भावना हुई है तिसको लोकविषे बंधन होता है, अपने संकल्पकरि आप ही शुककी नाईं बन्धनमें आता है अरु जिसको स्वरूपविषे भावना होती है तिसको मोक्ष भासता है, आत्मसत्ता मोक्ष अरु बन्ध दोनोंते रहित है एक अरु द्वैतते रहित अद्वैत ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है. जब मन निर्मल होता है, तब इस प्रकार भासता है, किसी पदार्थविषे बन्धमान नहीं होता, जब मनभावते रहित अमन होता है, तब ब्रह्मसत्ताको देखता है, अन्यथा नहीं देखता. जब वैराग्य अरु अभ्यासरूपी जलकरि मनको निर्मल भाव होता है, तब ब्रह्मज्ञानरूपी रंग चढि जाता है, सर्व आत्मा ही भासता है, जब सर्वात्मभावना हुई तब ग्रहणत्यागकी वृत्ति नष्ट होजाती है, बन्ध मोक्ष भी नहीं रहता, जब मनके कषाय परिपक्व होते हैं. अर्थ यह जो भोगकी सूक्ष्म वासनाते मुक्त होता है, सच्छास्त्रके विचार-

कारि वैराग्यके क्रमते बुद्धिविषे वैराग्य उपजा है, तब परमबोधको प्राप्त होता है, और कमलकी नाईं बुद्धि खिलि आती है. मनकारि सर्व पदार्थ रचे हैं, तिनसों मिलिकारि तद्रूप होजाता है, तिसका नाम असम्यक्‌ज्ञान है, जब सम्यक् दृष्टि होती है; तब तिसका तत्काल नाश करता है, जब अंतरबाहिर दृश्यका त्याग करता है अरु मन सद्भावविषे स्थित होता है, तब परमपदको प्राप्त हुआ कहाता है. हे रामजी ! यह द्रष्टा अरु दृश्य जो स्पष्ट भासते हैं, सो असत् हैं, तिस असत्के साथ तन्मय होजाना. यह मनका रूप है. जो पदार्थ आदि अंतविषे न होवै अरु मध्यविषे भासै तिसको असत्‌रूप जानिये. सो यह दृश्य आदिविषे भी नहीं उपजा अरु अंतविषे भी नहीं रहता, मध्यविषे जो भासता है, सो असत्‌रूप है, अज्ञानकरिकै जिनको सत् भासता है, तिनको दुःखकी प्राप्ति है, आत्मभावना विना दुःखनिवृत्ति नहीं होती, जब दृश्यविषे आत्मभावना होती है, तब दृश्य भी मोक्षदायक होजाता है. जल और है, तरंग और हैं, यह अज्ञानीका निश्चय है, जल अरु तरंग एकहीरूप हैं, यह ज्ञानीका निश्चय है, तैसे नानारूप जगत् अज्ञानीको भासता है, तिसकारि दुःख पाता है, ग्रहण अरु त्यागकी बुद्धिविषे पड़ा भटकता है अरु ज्ञानीको सर्व आत्मा भासता है, भेदभावनाते रहित अंतर्मुख सुखी होता है. हे रामजी ! नानात्व है, सो मनके फुरणेकारि रचा है अरु मनका रूप है, अपने संकल्पबलका नाम मन है, सो असत्‌रूप है, जो असत् विनाशीरूप है, तिसको सत् माननेकारि क्लेश होता है; जैसे किसीका बांधव परदेशते आता है अरु उसको पहँचानता नहीं, दृष्टि आता है अरु तिसविषे राग नहीं होता जब उसविषे अपनेकी भावना करता है, तब राग भी होता है, तैसे जब आत्माविषे अहंप्रतीति होती है अरु देहादिकविषे नहीं होती, तब देहादिक सुख दुःखस्पर्श नहीं करते. जब देहादिकविषे भावना होती है, तब स्पर्श करते हैं. हे रामजी ! शिवतत्त्वका ज्ञान होवै, तब दुःख कोऊ नहीं रहता, सो कैसा शिव है कि, द्रष्टा अरु दृश्यके मध्यविषे व्यापक है; तिसविषे स्थित हुएते मन शांत होजाता है, जैसे वायुते रहित धूर उडनेसों रहिजाती है; तैसे मनके शांत हुएते देह-

रूपी धूर शांत होजाती है, बहुरि संसाररूपी कुहिड नहीं रहती. वर्षाऋतुरूपी वासना क्षीण होजाती है तब जाना नहीं जाता कि, जड़तारूपी वल्ली कहां गई ? जब अज्ञानरूपी मेघ शांत हुआ, तब तृष्णारूपी वल्ली सूख जाती है, हृदयरूपी पवनसों मोहरूपी कुहिड नष्ट होजाती है जैसे प्रातःकाल हुएते रात्रि नष्ट होजाती है. अज्ञानरूपी मेघके क्षीण हुएते देहाभिमानरूपी जडता जानी नहीं जाती कि, कहां गई, जबलग अज्ञानरूपी मेघ गर्जता है तबलग संकल्परूपी मोर नृत्य करते हैं, जब अहंकाररूपी मेघ नष्ट होजाता है; तब परमनिर्मल चिदाकाश आत्मरूपी सूर्य स्वच्छ प्रकाशता है. जब मोहरूपी वर्षाकालका अभाव भया, तब ज्ञानरूपी शरत्कालविषे दिशा निर्मल होजाती है, आत्मारूपी चंद्रमा शीतल चाँदनीसों प्रकाशता है, सो सर्व संपदाका देनेहारा है, परमानंदकी प्राप्ति करनेहारा है जब प्रथम शुभ गुणकरि विवेकरूपी बीज संचित होता है, सो शुभ मन सर्व संपदाके देनेहारा परमानंद अति सफल भूमिको प्राप्त होता है, तिस विवेकी पुरुषको वन पर्वत चतुर्दश भुवन सर्व आत्मा ही प्रकाशता है,सो निर्मलते निर्मल शीतलते शीतल भावनाविषे भासता है. हृदयरूपी तालाब अति विस्तारवान् होता है, स्फटिक मणिवत् उज्ज्वल स्वच्छ जलकरि पूर्ण होता है तिसविषे धैर्य उदारतारूपी कमल विराजते हैं, तिस हृदयरूपी कमलपर अहंकाररूपी भँवरा विचरता है, सो नष्ट होजाता है, बहुरि नहीं उपजता; जो पुरुष निरपेक्ष सर्वते श्रेष्ठ निर्वासनिक शांतमन अपने देहरूपी नगरविषे विराजमान ईश्वर होता है. जिसको आत्मप्रकाश उदय हुआ है तिस बोधवान्का मन अत्यंत गलि जाता है,भय आदिक विकार नष्ट होजाते हैं, देहरूपी नगरविषे विगतज्वर होके विराजमान होता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे उपशमरूपवर्णनं नाम पंचत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशत्तमः सर्गः ३६.

चिदात्मरूपवर्णनम्।

राम उवाच-हे ब्रह्मन्! आत्मा चैतन्यरूप है अरु विश्वते अतीत है, तिस चिदात्माविषे विश्व कैसे उत्पन्न भया? बोधकी वृद्धिके निमित्त बहुरि मुझको कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जैसे सौम्यजलविषे तरंग अव्यक्तरूप होते हैं, परंतु त्रिकालदर्शीको तिनका सद्भाव नहीं भासता, तिनका रूप दृष्टमात्र होता है तैसे आत्माविषे जगत् संकल्पमात्र होता है जैसे आकाश सर्वगत है, परंतु सूक्ष्म भावकारि लखनेविषे नहीं आता है, तैसे आत्मा निरंश, निराकार, सर्वगत, सर्वव्यापक है, परंतु लखा नहीं जाता, अव्यक्त अच्युतरूप है, तिस आत्माविषे जगत् ऐसे है, जैसे कोऊ स्तंभ मणिरूप होवै, तिसविषे शिल्पी कल्पता है कि, एती पुतलियां इसविषे हैं, सो क्यों हैं, शिल्पीके मनविषे अन होती फुरती है, तैसे यह जगत् आत्माविषे मनरूपी शिल्पीने कल्पा है, सो आत्माके आधार है, आत्माके आशय आत्माविषे स्थित है अरु आत्मा कदाचित् इसके साथ स्पर्श नहीं करता, जैसे मेघ आकाशके आश्रय आकाशविषे स्थित होता है, परंतु आकाश तिसके साथ स्पर्श नहीं करता तैसे आत्मा अस्पर्श है; अरु सर्वत्र पूर्ण है, परंतु पुर्यष्टकरूप हृदयविषे भासता है,जैसे सूर्यका प्रकाश सब ठौर व्यापक है, परंतु जलविषे प्रतिबिंब भासता है, पृथ्वी काष्ठविषे प्रतिबिंब नहीं भासता तैसे आत्माका देह इंद्रियों प्राणविषे प्रतिबिंब नहीं होता, हृदय पुर्यष्टकविषे भासता है, सो आत्मा सर्व संकल्पते रहित है, सर्व संगते रहित स्वरूप तिसको ज्ञनवान् पुरुष उपदेशके निमित्त चैतन्य अविनाशी आत्मा ब्रह्मादिक संगीकारि कहते हैं; सो आकाशते भी सूक्ष्म निर्मल है. आकाश कलंकित है, आत्मा आभास करिकै जगतरूप हो भासता है, और जगत् कछु वस्तु नहीं जैसे जल द्रवताकारिकै तरंगरूप हो भासता है परंतु तरंग कछु भिन्न वस्तु नहीं तैसे आत्माते व्यतिरेक जगत् नहीं चैतन्यसत्ता चेत्यता फुरनेकारि जगत्रूप हो भासते हैं, परंतु जगत् कछु वस्तु नहीं,

जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनको तौ एक आत्मा ही भासता है अरु अज्ञानीको नानाप्रकार जगत् भासता है और जगत् कछु वस्तु नहीं, केवल आत्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, अनुभव स्वभावकरिकै प्रकाशता है, सूर्य आदिक सर्वको प्रकाशनेहारा है, सर्व स्वादका स्वाद वही है, सर्व भाव तिसहीकरि सिद्ध होते हैं सो सत्ता उदय अस्तते रहित है, अरु चलने अचलनेते रहित है सो न लेत है, न देत है, अपने आपविषे स्थित है, जैसे अग्निका समूह लाटारूप हो भासता है, जलका समूह तरंगरूप हो भासता है, तैसे आत्मसत्ता जगत्‌रूप हो भासती है अपने संवेदन फुरनेकरि नाना प्रकारके संकल्पसों विपर्ययरूप देखता है, यह पदार्थ है, यह मैं हौं, यह अपर है इत्यादिक भावनाको प्राप्त होता है. जब अपने आपको जानता है तब अज्ञानभ्रम नष्ट होजाता है, जैसे वृक्षविषे बीजसत्ता है, सो परिणामकरि आकारके आश्रयसों बढती जाती है, तैसे आत्मसत्ताविषे चित्तसंवेदन फुरता है, फुरनारूपी रसविपरिणामके आत्मसत्ताके आश्रय विस्तारको प्राप्त होता है, सो संकल्परूप है, तिसविषे जगत्‌की दृढता है, जैसे संवेदन फुरता है, तैसे स्थित होता है, तिसविषे नीति हुई है, कि यह पदार्थ इस प्रकार होवै, सो तैसे स्थित है, अन्यथा नहीं होता. वसंत ऋतुविषे रस अति विस्तारको पाता है, कार्तिकविषे धान्य उपजते हैं; हिमऋतुविषे जल पाषाणरूप होजाता है, अग्निउष्ण है; बर्फ शीतल है, इत्यादिक जेते पदार्थ रचे हैं, तैसे ही महाप्रलयपर्यंत स्थित हैं, अन्यथाभावको नहीं प्राप्त होते. जगत्‌विषे चतुर्दश प्रकारके भूतजात हैं तिनविषे जिनको आत्मज्ञान प्राप्त होता है, सो शांतिरूप आत्माको पायके आनंदवान् होते हैं अरु जिनको प्रमाद है, सो पडे भटकते हैं, जन्म मरणको प्राप्त होते हैं, जैसे जैसे कर्म करते हैं, तैसी तैसी गतिको पाते हैं, आवागमनमें भटकते भटकते यमके मुखविषे जाय पडते हैं जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिकरि लय होजाते हैं तैसे जन्मि जन्मि मर जाते हैं, उन्मत्तकी नाईं प्रमादी पड़े भ्रमते हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे चिदात्मरूपवर्णनं नाम षट्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ३७.

शांत्युपदेशकरणम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! इस प्रकार जगत्की स्थिति है; सो सर्व चंचल आकार विपरिणामरूप है, जैसे समुद्रविषे तरंग चंचलरूप होते हैं तैसे जगत्की गति चंचल है, आत्माते जगत् उपजता है, सो स्वतः होता है, किसी कारणकारि नहीं होता पाछे कारणकार्यभाव होजाता है, सोई चित्तविषे दृढ हो भासता है, आत्माविषे यह कोऊ नहीं. जैसे स्वाभाविक जलते तरंग उठिकारि लय होजाते हैं, तैसे आत्माते स्वाभाविक जगत् उपजिके लय होते हैं. जैसे ग्रीष्म ऋतुविषे ताप कारि मरुस्थल जलकी नाईं स्पष्ट भासता है अरु है कछु नहीं. जैसे मदकारि मत्त पुरुष आपको औरका और जानता कहता है, तैसे यह पुरुष आत्मरूप है. चित्तकारि आपको देवता मनुष्य आदिक शरीर जानते अरु कहते हैं. हे रामजी! यह जगत् आत्माविषे न सत् है, न असत् है, जैसे स्वर्णविषे भूषण हैं, तैसे मूढ जीव आपको आकार मानते हैं, ताते तुम दृश्यको त्यागिकै द्रष्टाविषे स्थित होवौ जिसकारि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, आदिक सर्वको जानता है, तिसको आत्मब्रह्म जान, जो सर्वविषे पूर्ण स्थित है, स्वच्छ, निर्मल आत्मसत्ताविषे एक द्वैतकल्पना कछु नहीं. जबलग आत्माते इतर कछु वस्तु भासती है, तबलग वासना तिसकी ओर धावती है. हे रामजी! आत्माते व्यतिरेक कछु सिद्ध नहीं होता जब ऐसे भासै तब किसकी वांछा करै, किसका अनुसंधान करै, अरु ग्रहण त्याग किसका करै? आत्माको ईप्सित अनीप्सित इष्ट अनिष्ट आदिक विकार विकल्प कोई स्पर्श नहीं करते. कर्त्ता कारण कर्म तीनोंकी एकता है, न कोऊ आधार है, न आधेय है, द्वैतकल्पनाका असंभव है, अहं त्वम् आदिक कछु नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है, ऐसे जानि सर्वदा निर्द्वंद्व होइकारि सर्व संतापते रहित कार्यविषे प्रवृत्त होहु; पूर्व जो तुमने कछु किया अरु नहीं किया, तिस करने न करनेकारि तुमको क्या सिद्ध हुआ है अरु

क्या पद पाने योग्य पाया है, और भूतकी गिनतीविषे क्या बात है, तुम आपको हृदयविषे अकर्त्ता भावना करहु अरु बाहिरते इंद्रियोंकरि जगत्के कार्य करहु, जब स्थिरतारूप समुद्रविषे तुम्हारी वृत्ति धैर्यवाली होवैगी, तब शांत आत्मा होवोगे. दृश्य जगतविषे तौ दूरते दूर भी गये, परन्तु अंतरते शांति नहीं होती, जहां जावै तहां भावै तैसा पदार्थ पानेका यत्न करै, तिसके पायेते भी शांति प्राप्त न होवैगी. सर्व दृश्य जगत्के पदार्थकरि त्यागकरि जो शेष अपना स्वरूप रहता है, सो चिदात्मा है, तिसविषे स्थित हुएते शांति प्राप्त होवैगी.

इति श्रीयोगवासिष्ठ स्थितिप्रकरणे शांत्युपदेशकरणं नाम सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ३८.

मोक्षोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इस प्रकार ज्ञानी पुरुष है, तिसविषे कर्तव्यभाव भी दृष्टि आता है, यज्ञादिक सर्व करता है, हिंसादिक तामसी कर्म भी दृष्टि आते हैं, तौ भी स्वरूपके ज्ञानकरि वह अकर्ता ही है; कदाचित् कछु नहीं किया अरु जो मूढ अज्ञानी हैं, सो जैसा कर्म करते हैं, तैसा फल भोगते हैं. कर्तव्य किसका नाम है, सो श्रवण करहु. मनविषे सत्य जानिके जिस पदार्थके ग्रहणकी इच्छा करता है, सो फुरणा वासनारूप होती है, तिस सद्भाव फुरनेका नाम कर्तव्य है, तिस चेष्टाते फलकी प्राप्ति होती है, जिस पदार्थको सत् जानिकै वासना फुरती हैं तिसका अनुभव होता है. शरीर करै अथवा न करै, जैसी वासना मनविषे दृढ होती है, शुभ अथवा अशुभ, तिसके अनुसार दृश्यको भासि आता है, शुभकरिकै स्वर्ग भासता है, अशुभकरिकै नरक भासता है, जिस पुरुषको आत्माका ज्ञान है, यद्यपि प्रत्यक्ष अकर्ता है, तौ भी अनेक कर्मके फलको अनुभव करते हैं, अरु जो ज्ञानवान् हैं, तिनके हृदयविषे पदार्थका सद्भाव अरु वासना दोनों नहीं, इस कारणते

तिनविषे कर्तव्यका अभाव है यद्यपि करते हैं, तौ भी कर्तव्यके फलको नहीं प्राप्त होते; संसारको असत्य जानते हैं. केवल शरीरके स्पंदमात्र उनका कर्म है, हृदयविषे बंधमान नहीं होते, पूर्वके प्रारब्धकरिकै सुख दुःख फल तिनको भी प्राप्त होता है, परंतु आत्माते भिन्न तिसको नहीं जानते, सर्व ब्रह्म ही देखते हैं, अरु जो अज्ञानी है सो अवयवके स्पंदविषे आपको कर्त्ता मानता है, तिसके अनुसार सुखदुःख भोगता है, मोहको प्राप्त होता है,जिनका मन अनात्मभावविषे मग्न है वे अकर्त्ता हुए भी कर्त्ता होते हैं, मनते रहित केवल शरीरकारि किया है सो किया भी न किया है, ताते मन करता है, शरीर कछु नहीं करता, यह जगत् सब मनते उपजा है, अरु मनरूप है, मनहीकारि स्थित है, जिसका मन अमनभावको प्राप्त भया है, तिसको सर्व शांतिरूप है. जैसे तीक्ष्ण धूपकारि मृगतृष्णाकी नदी भासती है, जब वर्षा होती है, तब शांत होजाती है. तैसे जब आत्मज्ञान होता है, तब यह जगत् सब शांत होजाता है, संसारके सुख दुःख तिसको स्पर्श नहीं करते,न वह चंचल है,न सत्य है,न असत्य है; सर्व विकारते रहित शांतिरूप है संसारकी वासनाविषे नहीं डूबता,अज्ञानी है सो डूबता है;तिसका मन संसारभ्रमविषे मग्न रहता है, सदा पड़ा पदार्थकी तृष्णा करता है, ज्ञानी नहीं करता. हे रामजी ! और दृष्टांतकरिकै श्रवण कर कि, आज्ञानीको अकर्तव्यविषे कर्तव्य है अरु ज्ञानीको कर्तव्य विषे अकर्तव्य है, जैसे एक पुरुष शय्याके ऊपर शयनकारि रहा है अरु स्वप्नविषे गिरा दुःख पाता है, सो अकर्तव्यविषे कर्तव्य भया, अरु एक गर्तविषे गिरा है, अरु उसका मन समाधिविषे स्थित है,सो उसको सब शांतरूप है,सो कर्तव्यविषे अकर्तव्य भया; क्योंकि शय्यापर सोया था, तिसका मन चलता था ताते अकर्तव्यविषे उसको कर्तव्य भया, दुःखका अनुभव करने लगा; दूसरेको सुखका अनुभव भया ताते यह निश्चय हुआ कि, जैसा मन होता है, तैसी सिद्धताको प्राप्त होता है, तुम भी असंसक्त होइकारि कर्म करौ,तब अकर्ता हि रहोगे जेता कछु जगत् भासता है, सो आत्माते व्यतिरेक कछु नहीं, जिसको यह निश्चय होता है; तिस ज्ञानवान्को सुख दुःख स्पर्श नहीं करते. आधार, आधेय, द्रष्टा,

दर्शन, दृश्य, इच्छा आत्माते भिन्न कछु नहीं भासता. जब इसको ऐसे निश्चय होता है, कि मैं देह नहीं, सर्व पदार्थनते व्यतिरेक बालके अग्रते सौवाँ भाग सूक्ष्म हौं, अथवा जो कछु दृश्य जगत् है,सो सर्व मैं ही हौं, सर्वतत्त्वका प्रकाशक हौं; सर्वव्यापी हौं; यह निश्चयकरि तिसको सुखदुःखका क्षोभ नहीं होता, विगतज्वर होइकरि स्थित होता है, यद्यपि दुःख संकट ज्ञानवान्को आय प्राप्त होता है, तौ भी उसको नहीं भासता, परमानंदकरि आनन्दवान् लीलामात्र विचरता है; जैसे चंद्रमाकी चांदनी शीतल प्रकाशती है तैसे वह पुरुष शीतल प्रकाशवान् होता है तिसको न चिंता होती है, न कोऊ दुःख होता है, शांतरूप कर्मको कर्त्ता भी अकर्ता है, मनकरि सदा अलेप रहता है. हे रामजी ! हस्तपादादिक इंद्रियोंकरि कर्त्ताका नाम कर्म नहीं, मनके करनेका नाम कर्म है, मन ही सर्व कर्मका कर्त्ता है,अहं त्वं सब भाव,सब लोकका बीज सर्वगत मन है, जब मन नाश होवै तब सब कर्म नष्ट होजाता है, सब दुःख मिटि जाते हैं, जैसे बालक मनकरि नगर रचै, बहुरि लीनकरि लेवै तिसको उपजाने लीन करनेविषे हर्ष शोक कछु नहीं होता; तैसे परमार्थदर्शीको किसी कर्मका लेप नहीं होता, कर्त्ता हुआ कुछ नहीं करता, तिसविषे कर्तव्य भोक्तव्य सुखदुःख अज्ञान मोहकरिकै अध्यारोप करते हैं अरु कछु नहीं, ज्ञानवान्को बंध मोक्ष सुखदुःख कछु नहीं भासता, क्यों कि वह असंसक्त मन है, अरु जिसका मन आसक्त है, तिसको नाना दृश्य भासता है; ज्ञानवान्को केवल आत्मसत्ता भासती है, एक द्वैतकलनाते रहित है, जैसे जलते तरंग भिन्न नहीं होता तैसे आत्माते जगत् भिन्न नहीं, न कोऊ बंध है, न कोऊ मोक्ष है, न कोऊ बँधने योग्य है, अज्ञान दृष्टिकरि दुःख है, बोध करिकै लीन होजाते हैं, बंध अरु मोक्ष संकल्पकरि कल्पित मिथ्यारूप हैं, तुम इस मिथ्या कल्पना अनात्म अहंकारको त्यागो आत्मविषे निश्चय करहु, धैर्य बुद्धिमान् होकरि प्रकृत आचारको करहु तब स्पर्श कछु न करैगा.

इति श्रीयोग० स्थितिप्रकरणे मोक्षोपदेशवर्णनं नाम अष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः ३९.

सर्वैकताप्रतिपादनम्।

राम उवाच-हे भगवन्! सत् चित् आनन्द अद्वैत निर्विकार आदिक गुणकरि संपन्न जो ब्रह्मतत्त्व है, तिसविषे जो अविद्यावान् जगत् अविद्या विचित्र कहांते आई है? वसिष्ठ उवाच-हे राजपुत्र! यह संपूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्मसत्ता सब शक्ति है, इस कारणते दृश्यरूप होइकारि स्थित भई है, सत्य असत्य एक अद्वैत आदिक विश्वरूप भासता है, सो स्वरूपते ऐसे है, जैसे जलविषे जल उल्लासरूप नानाप्रकारके तरंग बुद्बुदे आवर्त आकार हो भासता है; तौ भी जल एकरूप है, तैसे चिद्घनविषे चिद्घन सब शक्ति सबरूप होकारि फुरता है, कहूं कर्मरूप, कहूं वाणीरूप, कहूं गूंगेरूप, कहूं मनरूप, कहूं भरण पोषण नाश कारण होता है, सब पदार्थ का बीज उत्पत्तिकर्ता ब्रह्मसत्ता है, जैसे समुद्रते तरंग उपजिकारि तिसीविषे लय होते हैं, तैसे सब पदार्थ उपजिकारि ब्रह्मविषे लय होते हैं. राम उवाच-हे भगवन्! यह तुम्हारे वचनका उच्चार प्रगट है, तौ भी कठिन अतिगंभीर है, इनका तोल नहीं पाया जाता, ताते अतोल हैं, इनका यथार्थभाव मैं पाय नहीं सकता, मनसंयुक्त षट् इंद्रियोंकी वृत्तिते रहित स्वरूप अरु सर्व पदार्थकी रचनाते रहित है, सो कहां अरु जगत् कहां जो पदार्थ जिसते उपजता है, सो वहीरूप होता है, जैसे दीपकते उपजा दीपक होता है, मनुष्यते मनुष्य अरु अग्निते अग्नि होता है, इस प्रकार कारणते जो कार्य उपजता है, सो तिसीके सदृश होता है, तैसे जो निर्विकार आत्माते जगत् उपजा है, सो जगत् भी निर्विकार चाहिये, सो तौ ऐसे नहीं, आत्मा निर्विकार शांतरूप है अरु जगत् विकारी दुःखरूप हैं, तिसते कलंकरूप जगत् कैसे उपजा है? वाल्मीकिरुवाच-जब इस प्रकार रामजीने कहा तब ब्रह्मऋषि वसिष्ठजी बोलत भया. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! यह सब जगत् ब्रह्मरूप है, नानाप्रकार मलिनरूप संसार भासता है, सो मलिनता नहीं; जैसे तरंगके समूह समुद्रविषे फुरते हैं, सो मलिनता धूलि नहीं, वही-

रूप है, तैसे आत्माविषे जगत् कछु कलंक नहीं वहीरूप है, जैसे अग्निविषे उष्णता अग्निरूप है, तैसे आत्माविषे जगत् आत्मरूप है, इतर नहीं. राम उवाच–हे ब्रह्मन् ! निर्दुःख निर्धर्मते जो जगत् दुःखरूप उपजा सो यह कलंक है, यह जो तुम्हारे वचन हैं, सो आकाशरूप हैं, सो मेरे ताईं अस्पष्ट भासते हैं, मैं इनको जानि नहीं सकता । वाल्मीकिरुवाच–हे पुत्र ! जब इस प्रकार रामजीने कहा, तब मुनिशार्दूल वसिष्ठजी विचारते भये कि; अभी इसकी बुद्धि परमप्रकाशको प्राप्त नहीं भई, कछुक निर्मलभावको प्राप्त भई है, पदार्थ भूमिकाको जानता भया है, अरु परमार्थवेत्ता नहीं भया, जिसको परमार्थबोध प्राप्त भया है, अरु मन शांत हुआ है, ऐसा जो ज्ञातज्ञेय पुरुष है, सो मोक्ष उपायकी बाणीके पारको प्राप्त होता है, संसाररूपी अविद्यामल उसको नहीं भासता; केवल अद्वैतसत्ता भासती है. जबलग और उपदेश रामजीको न करौं, तबलग इसको विश्राम ही नहीं होवैगा, जो अर्धप्रबुद्ध है, तिसको सब ब्रह्म कहना नहीं शोभता. काहेते कि, चित्त उसका भोगते सर्वथा व्यतिरेक नहीं भया, सर्व ब्रह्मके वचन सुनिकै भोगविषे आसक्त होवैगा, सो नाशका कारण है, तिसकरि नाश होवैगा अरु जिसको परम दृष्टि प्राप्त हुई है, तिसको भोगकी इच्छा नहीं उपजती, ताते सर्व ब्रह्मका कहना रामजीको सिद्धांत कालविषे शोभैगा. प्रथम गुरुको शिष्यप्रति सर्व ब्रह्म कहना नहीं बनता. प्रथम शम, दम, आदिक गुणकरि शिष्यको शुद्ध करे, पाछे सर्व ब्रह्म शुद्ध तू है, ऐसे उपदेश करै, तिसकरि जाग उठता है अरु जो अज्ञानी अर्धप्रबुद्ध है, तिसको ऐसे कहना कि, जो सर्व ब्रह्म तू है, सो ऐसा उपदेश करनेवाला गुरु उसको महानरकविषे जोडता है. जो प्रबुद्ध है, तिसकी भोगकी इच्छा क्षीण होजाती है वह निष्काम पुरुष है, तिसको अविद्यारूपी मल नहीं रहता, तिसको कहना नहीं बनता है. इस प्रकार विचारिकरि अज्ञानरूपी तमके नाशकर्त्ता ज्ञानके सूर्य मुनि वसिष्ठजी भगवान् रामजीके प्रति कहत भये. वसिष्ठ उवाच–हे राघव ! कलनारूप कलंक ब्रह्मविषे है अरु नहीं, यह मैं तुझको सिद्धांत कालविषे कहौंगा, अथवा तू आप ही जानैगा, ब्रह्मसत्ता सर्वशक्तिरूप सर्वव्यापक सर्वगत

है, सब तिसीकरि रचे हैं, जैसे इंद्रजाली विचित्र शक्तिकरि अनेकरूप रचता है, सत्यको असत्य अरु असत्यको सत्य करि दिखावता है, तैसे आत्मा मायावी परम इंद्रजाली अघटघटना है. अर्थ यह कि, जो न बनैं तिसको बनावै, यह तिसकी शक्ति है, जो पहाड़को गढ़ेला करती है अरु वल्लीविषे पाषाण लगते हैं, पाषाणविषे वल्ली लगती है, वनकी पृथ्वीको आकाश करती है, आकाशको पृथ्वी करती है अरु वृक्षवल्लीमें पाषाण लगते हैं अरु आकाशविषे वन लगते हैं, जैसे गंधर्वनगर आकाशमें भासता है अरु वनको आकाश करती है, जैसे पुरुषकी छाया आकाश होजाती है, आकाशको पृथ्वीभाव प्राप्त करती है, जैसे रत्नकी कंदरा पृथ्वीपर होवै, तिसविषे आकाशका प्रतिबिंब पडता है . हे रामजी ! यह विचित्ररूप दृश्य तुझको कहा है, सो शुद्ध व्यक्त तत्त्व अचैत्य चिन्मात्रविषे जो चेतनताका लक्षण जानना है, तिसकरि रची है, सो कैसी रची है, वही चित्तसंवेदन फुरनेकरि जगत्‌रूप हो भासता है, ताते सब प्रकार सबरूप वही है, जो एकरूप अविद्यमान है, हर्ष, शोक आश्चर्य किसकी नाईं किसका मानिये, यह अन्यथा कोऊ नहीं, सब एकरूप है, इसी कारणते हमको समताभाव रहता है; हर्ष, शोक, आश्चर्य, मोह हमको नहीं प्राप्त होता, ममता अरु चपलता आदिक विकार कोई नहीं होता, कदाचित् हम जानते ही नहीं, देश काल वस्तु यह जगत् अवसानको प्राप्त हो भासते हैं, तिनका विपर्यय होना भी भासता है अरु वह अपने स्वभावविषे स्थित हैं, काहेते कि यह दृश्य उनको अपने स्वरूपका आभास फुरता भासता है, जेता कछु दृश्य प्रपंच है, सो सत्य चित्तसंवित् की स्पंदकलाकरिकै फुरता है, नाना प्रकार देश, काल, क्रिया, द्रव्य होकरि भासते हैं, तिसको आत्मसत्ता किसी यत्नकरि नहीं रचती, स्वाभाविक फुरनेकरि पडे फुरते हैं, जैसे समुद्र तरंगको यत्नकरि नहीं उपजाता अरु लीन करता, स्वाभाविक चमत्कार फुरता अरु लीन होता है, तैसे आत्माविषे स्वाभाविक सृष्टि फुरती है अरु लय होती है, जैसे समुद्र अरु तरंगविषे कछु भेद नहीं, तैसे आत्मा अरु जगत्‌विषे कछु भेद नहीं वहीरूप है, जैसे दूध घृतरूप

है, जैसे घट पृथ्वीरूप है,जैसे पट तंतुरूप होता है, तैसे जगत् आत्मरूप है, जैसे वट धान्य वृक्षरूप हो भासता है, जैसे समुद्र तरंगरूप हो भासता है, तैसे आत्मा जगत्रूप हो भासता है. हे रामजी! इस दृष्टांतका एक अंग लेना है, कारणकार्यभावको लेना नहीं. आत्माविषे न कोऊ कर्ता है, न कोऊ भोक्ता है, न कोऊ विनाशको प्राप्त होता है, केवल आत्मतत्त्व साक्षी निरामय अद्भुत अपने आप स्वभावसत्ताविषे स्थित है, यह जगत् आत्माका प्रकाश है, जैसे दीपकका प्रकाश स्वभाव है, सूर्यका प्रकाश स्वभाव है, पुष्पका सुगंध स्वभाव है, तैसे आत्माका स्वभाव जगत् है, किसी कारणकार्यकरि नहीं भया. जगत् आत्माका स्वभाव आभासरूप है, आत्माते इतर कछु नहीं हुआ, जैसे पवनका स्वभाव स्पंदरूप है. सो जब निस्पंद होता है, तब नहीं भासता अरु स्पंदकरि भासता है, तैसे आत्माविषे संवेदन फुरता है, तब जगत् हो भासता है, जब लय होता है, तब जगत् नहीं भासता अरु जगत् कछु है नहीं, न सत् है न असत् है, कहूं जगत् प्रगट भासता है, कहूं अप्रगट भासता, है अरु नानाप्रकारका विचित्ररूप भासता है. जैसे वनविषे पुष्पका रस होता है, तिनके उपजने अरु नष्ट होनेकरि न वन उपजता है, न नष्ट हो-जाता है, तैसे आत्मसत्ता जगत्के उपजने अरु नष्ट होनेते रहित है अरु वास्तवते उपजा कछु नहीं, ताते आत्मा ही अपने आपविषे स्थित है असम्यक् ज्ञानकरि जगत् भासता है, अनंत शाखा करि पसर रहा है, इसको ज्ञानरूपी कुठारसे काटौ तब सुखी होवो, जगत्रूपी वृक्ष है, असम्यक् ज्ञान इसका बीज है, शुभ अशुभरूपी फूल हैं, आशारूपी वल्लीकरि वेष्टित है, दुःखरूपी शाखा हैं अरु भोगजरारूपी फल हैं, तृष्णारूपी लताकरि धूसर भासते हैं, ऐसा जो संसाररूपी वृक्ष है, तिसको आत्मविवेकरूपी कुठारसे यत्नकरिकै काटके मुक्त होहु. जैसे गजपति अपने बलसों बंधन तोडिकरि सुखचैन विचरता है, तैसे तुम निर्बंध होइकरि विचरौ.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे सर्वैकताप्रतिपादनं नाम एकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४०.

ब्रह्मप्रतिपादनम्।

राम उवाच-हे भगवन्! यह ये जो जीव हैं, सो ब्रह्मते कैसे उत्पन्न हुए हैं अरु केतेक हुए हैं, सो मुझको विस्तार करिकै कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे महाबाहो! जैसे ये विचित्रताते उपजते हैं अरु नाश होते हैं, बढते हैं अरु स्थित होते हैं, सो क्रम सुनो. हे निष्पाप राम! शुद्ध जो ब्रह्मतत्त्व है, जिसकी जो वृत्ति चेतनशक्ति है, सो निर्मल है, जब वह स्फुरणरूप होती है, तब कलनारूप घनभावको प्राप्त होती है, तब संकल्परूपको धारती है, बहुरि तन्मय होइकरि मनरूप होती है, सो मन संकल्पमात्र करिकै जगत्को रचता है, विस्तारभावको प्राप्त करता है, जैसे गंधर्वनगर विस्तारको प्राप्त होता है, तैसे मनकरि जगत् विस्तार होता है अरु ब्रह्मदृष्टिको त्यागिके रचता है, सो सब आत्मसत्ताका चमत्कार है, बना कछु नहीं, हमको तौ सब आकाशरूप भासता है, अदूरदर्शीको जगत् भासता है, जैसे चित्त संवित्विषे संकल्प फुरता है, तैसा रूप होता है, प्रथम ब्रह्मा का संकल्प फुरा है,सो चित्तसंवित् आपको ब्रह्मारूप देखता भया, ब्रह्मारूप होइकरि जगत्को कल्पता भया, तब प्रजापति होइकरि चतुर्दश प्रकारके भूतजात उत्पन्न किये, वस्तुते सब ज्ञप्तिरूप हैं, तिसके फुरनेकरि जगत् भासता है सो चित्तमात्र शून्य आकाशरूप है और वस्तुते शरीर कछु नहीं, संकल्पमात्र नगरवत् भ्रांतिकरिकै भासते हैं, तिस भ्रांतिरूप जगत्विषे जो जीव भये हैं, सो कोऊ मोहकरि संयुक्त हैं, कोऊ अज्ञानी हैं, कोऊ मध्यस्थित हैं, कोऊ ज्ञानी उपदेष्टा हैं, जेते कछु भूतजात हैं, सो सब आधि व्याधि दुःखकरि दीन हुए हैं, तिनविषे ज्ञानवान् सात्त्विक सात्त्विकी हैं अरु राजसी सात्त्विकी हैं,जो शांतात्मा पुरुष है तिसको संसारके दुःख कदाचित् स्पर्श नहीं करते, वह सदा ब्रह्मविषे स्थित है. हे रामजी! यह मैं तुझको भूतजात कहे हैं, सो ब्रह्म शांत अमृतरूप सर्वव्यापी, निरामय चैतन्यस्वरूप अनंत आत्मा आधि व्याधि दुःखते रहित निर्भ्रम है, तिसके किसी एकदेशविषे

जगत् स्थित है, जैसे अनंत सौम्यजलके किसी स्थानविषे तरंग फुरते हैं, तैसे परब्रह्म सत्ताके किसी स्थानविषे जगत् प्रपंच फुरता है. राम उवाच-हे भगवन् ! ब्रह्मतत्त्व तौ अनंत निराकार निरवयवरूप है, तिसका एक अंश एक स्थान कैसे हुआ, निरवयवविषे अवयवक्रम कैसे होता है ? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! तिसकरिकै उपजे हैं, अथवा तिसते उपजे हैं, यह जो कारण अरु उपादान है, सो भ्रांतिमात्र है, यह शास्त्ररचना व्यवहारके निमित्त कही है परमार्थते कछु नहीं, अवयवकरि जो देशादिक कल्पना है, सो क्रमते नहीं उपजी, उदय अरु अस्तपर्यंत दृष्टिमात्र ही होती है अरु कल्पनामात्र है, सो कल्पना भी आत्मरूप है, आत्माते रहित कल्पना भी कछु वस्तु नहीं, न हुई है, न कछु होवैगी, तिस विषे जो शब्द अर्थ आदिक युक्ति हैं, सो व्यवहारके निमित्त हैं, परमार्थते कछु नहीं, शब्द अर्थमात्र जगत्कल्पना है सो तिसकरि उपजा है अरु तिसते उपजा है,यह द्वितीय कल्पना भी नहीं तन्मयरूप है, शांतरूप आत्मा ही है और कछु नहीं, जैसे अग्निते अग्निकी लाटा फुरती हैं सो अग्निरूप हैं अरु तिसते उपजी सो तिसकरि उपजी यह कल्पना अग्निविषे कोऊ नहीं, अग्नि ही अग्नि है, तैसे जन्य अरु जनक जो हैं, कार्य अरु कारणभेद सो आत्माविषे कोऊ नहीं, कार्यकारणभाव कल्पनामात्र है, जहां अधिकता अरु ऊनता होती है, तहां कारणकार्यभाव होता है कि, यह अधिक कारण है, ऊन कार्य है. भिन्न भिन्न कारण कार्य शब्द बनता भी है, जहां भेद होता है, तहां भेदकल्पना भी होवै, तहां एक अद्वैतविषे शब्द कैसे होवै अरु शब्दका अर्थ कैसे होवै, जैसे अग्नि अरु अग्निकी शिखाविषे भेद नहीं, तैसे कारणकार्यभाव आत्माविषे कोऊ नहीं, शब्द अर्थ कल्पनामात्र हैं, जहां प्रतियोगी व्यवच्छेद संख्या भ्रम होता है, तहां द्वैत नानात्व होता है, अर्थ यह जैसे चेतनका प्रतियोगी जड़ अरु जड़का प्रतियोगी चेतन है अरु व्यवच्छेद कहिये परिच्छिन्न, जैसे घटविषे आकाश होता है, संख्या कहिये जीव ईश्वर ये शब्द अर्थ द्वैतकल्पनाविषे होते हैं, जहां एक अद्वैत आत्मा ही है, तहां शब्द अर्थ कोऊ

नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग बुद्बुदे सब ही जलते हैं, जलते इतर कछु नहीं तैसे शब्द अरु अर्थकल्पना ब्रह्म है, जो बोधवान् पुरुष हैं, तिनको सब ब्रह्म ही भासता है चित्त भी ब्रह्म है, मन भी ब्रह्म है, ज्ञान शब्द अर्थ ब्रह्म-ही हैं, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, तिसविषे जो इतर भासता है, सो मिथ्या ज्ञानका विकल्प है, जैसे अग्नि अरु अग्निकी लाटाकी कल्पना भ्रांति मात्र हैं, तैसे आत्माविषे जगत्की भिन्न कल्पना असत्‌रूप है, जो ज्ञानते रहित हैं, तिनको दृष्टिदोषकारि सत्य हो भासता है, ताते सर्व ब्रह्म है, ब्रह्मते इतर कछु नहीं, निश्चयकारि परमार्थ ब्रह्मते सब ब्रह्म ही है, सिद्धांत कालविषे तुझको यही दृष्टि उपजैगी, यह जो सिद्धांतपिंजर मैंने तुझको कहा है, तिसके ऊपर उदाहरण कहौंगा; कि यह क्रम अविद्याका कछु भी नहीं, अज्ञानके नाश भयेते अत्यंत असत् जानैगा, जैसे तमकरिकै जेवरीविषे सर्प भासता है, जब प्रकाश उदय होता है तब ज्योंका त्यों भासता है, सर्पभ्रम नष्ट होजाता है, तैसे अज्ञानदृष्टिकारि जगत् भासता है, जब शुद्ध विचारकारि भ्रांति नष्ट होवैगी, तब निर्मलप्रकाशसत्ता तुझको भासैगी, इसविषे संशय नहीं, यह निश्चितार्थ है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे ब्रह्मप्रतिपादनं नाम चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४१.

अविद्याकथनम्।

राम उवाच-हे भगवन्! यह जो तुम्हारे वचन हैं, सो क्षीरसमुद्रके तरंगवत् उज्ज्वल हैं, तीन तापके नाशकर्त्ता हृदयके मल दूर करनेको निर्मलरूप हैं अरु अज्ञानरूपी तमके नाशकर्त्ता प्रकाशरूप हैं, अरु गंभीर हैं तिनका तोल मैं पाय नहीं सकता. एक क्षणविषे संशयकरि अंधकारको प्राप्त होता हौं अरु एक क्षणविषे निःसंशयरूप प्रकाशको प्राप्त होता हों जैसा चपलरूप मेघकरि सूर्यका प्रकाश कबहूं भासता है कबहूँ आच्छाद्या जाता है ताते मेरा संशय दूर करहु कि जो आत्मानं-

दसत्ता अप्रमेयरूप है और सब वही प्रकाशरूप है असत्यभावते रहित सारूरूप है, तौ तिस अद्वैत तत्त्वविषे कल्पना कहांते आई ? वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! जो कछु मैंने तुमको कहा है, सो मेरे वचन यथार्थ हैं, जैसे कहा है तैसे ही हैं अरु असमर्थरूप वचन भी नहीं जिसके हृदयविषे ठहरैं तिसको आत्मपदविषे प्राप्त करैं अरु विरूप भी नहीं इसका रूप फल प्रगट है, जिनके धारेते सब संसारके दुःख मिटि जाते हैं, अरु पूर्वापर विरोध भी नहीं जो प्रथम कछु और कहा, पाछे और कहा जो कछु कहा है सो यथार्थ कहा है, परंतु ज्ञानदृष्टिकरिकै जब तेरा हृदय निर्मल होवैगा; विस्तृत बोधसत्ता हृदयविषे प्रकाशैगी, तब तू मेरे वचनके तात्पर्यको हृदयविषे जानैगा अरु जो तुझको उपदेश करता हौं सो वाच्यवाचक शास्त्रके संबंध तेरे जतावनेनिमित्त करता हौं जब इन वचनकारि युक्त तू जागैगा, तब तुझे अद्वैतसत्ता निर्मल भासैगी और जो कछु वाच्यवाचक शब्द अर्थरचना है, तिसको त्याग करैगा ज्ञानवान्को सदा परमार्थ अद्वैतसत्ता भासती है, इच्छादिक कल्पना कछु आत्माविषे नहीं पाई जाती, आत्मा निर्दुःख निर्द्वंद्व है, सोई जगतरूप होइकारि स्थित भया है, इस प्रकार मैं तुझको विचित्रयुक्तिकारि कहौंगा, जबलग सिद्धांत उपदेशका अवकाश है तबलग आत्मसत्ता नहीं प्रकाशती जब आत्मबोध होवैगा तब आप ही जानैगा अज्ञानरूपी तम है सो वाग्विस्तारविना शांत नहीं होता इस प्रकार मैं तुझको अनेक युक्तिकारि कहौंगा, तबलग सिद्धांत उपदेशका अवकाश है. हे रामजी ! शुद्ध जो आत्मसत्ता है, तिसके आश्रय संवेदनाभास फुरता है, तिसीका नाम अविद्या है, सो दो रूप रखती है, एक उत्तम और एक मलिन है, जो स्पंदकला अपने अविद्या नाशनिमित्त प्रवर्तती है, सो उत्तम है, विद्याभी तिसीका नाम है, सब दुःखको नाश करती है अरु जो संसारकी ओर फुरती है, सो अविद्या है, अर्थ यह जो आत्माकी ओर फुरती है, सो विद्या है अरु जो दृश्यकी ओर फुरती है सो अविद्या है, सो दोनों स्पंदरूप हैं, ताते अविद्याकारि अविद्याका नाश करौ, जैसे ब्रह्मास्त्रकारि ब्रह्मास्त्र शांत होता है, जैसे मैलको कलर

मैल दूर करता है, जैसे विषको विष नाश करता है, जैसे शत्रुको शत्रु मारता है, तैसे अविद्याकरि अविद्या नाश होती है, जो ऐसे हुआ तौ तुम इसको नाश करौ, तब सुखदायक होवैगा, विचारकरि इसका नाश होता है, तब जानी नहीं जाती कि कहां गई, जैसे दीपकसे अंधकार देखिये तौ नहीं जाना जाता, कि कहां गया; बड़ा आश्चर्य है, जो जीवका ज्ञान इसने आच्छादिलिया है, सदा अनुभव आत्मसत्ता उदय-रूप है, सो जीवको नहीं भासती जबलग अविद्याको नहीं जानता, तबलग फुरती है, जब जानगया तब नहीं जानता कि कहां गई; भ्रम-मात्र सिद्ध है, बड़ा आश्चर्य है जो मायाने संसारको बांधा है, सत्यकी नाईं प्राप्त भई है, अरु असत्य है बुद्धिमान्को भी इसने नाशकरि छोडा है, तौ इतर जीवको क्या कहना है ! निरंतर अभेदरूप आत्मा है; तिसविषे अविद्याकी भेदकल्पना कोऊ नहीं, जिस पुरुषने संसारमायाको ज्योंका त्यों जाना है, सो पुरुषोत्तम है, जिसकी यह भावना हुई है, कि अविद्या परमार्थते कछु नहीं, असत्यरूप है, सो ज्ञानवान् है, जो कछु जानने योग्य है, सो तिसने जाना है, इसविषे संशय नहीं. जबलग तू स्वरूपविषे जागा नहीं, तबलग मेरे वचनविषे आसक्तबुद्धि कर, अरु बड़े निश्चयको धार, कि अविद्या नाशरूप है अरु है नहीं जेता कछु जगत् दृश्य भासता है, सो मनका मन असत्‌रूप है, जिसको यह निश्चय हुआ, सो पुरुष मोक्षभागी है, यह जो मनका फुरनारूप जगत् दृश्यभावको प्राप्त हुआ है, सो सब ब्रह्मरूप है, जिसके अंतर यह निश्चय स्थित है, सो पुरुष मोक्षभागी है,अरु जिसको चराचर जगत्‌विषे दृढ भावना है, सो बंधभागी है, जैसे पक्षी जालविषे बन्धायमान होता है. हे रामजी ! संपूर्ण जीव इस संसारकी सत्यदृष्टि-करि बांधे हुए हैं, सब जगत् स्वप्नभ्रांतिरूप है, तिसविषे जिसको असत्-बुद्धि है, अथवा सत् ब्रह्मबुद्धि है, सो आसक्त होकरि संसारदुःखविषे नहीं डूबता, अरु जिसको अनात्मधर्म देहादिकविषे भावना है, स्वरूपविषे आत्मबोध नहीं सो हर्ष शोक आपदाको प्राप्त होता है, अरु जिसको स्वरूपविषे स्वरूपबोध है, अरु अनात्मधर्मका त्याग है, तिसको संसार-

अविद्या नहीं रहती, दुःखविकार स्पर्श नहीं कर सकता, जैसे जलविषे धूलि नहीं उडती, तैसे तिस महात्मा पुरुषके चित्तविषे दुःख उदय नहीं होते, ज्ञानवान् पुरुषके हृदयविषे जगत्के शब्द अर्थका रंग नहीं चढता; जैसे तंतु विना पट नहीं होता पट तंतुरूपही है, तैसे आत्मा विना जगत् नहीं होता, जगत् आत्मारूप है, ऐसे जानिके जो व्यवहारविषे वर्त्तता है, सो पुरुष मानसिक दुःखको नहीं प्राप्त होता, अरु जो अविद्याकरि संसारविषे पडा भटकता है, सो आत्मतत्त्वको पाय नहीं सकता, विद्यमान भी तिसको नहीं भासता, सो आत्मज्ञानकरि अविद्याका नाश होता है जिसको आत्मज्ञान हुआ, सो अविद्यारूपी नदीको तरजाता है, आत्मसत्ताके प्राप्त हुएते, अविद्या क्षीण होजाती है,जिनको अविद्यारूप संसारके पदार्थकी इच्छा उदय होती है, सो अविद्यारूपी नदीविषे बह जाते हैं. हे रामजी ! यह अविद्या बडे मोहभ्रमको देती है, दृढ होयकरि स्थिति हुई है, अरु तत्पदको आच्छादि लिया है, ताते तुम यह न विचारौ कि अविद्या कहांते उपजी है, अरु कौन इसका कारण है, इत्यादिक विचारभ्रम मत करहु यही विचारौ कि यह नाश कैसे होती है, इसके क्षयका उद्यम करौ, जब नष्ट होवैगी, तब इसकी उत्पत्ति भी जानि लेवैगा; कि इस प्रकार उपजी है, अरु यह स्वरूप इसका है, अरु यह कारण, यह कार्य है. हे रामजी ! अविद्या वस्तुते कछु है नहीं, अविचारसिद्ध है, विचारदृष्टिते नष्ट होजाती है, तब जानी नहीं जाती कि कहां गई, जब स्वरूप विस्मरण होता है, तब उपजकरि दृढ होता है, बहुरि दुःखको देती है, ताते बलकरि इसका नाश करहु, बडे बडे शूरमे भी हुए हैं, तिनको अविद्याने व्याकुल किया है, ऐसा बुद्धिमान् कोऊ नहीं जिसको अविद्याने व्याकुल नहीं किया, अविद्या सर्व रोगका मूल है यत्न करिकै इसका औषध करहु, जिसकरि जन्म दुःख कुहिड न प्राप्त होवै, जेती कछु आपदा हैं, तिनकी यह अधिष्ठाता सखी है, अज्ञानरूपी वृक्षकी वल्ली है; अनर्थरूपी अर्थकी जननी है, ऐसी अविद्यारूपी मलिनताको दूर करहु, मोह भय आपदा दुःखको देनेहारी है हृदयविषे मोह उपजायकरि जीवको व्याकुल करती है, अज्ञान चेष्टा-

कारि वृद्ध होती है, जब अविद्यारूपी संसारसमुद्रते पार होवैगा, तब शांति प्राप्त होवैगी.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे अविद्याकथनं नाम एकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४२.

जीवतत्त्ववर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! अविद्यारूपी रोग के काटिकारि शांतरूप स्थित होते हैं, अरु विचाररूपी नेत्रते देखते हैं, तब यह नष्ट होजाती है, सो इस विस्तृत व्याधिकी औषध सुन,जीवजातका विस्तार मैं तुझको कहता हौं, सात्त्विक राजस आदिक मनकी वृत्ति विचारनेअर्थ मैं प्रवर्तीया था, सो अब सुन, जो तत्त्व अमृत ब्रह्मस्वरूप है, सो सर्वव्यापी निरामय चैतन्यप्रकाश अनंत है, आदिअंतते रहित निर्भ्रम चेतन प्रकाश तिसका वपु है, जब वह चेतन प्रकाश स्पंदरूप हो फुरता है, तब दीपकवत् तेज प्रकाश चेतनरूप चित्तकला जगत्को चेतने लगती है, तब जगत् फुरता है, जैसे सोमजल समुद्रविषे द्रवताकारि तरंग फुरता है, सो जलते इतर कछु नहीं, तैसे सर्वात्माते इतर कालका रूप कछु नहीं यह स्पंदरूप भी अभेद है, जैसे आकाशविषे आकाश स्थित है, तैसे आत्माविषे चित्तशक्ति है, जैसे नदीविषे वायुके संयोगते तरंग उठते हैं, तैसे आत्माविषे चित्तकलासों दृश्य जगत् होता है; ऐसे भी नहीं आत्मा अद्वैत है, स्वतः जिसविषे चित्तकला हो आती है, जैसे वायुविषे स्वाभाविक स्पंद होता है, स्पंदनिस्पंद दोनों वायुके रूप हैं, जब स्पंद होता है, तब भासता है, निस्पंद होता है, तब अलक्ष होजाता है, तैसे जब चित्तकला फुरती है, तब लक्षमें आती है; निस्पंद होते ही अलक्ष होती है, शब्दकी गम नहीं होती, निस्पंदकरिकै जगत्भावको प्राप्त होती है, जैसे समुद्रविषे तरंगचक्र फुरते हैं, तैसे चेतनविषे चित्तकला फुरती है, जैसे आकाशविषे मुक्तामाला भासती है, सो है नहीं, तैसे आत्माविषे वस्तु

नहीं है स्पंदभाव करि कछु भूषित दूषित हो भासती है, आत्माते भिन्न कछु नहीं, परंतु भिन्नकी नाईं भासती है,जैसे प्रकाशकी लक्ष्मी कोटि रवि जैसी स्थित होती है, तैसे आत्माविषे चित्तशक्ति है, देश, काल, क्रिया, द्रव्यको जैसे जैसे चेतती है, तैसे तैसे हो भासती है, आगे नाम संज्ञा होती है, अपने स्वरूपको विस्मरणकारि दृश्यके साथ तन्मय होती है, तौ भी स्वरूपते व्यतिरेक नहीं होती, परंतु व्यतिरेककी नाईं भावना होती है, जैसे समुद्रते तरंग भिन्न नहीं, और सुवर्णते भूषण भिन्न नहीं, तैसे आत्माते चित्तशक्ति भिन्न नहीं; परंतु अपने अनंत स्वभावको विस्मरणकरि देश, काल क्रिया, द्रव्यके भेद मानती है, संकल्पके धारणेकरि कलनाभावको प्राप्त होती है, विकल्पकलनाकरि चित्तशक्ति क्षेत्रज्ञरूप होती है, शरीरका नाम क्षेत्र होता है, शरीरको अंतर्बाहिर जाननेकरि क्षेत्रज्ञ नाम होता है, सो क्षेत्रज्ञ चित्तकला अहंभावकी वासना करती है, तिस अहंकारकरि आत्माते इतर रूप धरती है, बहुरि अहंकारविषे निश्चय कलना होती है,तिसका नाम बुद्धि होता है, अहंभावसों जब निश्चय संकलपकलना होती है, तिसका नाम मन होता है, वही चित्तकला मनभावको प्राप्त होती है, जब मनविषे घन विकल्प उठते हैं; तब शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधकी भावनाकरि इंद्रियां फुरि आती हैं, बहुरि हस्त पाद प्राणसंयुक्त देह भासि आता है, इस प्रकार जगतविषे देहको पायकरि जीव जन्ममृत्युको प्राप्त होता है, वासनाविषे बांधा हुआ दुःखके समूहको पाता है, कर्मकरि चित्तविषे दीन रहता है, जैसे कर्म करता है, तैसे आकारको धारता है, जैसे समय पायके फल परिपक्वताको प्राप्त होता है, तैसे स्वरूपके प्रमादकरि जीव दृश्यभावको प्राप्त होता है, आपको कारण कार्य मानिके अहंभावको प्राप्त होता है, निश्चयवृत्तिकरि बुद्धिभावको प्राप्त होता है; संकलपसंयुक्त मनभावको प्राप्त होता है, सो मन देह इंद्रियरूप होइकारि स्थित होता है, अपना अनंतरूप भूलि जाता है, परिच्छिन्न भावको ग्रहण करिकै प्रतियोग व्यवच्छेदभाव भासता है, तब इच्छामोहादिक शक्तिको प्राप्त होता है, जैसे मदकरि माते बैलको गौ आनि मिलती है, तैसे सब आपदा दुःख इसको आय प्राप्त होते हैं,

जैसे समुद्रविषे नदियां आय प्रवेश करती हैं इसी प्रकार अहंकार अपनी रचनाकारि आपही बंधमान होता है; जैसे घुराण अपने स्थानको रचिकारि आप ही बंधमान होती है. बडा खेद है कि, आप ही संकल्प करि दृश्यको रचता है, बहुरि तिसी देहविषे आस्था करता है ताते आप ही दुःखी होता है, अंतरते तपता रहता है, आपको बंधायमान कारि संसार-जंगलविषे अविद्यारूप आकाशको ले फिरता है, अपने संकल्पकलना-कारि तन्मात्र देह हुई है, तिसविषे अहंप्रतीति होती है, जैसे जलविषे तरंग होते हैं, तैसे देहादिक उदय हुए हैं, तिनके साथ बांधा हुआ दुःख पाता है, जैसे सिंह संकलकारि बांधा जावे, तैसे बांधा है, एक स्वरूप है, सोई फुरनेके वशते नानाभावको प्राप्त हुआ है, कहूँ मन, कहूँ बुद्धि, कहूँ अहंकार, कहूँ ज्ञान, कहूँ क्रिया, कहूँ पुर्यष्टक, कहूँ प्रकृति, कहूँ माया, कहूँ कर्म, कहूं विद्या, कहूं अविद्या, कहूँ इच्छा कहाती है. हे रामजी ! इस प्रकार जीव अपने चित्तकारि भ्रमको प्राप्त हुआ है, तृष्णारूपी शोक रोगकारि दुःख पाता है, तुम यत्नकरिकै इसको तारो, जरा मरण आदिक जो विकार हैं अरु संसारकी भावना इसको नष्ट करती है, यह भला है, ग्रहण करिये, यह बुरा त्याग करने योग्य है, तिसकारि ग्रसा अविद्याके रंगसाथ रंजित भया है, इच्छा करनेसों इसका रूप सकुच-गया है, कर्मरूपी अंकुरसों संसाररूपी वृक्ष बढ़िगया है; अपना वास्तव स्वरूप विस्मरण हुआ है, कलनाकारि आपको मलिन जानता भया है, अविद्याके संयोगकारि नरकको भोगता है, संसारभावनारूपी पर्वतके नीचे दबिगया है, आत्मपदकी ओर उठनेको समर्थ नहीं होता, संसार रूपी विषका वृक्ष जरामरणरूपी शाखाकारि बढ़ि गया है, आशारूपी फांसीके साथ बांधे हुए जीव पड़े भटकते हैं, तिसकारि चितारूपी अग्निविषे जलते हैं, क्रोधरूपी सर्पने जीवका चर्वण किया है, अपनी वास्तवता इसको विस्मरण होगई है, जैसे हरिण अपने यूथसमूहते भूला शोककारि दुःखी होता है, जैसे पतंग दीपककी शिखामें जल मरता है, जैसे मूलते काटा कमल विरूप होता है, तैसे आशाकारि क्षुद्र हुआ मूर्ख बड़ा दुःख पाता है, जैसे कोऊ मूढ विषको सुखरूप जानिकै भक्षण करे, तब दुःख

पाता है, तैसे इसको भोगविषे मित्रबुद्धि हुई है, परंतु इसके परमशत्रु हैं, इसको उन्मत्त करिकै मूर्च्छित करते हैं, बड़े दुःखको देते हैं, जैसे बांधा हुआ पक्षी पिंजरेविषे दुःख पाता है, तैसे यह दुःख पाता है, ताते इसको काटहु, यह जगज्जाल असत् है, गंधर्वनगरवत् शून्य है, इसकी इच्छा अनर्थका कारण है,इस संसारसमुद्रविषे मत डूबहु, जैसे हस्ती कीचडसों अपने बलकरि निकसता है, तैसे अपना उद्धार करहु, संसाररूपी गढेले-विषे मनरूपी बैल गिरा है, तिसकरि अंग जीर्ण होगये हैं, अभ्यास अरु वैराग्यके बलकरि इसको निकासहु, अपना उद्धार करहु, जिस पुरुषको अपने मनपर भी दया नहीं उपजती; जो संसारदुःखते निकसै,सो मनुष्यका आकार है, परन्तु राजस है, ताते तुम उद्धार करिलेहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जीवतत्त्ववर्णनं नाम द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४३.

जीवबीजसंस्थावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच- हे रामजी ! इस प्रकार जीव परमात्माते फुरिकरि संसारभावना करते हैं, तिनकी संख्या कछु करी नहीं जाती, कई पूर्व उपजे हैं. कई अपूर्व उपजे हैं, अबलग उपजते हैं जैसे फुरणेसों जलके कणके प्रगट होते हैं, तैसे ब्रह्मसत्तासों जीव फुरते हैं अपनी वासनाकरि बांधे हुए भटकते हैं, विवश होयकरि नानाप्रकारकी दशाको प्राप्त होते हैं चिंताकरि दीन होजाते हैं दशों दिशा जल स्थलविषे पड़े भ्रमते हैं जैसे, समुद्रविषे तरंग उपजते अरु नष्ट होते हैं, तैसे जन्म अरु मरण पाते हैं, कईका प्रथम जन्म हुआ है कईके सौ जन्म हुए हैं, कईके असंख्य जन्म हुए हैं, कई आगे होवैंगे; कई होयकरि मिटि गये हैं,कई अनेक कल्पपर्यंत अज्ञानकरि पडे भटकेंगे अब कई जरा विषे स्थित हैं, कई यौवनविषे स्थित हैं,कई मोहकरि नष्ट भये हैं कई अल्पवय होयकरि स्थित हैं, कई अनंत आनंदी हुए हैं,कई सूर्यवत उदित रूप हैं, कई किन्नर, कई

विद्याधर होयकरि स्थित हैं कई सूर्य, चंद्रमा, इंद्र, वरुण, कुबेर, रुद्र, ब्रह्मा, विष्णु होकरि स्थित भये हैं कई यक्ष, वैताल सर्प आदिक होकरि स्थित भये हैं, कई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, गण कहाते हैं, कई किरात चांडाल आदिक स्थित हैं, कई तृण, ओषधी, पत्र, फल, मूलको प्राप्त भये हैं, कई लता गुच्छे पाषाण शिखर हुए हैं, कई कदंब वृक्ष ताल तमाल हुए हैं, कई मंडलेश्वर चक्रवर्ती हुए भ्रमते हैं, कई मुनीश्वर मौन पदविषे स्थित हैं, कई कृमि, कीट, पिपीलिका आदिकरूप हैं, कई सिंह, मृग, घोड़े, खच्चर, गर्दभ बैल आदिक पशु स्थित हैं, कई सारस, चक्रवाक, कोकिला, बगलादिक पक्षी होयकरि स्थित हैं, कई कमल कली कुमुद सुगंधादिक स्थित हैं कई आपदाकरि दुःखी हैं, कई संपदावान् हैं, कई स्वर्ग, कई नरकविषे स्थित हैं, कई नक्षत्रचक्र आकाश वायु सूर्यकी किरणोंविषे, कई चंद्रमाकी किरणोंविषे स्थित हैं, रस लेते हैं, कई जीवन्मुक्त हैं, कई अज्ञानकरि पड़े भ्रमते हैं, कई कल्याणभागी चिरपर्यंत भोगको पडे भोगते हैं, कई परमात्माविषे परिणमी गये हैं, कई कल्पकाल, कई शीघ्र ही आत्मतत्त्वविषे लय भये हैं कई चिरकालकरि जीवन्मुक्त होवैंगे, कई मूढ दुर्भावना करते हैं, अनात्माविषे भ्रमते हैं, कई मृतक होयकरि इस जगत्‌विषे जन्मते हैं, कई और जगत्‌विषे जाय स्थित होते हैं, कई न यहां न वहां उपजते हैं, अत्मतत्त्वविषे लय होते हैं, कई मंदराचल सुमेरु आदि पर्वत होइकरि स्थित होते हैं, कई क्षीरसमुद्र, घृतसमुद्र, इक्षुरस, जल आदिक समुद्र हुए हैं, कई नदियां तडाग वापिका आदि भये हैं, कई स्त्रियां, कई पुरुष कई नपुंसकरूप हुए हैं, कई मूढ, कई प्रबुद्ध, कई अत्यंत मूढ हुए हैं, कई ज्ञानी, कई अज्ञानी, विषयतप्त, कई समाधिविषे स्थित हैं, इसी प्रकार जीव अपनी वासनाकरि बांधे हुए भ्रमते हैं, संसार भावनाकरि जगतविषे कबहूं अधःको कबहूँ ऊर्ध्वको जाते हैं, कामक्रोधादिक दुःखकी पीड़ाको पाते हैं, कर्मकरि भ्रमते हैं, आशारूपी फांसीके साथ बांधे हुए हैं, अनेक देहको उठाइ फिरते हैं, जैसे भारवाही भारको उठावते हैं तैसे कई मनुष्यशरीरते बहुरि मनुष्य शरीरको धारते हैं, बहुरि वृक्षते वृक्ष होते हैं, कई औरते और शरीरको धारते हैं, इसी प्रकार आत्मरूपको

भुलायकरि देहके साथ मिले हुए वासनारूप कर्म करते हैं, तिनके अनुसार अध ऊर्ध्व पंथविषे भ्रमते हैं, जिनको आत्मबोध हुआ है, सो पुरुष कल्याणरूप हैं, और सब दुःखी मायारूप संसारविषे मोहित भये हैं; यह संसाररचना इंद्रजालकी नाईं है, जबलग अपने आनंद स्वरूपको नहीं पाया, साक्षात्कार नहीं भया, तबलग संसारभ्रमविषे भ्रमता है अरु जिस पुरुषने अपने स्वरूपको जाना है, और जीवकी नाईं त्याग नहीं किया, वारंवार संसारके पदार्थनतें रहित आत्माकी ओर धावता है, सो समय पायकरि आत्मपदको प्राप्त होवैगा, बहुरि जन्म न पावैगा, कई जीव अनेक जन्म भोगिकै ज्ञानकरि अथवा तपकरि ब्रह्माके लोकको प्राप्त होते हैं बहुरि परमपद पाते हैं, कई सहस्र जन्म भोग भोगिकरि बहुरि संसारविषे प्राप्त होते हैं, कई बुद्धिमान् विवेकको भी प्राप्त होते हैं, बहुरि संसारविषे गिरते हैं, अर्थ यह कि,मोक्ष ज्ञानको पायके बहुरि संसारी होते हैं कइ इंद्रपद पायकरि तुच्छ बुद्धिसों बहुरि तिर्यक् पशुयोनिको पाते हैं, बहुरि मनुष्याकार धारते हैं, कई महाबुद्धिमान् ब्रह्मपदते उपजिकरि तिसी जन्मविषे ब्रह्मपदको प्राप्त होते हैं, कई अनेक जन्मकरि, कई थोडे जन्म करि प्राप्त होते हैं, कई एक जन्मकरि और ब्रह्मांडको प्राप्त होते हैं, कई इसीविषे देवताते पशुजन्म पाते हैं, कई पशुते देवता होजाते हैं, कई नाग होजाते हैं, जैसी जैसी वासना होती है तैसा ही रूप होजाते हैं, जैसे यह जगत् विस्ताररूप है, तैसे अनेक जगत् हैं, कई समानरूप हैं, कईविलक्षण आकार हैं, कई हुए हैं, कई होवैंगे, विचित्ररूप सृष्टि उपजती है, अरु मिटती है, कई गंधर्व भावको, कई यक्ष देवता आदिक भावको प्राप्त भये हैं, जैसे जीव इस जगतविषे व्यवहार करते हैं, तैसे और जगतविषे व्यवहार करते हैं आकार विलक्षण है, अपने स्वभावके वश हुएते जन्ममरणको पाते हैं, जैसे समुद्रते तरंग उपजते और मिटते हैं; तैसे सृष्टिकी प्रवृत्ति उत्पत्ति लय होता है, जब संवित् स्पंद होते हैं, तब उपजते हैं जब निस्पंद होता है, तब लय होता है, जैसे दीपकका प्रकाश लय होता है, अरु जैसे सूर्यते किरणैं निकसती हैं, जैसे तप्त लोहेते चिन-

गारे निकसते हैं, जैसे अग्निते चिनगारे निसकते हैं, जैसे कालते ऋतु निकसते हैं, पुष्पते सुगंधि प्रगट होती है; समुद्रते तरंग उपजते हैं, बहुरि लय होते हैं, तैसे आत्मसत्ताते जीव उपजते हैं बहुरि लय होते हैं, जेते कछु जीव हैं सो सब ही समय करिकै अपने पदविषे लय होवैंगे, स्वरूपते इनका उपजना भी मिथ्या है, स्थिति बंधन भी मिथ्या है, नष्ट होना मिथ्या है, त्रिलोकीरूप महामायाके मोहकरि उपजते समुद्रके तरंगकी नाईं नाश होते हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जीवबीजसंस्थावर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४४.

संसारप्रतिपादनम्।

राम उवाच–हे भगवन्! जीव इस क्रमकरि आत्मस्वरूपविषे स्थित है बहुरि अस्थिमांसकरि पूर्ण देहपंजर इसको कैसे प्राप्त भया है? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! मैंने प्रथम तुझको अनेक प्रकार कहा है, तू अबलग जाग्रत नहीं भया, पूर्वापरके विचार करनेहारी तेरी बुद्धि कहां गई है? जेता कछु शरीरादिक स्थावर जंगम जगत् दृष्टि आता है; सो सब आभासमात्र है स्वप्नकी नाईं उठा है, दीर्घ स्वप्न है मिथ्या भ्रमकरि भासता है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रममात्र भासता है, जैसे भ्रमणेकरि पर्वत भ्रमते भासते हैं, तैसे जगत् अज्ञानकरि भासता है, अरु जिन पुरुषकी अज्ञाननिद्रा नष्ट भई अरु निश्चयकरि संसारवासना गलित भई है, सो प्रबुद्धचित्त है, संसारको स्वप्नरूप देखते हैं, अरु स्वरूपभावकरि कछु देखते नहीं, अपने ही स्वभावकरि संसार कल्पते हैं, यह जीव संसार मोक्षते प्रथम सर्वदा सत्‌रूप देखते हैं; तिनकी संसारभावना असत् नहीं होती जगत् आकार सर्वदा अपने अंतर कल्पते हैं अरु जीवके अनेक आकार चपलरूप क्षणभंग होते हैं जैसे जलविषे तरंग चंचलरूप होते हैं,जैसे बीजविषे अंकुर रहता है, तिसीके अंतर-पत्र

फूल फल आदिक होते हैं, तैसे कल्पनारूपी देह मनके फुरनेविषे रहता है. हे रामजी ! देह न हौवै परन्तु जहां मन फुरता है, तहां ही देहको रच लेता है, जैसे स्वप्नविषे मनोराज्य देहको रचि लेता है, तैसे यह देह अरु जगत् भी मनकरि रचा हुआ है, जैसे मृतिकाका पिंड चक्रके ऊपर चढाया घटरूप होजाता है. तैसे मनके फुरनेकरि देह बनता है, सब देह मनके फुरनेविषे स्थित हैं, जेता कछु जगत् भासता है, सो सब संकल्पमात्र.है, जैसे मृगतृष्णाका जल असत्‌रूप होता है, तैसे यह जगत् असत्य है, जैसे बालकको अपने परछाईंविषे वैताल भासता है, तैसे जीवको अपने फुरनेकरि देहादिक भासते हैं. हे रामजी ! सृष्टिके आदिविषे जो शरीर उत्पन्न भये हैं, सो आभासमात्र संकलपकरि उपजे हैं, प्रथम ब्रह्मा पद्मविषे स्थित भया; तिसने संकल्पके क्रमकरि विस्तार किया है, जैसा संकल्पपुर स्थित होवै, तैसे स्थित किया है, सो सब मायामात्र है, मायाकी घनताकरि यह जगत् भासता है, स्वरूपते कछु नहीं. राम उवाच-हे भगवन् ! आदि जीव जो मनरूप फुरनेको पायकरि ब्रह्मपदको प्राप्त भया है, सो ब्रह्मा जैसे हुआ है अरु स्थित भया है; सो मुझको क्रमकरि कहौ. वसिष्ठ उवाच- हे महाबाहो रामजी ! प्रथम ब्रह्मशरीरको पायकरि ग्रहण किया है, तिसके श्रवणकरि स्थिति भी जानैगा देश काल आदिकके परिच्छेदते रहित आत्मतत्त्व अपने आपविषे स्थित है, सो अपनी लीला शक्तिकरि देश काल क्रिया कलिपतरूप भया है, तिसकरि जीवके एते नाम हुए हैं, वासनाकरि तद्रूप हुई चित्कला चपलरूप मन हुआ है, सो दृश्य कलनाके सन्मुख हुई, प्रथम वही चित्कला मानसी शक्ति होइकरि आकाशकी भावना करत भई, स्वच्छ बीजरूप जो शब्द है, तिसके सन्मुख मध्यविषे उदर धर्म है जैसे नूतन बालक प्रगट होता है. तैसे आकाश पोलरूप फुरि आया, बहुरि स्पर्श बीजके सन्मुख हुई तब पवन फुरि आया, जब शब्द स्पर्श आकाश पवनका संघर्षण भया,तब मनके तन्मय होनेकरि अग्नि उपजा, बड़ा प्रकाश हुआ,बहुरि रसतन्मात्राकी भावना करी तब शीतल भावनासों जल फुरि आया; जैसे अति उष्णताते स्वेद निकस आता है, बहुरि गंध-

तन्मात्राकी भावना करी तिसकारि घ्राण इंद्रिय निकसि आई स्थूलकी भावनाकरि जलचक्र पृथिवी होयकारि स्थित भये, आकाशविषे बडा प्रकाश हुआ, अहंकारकी कलाकारि शुद्ध अरु बुद्धिरूपी बीजकारि समुचितरूप हुई, अष्टम जीवसत्ता हुई इन अष्टका नाम पुर्यष्टक भया; सो देह रूपी कमलका भँवरा हुआ, तिस आत्मसत्ताविषे तीव्र भावनाकरिकै वही चित सत्ता बडा स्थूल वपु देखती भई, जैसे बीजते वृक्ष फूल होनेकारि रस परिणमता है, तैसे निर्मल आकाशविषे वृत्ति स्पंदअस्पंदरूप हुई है, जैसे संचेविषे भूषणनिमित्त स्वर्ण आदिक धातु पड़ती हैं सो भूषणरूप होजाती हैं, तैसे ब्रह्माजी अपनी चेतन संवेदन मनरूपी संवितविषे तीव्र भावना करी तिसकारि स्थूलताको प्राप्त भये स्वतः यह फुरणा दृश्यका रूप क्रमकारि हुआ, जो ऊर्ध्व शीश है; मध्य उदर है, अधः पाद हैं, चारौं दिशा हस्त हैं, मध्यविषे उदर धर्म है, जैसे नूतन बालक प्रगट होता है, महा उज्ज्वल प्रकाश ज्वालाकी लाटावत् अंग होते हैं, तैसे ब्रह्माका शरीर उत्पन्न भया है, इस प्रकार वासनाकारि कल्पित मनकारि शरीर उत्पन्नकरि लिया है, आदि ब्रह्माका प्रकाश ही शरीर भया, सब बुद्धिकी समष्टिरूप उसकी बुद्धि अरु बल उत्साहकी समष्टि है, बहुरि कैसा है, सदा ज्ञानरूप है, संपूर्ण ऐश्वर्य, संपूर्णशक्ति अरु तेज उदारताकरिसंपन्न स्थित है, इस प्रकार सब जीवका ब्रह्माजी अधिपति नायक होता भया है अरु द्रवत् स्वर्णवत् कांति ऐसा शरीर परम आकाशते उपजिकारि आकाशरूप स्थित भया है, अपनी लीलाके निमित्त अपने निवासका गृह रचता है. हे रामजी! कबहूं ब्रह्माजी परम आकाशविषे रहता है, कबहूं कल्पांतर महाभास्कर अग्निविषे रहता है कबहूं स्वर्णकमल विष्णुजीके नाभिकमलविषे रहता है, इसी भाँति अनेक प्रकारके आसन रचिकारि कबहूं कहां कबहूं कहां स्थित होता है. लीला करता है, जब परम तत्त्वसों प्रथम इसप्रकार फुरता है, तब अपने साथ शरीर देखता है, जैसे बालक निद्राते जागिकारि अपने साथ शरीर देखता है, तैसे ब्रह्माजी अपने संग शरीर देखता भया, कैसा शरीर प्राणके प्रवाहसंयुक्त प्राण अपान जाने आते हैं, तब पंचतत्त्व जो द्रव्य हैं, तिनकारि रचता भया, बत्तीस दंत हैं, तीन

स्तंभ हैं अरु पंचदेवता शरीरविषे स्थित हैं, सो कौन हैं, ब्रह्मा, विष्णु- रुद्र, ईश्वर, सदाशिव, पंच भाग शरीरके हैं, नव द्वार हैं, दो जंघास्थल, दो पाद अरु दो भुजा, बीस अंगुली हैं, हस्तपादके बीस नख हैं, एक मुख है, दो नेत्र हैं, कबहूं अपनी इच्छासों अनेक भुजा अनेक नेत्रकरि लेता है, मांसकी कहगील करी है; ऐसा शरीर हुआ सो चित्तरूपी पक्षीका आलणा है, कामदेव भोगनेका स्थान है, वासनारूपी पिशाचिनीका गृह है, जीवरूपी सिंहकी कंदरा है, अभिमानरूपी हस्तीका वन है, इस प्रकार ब्रह्माजी शरीरको देखता भया, बडा उत्तम कांतिमान् शरीरको देखिकरि ब्रह्माजी चितवत भया, जो त्रिकालदर्शी है, कि इसके आदि क्या हुआ अरु अब हमको क्या करना है, ऐसे परम आका- शविषे सदा निर्मलदर्शी देखत भया, जो आगे भूतका सर्ग व्य- तीत भया है, वेदसंयुक्त ऐसे अनेक हुए हैं, तिनके सब धर्म स्म- रण करिकै देखत भया, वाङ्मय भगवतीका स्मरण किया, वेदनका स्मरण सर्व सृष्टिके धर्म गुण विकार उत्पत्ति स्थिति बढना परिणाम क्षय नाश होना सब धर्मको स्मृतिशक्तिकरि देखता भया; जैसे योगीश्वरने अपना अनुभव किया अरु औरका किया, चित्तशक्तिविषे स्थित होय- करि स्मृतिशक्तिसों देखि लेता है, तैसे ब्रह्माजी अनुभव करता भया, दिव्य नेत्रसों बहुरि इच्छा हुई कि लीलाकरि विचित्ररूप प्रजाको उत्पन्न करौं, ऐसे विचार करि उत्पत्ति करता भया, जैसे गंधर्वनगर तत्काल हो- जाता है, तैसे सृष्टि होगई है, तिसके धर्म, अर्थ , काम, मोक्ष चार पदार्थ तिनके साधन रचे, बहुरि तिनविषे विधिनिषेध रचे कि, यह कर्तव्य है, यह अकर्तव्य है, तिनके अनुसार फलकी रचना करि शुभ अशुभ विचित्रता रची. हे रामजी ! स प्रकार फुरनेकारि सृष्टि हुई है, फुरनेकी दृढताकरि स्थितिको प्राप्त भई है, तिसविषे नीति, काल, क्रिया, द्रव्य, कर्म, धर्म, रचे हैं, जैसे नीति करी है, तैसे स्थित हैं जैसे वसंत ऋतुकरि पुष्प उत्पन्न होते हैं, तैसे ब्रह्माके मनकरि सृष्टि रची है, विचित्ररूप रचनाका विलास चित्तरूप कमलज ब्रह्माके चित्तकरि कल्पा है, सो कलनारूप है, कालविषे उत्पन्न हुई है, कालहीकरि

स्थित है, स्वरूपते न कछु उपजा है, न कछु नष्ट होता है, जैसे स्वप्न-सृष्टि होती है, तैसे यह संसाररचना है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थिति-प्रकरणे संसारप्रतिपादनं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमः. सर्गः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशत्तमः, सर्गः. ४५.

यथार्थोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इस प्रकार जो उपजा है, सो कछु नहीं उपजा, न स्थित है, शून्य आकाशरूप है, मनके फुरणेकरि सृष्टि भासती है, बडे देश काल क्रिया संयुक्त जो ब्रह्मांड दृष्टि आता है, सो परमार्थते तिसने कछु भी स्थान रोका नहीं स्वप्नपुरवत् संकल्पमात्र है , आधार विना चित्त है, जैसे मूर्तिका चित्र आधार विना मिथ्या होता है, तैसे यह जगत् बड़ा भासता है तौ भी मिथ्या है असत्य तमरूप है, आकाशविषे चित्रकी नाईं है , जैसे स्वप्नविषे भासरूप जगत् भासता है तौ भी असत्रूप है, तैसे यह शरीरादिक जगत् मनके फुरनेकरि भासता है मनका फुरना ही इसका कारण है, जैसे नेत्रका कारण प्रकाश है, तैसे जगत्का कारण चित्त है, सब जगत् आकाशमात्र है, घट पट तोयादिक क्रमसहित भासते हैं, तौ भी असत्रूप हैं, जैसे जलविषे चक्र आवर्त भासते हैं, सो असत्यरूप हैं, तैसे प्रथम पर्वत आदिक जगत् असत्यरूप हैं, अपने निवासके निमित्त मनने यह शरीर रचा है जैसे घुराण अपने निवासके निमित्त गृह रचती है अरु आप ही बंधनमें आती है, तैसे मन शरीरादिकको रचिकरि आप ही दुःखी होता है ऐसा पदार्थ कोऊ नहीं जो संकल्पते रहित सिद्ध होवै अरु मनके यत्नकरि सिद्ध न होवै, कठिन क्रूर पदार्थ भी मनकरि सिद्ध होता है, परमात्मा जो देव है, सो सब शक्तिमान् है, मन भी तिसकी शक्ति है, वह कौन पदार्थ है, जो मनकरि सिद्ध न होवै, सब कछु बन जाता है, काहेते कि जेते कछु पदार्थ हैं, तिनविषे सत्ता परमा-

त्माकी है, तिसते इतर कछु नहीं, ताते परमात्मा देवविषे सब कछु संभवता है, आदि चित्तकला ब्रह्मारूप होयकरि उदय भई है, तिस भावनाके अनुसार आपको ब्रह्माका शरीर देखत भई, तिस कमलज ब्रह्माने कलनारूप जगत् रचा है; देवता, दैत्य, मनुष्य, स्थावर, जंगमरूप जगत् संकल्पविषे स्थित है, जबलग उसका संकल्प है, तबलग तैसे ही स्थित है जब संकल्प मिटि जावैगा तब सृष्टि भी नष्ट होजावैगी, जैसे तेलते रहित दीपक निर्वाण होजाता है, तैसे जगत् भी हो जावैगा, सो आकाशवत सब ही कलनामात्र है, दीर्घस्वप्नवत् स्थित है, वस्तुतेन कोऊ उपजा है, न मरता है परमार्थते तौ ऐसे है अरु अज्ञानकरि सब पदार्थ विकार-संयुक्त भासते हैं, न कोऊ वृद्ध है, न नष्ट होता है, तिसविषे और विकार कैसे मानिये; जैसे पत्रकी रेखा होवै, तिसके उपजने अरु नाश होने-विषे वनको कछु अधिकता और ऊनता नहीं होती , तैसे शरीरके उप-जने अरु नष्ट होने विषे आत्माको लाभ हानि कछु नहीं सब जगत् दृश्य भ्रांतिकरिकै भासता है, ज्ञानदृष्टिकरि देख, अज्ञानिवत क्यों मोहित होता है? जैसे मृगतृष्णाका जल प्रत्यक्ष भासता है, सो मिथ्या भ्रममात्र होता है तैसे ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत सब भ्रांतिमात्र है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे मिथ्या ज्ञानकरि जगत् भासता है, जैसे नौकापर बैठेको तटके वृक्षस्थान चलते दृष्टि आते हैं, तैसे भ्रमदृष्टिकरि जगत् भासता है, इस जगत्को तू इंद्रजालवत् जान, मायाकरि रचा जगत् देहपिंजर है, मनके मननकरि असत्यरूप ही सत्यकी नाई स्थित भया है और जगत् द्वैत कछु हुआ नहीं, ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है और शरीरादिक कैसे किसकी नाई स्थित कहिये पर्वत तृण आदिक जो जगत् आडंबर है, सो भ्रांतिमात्र मनकी भावना करि दृढ़ हो भासता है, असत्य ही सत्यरूप हो स्थित भया है. हे रामजी! यह प्रपंच नानाप्रकारकी रचनासंयुक्त भासता है, तौ भी अंतरते तुच्छ है इसकी कामना तृष्णात्याग करि सुखी होहु जैसे स्वप्नविषे बडे आडं-बर भासते हैं, सो भ्रांतिमात्र असत्यरूप हैं, वास्तवते कछु नहीं, तैसे यह जगत् दीर्घकालका स्वप्न है, चित्तकरि कल्पित है, देखनेबिषे बड़ा

विस्ताररूप भासता है, विचारकरिके ग्रहण करिये तौ हाथ कछु नहीं आता है, जैसे स्वप्नसृष्टि जगत्विषे कछु नहीं पाईजाती जैसे घुराणको अपना रचा गृह बंधन करता है, तैसे अपना रचा जगत् मनको दुःख देता है, ताते इसको त्याग करहु, जिस पुरुषने इसको असत्य जाना है; सो जगत्की भावना बहुरि नहीं करता, जैसे मृगतृष्णाके जलको जिसने असत्य जाना है, सो पानके निमित्त धावता नहीं, जैसे अपने मनकी कल्पी स्त्रीसों बुद्धिमान् राग नहीं करता, तैसे ज्ञानवान् जगत्के पदार्थविषे राग नहीं करता अरु जो अज्ञानी हैं, सो रागकरि बंधायमान होते हैं. जैसे स्वप्नविषे असत्य स्त्रीसों चेष्टा करते हैं, तैसे अज्ञानी असत्य जगत्को सत्य जानिके चेष्टा करते हैं, बुद्धिमान् सत्य मानिकरि नहीं करते, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे मनके मोहकरि जगत् भासता है अरु भयदायक होता है, सर्व जगत् भावनामात्र है, जैसे जलविषे चंद्रमाका प्रतिबिंब चंचल भासता है, तिसके ग्रहणकी इच्छा बालक करता है, बुद्धिमान् नहीं करता, तैसे जगत्के पदार्थकी इच्छा अज्ञानी करते हैं, ज्ञानवान् नहीं करते. हे रामजी ! यह परम गुणका समूह तुझको उपदेश किया है. तिसकी भावना करिके तू सुखी होवैगा, अरु जो मूर्ख इन वचनोंको त्यागिके दृश्यकी ओर सुखरूप जानिके लगते हैं, सो पुरुष ऐसे हैं जैसे कोऊ शीतकरि दुःखी होवै अरु प्रत्यक्ष अग्निको त्यागिकरि जलविषे अग्निके प्रतिबिंबका आश्रय करै, तिसकरि शीत निवृत्त करै सो मूढ है, तैसे आत्मविचारको त्यागिके जो जगत्के पदार्थकी सुखके निमित्त इच्छा करते हैं; सो मूढ हैं; सब जगत् असत्यरूप है मनके मननकरि रचा है, जैसे स्वप्नविषे चित्तकरि नगर भासता है अरु स्वप्नविषे नगर जलता भासै, तौ पुरुष कदाचित् नहीं जलता तैसे जगत्के नाश हुएते आत्मनाश नहीं होता. उपजने बढने घटने नाश होनेते आत्मा रहित है, जैसे बालक अपनी क्रीडाके निमित्त हस्ती घोड़ा नगर रचि लेता है अरु समेटि छोड़ता है तौ वह उपजके मिटनेविषे ज्योंका त्यों है जैसे बाजीगर बाजीको पसारता है, बहुरि लय करता है, सो उत्पत्तिलयविषे बाजीगर ज्योंका त्यों है, तैसे आत्मा जगत्की उत्पत्ति-

लयविषे ज्योंका त्यों है, तिसका कछु कदाचित् नष्ट नहीं होता, जो सब सत्य है, तौ किसीका कछु नाश नहीं होता;इस कारणते जगत्विषे हर्ष शोक करना योग्य नहीं अरु जो सब असत् है तौ भी नाश किसीका न हुआ अरु दुःख भी किसीको न हुआ, सत्य असत्य दोनों प्रकार हर्ष शोक नहीं होता, स्वरूपते किसीका नाश नहीं, सब जगत् ब्रह्मरूप है, तौ दुःख सुख कहां है, ब्रह्मसत्ताविषे कछु द्वैत जगत् बना नहीं, सब प्रत्यक्ष जो अनन्वय होता है, तौ भी असत्यरूप है, तिस असत्यरूप संसारविषे ज्ञानवान्‌को ग्रहण करने योग्य पदार्थ कोऊ नहीं, जो जगत् सब भूतविषे ब्रह्मतत्त्व है, इतर कछु नहीं त्रिलोकीविषे तौ इसी पदार्थके ग्रहण त्यागकी इच्छा करिये, जगत् सत्‌रूप होवै अथवा असत्यरूप होवै ज्ञानवान्‌को सुखदुःख कोऊ नहीं, तृतीयभ्रांति दृष्टि अज्ञानीको दुःखदायक होती है,जो वस्तु आदिअंतविषे असत्य है, सो मध्यविषे असत्य जानिये, तिसके पाछे जो शेष रहता है, सो सत्यरूप है, जिसकरि असत्य भी सिद्ध होता है, जो मोहकरि आवृत बालबुद्धि है, सो जगत् के पदार्थकी इच्छा करते हैं, बुद्धिमान् नहीं करते, बालकको जगत् विस्ताररूप भासता है, तिसकरि अपना प्रयोजन वांछते हैं बहुरि सुख दुःख भोगते हैं तू बालक मत होहु, जगत् अनित्य है, इसकी आस्था त्यागिकरि सत्यात्माविषे स्थित होहु अरु जो आपसंयुक्त संपूर्ण जगत् असत्‌रूप जानै, तौ भी विषाद कछु नहीं, जो आपसंयुक्त सब सत्य जानै तौ भी इस दृष्टिकरि हर्ष शोक नहीं, ये दोनों निश्चय सुखदायक हैं, आपसंयुक्त सब असत्यरूप जानैगा तौ दुःख नहीं होता. वाल्मीकिरुवाच– जब इस प्रकार वसिष्ठजीने कहा, तब सूर्य अस्त हुआ, सब सभा नमस्कार करिकै अपने स्थानको गईं, बहुरि सूर्यकी किरणों संग अपने आसनपर आय बैठे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे यथार्थोपदेशयोगो नाम पंचचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४६.

यथाभूतार्थबोधयोगवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जो धन स्त्री आदि नष्ट होजावैं तौ इन्द्रजालकी बाजीवत् देखिये, इसकरि भी शोकका असर नहीं होता, क्षण दृष्टिविषे आये बहुरि नष्ट होगये, तिनका शोक करना व्यर्थ है, गंधर्वनगर जो रत्नमणिकरि भूषित किया होवै, अथवा दुःखकरि दूषित किया होवै हर्षशोकका स्थान कहां है, तैसे अविद्याकरि रचे पुत्र स्त्रीधनादिक हैं, तिनके सुखदुःखका क्रम कहां है, जो पुत्रधनादिक बढैं तौ भी हर्ष करना व्यर्थ है, जैसे मृगतृष्णाका जल बढा तौ भी अर्थ सिद्ध नहीं करता, तैसे धन दारा आदिक बढैं तौ हर्ष कहां है, शोकवान् ही रहता है वह कौन पुरुष है, जो मोहमायाके बढ़े हुए शांतिमान् होवै, वह दुःखदायक है, जो मूढ हैं,सो भोगको देखिकै हर्षवान् होते हैं, अधिकते अधिक चाहता है, अरु बुद्धिमान्को तिन भोगते वैराग्य उपजता है, जिनको आत्माका साक्षात्कार नहीं भया अरु भोगको अंतवंत नहीं जाना, तिनके भोगकी तृष्णा बढ़ती है अरु जो बुद्धिमान् हैं सो भोगको आदिते अंतवंत नहीं जानते हैं, दुःखरूप जानिकरि तिसकी इच्छा नहीं करते. ताते हे राघव! ज्ञानवान्की नाईं व्यवहारविषे विचरौ, जो नष्ट होवै सो होवै, जो प्राप्त होवै सो तिसविषे हर्ष शोक न करहु तिसको यथाशास्त्र हर्षशोकते रहित भोगहु अरु जो न प्राप्त होवै, तिसकी इच्छा न करहु, यह पंडितका लक्षण है. हे रामजी! यह संसार दुःखरूप भोगकरि आया है, इसविषे मोहको प्राप्त नहीं होना, जैसे ज्ञानवान् विचरते हैं तैसे विचरना, मूढवत् नहीं विचरना, यह संसार आडंबर अज्ञानकरि रचा है, जो इसको ज्योंका त्यों नहीं देखते सो कुबुद्धि नष्ट होते हैं, जिस जिस संसारके पदार्थकी इच्छा होती है, बंधनका कारण है, तिनविषे डूबि जाता है, जो बुद्धिमान् हैं सो जगत्के पदार्थविषे प्रीति नहीं करते, जिस निश्चयकरि जगत्को असत्यरूप जाना है, सो किसी पदार्थविषे बन्धमान नहीं होता; अविद्यारूप पदार्थ तिसको

खेद नहीं देते, वस्तु बुद्धिकर खैंच नहीं सकता, जिसकी बुद्धिविषे यह निश्चय हुआ कि, सर्व मैं हौं, ऐसे जानिकै पदार्थकी इच्छा नहीं करता. हे रामजी ! शुद्ध तत्त्व जो सत्य असत्य जगतके मध्य-भाव है, तिसका अंतरते आश्रय करहु और जो अंतर बाहिर जगत् दृश्य पदार्थ हैं, तिनको मत ग्रहण करहु, इनकी आस्था त्यागिकर परमपदको प्राप्त होहु, अति विस्तृत स्वच्छरूप आत्माविषे स्थित होहु, रागद्वेषते रहित सब कार्य करहु, जैसे आकाश सब पदार्थमें व्यापक अरु निर्लेप है, तैसे सब कार्य करत निर्लेप होहु; रागद्वेषते रहित होहु, जिस पुरुष-को पदार्थविषे न इच्छा है, न अनिच्छा है, कर्मविषे स्वाभाविक स्थित है, तिसको कर्मका स्पर्श नहीं होता, कमलवत् सदा निर्लेप रहता है, देखना सुनना आदिक इंद्रियोंकरि व्यवहार होता है, ताते तुम इंद्रियों-करि व्यवहार करहु अथवा न करहु, परंतु इनविषे निरिच्छित रहो, अभिमानते रहित होइकरि आत्मतत्त्वविषे स्थित होहु, यह मैं हौं, यह मेरा है, इस मिथ्या कल्पनाते रहित सुखी होहु, इंद्रियके अर्थका सार जो अहंकार है, सो जब यह हृदयविषे न फुरैगा, तब तुम जो योग्य पदको प्राप्त होहुगे, रागद्वेषते रहित संसार समुद्रको तरि जाहुगे, जब इंद्रियोंके रागद्वेषते रहित हो, तब मुक्तिकी इच्छा न करै, तौ भी मुक्ति-रूप है. हे रामजी ! इस देहते आपको व्यतिरेक जानिकरि जो उत्तम आत्मपद है तिसविषे स्थित होहु, तब तुम्हारा परमयश होवैगा, जैसे पुष्प सुगंधित प्रगट होता है; यह संसाररूपी समुद्र है, तिसविषे वास-नारूपी जल है, तिसविषे जो आत्मवेत्ता बुद्धिरूपी बेडेपर चढते हैं, सो तरिजाते हैं अरु जो नहीं चढते सो डूबि जाते हैं, यह बोध मैं तुझको क्षुरधारकी नाईं तीक्ष्ण कहा है, सो अविद्याके काटनेहारा है, जिसको विचारकरि आत्मतत्त्वविषे स्थित होहु, जैसे तत्त्ववेत्ता आत्मत-त्वको जानिकरि व्यवहारविषे विचरते हैं, तैसे तुम भी विचरौ अज्ञानीकी नाईं नहीं विचरना, जैसे जीवन्मुक्त पुरुषको नित्य तृप्तका आचार है, तिसको अंगीकार करना, भोगविषे दीन नहीं होना, मूढके आचारवत् आचार अंगीकार न करना, जो परावर

परमात्मवेत्ता पुरुष हैं, सो न कछु ग्रहण करते हैं, न त्याग करते हैं, न किसीकी वांछा करते हैं, जैसा व्यवहार प्रारब्धवेगकरि प्राप्त होता है तिसीविषे विचरते हैं, राग द्वेष किसीविषे नहीं करते, बडा ऐश्वर्य होवै बडे गुण होवैं लक्ष्मी आदिक बडी विभूति होवै, तौ भी ज्ञानवान् अज्ञानीवत् अभिमान नहीं करते अरु महाशून्य वनविषे खेद-वान् नहीं होते, देवताका सुंदर वन विद्यमान होवै तिसकरि हर्षवान् न होवै, न किसीकी इच्छा है, न त्याग है, जैसी अवस्था आनि प्राप्त होवै, रागद्वेषते रहित तिसीविषे विचरते हैं, जैसे सूर्य समभावसों लीन विचरता है, तैसे अभिमानते रहित देहरूपी पृथ्वीविषे विचरते हैं, अब तू भी विवेकको प्राप्तहु हो, बोधके बलकरि इसविषे स्थित होहु और किसी पदार्थकी ओर दृष्टि नहीं करनी, निर्वैर निर्मल दृष्टिको ले विच-रना समभावविषे सम उत्तम भाव पृथ्वीमें स्थित होना संसारकी इच्छा दूरते त्यागिकरि यथा व्यवहारविषे विचरना, परम शांतरूप रहना. वाल्मीकिरुवाच–जब इस प्रकार निर्मल वाणीकरि वसिष्ठजीने कहा, तब निर्मलचित्त रामजीका हृदय अमृतकरि शीतल अरुपूर्ण भया, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमाकरि शीतल पूर्ण होता है, तैसे रामजी शांतिकरि पूर्ण भये.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे यथाभूतार्थबोधयोगो नाम षट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४७.

जगत्सत्यासत्यनिर्णयः।

राम उवाच–हे भगवन्! सर्व धर्म वेद वेदांतके पारज्ञ, तुम्हारे शुद्ध वचनकरि मैं स्वस्थ भया हौं, कैसे तुम्हारे वचन हैं, उदार विरक्तिरूप हैं, कोमल अरु उचित हैं, तिन तुम्हारे वचनरूपी अमृतको पानकरि मेरी तृप्ति नहीं होती. हे भगवन्! तुम राजस सात्त्विक जगत् कहने लगे

थे, सो कछु संक्षेपते कहा था, तिनविषे अवकाशको पायकरि तुमने ब्रह्माजीकी उत्पत्ति कही, तिसकरि मुझको यह संदेह उत्पन्न भया, सो हृदयविषे विस्तारको पाता भया है कि, कहूं ब्रह्माकी उत्पत्ति कमलते कही है, कहूँ आकाशते, कहूँ अंडते, कहूं जलते कही है, सो विचित्ररूप शास्त्रकरि कैसे कहा है, तुम सब संशयके नाशकर्त्ता हौ, कृपाकरि शीघ्र मुझको उत्तर कहौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! कई लक्ष ब्रह्मा हुए हैं, कई अनेक विष्णु, रुद्र होते हैं, अब भी अनेक ब्रह्मांडविषे अनेक प्रकारके व्यवहारसंयुक्त होते हैं, कई तुल्य होते हैं, कई बडे छोटे कालके होते हैं, स्वप्नजगतकी नाईं उत्पन्न होते हैं, कई तुल्य हैं, कई आगे होवैंगे, तिनविषे तुझने एक ब्रह्माकी उत्पत्ति पूछी है, सो सुन अरु यह भी अनेक प्रकारके होते हैं. कबहूं सृष्टि सदाशिवते उत्पन्न होती है, कबहूँ ब्रह्माते, कबहूँ विष्णुते, कबहूँ मुनीश्वर रचि लेते हैं, कबहूँ ब्रह्मा कमलते उपजता है, कबहूँ जलते, कबहूँ पवनते, कबहूं अंडते उपजा है, कबहूं किसी ब्रह्मांडविषे इंद्र त्रिनेत्र होता है, कबहूँ पुण्डरीकाक्ष विष्णु होता है, कबहूँ सदाशिव होता है, सृष्टिविषे पर्वत उपजते हैं, तिनकरि पृथ्वी निरंध्र होरही है, कबहूँ मनुष्यकरि पूर्ण, कबहूं वृक्षकरि पूर्ण होती है, अनेक प्रकार सृष्टिकी उत्पत्ति होती है, किसी ब्रह्माविषे मृत्युका भय होता है, कबहूँ पाषाणमय होती है, कबहूँ मांसमय होती है, कबहूँ स्वर्णमय होती है, इस प्रकार पृथ्वी होती है, कई सृष्टि ऐसी है, चतुर्दश लोक हैं किसी सृष्टिविषे कई लोक भये हैं, किसी सृष्टिविषे ब्रह्मा नहीं हुआ, इसी प्रकार अनेक सृष्टि चिदाकाश ब्रह्मतत्त्वते फुरी हैं, बहुरि लय भई हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिकरि लय होता है, आत्माविषे अनेक सृष्टि उपजिकरि लय होजाती हैं, जैसे मरुस्थलविषे मृगतृष्णाकी नदी भासती है, जैसे पुष्पविषे सुगंधि होती है, तैसे परमात्माविषे जगत है, तैसे सूर्य की किरणोंविषे त्रसरेणु भासते हैं, तिनकी संख्या कही नहीं जाती; कोऊ ऐसा समर्थ भी होवै, जो तिनकी संख्या करै परंतु ब्रह्मतत्त्वविषे जो सृष्टि फुरती हैं, तिनकी संख्या करनेको कोऊ समर्थ न होवैगा; जैसे वर्षाऋतुविषे ईखके क्षेत्रविषे मच्छर होते अरु नष्ट होजाते हैं, तैसे आत्माविषे सृष्टि उपजिकरि नष्ट होजाती

है, वह काल जाना नहीं जाता. जिस कालविषे सृष्टिका उपजना हुआ है, आत्मतत्त्वविषे नित्य ही सृष्टिका उपजना लय होता है; सो अंत कछु नहीं, जैसे समुद्रते तरंग फुरते हैं, उनते पूर्व और बहुरि उनते पूर्व और इसी प्रकार आदि अरु अन्त कछु जाना नहीं जाता जैसे आत्मविषे सृष्टिका आदि अन्त कछु नहीं, देवता दैत्य मनुष्य आदिक कई उपजिकरि लय भये हैं. कई आगे होवैंगे, जैसे यह ब्रह्मांड ब्रह्माकरि रचा है, तैसे अनेक ब्रह्मांड होगये हैं, जैसे अनेक घटिका एक वर्षविषे व्यतीत होती हैं तैसे बीते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग होते हैं, तैसे ब्रह्मतत्त्वविषे असंख्य जगत् होते हैं, कई सृष्टि हो बीती हैं कई अब होती हैं, कई आगे होवैंगी, जैसे मृत्तिकाविषे घट होता है, जैसे वृक्षविषे अनेक पत्र होते हैं, बहुरि मिटि जाते हैं, जैसे जबलग समुद्र है, तिसविषे जल है, तबलग ऊर्मी तरंग आवर्त निवृत्त नहीं होते. कई उपजते हैं, कई लय होते हैं, तैसे ब्रह्म चिदाकाश है, तबलग त्रिलोकीजगत् उपजिकरि लय होते हैं, जबलग अपने स्वरूपका प्रमाद है, तबलग विकारसंयुक्त जगत् फुरते हैं बडे विस्तारसंयुक्त भासता है, जब आत्मस्वरूप दृष्टिकरि देखैगा, तब कोऊ विकार न भासैगा, जबलग आत्मदृष्टिकरि नहीं देखा तबलग आभासगतिविषे उपजते अरु मिटते हैं, न सत्य कहे जाते हैं; न असत्य कहाते हैं वास्तवते ब्रह्म अरु जगतविषे कछु भेद नहीं, समुद्रविषे तरंगकी नाईं अभेद है, भिन्न होइकरि जो भासते हैं, सो अविद्याकरि भासते हैं, विचार कियेते निवृत्त होजाते हैं, चरअचररूप जगत् नानाप्रकारकी चेष्टासंयुक्त अनंत सर्वेश्वर आत्माविषे फुरते हैं, सो भिन्न नहीं. जैसे शाखा फूल फल वृक्षते भिन्न नहीं, भिन्न भासते हैं तौ भी अभिन्न हैं, तैसे आत्माते जगत् भिन्न भासते हैं, तौभी भिन्न नहीं, आत्मरूप हैं. हे रामजी ! मैं जो तुझको चतुर्दश भुवनसंयुक्त सृष्टि कही है, कोऊ अल्प कनिष्ठरूप है, कोऊ बडे हैं, सो सब परमात्मा आकाशविषे उपजते हैं अरु वहीरूप हैं, कबहूं ब्रह्मतत्त्वसों प्रथम ब्रह्म आकाश उपजता है सो उपजिकरि प्रतिष्ठाको पाता है, तिसते ब्रह्मा उपजता है, तब तिसका नाम आकाशज होता है, कबहूं प्रथम पवन उपजता है, प्रतिष्ठित होता है, तिसते ब्रह्मा उपजता है,

सो वायुज नाम हुआ, प्रजापतिकरि कबहूं होता है, कबहूं प्रथम जल उत्पन्न होता है, जलस्थित भया, तिसते ब्रह्मा उपजिकरि जलज नाम होता है, कबहूं प्रथम पृथ्वी उत्पन्न भई है, सो विस्तार भावको प्राप्त भई है, तिसते ब्रह्मा उपजा है, तब पार्थिवज नाम हुआ है, अग्निते उपजा तब अग्निज नाम पाया है. हे रामजी ! यह पंचभूतते ब्रह्माकी उत्पत्ति भई सो तुमको कही, जब चार तत्त्व पूर्ण होते हैं, पंचम तत्त्व सबते बढ़ता है, तब तिसते प्रजापति उपजकरि अपने जगत्‌को रचता है कबहूँ ब्रह्मतत्त्वते आप ही फुरि आता है, जैसे पुष्पते सुगंधि फुरि आती है तैसे ब्रह्माजी उपजिकरि पुरुषभावनाते पुरुषरूप स्थित होता है, तिसका नाम स्वयंभू होता है, कबहूँ पुरुष जो विष्णुदेव है, तिसकी पीठसों उपजि आता है, कबहूँ नेत्रते प्रगट होता है, तब प्रजापति नेत्रज होता है कबहूं नाभिते उत्पन्न होता है तब पद्मज होता है, वास्तवते सब माया-मात्र है, स्वप्नवत् मिथ्यारूप ही सत्य हो भासता है, जैसे मनोराज्य-सृष्टि भासि आती है, तैसे यह जगत् है, जैसे नदीविषे तरंग अभिन्नरूप फुरते हैं, तैसे आत्मासों अभेद जगत् फुरता है, वास्तवते कछु है नहीं जब शुद्ध सत्ताका आभास संवेदन फुरता है, तब वही जगत्‌रूप हो भासती है, जैसे बालकके मनोराज्यविषे सृष्टि फुरती है, सो वास्तव कछु नहीं, तैसे यह है, कबहूं शुद्ध आकाशविषे मननकला फुरती है, तिसते स्वर्णका अंड उपजता है, अंडते ब्रह्मा उपजि आता है, कबहूं पुरुष विष्णुदेव जलविषे वीर्य डारता है, तिसते पद्म उपजता है, तिसी पद्मसों ब्रह्मा प्रगट होता है, कबहूँ सूर्यसों फुरि आता है, इसी प्रकार विचित्ररूप रचना ब्रह्मपदते उपजती है, बहुरि लय होजाती है, तेरे दिखानेके निमित्त मैंने अनेक प्रकारकी उत्पत्ति कही है, सो सब मनके फुरणेमात्र है, और हुआ कछु नहीं. हे रामजी ! तेरे प्रबोधके निमित्त मैंने सृष्टिका क्रम कहा है अरु नहूँका रूप है, सो मनोमात्र है, उपजि उपजि करि लय होजाती है, बहुरि दुःख, बहुरि सुख, बहुरि अज्ञान, बहुरि ज्ञान; बहुरि बंध, बहुरि मोक्ष होते हैं, कबहूँ मित्र, कबहूं शत्रु होते हैं बहुरि मिटि जाते हैं, जैसे दीपकका प्रकाश उपजिकरि नष्ट होजाता है, तैसे देह उपजि

करि नष्ट होजाते हैं, कालकी ऊनता अरु विशेषता यही है कि, कोऊ चिरकालपर्यंत रहता है, कोऊ शीघ्र ही नष्ट होजाता है; परंतु सब ही विनाशरूप हैं, ब्रह्माते आदि कीटपर्यंत जेते कछु आकार भासते हैं, सो कालके भेदको त्यागिकारि देख कि, सब नाशरूप हैं, कबहूँ सत्ययुग, कबहूं त्रेतायुग, कबहूं द्वापर, कबहूं कलियुग आता है, बहुरि बहुरि वही आते हैं अरु जाते हैं, इसी प्रकार कालका चक्र पड़ा भ्रमता है, बहुरि मन्वंतरका आरंभ होता है, कालकी परंपरा व्यतीत होती है. जैसे प्रातःकालविषे बहुरि प्रातःकाल आता है, तैसे जगत्की वही वही गति है, बहुरि अंधकार, बहुरि प्रकाश होता है, ब्रह्मतत्त्वते स्फुरणरूप होइकरि बहुरि लीन होता है, जैसे तप्त लोहेते चिनगारें उड़ते हैं, सो लोहविषे होते हैं, तैसे यह सब भाव चिदाकाशते उपजते हैं, सो चिदाकाशविषे स्थित हैं, कबहूँ अव्यक्तरूप होते हैं, कबहूं प्रगट होते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग अरु वृक्षविषे पत्र होते हैं, तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे नेत्रदूषणकरि आकाशविषे दो चंद्रमा भासते हैं, तैसे चित्तके फुरनेकरि आत्माविषे जगत् भासता है, तिसीविषे स्थित अरु लय होते हैं, जैसे चन्द्रमाकी किरणें उत्पन्न स्थित होइकरि लय होती हैं, तैसे आत्माविषे जगत् है, सो स्वरूपते कहूं आरंभ नहीं हुआ, मनके फुरणेकरि भासता है. हे रामजी ! आत्मा सर्वशक्ति है, जो शक्ति तिसते फुरती है, सो तिसीका रूप हो भासता है, जगत् सब असत्यरूप है, जिसके चित्तविषे महाप्रलयकी नाईं असत्यका निश्चय है, सो पुरुष बहुरि संसारी नहीं होता, स्वरूपविषे जुडा रहता है, ऐसे महामति ज्ञानवान्की दृष्टिविषे सर्व ब्रह्मका निश्चय होता है, हमको यही निश्चय है कि, संसार नहीं, सर्व ब्रह्मतत्त्व ही सदा विद्यमान है अरु अज्ञानीकी दृष्टिविषे जगत् निरंतर सत्यरूप है, संसार उसको विद्यमान है, सो बहुरि बहुरि उपजिकरि नष्ट होता है, स्वरूपते उपजने विनशनेकरि भी नष्ट नहीं होता; परंतु अज्ञानी जगत्को असत्य नहीं जानते, सदा स्थित जानते हैं, तिस करि सब नष्ट होते हैं, सब पदार्थ जगत्के विनाशरूप हैं, परंतु दृश्यकरि जगत् असत्य नहीं भासता, जो पदार्थकी सत्यता दृढ होगई है,

सो नाशरूप है, रहना किसीका नहीं, कोऊ पदार्थ सत्य भासता है, कोऊ असत्य भासता है, इस जगतविषे ऐसा कौन पदार्थ है, जो कलनारूप करनेकरि विस्ताररूप ब्रह्मविषे न बनै, यह जगत् महाप्रलयविषे नष्ट हो-जाता है, बहुरि उत्पन्न हो आता है, बहुरि जन्म अरु मरना होता है, सुख, दुःख, दिशा, आकाश, मेघ, पृथ्वी, पर्वत, सब बहुरि बहुरि उपजि आते हैं. जैसे सूर्यकी प्रभा उदय अस्तको प्राप्त होती रहती है, तैसे सृष्टि उदय अस्त होती भासती है, बहुरि देवता बहुरि दैत्य लोकांतर-क्रम होते हैं, स्वर्ग, मोक्ष, इंद्र, चंद्रमा, नारायण, देव, पर्वत, सूर्य, वरुण, अग्नि आदिक लोकपाल बहुरि बहुरि हो आते हैं, सुमेरु आदिक स्थान फुरि आते हैं, तमरूप जो हस्ती है, तिनके भेदनेको सूर्यरूप केसरी सिंह उपजि आते हैं, स्वर्ग, इंद्र, अप्सरागण अमृतकरि आते हैं. धर्म, अर्थ, काम मोक्ष, क्रिया, कर्म, शुभअशुभरूप होआते हैं. यज्ञ दान, होम आदिक सर्व क्रियाकरि संयुक्त जीव संसारी होते हैं, शुभकर्म करनेहारे स्वर्ग-विषे विचरते हैं, सुख भोगते हैं, पुण्यके क्षीण हुएते उनको गिराय देते हैं, वे मृत्युलोकविषे आते हैं, इस प्रकार कर्म करते हैं, उपजते अरु नष्ट होते हैं. स्वर्गरूपी कमल है, तिसविषे इंद्ररूपी भँवरा है, तिस स्वर्गकी सुगंधि लेकरि वह इंद्र चलता रहता है, अपर इंद्ररूपी भँवरा स्वर्गकम-लकी सुगंधिको लेने आता है, जेता पुण्यकर्म किया होता है, तेता काल सुख भोगिकरि फिर नष्ट होजाता है अरु सत्ययुग आते हैं, सर्वदेश, काल, क्रिया, द्रव्य, जीव उपज आते हैं, जैसे कुलालचक्रकरिकै बासन बनता है, तैसे चित्कला फुरणेकरि जगत्के अनेक पदार्थ उत्पन्न करती है, सुंदर स्थान जीव संयुक्त होते हैं, बहुरि नष्ट होजाते हैं, असत्यमात्र जगत्काल जीवितते रहित शून्य मशान होजाते हैं, कुलाचल पर्वतके आकारवत् मेघ जल वर्षा करते हैं, तिसविषे जीव बुद्बुदेरूप होइकरि स्थित होते हैं, द्वादश सूर्याग्नि उदय होते हैं, शेषनागके मुखते अग्नि निक-सता है, तिसकरि सब जगत् दग्ध होता है, बहुरि अग्निकी ज्वाला शांत होजाती है, एक शून्य आकाश ही शेष रहता है, रात्रि होजाती है, जब रात्रिका भोग चुकता है, बहुरि जीव जीर्ण देहकरि संयुक्त मनरूप

ब्रह्मा रचि लेता है, इस प्रकार शून्य आकाशविषे मन जगत् कोरचता है, जैसे शून्य स्थानविषे गंधर्वमायाकारि नगर रचि लेता है, तैसे जगत्को मन रचि लेता है, बहुरि प्रलय होजाता है, इस प्रकार जगत्गण उपजिकारि महाप्रलयविषे नष्ट होते हैं, ब्रह्माके दिन क्षय हुएते फिर जब ब्रह्माका दिन होता है, तब बहुरि रचि लेता है; बहुरि महाप्रलयविषे ब्रह्मादिक सब अंतर्धान होजाते हैं, इस प्रकार प्रलय महाप्रलय अनेक जगत्गण व्यतीत होवैं हैं, महादीर्घ मायारूपी कालचक्र पडा फिरता है, तिसविषे मैं तुझको सत्य क्या कहौं, असत्य क्या कहौं, सर्व भ्रांतिरूप दाशूरके आख्यानवत् जगत् है, कल्पनामात्र रचित चक्र है, वस्तुते शून्य आकाशरूप है, बडे आरंभसंयुक्त विस्ताररूप भासता है, तौ भी असत्यरूप है, जैसे भ्रमकारि दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे यह जगत् मूढके हृदयविषे सत्य भासता है, तुम मूढ होना नहीं, ज्ञानीके जैसा विचार कारि जगत्को असत्य जानना.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे जगत्सत्यासत्यनिर्णयो
नाम सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४८.

दाशूरोपाख्याने वनोपरुदनवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! भोग अरु ऐश्वर्यकरिकै जो चित्त खैंचा है सो नाना प्रकार क्रियाके आरंभ करते हैं. राजस, तामस, सात्त्विक कर्म करते हैं, वह मूढ आत्मा शांतिको नहीं प्राप्त होता; जब भोगकी तृष्णाते रहित होवै, तब आत्माको देखै, जिन पुरुषोंको इंद्रियगण वश नहीं करिसकते सो आत्माको प्रत्यक्ष हस्तविषे बिल्वफलवत् देखते हैं, जिन पुरुषोंने विचार करिकै अहंकाररूपी मलिन शरीरका त्याग किया है, तिनका शरीर जगत्रूप होजाता है, जैसे सर्प कंचुकीको त्यागता है अरु नूतन पाता है, तैसे मिथ्या शरीरको त्यागिकारि आत्मविचारते आत्मशरीरको पाता है, ऐसे जो निरहंकार आत्मदर्शी पुरुष हैं, सो जगत्के पदार्थविषे

आसक्त भासते हैं, तौ भी जन्म मरणको नहीं पाते, जैसे अग्निकरि भूना बीज क्षेत्रमें नहीं उपजता, तैसे ज्ञानवान् बहुरि जन्म नहीं पाते अरु जो अज्ञानी भोगविषे आसक्तबुद्धि हैं. सो मन अरु शरीरके दुःखकरि दुःखी होते हैं, बारंबार जन्म अरु मरणको पाते हैं, जैसे दिन होता है, बहुरि रात्रि होती है, तैसे वे जन्ममरण पाते हैं, ताते तुम अज्ञानीकी नाईं नहीं होना, व्यवहारचेष्टा जैसे अज्ञानीकी होती है; तैसे करौ, परंतु अंतरते भोगादिककी ओर चित्तको न देहु, आत्मपरायण रक्खौ. राम उवाच–हे भगवन् ! तुम जो कहा संसारचक्र दाशूरके आख्यानवत् है, कल्पना करिकै रचित है, तिसका आकार वस्तुते शून्य है,यह तुमने क्या कहा!इसको प्रगट करि कहौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! वर्णनके निमित्त मैंने जगत् मायारूप तुमसे कहा है अरु दाशूरके प्रसंगसे कछु प्रयोजन न था, परंतु तैंने पूछा है, तौ अब सुन. हे रामजी ! इस सृष्टि विषे मगध नाम देश है, सो विचित्र वृक्ष फलकरि पूर्ण है, बडा कदंब वनस्पति ताल करिकै जंगल विचित्ररूप पक्षी सहित है, मनके मोहनेहारा चारों ओरते निरंध्र कमल पुष्पसंयुक्त तडाग बगीचे अति सुंदर देश है,तहां एक पर्वतके तटके ऊपर निरंध्ररूप केलिका खण्ड है अरु और अनेक वृक्ष जो फूल फलकरि पूर्ण जीवके जीवनरूप हैं, कोकिला आदिक पक्षी शब्द करते हैं, तहां नगरविषे एक परमधर्मात्मा तपस्वी होता भया,दाशूर तिसका नाम था, महातपकरि संयुक्त कदंबवृक्षपर बैठिकरि वीतराग महाबुद्धिमान् तप करता था. राम उवाच–हे भगवन् ऋषीश्वर ! वह तपस्वी वनविषे किस निमित्त आया था अरु कदंबवृक्षपर किस निमित्त बैठा सो कारण कहौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! शरलोमा नामक ऋषीश्वर तिसका पिता होता भया, मानो दूसरा ब्रह्मा था, सो तिसपर्वतपर रहता था, तिसके गृहविषे दाशूर नामक पुत्र होता भया, जैसे बृहस्पतिके गृहविषे कच हुआ, तैसे शरलोमाने पुत्रसंयुक्त वनविषे चिरकाल व्यतीत किया, तहाँ जगके क्षीण भोगकरि देहका त्याग किया अरु स्वर्ग लोकको गमन करत भया, जैसे पक्षी आलयको त्यागिकरि आकाशमें उड़ता है, तिस वनविषे दाशूर एका-एकी रहिगया, पिताके वियोगकरि रुदन करत भया, जैसे कुंज वियोग-

कारि कुम्हलाती है, जैसे हिमऋतुविषे कमलकी शोभा नष्ट होजाती है, तैसे दीन हो गया, तब वहां अदृष्ट शरीर वनदेवी थी, सो दयाकारि आकाशवाणी करत भई. हे ऋषिपुत्र बुद्धिमन् ! अज्ञानीकी नाईं क्या रुदन करता है ? यह संसार सर्व असत्‌रूप है, तू इस संसारको देखता नहीं, यह तौ नाशरूप महाचंचल है, सब काल उत्पन्न अरु विनाश होता है, कोऊ पदार्थ स्थित नहीं रहता, ब्रह्मातें आदि कीटपर्यंत जेता कछु जगत् तुझको भासता है, सो सब नाशरूप है, इसविषे संदेह कछु नहीं; तातें तू पिताके मरनेका विलाप मत कर, यह बात अवश्य इसी प्रकार है, जो उत्पन्न भया है, सो नष्ट होवैगा, स्थिर कोऊ नहीं रहैगा, जैसे सूर्यउदय होता है, बहुरि अस्त होता है. हे रामजी ! जब इस प्रकार अशरीर देवीकी वाणी दाशूरने सुनी, तब रक्तनेत्र दाशूर धैर्यको प्राप्त भया, जैसे मेघका शब्द सुनकारि मोर प्रसन्न होता है, तैसे शांतिमान् होकारि यथाशास्त्र पिताकी जो क्रिया थी, सो सब करत भया. तिसके अनंतर सिद्धताके निमित्त तत्पदका उद्यम करत भया. ब्राह्मणका जो कर्म है तप, विद्या, सो सब शीख तिसके अध्ययन कारि श्रोत्रिय भया था, परंतु अज्ञानहृदय था, ज्ञानी न था, ऐसा श्रोत्रिय होइकारि तपके निमित्त उठि विचार किया, कि कोऊ पवित्र स्थान होवै, तहां जाय तप करौं, देखता देखता पृथ्वीविषे किसी स्थानमें चित्त विश्रांतिमान् न भया, सब पृथ्वी उसको अशुद्ध दृष्टि आई, कहूं कोऊ विघ्न भासै इस प्रकार सब पृथ्वीको अशुद्ध देखिकारि विचारत भया, सो और स्थान तौ सब अशुद्ध हैं, परंतु वृक्षकी शाखापर बैठि तप करौं, ऐसा कोऊ उपाय होवै जो वृक्षकी शाखाके अग्रभागविषे मैं स्थिति पाऊं ऐसे चिंतनकारि अग्नि प्रज्वलित कारि अरु अपने मुखका मांस काटिकारि होमने लगा, तब सब देवताओंका मुख जो अग्नि है, सो विचारत भया कि, ब्राह्मणका मांस मेरे मुखविषे न आवै, तब अरुचि जैसे देह धारिकारि ब्राह्मणके निकट आया अरु कहत भया, जैसे ब्रह्माको सूर्य कहै, बडे प्रकाशशरीरको धरके अग्नि कहता भया, हे ब्राह्मणकुमार ! जो कछु तुझको वांछित वर है सो माँग जैसे भंडारको खोलिकारि मणि लेता है, तैसे मुझसों वर लेहु, जब अग्निने ऐसे कहा; तब दाशू-

रने पुष्प धूप सुगंधि आदिकारि अग्निका पूजन किया अरु प्रसन्न होइकरि कहत भया. हे भगवन् ! प्राणाहुतिके पवन शरीरसों मैंने तप करनेके निमित्त उद्यम किया है, सो और शुद्ध स्थान कोऊ नहीं मुझको भासता है अरु मैं चाहता हौं कि, इस वृक्षकी अग्र शिखाविषे स्थित होनेकी मुझको शक्ति होवै, यहां बैठिकारि तप करौं यह वर देहु, जब इस प्रकार मुनिपुत्रने कहा तब अग्निदेवने कहा, ऐसे ही होवै, इस प्रकार कहिकारि अंतर्धान होगया, जैसे संध्याकालके मेघ अंतर्धान होजाते हैं तब वरको पायके ब्राह्मणकुमार प्रसन्न भया. जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा पूर्ण कलाकारि प्रसन्न होता है तैसे भया, जैसे चंद्रमाके प्रकाशको पायकारि कमलिनी शोभती है तैसे वरको पायकारि शोभता भया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दाशूरोपाख्याने वनोपरुदनं नामाष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ४९.

दाशूरकदंबवृक्षवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! इस प्रकार वरको पायकारि दाशूर कदंबवृक्षके ऊपर चढनेकी इच्छा करता भया, कैसा है वृक्ष, अद्भुत सुन्दर बड़ा विस्तार है जिसका, ऐसे वृक्षको देखत भया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दाशूरकदंबवृक्षवर्णनं नामैकोनपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ४९ ॥

पंचाशत्तमः सर्गः ५०.

दाशूरदिगवलोकनम् ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! उवृक्षको देखिकै बुद्धिमान् दाशूर वृक्षके टासके अग्रऊपर जाय बैठा, नूतन कमल पत्र ऊपर खिलते देखने लगा, दिशाका कौतुक चंचलरूप देखा, दृश्यरूप मानो चंचल पुतली है,

श्याम आकाश तिसका शीश है, तिसपर श्याम केश ही प्रकाशरूप है. पाताल तिसके चरण हैं मेघरूपी वस्त्र है, पुष्पवत् गौर अंग है, ऐसी दृश्यरूपी एक स्त्री है, समुद्र कैलास तिसके भूषण हैं, प्राणरूपी फुरणेते जल चलता है, सो मानों उसका झनकार है, मोहरूपी शरीर वनस्पति रोम हैं, सूर्य चंद्रमा जिसके कुंडल हैं, पर्वत बेडे हैं; पवन प्राणवायु है, दिशा हस्त हैं, समुद्र आरसी है, सूर्यादिक उष्णता तिसके पित्त हैं, चंद्रमा कफ है, ऐसी त्रिलोकीरूप एक पुतली है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दाशूरोपाख्याने दिवगलोकनं नाम पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपंचाशत्तमः सर्गः ५१.

दाशूरसुतबोधवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! तिसके ऊपर स्थित होइकरि वह तप करने लगा, तहां तिसका नाम कदंबदाशूर हुआ, एक क्षण दिशाको देखिकै वहांते वृत्तिको खैंचत भया, पद्मासन बांधिकरि मनको एकाग्र किया सो दाशूर परमार्थपदते अज्ञात था, फलकी कृपणताकरि कर्मांतरविषे स्थित था, फलकी ओर मन था अरु जिस वृक्षका पत्र आकाशको लगता था, उस पत्रके ऊपर स्थित भया अरु मनकरि यज्ञका आरंभ किया, जेती कछु सामग्री विधि थी, सो सब यथाशास्त्र मनकरि करत भया, दश वर्ष मनविषे व्यतीत किये, सर्व देवताओंका पूजन किया, गोमेध, अश्वमेध, नरमेध सब यथाविधि संयुक्त मनकरि करत भया, ब्राह्मणोंको बहु दक्षिणा दी, इस प्रकारते समय पायकरि उसका अंतःकरण शुद्ध भया, विस्तीर्ण निर्मल चित्तविषे स्थित भया, बलात्कारसों ज्ञान उसके हृदयविषे प्रकाशित भया, आत्माके आगे वासना मलिन आवरण था, सो नष्ट होगया, जैसे शरत्कालविषे तडाग निर्मल होता है, तैसे मुनीश्वरका चित्त संकल्पते रहित भया, तब वह जो मुनीश्वर वृक्षपर टासके अग्रमें बैठा था, तहां एक वनदेवीको अग्र-

भागविषे देखत भया, बडे विशाल नेत्र अरु चपलरूप पुष्पकी नाईं दंत कामदेवकी नाईं महासुंदर शरीर अरु कामके मदकारि पूर्ण नील कमलकी नाईं लोचन, मनके हरनेहारी है, तिसको मुनीश्वर कहता भया अरु वह नम्रभूत होइकारि देखत भई, जैसे कोकिला कुसुमकारि पूर्ण वनलताके आगे नम्र होवै, तैसे उसको कहत भया. हे कमलनयनि ! तू कौन है, कैसी तू शोभितरूप है अरु इस पुष्पकारि संयुक्त लताविषे किस निमित्त आय स्थित भई है? जब इस प्रकार मुनीश्वरने कहा, तब कामदेवको मोहनेहारी गौरी बोलत भई. हे मुनीश्वर ! जो पदार्थ इस पृथ्वीविषे बडे कष्टकारि प्राप्त होता है, सो महापुरुषकी कृपाकारि सुगम प्राप्त होता है, हम इस वनके देवता हैं लीला करते फिरते हैं अरु जिस निमित्त मैं तुम्हारे आगे आई हौं सो सुनो. हे मुनीश्वर ! पिछले दिनकी जो चैत्रशुद्ध त्रयोदशी थी, तिस दिन इंद्रके नंदनवनमें उत्साह हुआ था, तब सब वनदेवियां एकत्र भईं थीं त्रिलोकीमें आगमन किया था, तहां सब देवियां पुत्रसंयुक्त बडे पुष्पकारि विलासक्रीडा करत भईं अरु मैं अपुत्र थी, तिस कारणते मैं दुःखित भई अरु दुःखके निवारने अर्थ तुम्हारे पास आई हौं, तुम अर्थके सिद्धकर्ता हो, बडे वृक्षपर तुम स्थित हो मैं अनाथ पुत्रकी वांछाकारि तुम्हारे निकट आई हौं, ताते मुझको पुत्र देहु अरु जो न देहुगे तो मैं अग्नि प्रज्वलित कारि जलि मरौंगी, इस प्रकार पुत्रका दुःख दाहकारि निवृत्त करौंगी. हे रामजी ! जब इस प्रकार वनदेवीने कहा, तब मुनीश्वरने हँसकारि कहा, अरु दया कारिकै हस्तमें पुष्प दिया. हे सुंदरि ! तू जा, तुझको एक मास उपरांत पूजने योग्य अरु महासुन्दर पुत्र होवैगा, परंतु तैंने जो इच्छा धारी थी, जो पुत्र न प्राप्त होवै तौ जलि मरौंगी, तिसकारि अज्ञानी पुत्र होवैगा, यत्नकारि ज्ञान तिसको प्राप्त होवैगा, जब इस प्रकार मुनीश्वरने कहा, तब प्रसन्न होइकारि वनदेवी कहत भई. हे मुनीश्वर ! मैं यहां रहिकारि तुम्हारी टहल करौंगी, परंतु मुनीश्वरने तिसका त्याग किया अरु कहा, हे सुंदरि ! तू अपने स्थानविषे जाय रह, तब वह अपनी वनदेवीविषे जाय रही, तिसको समय पाय पुत्र उत्पन्न हुआ, जब दश वर्षका बालक

भया, तब मुनीश्वरके निकट ले आई, आयकारि पुत्रसंयुक्त दोनोंने प्रणाम किया अरु पुत्रको मुनीश्वरके आगे स्थापन कारि कहत भई. हे भगवन् ! यह कल्याणमूर्ति बालक है सो तुम हम दोनोंका पुत्र है, इसको मैंने संपूर्ण विद्या शिखाई है अरु परिपक्व किया है सर्वका वेत्ता भया है, परंतु केवल ज्ञानको प्राप्त नहीं भया, ताते जिसकारि यह संसारयंत्रविषे बहुरि दुःख न पावै, सो ज्ञान कृपाकारि तुम इसको उपदेश करौ. हे प्रभो ! जो शुभकुलविषे उपजा होवै अरु चाहै, मेरा पुत्र मूढ रहै, सो ऐसी बात कौन है ? हे रामजी ! जब इस प्रकार देवीने कहा, तब मुनीश्वरने कहा, इसको तुम यहां छोडि जाहु, तब वह देवी छोडिकारि गमन करत भई अरु बालक पिताके पास रहा, सो बडे यत्नकरिकै तिसको ज्ञानकी प्राप्ति भई, नानाप्रकारके उक्त आख्यान, इतिहास, अरु अपने दृष्टांत कल्पिकारि चिरपर्यंत पुत्रको पढाता भया, वेदवेदांतका निश्चय अनुद्वेग होइकारि उपदेश किया, विस्तारकरिकै कथाके क्रम जो अनुभव बडे गूढ अर्थ हैं सो कहे, जो अपने अनुभवते प्रत्यक्ष हैं, सो बलकरिकै उपदेश किया शृंगार आदिक जो अष्ट कर्म हैं, तिनते रहित परमार्थतत्त्वको उपदेश किया, जो अर्थ भये कहना है, सो महात्मापुरुषने इसको उपदेश किया, तिसकारि जागा अरु शांत आत्मा होता भया, जैसे मेघके शब्दकारि मोर प्रसन्न होता है, तैसे वह बालक प्रसन्न भया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दाशूरसुतबोधनं नामैकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपंचाशत्तमः सर्गः ५२.

खोत्थवैभववर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! तब मैं भी कैलासवाहिनी गंगाजीके स्नानको चला जाता था; अदृष्ट शरीरसंयुक्त आकाशकी वीथीमें सप्तर्षि मंडलते चला था, जिस वृक्षपर वह बैठे थे, तिसके पाछे मैं आया, तब कछुक शब्द श्रवण किया, वनविषे जो वृक्ष हैं, तिनके ऊपर छिद्रसों शब्द

होता है, जैसे मूँदे कमलसों भँवरेका शब्द होता है तैसे वृक्षके अग्रसों शब्द श्रवण किया, जो कहता है, हे पुत्र बुद्धिमान् ! तू श्रवण कर, मैं तुझको वस्तुके निरूपणनिमित्त आश्चर्याख्यान कहता हौं. एक राजा होता भया, सो महापराक्रमी अरु त्रिलोकीविषे उसका प्रसिद्ध नाम खोत्थ बड़ा लक्ष्मीवान् जगत्की रचना क्रम वह करता है अरु सब मुनि जो जगत्विषे बड़े नायक हैं सो भी उत्तम चूडामणिकरिकै तिसको शीशविषे धरते हैं, अरु कर्म जो करता है, सो सहस्र असंख्य हैं, नानाप्रकारके आश्चर्य व्यवहार करता है, अरु तिस महात्मा पुरुषको त्रिलोकीविषे किसीने वश नहीं किया, सहस्र ही तिसके आरंभ हैं, सुख अरु दुःखको देनेहारा है, तिसके आरंभकी संख्या कछु कही नहीं जाती, जैसे समुद्रके कल्लोलतरंगकी कछु संख्या कही नहीं जाती, तैसे उसके आरंभ हैं अरु उसका जो वीर्य पराक्रम है, सो किसी शस्त्र अस्त्र अग्निकरि छेदा नहीं जाता, जैसे आकाशको मुष्टिप्रहारकरि तोडि नहीं सकता तैसे वह है, बडी विस्तृत तिसकी भुजा हैं, अरु लीलाकरि आरंभको रचता है, तिसके आरंभ दूर करनेको कोऊ समर्थ नहीं, इंद्र विष्णु सदाशिव भी समर्थ नहीं. हे महाबाहो ! उत्तम अधम मध्यम करिकै तीन उसके देह हैं, दिशाको भरि रहे हैं, तीन देहकरि जगत्विषे पसरि रहा है, अरु बडे विस्ताररूपी आकाशते उत्पन्न भया है अरु तहां ही शरीरविषे स्थित भया है, जैसे आकाशका पक्षी आकाशविषे रहता है, जैसे पवन आकाशविषे है, तैसे तिस पुरुषने तिस परमआकाशविषे बगीचे संयुक्त एक स्थान अपनी क्रीडाका रचा है, पर्वतके शिखरमें मोतीकी वल्लियां रची हैं, सप्त बावडियां करी हैं, तिनकरि स्थान शोभता है, दो दीपक रचे हैं, जो तेल अरु बातीते रहित प्रकाशते हैं, सो शीत अरु उष्णरूप हैं, कबहूं अधको, कबहूं ऊर्ध्वको नगरविषे भ्रमते हैं; मूर्ख वरांकगण रचे हैं, कोऊ गण ऊर्ध्वस्थित हैं, कोऊ मध्य, कोऊ अधविषे स्थित हैं, कई दीर्घकालकरि नष्ट होते हैं, कई शीघ्र ही नष्ट होजाते हैं, कई वस्त्रकरि आच्छादित हैं कई वस्त्ररहित हैं, नव द्वारकरि स्थान किया है, तिसमें निरंतर बहुत वृक्ष रोपे हैं, पंच दीप देखनेनिमित्त किये हैं, तीन स्तंभ किये हैं,

तिनविषे और छोटे स्तंभ किये हैं मूलमें तिनऊपर लेपन किया है, पादतलीकारि संकुली किये हैं, महामायाकारि तिस राजाने वह नगर रचा है, नगरकी रक्षानिमित्त सेना रची है, एक नीति देखनेवाले यक्ष हैं, विवरक गणकरी वह चलते नाना प्रकारकी क्रीडा करते हैं, तिन शरीरकारि सब ठौरविषे विचरता है, यक्ष सब ठौरविषे समीप रहता है, लीलाकारि एक स्थानको त्यागिकारि और स्थानविषे जाय चेष्टा करता है, कबहूँ इच्छा होती, तब चंचल चित्तसों भविष्यत पुरको रचिकारि तिसविषे स्थित होता है, भयकारि वेष्टित हुआ तहांते उठि आता है, वेगकारिकै गंधर्व नगरको रचता फिरता है, जब इच्छा करता है कि, मैं उपजों तब उपजि आता है, जब इच्छा करता है कि, मैं मारि जाऊं; तब मारि जाता है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, बहुरि लय होजाते हैं, इस प्रकार राजा बडे व्यवहारको करता है; वारंवार रचना कारिकै कबहूँ आप ही रुदन करने लंगता है, मैं क्या करौं मैं अज्ञानी हौं, मैं दुःखी हौं, चित्तसों आतुर होता है, ऐसे विचार कारिकै कबहूँ उदय होकारि बडा स्थूल होजाता है, जैसे वर्षाकालकी नदी बढती है, तैसे बढिकारि आपको सुखी मानता है, विस्तारको पायकारि चलता फिरता है, बडे प्रकाशकारि प्रकाशता है, तिस महीपतिकी बडी महिमा है, उचितरूप होइकारि नगरमें स्थित है।

इतिश्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे खोत्थवैभववर्णनं नाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ५३.

संसारविचारवर्णनम्।

हे रामजी! जब इस प्रकार दाशूरने कहा,तब वृक्षके अग्रभागपर बैठे पुत्रने प्रश्न किया. पुत्र उवाच—हे भगवन्! वह खोत्थ राजा है कौन? जगतविषे तिसकी कीर्ति प्रसिद्ध है अरु कौन नगर तिसने रचा है, जो भविष्यत नगर विषे रहता है, रहना तौ वर्तमानविषे होता है,

भविष्यतविषे कैसे रहता है, यह विरुद्ध अर्थ कैसे बनता है? इस वचनकरि मेरी बुद्धि मोहित भई है. दाशूर उवाच- हे पुत्र! मैं तुझको यथार्थ कहता हौं तू श्रवण करु, जिसके जाननेते संसार चक्रको ज्योंका त्यों देखैगा, कि इस वस्तुते क्या है, वह संसार आरम्भ असत्य उठा है, बडे विस्तारसंयुक्त भासता है, तौ भी असत्यरूप है, कछु हुआ नहीं, जैसे यह संसार स्थित है, तैसे मैं तुझको कहता हौं, यह आख्यान मैंने तुझको जगत् निरूपण निमित्त कहा है. हे पुत्र! जो अचैत्यशुद्ध चिन्मात्र चिदाकाश है, तिसते जो संकल्प उठा है. तिस संकल्पका नाम खोत्थ है, सो आप ही उपजता अरु आप ही लीन होजाता है, सब जगत् तिसका रूप है, जो बडे विस्तार संयुक्त भासता है, सो तिसके उपजनेकरि जगत् उपजता है, नष्ट होनेकरि नष्ट होता है. ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इंद्रादिक सब तिसके अवयव हैं, जैसे वृक्षके अंग टास होते हैं, जैसे पर्वतके अंग शिखर होते हैं, तैसे तिसके अंग हैं, शून्य आकाशविषे तिसने यह जगतरूपी नगर रचा है;प्रतिभासके अनुसन्धानते वही चित्-कला विरंचि पदको प्राप्त भई है अरु चतुर्दश स्थान जो कहे हैं, सो विस्तारसंयुक्त चतुर्दश लोक हैं, बन बगीचे उपवनसंयुक्त पर्वत महाचल मन्दराचल सुमेरु आदिक क्रीडाके स्थान हैं, उष्ण शीत जो दो दीपक तेलबातीविना कहे हैं, सो सूर्य अरु चन्द्रमा हैं, जगतरूपी नगरविषे अध ऊर्ध्वको प्रकाशते हैं, सूर्यकी किरणोंका जो प्रकाश है, मानो मोतीके तरंग फुरते हैं अरु इस समुद्र आगे क्षीर जल आदिक जो सप्त समुद्र हैं, सो बावडियां हैं, जीवरूपी किरायती व्यव-हार करते लेते देते अधः ऊर्ध्वको जाते हैं, पुण्यकरि स्वर्ग-लोकमें जाते हैं, पापकरि नरकको चले जाते हैं अरु जगतविषे संकल्प करिके जो क्रीडाके निमित्त तिसने विवरण रचे हैं, सो देह है, कोऊ देवता होइकरि ऊर्ध्व स्वर्गविषे रहते हैं, कोऊ मनुष्य होइकरि मध्य लोकविषे रहते हैं, अरु दैत्य नाग आदिक पातालविषे रहते हैं, पवनरूपी प्रवाह-करि समस्तयंत्र चलते फिरते हैं, अस्थिरूपी तिनविषे लकडियां है रक्त मांसकरि लेपन किये हैं, कई दीर्घकालकरि नष्ट होते हैं, कई शीघ्र ही

नष्ट होजाते हैं, शीशपर केश हैं, सो श्याम वस्त्र है, कर्ण, नासिका, नेत्र, जिह्वा अरु मूत्रपुरीषके स्थान लिंग इंद्रिय गुदा ये नव द्वार हैं, तिनसों निरंतर पवन चलता है, शीत उष्ण रूपसों प्राण अपान है, नासिका आदिक तिसके झरोखे हैं, भुजारूप गलियां हैं, पंचदीपक पंच इन्द्रियां हैं. हे महाबुद्धिमान्! यह सर्व संकल्परूपी मायाकरि रचे हैं; अहंकाररूपी तिसविषे यक्ष हैं, महाभयका स्थान यह अहंकारकरि होता है, देहरूपी विचरण हैं, सो अहंकाररूपी यक्षसंयुक्त विचरते हैं, असत्यरूप हैं परंतु सत्य होइकरि इसके साथ पीड़ा करते हैं, जैसे भांडविषे बिलाड बैठे जैसे भस्त्रकाविषे सर्प बैठे, जैसे बाँसविषे मोती है, तैसे देहविषे अहंकार है, क्षणविषे उदय होता है, क्षणविषे शांत होजाता है, दीपकवत् देहरूपी गृहविषे संकल्प उठता है, जैसे समुद्रविषे तरंग उठते हैं. अरु भविष्यत् नगर जो कहा है, सो सुन. अपना जो कोऊ स्वार्थ चिंतवता है, कि यह कार्य इस प्रकार करौंगा अमुक दिन इस देशको जाऊँगा, जैसे चिंतवता है, तैसे भासि आता है, तिसविषे जाय प्राप्त होता है, सो अनहोतेको वर्तमान करता है, जबलग दुर्वासना है, तबलग अनेक दुःख होते हैं, अरु यह दुष्ट मन अहंकार स्थूलहोजाता है, अरु संकल्पते रहित हुए शीघ्रही इसका नाश होता है, तब तू संकल्प नाश करैगा, तब शीघ्र ही कल्याणको प्राप्त होवैगा, अपना संकल्प उठिकरि आप ही को दुःखदायक होता है, जैसे बालकको अपने परछाईंविषे वैताल कल्पना होती है, अरु आप ही भय पाता है, तैसे अपना संकल्प अनंत दुःखदायक होता है सुख कोऊ नहीं पाता, संपूर्ण जगत्विस्तार संकल्पकरि होता है, आत्माकी सत्ताकरि बढता है, बहुरि नष्ट होजाता है, विचार कियेते नहीं रहता, जब मनविषे विचार उत्पन्न होता, तब नष्ट होजाता है, जैसे सायंकालविषे धूपका अभाव होजाता है, जैसे प्रकाश उदय हुए तमका अभाव होजाता है, विचार करिकै संकल्प आप ही नष्ट होजाते हैं, मन आप ही क्रिया करता है अरु आप ही दुःख पाता है, बहुरि रुदन करने लगता है, जैसे वानर काष्ठके यंत्रकी कीलीको हिलाइकरि फँसता है, अरु निकस नहीं सकता, दुःख पाता है, तैसे अपना ही संकल्प आपको दुःखदायक होता है, संकल्प-

करि जो कल्पित विषयका आनंद है, सो जब जीवको प्राप्त होता है ,तब ऊंची ग्रीवा करि हर्षवान् होता है, जैसे अकस्मात् किसी वृक्षके फल ऊँटके मुखमें आय लगैं, अरु वह ऊँची ग्रीवा करिकै विचारै, तैसे अज्ञानी जीव विषयकी प्राप्तिविषे ऊँची ग्रीवाकरि हर्षवान् होते हैं, क्षणविषे जीवको विषयकी प्राप्ति उपजती है, विशेष करिकै इष्टकी प्राप्तिविषे बढते हैं, जब कोऊ दुःख होता है, तब वह प्रीतिकी प्रसन्नता उठ जाती है, क्षणविषे विकारी होता है, क्षणविषे प्रसन्न हो बैठता है, वस्तु गुणकी प्राप्तिविषे हर्षवान् होता है, शुभसंकल्पकरि शुभको देखता है, अशुभ संकल्पकरि अशुभको देखता है, शुभकरि निर्मल होता है, अशुभकरि मलिन होता है, जैसे आगे तेरी इच्छा होवै तैसे कर, खोत्थके मैंने जो तुझको यह तीन शरीर कहे थे, उत्तम, मध्यम, अधम, सो सात्त्विक, राजस, तामस यह तीन गुण तीन देह हैं,यही सबका कारण जगत्‌विषे स्थित है, जब तामसी संकल्पके साथ मिलता है, तब नीचरूप पापचेष्टा कर्म करता है, महाकृपणताको प्राप्त होता है, मृतक होइकरि कृमि कीट जन्मको पाता है, जब राजसी संकल्पके साथ मिलता है, तब लोकव्यवहार करता है, स्त्रीपुत्रादिकके रागसों रंजित होता है पापकर्म नहीं करता, तब मृतक होइकरि संसारविषे मनुष्यशरीर पाता है, जब सात्त्विकी भावविषे स्थित होता है, तब धर्म ज्ञानपरायण होता है, मोक्षपदकी तिसको अंतर्भावना होती है, धर्म ज्ञान पायकरि चक्रवर्ती राजाकी नाईं स्थित होता है, जब तिन भावोंको त्याग करता है, तब संकल्पभाव नष्ट होजाता है, अक्षय परमपद शेष रहता है, ताते संसारदृष्टिको त्याग करिकै मनकरि मनको वश करके अंतरबाहिरते जो दृश्यका अर्थ चित्तविषे स्थित है, तिस संस्कारअंकुरको निवृत्त करके शांतात्मा होवै. हे पुत्र ! इस विना और उपाय नहीं, जो तू सहस्र वर्ष दारुण तप करै, अथवा लीलावत् आपको शिलासम चूर्ण करै अथवा समुद्रविषे प्रवेश करै, बडवाग्निविषे प्रवेश करै, गर्तविषे गिरै, खड्ग धाराके संमुख युद्ध करै,अथवा सदाशिव तुझको उपदेश करै . ब्रह्मा, विष्णु, बृहस्पति दया करिकै उपदेश करै, अथवा पातालविषे जाय स्थित होवै, पृथ्वीविषे स्वर्गविषे जाय स्थित

होवै, इत्यादिक अपर स्थानविषे जावै, तौ भी अपर उपाय कल्याणके निमित्त कोई नहीं, जैसे संकल्पका उपशम करना उपाय है, तैसे जो अनादि अविनाशी अविकारी परमपावन सुख है, संकल्पके उपशमते पाता है, ताते यत्नसों संकल्पको उपशम करहु जेते कछु भाव पदार्थ हैं, सो सब संकल्परूपी तत्त्व परोए हुए हैं, जब संकल्परूपी तंतु टूटि पड़ता है, तब नहीं जानता कि, पदार्थ कहां गये, सत्य असत्य पदार्थ सब संकल्पमात्र है, जबलग संकल्प है, तबलग यह भासते हैं, संकल्पके निवृत्त हुएते असत्य होजाते हैं, संकल्पकरिकै जैसी जैसी चिंतवना करता है, क्षणविषे तैसे होजाता है, संसारभ्रम संकल्पकरि उदय भया है, संकल्प निवृत्त कियेते चित्त अद्वैतके संमुख होता है, सर्व जगत् असत्यरूप है, मायाकरिकै रचा है, जब संकल्पको त्यागिकरि यथाप्राप्तिविषे विचरैगा, तब तुझको खेद कछु न होवैगा, असत्यरूप जगत्के कार्यविषे दुःखित होना व्यर्थ है; आपसंयुक्त जगत्को असत्य जानैगा, तब दुःख भी न होवैगा, जबलग जगत्का सद्भाव भासता है, तबलग दुःख होता है, जब असत्य जाना, तब दुःख भी नहीं रहता, जो बोधवान् हैं, तिनको कोई दुःख नहीं भासता, ताते जो नित्य प्राप्त सत्तारूप है, तिसविषे स्थित होहु, विकल्पके जो बड़े समूह हैं, तिनको त्याग करहु अरु जो अद्वैत आत्मपद है, तिसविषे विश्रामसुखको प्राप्त होइकरि सुषुप्ति रूप चित्तवृत्तिको धारिकरिकै विचरहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे संसारविचारो नाम त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुष्पंचाशत्तमः सर्गः ५४.

जगच्चिकित्सावर्णनम्।

पुत्र उवाच–हे भगवन्! संकल्प कैसा है? अरु सो उत्पन्न कैसे होता है? अरु वृद्ध कैसे होता है? अरु नाश कैसे होता है? दाशूर उवाच–हे पुत्र! अनंत जो आत्मतत्त्व है, सो सत्ता समानरूप है, सो

चेतनसत्ता जब द्वैतके सन्मुख होती है. तब चेतनताका लक्षण जो ज्ञानरूप है, सो संकल्प अंकुरज्ञान वही बीजरूपी संवित् उछासमात्र सत्ताको पायकरि घनभावको प्राप्त होता है, सोई फुरनाकारि आकाशको चेतता है. तिसकरि आकाशको पूर्ण करता है, जैसे जलकरि मेघ स्पष्ट होता है, तैसे फुरणेकी दृढताकरि आकाश होता है, अपना स्वरूप इसको आत्मसत्ताते भिन्न भासता है, यह भावना चित्तविषे भावित होजाती है, जैसे बीज अंकुरभावको प्राप्त होता है, तैसे चित्तसंवित् संकल्प भावको प्राप्त होता है, संकल्पहीकरि संकल्प उपजता है, आपहीकरि स्वतः बढता है, तिसकरि सुखी दुःखी होता है, जब अचलरूपते चित्तसंवेदन दृश्यकी ओर फुरता है, तब तिस फुरणेका नाम संकल्प होता है, स्वरूपते भूलिकरि जब दृश्यकी ओर फुरता है, तब संकल्प वृद्ध होता है, सोई वृद्ध हुआ जगज्जालको रचता है, जेता कछु प्रपंच है, सो संकल्पका रचा संकल्प मात्र है, जैसे समुद्र जलमात्र होता है, जलते इतर नहीं, तैसै जगत् भी संकल्पते इतर नहीं अरु आकाशमात्रते भ्रांतिरूप जगत् फुरि आया है, जैसे मृगतृष्णाका जल भासता है, जैसे आकाशविषे द्वितीय चंद्रमा भासता है, तैसे तुम्हारा उपजना अरु बढना भ्रममात्र है, जैसे तमका चमत्कार होता है, तैसे यह जगत् मिथ्या संकल्पकरि उदय हुआ तुझको भासता है. हे पुत्र ! तेरा उपजना भी असत्य है, अरु बढना भी असत्य है, जब तू इस प्रकार जानैगा, तब इसकी आस्था लीन हो जावैगी यह पुरुष है, वह स्त्री है, मैं हौं, तू है, यह जो भाव दुःखसुखकरि संयुक्त पदार्थ भासते हैं, सो यह अज्ञानकरिके व्यर्थ भासते हैं, इनविषे आस्था करिकै अंतरते तपता रहता है. अहं त्वम् आदिक दृश्य सब असत्यरूप हैं, जब यह भावना करैगा तब तू पृथ्वीविषे कल्याणरूप होइकरि विचरैगा, बहुरि संसारको प्राप्त न होवैगा. अहं त्वं ते आदि लेकरि जब सब दृश्यकी भावना हृदयते जावै, तब इसका अभाव होजावैगा. हे पुत्र ! फलको तोड़िकरि मर्दन करनेविषे भी कछु यत्न होता है, परंतु आपकरि सिद्ध जो भावमात्र संकल्पका त्याग करना तिसविषे यत्न कछु नहीं, फूलके ग्रहणविषे भी यत्न है, हस्तका स्पंद होता है, ताते जो कछु भावरूप है, सो है नहीं, तौ तिसके त्यागनेविषे क्या

यत्न है, ताते कछु है नहीं, यह दृश्य प्रपंच सबका जो होना है तिसका विपर्ययभाव करना कि, न मैं हौं, न जगत् है, जिस पुरुषने इस दृश्य जगत्का सद्भाव संकल्प नाश किया है, सो शांतरूप होता है, यह संकल्प तौ एक निमेषविषे लीलासों जीति लेता है, भावरूप जो आत्मसत्ता है. तिसविषे जब अपना आप उपशम करे, तब स्वस्तिक होता है, अपने मनके संकल्पकारि मन संकल्पको छेदेगा, जो आत्मतत्त्वविषे स्थित होवैगा, इसविषे क्या यत्न है, संकल्पके उपशम हुएते जगत् उपशम होता है अरु सब दुःख संसारके मूलते नाश होजाते हैं, संकल्प मन बुद्धि जीव अहंकार आदिक सब नाम हैं, सो भेद कहनेमात्र हैं, इनके अर्थरूपविषे भेद कछु नहीं, जेता कछु दृश्य प्रपंचजाल है, सो सब संकल्पमात्र है, संकल्पके अभाव हुएते कछु नहीं रहता, ताते संकल्पको हृदयते काटहु, आकाशकी नाईं जगत् शून्य है, जैसे आकाशविषे नीलता भ्रांतिकारि भासती है, तैसे यह जगत् असत्य विकल्पकारि उठा है, संकल्प अरु जगत् दोनों असत्य हैं, ताते कछु नहीं, सब असत्यरूप है, असत्यरूप संकल्पने सिद्ध किया है, तिसकी भावनामें आस्था करनी मिथ्या है, जब ऐसे जाना तब इष्टरूप किसको जानै अरु वासना किसकी करै अरु अनिष्ट किसको जानै सब वासना नष्ट होजाती हैं, वासनाके नष्ट हुएते सिद्धताकी प्राप्ति होती है, हे पुत्र ! जो यह सत्य जगत् होता तौ विचार कियेते भी दृष्टि आता, सो विचार कियेते इसका शेष कछु नहीं रहता, जैसे प्रकाशकारि देखेते तम दृष्टि नहीं आता, तैसे विचारकारि देखेते जगत् सत्य नहीं भासता, ताते अविचारते सिद्ध है, सो असत्यरूप है, बुद्धिकी चपलताकारिकै भासता है, जिस पुरुषकी जगत्भावना उठि गई है, तिसको जगत्के सुखदुःख स्पर्श नहीं करते, निर्णयकारि जो असत्यरूप जाना, तिसविषे बहुरि आस्था नहीं उदय होती, जब आस्था गई, तब भाव अभावबुद्धि भी नहीं रहती, संसारके सुख दुःख सब मिथ्या मनके फुरनेकारि रचे हैं, मनोराज्यके नगरवत् स्थित भये हैं, भूत भविष्य वर्तमान काल जगत मनकी वासनाकारि फुरता है, मानसी शक्तिविषे स्थित है, सो मन क्षणविषे बडा दीर्घ आकार करता

है, क्षणविषे सूक्ष्म आकारको धरता है, ग्रहण करिये तौ ग्रहण किया नहीं जाता; जैसे समुद्रकी लहरीको ग्रहण, करिये तो पकडी नहीं जाती तैसे मन है, यद्यपि बडे आकारसंयुक्त जगत् भासता है, तौ भी कछु वस्तु नहीं, क्षणभंगुर असार है, वासनाकरि जगत् भासता है, वासनाके क्षय हुएते शांत होजाता है, जब तुझको वासना फुरै, तब तिसी कालविषे तिसको शीघ्र ही त्याग करहु, यह दृश्य प्रपंच कछु है नहीं, असत्यरूप है, ऐसी भावना करिकै वासना नष्ट होजावेगी, इसविषे संदेह कछु नहीं, जो यह संकल्परूप जगत् होवै तौ इसके त्याग करनेविषे यत्न होवै यह तौ असत्यभूत प्रपंच है, तिसका अनर्थ चिकित्साकरि तुझको खेद कछु न होवेगा; जो है ही नहीं, तिसके त्यागविषे क्या यत्न है, जो यह संसार मूल सत्य होता तौ इसके नाशनिमित्त कोऊ न प्रवर्तता, जैसे कोयलेको श्वेत करने निमित्त धोनेको कोऊ नहीं प्रवर्तता, तैसे सब जगत् असत्यरूप है, विचार कियेते कछु नहीं पाता, ताते असत्य अहंकाररूप दृश्यको त्यागिकरि सत्य आत्मा अंगीकार करहु जैसे धान्यसों तुष डारि देते हैं, अरु चावलका अंगीकार करते हैं, तैसे यत्नकरिकै सर्व दृश्यको त्याग आत्मपदविषे प्राप्त होहु यह परमपुरुषार्थ है और क्रिया किस निमित्त करता है, मलरूप संसारका नाश करहु, जैसे तंदुलसों तुष दूर करते हैं, तब वास्तव आकार तंदुल भासते हैं, ताते युक्तिकरिकै जान कि, संसार असत्य कृत्रिमरूप है, तिसके नाशविषे क्या यत्न है, जैसे तांबेसों मल युक्तिकरिकै दूर करते हैं, तब निर्मल भासता है, तैसे युक्तिकरि दृश्य मल जब दूर होवै तब बोधस्वरूप प्राप्त होवै, तिस कारणते उद्यमवान् होहु. हे पुत्र! यह संसार संकल्प विकल्पते उत्पन्न भया है, विचारकरि अल्प यत्नसों निवृत्त होजाता है. अरु तू देख कि, यह कौन है, जो सदा स्थिर रहता है, सब पदार्थ असत्यरूप हैं, देखते देखते नष्ट होजाते हैं, जैसे दीपकके प्रकाशकरि अंधकार अभाव होजाता है, जैसे भ्रांति दृष्टिकरि आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है स्वच्छ दृष्टिकरि दूसरा अभाव होजाता है, तैसे बिचारकरिकै जगद्भ्रम नष्ट होता है. न यह जगत् तेरा है, न तू इसका है, यह भ्रमकरि भासता है, भ्रमको त्यागिकरि देख जो असत्यरूप है,

अपनी गुरुत्वका बड़ा ऐश्वर्य प्रकाशका विलास है, सो तेरे हृदयविषे मत होवै, यह मिथ्या भ्रमरूप है, अंतरते उठै तौ आपको भी अरु जगत्को भी असत्य जान आत्मतत्त्वते इतर कछु नहीं, जब ऐसे निश्चय करैगा, तब जगद्भावना नष्ट होजावैगी, सर्वात्मप्रकाश भासैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दाशूरोपाख्याने जगच्चिकित्सावर्णनं नाम चतुष्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशत्तमः सर्गः ५५.

दाशूरोपाख्यानसमाप्तिवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रघुकुलरूपी आकाशके चंद्रमा रामजी ! जब इस प्रकार पुत्रको उपदेश किया; तब मैं उसके पीछे आकाशविषे स्थित था, सो कदंबवृक्षके अग्रभागमें जाय स्थित भया, जैसे मेघ वर्षाते रहित तूष्णीं होइकरि पर्वतके शिखरपर जाय स्थित होता है, तैसे मैं जाय स्थित भया, आगे दाशूर जो शूरमा अज्ञानरूपी शत्रुका नाश करता है अरु परम शक्तिकरि प्रकाशवान् है अरु तपकरि देह ऐसा होगया है, मानो स्वर्णका चमत्कार है, तिस दाशूरने मुझको अपने अग्रमें देखा कि, वसिष्ठमुनि आया है, ऐसे जानिकरि उठ अर्घ्य पाद्यकरि पूजन किया, बहुरि हम दोनों वृक्षके पत्रऊपर बैठ गये बहुरि पूजन किया, जब पूजन करने लगा, तब हम दोनों कथाका प्रसंग चलाने लगे, तिस चर्चाके वचनकरि तिसके पुत्रको जगाते भये संसार समुद्रके पार करनेनिमित्त बहुरि मैं वृक्षकी ओर देखता था, कैसा वृक्ष है कि, महासुंदर फूलफलनकरि शोभायमान है अरु दाशूरकी इच्छाद्वारा मृग अरु पक्षी तिसके आश्रय रहते हैं बहुत गुणसंयुक्त वृक्ष मैं देखता भया; अरु तिसके पुत्रको हम और और कथा करिकै विद्वान् दृष्टिसों रमणीय दृष्टांत अरु युक्तिसहित उपदेश करत भये नाना प्रकारके विचित्र इतिहासकरि तिस बालकको जगाया, रात्रिको सिद्धांत कथाविषे लागे रहे, हमको एक मुहूर्तवत् रात्रि व्यतीत हुई, जब

प्रातःकाल भया तब मैं उठि ठाढ़ा भया दाशूर अपने पुत्रसंयुक्त मेरे साथ चला, जहांलग कदंबका आकाशतल था, तहांलग आये, तिसके अंतर मैं बहुतकरि तिनको ठहरावता भया अरु मैं गंगाजीकी ओर चला बहुरि स्नान करिकै सप्तर्षिके मंडलविषे जाय स्थित भया. हे रघुनंदन! यह दाशूरका आख्यान मैंने तुझको कहा है, यह जगत् प्रतिबिंब आभासके सदृश है, प्रत्यक्ष भासता है, तौ भी असत्यरूप है, जगत्के निरूपण निमित्त यह आख्यान श्रवण कराया है, कि यह जगत् असत्यरूप है कछु वस्तु नहीं, बुद्धिकरि तुझको राग मत होवै, इस कथाका सिद्धांत हृदयविषे धारिकरि विचरैगा तब संसाररूपी मल तुझको स्पर्श न करैगा.

इति श्रीयोवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे दाशूरोपाख्यानसमाप्तिर्नाम पञ्चपञ्चाशत्तमः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पंचाशत्तमः सर्गः ५६.

कर्तव्यविचारवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! यह प्रपंच है नहीं, ऐसे जानिकै सब पदार्थते विराग होहु, जो वस्तु ही न होवै, तिसकी आस्था करनी क्या है, यह प्रपंच जो दृष्टि आता है, इसके भासने न भासनेविषे तुमको क्या है, तुम निर्विघ्न होइकरि आत्मतत्त्वविषे स्थित होहु, ऐसे जानो, जगत् है भी अरु नहीं भी इस निश्चय करि भी तुम असंग होहु, इस चल अचल दृष्टि आनेविषे तुमको क्या खेद है? हे रामजी! यह जगत् न आदि है, न अनादि है, केवल स्वच्छ जो चित्तसंवित् मनरूप है, तिसके फुरनेकरिकै इस प्रकार भासता है, वास्तवते कछु नहीं, यह जगत् किसी कर्ताने किया नहीं, न किसी अकर्ताने किया है, केवल आभासरूप है, आभासविषे कर्त्ता अकर्त्ता पदको प्राप्त भया है, अकृत्रिमरूप है, किसीका किया तौ नहीं, इसके साथ तुझको संबंध मत होवै, यह भावना हृदयविषे धार कि, है कछु नहीं, काहेते जो किसी कर्ताकरि

हुआ नहीं, आत्मा सर्व इंद्रियोंते अतीत है, जडकी नाईं अकर्तारूप है, तिसको कर्त्ता कैसे कहिये? यह कहना नहीं बनता, अकस्मात् यह जगज्जाल फुरि आया है, सो आभासरूप है, जो अकस्मात् उपजा तिसविषे आसक्त होना क्या है! यह असद्भ्रांतिरूप है, इसविषे आस्था मूढ बालक करते हैं, बुद्धिमान् तौ नहीं करते, स्वरूपते जगत् कछु उपजा नहीं अरु नाश भी कछु नहीं होता, निरंतर दृष्टिमें आता है; अज्ञानकरि वारंवार भावना होती हे. तौ भी जगत् कछु है नहीं, असत्-रूप है, प्रत्यक्ष निरंतर नष्ट होता जाता है, तुम विचार करके देखो, कि अवस्था स्थान कहां जाते हैं अरु कहां गये हैं ताते तुम सब इंद्रियोंते अतीत जो आत्मतत्त्व अकर्त्तारूप है, तिसविषे स्थित होइकरि विगत-ज्वर होहु, वास्तवते जगत् कछु बना नहीं. आभाससत्ताविषे बना भासता है तुम आभास सत्ताविषे नित्य दृढ होहु, जैसे हुआ है तैसे है, भाव अभाव दुःख दृश्य है, आदर्शरूपी आभासविषे दीर्घरूप दृश्य स्थित भया, सो जैसे हुआ है, तैसे है, विपर्यय नहीं होता. हे रामजी! दृश्य धर्मविषे अपराजित काल है, सो अनंत है, दृश्य पदार्थका कछु अन्त नहीं अरु जो आत्मविचार करि देखिये तौ स्वप्नवत् है, कछु है नहीं, जो वस्तुते ऐसे होवै, तिसविषे आस्था करिकै यत्न करना व्यर्थ है जगत्के पदार्थ नाशरूप हैं, इनविषे आस्था नहीं बनती काहेते कि, आत्मा सत् है अरु जगत् असत् है, अन्योन्य विलक्षण स्वभाव हैं जड अरु चेतनका संयोग कछु नहीं बनता, जो जगत्के पदार्थ स्थिर मानिये तौ रहते नहीं, इस कारणते आस्था शोभा नहीं पाती, जैसे जलके तरंगका आश्रय लेकरि कोऊ पार हुआ चाहै तो दुःख पाता है, तैसे जगत्के पदार्थका आश्रय कियेते दुःखी होता है, जगत्की आस्था करना ही बंधन है जगत् नाशरूप है, तुम स्थिररूप हौ, ताते आस्था नहीं संभवती, कहूँ जलके तरंगका अरु पर्वतका सम्बन्ध भया है. जो तुमने जगत्को असत्य जाना अरु आपको सत्य जाना तौ भी जगत्के पदा-र्थनकी वांछा नहीं बनती, काहेते कि सत्यको असत्यकी वांछा नहीं संभवती अरु असत्यको असत्यविषे भावना करनी क्या है? अरु जो

आप संयुक्त जगत् सत्य जानते हौ, तौ भी वांछा नहीं संभवती. काहेते कि, जो सत्य अद्वैत आत्मा है, तिसके समीप कछु द्वैत वस्तु नहीं, तुम तौ एक अद्वैत हौ, वांछा किसकी करते हौ, याते तुमको किसी पदार्थकी इच्छा अनिच्छा नहीं बनती, हेयोपादेयते रहित केवल स्वस्थ होइकरि अपने आपविषे स्थित होहु, कैसा आत्मतत्त्व है, जो सबका कर्ता है अरु सर्वदा अकर्ता है, कदाचित् कछु किया नहीं उदासीनकी नाईं स्थित है, जैसे दीपक सब पदार्थोंको प्रकाश करता है अरु किसकी इच्छाद्वारा अर्थकी सिद्धि करनेनिमित्त नहीं प्रवर्तता, स्वाभाविक ही प्रकाशरूप है, तैसे आत्मतत्त्व सबका कर्ता है, तिसका कर्ता कोऊ नहीं, जैसे सूर्य सबकी क्रियाको सिद्ध करता है अरु आप किसी क्रियाके आश्रय नहीं । काहेते जो आप ही प्रकाशरूप है, चलता है अरु कदाचित् चलायमान नहीं भया अरु जो सूर्यका प्रतिबिंब चलता भासता है; सो प्रतिबिंबका चलना सूर्यविषे नहीं तैसे तुम्हारा स्वरूप आत्मा सदा अकर्ता अचल है. तिसविषे स्थित होहु, जेता कछु जगत् भासता है, तिसविषे विचरहु, परंतु भावनाकरिकै इसविषे बंधायमान मत होहु, यह असद्रूप है. हे रामजी ! यद्यपि प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणकरि जगत् सत् भासता है, तौ भी है नहीं, स्वतः चित् होइकरि आपको विचार अरु आपविषे स्थित होहु, तब जगत् कछु न भासेगा. जो प्रत्यक्ष बडे तेज बल अरु वीर्यकरि संपन्न भासता है; अरु अंतर्धान होगया, तौ सत्य कैसे कहिये ? इस विचार करिकै भी तुमको जगत्की भावना नहीं बनती, जैसे चक्रपर आरूढ हुएते सब स्थान भ्रमते दृष्टि आते हैं, अथवा जैसे स्वप्ननगर भ्रमकरिकै भासता है, सो किसी कारणकार्य करि नहीं होता, आभासरूप मनके फुरणेकरि उपजि आता है, जैसे कोऊ जीव अकस्मात् आय निकसता है, सो मित्रताईका भागी नहीं होता, विचार किये विना, बुद्धिमान् तिसविषे रुचि नहीं बांधते, वह सुहृदताका पात्र नहीं; तैसे भ्रमकरिकै जो जगत् भासा है, सो आस्थाकरिकै भावना बांधने योग्य नहीं, जैसे चन्द्रमाविषे उष्णता अरु सूर्यविषे शीतलता मृगतृष्णाकी नदीविषे जल, इनकी भावना करनी अयोग्य

है, तैसे जगत्‌विषे सत्यभावना अयोग्य है, यह संकल्पपुर स्वप्ननगर द्वितीय चन्द्रमावत् असत्य है, भ्रमकरिकै सत्य भासता है. हे रामजी ! अन्तरते भावपदार्थकी आस्था लक्ष्मीकी त्यागकर अरु बाह्य लील करते विचरहु, अन्तरते अकर्त्ता पदविषे स्थित होहु अरु सब भाव पदार्थविषे स्थित सबते अतीत होहु, आत्मा सब पदार्थविषे सर्वकाल स्थित है अरु सबते अतीत है, तिसकी सत्ताकरिकै जगत् नीतिविषे स्थित है, जैसे दीपककरि सब पदार्थ प्रकाशवान् होते हैं अरु दीपक इच्छाते रहित प्रकाशता है, तिसकरि सबकी क्रिया सिद्ध होती है, अरु जैसे सूर्य आकाशविषे उदय होता है अरु तिसके प्रकाशकरि जगत्‌का व्यवहार होता है, तैसे अनिच्छित आत्माकी प्रकाशसत्ताकरि सब जगत् प्रकाशता है, जैसे इच्छाते रहित रत्नका प्रकाश होता है अरु स्थानविषे पसर जाता है, तैसे आत्मदेवकी सत्ताकरिकै जगत्‌गण प्रवर्त्तते हैं, ताते कर्त्ता है, सब इंद्रियोंके विषयते अतीत है, इस कारणते अकर्त्ता अभोक्ता है अरु सब इंद्रियोंके अंतर्गत स्थित है, इस कारणते कर्त्ता भोक्ता वही है, इस प्रकार दोनों आत्माविषे बनते हैं, कर्त्ता भोक्ता भी संभवता है अरु अकर्त्ता अभोक्ता भी सम्भवता है, जिसविषे तू अपना कल्याण जानै, तिसविषे स्थित होहु. हे रामजी ! इस प्रकार निश्चय करौ कि, सब मैं ही हौं, अकर्त्ता अभोक्ता हौं ऐसी दृढ भावना करि जगत्‌का कार्यको करते भी कछु बन्धन न होवैगा अरु सर्व आत्मा कर्तव्यते भोक्तव्यते रहित है, इस प्रकार निश्चय कियेते भोगकी वासना निवृत्त हो जावैगी, तब चेतन भोगकी ओर बहुरि न आवैगा जिसको यह निश्चय है कि, मैं कदाचित् कछु किया नहीं; सदा अक्रियरूप हौं, सो भोगके समूहकी कामना किस निमित्त करैगा अरु त्याग किसका करैगा, ताते तुम यही निश्चय करहु कि, मैं नित्य अकर्त्तारूप हौं, जब यह बुद्धि दृढ होवैगी, तब परम अमृतरूप जो समानसत्ता है, सो शेष रहैगी, अथवा यही निश्चय धरहु, कि सबका कर्त्ता मैं ही हौं, मैं महाकर्त्ता हौं, सबमें अंतर स्थित होइकरि सर्व कार्य मैं करता हौं. हे रामजी ! यह दोनों निश्चय तुझको कहे हैं, जिसविषे तेरी इच्छा

होवै; तिसविषे स्थित होहु, जहां यह निश्चय होता है, कि सबका कर्त्ता मैं हौं, सब जगत् भ्रम भी मैं हौं; तब इन पदार्थनके भाव अभावविषे राग द्वेष न होवैगा, जो सब आपही भया, तौ राग द्वेष किसका करैगा, उसको यह निश्चय होता है; कि यह शरीर मेरा दग्ध होता है, वह शरीर सुगंधादिकरि लीला करता है, तिसको खेद अरु उल्लास किसका होवै ताते तुझको जगतके क्षोभ, उल्लास, उदय, अस्तविषे सुख दुःख मत होवै' सबका कर्त्ता मैं हौं तो खेद उल्लास भी मैं करता हौं, जब आत्मा अरु कर्तव्यकी एकता हुई तब खेद उल्लास सब आप ही लय हो-जाता है, सत्ता समान शेष रहता है, सो सत्ताभाव पदार्थविषे अनुस्यूत होइकरि स्थित है, तिसविषे जब चित्तकी इच्छा स्थित होती है, तब बहुरि दुःखको नहीं प्राप्त होता. हे रामजी ! सबका कर्त्ता आपको जान; कि कर्त्ता पुरुष मैं हौं, अकर्त्ता जान; कि मैं कछु नहीं करता, अथवा दोनों निश्चय त्यागिकरि निःसंकल्प निर्मन होहु, तब जो तेरा स्वरूप है. सोई सत्ता शेष रहैगी अरु यह जगत् है, यह मैं हौं यह मेरा है, इस कुत्सित भावनाको त्याग करहु; इसी अभिमानविषे स्थित नहीं होना, इस देहविषे अहंकार कालसूत्र नामकरिकै नरककी प्राप्तिका कारण है, नरकका जाल है, शस्त्रकी वर्षा होती है, तिन दुःखनते अधिक दुःखस्थान देह अभिमान है, अर्थ यह कि अंत दुःखदायक है, ताते पुरुष प्रयत्नकरिकै इसका त्याग करौ, यह सबके नाशविषे स्थित है, भावी कल्याण जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, सो इसको स्पर्श नहीं करते, जैसे चंडाली होवै अरु तिसकी गोदविषे श्वानका मांस होवै, तिसते श्रेष्ठ पुरुष संग नहीं करते, तैसे देहाभिमानके साथ स्पर्श नहीं करना, यह महानीच है, यह अहंकाररूपी बादल नेत्रके आगे पटल आया है, तिसकरि आत्मा नहीं भासता, जब विचारकरि तिस पटलको दूर करैंगे तब आत्मसत्ता प्रकाश उदय होवैगा, जैसे मेघघटाके दूर हुएते चंद्रमा प्रकाश आता है, तैसे अहंकारके अभावते आत्मा प्रकाशता है, जब तू इन निश्चयविषे कोई निश्चय धरैगा, तब सब दुःखनते रहित शांतपदको प्राप्त होवैगा, यह निर्णय सबते उत्तम है, इस निश्चयविषे

उत्तम पुरुष सदा स्थित है, अब तुम भी विधि अथवा निषेध दोनोंविषे कोई निश्चय धारहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे कर्तव्यविचारो नाम षट्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ५७.

पूर्णस्वरूपवर्णनम् ।

राम उवाच–हे ब्राह्मण ! जेते कछु तुमने सुंदर वचन कहे हैं, सो सत्य हैं, अकर्तारूप आत्मा, कर्ता, अभोक्ता, सबका भोक्ता, भूतको धारनेहारा, सबका आश्रयभूत अरु सर्वगत, व्यापक, चिन्मात्र निर्मलपद अनुभवरूप देव सर्व भूतके अंतर स्थित है. हे प्रभो ! ऐसा जो ब्रह्मतत्त्व है, सो मेरे हृदयविषे रम्य हुआ है तुम्हारे वचनकरि प्रकाशने लगा है, तुम्हारे वचन शीतल शांतरूप तप्तताको मिटाते हैं, जैसे वर्षाकरि पृथ्वी शीतल होती है, तैसे मेरा हृदय शीतल भया है, आत्मा उदासीनकी नाईं अनिच्छित स्थित है कर्तव्य भोक्तव्यते रहित अरु सब जगत्को प्रकाशता है, सब क्रिया तिसकरि सिद्ध होती हैं, इस कारणते कर्ता भी वह है अरु भोक्ता भी वही है, परंतु कछुक संशय मुझको है सो हृदयविषे विस्तारको प्राप्त भया है, तिसको अपनी वाणीकरि छेदहु, जैसे चंद्रमाका प्रकाश तमको नाश करता है, तैसे संशय दूर करहु, कि यह सत्य है, यह असत्य है; यह मैं हौं वह और है, इत्यादिक द्वैतकलपना एक अद्वैत विस्तृत शांतरूपविषे कहांते स्थित भई है, निर्मलविषे मल कैसे हुआ है? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इस तेरे प्रश्नका उत्तर मैं सिद्धांत कालविषे कहौंगा, अथवा तू आपही जानि लेवैगा, मोक्ष उपाय जो यह शास्त्र तिसका सिद्धांत जब भली प्रकार तेरे हृदयविषे स्थित होवैगा, तब तू इस प्रश्नका पात्र होवैगा, अनर्थ योग्य न होवैगा तिस अवस्थाते अन्यथा नहीं होता. हे रामजी ! सुंदरस्त्रियोंकी सुन्दरवाणीसों गीत होता है, तिसके अधिकारी कामी जीव यौवनवान् पुरुष होते हैं, तैसे तू सिद्धांत अवस्था-

विषे मेरे वचनका अधिकारी होवैगा, जैसे रागमयी कथा बालकके आगे कहनी व्यर्थ होती है, तैसे बोधसमय विना उदार कथा कहनी व्यर्थ होती है, जैसे शरत्कालविषे पत्र संयुक्त वृक्ष शोभता है अरु वसंतऋतुविषे पुष्पकरि शोभता है तैसे ही जैसी अवस्था पुरुषकी होती है, तैसा उपदेश कहना शोभता है, किसी समय कैसा किसी समय कैसा शोभता है, अरु उपदेश भी तब दृढ लगता है, जब बुद्धि शुद्ध होती है, मलिन बुद्धिविषे दृढ नहीं लगता, जैसे निर्मल वस्त्रके ऊपर केशरका रंग शीघ्र ही चढि जाता है मलिन वस्त्रके ऊपर नहीं चढता, तैसे प्राप्तरूप जो आत्मा है, तिसका विज्ञान उपदेश सिद्धांत अवस्थावालेको लगता है; जिसको बोधसत्ता प्राप्त भई है अरु तेरे प्रश्नका उत्तर मैंने संक्षेपमात्र कहा भी है, विस्तार करि नहीं कहा, जो तू नहीं जानता, तौ भी प्रत्यक्ष है, जब तू आपकरि आपको प्राप्त होवैगा, तब आप ही इस प्रश्नके उत्तरको जान लेवैगा इसविषे संदेह कछु नहीं, जब सिद्धांत कालविषे बोधको प्राप्त होइकरि स्थित होवैगा, तब मैं भी इस प्रश्नका उत्तर विस्तारकरि कहूँगा, जब आपकरि अपना आप निर्मल करैगा, तब अपने आपको जानि लेवैगा. हे रामजी ! जो कर्त्ता अरु कर्मका विचार मैंने तुझको कहा है, तिसको विचार करि वासनाका त्याग करहु, जबलग संसारकी वासना इस हृदयविषे होती है, तबलग बंधमान है, जब वासना छेद होती है, तब मुक्ति होती है, ताते तू वासनाका त्याग करहु अरु मोक्षअर्थ जो वासना है, तिसका भी त्याग करहु, तब सुखी होवैगा, इस क्रमकरिकै वासनाको त्याग प्रथम शास्त्रविरुद्ध तामसी वासनाका त्याग करहु, बहुरि विषयकी वासनाका त्याग करहु अरु मैत्री करुणा मुदिता उपेक्षा इस निर्मल वासनाको अंगीकार करहु, मैत्री अर्थ यह कि सबविषे ब्रह्मभावकरि द्रोह किसीका नहीं करना, लक्ष्मीवान्‌के साथ मित्र भाव होवै अरु दुःखीपर दया करनी, यह करुणा कहिये अरु धर्मात्मा पुरुषको देखिकै प्रसन्न होना, इसका नाम मुदिता है, पापीको देखिकै उदासीन रहना, निंदा न करनी, इसका नाम उपेक्षा है,इन चारों प्रकारकी वासनाकरि संपन्न होना,अरु अन्तरते इनका

भी त्याग करना, हृदयविषे इनका अभिमान भी न होवै, अरु बाह्य इनका व्यवहार होवै, बहुरि अन्तरते दृश्यमें गुणकी वासना त्यागिकारि चिन्मात्र वासना रखनी; पीछे इनकौ भी मनबुद्धिके साथ मिश्रित जान त्याग करना, तब जिसकरि वासना त्यागी है, सो शेष रहैगा तिसको भी त्याग करना. हे रामजी ! चिन्मात्रतत्त्वते कल्पना करिकै देह इंद्रियां प्राण अरु तम प्रकाश वासनादिक भ्रममात्र भासि आये हैं, जब मूलसंयुक्त इनको त्याग करेगा, मूल कहिये अहंकारसंयुक्त, तब आकाशवत् सम स्वच्छ होवैगा, इस प्रकार सबको त्यागिकारि पाछे जो तेरा स्वरूप है सो तू होहु, जो हृदयसों इस प्रकार त्यागिकारि स्थित होता है, सो पुरुष मुक्तिरूप परमेश्वर होता है, समाधिविषे रहै, अथवा न कर्म करै, अथवा करै जिसके हृदयते सब अर्थकी आस्था नष्ट भई है, सो मुक्त है, अरु उत्तम उदारचित्त है तिस पुरुषको करने न करनेविषे कछु लाभ हानि नहीं होती, न समाधि करनेविषे अर्थ है; न तपकारि अर्थ है, काहेते कि, मन तिसका वासनाते रहित भया है. हे रामजी ! मैंने चिरकालपर्यंत अनेक शास्त्रविचारे हैं, अरु उत्तम पुरुषोंके साथ चर्चा करी है, परस्पर यह निश्चय किया है कि भली प्रकार वासनाका त्याग करना, ताते उत्तम मौन है, इस विना उत्तम पद पानेयोग्य कोऊ नहीं, जो कछु देखने योग्य है, सो मैंने सब देखा है अरु दशों दिशा भ्रमा हौं, तामें कितनेक जन यथार्थदशी दृष्टि आये हैं अरु कितनेक हेयोपादेयसंयुक्त मुझको दृष्टि आये हैं, यही यत्न करते हैं, इनते इतर कछु नहीं करते, किसीको ग्रहणकी और किसीको त्यागकी इच्छा होती है, नाना प्रकार क्रियाके आरंभसों सब देहके अर्थ करते हैं, आत्माके अर्थ कछु नहीं करते, पाताल स्वर्ग ब्रह्मलोक आदि सब लोक देखे हैं, तिनविषे केतेक संत मुझको दृष्टि आये हैं, जिनने देखने योग्य आत्मतत्त्वपद देखा है; और ग्रहण त्याग सब असत्य भ्रांतिकारि उठे हैं; यह निश्चय जिनका गलित भया है ऐसे ज्ञानवान् कोई विरले हैं, सब ब्रह्मांडका राज्य करै, अग्निविषे प्रवेश करै, जलविषे प्रवेश करै, ऐसे ऐश्वर्य शक्तिकारि संपन्न भी होवै तौ भी आत्मलाभ विना जीवको शांति नहीं प्राप्त होती, बडे बुद्धिमान्

संत भी वही हैं, जिनने अपनी इंद्रियांरूपी शत्रु जीते हैं, सोई शूरमे हैं, तिनको जरा जन्म मृत्युका अभाव है, वह पुरुष उपासना करने योग्य हैं. हे रामजी ! ज्ञानवान्को किसी दृश्य पदार्थविषे प्रीति नहीं होती, काहेते जो पृथ्वी आदिक पंचभूत सब ठौर पाते हैं, त्रिलोकविषे इनते इतर और पदार्थ कोऊ नहीं तौ प्रीति किसविध होवै ? युक्तिकरिकै ज्ञानवान् संसारसमुद्रको गोपदवत करिकै तरि जाये हैं अरु जिनने युक्तिका त्याग किया है, तिनको सप्तसमुद्रकी नाईं संसार होजाता है अरु जो पुरुष उदारचित्त हैं, तिनको यह संपूर्ण जगत् कदंबवृक्षके गोलवत् होजाता है, तिसविषे वह त्याग किसका करै अरु भोग किसका करै ? हेयोपादेयते रहित पुरुषको जगत् तुच्छ जैसा भासता है, इस कारणते जगत्के पदार्थनिमित्त यत्न नहीं करता अरु जो दुर्बुद्धि जीव होते हैं; सो तुच्छ ब्रह्मांडरूप पृथ्वीपर युद्ध करते हैं, अनेक जीवकी घात करते हैं, ममताविषे बंधमान हैं अरु यह जगत् कैसा है, संकल्पमात्रविषे नष्ट होजाता है अरु क्षणक्षणविषे आस्थाकारि यत्न करना बडी मूढता है, सब जगत् आत्माके एक अंशकरि कल्पित है, इसकी उपमा तृणसमान भी नहीं इस प्रकार तुच्छरूप त्रिलोकी जगत्को जानिकरि आत्मवेत्ता किसी पदार्थके हर्षशोकविषे बंधमान नहीं होते, ग्रहण अरु त्यागते रहित हैं, सदाशिवके लोक आदि पातालपर्यंत जल रस देह जो राजस सात्त्विक तामसकरि संयुक्त जेते कछु जगत्के पदार्थ हैं सो ज्ञानवान्को प्रसन्न नहीं कर सकते उसकी इच्छा किसीविषे नहीं होती; एक अद्वितीयात्मभावको प्राप्त भया है, आकाशवत् व्यापकबुद्धि होता है, अपने आपविषे स्थित है, चित्त दृश्यते रहित अचेतन चिन्मात्र है, शरीररूप जाल है, सोई भयानक कुहिड तिसकरि जगत्रूप कोटर धूसर हो रहा है, सो तिस पुरुषका शांत होजाता है, द्वितीय वस्तुका अभाव भया है, ब्रह्मरूपी बडा समुद्र है, तिसविषे झागके बोयेवत् कुलाचलपर्वत है, चेतनरूपी सूर्य है, तिसविषे मृगतृष्णाकी नदीरूप जगत्को लक्ष्मी है अरु ब्रह्मरूपी समुद्रविषे जगत्रूपी तरंग उठते अरु लय होते हैं,

ऐसे जाननेहारा जो ज्ञानवान् है, तिसको यह जगत् आनंददायक कैसे होवै, ! सूर्य चंद्रमा अग्नि जो तुझको प्रकाशरूप भासते हैं,सो भी घट काष्ठ आदिकवत् जड़रूप हैं, जिसकरि यह प्रकाशते हैं, सो सबको सिद्ध करती आत्मसत्ता है और कोऊ नहीं, देह जो रुधिर मांस अस्थिकरि बनी है, इंद्रियांसंयुक्त वेष्टित है,तिस देह जगतरूप डब्बेविषे चेतन जीवरूप रत्न है, तिसकरि विराजता है, चेतना जड मुग्धरूप है. हे रामजी ! यह जो स्त्रीका देह भासता है, सो चर्मकी पुतली बनी है; तिसको देखिकै मूढ बालक प्रसन्न होता है, जो बुद्धिमान् है; सो प्रसन्न नहीं होते, इस प्रकार ज्ञानवान्को विषयभोग प्रसन्न नहीं करते; जैसे वायुके चलनेकरि पर्वत चलायमान नहीं होते तैसे ज्ञानवान् संसारके पदार्थकरि प्रसन्न नहीं होते, ज्ञानवान् तिस उत्तम पदविषे विराजते हैं, जिसकी अपेक्षाकरि चन्द्रमा सूर्य पातालविषे भासते हैं. अर्थ यह कि, इनका बड़ा प्रकाश भी तुच्छ जैसा भासता है,परम उत्तम पदविषे ज्ञानवान् विराजता है अरु यह संसार मूढ जीव संसारी समुद्रविषे सर्पकी नाईं बहे जाते हैं, जैसे हमको भासते हैं, तैसे कहते हैं, इस जगत्विषे ऐसा भाव पदार्थ कोऊ नहीं, जो ज्ञानवान्को रागकरि रंजित करै; जैसे नगरका राजा होवै, तिसके ग्रहविषे महासुन्दर विचित्ररूप रानियां होवैं, तिसको ग्रामकी मूढ नीच स्त्रियां प्रसन्न नहीं कर सकतीं, तैसे यह जगत्के भाव पदार्थ तत्त्ववेत्ताके हृदयविषे प्रवेश नहीं कर सकते, जैसे आकाशविषे मेघ बादल रहते हैं, परंतु आकाशको स्पर्श नहीं कर सकते जैसे सदाशिव महासुन्दर गौरीका नृत्य देखनेहारा है अरु गौरीसंयुक्त है, तिसको वानरीका नृत्य हर्षदायक नहीं होता तैसे ज्ञानवान्को जगत्के पदार्थ हर्षदायक नहीं होते,जैसे जलकरि पूर्ण कुम्भविषे रत्नका प्रतिबिंब होवै, तिसको देखिकै बुद्धिमान्का चित्त ग्रहण नहीं करता, तैसे ज्ञानवान्का चित्त जगत्के पदार्थ नहीं चाहता, यह संसारचक्र बडा विस्ताररूप भासता है, सो असत्यरूप है तिसको देखिकै ज्ञानवान् कैसे इच्छा करै, यह तो चंद्रके प्रतिबिंबवत् है, शरीर भी असत्य है, इसकी इच्छा मूढ

करते हैं, जैसे सेवालको मच्छर भोजन करते हैं, राजहंस नहीं करते तैसे संसारके विषयकी इच्छा अज्ञानी करते हैं, ज्ञानी नहीं करते.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे पूर्णस्वरूपवर्णनं नाम सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ५८.

कचगाथावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! यह सिद्धांत जो परम उचित वस्तु है, तिसकी गाथा बृहस्पतिका पुत्र जो कच है, तिसने गाई थी, सो परम पावनरूप है. एक कालमें सुमेरु पर्वतके किसी गहन स्थानविषे देवगुरुका पुत्र कच जाय स्थित भया, अभ्यासके वशते कदाचित् उसको आत्मतत्त्वविषे विश्रांति भई अरु अंतःकरण उसका सम्यक् ज्ञानरूपी अमृतकरि पूर्ण भया अरु पांचभौतिक जो मलिन दृश्य है, तिसते विरक्त भया, ब्रह्मभावविषे अस्फुर होईकरि रमता भया, निराभास आत्मतत्त्वते इतर कछु नहीं, एक अद्वैत भासै, ऐसे देखता हुआ, गद्गद वाणीसों बोलत भया, मैं क्या करौं अरु कहां जाऊं, क्या ग्रहण करौं, किसका त्याग करौं? सब विश्व एक आत्मपूर्ण हो रहा है, जैसे महाकल्पविषे सब ओरते जल पूर्ण हो रहा है, तैसे दुःख भी आत्मा है, सुख भी आत्मा है, आकाश दशों दिशा अहं त्वम् आदि सब जगत् आत्मा ही है, बडा कष्ट है, जो अपना आपविषे नष्ट हुआ बंधमान था, देहके अंतर भी आत्मा है, बाहर भी आत्मा है, अध ऊर्ध्व इत उत सब आत्मा है, आत्माते इतर कछु नहीं, सब ओरते एक आत्मा ही स्थित है अरु सब ही आत्माविषे स्थित है, यह सब मैं हौं, अपने आपविषे स्थित हौं, अपने आपविषे मैं नहीं समाता. अर्थ यह कि, आदि अंतते रहित अनंत आत्मा हौं, अग्नि मैं हौं, वायु मैं हौं, आकाश जल पृथ्वी मैं हौं, जो पदार्थ मैं नहीं सो है नहीं, जो कछु है, सो सब विस्तृतरूप मैं ही हौं एक पूर्ण परम आकाश भरव हौं अर्थ यह कि भर रहा हौं, सब जगत् भी ज्ञान-

रूप है, समुद्रवत् एक पूर्ण स्थित है, सो कल्याण मूर्ति इस प्रकार भावना करता हुआ, स्वर्णके पर्वतके कुंजविषे कच स्थित भया. तिसके अनंतर ॐकारका उच्चार बडे स्वरसों करने लगा अरु ॐकारकी जो अर्धकला है, जिसको अर्धमात्रा कहते हैं, सो फूलते भी कोमल है, बहुरि तिसविषे स्थित होत भया, सो अर्धमात्रा कैसी है, न अंतःस्थित है, न बाह्य है, हृदयविषे भावना करता हुआ तिसविषे स्थित भया, कलनारूपी जो मल था, तिसते रहित निर्मल भया, चित्तकी वृत्ति निरंतर लीन होगई, जैसे मेघके नष्ट भयेते शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे कलंकित कलनाके दूर हुएते निर्मल भया, जैसे पर्वतकी पुतली अचलरूप होती है तैसे कच समाधिविषे स्थित अचल भया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणेकचगाथावर्णनं नामाष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ५९.

कमलजाव्यवहारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! अंगनाके शरीरादिक जो भोग पदार्थ हैं, सो इनते इतर तौ जगत्विषे सुख कछु नहीं अरु ज्ञानवान्को यह पदार्थ तुच्छ भासते हैं, इनविषे आस्था नहीं करते, बहुरि इच्छा किस पदार्थकी करैं, इन भोग ऐश्वर्य पदार्थकरि मूढ असाधु तोष पाते हैं, जो ज्ञानवान् साधु हैं, सो इनविषे प्रीति नहीं करते जो कृपण अज्ञानी हैं, तिनको भोग ही सरस हैं अरु भोग कैसे हैं, आपातरमणीय आदि अंत मध्यविषे दुःखरूप हैं, जो पुरुष इनविषे आस्था करते हैं, सो गर्दभ नीच पशु हैं. हे रामजी! स्त्री कैसी है, रक्त मांस अरु अस्थि आदिकरि पूर्ण है जो इसको पायकरि तोषित होते सो गीदड़ हैं मनुष्य नहीं अरु जो ज्ञानवान् हैं सो किसी जगत्के पदार्थते प्रीति नहीं करते, पृथ्वी सर्व मृत्तिकारूप है, वृक्ष सर्व काष्ठरूप हैं, देह सर्व मांसरूप है, पर्वत सर्व पाषाणरूप हैं, पाताल अधः है आकाश ऊर्ध्व है, सो दिशाकरि

व्यापा है, सर्व विश्व पांचभौतिकरूप है, इसविषे तौ अपूर्व सुख कोऊ नहीं, जिसविषे ज्ञानवान् प्रीति करते हैं, इंद्रियके जो पंच विषय हैं, सो मोहके देनेहारे हैं, विवेकमार्गके रोकनेहारे हैं, जेती कछु जगज्जालकी संपूर्ण विभूति हैं, बडे ऐश्वर्य पदार्थ, सो सब दुःखरूप हैं, प्रथम इनका प्रकाश भासता है, पाछे कलंकको प्राप्त करते हैं, जैसे दीपक प्रथम प्रकाशको दिखाता है, बहुरि काजल कलंकको देता है, तैसे इंद्रियोंके विषय आगमापायी हैं, इनकरि शांति प्राप्त नहीं होती, अज्ञानीको स्त्रियां आदिक पदार्थ रमणीय भासते हैं, ज्ञानवान्की वृत्ति इनकी ओर नहीं फुरती, अज्ञानीको स्थिररूप भासता है अरु स्वाद देते हैं, तुष्ट करते हैं, ज्ञानवान्को असत्य अरु चलरूप भासता है, तुष्टताका कारण नहीं होते, विषयभोग कैसे हैं, विषकी नाईं हैं, यह स्मरण मात्रते भी विषवत् मूर्च्छा करते हैं, सत्यविचार भूलि जाता है, ताते इनको त्यागिकरि अपने स्वभावविषे स्थित होहु अरु ज्ञानवान्की नाईं विचरहु. हे रामजी ! जब इस जीवको अनात्मविषे आत्माभिमान होता है, तब असंगरूप जागज्जाल भी सत्य हो भासता है, ब्रह्माको भी वासनाके वशते कल्पदेहका संयोग होता है, जैसे स्वर्णका प्रतिबिंब जलविषे पड़ता है, अरु तिसकी झलक कंध ऊपर पडती है सो कंधसे स्वर्णका संयोग कछु नहीं, तैसे ब्रह्माका संयोग देहके साथ वास्तव कछु नहीं, कल्पनामात्र देह है. राम उवाच– हे महामते ! विरंचीके पदको प्राप्त होइकरि बहुरि यह सघनरूप जगत् कैसे रचते हैं, सो क्रमकरिकै कहौ. वसिष्ठ उवाच– हे रामजी ! जब प्रथम कमलज जो ब्रह्मा उत्पन्न भया है, तब जैसे बालक गर्भते उपजता है, तैसे उपजिकरि वारंवार इस शब्दका उच्चारण किया कि, ब्रह्म ब्रह्म इस कारणते तिसको ब्रह्मा कहते हैं, बहुरि संकल्पजाल है रूप जिसका, ऐसा कल्पित आकार मन हो आया, तिस मनते आगे संकल्प लक्ष्मी पसारी प्रथम संकल्पते जो माया उपजती है, वह तेज अग्निके चक्रवत् फुरने लगी, तिसते वड़ा आकार होगया, ज्वालाकी नाईं स्वर्णलतारूप बडी जटाकरि संयुक्त प्रकाशको धारे, शरीर मनसंयुक्त सूर्यरूप होइकरि स्थित भया, अपने समान आकार बड़े प्रकाशसं-

युक्त कल्पता भया, ज्वालाका मंडल आकाशके मध्य स्थित भया, अग्निरूप अग्नि ही अंग हैं जिसके, हे महाबुद्धिमान् रामजी ! इस प्रकार तौ ब्रह्मते सूर्य भया है, अरु अपर जो तेजकिरण फुरती हैं, सो आकाशविषे तारागण बिंबपर आरूढ फिरते हैं, बहुरि ज्यों ज्यों वह संकल्प करता गया, त्यों त्यों तत्काल भी आगे सिद्ध होइकरि भासने लगा, इसी प्रकार आगे जगत्को रचता भया, जिस प्रकार इस सृष्टिविषे ब्रह्मा रचता है, तिसी प्रकार अपर सृष्टिविषे रचते हैं, प्रथम प्रजापतिको रचता है; बहुरि कालकलना नक्षत्र तारागण रचे बहुरि देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग गंधर्व, यक्ष, नदियां समुद्र पर्वत सर्व इसी प्रकार कल्पता भया; जैसे समुद्रविषे तरंग कल्पित होते हैं; तैसे सिद्ध रचे, तिनके कर्म रचे, सो भी शुभ संकल्परूप जैसा वह संकल्प करै, सोई सिद्ध होकरि भासने लगे, प्रजापतिने संकल्पकरि सिद्ध उत्पन्न किये, तिनते त्यागे और बहुरि उत्पन्न किये, इसी प्रकार बहुरि भूत तारागण आगे और उत्पन्न किये तिनने और उत्पन्न किये, तब ब्रह्माजी वेदको उत्पन्न करता भया; जीवके नाम आचार कर्म वृत्ति पुण्य क्रिया सब जगत्की मर्यादाकरि, नीतिरूप स्त्रीको रचता भया सो जगत्रूपी ग्रहकी मर्यादा है, इस निमित्त उत्पन्न किया सो इस प्रकार ब्रह्माकी माया ब्रह्मारूपकरि बडे शरीरको धर रही है, आगे सृष्टिका विस्तार है, लोक अरु लोकपालके क्रम किये हैं, सुमेरु पृथ्वीके मध्य दशों दिशा रचे, सुख मृत्यु राग द्वेष प्रगट किये, इस प्रकार संपूर्ण जगत् त्रिगुणरूप, ब्रह्माजी रचता भया, जैसे जैसे उसने सब रचे हैं, तैसे ही स्थित भये हैं अरु है क्या, जो कछु संपूर्ण दृश्य भासता है, सो सब माया मात्र है. हे रामजी ! इस प्रकार जगत्का क्रम हुआ है, सो संकल्परूप संसार बडा स्थित होइकरि अज्ञानकरि भासता है, यह तौ संकल्पकरि रचा है संकल्पके वशते जगत्की क्रिया परसती है, अरु संकल्पवशते दैवनीति होइकरि स्थित भयी है, सर्व जगत् ब्रह्माते संकल्पविषे स्थित है, जब तिसका संकल्प निर्वाण होता है, तब जगत भी लय होजाता है, एक समय ब्रह्माजी पद्मासनको धरि बैठे थे अरु

चिंतवत भये कि, यह जगज्जाल मनके संकल्प फुरणेमात्र है, मनके फुरणेकारि उपजि आता है, बड़ा विस्ताररूप नाना प्रकारके व्यवहार विकारसंयुक्त इंद्र, उपेंद्र, मनुष्य, दैत्य, समुद्र, पर्वत, पाताल, पृथ्वीते लेकरि जगज्जाल सर्व मायामात्र है, बड़ा पसरि रहा है, अब मैं इसते निवृत्त होऊं. हे रामजी ! इस प्रकार चिंतनाकारि ब्रह्माजी संकल्प अनर्थरूपते उपरत भया, आदि अंत रहित जो अनादि मत परब्रह्म स्फार आत्मारूप है, तिस आत्मतत्त्वविषे मनको लय करता भया, आनंदरूप आत्मा होकारि अपने आपविषे स्थित भया, निर्मल निरहंकार परमतत्त्वको प्राप्त भया, जैसे कोऊ व्यवहारते थका हुआ विश्राम करता है, तैसे अपने आपकारि आत्मतत्त्वविषे स्थित भया, जैसे अक्षोभ समुद्र होता है, तैसे अक्षोभ भया ध्यानविषे जुडि गया, बहुरि ध्यानते जागा; जैसे द्रवताकारिकै समुद्रते तरंग फुरि आवैं, तैसे चित्तके वशते ब्रह्माजी फुरनरूप हो आया, तब जगत्को देखिकै चिंतवत भया, कैसे संसार है, दुःखसुखकारि संयुक्त अनन्त फांसीकारि बन्धमान है रागद्वेष भय मोहसों दूषित है. हे रामजी ! इस प्रकार जीवको देखिके ब्रह्माजीको दया उपजी दयाकरिकै अध्यात्मज्ञानकारि संपन्न वेद उपनिषद् वेदांतको प्रगट करता भया बडे अर्थसंयुक्त नाना प्रकारके शास्त्र रचे, बहुरि पुराण रचे, सब जीवके मुक्तिनिमित्त, तिनको रचिकारि परमपद जो आपदाते रहित है, तिसविषे स्थित भया जैसे मन्दराचल पर्वतके निकसते क्षीरसमुद्र शांत होता है तैसे शांतरूप होइकारि स्थित भया, बहुरि उसी प्रकार जाग जगत्को देखि मर्यादाविषे जोडा, बहुरि कमलपीठविषे स्थित होकारि आत्मतत्त्वके ध्यान परायण भया इसी प्रकार जो कछु अपने शरीरकी मर्यादा ब्रह्माजीने करी है, तिसी प्रकार नीतिके संस्कार पर्यंत क्रीडा करते हैं, कुलालके चक्रवत् नीतिके अनुसार विचरता है, जैसे ताडना अरु वासनाते रहित चक्र फिरता है, तैसे जन्म कारणते रहित है तिसको शरीरके रखने अरु त्यागनेविषे कछु इच्छा नहीं, न कछु जगत्की स्थिति अस्थितिविषे इच्छा है, किसी इस पदार्थको ग्रहण त्यागकी भावनाविषे आसक्त नहीं,

सर्व पदार्थविषे समबुद्धि परिपूर्ण समुद्रवत् स्थित है, कबहूं सब संकल्पते रहित शांतरूप हो रहता है कबहूं अपनी इच्छाकरि जगत्को रचता है; परंतु उसको जगत्के रचनेविषे कछु भेद नहीं, सर्व पदार्थकी अवस्थाविषे तुल्यता है. हे रामजी! यह मैंने तुझको ब्रह्माकी स्थिति कही है, यह परम दशा अपर भी किसी देवताको उपजे तौ तिसको समता जानिये, वह शुद्ध सात्त्विकरूप है, सृष्टिके आदि जो शुद्ध ब्रह्मतत्त्वविषे चित्तकला फुरी है, सो फुरनारूप मनका ब्रह्मारूप होइकरि स्थित भई है, जब बहुरि जगत्के स्थितिक्रमविषे कलना उत्पन्न होती है, तब वही ब्रह्मारूप आकाश पवनको आश्रय लेकरि औषधि पत्रविषे आय प्रवेश करता है, कहूं देवताभावको प्राप्त होता है, कहूँ मनुष्यभावको प्राप्त होता है, कहूं पशुपक्षी तिर्यक् आदिकको प्राप्त होता है, चन्द्रमाकी किरणोंद्वारा अन्नादिक ओषधीविषे प्राप्त होता है, जैसे भावको लेकरि चित्तकला फुरती है, तैसा भाव शीघ्र ही उत्पन्न होआता है, कई उपजिकरि संसर्ग संसारके वशते तिसी जन्मके बन्धनते मुक्त होजाते हैं; अपने स्वरूपका चमत्कार होता है, कई अनेक जन्मकरि मुक्त होते हैं, कई थोडे जन्मकरि मुक्त होते हैं. हे रामजी! इस प्रकार जगत्का क्रम है, प्रत्यक्ष संकट कर्म बंधमोक्षरूप उपजते हैं, कई मिटि जाते हैं, इस प्रकार संसार बन्धमोक्षकरि पूर्ण है, जब यह कलनामल नष्ट होता है, तब संसारते मुक्त होता है, जबलग कलनामल होता है, तबलग संसार भासता.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे कमलजाव्यवहारो नामैकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

षष्टितमः सर्गः ६०.

विचारपुरुषनिर्णयः।

वसिष्ठ उवाच-हे महाबाहो रामजी! इस प्रकार ब्रह्माजी निर्मल पदविषे स्थित होइकरि सर्ग विस्तारता भया, जो संसाररूपी कूप है,

तिसविषे जीव भ्रमते जाते हैं, जीवरूपी टीड तृष्णारूपी जेवरीसाथ बांधे हुए कबहूं अधःको जाते हैं, कबहूं ऊर्ध्वको जाते हैं; जब वासनारूपी जेवरी टूट पड़ती है, तब ब्रह्मतत्त्वसों उठे सो बहुरि ब्रह्मतत्त्वसाथ एकत्र होजाते हैं; ब्रह्मसत्ताते जीव उपजते बहुरि ब्रह्मसत्ताविषे लय होते हैं, जैसे समुद्रते मेघ जल कणके धूम्रद्वारा उपजते हैं, बहुरि वर्षाकारि तिसीविषे प्रवेश करते हैं, तैसे जब तन्मात्रा मंडलके साथ चित्तकला मिलती है, तब तिसके साथ जीव एकरूप होजाते हैं, जैसे मंदार वृक्षके पुष्पकी सुगंधि वायुसंग मिश्रित एकरूप होजाती है, तैसे चित्तकला जीव तन्मात्रासों मिलिकारि प्राणनामको पाती है, इस प्रकार प्राणवायुते आदि तन्मात्रा जीवकलाको खैंचने लगता है, जैसे बडे प्रचण्ड दैत्यके समूह देवताको खैंचै; तैसे खैंचा हुआ जीव तन्मात्रासाथ एकरूप होजाता है, जैसे गन्ध अरु वायु तन्मय होता है वह प्राण तन्मात्रा जीवके शरीरविषे वीर्यस्थानमें जाय प्राप्त होता है, तब जगत्‌विषे उपजिकारि प्राण प्रत्यक्ष होते हैं, और कई धूम्रमार्गकारि देहवान्‌के शरीरविषे प्रवेश करते हैं, मेघविषे प्रवेश कर बुन्द मार्गसों ओषधीविषे रसरूप होइकारि जाय स्थित होते हैं, तिसको भोजन करनेहारेके अंतर वीर्यरूप होइकारि स्थित होते हैं, कई और प्राणवायुद्वारा प्रगट होते हैं, वह चर स्थावररूप होते हैं, कई पवनमार्गकारि धान्यक्षेत्रविषे चावलरूप स्थित होते हैं, तिसको जीव भोजन करते हैं, तिसकारि वीर्यविषे प्राप्त होते हैं, नाना प्रकारके रंग भेदकारि प्राणधर्म उपजते हैं,कई उपजने मात्रते जीवकी परंपरा तन्मात्राकारि वेष्टित आकाशविषे जाय स्थित होते हैं, जबलग चन्द्रमा उदय नहीं भया, जब चन्द्रमा उदय होता है,तब उसका रस जो किरणैं शीतल अरु श्वेत क्षीर समुद्रवत् तिनविषे जाय प्राप्त होते हैं,तिनके अंतर्गत होकारि पत्र ओषधिविषे स्थित होते हैं, जैसे भँवरे स्थित आय होते हैं, तैसे ओषधिविषे जायकारि जीव स्थित होते हैं; फलविषे स्वादरूप होइकारि स्थित होजाते हैं जैसे घुन रसकारि पूर्ण होता है, तैसे जीवकारि ओषधि फल पूर्ण होजाते हैं, जैसे दूधकारि स्तन पूर्ण होते हैं;तैसे जीवकारि फल पूर्ण होते हैं, तब वह फल परिपक्क होते हैं, तिनको देहधारी भक्षण करते

हैं, तिसविषे जीव वीर्यरूप जडात्मकरूप होइकरि स्थित होते हैं, सो सुषुप्ति वासनाकरि वेष्टित हुए गर्भ पिंजरविषे जाय पडते हैं. हे रामजी! वीर्यविषे सदा जीव रहते हैं, जैसे मृत्तिकाविषे सदा घटादिक रहते हैं, काष्ठविषे सदा अग्नि रहता है; दूधविषे घृत रहता है तैसे वीर्यविषे जीव रहते हैं, इस प्रकार परमात्मा महेशरूपते जीवकी परंपरा उपजती है, वायुमार्गकरि, धूम्रमार्गकरि, मेघमार्गकरि, ओषधिमार्गकरि, प्राणमार्गकरि, चंद्रमाकी किरणोंके मार्गकरि, इत्यादिक अनेक प्रकारकरि जीव उपजते हैं; जो उपजनेकरिकै आत्मसत्तासों अप्रमादी रहते हैं, अपना स्वरूप विस्मरण नहीं होता, सो शुद्ध सात्त्विकी हैं, महाउदार व्यवहारवान् होते हैं अरु जिनको उपजनेकरि विस्मरण होजाता है, बहुरि उसी शरीरविषे आत्माका साक्षात्कार होता है, सो सात्त्विकीरूप हैं अरु जो उपजिकरि नाना प्रकारके व्यवहारको प्राप्त होने हैं अरु स्वरूप विस्मरण होजाता है; जन्मकी परंपरा पायकरि स्वरूपका साक्षात्कार होता है, सो राजस सात्त्विकी कहाते हैं अरु जिनको अंतका जन्म आय रहता है, तिनको जिस प्रकार मोक्ष होना है, सो क्रम अब तुझको कहता हौं, जो सहज सत्ता सात्त्विकभावको प्राप्त होते हैं अरु मोक्ष होते हैं. हे रामजी! उपजनेमात्रते जो अप्रमादी हुए सो शुद्ध सात्त्विकी हैं, वह ब्रह्मादिक हैं, अरु जो प्रथम जन्मकरि बोधवान् हुए सो सात्त्विकी हैं अरु दुर्लभ हैं; अरु जो कबहूँ किसी जन्मकरि मोक्ष हुए हैं, सो राजस सात्त्विकी हैं, इनते इतर हैं, सो नाना प्रकारके मूक जड़ अनेक हैं, तमसंयुक्त स्थावरादिक हैं, जिनको आत्मपद प्राप्त भया है, तिनको जो मिलते हैं तिनको अंतका जन्म है, ऐसे पुरुष विचारते हैं, कि मैं कौन हौं, यह जगत् क्या है, इस विचारके क्रमकरि मोक्षभागी होता है, सो राजसते सात्त्विकी होते हैं,

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे विचारपुरुषनिर्णयो नाम षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमः सर्गः ६१.

मोक्षविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! राजसते सात्त्विकी हुए हैं, सो पृथ्वीपर महागुणकरि शोभायमान होते हैं, सदा उदितरूप रहते हैं,जैसे आकाशविषे चंद्रमा रहता है, तैसे व पुरुष खेदको नहीं प्राप्त होते हैं, जैसे आकाशको मलिनता स्पर्श नहीं करती, तैसे उनको आपदा स्पर्श नहीं करती. जैसे रात्रिके आयेते स्वर्णके कमल मूँदे नहीं जाते, जो कछु प्रकृत आचार है, तिसके अनुसार चेष्टा करते हैं और प्रकार नहीं करते, जैसे सूर्य अपने आचारविषे विचरता है और आचार नहीं करता, तैसे वह सत्यमार्गविषे विचरते हैं, अंतरते पूर्ण शांतरूप हैं, आपदाकरि भी नहीं त्यागते, जैसे चंद्रमाकी कला क्षीण होती है, तौ भी अपनी शीतलताको नहीं त्यागती, तैसे ज्ञानवान् आपदाके प्राप्त हुएते भी मलिनताको प्राप्त नहीं होते सर्वदा काल मैत्री आदिक गुणकरि संपन्न रहते हैं, सदा तिनकरि शोभते हैं; समतारूप जो समरस हैं, तिसकरि पूर्ण शांतरूप हैं निरंतर स्वशुद्ध समुद्रवत् अपनी मर्यादाविषे स्थित रहते हैं. हे रामजी ! तुम भी महापुरुषके मार्ग में सदा चलहु, जो मार्ग परम पावन आपदाते रहित सात्त्विकी है, तिसके अनुसार चलौ तब आपदाके समुद्रविषे न डूबौगे, जैसे वे खेदते रहित जगतविषे विचरते हैं, तैसे विचरौ, जिस क्रमकरि राजसते सात्त्विकी मोक्षभागी होता है, सो सुनो प्रथम आर्जवपदको प्राप्त होना. अर्थ यह कि, यथाशास्त्र सत्व्यवहार करना तिसकरि अंतःकरण शुद्ध होता है तिस आर्यपदको पायकरि, संतसाथ मिलना अरु वारंवार सच्छास्त्रको विचारना, अरु जो संसारके अनित्य पदार्थ हैं तिनविषे प्रीति न करनी, विरक्तता उपजानी, तिनते निरिच्छ होना अरु जो पदार्थके उपजे विनशने त्रिलोकीविषे सत्यरूप है वारंवार तिसकी भावना करनी, अपर भावना शीघ्र ही मिथ्या जानिकरि त्यागनी, जो कछु दृश्य जगत् भासता है, सो असम्यक् दृष्टि

है, निष्फल नाशरूप व्यर्थ जानिकारि तिसकी भावना त्यागनी, अरु सम्यक् ज्ञानको स्मरण करना; संतजन अरु सच्छास्त्र जो ज्ञानके सहायक हैं, तिनके संग मिलिके विचार करना कि, मैं कवन हौं, जगत क्या है, भली प्रकार प्रयत्नकारि विवेकसंयुक्त सदा अध्यात्म-शास्त्रका विचार करना; सत्य व्यवहार सात्त्विकी कर्म करने; अवज्ञा करिकै मृत्युको विस्मरण न करना, जो मृत्यु विस्मरण कारि संसार कार्यविषे लग जाता है, सो डूबता है, ताते स्मरण करिकै सन्मार्गविषे लगना, जिस पदविषे ज्ञानी पुरुष महाउदार शीतलचित्त स्थित हैं, तिस पदके मार्ग अरु दर्शनविषे सदा इच्छा रखनी जैसे मोरको मेघकी इच्छा रहती है. हे रामजी! अहंकार जो देहविषे स्थित है, यह देह संसारविषे उपजी है, तिनको भली प्रकार विचार करिकै नाश करो यह देह संसार रुधिर मांस मज्जा आदिकको बनी हुई है, जेते कछु भूतजात हैं, सो सब चेतनरूपी तागेविषे जैसे मोती परोये होवैं, तैसे हैं, तिन भूतको त्यागिकारि चिन्मात्र तत्त्वको देखौ, चेतन-सत्ता सत्य है, नित्य विस्तृतरूप है, शुद्ध है, सर्वगत सर्वभाव तिसविषे हैं, सो त्रिलोकीका भूषण आश्रयभूत है, जो चेतन आकाशमें सूर्यविषे है, सोई चेतन पृथ्वीके छिद्रमें कीट है तिसविषे है, जैसे घटाकाश अरु महाकाशविषे भेद कछु नहीं, तैसे शरीरमें चेतनविषे भेद कछु नहीं, जैसे बहुत मिरचा हैं, तिनविषे तीक्ष्णता एक ही है, तैसे सर्व भूतविषे चेतनता एक अनुस्यूत है, अनुभवकारि जानता है, तिस एक चिन्मा-त्रविषे भिन्नता कहांते होवै, एकसत्य सत्ता जो निरंतर चिन्मात्र वस्तुरूप है तिसविषे जन्म मरण आदिक अज्ञानकारि भासता है, वास्तवते न कोऊ उपजा है, न मरता है, एक आत्मतत्त्व सदा ज्योंकार यों स्थित है,जगत विकार तिसविषे आभासमात्र हैं, न सत्य है, न असत्य है, चित्तके फुरनेकारि भासता है; चित्तके शांत हुएते शांत होजाता है, जो जगत्को सत्य मानिये तौ अनादि हुआ इसकारि भी शोक किसीका नहीं बनता, अरु जो जगत् असत्य मानिये तौ भी शोकका स्थान नहीं बनता, ताते

दृढ विचार करिकै स्थित होहु,शोकको त्यागौ तुमको न जन्म है, न मरण है, आकाशवत् निर्मल शम शांतरूप होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे स्थितिप्रकरणे मोक्षविचारो नामैकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ६२.

मोक्षोपायवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जो धैर्यवान् पुरुष बुद्धिमान् है, सो सच्छास्त्रको विचारै अरु संतजनका संग करै, तिनके आचारको ग्रहण करै, जो दुःखके नाशकर्त्ता श्रेष्ठ ज्ञानदृष्टि हैं, तिनको यत्न करिकै अंगीकार करै; तब इसको भी सज्जनता आय प्राप्त होवैगी, संतजन जो विरक्त आत्मा हैं, तिनसो मिलिकरि सच्छास्त्रको विचारै, तब परमपदको प्राप्त होते हैं. हे रामजी ! जो पुरुष सच्छास्त्रके विचारनेहारा है अरु संतजनका संग वैराग्याभ्यास आदरसंयुक्त करता है, सो तुम्हारी नाई विज्ञानका पात्र है, तुम तौ उदारआत्मा हौ, धैर्यवान्के जो गुण शुभ आचार हैं,तिनके समुद्र हौ, निर्दुःख होइकरि स्थित होहु, अब राजस सात्त्विकी भये हौ, मननशील भये हौ, बहुरि ऐसे दग्धरूप संसारविषे दुःखके पात्र न होवोगे; यह तुम्हारा अंतका जन्म है, जो अपने स्वभावकी ओर धावते हौ, अंतर्मुख यत्न करते हौ, निर्मल दृष्टि तुमको प्रगट भई है, यथाभूत जगत् वस्तुको जानते भये हौ, जैसे सूर्यके प्रकाशकरि यथार्थ वस्तुका ज्ञान होता है, अब मेरे वचनकी पंक्तिकरि सर्व मल दूर हो जावैगा, जैसे अग्निविषे धातुका मल जलि जाता है, तैसे तुम्हारा मल जलि जावैगा , निर्मलताकरि शोभायमान होवैगा, जैसे मेघके नष्ट भयेते शरत्कालका आकाश शोभता है, तैसे संसारकी भावनाते मुक्त होइकरि चिंताते रहित निर्मल भावकरि शोभौगे, अहं मम आदिक कल्पनाते मुक्त भये हैं, इसविषे संशय कछु नहीं. हे रामजी ! तेरा जो यह अनुभव उत्तम व्यवहार है, तिसके अनुसार विचरैगा तौ तू अशोक पदको

प्राप्त होवैगा; अरु अपर कोऊ इस व्यवहारविषे वर्तैगा, सो भी संसारसमुद्रको अनुभवरूपी बेडेकरि तरि जावैगा, तुम्हारे तुल्य जिसकी मति होवैगी, सो समदर्शी जन ज्ञानदृष्टि योग्य है, जैसे सर्व कांतिमान् सुंदरताका पात्र पूर्णमासीका चंद्रमा होता है; अरु तुम तौ अशोकदशाको प्राप्त भये हौ यथा प्राप्तविषे वर्त्तते हौ, जबलग रागदोषते रहित स्थितबुद्धि रहौ, यथाशास्त्र जो उचित आचार है, सो बाह्यते करौ, अरु अंतरते सब कल्पनाते रहित शीतलचित्त होहु, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शीतल होता है. हे रामजी! इन सात्त्विक अरु राजस सात्त्विकते जो इतर जीव हैं तामसी, तिनका विचार यहां नहीं करना, वह मूढ गीदड़ हैं, मद्यादिकके खानेहारे हैं, तिनके बिचारके साथ क्या प्रयोजन है, जो मैं तुझको सात्त्विकी जन कहे हैं, तिनके सेवनेकरि बुद्धि अन्तके जन्मवती होती है; अरु जो तामसी तिनको सेवै तौ उनकी बुद्धि भी उदार होजाती है अरु जिस जिस जातिविषे जीव उपजता है, तिस जातिके गुणकरि शीघ्र ही संयुक्त होजाता है, पूर्व जो कोऊ भाव होता है, सो जातिके वशते वहां जाता रहता है अरु जिस जातिविषे वह जन्मता है, तिस जातिके गुणको जीतनेका पुरुषार्थ करता है तब यत्नकरि पूर्वके स्वभावको जीतिलेता है. जैसे धैर्यवान् शूरमा शत्रुको जीति लेता है, जो इसका पूर्व संस्कार मलिन है तौ धैर्यकरिकै मलिन बुद्धिका उद्धार करै, जैसे मुग्ध पशु गर्तविषे फँसि जावै अरु तिसको काढ़ि लेवै, तैसे बुद्धिको मलिन संस्कारते काढि लेवै. हे रामजी! जो तामस राजसी जाति हैं तिनको भी जन्म अरु कर्मके संस्कारवशते सात्त्विक प्राप्त होता है अरु वे भी अपने विचारद्वारा सात्त्विक जातिको प्राप्त होते हैं; इस पुरुषके अंतर अनुभवरूपी चिंतामणि है, तिसविषे जो कछु निवेदन करता है सोई रूप इसका होजाता है, ताते पुरुषार्थ करिकै अपना उद्धार करहु, पुरुषार्थ यत्नकरि यह पुरुष बडे गुणकरि संपन्न होता है, अरु मोक्षको प्राप्त होता है, अंतका जन्म होता है, आगे जन्म नहीं पाता; अशुभ जातिके कर्म निवृत्त होजाते हैं, ऐसा पदार्थ पृथ्वी, आकाश, देवलोकविषे कोई नहीं, जो यथाशास्त्र प्रयत्नकरि न पाइये

सो अवश्य पाता है. हे रामजी ! तुम तौ बडे गुणकरि संपन्न हौ, धैर्य अरु उत्तम वैराग्य दृढ बुद्धिसंयुक्त हौ. अरु तिसके पानेको धर्मबुद्धिकरि वीतशोकरूप हौ; तुम्हारे क्रमको जो कोऊ जीव ग्रहण करैगा, सो मूढताते रहित होइकरि अशोकपदको प्राप्त होवेगा; अब तुम्हारा अंतका जन्म है, बडे विवेककरि संयुक्त हौ, बुद्धिविषे शांतिके गुण आनि पसरे हैं, तिनकरि तुम शोभते हौ, सात्त्विक गुण क्रमकरि सर्वविषें रम रहे हौ, संसारकी बुद्धि मोह चिंता तुझको मिथ्या है, तुम अपने स्वस्थ स्वरूपविषे स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे महारामायणे चतुर्थे स्थितिप्रकरणे मोक्षोपायवर्णनं नाम द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

इति स्थितिप्रकरणं समाप्तम् ।

ॐ

परमात्मने नमः।

अथ श्रीयोगवासिष्ठे

पञ्चममुपशमप्रकरणं प्रारभ्यते।

तत्र प्रथमः सर्गः १.

पूर्वदिनवर्णनम्।

वाल्मीकिरुवाच–हे साधो! अब स्थितिप्रकरणेके अनंतर उपशमप्रकरण कहता हौं; जिसके जाननेते निर्वाणताको प्राप्त होवोगे. जब इस प्रकार वसिष्ठजीने वचन कहे, तब सब सभा शोभित भई, जैसे शरत्कालके आकाशमें तारागण शोभते हैं अरु वसिष्ठजीके वचन कैसे हैं, जो परमानंदके कारण हैं, ऐसे पावन वचन श्रवण करिकै अर्थ धरिकै मौन होगये, जैसे कमलकी पंक्ति कमलकी खानिविषे स्थित होवै, तैसे सभाके लोक अरु राजा स्थित भये अरु स्त्रियां जो झरोखेविषे बैठी थीं सो तिनके महाविलासकी चंचलता शांत होगई अरु घटीयंत्रोंके शब्द जो गृहविषे होते थे, सो भी शांत होगये, शीशपर चमर करनेवाले भी मूर्तिवत् अचल होगये, राजाते आदि लेकरि जो लोग थे, सो कथाके सम्मुख भये. कैसी कथा है, विज्ञानवाली है, सर्व ही तिसके विचारविषे मग्न होगये; रामजी बडे विकासको प्राप्त भये, जैसे प्रातःकालविषे कमल विकासमान होता है, तैसे तमको त्यागते भये, प्रकाश आनि उदय भया, जैसे सूर्यके उदय हुएते प्रकाश आनि उदय होता है अरु वसिष्ठजीकी कही जो वाणी थी, तिसकरि राजा दशरथ बहुत प्रसन्नताको प्राप्त भये, जैसे मेघकी वर्षाकरि मोर प्रसन्नताको प्राप्त होता है, तैसे गद्गद होगये, सर्वके जो मनरूपी चंचल वानर थे, सो विषयभोगते रहित स्थित भये, मंत्री श्रवण करिकै स्थित हो रहे, अपने

स्वरूपको जानत भये, जैसे चंद्रमाकी कला प्रकाशती है, तैसे आत्मकला प्रकाशती भई, लक्ष्मण अपने लक्ष्यस्वरूपको देखता भया, तीव्रबुद्धि करिकै वसिष्ठजीके उपदेशको जानता भया अरु शत्रुघ्न जो शत्रुको दलनहारा था, तिसका चित्त अति आनंदकरि पूर्ण भया, जैसे पौर्णमासीका चंद्रमा स्थित होता है, तैसे मंत्रियोंके हृदयविषे मित्रता होती भयी, मन शीतल होगया, हृदय प्रफुल्लित होता भया, जैसे सूर्यके उदय हुएते कमल तत्काल विकासमान होता है अरु और जो मुनि राजा ब्राह्मण स्थित थे, तिनके चित्तरूपी जो रत्न थे, सो स्वच्छ निर्मल होगये, तब मध्याह्नकालका समय हुआ, तब वादित्र बजने लगे, बड़े बड़े शब्द हुए, जैसे प्रलयकालविषे मेघके शब्द होते हैं, तैसे भेरीके शब्द होने लगे, तिनके बडे शब्दकरि मुनीश्वरोंका शब्द अच्छादित भया, जैसे मेघके शब्दकरि कोकिलाका शब्द छिप जाता है, तब वसिष्ठजी तूष्णीं :होगये, एक मुहूर्त्तपर्यंत शब्द होत रहा, बहुरि तूष्णीं भये; जब घनशब्द शांत हुआ, तब मुनीश्वर रामजीप्रति कहत भया. हे रामजी! जो कछु मुझे आज कहना था, सो कह रहा हौं, बहुरि कल कहौंगा, तब सर्व सभाके लोक अपने २ स्थानको गये, तब वसिष्ठजीने राजाते लेकरि रामजी आदिको कहा, तुम भी अपने गृहको जावो, तब सर्वने चरणवंदना नमस्कार करे; अपर जो नभचारी, वनचारी, जलचारी थे, सो सबको बिदा किये, सब अपने अपने स्थानोंको गये, ब्राह्मणकी सुंदर वाणीको विचारत भये और अपने अधिकारकी दिनकी क्रियाको करत भये.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे पूर्वदिनवर्णनं नाम प्रथमः सर्गः॥१॥

द्वितीयः सर्गः २.

उपदेशानुसारवर्णनम्।

वाल्मीकिरुवाच–हे भरद्वाज! इस प्रकार अपने अपने स्थानोंको जायके बड़े २ शूरमें राजपुत्र महासुंदर चंद्रमाकी नाईं जिनकी कांति है,

सो अपनेर स्थानोंविषे यथाउचित क्रियाको करत भये; वसिष्ठ, राजा राघव, मुनि, ब्राह्मण जो थे, सो अपनेर स्थानविषे स्नान आदिक, क्रियाको करत भये; तालविषे जो कमल थे, कुमुदिनी उत्पल आदिक थे, तहां स्नान करत भये; गौ, स्वर्ण, अन्न, पृथ्वी, वस्त्र, भोजन आदिक पानपात्र ब्राह्मणोंको यथायोग्य देते भये; स्वर्ण रत्नोंकरि जडे हुए जो स्थान थे, तिनविषे आयकरि राजा देवताओंका पूजन करते भये, किसीने विष्णुका, किसीने सदाशिवका, किसीने अम्बिका, किसीने सूर्य आदिका पूजन किया, पूजन करिकै पुत्र पौत्र सुहृद्‌ मित्र बांधवसंयुक्त भोजन करते भये, नाना प्रकारके महाउचित भोजन किये, दिनका अर्ध पौर आय रहा तब अपने संबंधियों संयुक्त और क्रिया करत भये, जब सांझकालमें सूर्य अस्त भया, तब सायंकालकी विधि करत भये; अघमर्षण गायत्री आदिक जाप करत भये; पाठ श्रौत अरु पुनरपि मनोहर कथा मुनीश्वरोंकी कही सुनी. तिसते उपरांत रात्रि भयी, तब परिचारिका जो स्त्रियां हैं, सो रामजी आदिकोंकी शय्या बिछावत भयीं; तिसके ऊपर बिराजित भये,रामजी विना सर्वोंको रात्रि एक मुहूर्त व्यतीत भई, अरु रामजी स्थित होइकरि वसिष्ठजीके वचनकी जो पंक्ति थी, तिसको विचारत भये कैसे वचन हैं, जो मधुर अरु उचितरूप हैं, तिनको कैसे चिंतवत भये, जैसे हस्तीका बालक किसी वनके स्थानमेंते कछु भोजन समेटि लेवै अरु आयके तिसका स्मरण करै, तैसे विचारत भये, संसार है नाम जिसका, इसविषे भ्रमणेका पात्र कौन है ? अरु नाना प्रकारके जो भूतजात हैं, सो कहांते आते हैं अरु कहां जाते हैं अरु मनका स्वरूप क्या है ? शांति कैसे होती है ? यह माया कहांते उठी है अरु कैसे निवृत्त होती है ? निवृत्त हुए विशेषता क्या होती है अरु नष्टता किसकी होती है ? अनंतरूप जो आत्मा विस्तृत है, सो तिसविषे अहंकार होना कैसे है अरु मनके क्षय होनेविषे मुनीश्वरने क्या कहा है अरु इंद्रियोंके जीतनेविषे क्या कहा है ? आत्माके पानेविषे क्या युक्ति वसिष्ठजीने कही है ? जीव, चित्त, अरु माया सब ही एकरूप हैं; विस्ताररूप संसार इनने ही रचा है, सो असतरूप है; तिनहूने सम्पूर्ण

संसार बांधि छोडा है; तिसकरि जीव पड़े दुःख पाते हैं, जैसे तंदुएने हस्तीको बांधा था अरु वह कष्ट पाता था, तैसे जीव कष्ट पाते हैं, तिस दुःखके नाश करने निमित्त कौन औषध है अरु भोगरूपी जो मेघमाला है, तिसविषे मोहित हुई मेरी बुद्धि गलित होगई है, तिसको मैं किस प्रकार भिन्न करौं ? यह तो भोगके साथ तन्मय होगई है, जैसे जल अरु दूधको हंस भिन्न करता है अरु मुझको भोगोंके त्यागनेकी समर्थता भी नहीं, भोगोंके त्यागने विना बडी आपदा है अरु तिसके संहारनेको भी समर्थ नहीं, बडा आश्चर्य है, हमको बडा कष्ट प्राप्त भया है, आत्मपदकी प्राप्ति मनके जीतनेकरि होती है, वेदशास्त्रके कहनेका प्रयोजन भी यही है अरु गुरुके वचनकरिकै भ्रम नष्ट होजाता है, जैसे बालकको परछाईंविषे बैताल भासता है, तिस भ्रमको जैसे बुद्धिमान् दूर करता है, तैसे मनरूपी भ्रमको गुरु दूर करते हैं, वह कौन समय होवैगा ? कि, मैं शांतिको प्राप्त होऊंगा अरु संसारभ्रम नष्ट होजावैगा. जैसे यौवनवती स्त्री भर्तारको पायके सुखसों विश्राम करती है, तैसे मेरी बुद्धि आत्माको पायकै कब विश्रामवती होवैगी अरु नाना प्रकार संसारके आरंभ कब मेरे शांत होवैंगे, कब मैं आदि अंतते रहित पदविषे विश्रांतिमान् होऊंगा, मन मेरा कब पावनरूप होवैगा, मैं पौर्णमासीके चंद्रमाकीनाईं संपूर्ण कलाकरि सम्पन्न कब होऊंगा, स्वच्छ शीतल प्रकाशरूप पदविषे कब स्थित होऊंगा अरु कब जगत्को देखिकै हँसौंगा, कब मलिन कलनाको त्यागिकै आत्मपदविषे स्थित होऊंगा, कब मैं मनको संकल्प विकल्पते रहित शांतरूप देखौंगा, जैसे तरंगते रहित नदी शांतरूप देखती हैं, तृष्णारूपी तरंगकरि व्याकुल जो संसारसमुद्र है, सो माया जलकरि पूर्ण है अरु रोगदोषरूपी मच्छसंयुक्त है, तिसको त्यागिकै मैं वीतज्वर कब होऊंगा, उपशम सिद्ध पदको मैं कब पावौंगा, जो पद बुद्धिमानोंने मूढताको त्यागिकै पाया है अरु मैं कब निर्दोष समदर्शी होऊंगा, अज्ञानरूपी ताप मेरा कब नाश होवैगा, जिसकरि संपूर्ण अंग मेरे पडे तपते हैं, सब धातु क्षोभरूप होगईं हैं तिसकरि बड़ा दीर्घ ज्वर हुआ है; ताते कब मेरा चित्त शांतिवान् होवैगा, जैसे वायु विना

दीपक शांत होता है, वैसा कब भ्रमको त्यागिकै प्रकाशवान् होऊंगा अरु मैं कब लीलाकरि इंद्रियोंके दुःखको तरि जाऊंगा, दुर्गंधरूप देहते मैं कब न्यारा होऊंगा, अहं त्वम् आदिक मिथ्या भ्रम उठा है, तिसको नाशरूप मैं कब देखौंगा, जैसे शरत्कालविषे मेघ नष्ट होता है अरु जिस पदके आगे इन्द्रादिकोंका सुख ऐश्वर्य मंदार आदिक वृक्षोंकी सुगंधि अरु नानाप्रकारके भोगजात सो तृणवत् भासते हैं, सो आत्मसुख हमको कब प्राप्त होवैगा? वीतराग मुनीश्वरने हमको निर्मलदृष्टि ज्ञानकी कही है, तिसको पायके मन विश्रामवान् होता है अरु यह संसार तौ दुःखरूप है. हे मन! तू किस पदको पायके विश्रामवान् भया है, माता पिता पुत्रादिक जो संबंधी हैं, तिनका पात्र मैं बहुरि नहीं होता, इनका पात्र भोगी होता है; हे बुद्धि! तू मेरी भगिनी है, तौ मेरा शीघ्र ही अर्थ भ्रातृवत् पूर्ण कर, जो तुम हम दोनों दुःखते मुक्त होवैं, मुनीश्वरके वचनोंको विचारिकै हमारी आपदा नाश होवैगी अरु परमपदको प्राप्त होवेंगे तुझको शांति होवैगी. हे मेरी बुद्धि! तू ज्योंका त्यों स्मरण कर कि वसिष्ठजीने क्या कहा है, प्रथम तौ वैराग्य कहा है, तिसके अनंतर मोक्षव्यवहार कहा है, बहुरि उत्पत्तिप्रकरण कहा है कि, संसारकी उत्पत्ति इस क्रमकरि हुई है; बहुरि स्थितिप्रकरण कहा है, कि ईश्वरकरि जगत्की स्थिति है, तिसका नानाप्रकारके दृष्टांतोंकरि निरूपण किया है अरु जेते प्रकरण कहे हैं, सो ज्ञान विज्ञान संयुक्त हैं. हे बुद्धि! जिस प्रकार वसिष्ठजीने कहा है, तैसे तू स्मरण कर कि; अनेकबार विचार जो बुद्धिविषे निश्चय न होवै तौ वह किया भी निष्फल होवै जैसे शरत्कालका मेघ बडा घन भी दृष्ट आता है, परंतु वर्षाते रहित निष्फल होता है, जैसे बुद्धिविषे अनुसन्धानते रहित किया विचार निष्फल होता है, जो बुद्धिविषे अनुसन्धान करिये सो विचार, सफल होता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे उपदेशानुसार-
वर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ३.

सभास्थानवर्णनम् ।

वाल्मीकिरुवाच–हे भरद्वाज ! जब इस प्रकार बडे उदारात्मा रामजी चित्तसंयुक्त रात्रिको व्यतीत करत भये, जैसे सूर्यकी कक्षा कमलते रात्रि बितावत है, तैसे रामजी बितावते भये, कछु तम संयुक्त तारागण आनि रहे अरु दिशा भासने लगी अरु प्रातःकालके नगारे नोबत बाजने लगे, तब रामजी उठे, जैसे कमलोंकी खानिते कमल उठै, तैसे रामजी उठिकरि भ्रांतिसंयुक्तप्रातः कालकेसंध्यादिक कर्म करत भये, बहुरि कछुक मनुष्यसंयुक्त वसिष्ठजीके आश्रममें आये, वसिष्ठजी एकांत समाधि विषे स्थित थे, आत्मपरायण आत्माविषे एकाग्रभूत है चित्त जिनका ऐसे वसिष्ठ मुनिको दूरते देखि, रामजी नमस्कार सहित चरणवंदना करत भये, प्रणामकरि वसिष्ठजीके सम्मुख हस्त बांधिकै ठाडे भये, जब दिशाका तम नष्ट भया, तब राजा अरु राजपुत्र, ऋषि, ब्राह्मण, सब वसिष्ठजीके आश्रमविषे आवत भये, जैसे ब्रह्मलोकविषे देवता आवैं तैसे. तब वसिष्ठजीका आश्रम जनोंकरि पूर्ण होगया, हस्ती घोडे रथ प्यादा चार प्रकारकी सेना राजा इनकरि स्थान शोभित भया, तब तत्काल वसिष्ठजी समाधिते उतरे, सर्वलोक प्रणाम करत भये तब तिन सबनको प्रणाम, आचारपूर्वक यथायोग्य ग्रहण करत भये, बहुरि उठे, विश्वामित्रको संग लेकरि सब सों आगे हो चले, बाहर निकसकरि रथपर आरूढ भये, जैसे कमलज ब्रह्मा पद्मविषे बैठें, तेसे रथपर बैठिकरि दशरथके गृहको चले अरु बडी सेनासंग वेष्टित है, जैसे ब्रह्माजी देवतोंसे वेष्टित इन्द्रपुरीको आते हैं, तैसे वसिष्ठजी दरशरथके गृह आवत भये, जो विस्तृत रमणीय सभा थी तिसविषे प्रवेश करत भये. जैसे हंसवेष्टित राजहंस कमलोंविषे जाय प्रवेश करै, तब राजा दशरथ जो बडे सिंहासनपर बैठे थे, सो तिसते उठिकरि आगे आय चरणवंदना करि नम्रभूत होइकरि चरण चूंबे अरु वसिष्ठजी सर्वके अग्र होइकरि शोभते भये, वसिष्ठजीते आदि लेकरि मुनि ऋषि ब्राह्मण आये अरु दशरथते लेकरि राजा, सर्व मन्त्री, बंदीगण, रामजीते

आदि लेकरि राजपुत्र, मंडलेश्वर, जगत्के अधिष्ठाता अरु मालव आदिक सर्व भृत्य टहलुए आये, सब अपने २ यथायोग्य आसनपर बैठि गये, सबकी दृष्टि वसिष्ठजीके ओर भई, बंदीजन जो भाट हैं, सो स्तुति करते थे, सर्व लोक शब्द करते थे, सो बोलनेते रहित होगये, तब सूर्य उदय हुआ, किरणोंने झुककरि झरोखेके मार्गांतर प्रवेश किया, तब कमल खिलि आये, पुष्पकरि स्थान पूर्ण हो गये, तिनकी महासुगंधि पसरी अरु झरोंखेविषे स्त्रियां आय स्थित भईं अरु सो अपनी चंचलताको त्यागिकरि मौन ह्वै बैठीं, चमर करनेहारी मौन होइकरि शीशपर चमर करत भईं अरु वसिष्ठजीकी जो महासुंदर वाणी कोमल मधुर है, तिसको स्मरण करि आपसमें आश्चर्यवान् होवैं, तब दिशाते पर आकाशते राजर्षि आये, सिद्ध विद्याधर अरु मुनि आये, वसिष्ठजीको प्रणाम करत भये, अरु गंभीरतासों मुखते बोले नहीं, अरु प्रणाम करिकै यथायोग्य आसनपर बैठगये, पुष्पकी सुगंधि चली, अगरचंदनादिकी धूप जलाई गई, सभाविषे बड़ी सुगंधि पसर रही, भँवरे शब्द करते फिरैं कमलोंको देखि प्रसन्न होवैं, रत्नमणि भूषण जो राजाने अरु राजपुत्रोंने पहरे हैं, तिसपर सूर्यकी किरणैं पड़ैं, ताते बडा प्रकाश चंदोराविषे करैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सभास्थानवर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४.

राघवप्रश्नवर्णनम् ।

वाल्मीकिरुवाच–मेघ जैसे बड़े गंभीर वचन बोधसहित सुंदर पद हैं जिनविषे, ऐसे प्रमाणवचन राजा दशरथ मुनिनविषे श्रेष्ठ वसिष्ठजीको कहत भया. दशरथ उवाच–हे भगवन् ! कलका जो दिन व्यतीत भया है, तिसविषे तुमने हमको कहा था, तिसके श्रमते रहित हो ? क्यों तुम्हारा शरीर तप्तताकरि अतिकृश जैसा होगया है, इस निमित्त तुमसे कहते हैं. हे मुनीश्वर ! तुमने आनंदवचन जो कहे हैं, सो प्रगटरूप हैं,

तुम्हारे वचनरूपी अमृतकी वर्षा है, तिसकरि हम आनंदवान् भये हैं, तुम्हारे निर्मल वचनकरि हमारे हृदयका तम दूर भया है, शीतलचित्त भये हैं, जैसे चंद्रमाकी किरणोंकरि तम अरु तप्तता दोनों निवृत्त होते हैं, तैसे तुम्हारे वचनोंकारि हम अज्ञानरूपी तम अरु तप्ततासे रहित भये हैं, तुम्हारे वचन अमृतवत् अपूर्व रस आनंद देते हैं, ज्यों ज्यों ग्रहण करिये, त्यों त्यों विशेष रस आनंद आता है, शोकरूपी तप्तताको दूर करनेहारे हैं, अमृतकी वर्षारूप हैं अरु आत्मारूपी रत्न है, तिसको दिखानेहारे परमार्थरूप दीपक है, ऐसे आनंदको देनेहारे तुम्हारे वचन हैं; सो संतजनरूपी वृक्षकी यह बेलि है, दुरिच्छा अरु दुष्ट आचरण नाना प्रकारके जो नीच हैं, तिसके नाश करनेहारे वचन हैं, जैसे तमको दूर करनेको अरु शीतलता करनेको शांतरूप चंद्रमा है, तैसे संतजनरूपी चंद्रमा है, तिनके वचनरूपी किरणोंकरि अज्ञानरूपी तप्तता नाश होती है. हे मुनीश्वर ! तृष्णा अरु लोभादिक जो विकार हैं, सो तुम्हारी वाणीकरि नष्ट होगये हैं, जैसे शरत्कालका पवन मेघको नष्ट करता है, तैसे तुम्हारे वचनकरि हम निष्पाप भये हैं, आत्मदर्शनके निमित्त प्रवर्त्तते हैं अरु तुमने हमको परम अंजन दिया है, तिसकरि हम सचक्षु भये हैं, जैसे जन्मका अंधा सचक्षु होके नेत्रकरिकै पदार्थोंको देखै, तैसे हम सचक्षु हुए हैं अरु संसाररूपी कुहिड निवृत्त हुई है, जैसे शरत्कालविषे कुहिड नष्ट होजाती है अरु जैसे कल्पवृक्षकी लता अरु अमृतका स्नान आनंद देता है, तैसे उदार बुद्धिकी वाणी आनंददायक होती है. वाल्मीकिरुवाच–ऐसे वसिष्ठजीको कहकरि रामजीकी ओर मुख करते भये, अरु कहा. दशरथ उवाच–हे राघव ! जो जो काल संतोंकी संगतिकरि व्यतीत होता है, सो सो दिन, सो सो काल, सफल होता है अरु जो जो दिन सत्संग विना व्यतीत होता है, सो वृथा होता है. कमलनयन रामजी ! बहुरि तुम वसिष्ठजीको जगावहु, अर्थ यह कि कछु पूँछहु, जो बहुरि उपदेश करैं, यह हमारे कल्याणविषे स्थित हैं, अर्थ यह जो हमारा कल्याण चाहते हैं. वाल्मीकिरुवाच–जब इसप्रकार राजा दशरथने कहा तब रामजीकी ओर मुख करिकै उदाराआत्मा वसिष्ठजी भगवान् बोलते भये,

वसिष्ठ उवाच- हे राघव ! अपने कुलरूपी आकाशके चंद्रमा, मैंने जो वचन कहे थे, सो तुमको स्मरण आते हैं क्या ? अरु तिन वाक्योंका अर्थ स्मरणविषे है क्या ? पूर्व अरु अपरका विचार कछु किया है क्या ? हे महाबोधवान् महाबाहो ! अज्ञानरूपी शत्रुके नाशकर्त्ता, सात्त्विक, राजस, तामस गुणोंके भेदकी उत्पत्ति विचित्ररूप है, सो मैंने कही है, सो तुम्हारे चित्तमें है क्या ? सर्व भी वही है, असर्व भी वही है, सत्य भी वही है, असत्य भी वही है, सदा शांत अद्वैतरूप है, यह परमात्मा देवका विस्तृतरूप स्मरण है क्या ? जिस प्रकार विश्व ईश्वरते उदय हुआ है, सो स्मरण है क्या ? यह जो देववाणी है, तिसका पात्र शुद्ध चित्त है, अशुद्ध नहीं. हे सत्यबुद्धि रामजी ! अविद्या जो विस्तृतरूप भासती है, तिसका रूप स्मरण है क्या ? अर्थते शून्य क्षणभंगुररूप है, सम्यक् दर्शनते रहित निर्जीव है, यह जो लवणके विचारद्वारा मैंने प्रतिपादन किया है; सो भलीभांति स्मरण है क्या ? वाक्योंका समूह मैंने तुझको कहा है, तिनोंको रात्रिविषे विचारिकरि हृदयविषे धारे हैं क्या ? जब बारंबार विचारता है अरु तात्पर्य हृदयविषे धारता है, तब बड़ा फल प्राप्त होता है अरु जो अवज्ञा करिकै अर्थका विस्मरण करता है, तौ फलको नहीं पाता. हे रामजी ! तुम तौ इन वचनोंके पात्र हौ, यह जो वचन परम उदार हैं, सो तिसके हृदयविषे फलीभूत होते हैं, जैसे उत्तम बाँसविषे मोती फलीभूत होते हैं, अपरविषे नहीं उपजते, तैसे जो विवेकी उदार आत्मचित्त पुरुष हैं, तिनके हृदयविषे यह वचन फलीभूत होते हैं.
वाल्मीकिरुवाच- इस प्रकार जब कमलासन ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठजीने कहा, तब महाओजवान् गंभीर रामजी अवकाश पाइकै बोलत भया.
राम उवाच- हे भगवन् ! सर्व धर्मोंके वेत्ता, तुम परमउदारने जो वचन कहे हैं, तिनकरि मैं बोधवान् भया हौं अरु जैसे तुम अब कहते हौ, तैसे ही सत्य है, अन्यथा नहीं. हे भगवन् ! मैं रात्रिको निद्राते रहित भया था, तुम्हारे वाक्यके विचारविषे रात्रि व्यतीत करी है; तुम तौ हृदयके अज्ञान-रूपी तमको नाशकर्त्ता पृथ्वीपर सूर्यरूप विचरते हौ. हे भगवन् ! तुमने जो व्यतीत दिनविषे आनंददायक प्रकाशरूपी वचन कहे थे, सो मैं

सर्व अपने हृदयविषे भली प्रकार धरे हैं, सो तुम्हारे वचन कैसे हैं, रमणीय अरु पवित्र हैं, अरु नाना प्रकारके विचित्र हैं, जैसे समुद्रते नानाप्रकारके रत्न निकसते हैं, तैसे तुम्हारे वचन कल्याणकर्त्ता हैं अरु बोधवान् हैं. अर्थ यह कि सर्वके सहायक हैं अरु हृदयंगम आनंदका कारण हैं, वह कौन है, जो तुम्हारी आज्ञाको शिरपर न धरै, जो मुमुक्षु जीव हैं, वे सब तुम्हारी आज्ञाको शीशपर धरते हैं, अपने कल्याणके निमित्त जानते हैं. हे मुनीश्वर ! तुम्हारे वचनकरिकै मेरे संशय निवृत्त भये हैं, जैसे शरत्कालविषे मेघ कुहिड नष्ट होजाती है अरु निर्मल आकाश भासता है, तैसे तुम्हारी कृपाकरि मैं संशयते रहित निर्मलचित्त भया हौं, यह संसार आपातरमणीय होइ भासता है, जबलग पदार्थोंका अभाव नहीं होता, तबलग सुखदायक भासता है अरु जब विषयपदार्थ इंद्रियोंते दूर होते हैं, तब दुःखदायक होजाता है अरु तुम्हारे वचन कैसे हैं, जिनके आदि अन्त भी कछु नहीं, सुगम मधुर आरंभ है अरु मध्यविषे सौभाग्य मधुर वचन हैं, अर्थ यह कि कल्याणकर्त्ता हैं, वह पाछेते अनुत्तम पदको प्राप्त करते हैं, जिसके समान अपर पद कोई नहीं सो अनुत्तम पदको प्राप्त करते हैं, यह तुम्हारे पुण्यरूप वचनका फल है, अरु तुम्हारे वचनरूपी पुष्प सदा कमलसमान खिले हुए हैं, निर्मल आनंदको देनेहारे हैं, अरु उदित फूल हैं, तिसका फल हमको प्राप्त होवैगा, सर्व शास्त्रोंविषे जो पुण्यरूपी जल है, तिसका यह समुद्र है, अब मैं निष्पाप हुआ हौं, मुझको उपदेश करहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे गघप्रश्नवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ५.

प्रथमोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच—हे सुन्दरमूर्ति रामजी ! यह उत्तम सिद्धांत जो उपशमप्रकरण है, सो श्रवण कर तेरे कल्याणनिमित्त मैं कहता हौं, यह संसार

महादीर्घरूप है, इसको राजसी अरु तामसी जीव धर रहे हैं, जैसे दृढ़ स्तंभके आश्रय गृह होता है, तैसे राजसी जीवोंका आश्रय संसार मायारूप है अरु जो तुमसारिखे सात्त्विकविषे स्थित हैं, सो शूरमें हैं, वैराग्य विवेक आदिक गुणकारि संपन्न हैं, सो लीलाकरिकै यत्न विना संसार मायाको त्यागि देते हैं, जो बुद्धिमान् सात्त्विक जागे हुए पुरुष हैं अरु राजस और सात्त्विक हैं, सो भी उत्तम पुरुष हैं, वह पुरुष जगत्के पूर्व अपूर्वको विचारते हैं, संतजन अरु सच्छास्त्रोंका संग करते हैं, तिनके कहे आचारपूर्वक विचरते हैं, तिसकरि ईश्वर जो परमात्मा है, तिसको देखनेकी बुद्धि उपजती है, और दीपकवत् ज्ञानप्रकाश उपजता है. हे रामजी! जबलग अपने विचार करिकै अपना स्वरूप नहीं पहँचानता, तबलग वह ज्ञान प्राप्त नहीं होता, जो उत्तम कुल निष्पाप सात्त्विक राजसी जीव हैं, तिनको विचार उपजता है, तिस विचारकारि अपने आपसों आपको पाता है, सो दीर्घदर्शी है, संसारके जो नाना प्रकारके आरंभ हैं, तिनको विचारता है अरु विचारद्वारा आत्मपदको पाता है, परमानंद सुखविषे प्राप्त होता है, ताते तुम इसी संसारको विचारहु, कि सत्य क्या है अरु असत्य क्या है, ऐसे विचारकारि असत्का त्याग करहु अरु सत्यका आश्रय करहु, जो पदार्थ आदिविषे न होवै अरु अन्तविषे न रहै, सो मध्यविषे भी असत्य जानिये, जो आदि अन्त एकरस है, तिसको सत्य जानिये, तिसते इतर कछु नहीं, जो आदिअन्तविषे नाशरूप है, तिसविषे जिसको प्रीति है अरु तिसके रागकारि रंजित है, सो मूढ पशु है, तिसको विवेकका रंग नहीं लगता, मन ही उपजता है, मन ही बढता है, सम्यक् ज्ञानके उदय हुएते मन निर्वाण होजाता है, मनरूप संसार है अरु आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है. राम उवाच-हे ब्राह्मण! जो कछु तुम कहते हौ, सो मैंने जाना है, जो यह संसार सर्वभावनाविषे मनरूप है, जरा मरण आदिक विकारका पात्र भी मन ही है, तिसके तरनेका उपाय निश्चयकारि तुम कहौ, जिसकरि इसको तरि जाओं हम सब रघुवंशियोंके कुलका अज्ञानरूपी तम हृदयसों दूर करनेको तुम ज्ञानके सूर्य हौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी!

प्रथम तौ इस जीवको यह कर्तव्य है कि जो विचारपूर्वक वैराग्य कहा है, कि संतजनोंका संग अरु सच्छास्त्रोंकरि मनको निर्मल करना सो जब मनको निर्मल करैगा, तब स्वजनता जो आर्जव तिसकरी संपन्न होवैगा, बहुरि इसको वैराग्य आनि उपजैगा, जब वैराग्य प्राप्त हुआ, तब ज्ञानवान् जो गुरु हैं, तिनके निकट जावैगा, जब वे उपदेश करैंगे, तब ध्यान अर्चनादिकके क्रमकरि परमपदको प्राप्त होवैगा, जब इसको निर्मल विचार आनि उपजता है, तब यह अपने आपको आपकारि देखता है. जैसे पौर्णमासीका चंद्रमा अपने बिंबको आपकारि देखता है, तैसे यह देखता है, जबलग विचाररूपी तटका आश्रयनहीं लिया, तबलग संसारविषे तृणवत् भ्रमता है, विचार करिकै वस्तु ज्योंकी त्यों जानता है, तब सब दुःख मनते नष्ट होजाते हैं, जैसे सोमजलके नीचे रेती जाइ रहती है, तैसे आधि (पीडा) उसकी रहिजाती है, बहुरि उत्पन्न नहीं होती, जैसे स्वर्ण अरु राख मिली हुई है, तबलग सोनार संशयविषे रहता है, जब स्वर्ण अरु राख भिन्न होवै, तब संशयरहित स्वर्णको प्रत्यक्ष देखता है, तब निःसंशय होता है, तैसे अज्ञानकरिके जीवोंको मोह उत्पन्न भया है, देह इंद्रियके साथ मिला हुआ संशयविषे रहता है, जब विचारकरि भिन्न भिन्न जानै तब मोह नष्ट हो जावै और तब संशयते रहित शुद्ध अविनाशीरूप आत्माको देखता है, विचार कियेते मोहका अवसर नहीं रहता. जैसे अज्ञात पुरुष चिंतामणिकी कीमतको जानि नहीं सकता, जब उसको ज्ञान प्राप्त भया, तब ज्योंका त्यों जानता है, तब मोह संशय निवृत्त हो जाते हैं, तैसे जीव जबलग आत्मतत्त्वको नहीं जानता तबलग दुःखका भोगी होता है अरु जब ज्योंका त्यों जानता, है, तब शुद्ध शांतिको प्रात होता है. हे रामजी! देहके संगकारि मिश्रित भासता है, वास्तवते कछु मिश्रित नहीं भया, ताते अपने स्वरूपविषे शीघ्र ही स्थित होहु, निर्मल स्वरूप जो आत्मा है तिसको रंचकमात्र भी देहसे संबन्ध नहीं, जैसे स्वर्ण कीचकेविषे मिश्रित भासता है, तौ भी स्वर्णको कीचका लेप कछु नहीं लगता निर्लेप रहता है, तैसे जीवको

देहके साथ संबंध कछु नहीं, निर्लेपही रहता है, आत्मा भिन्न है, देह भिन्न है.जैसे जल अरु कमल भिन्न रहते हैं, मैं ऊँची भुजा करिकै पुकारता हौं मेरा कहा कोऊ नहीं मानता, संकल्पते रहित होना परम कल्याण है, यही भावना अंतरमें क्यों नहीं करते ? जब लग जड़धर्म है. अर्थ यह कि विषयभोगोंविषे आस्था करता है अरु आत्मतत्वते शून्य रहता है, तब-लग मूढ टोए जैसा रहता है, जबलग स्वरूपका प्रमाद है, तबलग इसके हृदयसों संसारका तम और किसी प्रकार दूर नहीं होता,चंद्रमा उदय होवै, अग्निका समूह होवै,द्वादश सूर्य इकट्ठे उदय होवैं,तौ भी हृदयका तम रंच-कमात्र भी दूर नहीं होता अरु जब स्वरूपको जानिकरि आत्माविषे स्थित होवै, तब हृदयका तम नष्ट हो जावेगा, जैसे सूर्यके उदय हुएते जग-त्का अंधकार नष्ट होता है; तैसे जबलग आत्मपदका बोध नहीं अरु भोगोंविषे तद्रूप मन है, तबलग संसारसमुद्रविषे बहा करैगा अरु दुःखका अन्त न आवैगा. जैसे आकाशविषे धूलि भासती है, परंतु आका-शको धूलिका संबन्ध कछु नहीं, जैसे जलविषे कमल भासता है, परंतु जलसे स्पर्श नहीं करता सदा निर्लेप रहता है, तैसे आत्मा देहके साथ मिश्रित भासता है, परंतु देहके साथ आत्माका कछु स्पर्श नहीं, सदा विलक्षण रहता है, जैसे स्वर्ण कीचमलते अलेप रहता है, देह जड़ है, आत्मा तिसते भिन्न है, सुखदुःखका अभिमान आत्माविषे भासता है,सो भ्रममात्र असत्यरूप है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा असत्यरूप है, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, सो असत्यरूप है, तैसे आत्माविषे सुखदुःखादि असत्यरूप हैं, सुखदुःख देहको होता है, सर्वते अतीत जो आत्मा है, तिसविषे सुखदुःखका अभाव है, यह अज्ञान करिकै कल्पित है अरु देहके नाश हुएते आत्माका नाश नहीं होता, ताते सुखदुःख आत्मा-विषे कोई नहीं. न किसीको कछु सुख है, न किसीको कछु दुःख है, सर्व आत्मामय शांतरूप है अरु यह जो विस्तृतरूप जगत् दृष्टि आता है, सो मायामय है, जैसे जलविषे तरंग अरु आकाशविषे तरवरे भासते हैं, तैसे आत्माविषे यत्न भासता है, सो आत्मा ही है, न एक है, न दो हैं, सर्व आभासमात्र है, मिथ्या दृष्टि आकार भासता है, जैसा मणिका प्रकाश-

मणिते भिन्न नहीं अरु अपनी छाया दृष्टि आती है, तैसे आत्माका प्रकाशरूप जगत् भासता है, सो सब ब्रह्मरूप है, मैं और हौं, यह जगत् और है, इस भ्रमको त्याग करहु, विस्तृतरूप जो ब्रह्म घनसत्ता है, तिसविषे और कल्पना कोई नहीं, जैसे जलविषे तरंग कछु इतर वस्तु नहीं, जलरूप ही हैं, तैसे सर्वरूप आत्मा है, सो एकरूप है तिसविषे द्वितीय कल्पना कोई नहीं, जैसे अग्निविषे बर्फके कणके नहीं होते, तैसे ब्रह्मविषे दूसरी वस्तु कछु नहीं, ताते अपने आप स्वरूपकी आप ही भावना करो कि, मैं चिन्मात्ररूप हौं; जगज्जाल सर्व मेरा ही स्वरूप है, मैं ही विस्तृतरूप हौं; जो कछु है, सो देव ही है, न शोक है, न मोह है, न जन्म है, न देह है; ऐसे जानिकै विगतज्वर होहु, अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, तुम्हारी स्थिर बुद्धि है, तुम शांतरूप श्रेष्ठ मणिवत् निर्मल होहु, ऐसे जानिकै विगतज्वर होहु.हे राघव ! तुम निर्द्वंद्व होहु, नित्य स्वरूपविषे स्थित निर्योगक्षेम आत्मवान् विशोक होइकरि स्थित होहु, सत्य संकल्प धैर्यवान् यथाप्राप्तविषे वर्तते विगतज्वर होहु, तुम वीतराग, निर्यत्न निर्मल वीतकल्मष होहु,न देवो हो, न लेवो हो, ग्रहण त्यागते रहित शांतरूप होहु, विश्वते अतीत जो पद है, तिसको प्राप्त होइकरि जो पाने योग्य पद है,तिसको पायकरि परिपूर्ण समुद्रवत् अक्षोभरूप संतापते रहित विचरौ.हे रामजी ! संकल्पजालते मुक्त मायामलते रहित अपने आपकरि तृप्त विगतज्वर होहु; आत्मवेत्ताका शरीर अनंत है, आदि अंतते रहित पर्वतके शिखरवत् विगतज्वर होहु. हे रामजी! तुम अपने आपकरि उदार होहु अरु अपने आपकरि आनंदकरि आनन्दी होहु, जैसे समुद्र आनंदकरि आनंदवान् है,अथवा जैसे पौर्णमासीका चन्द्रमा अपने आनंदकरि आनन्दवान् है, तैसे तुम आनंदवान् होहु, यह जो प्रपंचरचना भासती है; सो असत्य है, जो ज्ञानवान् हैं, सो असत्य जानिकरि इसकी ओर नहीं धावते, तुम तौ ज्ञानवान् हो, असत्य कल्पना त्यागिकरि दुःखते रहित होहु,नित्य उदित शांतरूप शुभ गुणसंयुक्त उपदेश द्वारा चक्रवर्ती होइकरि तुम पृथ्वीका राज्य करौ अरु प्रजाकी पालना करौ, समदृष्टिसों विचरौ, बाह्य शुभ चेष्टा यथाशास्त्र करौ अरु राज्यकी मर्यादा

करनी अन्तर निर्लेप रहना, तुमको न त्यागते कछु प्रयोजन है, न ग्रहणते प्रयोजन है, ग्रहणत्यागविषे समबुद्धि समभावकरि राज्य करहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रथमोपदेशो नाम पञ्चमः सर्गः॥ ५॥

षष्ठ सर्गः ६.

क्रमोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! सर्व कार्यको करता हुआ हृदयते वासना नष्ट भई है, वह पुरुष कार्यविषे वर्त्तता है तौ भी मुक्त है, हमारे मतविषे इसको बंधनका कारण वासना है, जिसकी वासना क्षय हुई है, सो मुक्तस्वरूप है अरु जिसकी वासना पदार्थोंविषे सत्य है, सो बन्धमें है, कोई पुरुष अपने पुरुषार्थको आश्रयकरि कर्तव्य भी करते हैं, प्रीतिकरिकै प्रवर्त्तते हैं, सो अपनी वासना करिकै स्वर्गको प्राप्त होते हैं, बहुरि स्वर्गको त्यागिकरि दुःख नरक भुगतते हैं, सो अपनी वासनाकरि बांधे हुए पशु आदिक स्थावर योनिको प्राप्त होते हैं अरु कोई आत्मवेत्ता पुण्यपुरुष हैं, सो मनकी दशाको विचारते हैं अरु तृष्णारूपी बन्धनको काटिकरि निर्मल आत्मपदको प्राप्त होते हैं अरु कोई पुरुष पूर्व जन्मको भोगिकरि इस जन्मविषे मुक्त हुए हैं, सो राजस सात्त्विकी होते हैं, जिनका यह जन्म अंतका होता है, सो क्रमकरिकै परिपूर्ण पदको प्राप्त होते हैं. जैसे शुक्लपक्षका चन्द्रमा क्रम करिकै पौर्णमासीका होता है अरु सर्वकालकरि पूर्ण होता है, जैसे वर्षाकालविषे कंटकवृक्षकी मंजरी बढ़ि जाती है, तैसे सौभाग्यलक्ष्मी तिनकी बढती जाती है. हे रामजी! जिनका यह जन्म अंतका होता है, तिसविषे निर्मल गुण जो वेदने कहे हैं, सो आय प्रवेश करते हैं, जैसे उत्तम बाँसविषे मोती उपजती है, तैसे राजसी, सात्त्विकीविषे शुभ गुण उपजते हैं, मैत्री, सौम्यता, मुक्तता, ज्ञातव्यता, आर्यता यह गुण प्रवेश करते हैं, सर्व जीवोंपर दया करनी सो मैत्री अरु हृदयविषे सदा समताभाव, अंतःकरणविषे क्षोभ कोऊ न उठै, सो मुक्तता

अरु सदा प्रसन्न रहना सो सौम्यता, यथाशास्त्र आचार करना इसका नाम आर्यता है, ज्ञानका नाम ज्ञातव्यता है, जैसे राजाके अन्तःपुरविषे श्रेष्ठ अंगना आय प्रवेश करती हैं, तैसे जिसके अंतका यही जन्म है, सो राजस सात्त्विकी है, तिसके हृदयविषे मैत्री आदिक सर्व गुण आय प्रवेश करते हैं, ऐसा पुरुष सर्व कार्यको करता है; परंतु तिसके हृदयविषे लाभ अलाभका रागद्वेष नहीं होता, सर्वकाल समभाव रहता है, तोषवान् होता है, न शोकवान् होता है, जैसे सूर्यके उदय हुएते तम नष्ट हो जाता है, तैसे आत्मभावकरि रागद्वेष नष्ट हो जाते हैं, सर्वगुण सिद्धताको प्राप्त होते हैं, जैसे शरत्कालका आकाश शुद्ध होता है, तैसे कोमल सुंदर होता है अरु मधुर तिसका आचार होता है; सर्वजीव तिसके आचारकी वांछा करते हैं अरु तिसको देखिकै मोहित होजाते हैं जैसे सुन्दर बाँसुरीकी ध्वनिकरि मृग मोहित होता है, तैसे उसको देखिकै विस्मय होते हैं, जैसे मेघकी ध्वनिकरि बगले आय प्रवेश करते हैं, तैसे उस पुरुषविषे सब गुण प्रवेश करते हैं, गुणोंसे पूर्ण होइकरि गुरुकी शरण जाता है, तब वह विवेकका उपदेश करता है, तिस विवेककरि परमपदविषे स्थित होता है. हे रामजी ! जो वैराग्य अरु विचारकरि संपन्नचित्त है, सो आत्मदेवको देखता है, तिसको दुःख स्पर्श नहीं करते, यथार्थ एक आत्मरूपको देखता है; तुम विचारका आश्रय करिकै मनको जगाओ; कैसा मन है जिसविषे मनन ही मथन है. अर्थ यह कि, जो सदा प्रपञ्चदृश्यका मननभाव करता है, अरु जो अन्तका जन्मवान् पुरुष है, सो मनरूपी मृगको जगावता है, प्रथम तौ गुणज्ञानकरि जगावता है, बहुरि बडे गुणनकरि जगावता है, फिर जानिकै सेवनेका यत्न करता है, तिसकरि जगावता है; निर्मल बुद्धिसे चित्तरूपी रत्नोंको विचार करता है, तिस विचारकरि जगत्को आत्मरूप देखता है, आत्माके प्रकाश विचारसों अविद्यामल नष्ट हो जाता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे क्रमोपदेशवर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ७.

क्रमसूचनावर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! यह तुमको क्रम कहा है, सो सब जीवोंको समान है, इसते जो विशेष है, सो तुम श्रवण करहु, इस जगत्का जो आरंभ है, तिसविषे जो देहधारी जीव हैं, तिन जीवोंका दो प्रकारसे मोक्ष होता है; एक उत्तम क्रम है, एक समान है, जो गुरुके निकट जावै, वह इसको उपदेश करै, तिस उपदेशके धारनेते शनैः शनैः एक जन्मकरि अथवा अनेक जन्मोंकरि सिद्धता प्राप्त होती है अरु दूसरा क्रम यही है, जो अपने आपकारि वह उत्पन्न होता है, अर्थ यह कि समझ लेता है, जैसे वृक्षते फल गिरै अरु इसको आय प्राप्त होवै, तैसे इसको ज्ञान प्राप्त होता है, इसी पर पूर्वका वृत्तांत मैं तुझको कहता हौं, सो तू श्रवण कर, सो महापुरुषोंका वृत्तांत है, शुभ अशुभ गुणोंके समूह जिनके नष्ट भये हैं अरु अकस्मात् फल जिनको प्राप्त भया है, तिनका निर्मल क्रम सुन.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे क्रमसूचना वर्णनं नाम सप्तमःसर्गः ॥७॥

अष्टमः सर्गः ८.

सिद्धगीतावर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! सर्व संपदा जिसकी उदय हुई हैं अरु सब आपदा जिसकी नष्ट भई हैं, एक ऐसा उदारबुद्धि विदेह नगरका राजा जनक नाम हुआ, सो बड़ा धैर्यवान् हुआ, जो अर्थी होवैं, तिनका अर्थ कल्पवृक्षकी नाईं पूर्ण करे अरु मित्ररूपी जो कमल हैं, तिनको सूर्यवत् प्रफुल्लित करै; बांधवरूपी पुरुषोंको वसंतऋतु अरु स्त्रियोंको कामदेव, ब्रह्मरूपी जो चंद्रमुखी कमल हैं, तिनको शीतल चंद्रमा अरु दुष्टरूपी तमका नाशकर्त्ता सूर्य स्वजनरूपी रत्नोंका समुद्र, पृथ्वीविषे मानो विष्णु सूर्य आय स्थित भये हैं. ऐसा राजा जनक एक समय

लीलाकरिकै अपने बागको गमन करता भया; कैसा बाग है मधुरता-करिकै प्रफुल्लित भये हैं फल जिसके, कोकिला शब्द करती हैं, नाना प्र-कारकी सुंदर वल्ली हैं, तिस सुंदर बागविषे राजा जनक प्रवेश करता भया, जैसे नंदनवनविषे इंद्र प्रवेश करै, सुंदर वन पुष्पकारि सुगंधि पसर रही है, तहां राजाके संग जो अनुचर थे, तिनको दूरते त्यगिकारि आप एकला ही कुंजोंविषे विचरने लगा, एक शाल्मलीनामक वृक्ष था, तहांते शब्द श्रवण किया, जो अदृष्ट सिद्ध है, सो गीता गाता है; विरक्तचित्त अरु नित्य पर्वतोंविषे विचरनेवाला कमलवत् नेत्र जिसके, सो आत्म-गीताको उच्चार करता है, जिसकरि आत्मबोध प्राप्त होता है, तिस गीताको राजा श्रवण करते भये. प्रथमसिद्ध उवाच-यह द्रष्टा जो पुरुष है अरु दृश्य जो जगत् है, तिस द्रष्टा अरु दृश्यके मिलापविषे जो बुद्धिमें निश्चित आनंद होता है, सो इष्टके संयोगका अरु अनिष्टके वियो-गका जो आनंद है, सो चित्तविषे दृढ़ होता है, सो आनंद आत्मतत्त्वते उदय होता है, स्पंदरूप जिस आत्मा आनंदते लव उठता है, तिसकी हम उपासना करते हैं. द्वितीयसिद्ध उवाच-द्रष्टा, दर्शन अरु दृश्य इनको वासनासहित त्याग कर, जो दर्शनते प्रथम प्रकाशरूप है, जिसके प्रकाशकरि यह तीनों प्रकाशते हैं, तिस आत्माकी हम उपासना करते हैं. तृतीयसिद्ध उवाच- जो निराभास निर्मलरूप है अरु आभास अरु मननके भावका अभाव है, जिसविषे द्वितीय कल्पनाका अभाव है, अद्वैतरूप है, तिसकी हम उपासना करते हैं. चतुर्थसिद्ध उवाच-दोनोंके जो मध्यविषे है, अस्ति नास्ति दोनोंके पक्षोंते रहित प्रकाशरूप सत्ता है, सब सूर्य आदिकको भी प्रकाशता हैं, तिस आत्माकी हम उपासना करते हैं. पंचमसिद्ध उवाच-जो ईश्वर सकार हकार भया है, अर्थ यह कि सकार जिसके आदिविषे और हकार है जिसके अंतविषे, ऐसे सोऽहं है सो अंतते रहित आनंद अनंत जो शिव परमात्मा है, सो अनंत आत्मा सर्व जीवके हृदयविषे निरंतर जो अहंरूप होइकारि उच्चार होता है, तिस आत्माकी हम उपा-सना करते हैं. षष्ठसिद्ध उवाच-हृदयविषे स्थित जो ईश्वर है तिसको

त्यागिकरि जो और ठौर देवके पानेका यत्न करते हैं, सो पुरुष हस्तविषे कौस्तुभमणिको त्यागकारि और रत्नोंकी वांछा करते हैं. सप्तमसिद्ध उवाच–जब सर्व आशाको त्यागता है, तब इसको फल प्राप्त होता है, जो आशारूपी विषकी वल्ली है, सो मूलसंयुक्त नष्ट हो जाती है, अर्थ यह कि, जो जन्म अरु मरण आदिक दुःख नष्ट हो जाते हैं, बहुरि नहीं उपजते, जो पदार्थोंको अत्यंत विरसरूप जानते हैं अरु बहुरि उसविषे आशा बांधते हैं, सो दुर्बुद्धि गर्दभ हैं, मनुष्य नहीं, जहां जहां विषयोंकी ओर दृष्टि उठती है, तिनको विवेककारि नष्ट करहु, जैसे इन्द्रने वज्रसे पर्वतोंको नष्ट किया था, तैसे नष्ट करहु, जब इस प्रकार शुद्ध आचरण करैगा, तब समभावको प्राप्त होवैगा, तिसकारि मन आत्मपदरूप उपशमको प्राप्त होवैगा, उपशमको और अक्षय अविनाशी पदको पावैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सिद्धगीतावर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९.

जनकविचारवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इस प्रकार सिद्धोंकी गीता महीपति सुनिकारि जैसे संग्रामविषे कायर विषादको प्राप्त होता है, तैसे विषादको प्राप्त भया, बहुरि सेनासंयुक्त अपने गृहविषे आया, टहलुए भृत्य सर्व लोक किनारेविषे स्थानोंपर ठाढे हो रहे, तिनको त्यागिकारि ऊपर चौखण्डी झरोंखोंमें जाय स्थित भया, जैसे तटके वृक्षोंको नदीका प्रवाह स्पर्श करता है, तैसे तिनके मार्गको स्पर्श करता ऊपर जाय बैठा, एक मंदिरके ऊपर जाय स्थित भया. जैसे सूर्य उदयाचल पर्वतपर चढता है, तैसे चढिकारि संसारकी चंचल गतिको इधर उधर देखने लगा अरु विलाप करने लगा, बडा कष्ट है, कि मैं भी संसारविषे लोकोंकी जो चंचल दिशा हैं, तासों आस्था बांध रहा हौं, यह तौ जीव सर्व

जडरूप हैं, चेतन कोई नहीं, जैसे अपर जीव पाषाणरूप हैं, तैसे मैं भी तिनविषे पाषाण हो रहा हौं, काल जो है, सो अंतते रहित अनंत है, तिसके कछुक अंशविषे मेरा जीना है, तिस जीनेविषे मैं आस्था बांध रहा हौं, सो मुझको धिक्कार है अरु जो मैं अधम चेतन हौं, यह जो केतेक मन्त्री मेरे हैं, सो राज्य अरु जीना सर्व क्षणभंगुर है, यह जो सुख है, सो दुःखरूप है, इनते रहित मैं किस प्रकार स्थित होऊं, जैसे महापुरुष बुद्धिमान् स्थित होते हैं, आदि अंतविषे तुच्छरूप हैं अरु मध्यविषे जीवना पेलवरूप है, तिसविषे मैंने क्या मिथ्या आस्था बांधी है ? जैसे बालक चित्रके चंद्रमाको देखिकै चन्द्रमा मानकर आस्था बांधै, तैसे यह प्रपंचरचनाई इंद्रजालकी बाजीकी ना है, बड़ा कष्ट है कि, तिसविषे मैं क्या मोहित भया हौं, जो वस्तु उचित, रमणीय, उदार अरु अकृत्रिम है, सो इस संसारविषे रंचक भी नहीं, मेरी बुद्धि क्यों नष्ट भयी है ? जो पदार्थ दूर होवै अरु तिसके पानेका मेरे मनविषे यत्न होवै, तौ वह निकट ही है, यह निर्णय करौ अथवा अर्थाकार जो संसारके पदार्थ हैं, तिनकी आस्था मैं त्यागता हौं, यह जो लोक हैं, सो सब आगमापायी हैं, उदय होते हैं अरु मिट जाते हैं, जलके तरंगोंकी नाईं सब पदार्थ क्षणभंगुर हैं, जेते कछु सुख दृष्टि आते हैं, सो दुःखसाथ मिश्रित हैं, तिनविषे मैं क्या आस्था बांधी है सुख कदाचित् दिन, पक्ष, मास, वर्षादिक करि आते हैं अरु दुःख वारंवार आते हैं, मैं किस सुखकरि जीनेकी आस्था बांधौं, जो बडे बडे हुए हैं, सो नष्ट हो गये हैं, स्थिर किसीका रहना नहीं, वारंवार विचार देखता हौं, तिसकरि मैं जाना है कि, इस जगतविषे सत्य पदार्थ कोई नहीं, सब नाशरूप है, ऐसा कौन पदार्थ है, कि जिसविषे आस्था बांधौं, जो अब बडे ऐश्वर्यवान् विराजते हैं, सो केतेक दिन पीछे अधःको गिरि पडते हैं, हे चित्त ! बडा खेद है, तुझने किस बड़ाईविषे आस्था बांधी है, जो आयुर्बलकरि मैं बांधा हुआ किस विना कलंकित भया हों; ऊंचे पदविषे स्थित भी मैं अधःको गिरा हौं बड़ा कष्ट है कि, मैं आत्मा हौं अरु नाशको प्राप्त भया हौं, किस कारणकरि अकस्मात् मुझको मोह आया है, मेरी बुद्धिको

इसने उपहत कीनी है, जैसे सूर्य आगे मेघ आता है अरु सूर्य नहीं भासता, तैसे आत्मा नहीं भासता भोगोंसे मेरा क्या है अरु बांधवोंसे मेरा क्या है, इनविषे मैं क्यों मोहित भया हौं ? जैसे बालक परछाईंविषे भयको पाता है, तैसे देह अभिमानकरि यह पुरुष आप ही बन्धायमान होता है; देहविषे अहंकार जरामरणादिक विकारका कारण होता है, ताते इनसे मेरा क्या प्रयोजन है, इन अर्थोंकी बडाई राज्यविषे मैं क्यों धैर्य धार बैठा हौं, यह सब पदार्थ क्षोभका कारण है, यह ज्योंके त्यों रहते हैं, इन विषे न मुझको ममता है, न सङ्ग है यह सर्व असत्यरूप है, संसारके सुख विषरूप हैं, इसविषे आस्था करनी मिथ्या है, जो बडे बडे ऐश्वर्यवान् हुए हैं, बडे पराक्रमी गुणवान् हुए हैं, सो सब परिवारसंयुक्त मृत्युको प्राप्त भये हैं, तौ वर्तमानविषे क्या धैर्य करना है, कहां वह धन अरु राज्य कहां, उस ब्रह्मका जगत् कई पुरुषनकी पंक्ति बीत गई हैं, हमको तिनविषे क्या विश्वास है, देवताके नायक अनेक इंद्र नष्ट हो गये हैं, जैसे जलविषे बुद्बुदे उपजिकरि नष्ट हो जाते हैं, तौ मैं क्यों इस संसारविषे आस्था बांधिकरि जीवौं ? संतजन मुझको हँसैंगे, कई ब्रह्मा हो गये हैं कई पर्वत हो गये हैं कई धूलकी कणिकावत् राजा हो गये हैं, तौ मुझको इस जीवनेविषे क्या धैर्य है, संसाररूपी रात्रि है, तिसविषे देहरूपी शून्यदृष्टि स्वप्न है, तिस भ्रमरूपविषे जो आस्था बांधी है, ताते मुझको धिक्कार है, यह सो अरु मैं इत्यादिक भ्रम आत्माविषे मिथ्या कल्पना उठी है, अज्ञानियोंकी नाईं मैं स्थित भया हौं; अहंकाररूपी पिशाचकरिके क्षण क्षणविषे आयुर्बल व्यतीत होता है, देखते हुए भी नहीं दीखता, कालकी सूक्ष्म गति है, कैसा काल है, जो सबको चरणके नीचे धरे है, सदाशिव अरु विष्णुको जिसने खेलनेका गेंद किया है, ऐसा काल जो सबको भोजन करि जाता है, सो मुझको जीनेविषे क्य आस्था बांधनी है, जेते कछु पदार्थ हैं, सो निरंतर नाश होते हैं, कोई दिन कोई ते पक्ष वर्षकरि नाश होजाता है अरु जो अविनाशी वस्तु है सो अबलग नहीं देखी, वर्ष व्यतीत हो गये हैं; जीवोंकी जो चित्तरूपी नदी है, तिसविषे भोगोंके तृष्णारूपी तरंग उछलते हैं, शांत कदाचित नहीं होते,

जैसे वायुकरि नदीविषे तरंग उछलते हैं सो ममताते रहित हो जाते हैं, तैसे जिनको चित्तविषे भोगोंकी अभिलाषा है, तिनको अतुच्छ पद दृष्टि नहीं आते, कष्टते कष्टको प्राप्त होते हैं, दुःखते दुःखांतरको प्राप्त होते हैं, अबलग हैं विरक्तताको प्राप्त नहीं भया; ताते मुझको धिक्कार है अरु नीच है अन्तःकरण जिसका, ताते जिस जिस वस्तुविषे कल्याणरूप जानिके आस्था बांधी है सो सो नष्ट होती दीखती है, यह क्या उत्तमता है, कि जिस विषे मैंने आस्था बांधी है, सो यह शरीर कैसा है, अस्थिमांसकरि बना है, आदि अन्तसंयुक्त इसका आकार है, मध्यविषे कछुक रमणीय भासता है, परंतु सब अपवित्र पदार्थोंकरि रचा है विनाशरूप है, स्पर्श करनेको भी योग्य नहीं तिसके साथ मुझको क्या प्रयोजन है, जिस जिस पदार्थके साथ लोक आस्था बांधते हैं, तिस तिसविषे मैं दुःख ही देखता हौं अरु यह जीव ऐसे जड़मूढ हैं कि सदा इसविषे लगे रहते हैं, कल्ह यह पदार्थ मुझको प्राप्त होवैगा; अगले दिन यह प्राप्त होवैगा; दिन दिन पाप करते हैं, दिन दिनविषे खेदको पाते हैं, तौ भी त्याग नहीं करते, ऐसे मूढ हैं, बालक अग्निविषे पूर्ण मूढताकरि विचरते हैं, यौवन अवस्था कामादि विकारकरि मिश्रित है, शेष जो वृद्धावस्था है, तिसविषे चित्तकरि दुःखी होता है, यह जड मूर्ख परमार्थ कार्यको किस कालविषे साधेगा; यह जगत् ये पदार्थ सब आगमापायी विरस हैं, विषम दशाकरि दूषित हैं, अर्थ यह कि, एकभावमें नहीं रहते, सर्वजगत् असाररूप है, सत्य बुद्धिते रहित असत्यरूप है, सार पदार्थ इसविषे कोई नहीं, राजसूय अरु अश्वमेध आदि जो यज्ञ करते हैं, तब महाकल्पके किसी अंश कालमें स्वर्गको पाते हैं, अधिक तो नहीं भोगते, जो अश्वमेध यज्ञ करता है, सो इंद्र होता है, जो एक दिन ब्रह्माका होता है, तिसविषे चतुर्दश इंद्र राज्य भोगिकरि नष्ट हो जाते हैं, जब सहस्र चौकडी युगोंकी व्यतीत होती है तब ब्रह्माका एक दिन होता है, ऐसे तीस दिनोंका एक मास, द्वादश मासका एक वर्ष, ऐसे सौ वर्ष ब्रह्माकी आयुर्बल है, तिस आयुर्बलको भोगिकरि ब्रह्मा अन्तर्द्धान हो जाता है, तिसका नाम महाप्रलय है, तिस महाप्रलयके अंतविषे इसने स्वर्ग भोग किया

तौ असार सुखकी क्या आस्था योग्य है, ऐसा सुख ऊर्ध्व स्वर्गमें कोई नहीं, न पृथ्वीविषे है, न पाताल विषे है, जो सुख आपदा दुःखके संग मिश्रित न होवे, ऐसा कहां है? सर्व लोक आपदासंयुक्त हैं अरु सब दुःखोंका मूल चित्त है, सो शरीररूपी सुखविषे सर्पवत् रहता है, आधि व्याधि बडे दुःखरूपी विषको देता है, यह किसी प्रकार निवृत्त होवै, तब सुखी होवै, इसकारि जीव नीच प्राकृत हो रहे हैं, कोऊ विरला साधु है, जिसके हृदयविषे चित्तरूपी सर्प भोगोंकी तृष्णारूप विषसंयुक्त नहीं होता, सो तौ दुर्लभ है, ये जगत्के पदार्थ कैसे हैं कि, जो सत्यता है, तिसके मस्तकपर असत्यता है, जो रमणीय भासते हैं, तिसके मस्तकपर अरमणीयता स्थित है, जो सुखरूप है, तिसके मस्तकपर दुःख स्थित है, किसी एकको मैं आश्रय करौं, तौ दुःखसाथ है, मिश्रित दुःख तो दुःख-साथ मिश्रित क्या कहिये, आप ही दुःख है,जो सुख संपदा है,सो दुःख आपदासंघ मिश्रित है, बहुरि मैं किसका आश्रय करौं? यह जीव जन्मते हैं अरु मरते हैं, तिनविषे कोई विरला दुःखते रहित है, जो सुंदर स्त्रियां हैं, नील कमलवत् जिनके नेत्र हैं, परम हास्य विलास आदिक भूषणों-करिकै संयुक्त हैं, तिनको देखिके मुझको हँसी आती है कि, यह तौ अस्थि, मांसकी पुतली हैं, क्षणमात्र इनकी स्थिति है, जिन पुरुषोंके निमेष खोलनेकारि जगत् होता है अरु उन्मेष मूँदनेकारि जगत्का अभाव हो जाता है, निमेष अरु उन्मेष जिनकारि जगत् उत्पन्न प्रलय होता है, इस प्रकार जिनको भासता है, ऐसे भी नष्ट हुए हैं, तौ हमसा-रिखेकी क्या गिनती है? जो पदार्थ बडे रमणीय भासते हैं, सो अस्थि-तरूप और अरमणीय हो जाते हैं, नाश हो जाते हैं, तिन पदार्थोंकी चिंता करनी अरु इच्छा करनी क्या है? नाना प्रकारकी संपदा प्राप्त होती है, यह जगत् क्या है अरु उनविषे जब चित्तको कोऊ आय लगता है, तब सर्व संपदा आपदारूप हो जाती है अरु जो बड़ी आपदा आय प्राप्त होती है अरु इनके चित्तविषे क्षोभ नहीं होता, शांतरूप है, तब वह आपदा संपदारूप है, तौ सिद्ध क्या भया? यही सिद्ध भया कि, सर्व मनके फुरनेमात्र है, मनकी वृत्ति क्षणभंगुररूप अकस्मात् जगत्की

इनकी स्थित भई है, अज्ञानकरिकै अहं सः इदं कल्पना करी है, तिसविषे त्याग अरु ग्रहणकी भावना मिथ्या है अरु क्षीणरूप जो संसार तिसमें सुख है, सो आदिअंतसंयुक्त है, तिसविषे सुख तौ कछु नहीं. अरु जो सुख जानकर इसकी ओर धावता है, सो सुख बहुरि नष्ट हो जाता है. जैसे पतंग दीपकशिखाको सुखरूप जानिकरि इसकी ओर धावता है, तो दग्ध हो जाता हैं, तैसे संसारके सुख ग्रहण करनेहारे तृष्णाकरि दग्ध हुए हैं, जैसे नरकका अग्नि दग्ध करता है, सो भी श्रेष्ठ है, परंतु क्षणभंगुर जो संसारके सुख हैं, सो नीच हैं, नष्ट हुए भी दुःख दे जाते हैं, दुःखकी सीमा है, अर्थ यह कि, भोगोंकी तृष्णाते अधिक दुःख अपर कोई नहीं; जो इस संसारसमुद्रविषे गिरते हैं, सो सुखको नहीं पाते, संसारविषे दुःख स्वाभाविक है. अरु सुख दुःखके साथ मिश्रित है,मैं भी अज्ञानीकी नाईं काष्ठलोष्टकी नाईं स्थित हो रहा हौं, बडा खेद है, अज्ञानीकी नाईं शमादिक सुखको त्यागिकरि क्षणभंगुर संसारके सुखके निमित्त यत्न करता हौं, जैसे बर्फते अग्नि नहीं उपजता, तैसे संसारते सुख नहीं उपजता, जेते कछु जीव हैं, सो जडधर्मात्मक हैं, संसाररूपी एक वृक्ष है, सहस्र तिसके अंकुर शाखा पत्र फल फूल हैं, तिनकरि पूर्ण है, तिस संसाररूपी वृक्षका मूल मन है, तिसके संकल्परूपी जलकरि विस्तारको प्राप्त भया है, संकल्पके उपशम हुएते नष्ट हो जाता है, ताते जिस प्रकार यह नष्ट होवै, सोई उपाय करौंगा, संसारविषे भोग देखनेमात्र सुन्दर भासता है, अंतरते दुःखरूप है अरु मन जो है, सो मर्कटवत् चंचलरूप है; तिसकरि यह रचना रची है, जबलग वस्तुते इसको जाना नहीं, तबलग चंचल है,जब विचारकरि जानता है,तब पदार्थोंकी रमणीयता सहित मनका अभाव होजाता है, ताते मैं नाशरूप पदार्थोंविषे नहीं रमता. संसारकी वृत्ति कैसी है, अनेक फांसियों सों मिश्रित है, तिसविषे गिरते हैं, बहुरि उछलते हैं, शांत कदाचित् नहीं होते, ऐसी संसारकी वृत्तिको मैंने, चिरकालपर्यंत भोगी है, अब मैं भोगते रहित होइकरि ब्रह्म ही होता हौं, इस संसारविषे बारंबार जन्म मरण होता है,शोक ही प्राप्त होता है, अब संसारकी वृत्तिते रहित हुआ शोकते रहित होता हौं, अब मैं प्रबुद्ध भया हौं अरु

हर्षवान् भया हौं, मैं अपने चोर आप ही देखे हैं, मन है नाम जिसका, इसीको मारौंगा, इस मनने मुझको चिरपर्यंत मारा है अरु एते कालपर्यंत मेरा मनरूपी जो मोती था, सो अवेध रहा था, अब मैंने इसको बेधा है; अर्थ यह कि, आत्मविचारते रहित था, अब तिसको आत्मविचारविषे जोडा है, आत्मज्ञानके योग्य है, मनरूपी एक बर्फका कण था, सो जडताको प्राप्त भया था, अब विवेकरूपी सूर्यकरि गलि गया है, अब मैं अक्षय शांतिको प्राप्त भया हौं, अनेक प्रकारके वचनोंकरि साधुरूप जो सिद्ध थे तिनने मुझको जगाया है, मैं आत्मपदको प्राप्त भया हौं, परमानंदकरिकै अब मैं आत्मरूपी चिंतामणि को पायकरि एकांत सुखी होऊंगा अरु स्थित होऊंगा. जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे होऊंगा मनरूपी जो शत्रु है, तिसने मुझको भ्रम दिखाया था, सो अब विवेककरि नाश किया है, उपशमको प्राप्त भया हौं. हे विवेक! तुझको नमस्कार है. इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे जनकविचारो नाम नवमः सर्गः॥९॥

दशमः सर्गः १०.

जनकनिश्चयवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! इस प्रकार चिंतवता था, तब दासी राजाके निकट आई, जैसे सूर्यके आगे अरुण आय स्थित होता है, तैसे प्रतीहारी जो दासी है, सो कहत भई. हे देव! अब उठौ, ठाढे होहु, दिनका जो उचित आचार है स्नान आदिक सो करौ, स्नानशालाविषे पुष्प अरु केसर गंगाजल आदिकी गागर लेकरि स्त्रियां ठाढ़ी हो रहीं हैं, कमलपुष्प पड़े हैं, तिनपर भँवरे फिरते हैं, छत्र चमर पड़े हैं, स्नानका समय है. हे देव! पूजनके निमित्त सर्व सामग्री आई है, रत्न औषधि ले आये हैं, हाथोंविषे पवित्री डारकरि ब्राह्मण बैठे हैं, स्नान करिकै अघमर्षण जाप कर रहे हैं, तुम्हारे आगमनकी ओर देखते हैं, हाथोंविषे चमर लेकरि सुंदरि कांता तुम्हारे सेवने निमित्त खड़ी हैं अरु भोजनशालाविषे भोजनसिद्ध होरहा है, ताते शीघ्र उठौ; जो कार्य है सो करौ, जैसा काल

होता है, तिसके अनुसार कर्म बड़े पुरुष करते हैं, इनका त्याग नहीं करते ताते उठौ, कालको व्यतीत न करौ. हे रामजी ! जब इस प्रकार दासीने कहा, तब राजा चिंतवत भया कि, संसारकी विचित्र जो स्थिति है, सो कितनेकमात्र है, राज्यसुखसे मुझको कछु प्रजोजन नहीं, यह क्षण-भंगुर है, इस मिथ्या संपूर्ण आडंबर को त्यागिकै मैं एकांत जाय बैठता हौं, जैसे समुद्र तरंगोंते रहित शांतरूप होता है, तैसे शांतरूप होऊंगा, यह जो नाना प्रकारके राजभोग हैं अरु क्रिया कर्म हैं, तिनते अब मैं तृप्त भया हौं, सर्व कर्मोंको त्याग कारि केवल सुखविषे स्थित जो होऊंगा, मेरा चित्त जो भोगोंकरि चंचल था, सो भोग तौ भ्रमरूप हैं, इनविषे शांति नहीं होती तृष्णा बढ़ती जाती है, जैसे जलके ऊपर सेवाल बढती जाती है अरु जलको आच्छादि लेती है, तैसे तृष्णा आच्छादि लेती है, अब मैं इसको त्याग करता हौं. हे चित्त ! तू जिस जिस दिशाविषे गिरा है अरु जो जो भोग भोगे हैं, सो सब मिथ्या हैं, तृप्ति तौ किसीविषे न भई, ताते भ्रमरूप भोगोंते उपरत होऊंगा, तब परम सुखी होऊंगा, बहुत उचित अनुचित भोग वारंवार भोगे हैं, परंतु तृप्ति किसी करिकै न भई, ताते हे चित्त ! इनको त्यागिकारि परमपदके आश्रय होहु, जैसे बालक एकको त्यागिकारि दूसरेको अंगीकार करता है, तैसे यत्न विना तू भी कर, जब इन तुच्छ भोगोंको त्यागैगा अरु परमपदको आश्रय करैगा, तब आनंदी तृप्तिको प्राप्त होवैगा, तिसको पायकरि बहुरि संसारी न होवैगा.हे रामजी ! इस प्रकार चिंतन कर जनक तूष्णीं हो रहा, मनकी चपलताको त्यागिकारि सौम्य आकारकारि स्थित भया, जैसे मूर्ति लिखी होती है, तैसे हो गया, अरु प्रतीहारी भी भयमान हो कारि बहुरि कछु न कह सकी कि कदाचित् राजा अप्रसन्न होवै, तिसके अनंतर मनकी समतानिमित्त बहुरि राजा चिंतवत भया कि, मुझको ग्रहण अरु त्याग करने-योग्य यत्नकरिकै कछु नहीं, किसको मैं साधौं, किस वस्तुविषे मैं धैर्य धारौं, सर्व पदार्थ नाशरूप हैं, मुझको करनेसाथ क्या प्रयोजन है ? अरु अकरनेकरि क्या हानि है, ग्रहण त्याग किसका करौं, जो कछु

कर्तव्य है, सो शरीर करता है, निर्मल अचलरूप चेतन है, सो न करता है, न भुगतता है, ताते मुझको कर्तव्य कछु नहीं! जो त्याग करौंगा तौ शरीर करनेते रहित होवैगा अरु जो करौंगा, तौ भी शरीर करेगा मुझको क्या प्रयोजन है, ताते करने अकरनेविषे मुझको लाभ हानि कछु नहीं, ताते जो कछु प्राप्त भया है प्रवाह तिसविषे विचरता हौं, अप्राप्तकी मैं वांछा नहीं करता अरु प्राप्तका मैं त्याग नहीं करता, अब स्वरूपविषे स्थित होइकारि स्वस्थ होऊंगा, जो कछु प्राप्त कर्म है, सोई करता हौं, न कछु मुझको करनेविषे अर्थ है, न अकरनेविषे दोष है, जो क्रिया होवै सो होवै, करौं अथवा न करौं, युक्त होवै, अथवा अयुक्त होवै, मुझको ग्रहण त्याग करनेयोग्य कछु नहीं, ताते जो कछु प्राप्त करने योग्य कर्म है, सोई करौं, कर्मका करना शरीर प्रकृतिकारि होता है, आत्माको तौ कर्तव्य कछु नहीं ताते मैं इनविषे निःसंग हो रहौंगा, जो निस्पंद चेष्टा होवै, तौ क्या सिद्ध भया अरु क्या किया; जो मन कामनाते रहित स्थित विगतज्वर भया, अर्थ यह कि, हृदयविषे राग द्वेष मलिनता न उपजी तौ देहकारि कर्म होवै, तौ भी इष्ट अनिष्ट विषयकी प्राप्तिविषे तुलना रहैगी, जो देहसाथ मिलिकारि मन कर्म करता है तब कर्ता भोक्ता है, इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिविषे रागद्वेषवान् होता है, जब मनका मनन उपशम हुआ, तब कर्तव्यविषे भी अकर्तव्य है, जैसा निश्चय अंतर दृढ होता है, सोई रूप पुरुषका होता है, जिसके हृदयविषे अहंकृति नहीं अरु बाह्य कर्म चेष्टा करता है, तौ भी उसने किया कछु नहीं अरु जिसके हृदयविषे अहंकृति अभिमान है, सो बाह्य अकर्ता भासता है, तौ भी अनेक कर्म करता है, ताते जैसा निश्चय अंतरमें दृढ होता है, तैसा ही फल पुरुषको प्राप्त होता है, जो बाह्य कर्त्ता भी है, परंतु अंतरकर्तव्यका अभिमान नहीं, तौ वह धैर्यवान् पुरुष अनामयपदको प्राप्त होता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे जनकनिश्चयवर्णनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ११.

चित्तानुशासनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इस प्रकार चिंतवना करिकै यथाप्राप्त जो किया हैं तिनके करनेको उठि खड़ा हुआ, जो इष्ट अनिष्टकी वासना है, सो चित्तते त्यागत भया अरु यथाप्राप्तविषे करता हुआ, जाग्रत्विषे सुषुप्तिकी नाईं जैसे सुषुप्ति पुरुषरूप होता है, तैसे वह जाग्रतविषे हो रहा अरु दिनको तिनके आचारको करत भया, यथाशास्त्र कियाविषे दिनको विचरै अरु रात्रिको लीलाकरिकै ध्यानविषे स्थित होवै, मनको समरस करत भया, जब रात्रि क्षीण भई, तब इस प्रकार चित्तको बोध करत भया. हे चंचलरूप चित्त ! परमानंदस्वरूप जो आत्मा है सो तुझको सुखदायक नहीं भासता, जो यह मिथ्या संसार सुखकी इच्छा करता है, जब तेरी इच्छा शांत हो जावैगी तब तू सारसुख आत्मपदको प्राप्त होवैगा, ज्यों ज्यों तू संकल्प लीलाकरि उठावता है, त्यों त्यों संसारजाल विस्तार हो जाता है, इस दुःखरूप संसारसे तुझको क्या प्रयोजन है ? हे मूर्ख चित्त ! ज्यों ज्यों संकल्प इच्छा करता है, त्यों त्यों संसारका दुःख बढ़ता जाता है, जैसे जल सींचनेकरि वृक्षकी शाखा बढती हैं, तैसे संसारसुखते अधिक दुःख प्राप्त होता है, ऐसे दुःखरूप भोगोंकी इच्छा क्यों करता है ? यह संसार चित्तजालते उपजा है, जब तू इसका त्याग करैगा तब दुःख मिटि जावैगा, फुरणेका नाम दुःख है, इसके मिटेते दुःख भी कोई न रहैगा, यह संसार महाचंचल है, देखने मात्र सुन्दर है, वास्तवते कछु नहीं जो कछु तुझको इसते सार प्राप्त होवै तब इसका आश्रय कर, सो तौ यह क्षणभंगुर है अरु दुःखकी खान है, ताते इसकी आस्था त्याग अरु आत्मतत्त्वको आश्रय कर शुद्ध निर्मल होइकरि जगत्विषे विचरहु तब तुझको दुःख स्पर्श न करैगा, जगत् स्थित होवै अथवा शांत हो जावै, इसके उदय अस्तकी वासनाकरि इसके गुण अवगुणविषे आसक्त मत होहु, जो अविद्यावान् असत्यरूप होवै तिसकी आस्था क्या करनी है यह

असत्यरूप है अरु तू सत्यरूप है, असत्य अरु सत्यका संबंध कैसे होवै, मृतक अरु जीतेका संबंध कभी हुआ है? जो तू कहै चेतनतत्त्व दृश्यरूप है तौ दोनों सत्यस्वरूप हैं, तौ सदा विस्तृतरूप आत्मा ही हुआ, हर्ष विषाद किसका करता है, ताते तू मूढ मत होहु समुद्रकी नाईं अक्षोभरूप अपने आपविषे स्थित होहु, संसारकी भावना त्यागिकरि मान मोह मलको त्याग करहु, संसारकी इच्छा दुःखका कारण है, इसको त्यागिकरि आत्मतत्त्वविषे स्थित होवै, तब परिपूर्ण पदको प्राप्त होवैगा; ताते बलकरि तिसको आश्रय करिकै चंचलताको त्याग.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकणे चित्तानुशासनं
नाम एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः १२.

प्राज्ञमहिमवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इस प्रकार विचार करिकै राजा सब कार्यको करता भया, आनंदवृत्तिविषे मन उसका प्रबोधवान् हुआ मोहको न प्राप्त भया, इष्टविषे हर्षवान् न होवै, अनिष्टविषे दोषवान् न होवै, केवल सम स्वच्छ अपने स्वरूपविषे स्थित भया, जगत्विषे विचरै, न कछु त्याग करै, न कछु ग्रहण करै, न कछु अंगीकार करै, केवल वीतःशोक होइकरि संतापते रहित वर्त्तमानविषे कार्य करै, बहुरि उसके हृदयविषे कल्पना कोई स्पर्श न करै, जैसे आकाशको धूलिकी मलिनता स्पर्श नहीं करती, तैसे मलिनताते रहित अपने स्वरूपके अनुसंधानते सम्यक् ज्ञान अनंतप्रकाशविषे मन निश्चयताको प्राप्त किया, मनकी जो कोई संकल्प वृत्ति थी, सो नष्ट हो गई महाप्रकाशरूप चेतन आत्मा अनामय हृदयविषे प्रकाशित भया, जैसे आकाशविषे सूर्य प्रकाशता है, तैसे अनंत आत्मा प्रगट भया, संपूर्ण पदार्थ तिसविषे प्रतिबिंबित देखता है; जैसे शुद्ध मणिविषे प्रतिबिंब भासता है, तैसे सर्व पदार्थ अपने स्वरूपविषे आत्मभूत देखता भया, इंद्रियोंके इष्ट अनिष्ट विषयोंकी

प्राप्तिविषे हर्ष खेद मिटि गया, सर्वदा समान होइकरि प्रकृत व्यवहारको करि जीवन्मुक्त होइकरि इस प्रकार राजा जनक विचरत भया. हे रामजी ! जनकको ज्ञानकी दृढता भई; तिसकरिकै लोकोंके परावरको जानिकरि विदेहनगरका राज्य करता भया, जीवोंकी पालनाविषे राजा जनक हर्षविषादको प्राप्त न भया, संतापते रहित हुआ राज्यका कोई अर्थ उदय होवै, अथवा अस्त हो जावै परंतु हर्ष शोकको कदाचित् प्राप्त न होवै, कार्य करता दृष्टि आवै, परंतु हृदयकरि कछु न करै, हे रामजी ! तैसे तुम भी कार्य सब करौ, परंतु निरंतर आत्मस्वरूपविषे स्थित रहौ, तुम जीवन्मुक्त वपु हौ, राजा जनककी सब पदार्थभावना अस्त हो गई है; सुषुप्तिवत् वृत्ति भई है भविष्यत्की इच्छा नहीं करता व्यतीतको चिंतवता नहीं, जो वर्तमान कार्य प्राप्त होवै तिसको यथाशास्त्र करता है, अपने विचारके वशते कछु पावने योग्य पद था सो पाया और इच्छा कछु नहीं. हे रामजी ! जबलग यह आत्मपदको प्राप्त नहीं होता तबलग इसके हृदयविषे अपना पुरुषार्थरूपी विचार नहीं उपजा, जब अपने आपकरि अपना विचाररूप पुरुषार्थ जागै तब सब दुःख मिटि जावै अरु परम संपदाको प्राप्त होवै, ऐसा पद शास्त्र अर्थ अरु पुण्यक्रियाकारि नहीं प्राप्त होता, जैसा पद अपने हृदय विषे विचार कियेते प्राप्त होता है, सो पद निर्मल अरु स्वच्छ है, हृदयकी तत्पताको निवृत्त करता है, बुद्धिके विचाररूपी प्रकाशकारि हृदयका अज्ञान नष्ट हो जाता है और किसी उपायकारि नष्ट नहीं होता, जो बडा आपदारूप दुःख तरनेको कठिन है, सो अपनी बुद्धिकारि तरना सुगम होता है, जैसे जहाजकारि समुद्रको लंघ जाता है अरु जो बुद्धिते रहित मूर्ख हैं, तिनको थोडी आपदा भी बडे दुःखको देती है, जैसे थोडा पवन भी तृणको बहुत भ्रमावता है अरु जो बुद्धिमान् हैं, तिनको बडी आपदा भी दुःख नहीं देती, जैसे बडा वायु भी पर्वतको चलाय नहीं सकता इसी कारणते प्रथम चाहिये कि, यह पुरुष संतोंका संग अरु सच्छास्त्रोंका विचार करै अरु बुद्धिको बढावै, जब बुद्धि सत्यमार्गकी ओर बढैगी, तब परम बोध इसको प्राप्त होवैगा, जैसे जलके सींचने अरु

रखनेकरि फूलसों फल प्राप्त होता है, तैसे जब बुद्धि सत्यमार्गकी ओर धावती है, तब इसको परमानंद प्राप्त होता है, जैसे शुक्लपक्षका चंद्रमा पौर्णमासीकारि प्रकाशको बहुत प्राप्त होता है,जेते कछु जीव संसारके निमित्त यत्न करते हैं, वही यत्न सत्यमार्गकी ओर करैं तौ दुःखते मुक्त होवैं अरु परमसंपदाके भण्डारको पावैं, संसाररूपी वृक्ष है,तिसका बीज बुद्धिकी मूढता है, ताते मूढताते रहित होना बडा लाभ है, स्वर्ग पातालका राज्य आदिक जो कछु पदार्थोंकी प्राप्ति होती है, सो अपने बोधरूपी भंडारते प्राप्त होती है; संसाररूपी समुद्र है, तिसके तरनेको अपनी बुद्धिरूपी जहाज है और तप तीर्थ आदिक शुभ आचार करिकै जहाज बहजाता है, बोधरूप पुष्पलता है, तिसको बढानेको देवी संपदा जल है, तिसीके बढनेकरि सुंदर फल प्राप्त होता है, जो बोधते रहित बल ऐश्वर्यकारि बढा भी है, तिसको तुच्छविषे नाश करि डारता है, जैसे बलते रहित सिंहको गीदड हरिण भी जीति लेते हैं, ताते जो कछु प्राप्त होता दृष्टि आता है,सो अपने प्रयत्नकारि आता है, अपनी बोधरूपी चिंतामणि हृदयविषे स्थित है, तिसते विवेकरूपी फल पाता है, जैसे कल्प कल्पलताते जो चिंतवना करिये सोई पाते हैं, तैसे सर्व फल बोधते पाता है, जैसे जाननेवाला महासमुद्रते पार करता है, अजान नहीं उतर सकता; तैसे सम्यक् बोध संसार समुद्रते पार करता है,असम्यक् बोध जड़ताविषे डारता है. जो अल्प भी बुद्धि सत्य मार्गकी ओर होती है,तब वह बडे संकटको दूर करती है, जैसे छोटी बेडी भी नदीते उतारि देती है. हे रामजी ! जो पुरुष बोधवान् है, तिसको संसारके दुःख बेधि नहीं सकते जैसे लोह आदिक कवच पहिरा होवै, तिसको बाण बेधि नहीं सकते, बुद्धिकारिकै यह पुरुष सर्वात्मपदको प्राप्त होता है, जिस पदके पानेते हर्ष, विषाद, सम्पदा, आपदा कोई नहीं रहती, अहंकाररूपी मेघ है, सो आत्मारूपी सूर्यके आगे आया है, माया मलिनता जड़रूप है, तिसकरि आत्मरूप सूर्य नहीं भासता, बोधरूपी वायुसों जब यह दूर होवै, तब ज्योंका त्यों भासता है, जैसे कृषिकार प्रथम हल आदिकारि पृथ्वीको शुद्ध करता है पाछे बीज बोता है, तब जल सींचता है अरु नाश कर-

नहारे पदार्थते रक्षा करता है, तब फलको पाता है, तैसे जब आर्जवादि गुणोंकारि बुद्धि निर्मल होती है, बहुरि शास्त्रका उपदेशरूपी बीज मिलता है अरु अभ्यासवैराग्यकारिकै करता है, तिसकारि परमपदकी प्राप्ति होती है, सो अतुल पद है तिसके समान और कोई नहीं.

इति श्रीयोग० उप० प्राज्ञमहिमवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः १३.

मनोनिर्वाणवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इस प्रकार जनककी नाईं अपने आपकारि आपको विचार कर, पाछे जो विदितवेद पुरुषोंने किया है, तिसी प्रकार तुम भी निर्विघ्न होहु, जो बुद्धिमान् पुरुष हैं, जिनका यह अन्तका जन्म है, सो राजस सात्त्विकी पुरुष आप ही परमपदको प्राप्त होते हैं. जब लग अपने आपकारि आत्मदेव प्रसन्न नहीं होवैगा, तबलग इंद्रियांरूपी शत्रुको जीतनेका यत्न करौ, जब आत्मदेव प्रसन्न होवैगा, सर्वगत जो परमात्मा ईश्वरोंका ईश्वर है, सो आप ही स्वयम्प्रकाश दीखता है अरु सर्व दोषदृष्टि क्षीण होजाती है, मोहरूपी बीजकी जो मुष्टि भरिभरि बोता था, सो नाना प्रकारकी आपदारूप वर्षाकारि महामोहकी बेली होती हैं अरु दृष्टि आती हैं, सो सब नष्ट होजाती हैं, जब परमात्माका साक्षात्कार होता है, तब भ्रांति दृष्टि नहीं आती. हे रामजी ! तुम सदा बोधकारि आत्मपदविषे स्थित होहु अरु जनकवत् कार्योंका आरंभ करौ, ब्रह्मलक्ष्यवान् होइकारि जगत्‌विषे विचरौ तब तुमको खेद कछु न होवैगा, जब नित्य आत्मविचार होता है, तब परमदेव आप ही प्रसन्न होता है, तिसके साक्षात्कार हुएते चञ्चलरूप संसारी जनको देखिकारि जनककी नाईं हँसैगा. हे रामजी ! संसारके भयकारि जो जीव भयभीत हुए हैं, तिसते रक्षा करनेको अपना ही पुरुषप्रयत्न है और देवकारिकै अथवा कर्मकरिकै धन बांधवकरिकै रक्षा नहीं होती, जो पुरुष देवको निश्चयकरिकै रहे हैं अरु शास्त्रविरुद्ध आप कर्म करते हैं, संकलप विकलपविषे तत्पर होते

हैं, सो मध्यबुद्धि हैं, तिसके मार्गकी ओर तुम नहीं गमन करना, उसकी ओर बुद्धि नाश होती है, तुम परम विवेकको आश्रय करौ अरु अपने आपको आपकरि देखौ, वैराग्यवान् शुद्धबुद्धि करिकै संसारसमुद्रको तरि जाता है, यह मैंने तुझको जनकका वृत्तांत कहा है, जैसे आकाशते फल गिर पडै तैसे उसको सिद्धोंके विचारकरि ज्ञानकी प्राप्ति भई, यह विचार ज्ञानरूपी वृक्षकी मञ्जरी है. जैसे अपने विचार करिकै राजा जनकको आत्मबोध हुआ है, तैसे तुमको भी प्राप्त होवैगा, जैसे सूर्यमुखी कमल सूर्यको देखिकरि प्रसन्न होता है, तैसे इस विचारकरि हृदय प्रफुल्लित हो आवैगा, मनका जो मनन भाव है, सो शांत होजावैगा, जैसे बर्फका कणका सूर्यकरि तप्त हो गलि जाता है, जब अहं त्वम् आदिक रात्रि विचाररूपी सूर्यकरिकै क्षीण हो जावैगी, तब परमात्माका प्रकाश साक्षात् होवैगा अरु भेद कल्पना नष्ट हो जावैगी, अनन्त ब्रह्मांडविषे जो व्यापक आत्मतत्त्व है, सो प्रकाश आवैगा जैसे अपने विचारकरि जनकने अहंकार वासनाका त्याग किया है, तैसे तुम भी विचार करिकै अहंकार वासनाका त्याग करौ, अहंकाररूपी मेघ जब नष्ट होवैगा अरु चित्ताकाश निर्मल होवैगा, तब आत्मरूपी सूर्य प्रकाशैगा, जबलग अहंकाररूपी मेघ आवरण है, तबलग आत्मरूपी सूर्य नहीं भासता; विचाररूपी वायुकरि जब अहंकाररूपी मेघ नाश हो जावै, तब प्रगट भासैगा. हे रामजी ! ऐसे धार जो न मैं हौं, न कोऊ और है, न नास्ति है, न अस्ति है, जब ऐसी भावना दृढ होवैगी, तब मन शांत हो जावैगा; हेयोपादेयबुद्धि जो इष्ट पदार्थोंविषे होती है, तिसविषे न डूबैगा, इष्ट अनिष्टके ग्रहण, त्यागविषे भावना होती है, यह मनका रूप है अरु यही बंधनका कारण है, इसते इतर बंधन कोऊ नहीं, ताते तुम इंद्रियोंके इष्ट अनिष्टविषे हेयोपादेयबुद्धि मत करौ, दोनोंके त्यागते जो शेष रहै, तिसविषे स्थित होहु; इष्ट अनिष्टकी भावना तिसकी जाती है, जिसको हेयोपादेयबुद्धि नहीं होती; जबलग हेयोपादेयबुद्धि क्षीण नहीं होती, तबलग समताभाव नहीं उपजता. जैसे मेघके नष्ट हुए विना चंद्रमाकी चांदनी नहीं भासती, तैसे जबलग

पदार्थोंविषे इष्ट अनिष्टबुद्धि है और मन लोलुप होता है, तबलग समता उदय नहीं होती; जबलग युक्त अयुक्त लाभ अलाभ इच्छा नहीं मिटती, तबलग शुद्ध समता अरु निरसता नहीं उपजती; एक जो ब्रह्मतत्त्व निरामयरूप नानात्वते रहित है; तिसविषे युक्त क्या अरु अयुक्त क्या है ? जबलग इच्छा अनिच्छा वांछित अवांछित यह दोनों बात स्थित हैं, अर्थ यह जो फुरते हैं, क्षोभ करते हैं, तबलग सौम्यता अचलभाव नहीं होता अरु जो हेयोपादेयबुद्धिते रहित ज्ञानवान् है, तिस पुरुषको यह शक्ति आय प्राप्त होती है, जैसे राजाके अंतःपुरविषे पटरानी स्थित होती है, तैसे सो कौन शक्ति है, एक तौ भोगोंविषे निरसता, देहाभिमानते रहित निर्भयता, नित्यता, समता, सब पूर्ण आत्मदृष्टि, ज्ञाननिष्ठा, सब इच्छाते रहित अरु निरहंकारता, आपको सदा अकर्ता जानना; इष्टअनिष्टकी प्राप्तिविषे समचित्तता, निर्विकल्पता, सदा आनंदस्वरूप रहना, धैर्यसों सदा एकरस रहना, स्वरूपते इतर वृत्ति न फुरै अरु सर्व जीवोंसे मैत्रीभाव अरु सत्यबुद्धि निश्चयात्मक रूप कारि तुष्टता अरु मुदिता अरु मृदुभाषणता, इतनी शक्ति हेयोपादेयते रहित आय प्राप्त होती हैं. हे रामजी ! संसारके पदार्थोंकी ओर जो चित्त धावता है, तिसको वैराग्यकारि उलटाय खैंचना, जैसे पुलकारिकै जलके वेगका निवारण होता है, तैसे जगत्सों निवारि कारि मनको आत्मपदविषे लगावना, तिसकारि आत्मभाव प्रकाशता है; तातै अंतरसों सब वासनाको त्याग करौ अरु बाह्यते सब क्रियाविषे रहौ, वेगि चलौ, श्वास लेहु, सर्वदा सर्व प्रकार चेष्टा करौ अरु सर्वदा सर्व प्रकारकी वासना त्याग करौ, संसाररूपी समुद्र है, जिसविषे वासनारूपी जल है अरु चिंतारूपी सूत्र है, तिस जलकारिकै तृष्णावान्रूपी मत्स्य फँसे हैं, यह विचार जो तुमको कहा है, तिस विचाररूपी शिलासे बुद्धिको तीक्ष्ण करौ अरु इस जालको छेदौ तब संसारते मुक्त होहुगे अरु संसाररूपी वृक्ष है, तिसका मूल बीज मन है. यह वचन जो कहे हैं, तिसको हृदयविषे धरिकारि धैर्यवान् होहु, तब आधि व्याधि दुःखोंते मुक्त होवेगा, मनकरिकै मनको छेदहु, जो बीती है तिसका स्मरण

करौ अरु भविष्यत्की चिंता न करौ, काहेते जो असत्यरूप है अरु वर्तमानकों भी असत्य जानिकै तिसविषे विचरौ, जब मनते संसारका विस्मरण हुआ तब मनविषे बहुरि न फुरैगा, मनविषे असत्यभाव जानिकै चलौ, बैठौ, श्वास लेहु, निःश्वास करौ, उछलो, सोवहु, ऐसी चेष्टा होवै, परंतु अंतर सब असत्यरूप जानहु, तब खेद न होवैगा; अहंममरूपी जो मल है, तिसको त्यागिकरि अथवा प्राप्तविषे विचरौ, राज्य आय प्राप्त होवै, तब तिसविषे विचरौ, परंतु अंतरते इसविषे आस्था न होवै, जैसे आकाशका सब पदार्थोंविषे अन्वय है, परंतु किसीके साथ स्पर्श नहीं करता, तैसे बाह्य कार्यको करौ, परंतु मनकरि किसीके साथ बंधायमान न होहु. तुम चेतनरूप अजन्मा महेश्वर पुरुष हौ,तुमसों भिन्न कछु नहीं, सबविषे व्यापि रहे हौ, जिन पुरुषोंको सदा यही निश्चय रहता है और अपने स्वरूपविषे तिनको संसारपदार्थ चलायमान नहीं कर सकते; तथा जिनकी संसारविषे आसक्त भावना है अरु स्वरूपते भूले हैं, तिनको संसारके पदार्थोंते विकार उपजता है, तथा हर्ष अरु शोक भय खैंचते हैं तिनकरि बांधे हुए हैं. अरु जो ज्ञानवान् पुरुष राग द्वेषते रहित हैं, तिनको लोह, हड़का, बटा अरु पाषाण,स्वर्ण एकसमान हैं, संसारवासनाका त्याग किया इसीका नाम मुक्ति है. हे रामजी! जिस पुरुषकी स्वरूपविषे स्थिति भई है अरु सुखदुःखविषे समता है, सो जो कछु करता है, भोगता है, देता है,लेता है इत्यादिक क्रिया करता है सो करता हुआ भी कछु नहीं करता,यथाप्राप्त कार्यविषे वर्तता है; अंतःकरणविषे इष्ट अनिष्टकी भावना नहीं फुरती, कार्यविषे रागद्वेषवान् होइकरि डूबता नहीं, जिसको सदा यह निश्चय रहता है, जो सर्व चिदाकाशरूप है अरु भोगोंके मननते रहित है, सो समताभावको प्राप्त होता है. हे रामजी! मन जडरूप है, आत्मा चेतनरूप है, तिस चेतनकी सत्ताकरि पदार्थोंको ग्रहण करता है, इसके विषे अपनी सत्यता कछु नहीं,जैसे सिंहकरि मारा जो पशु है, तिसको खानेको बिल्ली भी जाती है,उसको अपना बल कछु नहीं, तैसे चेतनके बलकरि मन दृश्यका आश्रय करता है, मन आप असत्यरूप है, चेतनकी सत्ता पाइकरि जीता है अरु संसारके चिंतवनको

समर्थ होता है, प्रमादकरिकै चिंतासों तपायमान होता है, यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि, मन जड है अरु चेतनरूपी दीपकरि प्रकाशता है, चेतनसत्ताते रहित सब समान है, आत्मसत्ताते रहित उठनेको भी समर्थ नहीं होता, आत्मसत्ताको भुलाइकरि जो कछु करता है, तिस फुरनेको बुद्धिमान् कलना कहते हैं, जब वही कलना शुद्ध चेतनरूप आपको जानती है, तब आत्मभावको प्राप्त होते हैं, प्रमादते रहित आत्मरूप हैं, चित्तकला जब चेत्य दृश्यते स्फुरण होती है, तिसका नाम तब सनातन ब्रह्म होता है, अरु जब चेत्यके साथ मिलती है, तब तिसका नाम कलना होता है, स्वरूपते इतर कछु नहीं, केवल ब्रह्मतत्त्व स्थित है, तिसविषे भ्रांतिकरिकै मन आदि भासते हैं, जब चेतनसत्ता दृश्यके सम्मुख होती है, तब वही कलनारूप होती है, अपने स्वरूप विस्मरण कियेते संकलपकी ओर धावनेते कलना कहाती है, सो आपको परिछिन्न जानती है, तिसकरि परिछिन्न हो जाती है,हेयोपादेय धर्मिणी होती है. हे रामजी ! चित्तसत्ता अपने ही फुरणेकरि जडताको प्राप्त भई है, जबलग विचारकरि जगावै नहीं, तबलग स्वरूपविषे जागती नहीं, इसी कारणते सत्यत्व शास्त्रोंके विचार अरु वैराग्यकरि इंद्रियोंका निग्रह करि अपनी कलनाको आप जगाओ, सब जीवकी जो कलना हैं, सो विज्ञान अरु शम करिके जगावनेते ब्रह्मतत्त्वको प्राप्त होती हैं,इसते इतर मार्गकरि भ्रमता रहता है, मोहरूपी जो मदिरा है,तिसकरि जो पुरुष उन्मत्त हुआ है,सो विषयरूपी गर्त्तमें गिरता है अरु आत्मबोधते सोई हुई कलनाको जगाता नहीं, अप्रबोध ही रहता है, सो चित्तकलना जड रहती है, जो भासती है,तौ भी असत्यरूप है, ऐसा पदार्थ जगतविषे कोई नहीं, जो संकलपकरि कलिपत न होवै, ताते तू अजडधर्मा होउ, कलना जड उपलब्धरूपिणी है, परमार्थसत्ताकरि विकासमान होती है,जैसे सूर्यकरि कमल विकासमान होता है, तैसे जैसे पाषणकी मूर्तिको कहिये तू नृत्य कर तब वह नहीं करती, काहेते कि, जडरूप है, तैसे देहविषे जो कलना है, सो चेतनकार्य करनेको समर्थ नहीं होती. जैसे मूर्तिका लिखा हुआ राजा गुरगुर शब्दकरि युद्ध करनेको समर्थ नहीं होता अरु मूर्तिका चन्द्रमा औषधीको पुष्ट

कर नहीं सकता, तैसे कलना जडरूप है, कार्य करनेको समर्थ नहीं होती, जैसे निरवयव अंगनासे आलिंगन नहीं होता, जैसे संकल्पके रचे आकाशके वनकी छायातले कोऊ नहीं बैठता; मृगतृष्णाके जलसे कोऊ तृप्त नहीं होता, तैसे जडरूप मन क्रिया करनेको समर्थ नहीं होता, जैसे सूर्यके धूपकारि मृगतृष्णाकी नदी भासती है, तैसे चित्तकलनाके फुरनेकारि जगत् भासता है, शरीरविषे जो स्पंदशक्ति भासती है सो प्राणशक्ति है प्राणोंकारि बोलता चलता बैठता है, ज्ञानरूप संवित् जो आत्मतत्त्व है तिसते इतर कछु नहीं, जब संकल्पकला फुरती है तब अहं त्वम् इत्यादिक कलनाकारि वहीरूप हो जाता है, जब आत्मा अरु प्राणका फुरना इकट्ठा आता है, अर्थ यह कि, प्राणोंके साथ चेतनसंवित् मिलता है, तब तिसका नाम जीव होता है, बुद्धि चित्त मन सब तिसके नाम हैं, सब संज्ञा अज्ञानकारि कल्पित होती हैं, अज्ञानीको जैसे भासा है तिसको है अरु परमार्थते कछु हुआ नहीं, न मन है, न बुद्धि है, न शरीर है, केवल आत्मा मात्र अपने आपविषे स्थित है, अपर द्वैत कछु हुआ नहीं सब जगत् आत्मरूप है, कालक्रिया सब आत्मरूप है, आकाशते भी निर्मल है, अस्ति नास्ति सर्व वहीरूप है, द्वितीय फुरणेते रहित है, इस कारणते है अरु नहीं, ऐसा स्थित है अरु सर्व रूपते सत्य है, आत्मा सब पदोंते रहित है, इस कारणते असत्यकी नाईं है, अनुभवरूप है, ताते सत्य है, सर्व कलनाते रहित केवल अनुभवरूप है, ऐसे अनुभवका जहां ज्ञान होता है, तहां मन क्षीण हो जाता है. जैसे जहां सूर्यका प्रकाश होता है, तहां अंधकार क्षीण हो जाता है अरु जब आत्मसत्ताविषे संवित् कारिकै इच्छा फुरती है, सो संकल्पके सम्मुख हुई थोडी भी बड़े विस्तारको पाती है, तब चित्तकलाको आत्मस्वरूप विस्मरण हो जाता है, जन्मोंकी चेष्टाकारि जगत् स्मरण हो आता है, परम पुरुषको संकल्पके साथ तन्मय होनेकारिकै चित्त नाम कहाता है अरु जब चित्तकला संकल्पते रहित होती है, तब मोक्षरूप होती है, चित्तकला फुरनेका नाम चित्त अरु मन कहते हैं अरु दूसरी वस्तु कोऊ नहीं, एकतामात्र ही चित्तका रूप है, सम्पूर्ण संसारका बीज मन है, संकल्पके सम्मुख होकारिके चेतन संवित्का

नाम मन होता है; निर्विकल्पजो चित्तसत्ता है, सो जब संकल्प करिकै मलिन होती है, तब तिसको कलना कहते हैं, वही मन घटादिककी नाईं परिच्छिन्न भेदको प्राप्त होता है, तब क्रियाशक्ति जो प्राण तिसके साथ अरु ज्ञानशक्तिके साथ मिलती है,तब तिस संयोगका नाम संकल्प विकल्पका कर्त्ता मन होता है, सोई जगत्का बीज है, तिसके लीन करनेके दो उपाय हैं, एक तत्त्वका ज्ञान, दूसरा प्राणोंका रोकना.जब प्राणशक्तिको निरोध करता है, तब मन भी लीन हो जाता है अरु सत्य शास्त्रोंद्वारा ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान होता है, तौ भी लीन हो जाता है, प्राण किसका नाम है अरु मन किसका नाम है, सो श्रवण कर; हृदयकोशते निकसता है अरु बाह्य जाता है अरु बहुरि बाह्यसों अंतर आता है, सो प्राण है, शरीर बैठा है अरु वासनाकरि देशदेशांतरको भ्रमता है, तिसका नाम मन होता है, तिसको वैराग्य अरु योगाभ्यासकरि वासनाते रहित करना अरु प्राणवायुको स्थित करना, यह दोनों उपाय हैं. हे रामजी ! जब तत्त्वज्ञान होता है, तब मन स्थिर होजाता है, काहेते जो प्राण अरु चित्तकलाका आपसमें वियोग होता है अरु जब प्राण स्थित होता है, तब मन स्थित हो जाता है, काहेते कि,प्राण स्थित हुए चेतनकलाके साथ नहीं मिलते, तब मन भी स्थित हो जाता है,सो नहीं रहता,मनका रूप चेतनकला अरु प्राण फुरणविना नहीं रहता ऐसा भी होवै, जो पाषाणको स्वाद लेनेकी शक्ति हो आवै, सो पाषाणको अपनी सत्ताशक्ति कछु नहीं, तैसे मनको भी अपनी सत्ताशक्ति कछु नहीं, चेतन सत्ता अरु प्राणों विना कछु होवै स्पंदरूप जो शक्ति है, सो प्राणोंकी है, सो चलरूप जडात्मक है, आत्मसत्ता चेतनरूप है, सो अपने आपविषे स्थित है, चेतनशक्ति अरु स्पंदशक्तिके संबंध होनेकरिकै मन उपजा है, सो मनका उपजना भी मिथ्या है, इसीका नाम मिथ्याज्ञान है. हे रामजी ! मैंने तुझको अविद्या परम अज्ञानरूप संसाररूपी विषको देनेहारी कही है, चित्तशक्ति अरु स्पंदशक्तिका संबन्ध संकल्प करिकै कल्पित है, जो तू संकल्प न उठावै, तो मन संज्ञा न रहैगी,क्षीण हो जावैगी, ताते संसारभ्रमसों भयभीत मत होहु अरु जब स्पंदरूप प्राणको चित्तसत्ता चेतनी

है, तब चेतनेकारि मन चित्तरूपको प्राप्त होता है, अपने फुरणेकरि दुःखको प्राप्त होता है जैसे बालक अपने परछाईंविषे वैताल कल्पिकरि भयभीत होता है, तैसा अखण्ड मण्डलाकार जो चेतनसत्ता है सो सर्वगत है, तिसका सम्बंध किसके साथ होवै,अखण्डशक्ति उन्निद्ररूप आत्माके इकट्ठे करनेको कोई समर्थ नहीं, इसी कारणते सम्बंधका अभाव है, जो सम्बंध ही नहीं तौ मिलना किससे होवै,मिलाप न हुआ तौ मनकी सिद्धता क्या कहिये चित्त अरु स्पंदकी एकताको मन कहते हैं और मन वस्तु नहीं, जैसे रथ, घोड़ा, हस्ती प्यादा इनविना सेनाका रूप और कछु नहीं निकसता, तैसे चित्तस्पंद विना मनका रूप और कछु नहीं, तिस कारणते दुष्टरूप जो मन है, सो तीनों लोकोंविषे इसके समान कोऊ नहीं, जब सम्यग्ज्ञान होवै, तब मृतरूप मन नष्ट हो जाता है, ताते मिथ्या अनर्थका कारण जो चित्त है,तिसको मत धरौ. अर्थ यह कि संकल्पका त्याग करौ. हे रामजी ! मनका उपजना मिथ्या है, परमार्थते नहीं, संकल्पका नाम मन है, इस कारणते कछु है नहीं, जैसे मृगतृष्णाकी नदी मिथ्या भासती है, तैसे मन मिथ्या है, हृदयरूपी मरुस्थल है अरु चेतनरूप सूर्य है, तहां मनरूपी मृगतृष्णा है, तिसका जल भासता है, जब सम्यग्ज्ञान होता है, तब इसका अभाव हो जाता है, मन जडताते निःस्वरूप है, सर्वदा मृतकरूप है, तिस मृतकने सर्व लोकोंको मृतक किये हैं, यह बड़ा आश्चर्य है, जो अंग भी कछु नहीं, देह भी नहीं, न आधार है, न आधेय है, सो जगतका भक्षण करता है, अनहोते जालसों लोकोंको फँसाये हैं, जो सामग्रीते रहित बल तेज विभूति हस्ती पदाति रहित लोकोंको मारता है, मानो कमलके मारनेकारि मस्तक फटि जाता है, जो जड़ मूक अधम हैं, सो पुरुष ऐसे मानते हैं; कि हम बांधे हैं, मानो पौर्णमासीके चंद्रमाकी किरणोंकरि चलते हैं, जो शूरमे होते हैं, सो तिसको हनन करते हैं, जो अविद्यमान मन है, तिसने मिथ्या ही जगतको हत किया है, संकल्पकारि उदय अरु स्थित हुआ है, ऐसा दुष्ट है कि, किसने उसको देखा नहीं, मैंने तुझको तिसकी शक्ति कही है, सो तौ बडा आश्चर्यरूप विस्तृतरूप है, चंचल असतरूप

चित्तकारि मैं विस्मित हुआ हौं, जो मूर्ख है, सो सर्व आपदाका पात्र है, जो मन नहीं है, तिसकारि एते दुःखको प्राप्त भया है, बडा कष्ट है, जो सृष्टि मूर्खताकारिके चली जाती है, सर्व मनकारि तपते हैं, यह मैं मानता हौं कि, सर्व जगत् मूढरूप है, तरंगरूपी शस्त्रकारिके कण कण हो गये हैं, पेलवरूप हैं, जो कमलकारि विदारण हुये हैं, चंद्रमाकी किरणोंकारि दग्ध हो गये हैं, दृष्टिरूपी शस्त्रकारि वह पुरुष वेधे हैं, संकल्परूपी मनकारि मृतक हो गये हैं, वास्तवते कछु है नहीं मिथ्या कल्पनाते नीच कृपण कारिकै लोकोंको हनन किया है, ताते मूर्ख है, मूर्ख हमारे उपदेश योग्य नहीं; उपदेशका अधिकारी जिज्ञासु है, जिसको स्वरूपका साक्षात्कार नहीं भया अरु संसारते उपरांत हुआ है अरु मोक्षकी इच्छा रखता है अरु पदार्थका ज्ञाता है, सो उपदेश करने योग्य है अरु ज्ञानवान् जो पूर्ण हैं, तिसको उपदेश नहीं बनता है अरु अज्ञानी मूर्खको भी नहीं बनता; मूर्ख कैसा है, वीणाकी ध्वनि सुनकारि भयवान् होता है, अरु बांधव निद्रामें सोया पड़ा है, तिसको मृतक जानिकै भयवान् होता है अरु स्वप्नविषे हस्तीको देखिकारि भय पावता है, भागता है, तिस मनने अज्ञानियोंको वश किया है, भोगोंका जो लव तुच्छ सुख है, तिसके निमित्त जीव अनेक यत्न करते हैं अरु दुःख पाते हैं, हृदयविषे स्थित जो अपना स्वरूप है, तिसको नहीं देखि सकते, प्रमादकारि अनेक कष्ट पाते हैं, अज्ञानी जीव मिथ्या ही मोहित होते हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे मनोनिर्वाणवर्णनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः १४.

चित्तचैतन्यरूपवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! संसाररूपी समुद्र है; तिसविषे रागद्वेषरूपी बडे कल्लोल उठते हैं, तिसविषे वह पुरुष बहे हैं, जो मनको मूढ जडरूप नहीं जानते, तिनको उदार जो आत्मफल है, सो प्राप्त नहीं

होता, यह विचार विवेककी वाणी मैंने तुझको कही है, सो तुम सारिखेको योग्य है अरु जिन मूढ जडोंको मनके जीतनेविषे समर्थता नहीं तिनको नहीं शोभती, जो इन वचनोंको नहीं ग्रहण कर सकते तिनको कहनेकारि क्या प्रयोजन जैसे जन्मअंधको सुंदर मंजरी वन दिखाइये तब वह निष्फल होता है, काहेते कि वह देखि नहीं सकता, तैसे विवेकवाणीका उपदेश करना उनको निष्फल होता है जो मनको जीत नहीं सकते, इंद्रियोंकारि लोलुप पुरुष हैं, तिनको आत्मबोधका उपदेश करना कछु कार्य नहीं करता, जैसे कुष्ठकारि जिसका शरीर गलि गया है, तिसको नाना प्रकारकी सुगंधिका उपचार सुखदायक नहीं होता, तैसे मूढको आत्मोपदेशका बोध सुखदायक नहीं होता; जिसकी इंद्रियां व्याकुल विपर्यय हैं अरु मदिराकारि उन्मत्त हैं, तिसको धर्मके निर्णयविषे साक्षी करना कोऊ प्रमाण नहीं करता है, ऐसा कुबुद्धि कौन है, जो श्मशानविषे शवकी मूर्तिको पायकारि तिसतें चर्चाविचारकरै अरु तिससों प्रश्नोत्तर करै; अपना हृदयरूपी कूडविषे मनरूप मूक जड सर्पवत् स्थित है जो तिसको निकास डारै; सो पुरुष है अरु जो तिसको नहीं जीति सकता, तिस दुर्बुद्धिको उपदेश करना व्यर्थ है. हे रामजी ! मन महातुच्छ है. जो वस्तु कछु न होवै, तिसके जीनेविषे कठिनता होवै जैसे स्वप्ननगर निकट होता है अरु चिरपर्यंत भी स्थित है अरु जागिकारि देखिये तौ कछु नहीं पाता, तैसे मनको जो विचारकारि देखिये तौ कछु नहीं पाता, जिस पुरुषने अपने मनको नहीं जीता सो दुर्बुद्धि है वह अमृतको त्यागिकारि विषको पान करता, है सो विषकी मूर्च्छाकारि मारि जाता है अरु जो ज्ञानी है सो सदा आत्मा ही देखता है, इंद्रियां अपने अपने धर्मविषे विचरती हैं, प्राणकी स्पंदशक्ति है अरु ज्ञानशक्ति परमात्माकी है, इंद्रियोंको अपनी शक्ति है, जीव किसकारि बंधायमान होता है, वास्तवते सर्वशक्ति सर्वात्मा है, तिसते भिन्न कछु नहीं यह मन कहा है जिसने सब जगत्को नीच किया है. हे रामजी ! मूढोंको देखिकारि मैं दया करता हौं अरु तपता हौं कि, मूढ क्यों खेद पाते हैं, दुःखदायक कौन हैं, जिसकारि तपते हैं, जैसे उष्ट्रकंटकके वृक्षोंकी परंपराको प्राप्त होता है, तैसे मूढ प्रमादकारिकै दुःखोंकी परंपराको

पाते हैं, वे दुर्बुद्धि देहको पाइकरि मर जाते हैं, जैसे समुद्रविषे बुद्बुदे उपजिकरि मिटि जाते हैं, तैसे संसारसमुद्रविषे उपजिकारि नष्ट हो जाते हैं तिनका शोक करना क्या है, वे तौ तुच्छ पशुते नीचे हैं. तू देख जो दशों दिशाविषे पशु आदिक होते हैं अरु मरते हैं, तिनका शोक कौन करता है, मच्छरादिक जीव नष्ट हो जाते हैं; कई जलचर जलविषे भक्षण करते हैं तिनका विलाप कौन करता है, छोटे जीवोंको बड़े मच्छ जलविषे भक्षण करते हैं आकाशविषे कई पक्षी मृत्यु होते हैं, तिनका कौन शोक करता है, अनेक जीव नाश होते हैं तिनका विलाप कछु नहीं होता, तैसे अबके जो हैं, तिनका विलाप करना नहीं, काहेते कि, थिर रहना किसीको नहीं, सर्व नाशरूप हैं अरु तुच्छ हैं, निरंतर नष्ट होते हैं, सर्वका प्रतियोगी काल है, अनेक जीवोंको भोजन करता है; जूं आदिकको मक्षिका अरु मच्छर आदिक खाते हैं, मक्षिका अरु मच्छरादिको दादुर खाते हैं, दादुरको सर्प, सर्पोंको नौले, नौलेको बिल्ले, बिल्लेको कूकर, कूकरोंको बघाड, बघाडको सिंह, सिंहको शरभ, शरभको मेघकी गर्जना नष्ट करती है, मेघको वायु, वायुको पर्वत, पर्वतको इंद्रका वज्र, इंद्रके वज्रको सुदर्शन चक्र जीति लेता है, सो चक्र विष्णुजीका होता है, सो विष्णु भी अवतारोंको धरता है, सुख दुःख जरा मरणसंयुक्त होता है, जीवोंकरि बडी देहको धरता है, विद्यारूप है, तौ भी जूँआ लीखें आदिक शरीरमें लगती हैं, वह रुधिरपान करती हैं, इस प्रकार निरंतर भूतजातिको काल जीर्ण करना है अरु परस्पर जीव जीवोंको खाते हैं अरु निरंतर नाना प्रकारके भूतजात दशों दिशाविषे उपजते हैं, जैसे जलविषे मच्छ कच्छ आदिक उत्पन्न होते हैं, पृथ्वीविषे कीट आदि उपजते हैं, अंतरिक्षविषे पक्षी आदिक, वनवीथीविषे सिंहादिक मृग उपजते हैं, स्थावरविषे पिपीलिका दर्दुर कीटादि उपजते हैं, विष्ठाविषे कृमि उपजते हैं, नाना प्रकारके जीवगण इस प्रकार निरंतर उपजते हैं अरु मिट जाते हैं, कोऊ हर्षवान्, कोऊ शोकवान् होते हैं, कोऊ रुदन करते हैं, सुख अरु दुःख मानते हैं, पापी पापके दुःखकारि निरंतर मरते हैं अरु सृष्टिविषे उपजते नाश होते हैं, जैसे वृक्षसों पत्ते उपजते हैं, तैसे भूत उपजिकारि नाश हो जाते हैं

तिनकी गिनती कछु नहीं. जो बोधवान् पुरुष हैं सो अपने आप करिकै अपने आप ऊपर दया करिकै आपको संसारसमुद्रको पार करते हैं. हे रामजी ! अपर जेते कछु जीव हैं सो पशुवत् हैं, मूढों अरु पशुविषे भेद कछु नहीं, तिनको हमारी कथाका उपदेश नहीं,वह पशुधर्मा इस वाणीको योग्य नहीं देखनेमात्र मनुष्य हैं परंतु मनुष्यका अर्थ तिनते सिद्ध कछु नहीं होता. जैसे उजाड़ वनविषे ठूँठ वृक्ष होता है, सो छाया फलते रहित किसीको विश्रामदायक नहीं होता; तैसे मूढ जीवोंते कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता, जैसे जेवरी गलेविषे डारिकरि पशुको जहां खैंचता है, तहां चले जाते हैं, तैसे मूढ चित्तकरि खैंचते हैं, जहां चित्त खैंचता है, तहां चले जाते हैं, मूढचित्त पशु विषयरूपी कीचडविषे फँसे हैं, तिसकरि बडी आपदाको प्राप्त होते हैं, तिन मूढोंको आपदाविषे देखिकै पाषाण भी रुदन करते हैं, जिन मूर्खोंने अपने चित्तको नहीं जीता तिनको दुःखोंके समूह प्राप्त होते हैं अरु जिनने चित्तको बंधनते निकासा है, सो संपदावान् हैं, तिनके दुःख सब मिट जाते हैं संसारविषे बहुरि नहीं उपजते, ताते अपने चित्तके जीते विना दुःख नष्ट नहीं होता अरु जो चित्त जीतना न होता, तो परमसुख प्राप्त नहीं होता अरु तब चित्त जीतनेको बुद्धिमान् न प्रवर्तते, सो बुद्धिमान् प्रवर्त्तते हैं, ताते जानिये कि, चित्त भी वश होता है, मनरूपी भ्रमके नष्ट हुएते आत्मसुख प्राप्त होता है. हे रामजी ! मन भी कछु है नहीं, मिथ्या भ्रमकरि कलपते हैं, जैसे बालकको अपने परछाईंविषे वैतालबुद्धि होती है, तिसकरि भयभीत होता है, तैसे भ्रमरूप मनकरि नाश मानते हैं, जबलग आत्मसत्ताका बिस्मरण होता है, तबलग मूढता है अरु हृदयविषे मनरूप सर्प विराजता है, जब अपना विवेकरूपी गरुड उदय होवै, तब वह नष्ट हो जाता है, अब तुम जागे हौ ज्योंका त्यों जानते हो. हे शत्रुनाशक रामजी ! अपने संकलपकरि चित्त बढ़ता है, तिस संकल्पका शीघ्र ही त्याग करौ, तब चित्त शांत होवैगा, जो तुम दृश्यको आश्रय करौगे, तौ बंधन होवैगा अरु अहंकार आदिक दृश्यको त्याग करौगे, तौ अचित्त मोक्षवान् होहुगे, यह

गुणोंका संबंध मैंने तुझको कहा है कि, दृश्यका आश्रय करना बंधन है, इसते रहित होना मोक्ष है, आगे जैसी इच्छा होवै तैसा करहु, इस प्रकार ध्यान करहु कि न मैं हौं न यह जगत् है, केवल अचलरूप हौं ऐसे निःसंकल्प हुएते आनंद चिदाकाश हृदयविषे आय प्रकाशैगा, आत्मा अरु जगत्विषे जो विभागकलना आय उदय हुई है, सो मल है, इस द्वैतभावका त्याग कियेते जो पाछे शेष रहैगा, तिसविषे स्थित होहु, आत्मा अरु जगत्का अंतर क्या है ? द्रष्टा अरु दृश्यका अंतर जो दर्शन है, अनुभवसत्ता है, सर्वदा तिसीकी भावना करौ, स्वाद अरु अस्वाद लेनेवालेका त्याग करौ, तिनके मध्य जो स्वादरूप है, तिसविषे स्थित होहु, सो आत्मतत्त्व है तिसविषे तन्मय होहु, अनुभव जो द्रष्टा है अरु दृश्य है, तिसके मध्यविषे जो निरालंब साक्षीरूप आत्मा है, तिसविषे स्थित होहु. हे रामजी ! भव जो है संसार, सो भाव अभावरूप है,-तिसकी भावनाका त्याग करि, भावरूप आत्माकी भवना करौ, सो अपना स्वरूप है प्रपंच दृश्यका त्याग कियेते जो वस्तु अपना स्वरूप है, सोई होवैगा; जो परमानंदस्वरूप है अरु चित्तभावको प्राप्त होना अनंत दुःख है, चित्तरूपी संकल्प बंधन है; तिस बंधनको अपने स्वरूपके ज्ञानयुक्त बलकरि छेदहु, तब मुक्ति होवैगी अरु जब आत्माका त्याग कर जगत्विषे गिरता है, तब नाना प्रकार संकल्प विकल्प दुःखोंविषे प्राप्त होता है, जब तू आत्माको व्यतिरेक शब्द करैगा, तब मन दुःखके समूहसंयुक्त प्रगट होवैगा अरु व्यतिरेक भावना त्यागेते सब मनके दुःख नष्ट हो जावैंगे, यह सर्व आत्मा है, आत्माते इतर कछु नहीं, जब यह ज्ञान उदय हुआ, तब चैत्य चित्त चेतना तीनोंका अभाव हो जावैगा, मैं आत्मा नहीं, जीव हौं, इसका नाम चित्त है, तिसकरि अनेक दुःखको प्राप्त होता है अरु जब यह निश्चय हुआ कि, मैं आत्मा हौं, जीव नहीं, सो सत्य है, इतर कछु नहीं इसीका नाम चित्तउपशम कहाता है. जब यह निश्चय भया कि, सब आत्मतत्त्व है, आत्माते इतर कछु नहीं तब चित्त शांत हो जाता है, इसविषे संशय कछु नहीं, इस प्रकार आत्मबोधकरिके मन नष्ट हो जाता है. जैसे सूर्यके उदय

हुएते तम नष्ट हो जाता है, सो मन सब शरीरोंके अंतर स्थित है; जबलग होता है, तबलग बड़ा जीवको भय होता है, यह जो परमार्थयोग मैंने तुझको कहा है, तिसकरि मनको काटि डारहु; जब मनका त्याग किया तब भय भी न रहैगा; यह चित्त भ्रममात्र उदय हुआ है, चित्तरूपी वैताल है, सम्यक्ज्ञानरूप मंत्रकरि अभाव हो जाता है. हे बलवानोंविषे श्रेष्ठ निष्पाप रामजी! जब तेरे हृदयरूपी गृहमेंते चित्तरूपी बैताल निकसि जावैगा, तब तू दुःखोंते रहित स्थित होवैगा; भय उद्वेग कछु न व्यापैगा; अब तू मेरे वचनोंकरि वैरागी भया है, मनरूपी जो मन है, तिसको जीता है, इस विचार विवेकसों चित्त नष्ट शांत हो जाता है; निर्दुःख आत्मपदको प्राप्त होता है, सब ईषणाको त्यागिकरि शांतरूप स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे चित्तचैतन्यरूपवर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः १५.

तृष्णावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! इस प्रकार तू देख कि, चित्त आप विचित्ररूप है, संसाररूपी बीजकी कणिका है अरु जीवरूपी पाँखीको बंधनका जाल है, जब चित्तसंवित् आत्मसत्ताको त्यागता है, तब दृश्यभावको प्राप्त होता है, तब चित्त उपजता है, कलनारूप मलको धारता है, सो चित्त बढ़िकरि मोह उपजता है, तिसकरि संसारका कारण होता है, तब तृष्णारूपी जो विषकी बेलि है, सो प्रफुल्लित होती है, तिसकरि मूर्छित हो जाता है, आत्मपदकी ओर सावधान नहीं होता, ज्यों ज्यों उदय होती है, त्यों त्यों मोहको बढावती है, तृष्णारूप श्याम रात्रि है, अनंत अंधकारको देती है, परमार्थसत्ताका आवरण करती है, प्रलयकालको अग्निवत् जलाती है, तिसको समर्थ कोऊ नहीं होता, सर्वको व्याकुल करती है, तृष्णारूपी तीक्ष्ण खड्गकी धारा है, दृष्टिमात्र कोमल

शीतल सुन्दर है, स्पर्श कियेते नाश कर डारती है, अनेक सङ्कटको देती है, जो बडे असाध्य दुःख हैं, जिनकी प्राप्ति बडे पापोंकरि होती है, सो तृष्णारूपी फूलका फल है, तृष्णारूपी कूकरी है, सो दुर्गंधादिकरि चित्तशरीररूपी गृहविषे रहती है, क्षणविषे बडे हुलासको प्राप्त होती है, क्षणविषे शून्य रूप हो जाती है, जो पुरुष बडे ऐश्वर्यसंयुक्त है, सो जब तृष्णा उपजी तब दीन हो जाता है अरु जो देखनेकरि निर्धन, कृपण भासता है अरु अंतर तृष्णाते रहित है, तब वह बडा ऐश्वर्यवान् होता है, जिसके हृदयरूपी छिद्रविषे तृष्णारूपी सर्पिणी नहीं बैठी तिसके प्राण अरु शरीर स्थित हैं, उसका हृदय शांतरूप होता है, निश्चयकरि जान कि, जहां तृष्णारूपी कालरात्रिका अभाव हुआ है, तहां पुण्य आय बढते हैं, जैसे शुक्लपक्षका चन्द्रमा बढता है, हे रामजी! जिस पुरुषरूपी वृक्षका तृष्णारूपी घुनने भोजन किया है. तिसकी पुण्यरूपी हरियावल नहीं रहती, प्रफुल्लित नहीं होती, तृष्णारूपी नदी है, अनंत कल्लोल आवर्त्त तिसविषे उठते हैं, तृणवत् बहती है, अरु जीवरूपी खेलनेकी पुतली है, तृष्णारूपी यंत्री तिनको भ्रमाती है, सब शरीरोंके अंतर तृष्णारूपी तागा है, तिसकरि परोये हैं, तृष्णाकरिकै मोहित हुए कष्ट पाते हैं अरु समझते नहीं, जैसे तृणकरि आच्छादित गर्त होता है, तिसको देखिकरि हरिणका बालक ग्रहण करता है अरु गर्तविषे गिर पडता है. हे रामजी! ऐसा कोऊ और इसके कलेजेको काटि नहीं सकता, जैसे तृष्णारूपी डाकिनी इसका उत्साह बलरूपी कलेजा निकाल लेती है, तिसकरि दीन जैसा हो जाता है, तृष्णारूप अमंगल इन जीवोंके हृदयविषे स्थित होइकरि नीचताको प्राप्त करता है, तृष्णाकरिकै विष्णु भगवान् है सो भगवान्‌की नाईं स्थित भया है, अर्थ यह जो त्रिलोकीनाथ विष्णुजी इंद्रके हेतकरि जब अर्थ हृदयविषे धरा, तब अल्प जैसी मूर्तिको धारिकरि बलिके द्वार गये, तहां तृष्णाकरिकै जीव भ्रमते हैं, जैसे सूर्य नीतिको धारिकरि आकाशविषे भ्रमता है, तैसे तृष्णारूपी तागे करि बांधे जीव भ्रमते हैं, तृष्णारूपी सर्पिणी महाविषकरि पूर्ण होती है, सर्वको दुःखदायक है, ताते इसको दूरते त्याग करौ, पवन जो चलता है,

सो तृष्णाकरि चलता है, पर्वत तृष्णाकारि स्थिर हैं, पृथ्वी तृष्णाकरि जगत्को धरती है, तृष्णाकारि त्रिलोकी वेष्टित करी है, सबलोक तृष्णा करि बांधे हुए हैं, जेवरीकरि बांधा हुआ छूटता है, परंतु तृष्णाकरि बांधा छूटता नहीं, तृष्णावान् मुक्त कदाचित् नहीं होता, तृष्णाते रहित मुक्त होता है, तिस कारणते हे राघव ! तुम तृष्णाका त्याग करहु सब जगत् मनके संकल्पविषे है, तिस संकल्पते रहित होहु, मन भी कछु अपर वस्तु नहीं, युक्तिसों निर्णयकरि देखौ, संकल्पप्रमादका नाम मन है, जब इसका नाश होवै, तब तृष्णा सब नाश हो जावै, अहं त्वम् इदम् इत्यादिक चितवना मत करहु, यह महामोहमय दृष्टि है, इसको त्यागिकरिके एक अद्वैत आत्माकी भावना करौ, आत्माविषे जो आत्माभाव है, सो दुःखोंका कारण है, इसके त्यागेते ज्ञानवानोंविषे प्रसिद्ध होहुगे, अहंभारूप अपवित्र भावना है, तिसको अपने स्वरूप शलाकाकी भावनारूपकरि काटि डारहु; यह भावना पञ्चभूमिका है, तहां संसारका अभाव है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे तृष्णावर्णनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः १६.

तृष्णाचिकित्सोपदेशवर्णनम्।

राम उवाच–हे मुनीश्वर ! यह तुम्हारे वचन गंभीर तोलते रहित हैं, तुम कहते हो, अहंकारतृष्णाको मत करहु, जो अहंकारको त्यागैगा तौ यह चेष्टा कैसे होवैगी ? देहका भी त्याग हो जावैगा, जैसे वृक्ष स्तम्भके आश्रय होते हैं स्तंभने ही वृक्षको धरा है, स्तंभके नाश हुएते वृक्ष नहीं रहता, तैसे देहको अहंकार धारि रहा है, तिसते रहित देह भी गिर जावैगा, ताते मैं अहंकारको त्यागिकारि कैसे जीता रहौंगा ? यह अर्थ मुझको निश्चय कारि कहौ, तुम कहनेहारेविषे श्रेष्ठ हौ. वसिष्ठ उवाच–हे कमलनयन रामजी ! सर्व ज्ञानवानोंने वासनाका त्याग किया है,

सो दो प्रकारका है, एकका नाम ध्येयत्याग; दूसरेका नाम नेयत्याग है, मैं यह हौं, पदार्थरूप मैं इनकारि जीता हौं, इनविना मैं कछु जीता नहीं अरु मोंविना यह भी कछु नहीं, यह जो अंतर निश्चय है, तिसको त्यागिकारि विचारत भया हौं, न मैं पदार्थ हौं, न मेरे पदार्थ हैं, ऐसी भावना करनेहारे जो पुरुष हैं,तिनका अंतःकरण आत्मप्रकाशकारि शीतल हो जाता है जो कछु क्रिया करते हैं, सो लीलामात्र हैं, जिस पुरुषने निश्चयकरि वासनाका त्याग किया है,सो पुरुष सर्व क्रियाविषे सर्व आत्मा जानता है, उसको बन्धनका कारण नहीं होता, तिसके अंतर सर्व वासनाका त्याग है अरु बाह्य इन्द्रियोंकरिके चेष्टा करता है, जो पुरुष जीवन्मुक्त कहाता है, तिसने वासनाका त्याग किया है; तिस वासनाका त्याग नाम ध्येयवासनाका त्याग अरु जिस पुरुषने मनसंयुक्त देहवासनाका त्याग किया है अरु तिस वासनाका भी त्याग किया है, सो नेयवासनाका त्याग है, नेयवासनाके त्यागते विदेहमुक्त कहाता है, जिस पुरुषने अहंकार देह अभिमानका त्याग किया है, संसारकी वासना लीलासों त्याग करी हैं, स्वरूपविषे स्थित होइकारि क्रिया भी करता है; सो जीवन्मुक्त कहाता है. जिसकी सब वासना नाश भई हैं, अंतर बाहिरकी चेष्टाते रहित भया है, अर्थ यह कि जिसने अंतर संकल्प बाहिरकी क्रिया त्यागी है, तिसका नाम नेयत्याग विदेहमुक्त जान. जिसने ध्येयवासनाका त्याग किया है, लीला करिके कर्ता हुआ स्थित है, सो जीवन्मुक्त महात्मा पुरुष जनकवत् है अरु जिसने नेयवासनाको त्यागा है और उपशमरूप हो गया है, सो विदेहमुक्त होइकारि परमतत्त्वविषे स्थित है, परात्पर जिसको कहते हैं, सोई होता है. हे राघव ! यह दोनों त्यागी शमपदविषे स्थित हुए ब्रह्मपदको प्राप्त होते हैं,विगतसन्ताप उत्तमपुरुष दोनों मुक्त स्वरूप हैं, निर्मल पदविषे स्थित होते हैं, एकका देह स्फुरणरूप होता है, दूसरेका अस्फुर होता है, देह युक्तरूप देहविषे स्थित होता है, क्रियाको करता संतापते रहित जीवन्मुक्त सो ज्ञानको धरता है, दूसरे देहको त्यागिकै विदेहपदविषे स्थित होता है, उसके साथ वासना अरु देह दोनों नहीं भासते, ताते विदेहमुक्त कहाता है, जीवन्मु-

क्तके अंतरवासनाका त्याग है, बाह्य क्रिया करता है, जैसे समयकरि सुख दुःख आय प्राप्त होते हैं, तैसे निरंतर रागद्वेषते रहित प्रवर्तता है, सुखविषे हर्ष नहीं, दुःखविषे शोक नहीं, सो जीवन्मुक्त कहाता है, जिस पुरुषने संसारके इष्ट अनिष्ट पदार्थोंकी इच्छा त्यागी है, सो सब कार्यविषे सुषुप्तिकी नाईं अचलवृत्ति है, सो जीवन्मुक्त कहाता है, हेयोपादेय में अरु मेरा सब कलना जिसके अंतर क्षीण हो गई हैं, सो जीवन्मुक्त कहाता है, तिसकी वृत्ति संपूर्ण पदार्थनते सुषुप्तिकी नाईं हो गई है अरु सदा जाग्रत् चित्त जिसका है, कलना क्रिया संयुक्त भी दृष्टि आता है, परंतु अंतरते आकाशवत् निर्मल है, सो जीवन्मुक्त पूजने योग्य है. वाल्मीकिरुवाच-इस प्रकार जब वसिष्ठजीने कहा, तब सूर्य भगवान् अस्त भया, सब सभाके लोक स्नानके निमित्त परस्पर नमस्कार करिकै उठे, रात्रिको व्यतीत करिकै सूर्यकी किरणोंसाथ परस्पर नमस्कार करिकै यथायोग्य अपने अपने आसनपर आय बैठे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे तृष्णाचिकित्सोपदेशो नाम षोडशः सर्गः॥ १६॥

सप्तदशः सर्गः १७.

तृष्णोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जो पुरुष विदेहमुक्त है, सो हमारी वाणीका विषय नहीं, ताते तू जीवन्मुक्तका लक्षण सुन, जो कछु प्रकृत कर्म है, तिसको करता है, परंतु तृष्णा अरु अहंकारते रहित है, निरहंकार होइकरि विचरता है, सो जीवन्मुक्त है, बाहर जो दृष्ट पदार्थ हैं, तिनविषे जिसकी दृढभावना है, तृष्णाकरिकै सदा इच्छता रहता है, संसारके दृढ बंधनकरि सो बंध कहाता है अरु जिसने निश्चयकरिकै अंतरते संकल्पका त्याग किया है अरु बाह्यते सब व्यवहार करता है, सो पुरुष जीवन्मुक्त कहाता है. जो बाह्य जगत्‌विषे बडे आरंभ करता है, इच्छासंयुक्त दृष्टि आता है अरु हृदयविषे सब अर्थोंकी वासनातृष्णाते रहित

है, सो मुक्त कहाता है. जिस पुरुषको भोगोंकी तृष्णा मिटि गई है, वर्त्तमानविषे निरंतर विचरता है, सो निर्दुःख निष्कलंक कहाता है. हे महाबुद्धिमन्! जिसके अंतर इदम् अहंका निश्चय है, तिसको धारिकरि संसारकी भावना करता है, तिसको तृष्णारूप सांकलकरि बांधा अरु कलनाकरि कलंकित जान, ताते तू मैं अरु मेरा सत्य अरु असत्य बुद्धि संसारके पदार्थोंका त्याग कर, जो परम उदार पद है, सर्वकाल तिसविषे स्थित होहु, बंधमुक्त सत्य असत्यकी कल्पनाको त्यागिकरि समुद्रवत् अक्षोभचित्त स्थित होहु, न तुम पदार्थजाल हो, न यह तुम्हारे हैं, सब असत्यरूप जानिके इनका विकल्प त्याग. यह जगत् भ्रांतिमात्र है, इसकी तृष्णा भी भ्रांतिमात्र है, इनते रहित आकाशकी नाईं सन्मात्र तू सत्यस्वरूप है अरु तृष्णा मिथ्यारूप है, तेरा अरु इसका क्या संग है ? हे रामजी ! चार प्रकारका निश्चय जीवको होता है, सो बडे विस्तार आकारको प्राप्त होता है, चरणोंते लेकरि मस्तकपर्यंत शरीरविषे आत्मबुद्धि है अरु मातापिताकरि उत्पन्न भया है, यह निश्चय बंधनरूप है, असम्यक्दर्शन भ्रांतिकरि होता है अरु द्वितीय निश्चय यह है कि, सब भावपदार्थोंते अतीत हौं, बालके अग्रते भी सूक्ष्म हौं, साक्षीभूत सूक्ष्मते अति सूक्ष्म हौं, यह निश्चय भी शांतिरूप मोक्षको उपजाता है अरु जेता कछु जगज्जाल है, सो सब पदार्थोंमें ही हौं, आत्मारूप मैं अविनाशी हौं, यह तीसरा निश्चय है, सो भी मोक्षदायक है अरु चौथा निश्चय यह है कि, मैं भी असत्य अरु जगत् भी असत्य है, इनते रहित आत्मा आकाशकी नाईं सन्मात्र है, यह भी मोक्षका कारण है. हे रामजी ! यह चार प्रकारका निश्चय मैंने तुझको कहा है, तिसविषे प्रथम निश्चय बंधनका कारण है और तीनों मोक्षके कारण हैं, सो शुद्ध भावनाकरि उपजे हैं, जो प्रथम निश्चयवान् है सो तृष्णारूप सुगंधिकरिकै संसारविषे भ्रमता है अरु तीन भावना शुद्ध जीवन्मुक्त विलासी पुरुषकी हैं, जिसको यह निश्चय है कि, सर्व जगत् मैं आत्मस्वरूप हौं, तृष्णा अरु राग द्वेष तिसको बहुरि दुःख नहीं देता, अधः ऊर्ध्व मध्य, मैं आत्मा ही व्यापा हौं, सब मैं ही हौं, मुझते इतर कछु नहीं, जिसके अंतर यह निश्चय है, सो संसा-

रके पदार्थोंमें बंधायमान नहीं होता, शून्य, प्रकृति, माया, ब्रह्म, शिव, पुरुष, ईश्वर सब तिसके नाम हैं, सो विज्ञानस्वरूप एक आत्मा है, सदा सर्वदा एक अद्वैत मैं आत्मा हौं अपर द्वैत भ्रम चित्तमें नहीं सदा विद्यमान सत्ता व्यापकरूप हौं, ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत जेता कछु जगज्जाल है, सो सर्व परिपूर्ण आत्मतत्त्व भरि रहा हौं, जैसे समुद्रविषे तरंग बुद्बुदे सर्व जलरूप हैं, तैसे सर्व जगज्जाल आत्मस्वरूप ही है, सत्यस्वरूप आत्माते इतर द्वैत कछु बस्तु नहीं, जैसे समुद्रते इतर बुद् बुदे तरंग कछु नहीं, जैसे स्वर्णते इतर कछु भूषण नहीं, तैसे आत्मसत्ताते कोऊ पदार्थ भिन्न नहीं, द्वैत अरु अद्वैत जो जगत्रचनाविषे भेद है, सो परमात्मा पुरुषकी फुरनाशक्ति है, सोई द्वैत अरु अद्वैतरूप होइकरि भासती है, यह अपना है, यह अपरका है, यह भेद सर्वदा सबविषे रहता है अरु पदार्थोंके उपजने मिटनेविषे सुखदुःख भासता है, तिनको मत ग्रहण करौ. भावरूप जो अद्वैत आत्मसत्ता है, तिसीका आश्रय करौ, भ्रमद्वैतको त्यागिकरि अद्वैत पूर्णसत्ता होहु, संसारके जोकछु भेद भासते हैं, तिनका मत ग्रहण करौ, यह भूमिकाकी भावना जो भेद रूप है,सो दुःखदायी जानौ, जैसे अंध हस्ती नदीविषे गिरता है, बहुरि उछलता है, तैसे तुम पदार्थोंविषे मत गिरौ, तुम पूर्णस्वरूप हौ, महात्मा पुरुषको राग द्वेषका कछु संभव नहीं होता, सर्वगत आत्मा एक अद्वैत निरंतर उदयरूप सर्वव्यापक है, एक अरु द्वैतते रहित भी है अरु सर्वरूप भी वही है, निष्किंचनरूप भी वही है, न मैं हौं, न यह जगत् है सब अविद्यारूप है, ऐसे चिंतहु अरु इसका त्याग करहु, अथवा ऐसे चिंतहु कि ज्ञानस्वरूप सत्य असत्य सब मैं ही हौं, तुम्हारा जो स्वरूप है सो आनंदरूप,सर्वका प्रकाशक, अजर, अमर, निर्विकार,निष्क्रिय,निराकार, परम अमृतरूप है, बहुरि कैसा है,जो निष्कलंक जीवशक्तिका जीवनरूप है, सर्व कलनाते रहित कारणका कारण है, निरंतर उद्योत ईश्वर विस्तृतरूप है, अनुभव स्वरूप सब अनुभवका बीज है, अपना आप आत्मपद इचितस्वरूप ब्रह्म मैं अरु मेरा भावते रहित है, ताते अहम् अरु

इदं कलनाको त्यागिकरि अपने अंतर यह निश्चय धरहु अरु यथाप्राप्त क्रियाको करहु, तुम अहंकारते रहित शांतरूप होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे तृष्णोपदेशो नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः १८.

जीवन्मुक्तवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जिनका हृदय युक्तस्वरूप है, ऐसे जो महात्मा पुरुष हैं, तिनका यह स्वभाव है कि, असम्यक्दृष्टि देहाभिमानकरि नहीं रहते, लीलाकरि जगत्कार्यविषे विचरते हैं अरु जीवन्मुक्त शांतस्वरूप हैं, जगत्की गति जो है, सो आदि अंत मध्यविषे विरसरूप है अरु नाशरूप है, तिसते शांतरूप है, सब प्रकार जो अपना कार्य है, सो करता है, सो सब वृत्तिविषे स्थित हुए हृदयसों ध्येयवासना त्यागी है, निरालंबतत्त्वका आश्रय किया है, सबविषे उद्वेगते रहित सर्व अर्थविषे संतुष्टरूप है, विवेकरूपी जो वन है, तिसविषे सदा विचरते हैं, बोधरूपी बगीचेविषे स्थित हैं, सबते अतीत पदका अवलंबन किया है पूर्णमासीके चंद्रमाकी नाईं अंतःकरण शीतल भया है; संसारके पदार्थकरि कदाचित् उद्वेगवान् नहीं होता, उद्वेग अरु असंतुष्टत्व दोनोंते रहित है, सो संसारविषे दुःखी कदाचित् नहीं होता, सब शत्रुओंके मध्य स्थित होइकरि युद्ध करै, अथवा दया करता दृष्ट आवै, बडे भयानक कर्म करता दृष्ट आवै; तौ भी वह जीवन्मुक्त है, संसारविषे दुःखी नहीं होता, सदा सुखी रहता है, न किसी पदार्थविषे आनंदवान् होता है; न किसीविषे कष्टवान् होता है, न किसी पदार्थकी इच्छा करता है, न शोक करता है, मौनविषे स्थित यथाप्राप्त कार्य करता है, संसारविषे दुःखते रहित सुखी होता है, जो कोई पूछता है, तो यथाक्रम ज्योंका त्यों कहता है, अरु पूछेविना मूक जड़ वृक्षवत् हो रहता है इच्छा अनिच्छाते मु संसारविषे दुःखी नहीं होता, सबको हितकरि

बोलता है, कोमल अरु उचित वाणीकरि कहता है, यज्ञादिक कर्म भी करता है परंतु संसारकार्य्यविषे डूबता नहीं. हे रामजी! जीवन्मुक्त पुरुष युक्त अयुक्त नाना प्रकारकी उग्र दिशासंयुक्त जगत्की वृत्तिको जानता है, जैसे हाथविषे बेलफल होवै, तैसे प्रकट जानता है परंतु परमपदविषे आरूढ होइकरि जगत्की गतिको देखता रहता है, अपना अंतःकरण शीतल अरु और जीवोंका तप्त देखता है; स्वरूपते कछु द्वैत नहीं देखता है, परंतु व्यवहारकी अपेक्षाकरि उसकी महिमा कहा है. हे राघव! जिन्होंने चित्त जीता है अरु परमात्मा देखा है, तिन महात्मा पुरुषोंकी स्वभाववृत्ति मैंने तुझको कही है अरु जो मूढ है, जिनने अपना चित्त नहीं जीता, भोगोंरूपी कीचड़विषे मग्न हैं, ऐसे गर्दभोंके जो लक्षण हैं, सो हमारे कहनेविषे नहीं आते, तिनको उन्मत्त कहिये, उन्मत्त इस प्रकार हैं, महानरककी ज्वाला स्त्री है अरु वह उष्ण नरक अग्निके इंधन हैं, तिसकरि जलते हैं. नाना प्रकारके अर्थोंनिमित्त अनर्थ उत्पन्न करते हैं, भोगोंकी दीनता अनर्थरूप है, तिसकरि उनके चित्त हत भये हैं, संसारके आरंभ करि दुःखी होते हैं, जो नाना प्रकारके कर्म करते हैं तिनके फल हृदयविषे धारते हैं, तिन कर्मके अनुसार सुख दुःख भोगते हैं, ऐसे जो भोगलंपट हैं, तिनके लक्षण हम करनेको समर्थ नहीं. हे रामजी! जो ज्ञानवान् पुरुषकी पूर्वदृष्टि कही है, तिसीका तुम आश्रय करो, हृदयसों ध्येयवासनाको त्यागहु; जीवन्मुक्त होइकरि जगतविषे विचरौ अन्तरते संपूर्ण इच्छाको त्यागिकरि वीतराग निर्वासनिक होहु, बाह्य सब आचारवान् होइकरि लोकोंविषे विचरहु, सर्व दिशा अवस्थाका भलीप्रकार विचारकरि तिनविषे अतुच्छ पद होवै, तिसको आश्रय करौ अरु लोकोंविषे विचरौ; अंतर सर्व पदार्थोंते निरस अरु बाह्य इच्छाके सन्मुख होहु, अंतर शीतल रहहु, बाह्य तपायमान होहु ऐसे होइकरि लोकोंविषे विचरो, बाह्य सब कार्यका आरंभ अरु हृदयकरि सब आरंभते विवर्जित होहु, बाह्य कार्योंका कर्ता अरु अंतरते सदा अकर्ता ऐसे होइकरि लोकोंविषे विचरहु. हे रामजी! अब तू ज्ञानवान् हुआ है, सब पदार्थोंकी भावनाका अभाव भया है,

जैसे इच्छा होवे, तैसे विचरहु, जो इंद्रियोंका इष्ट पदार्थ हो आवै, तब कृत्रिम हर्षवान् होना अरु दुःख आय प्राप्त होवै, तब शोक करना, कृत्रिम क्रियाका आरंभ करना अरु हृदयविषे सारभूत रहना, बाह्य अरु कृत्रिमका अर्थ एक है, अंतरत्यागी बाह्यकर्त्ता ऐसे होइकरि जगत्‌विषे विचरो, बाह्यक्रिया करहु, अंतर अहंकारते रहित आकाशवत् निर्मल रहौ, कार्य कलनाते रहित होइकरि जगत्‌विषे विचरहु, आशारूप फाँसीते मुक्त होइकरि इष्ट अनिष्टविषे हृदयमें सम रहना अरु बाह्य कार्य करते लोकोंविषे विचरौ, इस चेतन पुरुषको न वास्तवते बंध है, न मोक्ष है, मिथ्या इंद्रजालवत् बंध मोक्ष संसारका वर्त्तना है, सब जगत् भ्रांतिमात्र है, प्रमादकरिकै जगत् भासताहै, जैसे तीक्ष्ण धूपकरिकै मरुस्थलविषे जल भासता है, तैसे अज्ञानकरिकै जगत् भासता है, आत्मा अबंध सर्व व्यापकरूप है, तिस सर्वात्माको बंध कैसे होवै, जो बंध नहीं, तो मुक्त कैसे कहिये? आत्मतत्त्वके अज्ञानकरि जगत् भासता है; तत्त्वज्ञानकरि लीन हो जाता है, जैसे जेवरीके अज्ञानकरिकै सर्प भासता है, जेवरीके जाननेते सर्प लीन हो जाता है. हे रामजी! तू तो ज्ञानवान् हुआ है, अपनी सूक्ष्म बुद्धि करिकै निरहंकार भया है अब आकाशकी नाईं निर्मल स्थित होहु, तू असत्यरूप है, तौ संपूर्ण मित्र भ्रात तैसे ही हैं, तिनकी ममताको त्यागकरि जो आप कछु न हुआ, तौ भावना किसकी करैगा अरु जो तू सत्यस्वरूप है, तौ अत्यन्त सत्य आत्माकी भावनाकरि दृश्य जगत्‌की भावनाते रहित होहु, यह जो जगत्‌विषे अहं मम भोगवासना है; सो प्रमादकरिकै भासती है, अहं मम बांधवोंका कर्म शुभ आदिक जो जगज्जाल भासता है, सो आत्माका संयोग इनसाथ कछु नहीं, इनकरि तू काहेको शोकवान् होता है तू आत्मतत्त्वकी ऐसी भावना कर तेरा संबंध किसीके साथ नहीं यह प्रपंच भ्रममात्र है, जो निराकार अजन्मा पुरुष होवै तिसको बांधव पुत्र दुःख सुखका क्रमकैसे होवैस्वतः अजन्मा निराकार निर्विकार है, तेरा संबंध किसीसे नहीं इनका शोक तू काहेको करता है, शोक करनेका स्थान वह होता है, जो नाशरूप होवै, सो न कोऊ जन्मता है, न मरता है, जो जन्म मरण भी मानिये तौ आत्मा तिसको सत्ता देनेहारा है, इस

शरीरके आगे भी अरु शरीरके पाछे भी होवै, आगे जो तुम्हारे बांधव बडे बुद्धिमान् सात्त्विक गुणवान् अनेक व्यतीत भये हैं, तिनका शोक काहेको नहीं करता? जैसे वे थे,तैसे ये भी हैं,जो प्रथम थे,सो अब भी हैं, तू शांतरूप है, ताते मोहको प्राप्त क्यों होता है, जो सत्यस्वरूप है, तिसका न कोऊ शत्रु है, न नाश होता है, ताते तू शोक करनेको योग्य नहीं जो तू ऐसे मानता है, अब मैं हौं, आगे न होऊँगा; तौ भी वृथा शोक क्यों करता है? तेरा संशय नष्ट भया है,कष्टसंयुक्त काहेको बनता है अपनी प्रकृतिविषे हर्षशोकते रहित होइकरि विचरहु, संसारके सुखदुःख विषे समभाव रहहु,सर्वत्र परमात्मा व्यापकरूप स्थित है,तिसते इतर कछु नहीं, तू आत्मा आनंद स्वच्छ आकाशवत् विस्तृतरूप है अरु नित्य शुद्ध प्रकाशरूप है,जगत्के पदार्थों निमित्त क्यों शरीरको सुखाता है,सर्व पदार्थ जातविषे एक आत्मा व्यापक होता है, जैसे मोतीकी मालाविषे एक सूत्र तागा व्यापक होता है,तैसे आत्मा अनुस्यूत है, ज्ञानवानोंको सदा ऐसे ही भासता है अरु अज्ञानीको ऐसे नहीं भासता, ताते ज्ञानवान् होइकरि सुखी होहु अरु यह जो संसरणरूप संसार भासता है, सो प्रमादकरि सारभूत हो गया है अरु तू ज्ञानवान् शांतबुद्धि है, दृश्य भ्रममात्र संसारका क्या रूप है, भ्रम अरु स्वप्नमात्रते इतर कछु नहीं, स्वप्नविषे क्या क्रम अरु क्या वस्तु है? सब मिथ्या ही है, तैसे यह संसार है सर्वशक्त जो सर्वात्मा है,तिसविषे जो भ्रममात्रशक्ति है; तिसकरि यह संसारमाया उठी है, सो न सत्य है, वास्तवते पूँछे तौ केवल ज्ञानस्वरूप एक आत्मसत्ता ही स्थित है. जैसे सूर्य प्रकाशता है, तिसको न किसीके बंध है, न किसीके साथ स्नेह है, सर्वरूप सर्वत्र सर्वदा सर्वका ईश्वर है, तिस सत्ताका आभास संवेदन स्फूर्त्ति है तिसकरि नाना रूप जगत् भासता है, कई भिन्न भिन्नरूप निरंतर ही उत्पन्न होते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, तैसे देहधारी जैसी वासना करता है, तिसके अनुसार जगत्विषे विचरते हैं, उपजते हैं और चक्रकी नाईं भ्रमते हैं, स्वर्गविषे स्थित जो जीव हैं, सो नरकको जाते हैं अरु जो

नरकविषे स्थित हैं, सो स्वर्गको जाते हैं, योनिते योन्यंतर अरु द्वीपते द्वीपांतरको जाय प्राप्त होते हैं, अज्ञान करिकै धैर्यवान् कृपणताको प्राप्त होता है अरु कृपण धैर्यको प्राप्त होता है, इस प्रकार भूत उछलते हैं, अरु गिरते हैं, अज्ञानकरिकै अनेक भ्रमको प्राप्त होते हैं, आत्मसत्ता एकरूप स्थित है, स्थिर स्वच्छ अपने आपविषे अचल है, दुःखभ्रम तिसविषे कोऊ नहीं पाता, जैसे अग्निविषे बर्फका कणका नहीं पाता, तैसे जो आत्मसत्ताविषे स्थित हैं, तिनको दुःख क्लेश कोऊ नहीं होता, उनका हृदय शीतल रहता है, सो आत्मसत्ताकी बड़ाई है, संसारविषे यही अवस्था है, जो बडे बडे ऐश्वर्यकरि संपन्न भाग्यवान् दृष्टि आते थे, सो कितनेक दिन पीछे नष्ट होते देखे हैं, तू अरु मैं इत्यादिक भावना आत्माविषे मिथ्या भ्रम करिकै भासती है, जैसे आकाशविषे दूसरा चन्द्रमा भासता है, तैसे यह बांधव हैं, यह अन्य है, यह मैं हौं, इत्यादिक मिथ्या दृष्टि है, सो तेरी अब नष्ट भई है, संसारकी जो विचार-दृष्टि है, जिसकरि जीव नष्ट होते हैं, तिसको मूलते काटिकरि तुम जगत्विषे क्रिया करौ, जैसे ज्ञानवान् जीवन्मुक्त संसारविषे विचरते हैं- तैसे विचरौ, भारवाहककी नाईं भ्रमविषे नहीं वर्तना, जहां नाश करनेहारी वासना उठै, तहां यह विचार करहु कि, यह पदार्थ मिथ्या हैं, तब वासना शांत हो जावैगी, यह बंध है, यह मोक्ष है, यह पदार्थ नित्य है, इत्यादिक गिनती लघुचित्तविषे उठती है, उदारचित्तविषे नहीं उठती, उदार-चित्त जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनके आचरणको विचारता हुआ देहदृष्टि नष्ट हो जावैगी, ऐसे विचार कि, जहां मैं नहीं सो पदार्थ कोऊ नहीं, सब मैं ही हौं, ऐसा पदार्थ कोई नहीं, जो मेरा नहीं, सब मेरा ही है, ऐसे विचारकरि देहदृष्टि तेरी नष्ट हो जावैगी, ऐसा जो ज्ञानवान् पुरुष है, सो किसी संसारके पदार्थकरि उद्वेगको प्राप्त नहीं होता अरु किसी पदार्थके अभाव हुएते आतुर भी नहीं होता, यह चिदाकाशरूप सर्वको सत्य स्थितरूप देखता है, आकाशकी नाईं आत्माको व्यापक देखता है, भाई बांधव भूतजातको अत्यंत असत्यरूप देखता है, नाना प्रकारके

अनेक जन्मविषे भ्रमकरिके अनेक बांधव हो गये हैं, वास्तवते त्रिलोक अरु बांधवविषे भी बांधव वही है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे जीवन्मुक्तवर्णनं नाम अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशतितमः सर्गः १९.

पावनबोधवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! इस प्रसंग ऊपर एक पुरातन भाइयोंका इतिहास है, बडे भाईने छोटे भाईसे कहा है, एक मुनीश्वरके दो पुत्र थे; यह बांधव है, यह अन्य है, इसी प्रसंगके ऊपर एक कथा है सो बंधन अरु मोक्ष आदिक जो नाना प्रकारकी कलना है, तिसको दूर करनेहारी है, पवित्र अरु आश्चर्यरूप कथा है, सो तुम श्रवण करो. हे रामजी ! इसी जंबूद्वीपविषे किसी स्थानविषे महेंद्रनामा एक पर्वत है, तहां कल्पवृक्ष है, तिसकी छायाके नीचे देवता किन्नर आय विश्राम करते हैं, तिस पर्वतके बडे शिखर ऊर्ध्वको गये हैं, ब्रह्मलोकपर्यंत प्राप्त भये हैं, तिसके ऊपर देवता सामवेदकी ध्वनि करते हैं अरु गायन करते हैं, किसी ओरते जलकरि पूर्ण बडे मेघ विचरते हैं, कहूं पुष्पकरि पूर्ण लता हैं, कहूं जलके झरने बहते हैं, कंदरोंके साथ उछलते हैं, मानों समुद्रके तरंग गाते हैं, कहूँ पक्षी शब्द करते हैं, कहूं कंदराविषे सिंह गर्जते हैं, कहूं कल्पवृक्ष, कदंबवृक्ष हैं, कहूं अप्सरागण विचरते हैं, गंगाका प्रवाह चला जाता है, किसी स्थानविषे महासुंदर रत्नमणि रमणीय विराजते हैं, तहां गंगाके तटपर स्नाननिमित्त मुनीश्वर विश्राम करता भया, सो कैसा तट है, सुन्दर वृक्ष अरु स्वर्णके कमलकरि शोभता है, तहां महातपस्वी ज्ञानवान् उदारबुद्धि मुनि दीर्घतपा भया है, तपकी मानों मूर्ति स्थित है, मुनि स्त्रीसंयुक्त गंगाके तटपर शोभता भया, तिसके दो पुत्र थे, महासुन्दर चन्द्रमाकी नाईं तिनका मुख था, पुण्य अरु पावन जिनका नाम, तिन संयुक्त तटपर रहने लगा, जब केताक

काल व्यतीत भया, तब पुण्य नामक जो पुत्र था, सो ज्ञानवान् होता भया अरु पावन अर्धप्रबुद्ध भया, जैसे संध्याकी पूर्व अवस्थामें कमल अर्धोन्मीलित होता है, तैसे सो पुण्य गुणोंकरि पावनसों अधिक होता भया अरु पावन लोलुप अवस्थाविषे रहा, पुण्य ज्ञानवान् भया, जब कालचक्रके फिरते हुए केतेक वर्षगण व्यतीत भये, तब दीर्घतपका शरीर जर्जरीभूत हो गया, शरीरकी क्षणभंगुर अवस्था देखिकरि वृत्ति देहते विरक्त करता भया, अर्थ यह कि, विदेह होनेकी इच्छा करता भया, तब दीर्घतपाको पुर्यष्टका कलनारूप शरीरको त्यागत भई. जैसे सर्प कंचुकीको त्याग देवै, तैसे पर्वतकी कंदराविषे जो आश्रम था, तिसविषे शरीरको उतारि दिया, तब कलनाते रहित अचैत्य चिन्मात्र सत्तास्वरूपविषे स्थित भया, रागद्वेषते रहित जो पद है, तिसविषे शरीरको त्यागिकरि प्राप्त भया, जैसे धूम्र आकाशविषे जाय स्थित होवै, तैसे चिदाकाशविषे स्थित भया, तब मुनीश्वरकी स्त्री भर्त्ताका शरीर प्राणोंते रहित देखत भई, जैसे दंडते कमल काटा होवै, तैसे चित्तविना शरीरको देखत भयी, चिरपर्यंत योगकर्म किया था, तिसकरि अपने शरीरको त्यागने लगी, तब प्राण अरु पवनको वश करिकै शरीरको त्यागत भयी, जैसे भँवरा कमलिनीको त्यागै, तैसे त्यागिकरि भर्त्ताके पदको प्राप्त भई, जैसे आकाशविषे चंद्रमा अस्त होता है अरु तिसकी प्रभा तिसके पाछे अदृष्ट होवै, तैसे दीर्घतपाकी स्त्री दीर्घतपाके पाछे अदृष्ट भई, जब दोनों विदेहमुक्त भये, तब पुण्य जो बडा पुत्र था, तिसके दैहिक कर्मविषे सावधान होइकरि कर्म करने लगा अरु पावन मातापिताते रहित दुःखको प्राप्त भया, शोककरिकै चित्त उपहत व्याकुल होगया, वनकुंजोंविषे भ्रमने लगा, जब पुण्य माता पिताकी देहादिक क्रिया कर रहा, तब जहां पावन शोककरि विलाप करता था, तहां आया अरु शोकसंयुक्त भाईको देखिकरि कहत भया. पुण्य उवाच—हे भाई ! शोकगणको क्यों प्राप्त भया है, जो वर्षाकालके मेघवत आंसुओंका प्रवाह चला जाता है, ऐसा रुदन तू करता है. हे बुद्धिमन् ! तू किसका शोक करता है, तेरे पिता अरु माता तौ आत्मपदको प्राप्त भये हैं, जो मोक्षपद

है, सोई सर्व जीवोंका स्थान है अरु ज्ञानवान्का स्वरूप है, यद्यपि सबका अपना आप स्वरूप एक ही है, तौ भी ज्ञानवान्को इस प्रकार भासता है अरु अज्ञानीको ऐसे नहीं भासता, सो तौ वह ज्ञानवान् थे, अपने स्वरूपको प्राप्त भये हैं, तिनका शोक तू किस निमित्त करता है, यह क्या भावना तुझने बांधी है, मोक्षदायक जो संसारविषे शोक है, सो तू करता नहीं अरु जो शोक करने योग्य नहीं सो करता है; न वह तेरी माता थी, न वह तेरा पिता था, न तू उनका पुत्र था अरु कई तेरे माता, पिता हो गये हैं अरु कई पुत्र हो गये हैं, असंख्यवार तू इनका पुत्र हुआ है अरु असंख्य पुत्र उनने उत्पन्न किये हैं. जैसे नदी अनेक तरंगोंको उत्पन्न करती है, तैसे अनेक तेरे पिता, माता हुए हैं, अरु तू उनका पुत्र होइकरि मरगया है, जैसे पत्र फूल फल लता वृक्षमें लगते हैं अरु नष्ट हो जाते हैं, ऐसे पुत्र मित्र बांधवके समूह तेरे जन्म जन्मके बीति गये हैं, जैसे ऋतुऋतुविषे बडे वृक्षोंकी शाखामें फल होते हैं अरु नष्ट हो जाते हैं, तैसे जन्म होते हैं अरु नष्ट होते हैं, तू काहेको मातापिताके स्नेहकरि शोक करता है. अपर जो तेरे सहस्रों माता पिता होइकारि बीत गये हैं, तिनका शोक काहेको नहीं करता, जो तू इस जन्मके बांधवोंका शोक करता है, तौ उनका भी शोक कर. हे महाभाग! जो प्रपंच तुझको दृष्टि आता है सो जाग्रत् भ्रम है, परमार्थते न कोऊ जगत् है, न कोऊ मित्र है, न कोऊ बांधव है. जैसे मरुस्थलविषे बडी नदी भासती है, परंतु तिसविषे जलका एक बूंद भी नहीं पाता, तैसे वास्तवते जगत् कछु नहीं पाता, जो बडे लक्ष्मीवान् तुझको भासते हैं, छत्र चामरों संपन्न शोभते हैं, सो यह लक्ष्मी चंचल स्वरूप है केते दिनोंते अभाव हो जाते हैं. हे पुत्र! तू परमार्थदृष्टिकरिके विचारि देख, न तू है, न जगत् है, यह दृश्य भ्रांतिरूप है, इसको अंतरते त्याग, इस मायादृष्टिकारि वारंवार उपजता है अरु विनशता है, यह जगत् अपने संकल्पते उपजा है, इसविषे सत् पदार्थ कोऊ नहीं, अज्ञानरूप मरुस्थल है तिसविषे जगतरूपी नदी है; तिसते शुभ अशुभरूपी तरंग उपजते हैं; बहुरि नष्ट हो जाते हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे पावनबोधवर्णनं नाम एकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशतितमः सर्गः २०.

पावनबोधवर्णनम्

पुण्य उवाच–हे भाई ! कई माता; कई पिता हो होकरि मिटि गये हैं; जैसे वायुसों धूलिके कण उड़ते हैं, तैसे बांधव हैं, न कोऊ मित्र है, न कोऊ शत्रु है, संपूर्ण जगत् भ्रांतिरूप है, तिसविषे जैसी भावना फुरती है, तैसे ही हो भासती है, बांधव मित्र पुत्र आदिकोंविषे स्नेह होता है, सो मोहकरि कल्पित है, अपने मनकरि मातापितादिक संज्ञा कल्पी हैं, प्रपंचविषे जैसी संज्ञा कल्पता है, तैसी हो भासती है. जहां बांधवकी भावना होती है, तहां बांधव भासता है, जहां औरकी भावना होती है, तहां और हो भासता है अरु जो अमृतविषे विषकी भावना होती है, तौ अमृत भी विष होता जाता है, कछु अमृतविषे विष नहीं, भावनारूप भासता है, तैसे न कोऊ बांधव है, न कोऊ शत्रु है, विद्यमान सर्वकाल एक सर्वगत सर्वात्मा पुरुष स्थित है, तिसविषे अपनी अरु औरकी कल्पना कोऊ नहीं अरु जेते कछु देहादिक हैं, सो रक्तमांसादिक समूह करि रचे हैं तिनविषे अहं सत्ता है सो कौन है ? अहंकार अरु चित्त बुद्धि मन कौन है ? परमार्थदृष्टिकरि यह तौ कछु नहीं विचार कियेते न तू है न मैं हौं पुण्य अरु पवन दोनों मिथ्या ज्ञानकरि भासते हैं एक अनंत चिदाकाश आत्मसत्ता सर्वदा है, तिसविषे तेरी माता कौन है अरु पिता कौन है, सर्व मिथ्या भ्रमकरिकै भासता है, वास्तवते कछु नहीं, शरीरकरि देखिये, तौ जेते कछु शरीर हैं, सो पंचतत्त्वोंकरि रचे जडरूप हैं; तिनविषे जो चेतन है, सो तौ एकरूप है, तिसविषे अपना अरु पराया कौन है, इस भ्रमदृष्टिको त्यागिकरि तत्त्वका विचार कर मिथ्या भावनाकरिकै मातापिताके निमित्त क्यों शोकवान् हुआ है ? जो सम्यक्दृष्टिको आश्रय करिकै तिस स्नेहका शोक कर्त्ता है, तौ और जन्मोंके तेरे बांधव मित्र हैं, तिनका शोक क्यों नहीं करता ? अनेक पुष्पलतविषे तू मृगपुत्र हुआ था, तिस जन्मके तेरे अनेक मित्र बांधव थे, तिनका शोक क्यों नहीं करता ? अनेक कमलोंसंयुक्त तालावमें हस्ती आय विचरे थे, तहां तू हस्तीका

पुत्र था, तिन हस्ती बांधवोंका शोक क्यों नहीं करता, बडे वनविषे वृक्ष हुए थे, तेरे साथ फल पत्र हुए थे, अनेक वृक्ष तेरे बांधव थे, तिनका शोक क्यों नहीं करता, बहुरि नदी तालावविषे मत्स्य हुए थे, जो तेरे मत्स्य जातिके बांधव थे, तिनका शोक क्यों नहीं करता, बहुरि दशार्ण देशविषे काक वानर हुआ, तुषार्ण देशविषे तू राजपुत्र हुआ बहुरि वन-काक हुआ, वंग देशविषे तू हाथी भया, विराज देशविषे तू गर्दभ हुआ; सावल देशविषे सर्प भया अरु वृक्ष हुआ, वंग देशविषे गृध्र हुआ; मालव देशविषे पर्वतविषे पुष्पलता हुआ; मंदराचल पर्वतविषे गीदड़ हुआ, कौशल देशविषे तू ब्राह्मण भया वंग देशविषे तीतर हुआ, तुषार देशविषे घोड़ा भया, बहुरि कीट अवस्थाविषे अनेक बार भया, बहुरि एक नीच ग्रामविषे बछरा हुआ; पंचदश मास तहां रहा, बहुरि एक वनविषे तडाग था, तहां कमल पुष्पविषे भ्रमर भया, सो तू मेरा भाई है, इत्यादिक अनेक जन्म तैने पाये हैं; जंबूद्वीपविषे तू अनेकबार उत्पन्न भया है. हे भाई! इस प्रकार वासनापूर्वक वृत्तांत मैंने कहा है, जैसी वासना हुई है, तैसे जन्म तू पाया है, सो सूक्ष्म निर्मल बुद्धिकरि देखता हौं कि ज्ञानविना तू अनेक जन्म पाया है, तिन जन्मोंको जानिकै किस किस बांधवका शोक करैगा अरु किसका स्नेह करैगा, जैसे वह बांधव थे, तैसे यह भी जानि ले अरु मेरे भी अनेक बांधव हुए हैं, जिन जिन-विषे जन्म पाया है अरु बीति गये हैं, तैसे सर्व मेरे स्मरणविषे आते हैं अरु अब मुझको अद्वैत ज्ञान भया है. हे भाई! त्रिराग देशविषे मैं तोता भया, तडागके तटपर हंस भया हौं, पंखीविषे काक हुआ हौं; बहुरि बेलि हुआ हौं, वंगदेशविषे वृक्ष हुआ, इस वन पर्वतविषे बडा उष्ट्र होइकरि विचरा हौं, पौंड्रदेशविषे राजा हुआ हौं, सह्याचल पर्वतकी कंदराविषे गीदड हुआ हौं, सो तू वहां बडा भाई भया. तहां मैं मृग होइ-करि दश वर्ष रहा; बहुरि पञ्चमास मृग रहा, सो तेरा भ्राता होइकरि रहा, सो तेरा बडा भ्राता हौं, इस प्रकार ज्ञानते रहित वासना कर्मके अनुसार जन्मविषे भ्रमते फिरे हैं, मैं तुझको सर्व कहा है, सब मुझको स्मरणविषे आता है, इस प्रकार जगज्जालकी स्थिति मैं तुझको

कहीं है, तेरे मेरे अनेक जन्मके माता पिता भाई मित्र भये हैं, तिनका शोक तू क्यों नहीं करता ? यह संसार दुःख सुखरूप अप्रमाण भ्रमरूप है, इस कारणते सबको त्यागिकारि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, सब प्रपंच भ्रांतिरूप है, इसकी वासना त्याग, जब अहंकार वासनाको त्याग करै, तब तिस पदको प्राप्त होवैगा, जहां ज्ञानवान् प्राप्त होते हैं. ताते हे भाई ! यह जो जीवभाव है, जन्ममरण ऊर्ध्व जाना बहुरि गिरना यह जो व्यवहार है, तिसविषे बुद्धिमान् शोकवान् नहीं होता, दुःखके निवृत्तिअर्थ अपने स्वरूपका स्मरण करते हैं, सो स्वरूप भावअभावते रहित जरामरणते रहित नित्य शुद्ध परमानंद है, तू तिसका स्मरण कर, मूढ मत होहु, तुझको न सुख है, न दुःख है, न जन्म है, न मरण है, न माता है, न पिता है, तू एक अद्वैतरूप आत्मा है और किसीके साथ संबंध नहीं, काहेते कि, इतर कछु नहीं. हे साधु ! यह जो नाना प्रकारका संसारविषयसंयुक्त यंत्र है, अज्ञानरूप नटुआ इसको ग्रहण करता है, इष्ट अनिष्टकरि बंधायमान होता है, जो आत्मदर्शी पुरुष हैं, तिनको कछु क्रिया स्पर्श नहीं करती, केवल सुखरूप हैं अरु जो अज्ञानी है, सो देह इंद्रियोंके गुणोंविषे तद्रूप हो जाता है; इष्ट अनिष्टकरि सुखदुःखका भोक्ता होता है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो देखनेहारे साक्षीभूत होते हैं, कर्ता हुआ भी अकर्तारूप हैं. जैसे दीपक प्रकाशरूप होइकारि रात्रिको सब जगत्के अर्थ सिद्ध करता है अरु अपनी इच्छाते रहित है, ताते अकर्ता है, तैसे ज्ञानवान् देह इंद्रियोंके कर्म करता भी अकर्ता है, इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिविषे राग द्वेषते रहित है, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब आइ पड़ता है, परंतु दर्पण भले बुरे रंगकरि रंजित नहीं होता, तैसे ज्ञानवान् रागद्वेषकरिकै रंजित नहीं होता, सब इच्छाते अरु भयकलनाते रहित स्वच्छ आत्मसत्ता सदा प्रफुल्लितरूप है, पुत्र कलत्र बांधवोंके स्नेहते जिसका हृदयकमल रहित है, सर्व इच्छा अहंममते रहित अपने स्वरूपविषे संतुष्टवान् होता है, ताते मिथ्या देहादिकोंकी भावनाको त्यागि-

कारि अपने नित्य शुद्ध शांत परमानंदस्वरूपविषे तू भी स्थित होहु तू परब्रह्मरूप है अरु अति निर्मलरूप है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे पावनबोधो नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशतितमः सर्गः २१.

तृष्णाचिकित्सोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जब इस प्रकार पुण्यने पावनको बोध उपदेश किया, तब पावन बोधको प्राप्त भया, जैसे प्रातःकालविषे पृथ्वी प्रकाशवती होती है अरु तम नष्ट हो जाता है, तैसे पावनको बोध प्राप्त भया, तब दोनों ज्ञानवान्‌के पारगामी होइकारि वनविषे विचरने लगे, निरिच्छित आनंदित पुरुष चिरकालपर्यंत विचरत भये, बहुरि दोनों विदेहमुक्त निर्वाणपदको प्राप्त हुए, जैसे तेलते रहित दीपक निर्वाण हो जाता है, तैसे प्रारब्ध कर्मके क्षीण हुएते दोनों विदेहमुक्त भये. हे रामजी! इस प्रकार तू भी जान, जैसे वह मित्र बांधव धनादिकके स्नेहते रहित होइकारि विचरैं, तैसे तुम भी स्नेहते रहित होइकारि विचरौ, जैसे उन्होंने विचार किया तैसे तू भी कर, इस मिथ्यारूप संसारविषे किसकी इच्छा करे और किसका त्याग करे, ऐसे विचारकारि अनंत इच्छा अरु तृष्णाका त्याग करना यह औषध है, इच्छा तृष्णाकी पालना औषध नहीं, काहेते जो पालनेकारि पूर्ण कदाचित् नहीं होती, जेता कछु जगत् है, सो चित्तते उत्पन्न भया है, चित्तके नष्ट हुएते संसारदुःख नष्ट हो जाता है, जैसे काष्ठके पावनेकारि अग्नि बढता जाता है अरु काष्ठोंते रहित शांत हो जाता है, तैसे चित्तकी चितवना करिकै जगत् विस्तारको पाता है, चिंतवनाते रहित शांत हो जाता है. हे रामजी! ध्येयवासनावान् त्यागरूप रथपर आरूढ होइकारि होहु अरु करुणा, दया, उदारतासंयुक्त होइकारि लोकोंविषे विचरहु, इष्ट अनिष्टविषे रागद्वेषते रहित होहु, यह ब्रह्मस्थिति तुमको कही, निष्काम निर्दोष स्वस्थरूपको पाइकारि बहुरि मोहको प्राप्त

नहीं होता, इसका परम आकाश ही हृदयमात्र विवेक है, बुद्धि इसकी सखी है, जिसके निकट विवेक अरु बुद्धि है, सो परम व्यवहार करते भी संकटको प्राप्त नहीं होते, ताते तू परम विवेक अरु बुद्धिको संग लेकरि जगत्‌विषे विचरैगा, तब संकट दुःखकरि मोहित न होवैगा नाना प्रकारके दुःख संकट स्नेह आदिक विकाररूप समुद्र है, तिसके तरने निमित्त एक अपना धैर्यरूपी बेड़ा है और कोऊ उपाय नहीं सो धैर्य क्या है। दृश्य जगत्‌सों वैराग्य अरु सच्छास्त्रका विचार अरु श्रेष्ठ गुण अभ्यास संयुक्त आत्मपदकी प्राप्ति होती है, सो आत्मपद त्रिलोकीके ऐश्वर्यरूपी रत्नोंका भंडार है, जो त्रिलोकीके ऐश्वर्यकरि भी नहीं पाता, सो वैराग्य विचार अभ्यास बडे गुणोंकरि चित्तके धारणेसों पाता है. तबलग यह पुरुष जगत्‌कोशविषे उपजता है, जबलग मन तृष्णारूपी तापते रहित नहीं होता, तबलग कष्ट है, जब आत्मविवेकसों मन पूर्ण होता है, तब सर्व जगत् अमृतरूप भासता है, जैसे जूतीके पहिरनेकरि पृथ्वी सर्व चर्मसों वेष्टित हो जाती है, तैसे पूर्णपद इच्छा तृष्णाके त्यागनेकरि पाता है, जैसे शरत्कालका आकाश मेघते रहित निर्मल होता है, तैसे इच्छाते रहित पुरुष निर्मल होता है, जिन पुरुषोंके हृदयविषे आशा फुरती है, तिसके वश हुए शून्यचित्त हो जाता है, जैसे अगस्त्यमुनिने समुद्रको पान किया, तब समुद्र जलते रहित शून्य हो गया, तैसे आत्मजलके रहित समुद्रवत् चित्त शून्य हो जाता है, जिस पुरुषके चित्तरूपी वृक्षविषे तृष्णारूपी चञ्चल मर्कटी रहती है, तिसको स्थिर होने नहीं देती, क्षोभायमान सदा होती है अरु जिसका चित्त तृष्णाते रहित है, तिस पुरुषको तीनों जगत् कमलकी डोडीकी नाई हो जाते हैं, योजनोंके समूह गोपदवत् सुगम हो जाते हैं अरु महाकल्प अर्धनिमेषवत् होता है. हे रामजी ! ऐसा शीतल चन्द्रमा अरु हिमालय पर्वत भी नहीं, ऐसा शीतल केलेका वृक्ष अरु चन्दन भी नहीं, जैसा शीतल चित्त तृष्णाते रहित होता है पूर्णमासीका चन्द्रमा अरु क्षीरसमुद्र भी ऐसा सुन्दर नहीं होता अरु लक्ष्मीका मुख भी ऐसा नहीं होता, जैसा इच्छाते रहित मन शोभायमान होता है, जैसे चन्द्रमाको प्रभाको मेघ आच्छादि लेता है अरु जैसे शुद्ध स्थानको

अपवित्र लेपन मलिन करता है; तैसे अहंतारूप पिशाचिनी पुरुषोंको मलिन करती है, चित्तरूपी जो वृक्ष है, तिसके बडे टास दिशा विदिशा पसर रहे हैं, सो आशारूप हैं, जब विवेकरूपी कुहाडंसे तिसको काटै तब अचित्त पदकी प्राप्ति होवै अरु जिनकी अनेक शाखा हैं, तिनको जब काटै तब एक स्थानरूपी चित्त रहै, अविवेक अधैर्य शाखा तृष्णा-संयुक्त हैं, सो अनेक शाखा बहुरि होवैगी, तब आत्मधैर्यको धरहु, जो चित्त वृद्धताको न प्राप्त होवै, उत्तम धैर्यकरिकै चित्त जब नष्ट हो जावैगा, तब अविनाशी पदको प्राप्त होवैगा. हे रामजी! उत्तम हृदयरूपी क्षेत्र है, तिसविषे जब चित्तकी स्थिति होती है, तब आशारूपी दृश्यको नहीं उपजने देती, ब्रह्मरूप शेष रहता है, जब तुम्हारा चित्तवृत्तिते रहित अचित्त-रूप होवैगा, तब मोक्षरूप जो विस्तृत पद है, सो प्राप्त होता है अरु चित्तरूपी उलूक पक्षी है, तिसकी तृष्णारूपी स्त्री है, ऐसा पक्षी जहां विचरता है, तहां अमंगलको विस्तारता है, जहां उलूक पक्षी विचरतें हैं, तहां उजाड होती है, विवेकादि जन ताते रहित हो गये हैं; तात तू चित्तकी वृत्तिते रहित होउ, ऐसे होइकरि विचरैगा, तब अचित्य पदको प्राप्त होवैगा, जैसी जैसी वृत्ति फुरती है, तैसा तैसा रूप जीवको हो जाता है, इस कारणते चित्त उपशमके निमित्त तुम यही वृत्ति धरौ, जिसकरि आत्मपदकी प्राप्ति होवै. हे महात्मा पुरुष! जिसको संसारके पदार्थोंकी इच्छा ईषणा उपशम हुई है अरु भाव अभावते मुक्त भया है चित्त जिसका, सो उत्तम पदको पाता है अरु जिसका चित्त आशारूपी फाँसीसे बांधा है, सो मुक्त कैसे होवै, आशा संयुक्त कदाचित् मुक्त नहीं होता अरु सदा बन्धायमान रहता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे तृष्णाचिकित्सोपदेशो नाम एकविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशतितमः सर्गः २२.

विरोचनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जो मैंने तुमको उपदेश किया है; तिसको विचारौ, हे रघुकुलआकाशके चन्द्रमा ! बलिवत् बुद्धिसों मेरे वचनोंको विचारिकरि निर्मल ज्ञानको प्राप्त होहु. राम उवाच-हे भगवन् ! सर्व धर्मोंके वेत्ता ! तुम्हारे प्रसादते जो कछु जानने योग्य था, सो जाना है अरु पाने योग्य पद पाया है, निर्मल पदविषे विश्राम किया है, कि भ्रमरूपी मेघते रहित शरत्कालके आकाशवत् निर्मलचित्त भया हौं मोहरूपी अहंकार नष्ट हो गया है, अमृतकरिकै हृदय पूर्णमासीके चंद्रमाकी नाईं शीतल भया है, संशयरूपी मेघ नष्ट हो गया है, परंतु तुम्हारे वचनोंरूपी अमृतको पान करता तृप्त नहीं होता अरु जिस प्रकार बलिको विज्ञानबुद्धिभेद प्राप्त भया है, सो बोधकी वृद्धिके निमित्त मुझको ज्योंका त्यों कहो, नम्रीभूत शिष्यप्रति कहते हुए बड़े खेद नहीं मानते, ताते प्रगट कर कहो. वसिष्ठ उवाच-हे राघव ! बलिका जो उत्तम वृत्तांत है सो मैं कहता हौं, सो तू श्रवण कर, तिसकरि निरंतर बोधको प्राप्त होवैगा. हे रामजी ! इस जगत्की किसी एक दिशाविषे जिसका पाताल नाम प्रसिद्ध है, सो इस लोकके अधः पृथ्वीविषे स्थित है, तिस पातालविषे बलि राजा रहता था, महाक्षीरसमुद्रकी नाईं सुंदर उज्ज्वल स्थान है, कहूं महासुन्दर नागकन्या विराजती हैं, कहूं विषधर सर्प विराजते हैं, सहस्र शीश जिनके. कहूं दैत्यपुत्र विराजते हैं, कहूं कट कट शब्द होते हैं, कहूँ सुन्दरसुखके स्थान हैं, कहूँ जीवोंके परंपरासमूह नरकोंविषे जलते हैं, कहूँ दुर्गंधके स्थान हैं, सप्त पाताल हैं, सबविषे जीव स्थित हैं, कहूँ रत्नकरि खचित स्थान हैं, कहूँ देवता अरु दैत्य जिसके चरणोंको शीशपर धरते हैं, ऐसे भगवान् कपिलदेव बैठे हैं, कहूँ सुगंधित रत्नका बाग है, ऐसे पातालविषे दो भुजाकरि पालित करी है पृथ्वी जिसने, ऐसा दानवोंविषे श्रेष्ठ विरोचनका पुत्र राजा बलि होता भया, सर्व देवता विद्याधर अरु किन्नर जिसने लीलाकरिकै

जीते हैं, अरु त्रिलोकी अपने वश कर छोडी है, सब टहलुएकी नाईं हो रहे हैं सर्व देवताओंका राजा जो इंद्र है, सो तिसके चरणसेवनकी वांछा करता है अरु त्रिलोकीविषे जो जाति जातिके रत्न हैं, सो सब तिसके विद्यमान रहते हैं, सब शरीरोंकी रक्षा करनेहारा अरु भावनाके धर्मोंको धरनेहारा, विष्णुदेव जिसका द्वारपाल है अरु ऐरावत हस्ती, जिसके गंडस्थलसे मद झरता है; सो इंद्रका हस्ती तिसकी वाणी सुनि भयमान होता है, जैसे मोरकी वाणी सुनिकारि सर्प भयवान् होता है, ऐसा तिसका तेज है. जैसे सप्त समुद्रोंका जल कुहिड क्षीर शोष लेता है, जैसे प्रलयकालके द्वादश सूर्यकारि समुद्र सूखने लगता है अरु ऐसे यज्ञ करे, जिसके क्षीर घृतकी आहुतिका धुंवा मेघबादल होइकारि पर्वतोंपर विराजे अरु जिसकी दृढ दृष्टिसों देखनेकारि कुलाचलपर्वत भी नम्रीभूत हो जावै, जैसे फलोंकारि पूर्ण लता नमती हैं तैसे, अरु लीलाकारिकै भुवनको विस्तारसहित जीता है, त्रिलोकीको जीतिकारि दशकोटि वर्षपर्यंत राजा बलि राज्य करता भया, तब एक दिन राजा बलि सुमेरुके शिखर जैसे ऊंचे झरोखेविषे जाय स्थित भया, सो राजा बलिने युगोंके समूह व्यतीत हुए देखे हैं, देवता, दैत्य उपजते अरु मिटते जिसने अनेक बार देखे हैं, त्रिलोकीके भोग भोगे हैं, सो भोगोंते उद्वेग पाया, तब ऊंचे झरोखेमें एकला ही बैठिकारि संसारकी स्थितिको चिंतवत भया, सो इस बडे राज्य चक्रवर्तीकारि मुझको क्या प्रयोजन है ? यद्यपि त्रिलोकीका राज्य बड़ा है, तौ भी क्या आश्चर्य है ! इसविषे मैं चिरकाल भोग भोगता रहा हौं, परंतु शांति प्राप्त न भई अरु यह भोग आपात रमणीय हैं, उपजिकारि बहुरि नष्ट हो जाते हैं, भोगोंकारि शांति-सुख प्राप्त नहीं भया अरु वारंवार मैं वही कर्मव्यवहार करता हौं, बहुरि दिन, रात्रि, बहुरि वही क्रिया करनी, तिसविषे लज्जा भी नहीं आती अरु वही स्त्री आलिंगन करनी, बहुरि भोजन करना, पुष्पोंकी शय्यापर शयन करना; क्रिया करनी यह कर्म बड़ेको लज्जाका कारण है, तिस तिसमें निरस व्यवहार करना, जो एकबार निरस हुआ अरु उस कालमें तृप्त हुआ, बहुरि वारंवार दिनदिनविषे करते हैं, यह मैं मानता हौं और

बुद्धिमानोंको हरने योग्य लज्जाका कारण है, जीवोंके चित्तविषे वृथा संकल्प विकल्प उठते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं अरु मिटते हैं, तैसे संकल्प इच्छाजाल उठते हैं अरु मिटते हैं, सो उन्मत्तकी नाई जीवोंकी चेष्टा है,यह तौ हांसी करने योग्य बालकोंकी लीला है, मूर्खता-करि अनर्थोंको पसारती है, इसविषे जो कछु बडा उदार फल होवै सो मैं नहीं देखता, इसविषे भोगोंते इतर कार्य कछु नहीं पाता, जो कछु इसते रमणीय अरु अविनाशी होवै, तिसको शीघ्र ही चिंतन करौं; ऐसे विचारिकरि कहने लगा, बलि जो है दैत्योंका राजा, सो अपने मनविषे जगत्को नाशवान् जानिकरि तिसी क्षणमें स्मरण करने लगा कि, मैंने जो प्रथम भगवान् विरोचनसों पूछा था, मेरा पिता विरोचन आत्मतत्त्वका ज्ञाता था, जिसते लोकोंका आदि अंत न था. अर्थ यह कि, सर्व लोकोंविषे गमन किया था, तिससों मैंने प्रश्न किया था. हे भगवन् महात्मा ! जहां सर्व दुःखोंका अरु सर्व सुखोंका अन्त हो जाता है अरु सर्व भ्रम शांत हो जाता है, सो कौन स्थान है ! सो मुझको कहौ, जहां मनका मोह नाश हो जाता है अरु सर्व इच्छाते मुक्त होता है; रागद्वेषते रहित जिसविषे सर्वदा विश्रामवान् होता है, बहुरि क्षोभ नहीं रहता अरु हे तात ! वह कौन पद है, जिसके पायेते और पावना कछु नहीं रहता अरु जिसका दर्शन देखेते और देखना कछु नहीं रहता, यद्यपि अत्यंत जगत्के भोगपदार्थ हैं, तौ भी सुखदायक नहीं भासते हैं, काहेते कि क्षोभ करते हैं अरु योगीश्वरोंके मन भी मोहिकरि गिर पडते हैं. हे तात ! जो सुख सुंदर विस्तीर्ण आनंद है, सो तैसा मुझको कहौ, तिसविषे स्थित हुआ मैं सदा विश्राम पाऊंगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे विरोचनवर्णनं नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशतितमः सर्गः २३.

बलिवृत्तान्तविरोचनगाथावर्णनम्।

विरोचन उवाच–हे पुत्र ! एक अतिविस्तीर्ण विपुल देश है, तिसविषे अनेक सहस्र त्रिलोकियां भासती हैं अरु जहां न समुद्र है, न जलधारा है, न पर्वत है, न वन है, न तीर्थ है, न नदियां हैं, न तलाव हैं, न पृथ्वी है, न आकाश है, न नंदनवन है, न पवन है, न अग्नि है, न चन्द्रमा है, न सूर्य है, न लोक है, न देश, न देवता, न दैत्य, न यक्ष, न राक्षस हैं, न कमलोंकी शोभा है, न काष्ठ तृणभूत हैं, न चर, न अचर, न जल, न अग्नि, न दिशा हैं, न ऊर्ध्व, न अधः, न मध्य है, न प्रकाश है, न तम है, अहं नहीं, न विष्णु, इंद्र, रुद्रादिक हैं सो एक ही है अरु महानता नाना प्रकार प्रकाशको धरनेहारा है अरु सर्वका कर्त्ता सर्वव्याक है अरु सर्वरूप है, सो तूष्णींभावसों स्थित है, तिसने सर्व मंत्रियों सहित एक मंत्री संकल्प किया, सो मंत्री जो न बनैं तिसको शीघ्र ही बनाय लेता है, जो बनै तिसको न बनानेको भी समर्थ है, आपते कछु नहीं भोगता अरु जाननेको समर्थ है, केवल राजाके अर्थ सर्व कार्यका कर्त्ता है, यद्यपि आप जड अज्ञ है, तौ भी राजाके बलकरिकै तनुतासों ज्ञाता अरु कार्य करता है, यही सब कार्योंको करता है, तिसका महीपति जो राजा है, सो एकताविषे केवल अपने आपविषे स्थित है. बलिरुवाच--हे प्रभु ! आधिव्याधि दुःखते रहित जो प्रकाशवान् है, सो देश कौन है ? अरु प्राप्ति किस साधनसों है ? अरु आगे किसने पाया है ? अरु ऐसा मन्त्री कौन है ? अरु महाबलिराजा कौन है ? जो जगत्जालसंयुक्त हमने भी नहीं जीता. हे देव ! यह जो अपूर्व आख्यान तुमने कहा, सो आगे श्रवण भी नहीं किया था, मेरे हृदय आकाशविषे संशयरूपी बादर उदय भया है, सो वचनरूपी पवनकरिकै निवृत्त करहु. विरोचन उवाच--हे पुत्र ! तिस देशविषे मंत्री भगवान् अनेक कल्प देवता अरु असुरगण होइकरि

एक क्षण भी वश नहीं होता, सहस्रनेत्र जो इन्द्र है, तिसके वश नहीं होता, यम, कुबेर नहीं वश कर सकते, देवता असुरोंकरि भी जीता नहीं जाता, मुसल, वज्र, चक्र, गदादिक षडंग, तिसकरि चलाये कुंठित हो जाते हैं, जैसे पाषाणपर चलाये कमल कुंठित होजाते हैं, सो मंत्री अस्त्र अरु शस्त्रकरि वश नहीं होता, बडे युद्ध कर्मोंकरि नहीं पाता देवता दैत्य सर्वको तिसने वश किया है, विष्णुपर्यंत देवता हिरण्यकशिपु आदिक असुर डारि दिये हैं, जैसे प्रलयकालका पवन सुमेरुके कल्पवृक्षको गिराइ देता है, नारायणते लेकरि देवता भी वश किये हैं, जैसे आकाशका बटलोईविषे निवास हो जाता है,तिसके प्रमादकरि इस त्रिलोकीको वश कर चक्रवर्ती राजाकी नाईं स्थित है, सुरअसुरोंके समूह तिसकरि भासते हैं; यद्यपि गुह्य है, गुणहीन है, दुर्मति अरु दुष्ट अहंकार क्रोध है, सो तिसकरि उदय होता है, देवता अरु दैत्यके समूह बहुरि बहुरि उपजते हैं,सो इसकी क्रिया है; ऐसा मंत्रोंसंयुक्त मंत्री है. हे पुत्र ! जब तिसके राजाको वश करिये तब तिसके मंत्रीको वश करना सुगम होता है,राजाको वश किये विना मंत्री वश नहीं होता, कबहूँ अंतर रहता है, कबहूँ बाह्य जाता है; जिस कालमें राजाकी इच्छा होती है कि, मंत्री अपनेको जीते तब यत्नविना जीति लेता है, ऐसा बलि मल्ल है, जिसकरि त्रय जगत् उल्लासको प्राप्त भये हैं , कैसा मंत्री मानो सूर्य है, तिसके उदय भयेते त्रिलोकीरूपी कमलोंकी खानि विकासको प्राप्त होती है अरु तिसके लय हुएते जगतरूपी कमल लय हो जाता है. हे पुत्र ! जब जीतनेकी तुझको शक्ति है, तब तू पराक्रमवान् है, जब मोहते रहित एकत्र बुद्धि होवै, तब तिसकरि एकके जीतनेको समर्थ होवैगा, तब धैर्यवान् है अरु सुंदर वृत्ति तेरी है, काहेते कि तिसके जीतनेते जो नहीं जीता, तिसपरि जीत पाता है अरु जो तिसको नहीं जीता अरु अपर लोक सब जीते हैं, तौ भी जीते अजित हो जावैगा, तिस कारणते जो तू अनंत सुख चाहता है, जो नित्य अविनाशी है तौ उसके जीतने निमित्त यत्नसों स्थित होहु-अरु बडे कष्ट चेष्टा करिकै भी तिसको वश कर, सुर जो हैं देवता, असुर जो हैं दैत्य अरु यक्ष,मनुष्य

अरु महासर्प किन्नरोंसंयुक्त अति बली हैं, तौ भी वह सर्व ओरते यत्न विना वश होते हैं, ताते उसको वश कर.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बलिवृत्तांतविरोचनगाथा-
वर्णनं नाम त्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशतितमः सर्गः २४.

बल्युपाख्याने चित्तचिकित्सोपदेशवर्णनम् ।

बलिरुवाच- हे भगवन् ! किस उपायकरि तिसको जीतिये अरु ऐसा महावीर्यवान् मंत्री कौन है अरु राजा कौन है? यह वृत्तांत सब मुझको शीघ्र कहौ, जो उपाय करौं. विरोचन उवाच-हे पुत्र! स्थित हुएको भी त्यागने योग्य है, ऐसा मंत्री जिस उपायकरि जीतिये, सो भली प्रकार कहता हौं, तू श्रवण कर, तिस युक्ति ग्रहण कियेते शीघ्र ही वश होता है, युक्तिविना वश नहीं होता, जैसे बाघको युक्तिकरि वश करता है,तैसे जो पुरुष युक्तिकरि मंत्रीको वश करता है; तिसको राजाका दर्शन होता है, तिसकरि परमपदको पाता है, जब राजाका दर्शन होता है, तब मंत्री वश हो जाता है, तिस मंत्रीको वश कियेते बहुरि राजाका दर्शन होता है, जबलग राजाको न देखा, तबलग मंत्री वश नहीं होता अरु जबलग मन्त्रीको वश नहीं किया, तबलग राजाका दर्शन नहीं होता, राजाको देखेविना मन्त्री जीतना कठिन है, मन्त्रीके जीते-विना राजाको देखना कठिन है, तिस कारणते दोनोंका इकट्ठा अभ्यास करि राजाका दर्शन अरु मन्त्रीका जीतना अपने पुरुष प्रयत्नकरि शनैः-शनैः अभ्यासते होता है, दोनोंके संपादनकरि यह पुरुष शुभताको प्राप्त होता है, जब तू अभ्यास करैगा, तब तिस देशको प्राप्त होवैगा, यह अभ्यासका फल है. हे दैत्यराज ! जब तिसको पावैगा, तब रंचक शोक भी तुझको न रहैगा, सब यत्नोंते शांत हो जावैगा, नित्य प्रफुल्लित प्रसन्न रहैगा. जो साधुजन हैं, सो सर्व संशयते रहित तिस देशविषे स्थित होते हैं. हे पुत्र! सुन; वह देश तुझको प्रगट कर

कहता हौं, देश नाम मोक्षका है, जहाँ सर्व दुःख नष्ट हो जाते हैं अरु राजा तिस देशका आत्मभगवान् है, जो सर्व पदोंते अतीत है, तिस महाराजाने मंत्री मनको किया है, सो मन परिणामको पाइकारि सर्व ओरते विश्वरूप भया है. जैसे मृत्तिकाका पिंड घटभावको प्राप्त भया है, जैसे धूम्र बादरको धरता है, तैसे मनते विश्वरूप धरा है, तिस मनको जीतेते सब सुख विश्वके ऊपर जीत पाता है, मनको जीतना कठिन है, परंतु युक्तिसों वश होता है. बलिरुवाच–हे भगवन्! तिस मन वश करनेको युक्ति मुझको कहौ, जिसकारि दारुण मनको जीतौं. विरोचन उवाच– हे पुत्र! शब्द, स्पर्श, रूप, रस अरु गंध जो विषय हैं, तिनकी प्रतिमा जो रस हैं, तिनकी सर्वदा सर्व ओरते आस्था त्यागनी, अर्थ यह कि, नाशवंत भ्रमरूप जानना, यह मनके जीतनेकी परम युक्ति है, मनरूपी हस्ती विषयरूपी रस मदसों मस्त है, सोई युक्तिकारि शीघ्र दमन हो जाता है, युक्ति कठिन है, अति दुःखते प्राप्त होती है, परंतु अपने अभ्यासकारि सीखनेसों प्राप्त होती है, क्रमकारि अभ्यास किये विषयते विरक्तता सर्व ओरते प्रगट होती है. जैसे रसवान् पृथ्वीते लता उपजती हैं, तैसे जो शठ जीव हैं, सो इनकी वांछा करते हैं, परंतु अभ्यासविना नहीं प्राप्त होती, अभ्यासवान्को यह युक्ति प्रगट होती है, ताते अभ्यास सहित युक्तिका आश्रय करौ, जबलग इन विषयोंते पुरुषको विरक्तता नहीं उपजती, तबलग संसाररूपी अटवीके दुःखोंविषे भ्रमता है, सो विषयते विरक्तता अभ्यास विना किसीको प्राप्त नहीं होती, जैसे किसी पुरुषको देशांतरको जाना होवै, सो जब मार्गविषे चलता है, तब पहुँचता है चलनेके अभ्यासविना नहीं पहुँचता, तैसे जब आत्मा ध्येयको पुरुष निरंतर धरता है, तब विषयोंविषे अप्रतीति अभ्यासवान्की वृत्ति होती है, जैसे जलरूप अभ्यासकारिके बेलिको सिंचता है, तब लता वृद्ध होती है, ऐसे ऐसे पुरुषार्थकारि सर्व कार्योंको प्राप्त होता है, इतर नहीं होता, यह निश्चय किया है, जो क्रिया आपकारि आप करिये, तिसका फल अवश्य प्राप्त होता है, सो लोकोंविषे दैव कहाता है,

जो अवश्य होना है, तिसकी जो नीति है, सो दूर नहीं होती सोई दैव शब्द कहिये, नीति कहिये, जो अपने पुरुषार्थका फल पाता है, जैसे मरुस्थलविषे भ्रमकारि जल भासता है, सम्यक्ज्ञानते भ्रम निवृत्त हो जाता है, तिस दैव अरु नीतिको अपने पुरुषार्थकरि जीतौ, जैसा पुरुषार्थकरि संकल्प दृढ़ करता है,तैसा ही भासता है, जैसे आकाशको नीलता ग्रहण करती है, सो नीलता कछु है नहीं, तैसे सुखदुःख देनेहारा अपर कोऊ नहीं, जैसा संकल्प करता है, तैसा हो भासता है अरु जैसी नीति होती है, तैसा संकल्प करता है, सोई नीतिसाथ मिलिकारि कदाचित् कर्म करता है,तिसकरि इस जगत्कोशविषे जीव शरीर धारिकारि फिरता है, जैसे आकाशविषे पवन फिरता है सो कदाचित् नीतिसों अरु कदाचित् नीतिसे रहित फिरता है, तैसे दोनों सीढ़ियां मनविषे होती हैं, आकाशरूपी मनविषे नीति अनीतिरूपी वायु फुरता है; तिस कारण जबलग मन है,तबलग नीति है अरु दैव है,मनते रहित न नीति है, न दैव है,मनके अस्त भये जो रहता है, सो तैसे ही है, जीव पुरुषसों पुरुषार्थकारि जैसा संकल्प इस लोकविषे दृढ़ होता है सो कदाचित् अन्यथा नहीं होता.हे पुत्र!अपने पुरुषार्थविना यहां कछु सिद्ध नहीं होता, ताते परम पुरुषार्थकारि विषयते विरक्त होहु, जबलग विरक्तता नहीं उपजती, तबलग परम सुखके देनेहारी मोक्षपदवी संसार भयका नाशकारिणी नहीं प्राप्त होती, जबलग विषयोंविषे मोहकारण प्रीति है, तबलग संसारदशा डोलायमान करती है, दुःखदायक होती है, सर्पकी नाईं विषको पसारती है, सो अभ्यास किये विना निवृत्त नहीं होती. बलिरुवाच–हे सर्व असुरोंके ईश्वर ! भोगोंते विरक्तता चित्तविषे कैसे स्थित होती है? जीवोंको दीर्घ जीनेका कारण है. विरोचन उवाच–हे पुत्र ! जैसे शरत्कालमें महालतामें फूलसों फल परिपक्क होता है, तैसे आत्मावलोकनहारे पुरुषको भोगोंते विरक्तता प्रगट होती है, आत्माके देखनेकारि विषयोंकी प्रीति निवृत्त हो जाती है, हृदयविषे स्थित प्राप्त होती है जैसे कमलोंके उदरविषे सुंदर शोभा स्थित होती है, तैसे बीज लक्ष्मी स्थित होती है; ताते सूक्ष्मबुद्धि विचारवेत्ताने आत्मदेवको देखिकारि विषयोंकी प्रीति

करी है सो सब ओरते निवारहु,प्रथम दो भाग दिनके भोग कर्मदेहके कार्य करहु, एक भाग शास्त्रोंका श्रवण विचार करहु, एक भाग गुरुकी सेवा टहल करहु; जब कछु विचार संयुक्त मन होवै तब द्वै भाग वैराग्य-संयुक्त शास्त्रोंको विचारहु अरु द्वै भाग ध्यान अरु गुरुके पूजनविषे रहौ,इस क्रमकारि जीव ज्ञानकथाके योग्य होता है,क्रमकरि निर्मल भावको ग्रहण करता है, शनैःशनैः उत्तम पदकी भावना होती है, शास्त्रोंके अर्थविचारविषे चित्तरूपी बालकको परचावहु, जब परमात्माविषे ज्ञान प्राप्त होता है, तब कर्म फांसीतें छूटि जाता है, जैसे चंद्रमाके उदय हुएते चंद्रकांतमणि द्रवीभूत होता है, तैसे शीतल हो विराजता है, बुद्धिके विचारसों सर्वदा शम आत्मदृष्टि देखनी अरु तृष्णाका बंधमान त्यागना यह परस्पर कारण है परमात्माके देखनेकारि तृष्णा दूर हो जाती है अरु तृष्णाके त्यागकारि आत्माका दर्शन होता है; जैसे नौकाको मल्लाह ले जाता है अरु नौका मल्लाहको ले जाती है, तैसे परमात्माका दर्शन होता है, अरु भोगोंका त्याग होता है इसकारि परब्रह्मविषे अनंत विश्रांति नित्य उदय होती हैं सो मोक्षरूप आनंद उदय होता है तिसका अभाव कदाचित् नहीं होता; सो आनंद जीवोंको आत्मविश्रांति विना नहीं प्राप्त होता, न तपोंकारि, न दानोंकारि, न तीर्थोंकारि होता है, जब आत्मस्वभावका दर्शन होता है, तब भोगोंते विरक्तता उपजती है,सो आत्मस्वभावका दर्शन अपने प्रयत्न-विना और किसी युक्तिकारि नहीं प्राप्त होता है. हे पुत्र ! भोगोंका त्याग करना अरु परमार्थदर्शनका यत्न करै, तब ब्रह्मपदविषे विश्रांत परमानंदमोक्षको प्राप्त होता है, ब्रह्माते आदि काष्ठपर्यंत इस जगत्विषे ऐसा आनन्द कोई नहीं पाता,जैसा परमात्माविषे स्थित भयेते पाता है, तातें पुरुषप्रयत्नका आश्रय करौ, दैवको दूरते त्यागौ इस मार्गको रोकने-हारे भोग हैं तिनकी निन्दा बुद्धिमान् करते हैं, जब भोगोंकी निन्दा दृढ भई, तब विचार उपजा है, जैसे वर्षाकाल गयेते सर्व दिशा शरत्कालकी निर्मल हो जाती हैं, भोगोंकी निन्दाते विचार अरु विचारते भोगोंकी निन्दा, यह परस्पर होते हैं,जैसे समुद्रकी अग्निसे धूम उदय होता है, सो

बादलरूप होइकारि वर्षणेसों समुद्रको पूर्ण करता है अरु जैसे मित्र आप सों परस्पर कार्य सिद्धकारि देता है, ताते प्रथम तौ दैवका अनादर करै, पुरुषप्रयत्नकारि दंतोंसों दंत मरोड भोगोंकी प्रीति त्यागौ, पुरुषार्थकारि प्रथम अविरोध उपजावहु, सो गुणवान् अपने जन्म अरु कल्याणमूर्तिको अर्पण करहु, भोगोंते असंग होइकारि निंदा करहु, तब विचार उपजैगा; शास्त्रज्ञानको बहुरि संग्रह करौ, तब परमपदकी प्राप्ति हो जावैगी, हे दैत्यराज! समय पाइकारि जब तू विषयोंते विरक्तचित्त होवैगा, तब विचारके वशते परमपदको पावैगा; अपने आपविषे जो पावन पद है, तिसविषे भली प्रकार अत्यन्त विश्राम पावैगा; बहुरि कल्पना दुःखविषे न गिरैगा; अंग देशाचारके कर्मकारि अल्पधन उपजावना, बहुरि निंदाकारि साधुसंग लगावना; तिनके संगकारि वैराग्य अरु विचारसंयुक्त हुएते तुझको आत्मलाभ होवेगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बल्युपाख्याने चित्तचिकित्सोपदेशो नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥

पंचविंशतितमः सर्गः २५.

बलिचिन्तासिद्धांतोपदेशवर्णनम् ।

बलिरुवाच-इस प्रकार मुझको पूर्वपिताने कहा था, अब मैं स्मृति दृष्टिकारि प्रसन्नताको प्राप्त भया हौं अरु भोगोंते विरक्तता उपजी है, जो शांत अरु शम निर्मल अमृतरूपी शीतल सुखविषे स्थित होऊं, धन एकत्र करता है, तौ नाश हो जाता है, बहुरि आशा उपजती है, बहुरि धनकारि पूर्ण होता है, बहुरि स्त्रियोंकी वाञ्छा उपजती है, बहुरि अंगीकार करते हैं, अब मैं विभूतिकी स्थितिकारि खेदवान् भया हौं, अहो आश्चर्य है, इस रमणीय पृथ्वीते सम शीतलचित्त होता हौं, दुःखसुखकी दशाते रहित सर्व शांतिको प्राप्त होता हौं. जैसे चंद्रमाके मंडलविषे स्थित हुआ शमशीतल होता है, तैसे अंतरते हर्षवान् शीतल होता हौं, दुःखरूपी विभूति ऐश्वर्यते रहित हुआ अक्षोभ होवैगा, यह सब

मनरूपी बालककी दिन दिन प्रतिकला है, अंगोंसों अंग, मांससों मांस प्रथम मैं स्त्रीसों चढता था मोहकारि मेरी प्रीति बढि गयी थी, जो कछु दृष्टदेखने योग्य था सो मैंने देखा है सो यह शोक है, जो कछु भोगने योग्य था सो चिरकालपर्यंत अखंड भोगा है, सर्व भूतजातको वश कर रहा है तासों क्या भोगनीक हुआ बहुरि २ तिनविषे वही चेष्टाकरि और और देखैं, इसकरि चित्त अपूर्व पदार्थको नहीं देखता, वही वही जगत्के पदार्थ हैं ताते अपनी बुद्धिकारि सर्वसों निश्चय त्यागकारि पूर्ण समुद्रवत् अपने आपकारि आपविषे स्वच्छ स्वस्थ स्थित होहु, पाताल पृथ्वीविषे स्वर्गविषे स्त्रियां अरु रत्नपन्नगादिक सार हैं सो भी तुच्छ हैं, समय पाइकारि काल ग्रास लेता है एते कालपर्यंत बालक था, जो तुच्छ पदार्थ मनके रचे हुए हैं तिनकी इच्छासों दुःखकारि देवताओंसाथ दोष करता था, तिनके दुःखोंके त्यागनेकारि क्या महात्माका अनर्थ होवैगा बडा कष्ट है कि, मैंने चिरकाल अनर्थ विषे अर्थबुद्धि करी थी, अज्ञान-रूपी मदकारि मचता था जैसे बालक कूकरोंको सेवता है चञ्चल तृष्णाक कारिके इस जगत्विषे क्या नहीं या जो कार्य पाछे तापको बढावते हैं सो मैंने किये हैं, अब पूर्व तुच्छ चिंताकारि क्या मुझको है वर्तमान चिकित्सा पुरुषार्थकरि सफल होवैगा जैसे समुद्र मथनेकारि अमृत प्रगट भया है तैसे अपरिमितरूप आत्माकी भावनाकारि अब सर्व ओरते सुखी होवैगा, मैं कौन हौं इस आत्माका दर्शन युक्ति गुरुते पूछौंगा अज्ञानके नाश-निमित्त शुक्र भगवान्का चिंतन करौ जो प्रसन्न होइकारि उपदेश करैगा; तिसकारि अनंत विभव अपने आपविषे आपकारि स्थित होवैगा निष्काम पुरुषोंका उपदेश मेरे हृदयविषे फलैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बलिचिंतासिद्धांतोपदेशो नाम पंचविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशतितमः सर्गः २६.

बल्युपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! इस प्रकार चिंतनाकरि बलि नेत्रोंको मूँदत भया अरु शुक्रजीका ध्यान किया, कैसा शुक्र है, आकाशविषे मंदिर है जिसका, सर्वत्र पूर्ण जो चिन्मात्र तत्त्व है, सदा तिसके ध्यानविषे स्थित है, ऐसे भार्गवका आवाहनरूप ध्यान करत भया, तब शुक्रजी जानता भया, कि हमारे शिष्य बलिने हमारा चिंतन किया, तब चिदात्मस्वरूप भार्गव अपने देहको तहां ले आवत भये, जहां रत्नके झरोखेविषे बलि बैठा था, तब बलि उज्ज्वल प्रभारूप गुरुको देखिकारि उठा अरु चित्त प्रफुल्लित हो आया, जैसे सूर्यमुखी कमल सूर्यको देखिकारि प्रफुल्लित होते हैं, तैसे रत्न अर्घ्य पाद्य पुष्पोंकारि चरणवंदना करत भया, रत्नोंकारि अर्घ्य दिया, बडे सिंहासनपर बैठाइकारि कहत भया. बलिरुवाच—हे भगवन्! तुम्हारी कृपाते मेरे हृदयते जो प्रतिभा उठती है सो स्थिर होइकारि मुझको प्रश्नविषे जोडती है, जैसे सूर्यकी प्रतिभा जीवको कार्यविषे जोडती है, तैसे अब मैं भोगोंते विरक्त भया हौं, सो कैसे भोग हैं, जो मोहके देनेहारे हैं अरु तत्त्वज्ञानकी इच्छा करता हौं; जिसकारि महामोह निवृत्त हो जाता है, इस ब्रह्मांडविषे स्थिर वस्तु कौन है और केताक तिसका प्रमाण है, इंद्र क्या है अरु अहं क्या है मैं कौन हौं, तुम कौन हौ? अरु यह लोक क्या है? इन प्रश्नोंका उत्तर कृपा कर कहौ. शुक्र उवाच—हे दैत्यराज! बहुत करनेकारि क्या है, मैं आकाशविषे गमन किया चाहता हौं, ताते सर्वका सार संक्षेपते मैं तुझको कहता हौं, सो श्रवण कर, जो चेतनतत्त्व है अरु विस्तृतरूप है; इदं यह सर्व चेतनमात्र है अरु चेतन ही प्रमाण है, तू भी चेतनस्वरूप है, मैं भी चेतन हौं, यह लोक भी चेतनस्वरूप है, यह सबका सार है, इस निश्चयको अंतर दृढ कर धरैगा तब निर्मल निश्चयात्मक बुद्धिकारि अपनेको आपकारि देखैगा अरु तिसते विश्रांतिमान् होवैगा. हे रामजी! जब तू कल्याणमूर्ति है, तब इसी कहनेकारि सब

सिद्धांतको प्राप्त होवैगा, सबका सार चिदात्मा है, तिसको पावैगा अरु जो कल्याणमूर्ति नहीं, तौ बहुरि कहना भी निरर्थक होता है, भस्मविषे आहुतिकी नाईं होता है, चेतनको जो चेत्यकला संबंध है, सोई बंधन है, तिसते जो मुक्त है सोई मुक्त है अरु आत्मतत्त्व चेतनस्वरूप चेत्य-कलनाते रहित है, यह सर्व सिद्धांतका संग्रह है. हे राजन् ! इस निश्चयको धारि निर्मल बुद्धिसों अपने आपकरि आपको देखौ, यह आत्मपदकी प्राप्ति है; अब मैं आकाशको जाता हौं; सप्त ऋषिसाथ कोऊ देवताका कार्य है, तिसनिमित्त जाता हौं, जबलग यह देह है तबलग मुक्त बुद्धिको यथाप्राप्त कार्य त्यागने योग्य नहीं. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! ऐसे कहिकरि बडे वेगसाथ आकाशको शुक्र चला, जैसे समुद्रते तरंग उठिकरि लीन हो जावै तैसे शुक्रजी अंतर्धान हो गये.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बल्युपदेशवर्णनं नाम षड्विंशतितमः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशतितमः सर्गः २७.

बलिविश्रांतिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! देवताअरु दैत्यकरि पूजनेयोग्य भृगुपुत्र शुक्र है, तिसके गमन कियेते बलवानोंविषे श्रेष्ठ जो है बलि, सो मनविषे चिंतवता भया कि, भगवान् शुक्रजी क्या कह गये ? त्रिलोकी चिन्मात्र-रूप है, मैं भी चेतन हौं, दिशा भी चेतनरूप हैं, परमार्थते आदि जो चेतन सत्स्वरूप है तिसते भिन्न कछु नहीं, यह जो सूर्य है; तिसमें चेतन होवै नहीं तौ सूर्यका सूर्यत्वभाव भासै नहीं अरु यह जो भूमि है, तिसको चेतन चेतै नहीं तो भूमिविषे भूमित्वभाव कोऊ नहीं पाता, यह जो दश दिशा हैं, इनको चेतन चेतै नहीं तौ दिशाविषे दिशात्वभाव कोई नहीं रहता, पर्वतविषे पर्वतता भी चेतनविना नहीं, यह जगत्विषे जगत्भाव आकाशविषे आकाशता शरीर लक्षण कोऊ चेतनविना न पाइये इन्द्रियां भी चेतन हैं, मन भी चेतन है, अंतर बाह्य चेतन है,

चिदात्मा ही अहं त्वं भावरूप होइकरि स्थित है, मैं चेतन हौं, सब इंद्रियां संयुक्त विषयोंका स्पर्श मैं करता हौं अरु कदाचित् कछु किया नहीं अरु काष्ठलोष्टतुल्य शरीरसाथ मेरा क्या है, संपूर्ण जगत् मैं आत्मा चेतन हौं, आकाशविषे एक मैं आत्मा हौं, सूर्यविषे भी मैं हौं, और भूत-पिंजरविषे भी चैतन्य आत्मा हौं, देवता दैत्यविषे भी मैं चैतन्य आत्मा हौं, स्थावरजंगमका चेतन आत्मा मैं हौं, आत्मा एक अद्वैत चेतन है, और द्वैत कलना नहीं पाती, जो इस लोकविषे द्वैतका असंभव है, तौ शत्रु कौन है, अरु मित्र किसको कहिये? बलि है नाम जिसका, ऐसा जो शरीर है, तिसका शीश काटा तौ आत्माका क्या काटा? जो सर्वलोकोंविषे आत्मा पूर्ण है. जब चित्त दुःखको चेतता है, तब दुःखी होता है, चेतनते रहित दुःखको नहीं पाता, तिस कारणते जो दुःखदायक भाव अभाव पदार्थ भासते हैं, सो सर्व चेतन आत्मरूप है, चेतनतत्त्वते भिन्न कछु नहीं है सब ओरते आत्मा पूर्ण है, आत्माते इतर जगत्का कछु व्यवहार नहीं, न कोऊ दुःख है, न कोऊ रोग है, न मन है, न मनकी वृत्ति है, एक शुद्ध चेतनमात्र आत्मा तत्त्व है और विकल्पकलना कोई नहीं, सब ओरते चेतनस्वरूप व्यापक है, नित्य आनंद अद्वैतरूप विकल्पना कोई नहीं, सर्वते अतीत हौं, अंशीभावते रहित चेतनसत्ता हौं अरु चेतन आदिक नामते भी रहित हौं, चेतन आदिक नाम भी मेरे व्यवहारके निमित्त कल्पे हैं जो चेतन आत्माकी स्फुरणशक्ति है, सोई विस्तारकरि जगत्-रूप होइकरि भासती है, द्रष्टादर्शनते मुक्त केवल अद्वैतरूप है प्रकाश प्रकाशकभावते रहित निराभास हौं, द्रष्टा परमेश्वररूप हौं, न मैं कर्ता हौं, न भोक्ता हौं, मैं केवल द्रष्टा निरामयरूप हौं कलनाकलंकते रहित हौं इनते पर हौं अरु यह स्वरूप भी मैं हौं, यह मेरेविषे आभास मात्र है मैं उदित नित्यरूप हौं, आभासते भी रहित मैं एक प्रकाशरूप हौं, स्वरूपकरिकै मेरा जो चित्त है सो दृश्यके रागते रहित मुक्तरूप है; जो प्रत्यक्ष चेतन मेरा स्वरूप है, तिसको नमस्कार है; चित्त जो है दृश्य तिसते रहित है. युक्ति अयुक्ति सर्वका प्रकाश स्वरूप मैं हौं, मुझको नमस्कार है, चित्तते रहित मैं चेतन हौं, सब ओरते शान्तरूप हौं. फुरणेते

रहित भले प्रकार शान्त जो मैं संवितमात्र विस्तारख्प हौं. आकाशकी नाईं मैं अनंत सूक्ष्मते सूक्ष्म हौं, दुःखसुखते मुक्त हौं, संवेदनते रहित असंवेदनरूप हौं, चैत्यते रहित चेतन हौं, जगत्के भाव अभाव पदार्थ मुझको छेदि नहीं सकते, अथवा यह जगत्के पदार्थ छेदते हैं, सो भी मुझते भिन्न नहीं, छेद मैं हौं, छेदनहारा भी मैं हौं, जो स्वभावभूत वस्तुकरि वस्तु ग्रहण होती है, अथवा नहीं होती, तौ भी किस करि किसका नाश होवै ? मैं सर्वदा सर्वप्रकार सर्वशक्तिरूप हौं, संकल्पविकल्पकरि अब क्या है, मैं एक ही चेतन अजडरूप होइकरि प्रकाशता हौं, जेते कछु जगत्जाल हैं, सो सब मैं ही हौं, मुझते इतर कछु नहीं. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जब इस प्रकार चिंतवता हुआ राजा बलि तत्त्वका वेत्ता हुआ तब ॐकारकी अर्धमात्रा तुरीयापदको भावनासों ध्यानविषे स्थित भया, भले प्रकार संकल्प तिसके शांत हो गये हैं, सब कलना चित्त चेत्यते रहित निःसंग होइकरि स्थित भया, बहुरि कैसा भया जो ध्याता है अहंकार अरु जो ध्यान है मनकी वृत्ति अरु जो ध्येय है, जिसको ध्याता था सो तिनोंते रहित हुआ, मनते सर्व वासना नष्ट हो गईं, जैसे वायुते रहित अचलरूप दीपक प्रकाशता है, तैसे बलि शांतरूप पदको प्राप्त भया, मन शांत हो गया, रत्नोंके झरोखेविषे बैठ दीर्घकाल बीत गया, जैसे स्तंभविषे पुतली होवै, तैसे सर्व ईषणाते रहित समाधिस्थित रहा , सब क्षोभ दुःख विघ्नते रहित निर्मल चित्त शरत्कालके आकाशवत् हो रहा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बलिविश्रांतिवर्णनं नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशतितमः सर्गः २८.

बलिविज्ञानप्राप्तिवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जब इस प्रकार दैत्यराज समाधिविषे स्थित भया अरु केताक काल व्यतीत भया, तब बांधव मित्र टहलुए मंत्री थे सो रत्नोंके झरोखोंविषे देखने चले कि, राजा बलिको क्या भया, ऐसे विचारिकरि किंवाड़ोंको खोलि ऊपर जाय चढे, डिंभादि धीर मंत्री, अरु कुमुदादि मंडलेश्वर, सुर आदि राजा, वृत्त आदि सेनापति, हयग्रीवादिक सैनिक, चाक्राजादि बांधव, लड्डुकादि सुहृद् अरु वल्लकादि प्रीतिकारी ऊपर चले गये यक्ष, विद्याधर, अरु नाग एक ओर हो खड़े हैं, रंभा अरु तिलोत्तमादिक अप्सरागण हाथोंविषे चमर ले खडी हैं, नदियां समुद्र पर्वत आदिक मूर्ति धारिकरि स्थित भये हैं, रत्न आदिक भेट लेइकरि सर्व प्रणाम निमित्त खडे भये, त्रिलोकीके उदरवर्ती जो कछु थे, सो आय स्थित भये अरु राजा बलि ध्यानविषे स्थित था, मानो चित्रकी मूर्ति लिख छोडी है, पर्वतवत् स्थित है, तिसको देखिकरि दैत्य प्रणाम करत भये, कोई देखिकरि शोकको प्राप्त भये, कोई आश्चर्यवान् भये, कोई आनंदवान् भये, कोई भयको प्राप्त भये; तब देखिकरि मन्त्री विचारत भये कि, राजाको क्या दशा प्राप्त भयी है, तब राजाके निमित्त भार्गव शुक्रजीका चिंतवन करत भया जो गुरु है, सर्वका वेत्ता है, तब चिंतवन कियेते भार्गव जिसका बड़ा प्रकाश है, सो झरोखोंविषे आय प्राप्त भया. जैसे गंधर्वनगर देखनेविषे आते हैं, तैसे आये, तिसको देखिकरि सब दैत्यगण पूजन करत भये अरु बडे सिंहासनपर गुरुको आरूढ किया अरु बलिको ध्यानस्थित देखिकर शुक्रजी अतिप्रसन्न भये, जो पद मैंने उपदेश किया था, तिसविषे विश्राम पाया है, देखा बडा आनंद है, जो विचार करिकै बलिने परमपद पाया है, भ्रम इसका अब नष्ट भया है, क्षीरसमुद्रवत् इसका प्रकाश है, ऐसे देखिकरि शुक्रजी कहत भये.

शुक्र उवाच-बडा आश्चर्य है, जो दैत्यराज अपने विचारकरि निर्मल आत्मप्रकाशको पाया है; अब भगवान् सिद्ध भया है, अपने

स्वरूपविषे विश्रांतिको पाया है, जो सब दुःखोंते रहित पद है, तिसविषे स्थित भया, चिंता भ्रम इसका क्षीण भया है, मोहरूपी कुहिड नष्ट भयी अब इसको मत जगाउ. यह आत्मज्ञानको प्राप्त भया है यत्न क्लेश इसका दूर हो गया है, जैसे सूर्यके उदय हुएते अंधकार नष्ट हो जाता है, अब मैं इसको जगावता नहीं, सो आप ही चिरकालते जागैगा, काहेते जो प्रारब्ध अंकुर इसका रहता है, यह उठिकारि अपना राज्यकार्य करैगा, दिव्य सहस्र वर्षते यह जागैगा, अब तुम इसको मत जगावौ, अपने राज्यकार्यविषे जाय वर्तौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जब इस प्रकार शुक्रजीने कहा, तब सुनिकारि सूखे वृक्षकी मंजरी जैसे हो गया। तब शुक्रजी अंतर्धान हो गया अरु दैत्य अपने राजा वैरोचनकी सभाविषे जाइकारि अपने अपने व्यवहारविषे जाय वर्तें और जो खेचर भूचर पातालवासी थे सो अपने अपने स्थानको गये, देवता, दिशा, पर्वत, समुद्र, नाग, किन्नर, गंधर्व सब अपने व्यवहारविषे जाय वर्तें.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बलिविज्ञानप्राप्ति-
र्नाम अष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशतितमः सर्गः २९.

बल्युपाख्यानसमाप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जब दिव्य सहस्र वर्ष व्यतीत भये तब दैत्यराज समाधिते उतरा, नौबत नगारे बाजने लगे, देवता दैत्य बडे जयजय शब्द करने लगे, नगरवासी प्रवृद्ध भये देखिकारि बडी प्रसन्नताको प्राप्त भये, जैसे सूर्यके उदय हुएते कमल खिलि आते हैं, तैसे खिलि आये, जबलग दैत्य न आये, तबलग राजा चिंतवता भया, बडा आश्चर्य है, जो परमपदकी ऐसी रमणीय पदवी शांतरूप शीतल है, तिसविषे स्थित होइकारि मैं परमविश्राम पाया हौं, ताते बहुरि उसी पदका आश्रय करौं, तिसीविषे स्थित होऊं, राज्यविभूतिसे मेरा क्या प्रयोजन है ? ऐसा आनंद शीतल चंद्रमाके मंडलविषे भी नहीं पाता,

जैसा अनुभवविषे स्थित हुएते पाता है. हे रामजी! इस प्रकार चिंतनाकरि बहुरि समाधि करने लगा, जो गलित मन होवै, तब दैत्यसेना मंत्री भृत्य बांधव आय वेष्टित भये, जैसे चंद्रमाको मेघ घेरि लेता है, तैसे घेर करकै दैत्य प्रणाम करने लगे, बडे पर्वतोंकी नाईं अचल आकार जो है राजा बलि, सो मनविषे विचरता भया, सो कैसा राजा है कि, क्षीण भये हैं संकल्प जिसके सो विचारता भया कि, मुझको त्यागने योग्य क्या है अरु ग्रहण करने योग्य क्या है,त्याग तिसका करता है, जो अनिष्ट दुःखदायक होवै अरु ग्रहण तिसका करता है, जो आगे न होवै, सो आत्माते व्यतिरेक कछु नहीं, तिसविषे ग्रहण त्याग किसका करौं अरु मोक्षकी इच्छा भी मैं किस कारणते करौं, काहेते जो बंध होता है, तौ तिसते मोक्षकी इच्छा करता है, सो बन्ध नहीं तौ मोक्षकी इच्छा कैसे होवै? यह बन्ध अरु मोक्ष बालककी क्रीडा कही है, न बन्ध है, न मोक्ष है, यह कल्पना भी मूढ़ताविषे है सो मूढता मेरी नष्ट भयी है, अब मुझको ध्यान विलाससे क्या प्रयोजन है अरु ध्यानकरि क्या है, अब मुझको न परमतत्त्वकी इच्छा है, न कछु ध्यानसे प्रयोजन है,अर्थ यह कि न विदेह मुक्तिकी इच्छा है,न जगतविषे स्थित रहनेकी इच्छा है, न मैं मरता हौं, न जीता हौं, न सत्य हौं, न असत्य हौं, न सम हौं, न विषम हौं, न कोऊ मेरा है, न कोऊ अपर है, अद्वैतरूप मैं एक आत्मा हौं, सो मुझको नमस्कार है, इस राजक्रियाविषे मैं स्थित हौं, तौ भी आत्मपदविषे स्थित हौं, सदा शीतल हौं, ध्यान दिशाकरि मुझको सिद्धता नहीं, न राजकार्य विभूतिकरि कछु सिद्ध होता है, जय अजय सो न मैं यह कछु हौं, न मेरा कछु है, ताते राजकार्य करि मेरा कछु प्रयोजन नहीं मैं आकाशवत् होइ रहता हौं, जो मैं न कछु इच्छा करौंगा, न राज्य करौंगा, तौ भी मेरा कार्य कछु सिद्ध नहीं होता, ताते जो कछु प्रकृत आचार है, तिसीको मैं करौं, बन्धनका कारण अज्ञान है; सो मेरा अज्ञान नष्ट भया है, कोऊ क्रिया मुझको बन्धनरूप नहीं ताते जो कछु प्रकृत आचार है, तिसको करौं. हे रामजी! इसी प्रकार निर्णय करिकै बलि दैत्योंकी ओर देखता भया,

तब देवता अरु दैत्य सब शीशकरि प्रणाम करत भये, तब दृष्टि करिके तिनकी प्रणाम वंदना अंगीकार करत भये, जैसे पवन पुष्पोंकी सुगंधी लेता है, तब राजा बलिने ध्येयवासनाको मनते त्याग कीनी अरु राज्यके कार्य करता भया, ब्राह्मण, देवता, गुरुका पूजन करता भया, जिस जिस प्रकारसों जिस जिसका पूजन करता था सो यथायोग्य किया और जो कोऊ अर्थी थे मित्र बांधव टहलुये, तिनका अर्थ पूर्ण करता भया अरु ललना जो स्त्रियां थीं, तिनको नाना प्रकारके वस्त्र भूषण देता भया; जो शासना दंड देने योग्य दुष्ट थे, तिनको दंड करता भया; बहुरि यज्ञका आरंभ किया, तिस यज्ञविषे सुरगणोंको पूजता भया, शुक्रजीते आदि ले जो बडे मुख्य देवता यज्ञ कराने निमित्त बैठे थे; सो शुक्र कैसा था, जिसने भोगविलासको क्षणभंगुर जाना है, सो अरु सबको वांछित सिद्धताके निमित्त प्राप्त किया है, अपना शरीर ऐसा जो है हरि विष्णु, भोगोंते अचाह है चित्त जिसका, तिसने इन्द्रके अर्थ सिद्ध करने निमित्त, कैसे हैं इंद्र; जिसके वह क्रमकरि बडा भया है, तिस विष्णु भगवान्ने कर्ममात्र छलको धारा तिसकरि राजा बलिको वंचित कर लिया, तब बांधिकरि पातालविषे स्थित किया, जैसे वानरको बांधते हैं तैसे बांधा, अबलग पातालविषे स्थित है, बहुरि इंद्र होवैगा, अब जीवन्मुक्त स्वस्थ वपु सदा ध्यानस्थित ईषणाते रहित पुरुष पातालविषे है. हे रामजी ! जीवन्मुक्त पुरुष जो बलि है, सो संपदा आपदाविषे समचित्त विचरता है, संपदाविषे हर्ष नहीं, आपदाविषे शोक नहीं, दुःख सुखविषे सम चित्त है जिसका, जैसे मूर्तिका लिखा सूर्य उदय अस्तते रहित होता है, अनेक जीवोंका उपजना अरु लय होना बलि देखता भया अरु दश करोड वर्ष पर्यंत तीनों लोकोंका कार्य करता भया, बडे विषयभोग भोगे, अन्त भोगोंको विरस जानिकरि तिसका मन विरस हुआ, विचारकरि तृष्णा नष्ट हो गयी,मन उपशम हुआ, हेयोपादेयकी चेष्टा नाना प्रकार बलिने देखी, पदार्थोंके भाव अभावविषे मन शांतिको न प्राप्त भया, अब भोगोंकी अभिलाषा त्यागिकरि आत्मारामी भया, नित्य स्वरूपविषे

स्थित पाताल कोटरमें विराजता है. हे रामजी ! इस बलिको बहुरि इस जगत्का इन्द्र होना है, संपूर्ण जगतका कार्य करना है अनेक वर्ष आज्ञा चलावैगा, परंतु इन्द्रपदको पाइकरि तुष्टवान् न होवैगा, अपने ऐश्वर्यपदके गिरनेकरि खेदवान् भी न होवैगा सर्व पदार्थ विभूतिके उदय अस्तविषे अमर होवैगा, आकाशकी नाईं दोनोंविषे रागद्वेषते रहित अचल रहैगा, यह बलिके विज्ञान प्राप्तिका क्रम वृत्तांत कहा है, इसी दृष्टिको आश्रय करि तुम भी स्थित होहु, बलिकी नाईं अपने विवेककरि नित्य तृप्त आत्मनिश्चयको धारौ कि, सर्व मैं हौं, इस निश्चयकरि निर्द्वंद्वपदको प्राप्त होवैगा; अपने पुरुषार्थकरि बलिकी नाईं निश्चयको धारिकरि परमपदको प्राप्त होवैगा. हे रामजी ! दशकरोड वर्ष तीन लोकका राज्य बलि भोगता भया, अंतमें विरक्तताको प्राप्त भया, तैसे तू भी भोगोंते विरक्त होहु, यह भोग तुच्छ हैं, इनको त्यागिकरि परमपदविषे प्राप्त होहु, यह जो दृश्य प्रपञ्च नाना प्रकारके विकारसंयुक्त भासता है, सो न कोऊ तेरा है, न तू किसीका है, जैसे पर्वत अरु शिलाविषे बडा भेद है, तैसे जिस पुरुषका मन संसारकी ओर धावता है, सो मनकी वृत्तिविषे डूबता है, जब तू मनको हृदयकोटरविषे धरैगा, तब सब जगत्का प्रकाश होवैगा, तू आत्मस्वरूप है, तौ अपना क्या अरु पराया क्या, यह सब मिथ्या कल्पना है, तू सबका आदि पुरुषोत्तम है, तू ही साकाररूप पदार्थ है, तू ही सब ओर पूर्ण है, सब जगत्विषे चेतनरूप है, स्थावर जंगम जगत् सब तुझकरि परोया है, जैसे सूतकरि मणिके परोये हैं, नित्य शुद्ध उदित बोधस्वरूप है, भ्रांतिते रहित है; जन्म आदिक सर्व रोगके नाशनिमित्त आत्मविचारकरि बलात्कारसों भोगोंका त्यागकरि सर्वका भोक्ता होहु. तू केवल स्वरूप जगत्का नाथ है, चैतन्य सूर्य प्रकाशरूप सर्वदा स्थित है, सर्व जगत् तेरे प्रकाशकरि प्रकाशता है, सुखदुःखकी कल्पना तेरेविषे कोई नहीं, तू शुद्ध सर्वात्मा सर्वप्रकाशक है, इष्ट अनिष्टको त्यागिकरि केवल अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, इष्ट अनिष्टके त्यागते

निरंतर सत्यता उदय होती है, तिस सत्यताको हृदयविषे धारिकारि फिर जन्ममरण भी नहीं आता, जिस जिस पदार्थविषे मन लगै, तिसते निकासिकारि आत्मतत्त्वविषे जोडहु, जब इस प्रकार तू दृढ अभ्यास करैगा, तब मन जो उन्मत्त हस्ती है, सो बाँधा जावैगा, तब सर्व सिद्धांतके परमसारको तू प्राप्त होवैगा. हे रामजी! तू मूढोंकी नाईं मत होहु, मूढ जीव सब चेष्टा मिथ्या ही करता है, मिथ्या चेष्टाकारि जिनकी बुद्धि नष्ट भयी है अरु अविद्यारूपी धूर्तते बिके हैं, तिनके तुल्य न होहु, यह जगत् अणुमात्र भी कछु है नहीं, बडा विस्तार रूप जो दृष्टि आता है, सो निर्णयकारि देखा है, जो मूढताकारिकै भासा है, मूढ़ता परम दुःखरूप है, इसते अधिक दुःख कोऊ नहीं आत्मारूपी सूर्यके आगे आवरणकर्त्ता अज्ञानरूपी मेघ है, तिसको विवेकरूपी पवनकारि नाश करौ, तब आत्माका साक्षात्कार होवैगा, वैराग्य अरु अभ्यासकारि साक्षात्कार होवैगा, आत्मविचारके अभ्यास अरु विषयोंते वैराग्यविना आत्माका साक्षात्कार नहीं होता वेदरूप वेदांतशास्त्र है अरु वह द्रष्टा तर्कयुक्त है, तिनकारि भी अपने विचार विना साक्षात्कार नहीं होता, आत्मविचारकारि पुरुषार्थकारि आत्माकी प्रसन्नता होती है अरु बुद्धिकी निर्मलतासों बोधकारि प्राप्ति होती है, ताते संकल्प विकल्पते रहित होइकारि चेतनतत्त्वविषे स्थित होहु, विस्तृत व्यापकरूप जो आत्मतत्त्व है, तिसकी स्थिति मेरे वचनों-कारि ग्रहणकारि सर्व संकल्प तेरे लीन हो गये हैं, संवेदनरूपी भ्रम शांत भया है, संसार कौतुकरूपी कुहिड तेरा नष्ट हो गया है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकणे बल्युपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम एकोनत्रिंशतितमः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशतितमः सर्गः ३०.

हिरण्यकशिपुवधवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! अब तू विज्ञानप्राप्तिके कारण और क्रम सुन, जैसे दैत्य असुर प्रह्लादको आत्माकी सिद्धता भयी, तैसे तू भी होहु,

पातालकोटरविषे एक हिरण्यकशिपु दैत्य होताभया; सो कैसा था, जिसने देवताओंके इंद्रको भगाया है, विष्णुजीके समान जिसका पराक्रम अरु संपूर्ण भुवन भोग जिसने वशकरि छोडे थे, सर्वदेवता दैत्यको वश करिकै जगत्का कार्य करता भया, दैत्योंका ईश्वर अरु तीनों भुवनोंका ईश्वर भया, समय पाइकरि पुत्रोंको उत्पन्न किया, जैसे वसंत ऋतु अंकुरको उत्पन्न करती है. बड़ा ऐश्वर्यवान् होइकरि वृद्ध भया, सर्वदिशाविषे सूर्यकी नाईं प्रकाश किया, आकाशको ग्रहण करि चिरकालपर्यंत प्रकाश आच्छादि लिया, तिसके पुत्रविषे बड़ा पुत्र प्रह्लाद होता भया, सो प्रह्लाद सबसों अधिक प्रकाशवान् भया, तिस पुत्रकरि हिरण्यकशिपु शोभता भया, जैसे सर्व सुंदर लताकरि वसंत ऋतु शोभती है, तैसे अपने बल अरु पुत्रोंकी सुंदरता अरु ऐश्वर्य भंडार तिनोंकरि हिरण्यकशिपु शोभता भया; इन लोकोंको अपने वश किया, जैसे प्रलयकालविषे सूर्य सब लोकोंको तपाता है, तैसे तपाने लगा, दुष्ट क्रीड़ाकरि देवताओंको दैत्य दुःख देवैं, तब सब देवता मिलिकरि विष्णुकी शरण गये अरु विनती करी कि, यह हिरण्यकशिपु महादुष्ट है, तिसका नाश करौ अरु हमारी रक्षा करौ, वारंवार दुःख पावनेकरि महापुरुष भी क्रोधवान् हो जाता है. हे रामजी ! जब इस प्रकार देवताओंने प्रार्थना करी, तब विष्णुदेवने कहा, अब तुम जाओ, मैं तिसको पुत्रके हेतुकरि मारौंगा, ऐसे कहिकरि अंतर्धान हो गया अरु हिरण्यकशिपु अपने ऐश्वर्यकी शिक्षा प्रह्लादको देवै, परंतु वह ग्रहण न करै, बहुत प्रकार करि उसको ताडना भी देवै, तौ भी उसकी शिक्षाको प्रह्लाद अंगीकार न करै, वह ईश्वर विष्णुजीकी आराधनाविषे रहै, इस कारणतें ताडनाका दुःख प्रह्लादको कछु न होवै तब दैत्य अपने हाथमें खड्ग लेकरि कहने लगा. हे दुष्ट ! तेरा ईश्वर कहाँ है? जिसका तू आराधन करता है, अब मुझ विना ईश्वर अपर कौन है ? तब प्रह्लादने कहा, मेरा ईश्वर सर्वव्यापक है, तब हिरण्यकशिपुने कहा, इस स्तंभविषे कहां है, जो है तौ दिखाय दे, न दिखावैगा तौ तुझको मारौंगा; तब सर्वव्यापक जो विष्णु सो स्तंभसों भासने लगे, बडे शब्द होने लगे, तिस स्तंभको फोडिकरि भुजा अरु वज्रको तोडनेहारे बडे नखों संयुक्त

विष्णु प्रगट भये, महाभयानकरूप, बडे हस्तीके समान दंत, ऐसे स्थित जैसे बीजलीका प्रकाश होवै अरु अग्निकी नाईं कुंडल प्रकाश करै अरु दोऊ भुजा मानो ब्रह्मांड खप्परके तोडनेहारी हैं, मुखते श्वास जो निकसता है, सो पर्वतोंका चूर्ण करनेहारा है अरु कोपरूपी अग्नि प्रलयकालकी अग्निते भी अधिक है अरु बडे सूर्यवत् प्रकाश करै, ऐसे महाभयानक नरसिंहरूप विष्णुदेवने हिरण्यकशिपुको नखोंसे विदारण किया; अरु ऐसा कोपवान् रूप धरा, जिसकरि दैत्योंके स्थान जलने लगे अरु दृष्टिकरि मानो, पर्वत चूर्ण होते हैं अरु नरसिंहरूप वायुके चलनेकरि दैत्य उडते हैं अरु दैत्यके समूह कई मरे, कई भाग गये, दिशा विदिशाको दौडि गये, जैसे वायुके मारे मच्छर उड जाते हैं, पातालछिद्रमें कछु नाश हो गये, प्रलयकालवत् स्थान शून्य हो गये, मानो अकाल प्रलय आया है, दैत्योंका नाश हो गया, दैत्योंका नाश करि बहुरि विष्णुदेव अंतर्धान हो गये, कछुक दैत्य बांधव टहलुए रहे थे, सो प्रह्लादके निकट आये, मुख कुँभलाय गये, जैसे जलते रहित कमल होता है, भाई बांधव मिलिकर प्रह्लादको समुझावने लगे, प्रह्लादने मिलिकरि पिताकी परिदेवना करी, बहुरि उठकरि सब कर्म किये. संशयकरि दैन्य भी बैठे; अरु विचारकरि शोकवान् हो सब दैत्य सूखकर चित्रकी पुतली हो गये, जैसे दग्ध वृक्ष सूखि जाता है अरु रसते रहित हो जाता है, तैसे हिरण्यकशिपु विना दैत्य शोकवान् महादुःखी भये.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे हिरण्यकशिपुवधवर्णनं नाम त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशत्तमः सर्गः ३१.

प्रह्लादविज्ञानवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जब हिरण्यकशिपुके मारणेकरि दैत्य बहुत दुःखी भये, तब प्रह्लाद मौन होइकरि चिंतवता भया, पाताल कोटरविषे सब दैत्य मिलिकरि चिंतासंयुक्त बैठे तिनसे प्रह्लाद कहत भया

कि, अब अपनी रक्षाके निमित्त कौन उपाय करिये, हमारे दैत्यके नाश करनेहारा विष्णु तौ बडा बली है, जिसके नख तीक्ष्ण खड्गकी धाराकीनाईं हैं, जैसे सिंह मृगोंको मारता है, तैसे हमको मारता है, पातालकोटरविषे दैत्य शांतिमान् कदाचित् नहीं होते हैं, जब दैत्य वर्धमान होते हैं, तब विष्णु आय नाश करता है, जैसे कमलोंपर पर्वत आय पडै, तैसे चूर्ण करता है, बडे आकाश गौरव शब्द करनेहारे दैत्य उपजि उपजि नष्ट हो जाते हैं, जैसे जलविषे तरंग उपजि उपजि नष्ट हो जाते हैं, तैसे अंतर बाहिर हमको कष्ट देता है, हमारा शत्रु बड़ा दृढ है, बड़ा अपूर्वतम आय बढा है, हमारा हृदय तमकरि पूर्ण हो गया है, संपदा नष्ट हो गयी है, जो हमारे पिताकरि देवता चूर्ण भये थे, तिनका बल हमते अधिक हो गया है, हमारी स्त्रियोंको वश करि ले गये हैं, जैसे मृगको व्याध ले जाता है अरु धन लक्ष्मी हमारा सब ले गये हैं, हम दीन हो रहे हैं, जैसे जल विना कमल कुँभलाइ जाता है, तैसे हम बांधव विना भये हैं, हमारे घरोंविषे धूलि उड़ती है, जो बड़े स्थान मिलिकरि खचित किये थे, सो शून्य हो गये, जो हमारे स्थान बड़े कल्पवृक्ष थे, सो उखाडि-करि नंदनवनविषे जाय लगाये हैं, नरसिंहजीकी सहायताकरि ऐसा बल देवता पाये हैं, हमारे वृक्ष स्थान नरसिंहजीने जलाय दिये हैं, जो देवताओंकी स्त्रियोंके मुख दैत्य देखते थे, सो अब दैत्योंकी स्त्रियोंके मुख देवता देखते हैं, मंदार कल्पवृक्षोंके समूह दैत्योंके स्थानविषे थे अरु सुमेरु पर्वतविषे विराजे थे, सो स्थान अब शून्य हो गये, धूलि उड़ती है, सुमेरु दुर्लभ हो गये हैं, जो दैत्योंकी स्त्रियां अपने स्थानविषे बैठी थीं, सो अब देवांगनोंके शिरपर चमर करती हैं; अरु वे हास्यविलास करती हैं, यह बड़ा कष्ट है, हमको आपदाने दीन किये हैं. हे दैत्यो! हमको और उपाय कोई दृष्टि नहीं आता, जब उस ही विष्णुकी शरणको जावैं, तब सुखी होवैं, वह कैसा पुरुष है, जिसके दो भुजा रूपी वृक्षकी छायाविषे देवता विश्राम करते हैं, विष्णुके प्रताप-कारि तपायमान भी नहीं होता, जैसे हिमालय पर्वत कदाचित् तपाय-मान नहीं होता, तैसे जो पुरुष विष्णुकी शरण जाता है, सो तपायमान

नहीं होता, ताते हम भी उसीकी शरणको प्राप्त होवें, तुम देखते हौ कि, जो देवांगना असुरोंकी स्त्रियोंका पूजन करती थीं, सो अब अपनेको पुजावने लगी हैं, हम दैत्योंकी स्त्रियोंके मुख कुँभलाय गये हैं, जैसे बर्फकी वर्षाकरि कमल सूखि जाता है, तैसे हमारे मंडप टूटि गये हैं, नीलमणिनके स्तंभ थे, सो गिर पडे हैं, दैत्यसेना जो आपदाके समुद्रविषे डूबती थी, तिसके रक्षा करनेको बडा समर्थ था, डूबने न देता था, जैसे क्षीरसमुद्रविषे मंदराचलको कच्छपरूपने डूबने न दिया, तैसे हमारे पितादि जो बडे बडे बली रक्षा करनेहारे थे, तिनको विष्णुजीने मारि चूर्ण किये, जैसे प्रलयकालका पवन पर्वतोंको चूर्ण करता है, उनका मित्र सुहृद् होता है, ऐसे मधुसूदनकी गति अति विषम है, दैत्योंकी भुजारूपी दंड है, तिनके काटनेहारा कुठार है, तिनकी सहायताकरि इन्द्रादिक देवता दैत्यसेनाको जीतने मारने लगे हैं, जैसे बालकको वानर मारै इन पुंडरीकाक्ष विष्णुको जीतना कठिन है, जो यह शस्त्रों विना होवै, तौ भी हमारे शस्त्र इनको छेदि नहीं सकते, वज्र भी छेदि नहीं सकता, महापराक्रमी है, युद्धका इसने बड़ा अभ्यास किया है, यह पर्वतोंसे युद्ध करता रहता है, जो हमारा पिता बड़ा बली था, जिसने त्रिलोकीके राज्य अरु सब देवता वश किये थे, तिसको इसने मार डारा तौ हमको मारनेविषे क्या यत्न है? यह महाबली है, इसको जीतना नहीं होता, ताते एक उपाय मैं तुमको कहता हौं, तिसकरि विष्णु प्रगट वश आवैगा, सो यह उपाय है, जो विष्णु सर्वात्मा है, सर्वका प्रकाशक है अरु सबका कारण है, तिसकी हम शरण हैं और हमारी गति आश्रय कोऊ नहीं. हे दैत्यो! उसते अधिक इस त्रिलोकीविषे कोऊ नहीं, जगत्का उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयकर्ता वही देवता है, उसके ध्यानविषे लागो, एक निमेष भी तिसके ध्यानते उतरो नहीं मैं भी उसके ध्यानविषे लगता हौं, सो नारायण अजन्मा पुरुष है, मैं सदा तिसके परायण हौं सब प्रकार नारायण मैं हौं, 'ॐ नमो नारायणाय' यह मंत्र सब अर्थोंका सिद्धकर्ता है, इस मंत्रके ध्यान जाप करते हुए हमारे हृदयविषे आय स्फुरनरूप होवैगा, सो कैसा हरि है, सबका

आत्मा हरि है, पृथ्वी भी हरि है, यह सब जगत् हरि है, मैं भी हरि हौं, आकाश भी हरि है, सबका आत्मा भी हरि है, अविष्णु जो होइकरि विष्णुका पूजन करते हैं, सो पूजनेका फल नहीं पाते अरु जो विष्णु होइकरि विष्णुका पूजन करते हैं, सो परम उत्तम फलको पाते हैं, ताते मैं विष्णुरूप होइकरि स्थित होता हौं, मैं अनंत आत्मा आकाश हौं, गरुड़पर आरूढ हौं अरु स्वर्णके भूषण पहिरे हैं मेरे हस्तरूप वृक्षकरि जीवरूप सब पक्षी विश्राम पाते हैं, यह मेरी चतुर्भुजा हैं, भुजाविषे बहुरि पटेहरे हैं, जब मैंने क्षीरसमुद्र मथन किया था, तबके यह परस्पर घसाए हैं अरु यह मेरे पार्षद स्थित हैं सुंदर चमर हस्तविषे हैं, इसको क्षीरसमुद्रते उपजाये हैं अरु त्रिलोकीरूपी वृक्षकी यह सुंदर मंजरी है, महाधवल मनको हरणहारी है, यह मेरे पार्षदविषे माया है, जिसने अनंत जगज्जाल निरंतर उत्पत्ति प्रलय कीनी है अरु इंद्रजालकी विलासिनी है; यह मेरे पार्षदविषे जो शक्ति है,जिसने लीला करिकै त्रिलोकीखंड वश किया है,जैसे कल्पवृक्षलता फूलती है, तैसे मेरे पार्षदविषे फूलती है,शीत उष्ण यह दो मेरे नेत्र हैं,संपूर्ण जगत्को प्रकाशते हैं, चंद्रमा अरु सूर्य तिनके नाम हैं, यह मेरा नील कमलवत् देह है, महासुंदर श्याम मेघवत् है महाप्रकाशरूप है, यह मेरे हस्तविषे पांचजन्य शंख है, जिसकी फुरणरूप ध्वनि है, सो क्षीरसमुद्रते निकसा है; यह नाभिकमल है, जिसते ब्रह्मा उत्पन्न भया है अरु इसविषे निवास करता है जैसे भ्रमर कमलविषे निवास करता है,तैसे यह मेरे हस्तविषे कौमोदकी गदा है, सुमेरुके शिखरवत् रत्नोंकी बनी हुई है, दैत्य दानवोंके नाश करनेहारी है, ज्वालाके पुंजवत् जिसका तेज है, यह मेरे हाथोंविषे महाप्रकाशरूप सुदर्शनचक्र साधुओंको सुख देनेहारा है, यह मेरे हाथोंविषे अग्निके समूहवाला कुठार है, सो दैत्यरूपी वृक्षोंको काटनेहारा है अरु साधुओंको आनंददायक है, यह मेरे हाथविषे शार्ङ्ग धनुष है, महाप्रकाशवत् जिसकी ध्वनि है, यह मेरे पीतवर्ण वस्त्र हैं, यह वैजयंती माला है, यह कौस्तुभ मणि मेरे कंठविषे है, ऐसा मैं विष्णु देव हौं, अनंत जगत्की उत्पत्ति लय हो गयी है, सर्वोंके धारनेहारा मैं हौं, कई बीत गये हैं, कई

होवेंगे, यह पृथ्वी मेरे चरण हैं; आकाश मेरा शीश है;तीनों लोक मेरा वपु है, दशों दिशा मेरा वक्षस्थल है, मैं साक्षात् विष्णु हौं, नील मेघवत् मेरी कांति है, गरुडपर आरूढ शंख, चक्र,गदा, पद्मके धारनेहारा मैं हौं, दुष्ट है चित्त जिनका, सो हमको देखिकरि भाग जाते हैं, यह सुंदर शीतल चन्द्रमाकी नाईं मेरी कांति है, पीतवस्त्र श्याम वदन गदाधारी हौं, लक्ष्मी मेरे वक्षस्थलविषे है,अच्युतरूपी विष्णु मैं हौं, वह कौनहै जो मेरेसे विरोध करनेको समर्थ होवै ? मैं त्रिलोकीको जलावनेको समर्थ हौं,जो मेरे साथ युद्ध करनेको सम्मुख होवै,वह स्वयं अपने नाशका कारण है, जैसे अग्निविषे पतंग जलि मरते हैं, तैसे मेरा ऐसा तेज है, जिसकी दृष्टि संहारनेको कोऊ समर्थ नहीं है,मैं विष्णु ईश्वर हौं, ब्रह्मा, इंद्र,यमादिक नित्य मेरी स्तुति करते हैं अरु तृण, काष्ठ, स्थावर, जंगम जेता कछु जाल है, तिस सबके अंतर व्यापकरूप हौं त्रिलोकीविषे मैं प्रकाशरूप हौं, अजन्मा हौं, भयको नाशकर्ता हौं, ऐसा मेरा स्वरूप है, तिसको मेरा नमस्कार है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादविज्ञानवर्णनं नाम एकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ३२.

विविधव्यतिरेकवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इस प्रकार प्रह्लाद नारायणस्वरूप अपना करिके चिंतवता भया, बहुरि पूजनके निमित्त वैष्णवनको चिंतवता भया, मनविषे दूसरी मूर्ति विष्णुकी करी, प्राण पवनकारि संपन्न अरु गरुडपर आरूढ धर्म, अर्थ,काम, मोक्ष, चार शक्तिकरि संपन्न अरु शंख चक्र गदा पद्म हस्तविषे, श्याम अंग चतुर्भुजा चन्द्रमा अरु सूर्य जिसके नेत्र ऐसा लक्ष्मीधर महासुंदर आनंदके देनेहारे विशाल नेत्र हैं जिसके, शार्ङ्ग धनुष हस्तविषे बडा प्रकाशरूप है,ऐसी मूर्ति विष्णुकी पूजता भया. परिवारसंयुक्त भलेप्रकार पूजन किया,बडे रत्नोंसंयुक्त प्रह्लाद मनकरि पूजता

भया, माधव कमलाधरको रत्नोंका अर्घ्य दिया अरु चंदनका लेपन धूप दीप विचित्र नाना प्रकारके भूषणोंकरि अरु मंदार कल्पवृक्षोंके कमलोंकरि रत्नमणिके गुच्छे नाना प्रकारके पुष्पोंकरि अरु पिस्ता खजूरी बदाम आदिक मेवाकरि, भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य चार प्रकारके भोजन, नाना प्रकारके स्वाद अरु वस्त्र भूषणकरि पूजन किया, बहुरि अपना आप विष्णुको अर्पण किया, परमभक्तिको प्राप्त भया अरु जिस प्रकार मनकरि पूजन किया, तिसी प्रकार अंतःपुरविषे विष्णुकी मूर्ति देखिकरि पूजत भया. इस प्रकार प्रतिदिन विष्णुका पूजन करत भया, जिस प्रकार प्रह्लाद मनकी चिंतवनाकरि पूजा करे, तिस प्रकार और भी दैत्य मानसी पूजा करते भये, तिनको प्रह्लादने शिखाया, तिस पुरविषे सब दैत्य वैष्णव हो रहे कल्याणमूर्ति विष्णुभक्त हो गये, जैसा राजा होता है, तैसी तिसकी प्रजा होती है, इसविषे कछु आश्चर्य नहीं, तब यह वार्ता देवलोकविषे प्रगट भई कि, दैत्योंने विष्णुका दोष त्याग किया है अरु भक्त हुए हैं, तब देवता आश्चर्यको प्राप्त भये, इंद्रादिक अमरगण चिंतवत भये कि, यह क्या हुआ ? दैत्योंने विष्णुभक्ति ग्रहण करी है, इनको प्राप्ति कैसे भयी है, ऐसे आश्चर्यवान् होइकरि विष्णुके निकट दैत्योंकी वार्ता कहने निमित्त क्षीरसमुद्रको गये. यह तौ अपूर्व वार्ता हुई है, दैत्य कहां अरु विष्णुकी भक्ति कहां ? विष्णुके निकट जाय कहते भये. देवा ऊचुः– हे भगवन् ! यह तुमने क्या माया पसारी है, जो दैत्य सर्वदा विरोध करते थे, सो तुम्हारे साथ तन्मय हो रहे हैं, कहां वह दुर्वृत्ति पर्वतको चूर्ण करनेहारे दैत्य अरु कहां तुम्हारी भक्ति, जो अनेक जन्मोंकरि भी दुर्लभ है; हे जनार्दन ! तेरी भक्ति कहां अरु उनकी वृत्ति कहां, यह तो अपूर्व वार्ता भयी है, जैसे समय विना पुष्पोंकी माला नहीं शोभती, तैसे पात्र विना तुम्हारी भक्ति नहीं शोभती यह हमको सुखदायक नहीं भासती, जैसा जैसा कोऊ होता है, तैसे तैसे स्थानविषे शोभता है, जैसे काचविषे महामणि नहीं शोभती, तैसे दैत्योंविषे तुम्हारी भक्ति नहीं शोभती. जैसा गुण किसीविषे होता है, सो तैसा पंक्तिविषे शोभता है, अपरविषे स्थित हुआ नहीं शोभता है, जो स्वदेश नहीं होता

तौ दुःखदायक होता है, जैसे अंगोंविषे वस्त्र दुःखदायक होता है, तैसे पदार्थक्रमकरि प्राप्त होता है, सो जैसा गुणवान् होवै तैसा प्राप्त होता है वह शोभा पाता है, विपर्यय होवै तब शोभा नहीं पाता, जैसे कमलिनी जलविषे शोभती है, मरुस्थलविषे नहीं शोभती, तैसे कहां वह अधम नीचजन भयानक कर्म करनेहारे अरु कहां तेरी आश्चर्यभक्ति, जैसे कमलिनी पृथ्वीपर नहीं शोभती, तैसी तेरी भक्ति दैत्योंविषे नहीं शोभती तैसे भक्ति हमको उनविषे सुखदायक नहीं भासती.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशम प्रकरणे विविधव्यतिरेको नाम द्वात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः ३३.

प्रह्लादाष्टकानंतरं नारायणागमनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जब इस प्रकार शब्दकरि देवता कहने लगे, तब माधव आयकरि बोले, जैसे मेघ मोरको कहै, तैसे गंभीरवाणीकरि बोलत भये. श्रीभगवानुवाच–हे देवगण ! तुम शोक मत करो, प्रह्लाद मेरा भक्त है, शत्रुको नाश कर्ता यह प्रह्लादका अंतका जन्म है, अब मोक्षको प्राप्त होइकरि बहुरि जन्म न पावैगा, जैसे भूना बीज बहुरि अंकुर नहीं लेता, तैसे इसको बहुरि जन्म नहीं होवैगा. हे देवगण ! जो गुणवान् होवै अरु गुणोंको त्यागिकरि दोष ग्रहण करै, तब यह कर्म अनर्थरूप होता है अरु जो प्रथम गुणोंते रहित निर्गुण होवै बहुरि तिनको त्यागिकरि गुण ग्रहण करै, शास्त्रमार्गविषे विचरै तौ यह सुखदायक होता है, प्रह्लादकी विचित्र चेष्टा तुमको सुखदायक होवैगी, अब तुम अपने स्थानोंको जाओ प्रह्लाद मेरा भक्त है. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इस प्रकार कहिकरि भगवान् क्षीरसमुद्रविषे अन्तर्धान हो गये, देवता नमस्कार करिके अपने स्थानको गये अरु प्रह्लादके साथ दोषभावनाका त्याग करत भये अरु बड़ेके चित्तसों दोष त्यागनेते औरोंके मन भी विश्रामको पाते हैं. प्रह्लाद दिन दिनविषे अपने घर प्रति जनार्दनकी मनसा वाचा

कर्मणा भक्ति करत भया, समय आइकारि दैत्यविषे भक्ति बडी हो गयी, परम विवेकको प्राप्त भये अरु विषयभोगते वैराग्यवान् भये, देखिकरि आनंदी न होवै, जैसे सूखे वृक्षविषे टास होता है, तिसविषे पक्षी प्रीति नहीं करते, तैसे वे विषयोंसाथ प्रीति नहीं करैं, सुंदर स्त्रियोंसे न रमै, जैसे मृगतृष्णाकी नदीको जाननेहारे मृग रमणीय देखिकरि प्रसन्न नहीं होते, तैसे शास्त्रार्थ कथन विना और दृश्यविषे तिनको प्रीति न उपजै यह भोग रोगरूप है, तिनविषे उनका चित्त विश्रामवान् न होवै राग न करै, परंतु मुक्तकर्त्ता जो आत्मबोध है, सो प्राप्त नहीं भया, मुक्तिफलके तुल्य आय स्थित भये हैं, भोगोंकी अभिलाषाको त्यागिकरि निर्मल होरहे हैं, परम समाधिको नहीं प्राप्त भये, चित्त मध्य अवस्थाविषे डोलायमान रहै भोगोंते वैराग्य अरु ईश्वरकी भक्तिविषे स्थित भये, तब श्याममूर्ति जो विष्णुदेव हैं, सो प्रह्लादकी वृत्तिको विचारिकरि पातालविषे प्रह्लादके गृहपूजास्थानविषे महाप्रकाश सुन्दररूप प्रगटे, तिसको देखिकरि प्रह्लाद विशेष पूजाको करता भया, प्रह्लाद प्रेमकरि गद्गद हो गया, चरणवंदना करि पूजन बहुत किया बहुरि ऐसे कहते भये. प्रह्लाद उवाच– हे ईश्वर ! त्रिलोकीविषे सुन्दर मूर्ति सबके धारनेहारे अरु सब कलंक हरनेहारे, प्रकाशस्वरूप अशरणोंके शरण अजन्मा अच्युत, मैं तेरे शरण हौं. हे नीलोत्पल कमलोंके पर्वत, शरत्कालके निरुपम श्यामरूप; असंग चित्त करिकै धरनेहारे, मैं तेरी शरण हौं. हे निर्मलरूप ! केलेवत् कोमल अंग, श्वेत कमलकी नाईं श्वेत शंख हस्तविषे है, अरु नाभिकमलविषे भँवरारूप ब्रह्मा स्थित है, वेदका उच्चाररूपी गुरगुर शब्द कर्ता है अरु हृदयकमलविषे विराजनेहारे जलके ईश्वररूप, मैं तेरी शरण हौं. श्वेत नख तारागणवत् प्रकाशरूप हैं, हँसता मुख चंद्रमाके मंडलवत् है, हृदयरूपी मणि सबका प्रकाशक है; शरत्कालके आकाशवत् निर्मल विस्तृतरूप, मैं तेरी शरण हौं. हे त्रिभुवनरूपी ! कमलनियोंके प्रकाशनेहारा चंद्रमा मोहरूपी अंधकारके नाशकर्ता सूर्य है, अजड चिदात्मा संपूर्ण जगत्के कष्ट हरनेहारे, मैं तेरी शरण हौं. हे नूतन विकसितरूप कमलपुष्पोंकरि भूषित अंग अरु स्वर्णवत् पीतांबरधारी, महासुन्दर

स्वरूप, मैं तेरी शरण हौं. हे ईश्वर ! लीलाकारिकै सृष्टिके उत्पत्ति स्थिति नाश करनेहारे परमशक्ति शंकर योगिवत् दृढ देह, मैं तेरी शरण हौं अरु दामिनीवत् प्रकाशरूप, सबको संहार कर जलविषे बालकरूपधारी, वटके नीचे शयन करनेहारे, मैं तेरी शरण हौं, देवतारूप कमलोंके प्रकाश करनेहारे, सूर्यमंडल दैत्यपुत्ररूपी कमलिनियोंके तुषाररूपी बर्फ जलावनेहारे अरु हृदयरूप कमलोंके आश्रयभूत, मैं तेरी शरण हौं. वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! इस प्रकार अनेक गुणोंकारि अष्ट श्लोक प्रह्लादने कहे, तब नीलोत्पल कमलवत् देह जिसका है, ऐसा परमात्मा पुरुष प्रसन्न होइकारि प्रह्लादको कहता भया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादाष्टकानंतरं नारायणागमनवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः ३४.

प्रह्लादोपदेशवर्णनम् ।

श्रीभगवानुवाच—हे गुणनिधि दैत्यकुलके शिरोमणि ! जो तुझको वांछित फल है सो माँग, बहुरि जन्मदुःखके शांतिनिमित्त जिसकारि तुझको जन्मदुःख न होवै सो माँग. प्रह्लाद उवाच—हे सर्वसंकल्पके फलदायक सर्व लोकोंविषे व्यापकरूप ! जो वस्तु दुर्लभतर है सो शीघ्र ही मुझको कहौ अरु देहु. श्रीभगवानुवाच—हे पुत्र ! सब भ्रमका नाश करनेहारा अरु परम फलरूप ब्रह्मते विश्रांति होती है सो आत्मविवेककी समताकारि प्राप्त होती सो आत्मविवेक तुझको होवैगा. वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! इस प्रकार दैत्येंद्रको कहिकारि विष्णु अन्तर्धान हो गये, तरंग समुद्रते गुरगुर शब्द करिकै उठै अरु गुप्त हो जावै; तैसे विष्णुजीको देखकारि प्रह्लादने पुष्पांजलि दीनी, पूजा करिकै श्रेष्ठ आसन बिछाया, तिसपर आप पद्मासन धरि बैठे, उत्तम शास्त्रोंका पाठ विधिसंयुक्त करने लगे, पाठकारि चिंतना करी कि, विष्णुने मुझसे क्या कहा है, यह कहा था, कि तुझको विवेक होवैगा, सो संसारके समुद्र तरने निमित्त शीघ्रही

विचार करौं इस संसार आडंबरविषे मैं कौन हौं जो बोलता हौं स्थित हौं यह जंतु तौ मैं नहीं यह असत्य उपजा है जडरूप पवनकरि स्फुरणरूप होता है सो मैं कैसे होउं ? यह देह भी नहीं, क्षण क्षणविषे कालकरि लीन होता है, यह जडरूप है सो मैंने यह श्रवणरूपी जड है सो मैं नहीं अरु शब्द सुनते हैं सो शब्द शून्यते उपजा है, सो भी मैं नहीं अरु त्वचा इंद्रिय भी मैं नहीं इसका क्षण क्षणविषे विनाशस्वभाव है प्राप्त हुआ न हुआ, यह इष्ट है, यह अनिष्ट है, यह आप जड है इसके जाननेहारा चेतनतत्त्व है चेतनके प्रमादकरि यह विषय उपलब्ध होते हैं, ताते न मैं त्वचा इंद्रिय हौं, न स्पर्श विषय है, यह जड़ात्मक है अरु यह जो चंचलरूपी जिह्वा इंद्रिय तुच्छ है अल्प जल अणु जिसके अग्रविषे स्थित हैं सो रसको ग्रहणकर्ता है वह रस भी आत्मसत्ता करिकै लब्धिरूप होता है आप जड है, ताते यह जडरूप जिह्वा अरु रस मैं नहीं अरु यह जो दृश्यके दर्शनविषे लीन है विनाशरूप नेत्र सो मैं नहीं अरु न मैं इनका विषयरूप हौं यह जड है अरु यह जो नासिका पृथ्वीका अंश है सो केवल आत्माके आधार है अरु आप जड है इसके जाननेहारा चेतन है सो न मैं नासिका हौं, न गंध हौं, मैं अहं ममते रहित हौं मनके मननते रहित शांतरूप हौं अरु यह पंच इंद्रियां मेरेविषे नहीं; मैं शुद्ध चेतनरूप हौं कलना कलंकते रहित हौं मैं चित्तते रहित चिन्मात्र हौं, सर्वका प्रकाशक सबके अंतर बाहिर व्यापकरूप हौं, निःसंकल्प निर्मल शांतरूप हौं, आश्चर्य है, अब मुझको अपना स्वरूप स्मरण आता है, प्रकाशरूप चेतन अनुभव अद्वैत अपने अनुभव चेतन करिकै स्थित हौं,सूर्य घटपटादिक सब पदार्थोंमें प्रकाशता है, जैसे उत्तम तेज दीपककरि भासे, तैसे चेतन अनुभवकरि इंद्रियोंकी वृत्ति स्फुरणरूप होती है, जैसे तेजकरि चिनगारे स्फुरणरूप होते हैं, तैसे सर्वज्ञ अनुभव सत्ता करिकै मनकी मनरूप शक्ति फुरती है, जैसे सूर्यके तेजकरि मरुस्थलविषे मृगतृष्णाकी नदी फुरती है, तैसे अनुभवसत्ता करिकै पदार्थ भासते हैं, जैसे दीपकमें शुक्लादि रंग भासते हैं, तैसे यह

पदार्थोंविषे अहम् आदिक पदार्थ भासते हैं, जाग्रतवत् सब पदार्थोंका प्रकाशक है सबको अनुभव करिकै भासता है, सबके अंतर आत्मभाव करिकै स्थित है, जैसे बीजविषे अंकुर स्थित होता है, तैसे चेतनरूप दीपकके प्रकाशकरि विकल्परूपी पदार्थोंकी शक्ति भासती है, उष्णरूप सूर्य है अरु शीतलरूप चंद्रमा है, घनरूप पर्वत है; द्रवतारूप जल है, इस प्रकार अनुभवसत्ताते पदार्थ प्रगट होते हैं, जैसे सूर्यके प्रकाशकरि घटपटादिक होते हैं, ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र इन सर्वके कारणरूप जगत्विषे स्थित हैं अरु इनका कारण अनुभवतत्त्व है आदिअंतते रहित हैं अरु सब कारणोंके कारण हैं, जैसे बर्फते शीतलता उपजती है, तैसे अनुभवते जगत् उदय होता है, चित्त चैत्य दृश्य दर्शन कलनाते रहित सत्ता प्रकाशरूप आत्मा मेरा मुझको नमस्कार है, इसविषे सर्व भूतोंकी उत्पत्ति स्थिति होइकरि बहुरि लय होती है, सो निर्विकल्प चेतन सर्वका आश्रयरूप आत्मा है, जो इस चित्तकरि अंतर कल्पितरूप हो जाता है सोई होता है, आत्माते रहित सत्य भी असत्य हो जाता है, जो चेतन संवित्विषे कल्पित रूप होता है सो पदार्थ अपने स्वरूपको पाता है कि, यह ऐसे हैं अरु जो चित्तसंवित्विषे कल्पितरूप नहीं होता, सो सत्य भी असत्यरूप हो जाता है, यह घटपटादि पदार्थका समूह भासता है, सो विस्तृतरूप चिदाकाश दर्पणविषे प्रतिबिंबित होता है, सो अनुभवसत्ता सर्व भूतोंका आदर्शरूप है, जिनका चित्त नष्ट हो जाता है, तिन संत पुरुषोंको ऐसे दृढ भाव प्राप्त हैं, परम आकाशरूप आत्माविषे अभ्यास करि तन्मय हो जाता है, सो अनुभवसत्ता पदार्थोंके वृद्ध होनेकरि वृद्ध नहीं होती अरु नष्ट होनेकरि नष्ट नहीं होती, पदार्थोंके भाव अभावविषे सत्ता सामान्य ज्योंकी त्यों है, जैसे सूर्यके प्रतिबिंबविषे घट सत्य होवै, अथवा असत्य होवै, सूर्य ज्योंका त्यों है, संसाररूप नाना प्रकारकी विचित्ररचना है, सो ऐसे आत्माविषे स्थित है, जैसे विचित्र गुच्छेसे युक्त वृक्षोंकी पंक्तिकी विचित्र रचना पर्वत उपर स्थित होती है, तैसे संसाररूप दृश्य नाना प्रकारकी मंजरीको धरनेहारा आत्मसत्ता वृक्ष है, जेते कछु भूतगण

त्रिलोकीके उदरविषे वर्तते हैं, सो आत्मासाथ अभिन्नरूप हैं, ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत सर्वका प्रकाशक आत्मा है, सो अनुभवसत्ता आदि अंतते रहित है, सबरूप जिसका आकार है, स्थावर जंगम सर्व जगद्भूतजात अंतर अनुभवरूप स्थित है, सो एक अनुभव आत्मा मैं हौं, द्रष्टा दर्शन दृश्य सर्वरूप आत्मा मैं हौं, सहस्र नेत्र सहस्र हस्त मेरे हैं, मैं चिदाकाशरूप हौं, सूर्य देहकरि आकाशविषे विचरता हौं, पवनदेहकरि मैं बहता हौं, वायुवाहनपर आरूढ हौं अरु मैं विष्णुरूप शंख, चक्र, गदा, पद्मके धारनेहारा हौं, सर्व सौभाग्य देखनेहारा हौं सर्व दैत्योंको भगावता नाशकर्त्ता मैं ही हौ, मैं नाभिकमलते उत्पन्न हुआ पद्मासनकरि निर्विकल्प समाधि स्थितरूप ब्रह्मा हौं अरु मन वृत्तिरूपको प्राप्त भया, मैं ही त्रिनेत्र आकार लिया है, गौरी मेरी अर्धांगना है, सृष्टिके अंगविषे सर्वको संहार करता हौं, जैसे कोऊ अपने अंगोंको संकोचि लेवै, तैसे मैं संहार करता हौं, त्रिलोकीरूपी मढी है, इंद्ररूप होइकरि मैं तिसकी पालना करता हौं, कर्मोके अनुसार जैसा कोऊ तप करै, तैसा फल देता हौं तृण वल्लीविषे गुच्छे रस होइकरि स्थित हौं; मैं ही उत्पत्ति कर्त्ता हौं, मैं ही चेतनरूप हौं जगत् आडंबर लीलाके निमित्त विस्ताररूप मैंने ही किया है; जैसे मृत्तिकाके खिलौने बालक रचि लेता है तैसे, अरु मेरेविषे सर्व कर्म अर्पण कर सर्व शांतिको प्राप्त होता है, मुझते रहित कछु वस्तु नहीं, सत्तास्वरूप मैं आदर्श हौं सब पदार्थ मेरेविषे प्रतिबिंबित होते हैं, तब यह असत्यरूप भी सत्यताको प्राप्त होता है, ताते मुझते भिन्न कछु नहीं, पुष्पोंविषे सुगंधि मैं हौं, पत्रोंविषे सुन्दरता छबि मैं हौं, पुरुषविषे अनुभव मैं हौं, स्थावर जंगमरूप जो जगत् दृष्टि आता है, सो सब मैं हौं, सब संकल्पते रहित परम चैतन्य हौं, अहं, त्वम् आदिकते पर हौं, जलविषे रसशक्ति मैं हौं, अग्निविषे उष्णता, बर्फविषे शीतलता मैं हौं, जैसे काष्ठविषे अग्नि, तैसे सर्वविषे स्थित हौं, सब पदार्थोंविषे मैं परमात्मा व्यापक हौं, सबको अपनी इच्छाकरि उपजाता हौं, जैसे दूधविषे घृतशक्ति जलविषे रसशक्ति, सूर्यविषे प्रकाशशक्ति है, तैसे चेतनस्वरूप मैं सब पदार्थोंविषे स्थित हौं,

त्रिकालका जगत् सब मेरेविषे स्थित है, सो मैं चित्तके उपचार फुरनेते रहित शुद्धस्वरूप हौं, सर्वको भरण पोषणहारा हौं, मैं ही वैराट राजा होइकरि स्थित भया हौं त्रिलोकीका राज्य मुझको अपूर्व प्राप्त भया है, कैसा राज्य है, शस्त्रों विना देवके दल विना निरिच्छित विस्तृत राज्यप्राप्ति है, बडा आश्चर्य है, मैं बड़ा विस्तृतरूप हौं, मैं अपने आपविषे समाता नहीं, जैसे कल्पांतरके वायुकरि उछला समुद्र आपविषे नहीं समाता, तैसे मैं अनंतरूप आत्मा अपनी इच्छाकरि आप प्रकाशता हौं, जैसे क्षीर समुद्र अपनी उज्ज्वलताकरि शोभता है; तैसे मैं अपने आपकरि शोभता हौं, यह जगत्रूपी मटकी महा अल्परूप है, जैसे बिलविषे हस्ती नहीं-समाता, तैसे मैं अपने आपविषे विस्तृतरूपकरि जगत्विषे नहीं समाता, कोटि ब्रह्मांडविषे व्यापक हौं, ब्रह्मलोकते परे जो तत्त्वोंका अन्त आता है, तिसते भी परे मैं अनंतरूप हौं, यह मैं हौं, यह मैं नहीं, यह मेरेविषे निर्बलता थी, सो तुच्छरूप है, मैं तो आदि अन्तते रहित चेतन आकाश हौं, मेरेविषे परिच्छिन्नता मिथ्या भासती थी, मैं तू यह वह आदिक मिथ्या भ्रम है, देह क्या अरु पर क्या, अपर क्या मैं तौ सर्व व्यापक चेतन हौं, तत्त्व हौं, मेरे पितामह बडे नीच बुद्धिहीन थे, जो ऐसे ऐश्वर्यको त्यागिकरि तुच्छ ऐश्वर्यविषे खचित भये, कहां यह महादृष्टि सर्वका कर्त्ता ब्रह्मवपु अरु कहां वह संसारभ्रमका राज्य दुःखदायक अनित्यरूपी सुखभोग ? अनंत सुख परम उपशम स्वभाव शुद्ध चेतनदृष्टि अब मेरेविषे भयी है, सब भाव पदार्थोंविषे चैत्यते रहित मैं चेतन आत्मा स्थित हौं अब मुझको नमस्कार है मेरी जय हुई है, जीर्णरूप संसार भ्रमते निकसा हौं, ताते जीत पाई है, पाने योग्य आत्मपद पाया है, जीवित सार्थक भया है, ऐसा उत्तम शम राज्य जो चक्रवर्ती है, तिसविषे नहीं रमता, निरंतर बोधको त्यागिकरि दुःखरूपी काजोंविषे रमते हैं, काष्ठ जल मृत्तिकाकरि संयुक्त जो पृथ्वी है, तिसको पाइकरि जो भुलायमान भये हैं, तिनको धिक्कार है, वह कीट है, यह द्रव्य ऐश्वर्य अविद्यारूप है अरु अविद्याकरि उपजा है अरु अविद्यारूप इसका बढना है, इसविषे गुण क्या है ? जिस निमित्त यत्न करते हैं, इस जगत्-

रूपी मढीविषे केतेक वर्षविषे हिरण्यकशिपु राज्यसुख भोगते भये, परन्तु उपशम जो शांतिसुख है, तिसको प्राप्त कछु न भये इसने एक जगत्का राज्य किया है, परन्तु जो सौ जगतोंका राज्यसुख होवै, तौ भी अनास्वाद है, वह जो समतारूप आत्मानंद है, सो नहीं प्राप्त होता, जब तिस आत्मानंदके स्वादका यत्न होवै, तब प्राप्त होवै अन्यथा नहीं होता, जिस पुरुषको बडे ऐश्वर्य इंद्रियोंके सुख प्राप्त भये हैं अरु समता सुखते रहित है, जब जानिये कि तिसको कछु ऐश्वर्यसुख नहीं प्राप्त भया अरु जिसको कछु ऐश्वर्यसुख नहीं प्राप्त भया अरु समतासुख संयुक्त है, तब उसको सब कछु प्राप्त भया जानिये, यह परम अमृतकरि संपन्न है, अखंडित सुख जो आत्मा है, तिस परम सुखको प्राप्त भया है, सो आनंदरूप है अरु जो अखण्ड पदको त्यागिकरि परिच्छिन्नताको प्राप्त है, सो मूढ है अरु जो पंडित ज्ञानवान् है, सो परिच्छिन्नताविषे नहीं प्रीति करता, जैसे ऊंट दूसरे पदार्थोंको त्यागिकरि कंटकोंके पास धावता है, और पशु नहीं जाता मूढ विना ऐसा कौन अज्ञानी है, जो आत्मसुखको त्यागिकरि जले हुये राज्य सुखविषे रमता है, अमृतको त्यागिकरि कंटक नीमका पान करै, मेरे पितामह जो बडे थे, सो सब मूढ भये, इस परम अमृतरूप दृष्टिको त्यागिकरि राज्यकंटकविषे प्रीतिमान् भये हैं, कहां फूल फलादिककरि संयुक्त नंदनवनकी भूमिका अरु कहां जले हुए मरुस्थलकी भूमिका, तैसे कहां यह बोधदृष्टि शांतरूप अरु कहां भोगोंविषे आत्मबुद्धि, ताते ऐसा पदार्थ त्रिलोकीविषे कोई नहीं, जिसकी मैं इच्छा करौं, सब चेतनस्वरूप हैं, अनुभवकर्त्ता चेतनतत्त्व स्वच्छ समभाव निर्विकार है, सर्वदा सर्वविषे सर्व ओरते स्थित है, जैसे है तैसा पाया जाता है, ज्ञानवान्को प्रत्यक्ष है सूर्यविषे प्रकाशशक्ति है, चन्द्रमाविषे अमृत स्रवणकी शक्ति है, ब्रह्माविषे महत् शक्ति है, इंद्रविषे त्रिलोकपालनकी शक्ति है, सब ओरते पूर्ण लक्ष्मीशक्ति विष्णुजीकी है, शीघ्र मनकर्त्ता शक्ति मनकी है, बलवान्शक्ति पवनविषे है, दाहकशक्ति अग्निविषे है, जलविषे रसशक्ति है अरु मौन करिकै महातपकी सिद्धताशक्ति अरु विद्याशक्ति बृहस्पतिविषे है, देवताविषे विमानोंपर आरूढ होइकरि आकाशमार्ग

गमन करनेकी शक्ति है, पर्वतोंविषे स्थिरताशक्ति, वसन्तऋतुविषे पुष्पशक्ति सर्वकालविषे मेघोंकी शांतिशक्ति,यक्षोंविषे ममत्वशक्ति, आकाशविषे निर्लेपताशक्ति, बर्फविषे शीतलताशक्ति, ज्येष्ठ आषाढविषे तप्तशक्ति है, इत्यादिक देश, काल, क्रियारूप नाना प्रकारके आकार विकार त्रिकालके उदरविषे स्थित हैं, सो सर्वशक्ति स्वच्छ निर्विकार चेतनकी है, कलनारूप कलंकते रहित है, सो इस प्रकार हो भासता है; सोई आत्मतत्त्व सम पदार्थ जातिविषे व्यापक भया है, जैसे सूर्यका प्रकाश सर्व ओरते समान उदय होता है, तैसे सर्व देश पदार्थोंका भण्डार सर्वका आश्रयभूत है; त्रिकाल तिसविषे कल्पितरूप होते हैं, जैसा अनुभव तिसविषे होता है, तैसा तत्काल हो भासता है, जैसे जैसे चेतनतत्त्वविषे देश काल क्रिया द्रव्यका फुरना होता है, तैसा तैसा भासता है अरु आत्माविषे त्रिकालों की समप्रतिभा फुरी है, तिसविषे बहुरि अनंतकालकी प्रतिभा हुई है, शुद्ध चेतनतत्त्वविषे सर्व ओरते पूर्ण है, त्रिकालके स्मरणविषे दृश्यसंयुक्त भासता है, तो चेतनतत्त्व शेष रहता है अरु इसको त्रिकालका ज्ञान होता है, मधुर कटुक आदिक भिन्न भिन्नरसों एक समता भासती है, जैसे मधुरता पान करनेहारे जो जीव हैं, तिनको मधुरता भासती है, अपरको नहीं भासती, तैसे सर्व जो संकल्पना है, सबको भोगता है, सूक्ष्म चेतन है, सत्तास्वरूप सर्व पदार्थोंका अधिष्ठान है, तिसके साथ अनागत होइकारि द्वैत जगत् भासता है,नाना प्रकारकी जो पदार्थ लक्ष्मी है,सो अत्यंत दुःखको प्राप्त करती है, जब त्रिकालका अनुभव होता है, तब सब ही सम भासता है, भाव पदार्थोंविषे जो पदार्थ हैं, सो ईश्वरके हैं, तिन भाव पदार्थोंको त्यागिकरि अभावकी भावना करनी तिसकरि दुःख सब नष्ट हो जाते हैं, संतुष्टता प्राप्त होती है, ताते त्रिकालको मत देखहु, यह बन्धनरूप है, त्रिकालते रहित जो चेतनतत्त्व है, तिसको देखनेकारि विभाग कल्पना कालका अभाव हो जाता है, एक शम आत्मा शेष रहता है,तिसको वाणी वश नहीं कर सकती, असत्यंकी नाईं जो निरंतर स्थित है, तिसकी प्राप्ति होती है, अनामय सिद्धांत है, जो शून्यवादीकी नाईं स्थित होता है, निष्किंचन आत्मा ब्रह्म होता है, अथवा सर्वरूप परम

उपशमविषे लीन होता है अरु जिसका अंतःकरण मलिन है, संकल्पकरिकै असम्यक् दर्शी है, तिसको ज्योंका त्यों नहीं भासता जगत् भासता है अरु जिनकी इच्छा नष्ट भई है, परमपदका अभ्यास करते हैं, तिनको आत्मतत्त्व भासता है अरु जो किसी जगत्के पदार्थकी वांछा करते हैं, किसीका त्याग किया चाहते हैं, हेयोपादेय फांसीसे बांधे हैं, सो परमपद उपायके पानेको समर्थ नहीं होते, जैसे पेटकरि बांधा पक्षी आकाशमार्गविषे उड़नेको समर्थ नहीं होता, तैसे जे पुरुष संकल्प कलना संयुक्त हैं, वे मोहरूपी जाल-विषे गिर पड़ते हैं, जैसे नेत्रों विना गिर पड़ता है, तैसे संकल्प कलना जालकरि जिसका चित्त वेष्टित है, सो विषयरूपी गर्त्तविषे गिरा है अच्युत पदवीको प्राप्त नहीं होता अरु मेरे पितामह केतेक दिन पृथ्वीविषे फुरि फुरि लीन हो गये हैं, सो बालक नीच थे, जैसे गर्त्तविषे मच्छर लीन हो जाते हैं, तैसे अज्ञानकरि परम तत्त्वको न जानते भये, भोगोंकी वांछा जो दुःखरूप न सो अज्ञानी करतेहैं, तिसते भाव अभावरूप गर्त अन्धकूपविषे नष्ट होते हैं; इच्छा अरु दोषकरि जो उठा है, सो रागदोषकरि बन्धमान भये हैं, जैसे पृथ्वीविषे कीट मग्न होते हैं, वह जीव तिनके तुल्य हैं अरु मृगतृष्णारूप जगत्के पदार्थोंविषे ग्रहण त्यागकी बुद्धि जिनकी शांत भई है, सो पुरुष जीते हैं, अपर सब नीच मृतकरूप हैं, निर्मल अविच्छि-न्नरूप चैतन्य चन्द्रवत् शीतलता कहां ? अरु उष्णकाल कलंक संयुक्त चित्तकी अवस्था कहां ? अब मेरे आत्माको नमस्कार है, कैसा आत्मा है, जो अविच्छिन्न प्रकाश है, प्रकाश अरु तम दोनोंका प्रकाशरूप है. हे चिदात्मा देव ! मुझको तू चिरकालकरि प्राप्त भया है, परमानंद भया जो विकल्परूपी समुद्रते मेरा उद्धार किया है, जो तू है, सो मैं हौं, और मैं हौं सो तू है, तुझको नमस्कार है, अनंत शिव आत्मतत्त्वका चंद्रमा संकल्प विकल्प कलाके नष्ट हुएते सो निर्मल सदा उदितरूप है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादोपदेशो नाम
चतुस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशत्तमः सर्गः ३५.

आत्मलाभचिंतनवर्णनम्।

प्रह्लाद उवाच—ॐ जिसका नाम है सो ब्रह्म मैं हौं, विकारते रहित हौं, जो कछु जगत् है, सो सब आत्मस्वरूप है, सत्य असत्यते अतीत है, चेतनस्वरूप है, सब जीवोंके अंतर है, सूर्यादिका प्रकाश दीपक है, अग्नि आदिकको उष्णकर्त्ता यही है अरु चन्द्रमाविषे शीतकर्त्ता अमृतका स्रवण आत्माते ही है,इंद्रियोंके भोगोंका भोक्ता अनुभवरूप यही है राजाकी नाईं ठाढा हौं,तो मैं कबहूँ नहीं ठाढा, बैठा हौं, तौ मैं कबहूं नही बैठा, चलता हौं तौ कबहूं नहीं चलता, व्यवहार करता हौं, सदा शांतरूप हौं, कर्ता हौं तौ किसीकरि लेपायमान नहीं होता,त्रिकालोंविषे समरूप हौं,सर्वदा सर्व अवस्थाविषे पदार्थोंके उपजनेविषे अरु मिटनेविषे सदा ज्योंका त्यों हौं, ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत सब जगत् आवृत आत्मतत्त्व स्थित है, पवन जो स्पंदरूप है तिसते भी मैं अतिसूक्ष्म स्पंदरूप हौं, पर्वत जो स्थान हैं, अचल पदार्थ तिनते भी मैं अचल हौं, आकाशते भी अति निर्लेप हौं अरु मनको भी आत्मा चलाता है; जैसे पत्रोंको पवन चलाता है, इंद्रियोंको आत्मा फेरता है, जैसे घोडेको सवार चलाता है अरु समर्थ चक्रवर्ती राजाकी नाईं भोग भोगता हौं अरु अपने ऐश्वर्यकरि आप शोभता हौं, संसारसमुद्रविषे जरामरणरूपी जल है, तिसके पार करनेहारा आत्मा है, सो सबते सुलभ है, अपने आपकरि जाना जाता है, बांधवकी नाईं प्राप्त होता है, शरीररूपी कमलोंके छिद्र हैं; तिन सर्वोंका भँवरा है, खैंच बुलाये विना सुलभ प्राप्त होता है, अल्प भी इसको बुलाता है, तब तिसी क्षणविषे सम्मुख होता है, इसविषे कोई संशय विकल्प नहीं, निष्कलंक परम संपदावान् है, सदा स्वस्थरूप है, रसदायक पदार्थोंविषे जैसे रस स्वाद है, जैसे पुष्पविषे सुगंधि है, जैसे तिलोंविषे तेल है, तैसे देव परमात्मा देहोंविषे स्थित है, तौ भी अविचारके वशते जाना नहीं जाता, जैसे चिरकालकरि आया बांधव अपने अग्र आनि स्थित होता है, तिसको नहीं पिछान सकता, तैसे जब विचार उदय होता

है, तब ऐसे आत्मा परमेश्वरको जानि लेता है, जैसे किसी प्रीतम बांधवके पायेते आनंद उदय होता है, तैसे आत्मा देवके साक्षात्कार हुएते परम आनंद उदय होता है, सब बंधन नष्ट हो जाते हैं, जेती कछु दुष्ट चेष्टा हैं, सो अभाव हो जाती हैं, सब ओरते बंधन फांसी टूटि जाती है, सब शत्रु क्षय हो जाते हैं, आशा बहुरि नहीं फुरती, जैसे पर्वतको चूहा तोडि नहीं सकता तैसे, ऐसे देवके देखते सब कछु देखा होता है अरु सुनते सब कछु सुना होता है, तिसके स्पर्श कियेते सब जगत्का स्पर्श होता है, इसकी स्थितिकरि सर्व जगत् स्थित भासता है, यह जाग्रत् है, सो संसारकी ओरते स्वप्न है, तिसी जाग्रत्करि अज्ञान नष्ट हो जाता है, जेती कछु आपदा है, तिसका कष्ट दूर होता है, आत्माके प्राप्त हुएते आत्मामय हो जाता है, सो विस्तृतरूप आत्मा दीपकवत् साक्षीभूत होता है, जगत्की स्थितिविषे भोगोंते राग उठा है, सब ओरते आत्मतत्त्व अपना प्रकाश भासता है, अंतर शांतरूप सबको अनुभव करनेहारे सब देहोंविषे मैं स्थित हौं, जैसे मिर्चविषे तीक्ष्णता स्थित है, तैसे सब जगत्के अंतर बाहर व्याप रहा हौं. जेते कछु जगत्के पदार्थ भासते हैं, सो सबविषे ईश्वररूप सत्ता सामान्य स्थित है, आकाशविषे शून्यतारूप, वायुविषे स्पंदतारूप, तेजविषे प्रकाश,जलविषे रस, पृथ्वीविषे कठोरता, चंद्रमाविषे शीतलता है, तैसे सब जगत् अनुस्यूत एक आत्मतत्त्व ही व्याप रहा है, जैसे बर्फविषे श्वेतता, पुष्पोंविषे गंध होता है, तैसे सब देहोंविषे आत्मा व्यापक है, जैसे सर्वगत काल है, सर्वव्यापक आकाश है, तैसे सब जगत् आत्मा व्यापक है, जैसे राजाकी प्रभुता सबविषे होती है, मुझते भिन्न और कलना कोऊ नहीं, जैसे धूलिके कणके आकाशको स्पर्श नहीं करि सकते अरु कमलोंको जल स्पर्श नहीं करता; जैसे पाषाणको स्फुरणभ्रम स्पर्श नहीं करता; तैसे मेरे साथ किसीका संबंध नहीं स्पर्श करता, सुख दुःखका संबन्ध देहको होता है, जो देह चिरकाल रहे, अथवा अब हीं नष्ट होवे, तौ मुझको लाभ हानि कछु नहीं, जैसे दीपककी प्रभा लोकविषे रज्जुसाथ बांधी नहीं जाती, तैसे आत्मा किसीसे आच्छाद्या नहीं जाता, सब पदार्थोंके ग्रहणविषे अबंध-

रूप है, जैसे आकाश किसीकरि बांधा नहीं जाता अरु मन किसीकरि रोका नहीं जाता, तैसे परमात्माको देह इंद्रियका संबंध वास्तवते नहीं होता, जो शरीरसों टुकडे हो जावैं, तौ भी आत्माका नाश नहीं होता, जैसे घट फूटेते दूध आदिक पदार्थ नहीं रहता, परंतु आकाश कहीं नहीं जाता ज्योंका त्यों रहता है, तैसे देहके नाश भयेते प्राणकला निकसि जाती है, आत्माका कछु नहीं होता अरु पिशाचकी नाईं उदय होइकरि भासता है, मन है नाम जिसका, तिस मनते जगत् भासा है, तिसविषे जड शरीरके नाशका निश्चय भया है, हमारा क्या नाश होता है? दुःख सुखते वासना जिसके मनते नाश होती है, सो भोगोंते निवृत्त सुखसंपन्न होता है, ग्रहणकर्तें भोगते इंद्रियके अज्ञानकरि मूढ दुःख पाते हैं, तिस-करि दुःख संकट पाते हैं, यह बडा आश्चर्य है, आत्माके आज्ञानकरि मूढ दुःख पाते हैं, अब मैंने आत्मतत्त्वको देखा है, तिसकरि मेरा भ्रम शांत हो गया है; कछु भी किसीकरि मुझको क्षोभ नहीं, न कछु भोगोंके ग्रहण करनेकी इच्छा है, न त्यागकी वांछा है, जो जावै, सो जावै, जो प्राप्त होवै सो होवै, न मुझको देहादिक सुखकी अपेक्षा है, न दुःखकी निवृत्तिकी अपेक्षा है, सुख दुःख आवै अरु मैं एकरस चिदानंदस्वरूप हौं, देहविषे वासना करनेते नाना प्रकारकी वासना उपजती हैं, सो देहभ्रम मेरा नष्ट हो गया है, यह वासना नहीं फुरती, एते कालपर्यंत मुझको अज्ञानरूपी शत्रुने नाश किया था, अब मैंने आपको जाना है, अब इसको मैं चूर्ण करता हौं, इस शरीररूपी वृक्षविषे अहंकाररूपी पिशाच था, सो मैंने परम बोधरूपी मंत्रकरि दूर किया है, इस शरीररूपी वृक्षसों अज्ञानरूपी पिशाच नष्ट भया है, ताते पवित्र हुआ हौं, प्रफुल्लित वृक्षवत शोभता हौं, मोहरूपी दृष्टि मेरी शांत भयी है, दुःख सब नष्ट भये हैं, विवे-करूपी धन मुझको प्राप्त भया है, अब मैं परम ईश्वररूप होइकरि स्थित भया हौं, जो कछु जानने योग्य था, सो जाना है अरु जो कछु देखने योग्य था, सो देखा है, मैं तिस पदको प्राप्त भया हौं, जिसको पायेते कछु पाने योग्य नहीं रहे, आत्मतत्त्वको देखा है, अनेक रस विषय-रूपी सर्प मुझको त्यागि गये हैं, मोहरूपी कुहिड़ नष्ट हो गयी है, इच्छा-

रूपी मृगतृष्णा शांत हो गई है, रागदोषरूपी धूलिते रहित सब ओरते निर्मल भया हौं, उपशमरूपी वृक्षकरि शीतल भया हौं; सब ओरते विस्तृत रूपको प्राप्त भया हौं, सबते उचित परमात्मदेव परमार्थको उस तत्त्व-करिकै परिणाम करिकै ज्ञान विचार करिकै पाया हौं, अब प्रगट देखा है, अधोगतिका कारण जो अहंकार तिसको दूरते त्यागा है, अपना स्वभा-वरूप जो है, आत्मा भगवान् सनातन ब्रह्म, सो अहंकारके वशते विस्मरण भया था, अब चिरकाल करिकै देखा है, इंद्रियरूपी गर्तविषे मैं गिरा था, रागद्वेषरूपी सर्प होइकरि दुःख पाया था अरु मृत्युको प्राप्त भया था, मृत्युकी भूमिका टोएविषे तृष्णारूपी करंजुएकी कुंजोंविषे रहा, कामरूपी कोयलके जहां शब्द होते थे, जन्मरूपी कूपविषे दुःख पाता था, सुखको पानेकी दिशाविषे डूबा, वासनारूपी जालविषे फँसा, दुःखरूपी दावाग्निविषे जला, आशारूपी फांसीते बांधा हुआ कईबार जन्म मरणको प्राप्त भया था, अहंकारके वश हुएते जन्म मृत्युको प्राप्त होता है, जैसे रात्रिविषे पिशाच दिखाई देवै अरु अधीरताको प्राप्त करै, तैसे मुझको अहंकारने किया था, सो अब हे परमात्मरूप ! मुझको तुमने प्रेरणाकरि अपनी मुक्ति विष्णुरूप धारिकरि विवेक उपदेश किया है, अरु जगाया है. हे देव ईश्वर ! तुम्हारे बोधकरि अहंकाररूपी राक्षस नष्ट भया है. हे विभु ! तिसको मैं नहीं देखता, जैसे दीपकरि तम नहीं भासता तैसे, अहंकाररूपी यक्ष था अरु मनविषे वासना थी, सो सब नष्ट भये हैं, अब मैं जानता नहीं कि, कहां गये, जैसे दीपक निर्वाण होता है, तब नहीं जानता कि प्रकाश कहां गया, हे ईश्वर ! तुम्हारे दर्श-नकरि मेरा अहंभाव नष्ट भया है, जैसे सूर्यके उदय हुएते चोरभय मिट जाता है, तैसे देहरूपी रात्रिविषे अहंकाररूपी पिशाच उठा था, सो अब नष्ट भया है, अब मैं परम स्वस्थ भया हौं, जैसे वानरोंते रहित वृक्ष स्वस्थ होता है, तैसे मैं परम निर्वाणको प्राप्त भया हौं, शम शांत बोधविषे मैं जागा हौं, चिरपर्यंत चोरोंते अब छूटा हौं, अन्तर मेरा शीतल भया है, आशारूपी मृगतृष्णा शांत हो गयी है, जैसे जलते पर्वतकी तप्तता मिटे अरु वर्षाकरि शीतलताको प्राप्त होवै तैसे, विवेक-

रूपी विचारकरि अहंकाररूपी तप्तता दूर हो गयी है, अब मोह कहां अरु दुःख कहां ? आशारूपी स्वर्ग कहां अरु नरक कहां ? बंध अरु मुक्ति कहां, अहंकारके होनेकरि पदार्थ भासते हैं, अहंकारके गयेते इसका अभाव हो जाता है, जैसे कंध ऊपर मूर्ति लिखी जाती है, आकाश ऊपर नहीं लिखी जाती, तैसे अहंकारसंयुक्त जो चेतन है, सो नहीं शोभता सुख दुःखादिकका पात्र होता है, जैसे मलिन वस्त्रपर केसरका रंग नहीं शोभता, तैसें उसविषे ज्ञान नहीं शोभता जब अहंकाररूपी मेघका अभाव होवै तब तृष्णारूपी कुहिड भी नहीं रहती, शरत्कालके आकाशवत् स्वच्छ चित्त रहता है, निरहंकाररूपी जल है जिसविषे; ऐसा जो मैं आनंदमय सरोवर हौं, सो प्रसन्नतारूपी कमलोंकरि शोभता हौं. हे आत्मा ! तुझको नमस्कार है, इंद्रियांरूपी जिसविषे तंदुए अरु चित्तरूपी वडवाग्नि है, दोनों जिसते नष्ट भये हैं, ऐसा आत्मारूपी समुद्र है, तिस मुझ आत्माको नमस्कार है, जिसते दूर भया है अहंकार मेघ अरु शांत भयी है दावाग्नि, ऐसा जो आत्मानन्दरूपी पर्वत है, तिस आनन्दके आश्रय मैं विश्राम पाया हौं. हे देव ! तुझको नमस्कार है. प्रफुल्लित है आनंदरूपी कमल जिसविषे अरु शांत भये हैं चित्तरूपी तरंग जिसते ऐसा मानस सरोवर मैं आत्मा हौं, तिसको नमस्कार है, आत्मारूपी हंस संवितूरूपी पंख जिसके अरु हृदयरूपी कमलों करि पूर्ण मानस सरोवर पर विश्राम करनहारे, तिसको नमस्कार है. कालरूपी कलनाते रहित निष्कलंक सदा उदितरूप सब ओरते पूर्ण शांत आत्मा, तुझको नमस्कार है. सदा उदित शीतल हृदयका तम दूर कर्ता सर्वव्यापक हौं, परंतु अज्ञानकरि अदृष्ट भया था, सो चेतन सूर्यको नमस्कार है. मनके मननकरि जो उपजे थे, सो अब शांत भये हैं. मनको मनकरि अहंको अहंकारि छेदेते जो शेष रहे, सो मेरी जय है, भावरूप जो दृश्य पदार्थ हैं, तिनको आत्मभावकारि छेदेते अरु तृष्णाको अतृष्णाकारि छेदेते अनात्माको आत्मविचारकारि नष्ट कियेते, ज्ञानकरि ज्ञेयको जाननेते मैं अबके निरहंकारपदको प्राप्त भया हौं. भाव अभाव क्रिया नष्ट हो गयी हैं, मैं अब केवल स्वस्थित हौं, निर्भय निर-

अहंकार निर्मन निस्पंद शुद्धात्मा हौं, मेरा शरीर जीवकी नाईं स्थित है, लीला करिकै मनने अहंकारको जीता है परम उपशमको प्राप्त भया हौं, परम शांति मुझको प्राप्त भयी है, मोहरूपी वेताल शांत भया है, अहंकाररूपी राक्षस नष्ट भया है, वासनारूपी कुत्सित भूमिकाते मुक्त विगतज्वर हुआ हौं, तृष्णारूपी जेवरी गंठिकारि हुआ, देह पिंजरा था, तिसविषे अहंकाररूपी पक्षी फँसा था, सो तृष्णारूपी जेवरी विवेकरूपी कातरसे काटी है, अब जाना नहीं जाता, कि शरीररूपी पिंजरेते अहंकाररूपी पक्षी कहां निकस गया ? अज्ञानरूपी वृक्षविषे अहंकाररूपी पक्षी रहता था तिसके जाननेकारि जाना नहीं जाता, कि कहां गया, दुराशारूपी दुर्मतिने धूसर किया था, भोगरूपी भस्मने शुद्ध दृष्टि दूर करी थी अरु वासनाकारि हम मृतक हो गये थे, एते काल हम चित्तकी भूमिकाविषे मिथ्या अहंकारको प्राप्त भये थे अब मैं उपजा हौं अरु आज ही मेरी बड़ी शोभा बढ़ी है, अहंकाररूपी महामेघ था, सो नष्ट भया है, तिसविषे तृष्णारूपी समता थी, सो नष्ट भयी है, निर्मल आकाशवत् शोभता हौं अब मैंने आत्मा भगवान्को देखा है, अपने स्वरूपको प्राप्त भया हौं, अनुभवरूप सदा प्राप्त है, प्रभुताके समूहके आगे अज्ञान अल्परूप है, कैसा है निस्पंदगति मननरूपी इच्छाते रहित निरिच्छित निरहंकार अरु दूरि भया है रजनीरूपी राग जिसते अरु विगतज्वर कौतुकते रहित अरु शांत भया है मन जिसते अरु महा आपदा दीर्घ दुःख देनेहारी क्षय भयी हैं जिसते ऐसा अद्वैत महेश्वर चित्तते रहित है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे आत्मलाभचिन्तनं नाम पञ्चत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३५ ॥

रूपी विचारकारि अहंकाररूपी तप्तता दूर हो गयी है, अब मोह कहां अरु दुःख कहां ? आशारूपी स्वर्ग कहां अरु नरक कहां ? बंध अरु मुक्ति कहां, अहंकारके होनेकारि पदार्थ भासते हैं, अहंकारके गयेते इसका अभाव हो जाता है, जैसे कंध ऊपर मूर्ति लिखी जाती है, आकाश ऊपर नहीं लिखी जाती, तैसे अहंकारसंयुक्त जो चेतन है, सो नहीं शोभता सुख दुःखादिकका पात्र होता है, जैसे मलिन वस्त्रपर केसरका रंग नहीं शोभता, तैसे उसविषे ज्ञान नहीं शोभता जब अहंकाररूपी मेघका अभाव होवै तब तृष्णारूपी कुहिड भी नहीं रहती, शरत्कालके आकाशवत् स्वच्छ चित्त रहता है, निरहंकाररूपी जल है जिसविषे; ऐसा जो मैं आनंदमय सरोवर हौं, सो प्रसन्नतारूपी कमलोंकारि शोभता हौं. हे आत्मा ! तुझको नमस्कार है, इंद्रियांरूपी जिसविषे तंदुए अरु चित्तरूपी वडवाग्नि है, दोनों जिसते नष्ट भये हैं, ऐसा आत्मारूपी समुद्र है, तिस मुझ आत्माको नमस्कार है, जिसते दूर भया है अहंकार मेघ अरु शांत भयी है दावाग्नि, ऐसा जो आत्मानन्दरूपी पर्वत है, तिस आनन्दके आश्रय मैं विश्राम पाया हौं. हे देव ! तुझको नमस्कार है. प्रफुल्लित है आनंदरूपी कमल जिसविषे अरु शांत भये हैं चित्तरूपी तरंग जिसते ऐसा मानस सरोवर मैं आत्मा हौं, तिसको नमस्कार है, आत्मारूपी हंस संवितरूपी पंख जिसके अरु हृदयरूपी कमलों कारि पूर्ण मानस सरोवर पर विश्राम करनहारे, तिसको नमस्कार है. कालरूपी कलनाते रहित निष्कलंक सदा उदितरूप सब ओरते पूर्ण शांत आत्मा, तुझको नमस्कार है. सदा उदित शीतल हृदयका तम दूर कर्ता सर्वव्यापक हौं, परंतु अज्ञानकारि अदृष्ट भया था, सो चेतन सूर्यको नमस्कार है. मनके मननकारि जो उपजे थे, सो अब शांत भये हैं. मनको मनकारि अहंको अहंकारि छेदते जो शेष रहे, सो मेरी जय है, भावरूप जो दृश्य पदार्थ हैं, तिनको आत्मभावकारि छेदते अरु तृष्णाको अतृष्णाकारि छेदते अनात्माको आत्मविचारकारि नष्ट कियेते, ज्ञानकारि ज्ञेयको जाननेते मैं अबके निरहंकारपदको प्राप्त भया हौं. भाव अभाव क्रिया नष्ट हो गयी हैं, मैं अब केवल स्वस्थित हौं, निर्भय निर-

अहंकार निर्मन निस्पंद शुद्धात्मा हौं, मेरा शरीर जीवकी नाईं स्थित है, लीला करिकै मनने अहंकारको जीता है परम उपशमको प्राप्त भया हौं, परम शांति मुझको प्राप्त भयी है, मोहरूपी वेताल शांत भया है, अहंकाररूपी राक्षस नष्ट भया है, वासनारूपी कुत्सित भूमिकाते मुक्त विगतज्वर हुआ हौं, तृष्णारूपी जेवरी गंठिकारि हुआ, देह पिंजरा था, तिसविषे अहंकाररूपी पक्षी फँसा था, सो तृष्णारूपी जेवरी विवेकरूपी कातरसे काटी है, अब जाना नहीं जाता, कि शरीररूपी पिंजरेते अहंकाररूपी पक्षी कहां निकस गया ! अज्ञानरूपी वृक्षविषे अहंकाररूपी पक्षी रहता था तिसके जाननेकारि जाना नहीं जाता, कि कहां गया, दुराशारूपी दुर्मतिने धूसर किया था, भोगरूपी भस्मने शुद्ध दृष्टि दूर करी थी अरु वासनाकारि हम मृतक हो गये थे, एते काल हम चित्तकी भूमिकाविषे मिथ्या अहंकारको प्राप्त भये थे अब मैं उपजा हौं अरु आज ही मेरी बड़ी शोभा बढ़ी है, अहंकाररूपी महामेघ था, सो नष्ट भया है, तिसविषे तृष्णारूपी समता थी, सो नष्ट भयी है, निर्मल आकाशवत् शोभता हौं अब मैंने आत्मा भगवान्को देखा है, अपने स्वरूपको प्राप्त भया हौं, अनुभवरूप सदा प्राप्त है, प्रभुताके समूहके आगे अज्ञान अल्परूप है, कैसा है निस्पंदगति मननरूपी इच्छाते रहित निरिच्छित निरहंकार अरु दूरि भया है रजनीरूपी राग जिसते अरु विगतज्वर कौतुकते रहित अरु शांत भया है मन जिसते अरु महा आपदा दीर्घ दुःख देनेहारी क्षय भयी हैं जिसते ऐसा अद्वैत महेश्वर चित्तते रहित है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे आत्मलाभचिन्तनं नाम पञ्चत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशत्तमः सर्गः ३६.

प्रह्लादोपाख्याने संस्तवनर्णनम्।

प्रह्लाद उवाच-हे महात्मा पुरुष ! तुझको नमस्कार है, तू आत्मा है, सर्व पदते अतीत, चिरकालते मुझको स्मरण आया है, कल्याण भया है जो अब तुझको पाया. हे भगवन् ! तुमको देखिकारि सब ओरते नमस्कार करता हौं, अंतरते तुमको आलिंगन करौंगा, त्रिलोकीविषे तुझते अन्य ऐसा बांधव कोई नहीं, तू सबते सुखदायक है अरु सबका तू ही संहार कर्ता है, सबकी रक्षा भी तू ही करता है, देने लेनेहारा सब तू ही है, अब तू क्या करैगा अरु कहां जावैगा ? अपनी सत्ताकारि विश्वको पूर्ण किया है अरु विश्वरूप भी वही है, अब सब ओरते तुझको देखता हौं तू ही नित्यरूप सर्वत्र है, तेरे अरु मेरेविषे अनेक जन्मोंका अंतर पडा था, अब कल्याण हुआ जो तुझको देखा है, तू अत्यंत निकट है अरु परम बांधवरूप है, तुझको नमस्कार है, कृतकृत्य स्वरूप सबका कर्त्ता हर्ता है, संसार तेरी नृत्य है, नित्य निर्मल स्वरूप तुझको नमस्कार है, शंख चक्र गदा पद्मके धारनेहारे तुझको नमस्कार है, अर्धचंद्रमाके धारणहारे सदाशिवरूप तुझको नमस्कार है, सहस्रनेत्र इन्द्र तुझको नमस्कार है, पद्मजन्म ब्रह्मा सब देव विद्याका संबंध तूही है तेरेविषे भेद कछु नहीं तो तुम्हारे हमारेविषे भेद कैसे होवै? जैसे समुद्र अरु तरंगोका संयोग अभेद है, तैसे तेरा अरु मेरा संयोग अभेद है, तू ही अनंत विचित्ररूप है, भाव अभावरूप जगत्के धरनेहारी नीति है, जगत्की मर्यादाको करती है. हे द्रष्टारूप ! तुझको नमस्कार है, हे सर्वज्ञ सर्व स्वभावरूप आत्मा देव ! जन्म जन्म प्रति मैं बहुत दुःखमार्गविषे विचारा हौं तेरी मायाकारि चिरकाल दग्ध भया हौं. हे देवेश ! देश अरु लोक मैंने अनंत देखे हैं, दृष्टांत द्रष्टा भी अनेक देखे हैं परंतु किसीकारि तृप्त न भया, जगत्को जिस ओर देखौं तिसी ओरते काष्ट पाषाण जल मृत्तिका आकाश दृष्टि आता था, अब तुझ विना कछु और दृष्टि नहीं आता, वांछा किसकी करौं ? अब तुझको देखा है, उपलब्ध स्वरूपको प्राप्त भया हौं, तुझको नमस्कार है,

नेत्रोंकी श्यामताविषे जो पुतलियाँरूप स्थित है अरु रूपको देखता है साक्षीभूत सो अंतर कैसे नहीं देखता है, जो त्वचाविषे स्पर्श करता है, शीत उष्णादिकको जानता है, ऐसा सर्व अंगोंविषे व्यापक अनुभव कर्त्ता है, जैसे तिलोंविषे तेल व्यापक होता है, तिसको अनुभव कोऊ नहीं करता, जो शब्द श्रवण इंद्रियके अंतर ग्रहण करता है; तिस शब्द-शक्तिको जो जाननेहारी सत्ता है, जिसविषे शब्दशक्तिका विचार होता है, जिसकरि रोम खडे होइ आते हैं, सो सत्ता दूर कैसे होवै? जो जिह्वाके अग्रविषे रस स्वादको ग्रहण करता है, तिस रसका अनुभव करनेहारी जो सत्ता है, सो दूर कैसे होवै, नासाविषे जो घ्राणशक्ति है, जिसते गंध आती है तिसको अनुभव करनेहारी अलेप सत्ता है, सो सम्मुख कैसे न होवै? वेद, वेदांत, सप्त सिद्धांत पुराण गीताकरि जो जानने योग्य ज्ञेय आत्मा है, तिसको जब जाना तब विश्राम कैसे न होवै? परावर परमात्मा पुरुष है जिन भोगोंकी मैं तृष्णा करता था, सो भोग रमणीय विद्यमान आनि होते हैं, तो भी तेरे दर्शनकरि रस नहीं देते. हे स्वच्छरूप निर्मलप्रकाश! तू सूर्यभाव होइकरि प्रगट भया है, अरु तेरी सत्ताकरि चंद्रमा शीतल भया है, तेरी सत्ताकरि पृथ्वी स्थित है, तेरी सत्ताकरि देवता आकाशमार्गमें विचरते हैं, तेरी सत्ताकरि आकाशविषे आकाशभाव है, मेरी अहंता तेरेविषे तत्त्वको प्राप्त भयी है, तेरे अरु मेरेमें भेद कछु नहीं, तेरेको मेरेको नमस्कार है. मैं सम, स्वच्छ, साक्षीरूप, निर्विकार, देशकाल पदार्थ छेदते रहित हौं, मन जब क्षोभको प्राप्त होता है, तब इंद्रियोंकी वृत्ति स्फुरणरूप होती है, प्राण अपानशक्ति जब उल्लासको प्राप्त होती है, तब देहरूपी यंत्र बहता है, कैसा यन्त्र है, चर्म अस्थि आदिक जिसके साथ लकडियां अरु जेवरी हैं, इंद्रियांरूपी घोडे हैं मनरूपी सारथी चलानेहारा है, तिस देहरूपी रथविषे मैं चेतनरूपी स्थित हौं, परंतु मैं किसीविषे आस्था नहीं करता, देह रहै अथवा गिरै, मुझको इच्छा कछु नहीं, मैं अब आत्मलाभको प्राप्त भया हौं, चिरकालते उपशमको प्राप्त भया हौं, जैसे कल्पके अंतविषे जगत् शांतिको प्राप्त होता है, तैसे दीर्घ संसारमार्गविषे चिरकाल भ्रमता

भ्रमता अब विश्राम पाया हौं, जैसे कल्पके अंतविषे वायु चलता चलता रह जाता है. हे सर्वरूप आत्मा ! तुझको नमस्कार है, जो तुझको अरु मुझको इस प्रकार जानते हैं. हे देव ! संपूर्ण जगज्जाल जो विस्तृतरूप है, तिसको तुमने कदाचित् स्पर्श नहीं किया, तुम्हारी जय है, जैसे पुष्पोंविषे गंध होती है, तिलोंविषे तेल रहता है, तैसे तुम सब देहोंविषे रहते हौ, तू सर्व जगत्का प्रकाशक दीप है, उत्पत्ति-प्रलयकर्त्ता अरु सदा अकर्त्तारूप तेरी जय है, तेरे परमाणु चिद्अणु हैं, तिनविषे यह विस्ताररूप जगत् स्थित है, सो जैसे वटबीजविषे वृक्ष होता है, बहुरि अपरविषे अपर होता है, तैसे चिद्अणुविषे जगत् है, जैसे आकाशविषे एक बादरके अनेक आकार दृष्टि आते हैं, तैसे चित्तकला फुरनेकरि अनेक पदार्थ भ्रमरूप भासते हैं, इस संसारके जो क्षणभंगुररूप पदार्थ हैं, तिनकी अभावना कियेते अब भाव अभावते रहित भावको देखता हौं, यह निश्चय भया है, मान मद क्रोध अरु कलुषता कठोरता आदिक विकारोंविषे महापुरुष नहीं डूबते अरु प्राकृत नीचजन इन दोषोंगुणोंविषे डूबते हैं, पूर्व जो मेरी महादुरात्मा नीची अवस्था थी, तिसका स्मरण करिके हँसता हौं, कि मैं कौन था, अरु क्या जानता था ? हे मेरे आत्मा ! मैं तिस पदको प्राप्त भया था जहां चितारूपी अग्निकी ज्वाला थी जहां दग्ध हुये जीर्ण संसारके आरंभ थे, अब देहरूपी नगरविषे स्फाररूप मनोरथकी जय है, अब दुःख ग्रहण नहीं करि सकते, जहां दुष्ट इंद्रियांरूपी घोडे जाते थे अरु मनरूपी हस्ती जाता था, सो अब भोगरूपी शत्रुको चारों ओरते भक्षण किया है अरु निष्कंटक राजा चक्रवर्ती भया हौं, तू परम सूर्य है, परम आकाशविषे तेरा मार्ग है उदय अस्तते रहित तू नित्यप्रकाशरूप है, सबके अंतर बाहिर तू प्रकाशता है, अब भोगोंको लीलारूप देखता हौं, जैसे अकामी कामिनीको देखै, परंतु इच्छाते रहित होवै है, तैसे तू ग्रहण करता है, नेत्ररूपी झरोखोंविषे बैठिकरि तू रूपविषयको ग्रहण करता है, अपनी शक्तिकरि इसी प्रकार सब इंद्रियोंविषे वही रूप धारिकरि तू शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधविषयको ग्रहण करता है, ब्रह्मकोटरविषे जो

देश हैं, तिनविषे प्राण अपान शक्तिकरि तूही विचरता है, आता है, जाता है, ब्रह्मपुरीविषे जाता है, क्षणविषे बहुरि आता है, सब जगत् देहोंविषे तू विचरता है, देहरूपी पुष्पोंविषे तू सुगंधि है, देहरूपी चंद्रमाविषे तू अमृत है, देहरूपी वृक्षविषे तू रस है, देहरूपी बर्फविषे तू शीतलता है, चिन्मयस्वरूप है, दूधविषे तू घृत है, काष्ठविषे तू अग्नि है, उत्तम स्वादोंविषे तू स्वाद है, तेजविषे तू प्रकाश है, सर्व अर्थ कर्त्ता पूर्ण तू ही है, सर्व जगत्का प्रकाशक तूही है, वायुविषे स्पंद तूही है, मनविषे मुदित तू ही है, बुद्धिरूप अग्निविषे तेज सिद्धता तू ही है, प्रकाशविषे तू प्रकाश है, सब पदार्थोंको सिद्धकर्त्ता तू दीपक है, लीन भयेते जाना नहीं जाता कि, कहां गये कई और ठौर जाय प्रकाशते हैं, जेते कछु संसारके विषे पदार्थ अरु अहं त्वम् आदिक शब्द हैं, सो ऐसे हैं, जैसे सुवर्णविषे भूषण होते हैं, सो अपनी लीलाके निमित्त किये हैं, आप ही तू आप प्रसन्न होता है, जैसे मंदवायुकरि खंड खंड हुएते बादरके हस्ती आदिक आकार हो भासते हैं, तैसे तू भौतिक दृष्टिकरिकै भिन्न भिन्नरूप भासता है. हे देव ! ब्रह्मांडरूपी मोती हैं, तिनविषे तू निरिच्छित व्यापक है अरु भूतोंरूपी जो अन्न हैं, तिनका तू खेत है, चेतनरूपी रसकरि बढानेहारा है अरु तू अस्तकी नाईं स्थित है, अर्थ यह इंद्रियोंके विषयते रहित अव्यक्तरूप है अरु सब पदार्थोंका प्रकाश है, जो पदार्थ शोभासंयुक्त विद्यमान होते हैं अरु तेरी अवस्था उसविषे नहीं होती, तब वह अस्त होता है, जैसे सुंदर स्त्री भूषणोंसहित अंधेके आगे स्थित होवै, तो वह अस्तभूत होती है, तैसे विद्यमान पदार्थ होवै अरु तू न कल्पे तो अस्त हो जाता है, जैसे दर्पणविषे मुखका प्रतिबिम्ब होता है, तिसको देखिकरि अपनी सुंदरता विना प्रसन्न कोई नहीं होता. हे आत्मा ! तेरे संकल्प विना देह त्रुटित हो जाता है, काष्ठ लोष्टवत् होता है, जब पुर्यष्टक शरीरते अदृष्ट होता है, तब सुख दुःख आदिक क्रम नष्ट हो जाता है; किसीका ज्ञान नहीं होता, जैसे तमविषे कोऊ पदार्थ दृष्टि नहीं आता, तेरे देखनेकरि सुख दुःख आदिक स्थित होते हैं, जैसे सूर्यकी दृष्टिकरि प्रातःकाल शुक्ल-

वर्णकारि प्रकाश आता है, जब अपने स्वरूपको प्राप्त होता है,तब अज्ञानरूप सब विकार नष्ट हो जाते हैं,जैसे प्रकाशकारि अंधकार नष्ट होता है, तब पदार्थ ज्योंका त्यों भासता है, तैसे अज्ञानके नष्ट भयेते आत्मा ज्योंका त्यों भासता है, यह जो मनरूप तू है तेरे उपजनेकारि सुख दुःखकी लक्ष्मी उपजि आती है, तेरे अभाव हुएते सर्व नष्ट हो जाता है, स्वरूपते तू अनामयरूप है, क्षणभंगुर देहविषे जो मनने आस्था करी है, सो महासूक्ष्म अणु निमेषके लक्षभाग जैसा सूक्ष्म है, सुख दुःखादिककी भावना करिकै अनीश्वरताको प्राप्त भया है, तेरे प्रमादकारि स्फुरणरूप होता है अरु तेरे देखनेकारि सर्व लीन हो जाता है, यह जो पुर्यष्टक तेरा रूप है तिसके देखनेकारि क्षणविषे पदार्थजात भासि आते हैं, जैसे नेत्रोंके खोलनेकारि रूप भास आता है अरु अंतर्धान मनके मरनेकारि सर्व नष्ट हो जाता है, बहुरि किसीकारि ग्रहण नहीं होता, जो वस्तु क्षणभंगुर है, तिसते कछु कार्य सिद्ध नहीं होता, जैसे बिजलीके प्रकाशकारि कोऊ कार्य सिद्ध नहीं होता, तैसे अंतर्धान होनेकारि देहते कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता, जो उपजिकारि तत्काल नष्ट हो जाता है, तिसते कार्य क्या सिद्ध होवै? देहादिक जड़ नाशवंत हैं अरु जो सबको प्रकाशता है, सदा निर्विकार सच्चिदानंदरूप है, सुख दुःख आदिकं अज्ञानीके चित्तको स्पर्श करता है अरु जिसका शमचित्त है, तिसको स्पर्श नहीं करते. हे देव ! यह जो सुखदुःख आदिक विवेकके आश्रय हैं, सो अविवेक नष्ट हो गया है तू निरीह निरंश निराकार है, सत् असत्यते पर भैरवरूप परमात्मा तेरी सदा जय है, तू सर्व शास्त्रोंका असिपद है, तेरे जात अजातरूपकी सदा जय है, तेरे नाशरूपकी तेरे अविनाशरूपकी जय है, तेरे भावरूपकी तेरे अभावरूपकी जय है, जीतने योग्य तेरी अजीतने योग्य तेरी जय है, माया हुलासको प्राप्त हुआ है अरु उपशांतिको प्राप्त हुआ है, तुझको नमस्कार है. हे निर्दोष ! तेरेविषे स्थित होनेकारि मेरे राग द्वेष मिटि गये हैं, अब बंध कहां अरु मोक्ष कहां अरु आपदा कहां, संपदा कहां, भाव अभाव कहां ? सर्व विकार शांत भये हैं,शम समाधिविषे स्थित भया हौं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादोपाख्याने संस्तवनं नाम षट्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ३७.

दैत्यपुरीप्रभंजनवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! इस प्रकर चिंतनाकारि महाधैर्यवान् प्रह्लाद निर्विकार निरानंद समाधिविषे स्थित भया, जैसे मूर्तिकापर्वत होवै, तैसे अपने पदविषे स्थित भया, जब बहुत काल अपने गृहरूपी भुवनविषे सुमेरुवत् ऐसी समाधिविषे स्थित भया, तब दैत्य ईश्वर तिसको जगाने लगे, परंतु प्रह्लाद न जागा, जैसे समय विना बीज अंकुर नहीं लेता, तैसे पंचसहस्र वर्ष समाधिविषे व्यतीत भये अरु शरीर उसी प्रकार पुष्ट रहा, दैत्योंके नगरविषे शांति हो गयी; परमानंद आत्माको प्राप्त भया; निरानंद जो प्रकाश है सो प्रकाशमात्र रह गया और कलना सब मिटि गयी, एता काल जब व्यतीत भया, तब रसातल मंडलविषे राजभय दूर हो गया; छोटेको बडा भक्षण करि लेवै, हिरण्यकशिपुका मृत्यु भया; तिसका पुत्र समाधिविषे स्थित भया अपर कोऊ राजा न हुआ, दैत्यमंडलकी विपर्ययदशा भई, निर्बलको बलवान् मारि लूटि लेवै, तब अनेक मल्ल मिलिकारि प्रह्लादको जगाय रहे, तौ भी न जागा, जैसे सूर्यमुखी कमलको रात्रिविषे भँवरे गुंजारव करैं, तौ भी प्रफुल्लित नहीं होता, मूँदा रहता है, तैसे प्रह्लाद न जागा; संवित्कला जो चित् धातु है, सो तिसके अंतर फूर्ति न भासै, जैसे मूर्तिका लिखा सूर्य प्रकाशते रहित होता है, तैसे देखिकारि दैत्य उद्वेगवान् भये; जहां किसीको सुखदायक देशस्थान भासा तहां जाय रहे, पाताल मंडलको राजाते हीन देखते भये मर्यादा सब दूर हो गयी; मत्सर आय प्रवर्त्ता, जो बलवान् होवै सो निर्बलको ग्रासि लेवै, मर्यादाका क्रम नष्ट हो गया, अपने २ वांछित देशको चले जावैं, पुरुष स्त्रियां रुदन करैं शोकवान् होवैं कई मारे जावैं, कई लूटे जावैं, व्यर्थ अनर्थ कदर्थ करनेवाले हो गये, दैत्यता परायण हुई, बांधव नष्ट हो गये, उपद्रव उत्पन्न होने लगे, दिशाके मुख अग्निरूप हो गये, देवता आनि दिखाई देवैं, निर्बल दैत्यको बांधि ले जावैं, दैत्य मूल भूमिते रहित निर्लक्ष्मी उजाड़ जैसे हो गये, दैत्य-

पुरविषे अनीति अकांड उपद्रव आनि हुआ, जैसे कल्पके अन्तविषे जीव दुःख पाते हैं, तैसे दैत्य दुःख पाने लगे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे दैत्यपुरीप्रभंजन वर्णनं नाम सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टात्रिंशत्तमः सर्गः ३८.

भगवच्चित्तविवेकवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! इस प्रकार जब दैत्यपुरीकी दशा भयी, तब संपूर्ण जगत्जालका क्रम पालने हारा जो विष्णु देव है, क्षीरसमुद्रविषे शेषनागकी शय्यापर शयन करने हारा जो चतुर्मास वर्षाकालकी निद्राते जागा, बुद्धिके नेत्रोंकरि जगत्की मर्यादाको विचारता भया, तब देखा कि, पातालविषे प्रह्लाद दैत्य समाधिविषे पद्मासन बांधकरि स्थित भया है, तब शंख चक्र गदा पद्म हस्तविषे धरने हारा अरु सर्वदेहों विषे व्यापक है, ऐसा विष्णु देव पद्मासन बांधकरि विचार करता भया कि; प्रह्लाद आत्मपदविषे स्थित हुआ पुतलीवत् हो गया है, बडा कष्ट है, जो सृष्टि दैत्यते रहित भयी, तब देवता जीतनेकी इच्छाते रहित होइकरि आत्मपदविषे स्थित हो जावैंगे, जब देवता, दैत्योंका विरोध रहता है, तब जीतनेके निमित्त याचना करते हैं कि, दैत्य नष्ट होवैं, तब सब देवता निर्द्वंद्वरूप होइकरि परमपदको प्राप्त होवैंगे, जैसे रसते रहित वल्ली सूख जाती है, तैसे अभिमान इच्छाते रहित देवता जगत्की ओरते सुखकरि आत्मपदको प्राप्त होवैंगे; जब देवताओंके समूह शांतिको प्राप्त भये, तब पृथ्वीविषे यज्ञ तप आदिक जो उत्तम क्रिया हैं, सो सब निष्फल हो जावैंगी, न कोऊ करैगा, न किसीको प्राप्त होवैगा, जब पृथ्वीलोकते शुभ क्रिया नष्ट भयी, तब लोक भी नष्ट हो जावैंगे, अकांड प्रलय प्रसंग होवैगा, सब मर्यादा क्रम जगत्का नष्ट हो जावैगा, जैसे धूपकरि बर्फ नष्ट होता है, तैसे जगत्क्रम सब नष्ट होवैगा, इसको नष्ट हुएते भी मुझको कछु नहीं, परंतु मैंने अपनी लीला रची है, सो सब नष्ट

हो जावैगी, तब मैं भी इस शरीरको त्यागिकरि परमपदविषे स्थित होऊंगा, अकांड ही जगत् उपशमको प्राप्त होवैगा, ताते इसविषे कल्याण नहीं देखता जो दैत्योंके उद्वेगतें रहित देवता भी शांत हो जावैंगे तप क्रिया नष्ट हो जावैगी, जीव दुःखी होइकरि नष्ट हो जावैंगे तातें मैं जगत्कर्मको स्थापन करौं, जो परमेश्वरकी नीति इसी प्रकार है अब रसातलको जाऊं अरु जगत्की मर्यादा ज्योंकी त्यों स्थापन करौं, जो प्रह्लादते इतरको पातालका मैं राजा करौं, तौ वह देवताओंका शत्रु होवैगा ताते ऐसे न करौं; प्रह्लादकी जो देह है, सो अंतका जन्म है, परम पावन देह है अरु कल्पपर्यंत रहैगी यह ईश्वरकी नीति है सो ज्योंकी त्यों है ताते मैं जाइकरि दैत्येन्द्र प्रह्लादको जगाऊं जो जागिकरि जीवन्मुक्त हुआ दैत्योंका राज्य करै है जैसे मणि मलते रहित प्रतिबिंबको ग्रहण करती है तैसे प्रह्लाद भी इच्छाते रहित होइकरि प्रवर्त्तै इस प्रकार सृष्टि देवता दैत्यों संयुक्त रहैगी अरु परस्पर इनका द्वेष न होवैगा मेरी क्रीडा-लीला इच्छा होवैगी यद्यपि सृष्टि का होना न होना मुझको तुल्य है, तौ भी जो कछु नीति है सो जैसे स्थित है तैसे ही रहै, जो वस्तु भावविषे तुल्य होवै नाशविषे अरु स्थितविषे तिसका प्रयत्न करना कुबुद्धि है सो जैसे आकाशके हननका यत्न करिये तैसे है ताते मैं पातालको जाऊं अरु प्रह्लादको जगाऊं जगत्की मर्यादा स्थापन करौं, जो नीति है, तिसको अपनी लीलाकरि प्रतिपादन करौं, दैत्यपुरीविषे प्राप्त होइकरि तिसको जगाऊं अरु उसीको अपने प्रकृति आचारविषे जोड़ि आवौं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे भगवच्चित्तविवेको नाम अष्टात्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः ३९.

नारायणवचनोपन्यासयोगवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इस प्रकार चिंतनाकरि सर्वात्मा जो विष्णु देव है, अपने परिवारसहित क्षीरसमुद्रते चले जैसे मेघघटा एकत्र

होइकरि चलै, तैसे आइकरि प्रह्लादके नगरको प्राप्त भये, कैसा नगर है, मानौ दूसरा इंद्रलोक है, मंदिरविषे प्रह्लादको विष्णुजी देखते भये अरु जो निकट दैत्य थे सो विष्णुजीको दूरते देखिकरि भाजि गये जैसे सूर्यको देख उलूकादिक भाजि जावैं तब जो मुख्य दैत्य थे तिनके साथ दैत्यपुरीविषे विष्णुजी प्रवेश करते भये, जैसे तारासंयुक्त चंद्रमा आकाशविषे प्रवेश करता है, तैसे विष्णुजी गरुडपर आरूढ हुआ लक्ष्मी साथ चमर करती और ऋषि देव अनेक आते भये विष्णुजी प्रह्लादके गृह आते भये अरु आते ही विष्णुजी कहते भये. हे महात्मा ! पुरुष जाग जाग, ऐसे कहकरि पांचजन्य शंखको बजावत भये महाशब्द भया, बहुरि प्रह्लादके श्रवणोंसाथ लगाया कैसा शब्द है जो विष्णुजीके प्राणोंते जिसका फुरणा है, जैसे प्रलयकालविषे मेघका शब्द होवै, तैसे बड़े शब्दको सुनिकारि दैत्य भयभीत होइकरि पृथ्वीपर गिरगिर पड़े अरु शनैःशनैः दैत्येंद्रको जगाया जैसे कटकमंजरी मेघकारि प्रफुल्लित होती है, तैसे विष्णुजीने जगाया प्राणशक्ति जो ब्रह्मरंध्रविषे थी, तहांते विष्णुजीने उठाई तब शरीरविषे प्रवेश कर गई, जैसे सूर्यके उदय हुएते सूर्यकी प्रभा वनविषे प्रवेश कर जाती है, तैसे नव द्वारोंविषे प्रवेश करत भई, तब प्राणरूपी दर्पणविषे चित्तसंवित् प्रतिबिंबित होइकरि चैतन्ययुक्त हुई अरु मनभावको प्राप्त भई; जैसे प्रातःकालविषे कमल खिल आते हैं, तैसे नेत्र प्रफुल्लित हो आये, प्राण अरु अपान नाडीविषे छिद्रोंके मार्ग विचरने लगे, जैसे वायुकरि कमल स्फुरने लगते हैं, तैसे मन अरु प्राणशक्तिकरिके अंग फुरने लगे अरु जाग जाग शब्द जो भगवान् कहते थे, तब जागा अरु जानत भया कि, मुझको विष्णु भगवान्ने जगाया है, जैसे मेघका शब्द सुनिकारि मोर प्रसन्न होता है, तैसे प्रसन्न भया मनविषे दृढ स्मृति हो आई, तब त्रिलोकीका ईश्वर विष्णुदेव कहता भया, जैसे पूर्व कमलोद्भव ब्रह्माको कहा था, तैसे प्रह्लादको कहता भया. हे साधो ! तू अपनी महालक्ष्मीका स्मरण कर कि, तू कौन है, समया विना देहके त्यागनेकी इच्छा काहेको करी थी, ग्रहणत्यागके संकल्पते रहित पुरुष हैं तिनको भाव अभावके होनेविषे क्या प्रयोजन है ? उठिकरि अपने

आचारविषे सावधान होहु, यह तेरा शरीर कल्पपर्यंत रहैगा नष्ट नहीं होवैगा, यह नीतिको ज्योंकी त्यों जानते हैं, हे आनंदित ! तू जीवन्मुक्त हुआ राज्यविषे स्थित होहु, क्षीणमन गत - उद्वेग कल्पपर्यंत तेरा देह रहैगा, बहुरि कल्पके अंतविषे तू शरीर त्यागैगा, त्यागिकरि अपनी महिमाविषे स्थित होवैगा ,जैसे घटके फूटेते घटाकाश महाकाशको प्राप्त होता है, अब तू निर्मल दृष्टिको प्राप्त भया है अरु लोकोंका तुझने परावर देखा है, अब तू जीवन्मुक्त विलासी भया है. हे साधो ! द्वादश सूर्य तौ उदय नहीं भये हैं, जो प्रलयकालविषे तपते हैं, अब तू क्यों शरीर त्यागता है उन्मत्त पवन तो चला नहीं, जो त्रिलोकीकी भस्मको उड़ावनेहारा है अरु देवताओंके विमान तिसकरि गिरे नहीं, तू क्यों व्यर्थ शरीर त्यागता है सब लोकोंके शरीर सूखे वृक्षकी मंजरीवत् अभी नहीं सूखे पुष्कर मेघ अरु वह विजली जगतविषे नहीं फुरी तू क्यों व्यर्थ शरीर त्यागता है ? पर्वत तो युद्धकरि परस्पर ठहकने लगे नहीं अबलग मैं भूतोंको खैचने लगा नहीं, अब लोकोंविषे, विचरता हौं, यह अर्थ है, यह मैं हो, यह पर्वत है, यह भूत प्राणी हैं, यह जगत् है, यह आकाश है, तू देहको मत त्याग, देहको धारे रहो. हे साधो ! जो जीव अज्ञानयोगकरि शिथिल भया है, अर्थ यह जो देहविषे आत्माभिमान, है, जो मैं अरु मम तिसकरि व्याकुल रहता है, दुःखोंकरि जीर्ण होता है तिसको मरणा शोभता है, कि मैं कृश हौं, दुःखी हौं, मूढ हौं, अनात्मा अभिमानका दृढ निश्चय है यह भावना जिसके अंतर है, तिसको मरण श्रेष्ठ है, जिसको तृष्णा जलाती है हृदयविषे संसारभावनाजीर्ण करती है, जैसे पुरातन गृहको चूहा जीर्ण करता है, जिसके मनरूपी वनविषे चित्तरूपी लता जो दुःखसुखरूपी पुष्पोंकरि प्रफुल्लित है अरु उदय होती है, तिसको मरण श्रेष्ठ है, जो पुरुष अपने देहविषे आधिव्याधि दुःखोंकरि जलता है अरु कामक्रोधरूपी सर्प जिसके अंतर फुरते हैं, देहरूपी सूखा वृक्ष निष्फल है अरु चित्त चंचल है, इस देह त्यागनेको लोकविषे मरना कहते हैं, स्वरूपकरि नाश किसीका नहीं होता, क्या ज्ञानीका क्या अज्ञानीका, हे साधो ! जिसकी

बुद्धि आत्मतत्त्वके अवलोकनते उपरांत नहीं होती, ऐसा जो यथार्थदर्शी ज्ञानवान् है, जिसका अंतर शीतल रागद्वेषते रहित हुआ है अरु दृश्य-वर्गको साक्षीभूत होइकरि देखता है, तिसका जीना श्रेष्ठ है, जो पुरुष सम्यक् ज्ञानकरि हेयोपादेयते रहित है, चेतनतत्त्वविषे तद्रूप चित्त भया है अरु संकल्पमलते रहित चित्तको आत्मपदविषे जोडा है, जिस पुरुषको जगत्के पदार्थ इष्ट अनिष्ट समान भासते हैं, शांत चित्त हुआ लीलावत् जगत्के कार्यको करता है, ऐसा जो वासनाते रहित पुरुष है अरु इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिविषे राग द्वेष नहीं करता अरु ग्रहण त्यागकी बुद्धि उदय नहीं होती अरु जिसके श्रवण कियेते अरु दर्शन कियेते औरोंको आनंद उपजता है, तिसका जीना शोभता है, जिसके उदय हुएते जीवोंके हृदय कमल प्रफुल्लित होते हैं, तिसका चिर जीवना प्रकाशवान् शोभता है, वह पूर्णमासीके चंद्रवत् सफल प्रकाशता है और नीच नहीं शोभते.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादोपाख्याने नारायणवचनोपन्यासयोगो नाम एकोनचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४०.

प्रह्लादबोधवर्णनम् ।

श्रीभगवानुवाच-हे साधो ! यह जो देह संग दृष्टि आती है, तिसका नाम जीना कहते हैं अरु इस देहका त्याग करि अपर देहविषे प्राप्त होना तिसका नाम मरना कहते हैं. हे बुद्धिमान् ! इन दोनों पक्षोंते अब तू मुक्त है, तुझको क्या मरना अरु क्या जीना, दोनों भ्रममात्र हैं, इस अर्थके दिखावने निमित्त मैं तुझको मरना अरु जीना कहा है, काहेते कि, गुण-वानोंका जीना श्रेष्ठ है अरु मूढोंका मरना श्रेष्ठ है अरु तू न जीता है, न मरैगा; देहके होते भी तू विदेह है, आकाशकी नाईं असंग हैं, जैसे आकाशविषे वायु नित्य चलता है; परंतु आकाश तिसते निर्लेप रहता है, तैसे तू देहविषे निर्लेप रहैगा, देह इंद्रियां, मनआदिककी क्रिया सब तुझकरि होती है, सबका कर्त्ता सत्ता देनेहारा तू ही है अरु स्वरूपकरि

सदा अकर्त्ता है, जैसे वृक्षकी ऊँचाईका कारण आकाश है, तैसे तेरेविषे कर्तव्य है, तू अब जागा है, वस्तुको ज्योंकी त्यों जानी है, तू अस्ति नास्ति सर्वका आत्मा है, यह परिच्छिन्नरूप जो देह है, सो अज्ञानीका निश्चय है, यह केवल दुःखोंका कारण है अरु तू सर्व प्रकार सर्वात्मा चेतन प्रकाश है, तेरी बुद्धि आत्मपरायण है, तुझको देह अदेह क्या, ग्रहण क्या अरु त्याग क्या? तत्त्वदर्शी जो पुरुष हैं, तिनका भाव पदार्थ उदय होवै अथवा लीन होवै, प्रलयकालका पवन चलै, तौ भी चलाय नहीं सकता, भाव अभावते तिसका मन रहित है, जैसे पर्वत ऊपर पर्वत पड़ै अरु चूर्ण होवै अरु कल्पके अग्निविषे जलने लगै तौ भी ज्ञानवान् अपने आपविषे स्थित है, चलायमान नहीं होता, सब भूत स्थित होवैं अथवा इकट्ठे नष्ट हो जावैं अथवा वृद्ध होवैं, वह सदा अपने आपविषे स्थित है अरु इस देहके नष्ट भये नाश नहीं होता, विरोधी हुएते नहीं प्राप्त होता, इस देहविषे जो स्थित परमेश्वर आत्मा है, सो मैं हौं अरु अनात्मा भ्रम नष्ट हो गया है, ग्रहण त्याग यह मिथ्या कल्पना उदय नहीं होती, जो विवेकी तत्त्ववेत्ता है, तिसका संकल्पभ्रम नष्ट हो जाता है कि, यह मैं हौं, यह करौंगा, यह त्याग किया है, यह ग्रहण किया है इत्यादिक भ्रम नष्ट हो जाते हैं, जो प्रबुद्ध पुरुष है, सो सब क्रिया कर्त्ता भी अकर्त्तापदको प्राप्त होता है, सर्व अर्थोंविषे अकर्त्ता अभोक्ता रहता है, किसी जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं करता, जब कर्तृत्व भोक्तृत्व शांत भया, तब आत्मपद शेष रहता है; इस निश्चय करी हुई दृढताको बुद्धिमान् मुक्त कहते हैं, जो प्रबुद्ध पुरुष हैं, सो चिन्मात्र स्वरूप हैं, सर्वको अपने वश करिकै स्थित हैं, ग्रहण किसका करैं अरु त्याग किसका करैं, ग्राह्य अरु ग्राहक शब्दभाव अविद्या है, देह इंद्रियोंकरि होता है, सो ग्रहण करना क्या? अरु त्याग करना क्या? जब ग्राह्यग्राहकभाव हृद-यते दूर हुआ, इसीका नाम मुक्त है, तिसको ऐसी स्थिति आनि उदय होती है, जो परमार्थसत्ताविषे सदा स्थित रहता है, सो पुरुषोंविषे पुरुषोत्तम सुषुप्तिकी नाईं स्थित है, उसके अंगोंकी चेष्टाकरके बोधको

प्राप्त भयी है, परमविश्रांतिमान् निर्वासनिक पुरुषोंकी वासना भी जगत्-विषे स्थित दृष्टि आती है, अर्ध सुषुप्तिकी नाईं चेष्टा करता है, सब जगत्‌विषे आत्मा देखता है, आत्मविषयिणी बुद्धिकरि सुखविषे हर्षवान् नहीं होता; दुःखविषे शोकवान् नहीं होता, एकरस आत्मपदविषे स्थित रहता है; नित्य प्रबुद्ध पुरुष कार्यभावको ग्रहण करता है, जैसे इच्छाते रहित दर्पण प्रतिबिंबको ग्रहण करता है, तैसे भली बुरी भावना तिसको स्पर्श नहीं करती, तिनको आत्मपदविषे जाग्रत् है अरु संसारकी ओरते सोये हैं, सो पुरुष सुषुप्तिरूप है, जैसे बालक पाल-नेविषे सोया हुआ स्वाभाविक अंगको हिलाता है, तैसे उनका हृदय सुषुप्तिरूप है अरु व्यवहार करते हैं. हे पुत्र ! तू अजात परमपदको प्राप्त भया है, गुणवान् हुआ, तू एक दिन ब्रह्माका इस देहको भोगैगा, इस राज्यलक्ष्मीको भोगिकरि बहुरि अच्युत परमपदको प्राप्त होवैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादबोधो नाम
चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४१.

प्रह्लादाभिषेकवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जगतरूपी रत्नोंका डब्बा, अद्भुत दर्शन है, जिसका सो विष्णुदेवने शीतल वाणीकरि जब इस प्रकार कहा, तब प्रह्लाद नेत्र खोलकर धैर्यसहित कोमल वचन मननभावको ग्रहण करि देखा है अरु चर्मदृष्टिकरि बाह्य देखा है, बडा कल्याण हुआ है, परमेश्वर अपना आप स्वरूप अनंत आत्मा है, सर्व संकल्पते रहित आकाशवत् निर्मल है, अब मुझको न शोक है, न मोह है; न वैराग्यकरि देहत्यागकी चिंता है, जो कछु कार्य भयदायक होता है, सो एक आत्माके विद्यमान शोक कहां अरु नाश कहां, देहरूप संसार कहां अरु संसारकी स्थिति कहां, भय कहां अरु अभयता कहां ? मैं यथा इच्छित अपने आपकरि आपविषे स्थित हौं, इस प्रकार मैं निर्मल सब विस्तृतरूप

केवल पावनविषे स्थित हौं, संसारबंधनको त्यागिकरि विरक्त भया हौं, जो अप्रबुद्ध मूढ हैं तिनकी बुद्धिविषे हर्ष शोक चिंता विकार सदा रहते हैं अरु देहके भावविषे सुख मानते हैं, अभावविषे दुःखी होते हैं, यह चिंतारूपी विषकी पंक्ति मूढोंको लेपायमान होती है, यह इष्ट है, यह अनिष्ट है, यह ग्रहण करने योग्य है, यह त्यागने योग्य है, इस प्रकार मूर्खोंके चित्तकी अवस्था डोलायमान होती है, पंडितोंकी नहीं होती, मैं भिन्न हौं, वह भिन्न है, यह अज्ञान करिकै अंधवासना है, शुद्ध बुद्धिके विद्यमान नहीं रहती, जैसे सूर्यके किरणोंते रात्रि दूर रहती है, तैसे यह वासना दूर रहती है, यह त्याग करिये, यह ग्रहण करिये, सो मिथ्या चित्तका भ्रम है, सो उन्मत्त अज्ञानीके अंतर होता है, ज्ञानवान्‌के अंतर यह भ्रम उदय नहीं होता. हे कमलनयन! जो सर्व तूही है, विस्तृत आत्मारूप है, हेयोपादेय द्वैतभाव कल्पना कहां है? यह संपूर्ण जगत् विज्ञानरूप सत्ताका आभास है, सत्य असत्यरूप जगत्‌विषे ग्रहणत्याग किसका करिये? केवल अपने स्वभावकरि द्रष्टा अरु दृश्यका विचार किया है, तिसविषे मैं प्रथम क्षीण विश्रांतिमान् हुआ था, अब भाव अभाव जगत्‌के पदार्थोंते मुक्त भया हौं, हेयोपादेयते रहित आत्मतत्त्व मुझको भासता है, समभावको प्राप्त भया हौं, अब मुझको संशय कछु नहीं रहा, जो कछु करता हौं; सो आत्माकरि करता हौं त्रिलोकीविषे जबलग तू पूजने योग्य है जबलग यह उन्मत्त नहीं भया, ताते पूजन करता हौं, आदर संयुक्त तुम ग्रहण करो. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! इस प्रकार दैत्यराज कह-करि क्षीरसमुद्रविषे शयन करनेहारे विष्णुको श्रेष्ठ सुमेरुकी मणिसों पूजत भया, बहुरि शंख चक्र गदा पद्म आदिक शस्त्रका पूजन करत भया, बहुरि गरुडकी पूजा करत भया, बहुरि देवता विद्याधरकी पूजा करी, इस प्रकार भगवान्‌को परिवारसंयुक्त पूजत भया, अन्तर आत्मस्वरूपकी अरु बाहिर विष्णु देवकी मूर्तिपूजन किया, तब लक्ष्मीपति कहत भये.

श्रीभगवानुवाच-हे दैत्येश्वर! तू उठकर सिंहासनपर बैठ, मैं तुझको अपने हस्तसों अभिषेक करता हौं, पांचजन्य शंख बजाता हौं

तिसका शब्द सुनकर सब सिद्ध देवता आयकरि तेरा मंगल करेंगे. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इस प्रकार कहकर विष्णुजीने दैत्यको सिंहासनपर बैठाया, जैसे सुमेरुपर मेघ आय बैठे तैसे, बैठाइकारि क्षीरसमुद्रादिकका अरु गंगादिक तीर्थोंका जल मँगाया, तब पांचजन्य शंख बजाया ; तिसके शब्दकरि सब सिद्धगण ऋषि ब्राह्मण विद्याधर देवता मुनिके समूह आये, सर्वात्मा पुरुष दैत्यराजके निमित्त सबको खैंचि ले आये पवनगण देवगण सब स्तुति करत भये, प्रह्लादको इस प्रकार अभिषेक देइकारि मधुसूदन कहत भये. श्रीभगवानुवाच– हे निष्पाप ! जबलग सुमेरुके धरनेहारी पृथ्वी है अरु सूर्य चंद्रमाका मंडल है, तबलग तू अखंडित गुणवान् राज्य करि इष्ट अनिष्टविषे समबुद्धि वीतराग क्रोधते रहित होइकारि भोग अरु राज्यकी पालना करियो, तुझको पूर्ण भूमिका प्राप्त भई है, तिसविषे स्थित हुए तुझको जो राज्यगणोंका प्रवाह जैसे प्राप्त होवै तैसे, हर्षशोकते रहित होइकारि विचरौ, स्वर्ग प्राप्त होवै अथवा नरक प्राप्त होवै, तू उद्वेगते रहित होइकारि भोगहु, देश काल क्रिया कार्य जैसे प्राप्त होवै, तैसे होवै, तैसे ही स्थित होहु, हेयोपादेयते रहित हुआ तू बंधमान न होवैगा , संसारकी स्थिति तुझने सब देखी है अरु सबको जानता है और मैं तुझको क्या उपदेश करौं, तू रागद्वेषते रहित होइकारि राज्य भोग, अब दैत्योंका रुधिर धरणीपर न पडैगा, अर्थ यह कि, देवताओंसे विरोध न होवैगा, आजते देवता अरु दैत्योंका संग्राम बंद हुआ, जैसे मंदराचलते रहित क्षीर समुद्र शांतिमान् भया, तैसे सब जगत् स्वस्थ रहैगा, मोहरूपी जो तम है, सो तेरे हृदयते दूरि भया है, सदा प्रकाशस्वरूपकी लक्ष्मी हुई है, अनंत विलासको राज्यलक्ष्मीकरि भोगता आत्मपदविषे स्थित रहै.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादाभिषेको नाम एकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४२.

प्रह्लादव्यवस्थावर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इस प्रकार कहकरि पुंडरीकाक्ष विष्णु परिवारसंयुक्त चले मानो दूसरी संसारकी रचना दैत्यमंदिरते चली है, ता पाछे प्रह्लादने पुष्पांजलि दीनी, क्रमकरिकै क्षीरसमुद्रको प्राप्त भये, देवताओंको बिदा करिकै आप शेषनागके आसनपर स्थित भये, जैसे श्वेत कमलपर भँवरा बैठे; तैसे बैठिकरि इंद्रको सब देवतासंयुक्त सबविषे स्थित किये अरु पातालोकविषे दैत्येश्वरको बैठाया, तब आप विगतज्वर हुआ, सृष्टिकी स्थितिविषे जो चिंतना थी, सो दूर हो गयी, देवता अरु दैत्यका विरोध रहता था सो नष्ट भया, सब शांतिको प्राप्त भये. हे रामजी ! यह दृष्टि संपूर्ण मल अज्ञानके नाश करनेहारी है, जो प्रह्लादके बोधकी प्राप्तिकी अवस्था मैंने तुझको कही है, सो कैसी अवस्था है, चंद्रमाके मंडलवत् शीतल है, जो मनुष्यलोकविषे बड़ा पापी होवै अरु इसको विचारै, तब वह भी शीघ्र ही परमपदको प्राप्त होवै अपर जो पापोंते रहित है, तिसकी क्या वार्त्ता कहिये, सम्यक् विचार करिकै पाप नष्ट हो जाता है, जो इन वाक्योंको विचार करै सो कौन है जो परमपदको प्राप्त न होवै. हे रामजी ! अज्ञानरूप जो पाप सो इसके विचारनेकरि नष्ट हो जाता है, पापोंका कारण जो अज्ञान है; तिसका नाश करनेहारा यह विचार है, ताते विचारका त्याग कदाचित् न करौ, यह जो प्रह्लादकी सिद्धता कही है, इसको जो मनुष्य विचारै तिसके अनेक जन्मोंके पाप नष्ट हो जावैं, इसविषे संशय कछु नहीं. राम उवाच हे भगवन् ! प्रह्लादका मन तौ परमपदविषे प्रणमी गया था पांचजन्य शब्द करिकै तिसको कैसे जगाया ? वसिष्ठ उवाच-हे निष्पाप रामजी ! लोकविषे मुक्ति दो प्रकारकी है एक सदेह अरु एक विदेह, तिनका भिन्न भिन्न विभाग सुन, जिस पुरुषकी बुद्धि देहादिकोंते असंसक्त है, ग्रहणत्यागकी जिसके विषे ईषणा नहीं, निरहंकार हुआ चेष्टा करता है, तिसको तू सदेहमुक्ति जान अरु देहादिक सब नष्ट हो जावैं बहुरि जन्मको

धरै नहीं, तिसको विदेहमुक्ति जान, तिस पदको प्राप्त होता है, जो अदृश्यरूप है अरु अज्ञानीकी वासना कच्चे बीजकी नाईं है, जन्मरूपी अंकुरको प्राप्त करती है अरु ज्ञानवान् मुक्तिकी वासना भूने बीजकी नाईं जन्मरूपी अंकुरते रहित होती है अरु विदेहमुक्तकी वासनाका अंकुर दृष्टि नहीं आता, जीवन्मुक्त पुरुषके हृदयविषे शुद्ध वासना होती है, पावनरूप परम उदारता सत्तामात्र नित्य आत्मध्यानमें है अरु संसारकी ओरते सुषुप्तिकी नाईं शांतरूप है, सहस्र वर्षका अंत हो जावै अरु शुद्ध वासनाका बीज हृदयविषे होवै, तौ वह पुरुष समाधिते जागैगा, सो जीवन्मुक्त है, ताते प्रह्लादके अंत शुद्ध वासना थी, तिसकारि पांचजन्य शंखके शब्दसों जागि आया अरु विष्णु सब भूतोंका आत्मा है, जैसे जिसकी इच्छा फुरती है, तैसे ही तत्काल होता है, सर्वज्ञ सबका कारण है, जब विष्णुने चिंतना करी तब प्रह्लाद जागा, आप अकारण हैं, कोऊ इसका कारण नहीं, यह सब भूतोंका कारण है, सृष्टिकी स्थिति निमित्त आत्मा पुरुषने यह वपु धारा है, आत्माके देखनेकारि माधव विष्णुका दर्शन होता है, अरु विष्णुकी आराधनाकारि शीघ्र ही आत्माका दर्शन होता है, आत्माके देखने निमित्त तुम भी इसी दृष्टिको आश्रय करौ, तू विराटरूप है, इसी दृष्टिकारि शीघ्र ही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी. जो निरंतर आत्मपद है, यह वर्षाकालकी नदीवत् संसार असार बादर है, सो विचाररूपी सूर्यके देखे विना जडताको दिखावता है, विष्णुरूप जो आत्मा है तिसकी प्रसन्नताते बुद्धिमान्‌को यह भास्वरूप माया नहीं वेधती, जैसे यक्षमाया यक्षमंत्रवालेको नहीं वेध सकती, तैसे आत्माकी इच्छाते यह संसारमाया घनताको प्राप्त होती है, अरु आत्माकी इच्छाकारि निवृत्त होती है; यह संसारमाया ईश्वरकी इच्छासे वृद्ध होती है, जैसे अग्निकी ज्वाला वायुकारि वृद्ध होती है अरु वायुहीकारि नष्ट होती है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादव्यवस्थावर्णनं नाम द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४३.

प्रह्लादविश्रांतिवर्णनम्।

राम उवाच–हे भगवन् सब धर्मोंके वेत्ता ! तुम्हारे वचन परम शुद्ध कल्याण स्वरूप हैं, तिनको श्रवण करि मैं आनंदवान् भया हौं जैसे चंद्रमाकी किरणोंकरि औषधी पुष्ट होती हैं तुम्हारे वचनके श्रवणकी जिसको वांछा है, सो पुरुष जैसा पुष्पोंकी मालाकरि सुंदर छाती शोभती है तैसे शोभता है कैसे वचन हैं, परम पावन अरु कोमल हैं. हे गुरु ! तुम कहते हो, सब कार्य अपने पुरुष प्रयत्नकरि सिद्ध होता है, जो ऐसे है तो प्रह्लाद माधवके वर विना क्यों न जानता भया ? जब विष्णुने वर दिया, तब ज्ञान जानता भया. वसिष्ठ उवाच–हे राघव ! जो कछु प्रह्लादको प्राप्त भया है, सो महात्मा पुरुषोंको अपने अपने पुरुषार्थकरि प्राप्त भया है, पुरुषार्थ विना कछु नहीं प्राप्त होता, काहेते कि, जैसे तिलों अरु तेलविषे भेद कछु नहीं तैसे, आत्मा अरु विष्णुविषे भेद कछु नहीं, जो विष्णु है, सो आत्मा है अरु आत्मा है, सो विष्णु है, विष्णु अरु आत्मा दोनों एक वस्तुके नाम हैं, जैसे विटप अरु पादप दोनों एक वृक्षके नाम हैं, तैसे प्रह्लादने प्रथम अपने आपकरि अपनी प्रेमशक्तिको विष्णुभक्तिविषे जोडा, सो आत्मशक्तिकरि जोडी हुई आत्माते आप ही वर पाता भया अरु आप ही विचारकरि अपने मनको जीता यह कदाचित् आत्माविषे आप ही अपनी शक्तिकरि जागता है अथवा विष्णुभक्ति करि जागता है. हे रामजी ! चिरपर्यंत आराधना करता प्रतापवान् हुआ, ताते विचारते रहितको विष्णु भी ज्ञान देनेको समर्थ न भया, आत्माके साक्षात्कारविषे मुख्य कारण अपने पुरुषार्थते उपजा विचार है अरु गौण कारण वर आदिक हैं, ताते तू मुख्य कारणको आश्रय कर, प्रथम पांच इंद्रियोंको वश कर; चित्तको आत्मविचारविषे जोड़, यह अभ्यास कर प्रथम पांच इंद्रियोंको वश कर जो कछु किसीको कदाचित् प्राप्त होता है, सो अपने पुरुषार्थकरि होता है; पुरुषार्थ विना नहीं होता, अपने पुरुषार्थ प्रयत्नकरि इंद्रियांरूपी जो पर्वत हैं, तिनते उल्लंघन

होवै, बहुरि संसारसमुद्रको तरि जावै, तब परमपदकी प्राप्ति होवै, जो पुरुष-प्रयत्न विना जनार्दन दीखता होवै, तौ मृगपक्षीगणोंको क्यों दर्शन देइकारि उद्धार नहीं कर जाता ? जो गुरु अपने पुरुषार्थ विना उद्धार करते होवें तौ अज्ञानी अविचारी ऊंट बैल आदिक पशुको क्यों नहीं कर जाते ? ताते न विष्णुकारि, न गुरुकारि, न किसी अपरकारि, पांनेकी इच्छा बुद्धिमान् करते हैं, अपने मनके स्वस्थ किये विना परम सिद्धताकी प्राप्ति महात्मा पुरुष नहीं जानते, वैराग्य अरु अभ्यासकारि जिनने इंद्रियांरूपी शत्रु वश किये हैं, सो अपने आपकारि तिसको पाते हैं, अपर किसी कारि नहीं पाते. हे रामजी ! आपकारि अपनी आराधना करहु, आपकारि अपनी अर्चना करहु, आपकारि आपको देखहु, आपकारि आपविषे स्थित होहु. शास्त्र विचारते रहित मूढ अपर जो हैं, तिनके निमित्त वैष्णवभक्ति कल्पी है, सो प्रवृत्तिकी स्थिति निमित्त प्रथमसुख जो अभ्यास यत्नका कहा है, तिसते जो रहित पुरुष हैं, तिनको गौण पूजाका क्रम कहा है, काहेते कि, इंद्रियोंको वश नहीं किया अरु जिनने इंद्रियोंको वश किया, तिनको भेद पूजासाथ क्या प्रयोजन है ? विचार उपशम विना विष्णुभक्ति सिद्ध नहीं होती अरु जब विचार उपशम संयुक्त भया, तब कमल पाषाणसाथ क्या प्रयोजन है ? ताते विचार संयुक्त होइकारि आत्माका आराधन करहु, तिसकी सिद्धताते तू सिद्ध होवैगा, तिसको सिद्ध नहीं किया, तौ वनका गर्दभ है, जो प्राणी विष्णुके आगे प्रार्थना करते हैं सो अपने चित्तके आगे क्यों नहीं करते ? सब जीवोंके अंतर विष्णुजी स्थित हैं, तिसको त्यागिकारि जो बाह्य विष्णुपरायण हो जाते हैं, सो बुद्धिमान् नहीं, हृदय गुफाविषे जो चेतनतत्त्व स्थित है, सो ईश्वरका मुख्य सनातनवपु है, शंख, चक्र, गदा, पद्म जिसके हस्तविषे हैं, सो आत्माका गौण वपु है, जो मुख्यको त्यागिकारि गौणकी ओर धावते हैं, सो विद्यमान अमृतको त्यागिकारि जो साधनकारि सिद्ध होवै, तिसकी प्राप्तिनिमित्त यत्न करते हैं. हे रामजी ! मनरूपी हस्तीको जिस पुरुषने आत्मविवेकके साथ वश नहीं किया, तिस अविवेकी चित्तको रागद्वेष ठहरने नहीं देते, शंख, चक्र, गदा, पद्म जिसके हाथविषे हैं, तिस ईश्वरकी जो अर्चना करते हैं, सो कष्ट

तपस्या करि पूजन करते हैं, तिनका चित्त समय पाइकरि निर्मल हुए भाव अभ्यास वैराग्यको प्राप्त होता है अरु नित्य अभ्यासकरि भी चित्त निर्मल होता है, तब आत्मफलको प्राप्त होता है, चित्त निर्मल हुए विना आत्मफलको प्राप्त नहीं होता, जब चित्त निर्मल हुआ, तब वैराग्य अभ्यासवान् होइकरि आत्मफलका भोगी होता है, जैसे बीज बोया समयकरि फल देता है, तैसे क्रमकरि फल होता है. हे रामजी! विष्णुपूजाका जो क्रम है, सो भी निमित्तमात्र मधुसूदनने वर कहे हैं अरु अमित प्रकाश है जिसका, तिस आत्मतत्त्वते अभ्यासरूपी शाखा-करि फल प्राप्त होता है अरु सबते उत्तम जो परम संपदाका अर्थ है, सो अपने मनके निग्रहकरि सिद्ध होता है, अपने मनका निग्रह करना बीज है, सो चेतनरूपी क्षेत्रते प्रफुल्लित होइकरि फलदायक होता है, संपूर्ण पृथ्वीकी निधि अरु संपूर्ण शिला बडी बडी मणिकी होवैं, तो भी मनके निग्रह समान नहीं, जैसा दुःखका नाशकर्त्ता बडा पदार्थ मनका निग्रह है, तैसा अपर कोऊ नहीं, तबलग यह जीव अनेक जन्म पाता है, जबलग उपशमको नहीं प्राप्त भया, मनरूपी मत्स्य संसारसमुद्रविषे भ्रमता है. हे रामजी! ब्रह्मा विष्णु महेशको चिरकाल पर्यंत पूजता रहे अरु मन उपशम विचारसंयुक्त न भया, तो जो देवता कृपालु होवै, तो भी इसको संसार समुद्रते तराइ नहीं सकते, यह जो भासुर आकार जग-तके पदार्थ भासते हैं, तिनको इंद्रियोंकरि त्याग करिये तब जन्मके अभा-वका कारण जानिये, विषयोंकी चिंतवनाते रहित होइकरि निरामय सब दुःखोंते रहित आत्मसुख है, तिसविषे स्थित होहु; जो सत्तामात्र तत्त्व है सबका साररूप है, तिसका स्वाद लेइकरि मनरूपी नदीके पारको प्राप्त होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादविश्रांति-वर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४४.

गाधिबोधोपाख्याने गाधिविनाशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! यह जो संसाररूप नाम्नी माया है, सो अनंत है और किसी प्रकार इसका अंत नहीं आता, जब चित्त वश होवै, तब यह निवृत्त हो जाती है, अन्यथा नहीं निवृत्त होती, जेता कछु जगत् देखने सुननेविषे आता है, सो सब मायामात्र है, सो मायारूप जगत्के भ्रमकरि भासता है, इस पर पूर्व इतिहास हुआ है, सो तू सुन. हे रामजी! इस पृथ्वीपर एक कोशल नाम देश है, सो कैसा है, जो रत्नोंकरि पूर्ण है, जैसे सुमेरु पर्वत रत्नोंकारि पूर्ण है, तैसे वह रत्नोंकारि पूर्ण है, जातिविषे जो उत्तम पदार्थ हैं, सो सब तिस देशविषे पाते थे, तहां एक गाधि नाम ब्राह्मण होता भया, सो कैसा था, वेदवेत्ताओंविषे प्रवीण मानो वेदकी मूर्ति था अरु बालक अवस्थाते लेइकारि वैराग्य आदिक गुणों सहित शोभता भया, जैसे प्रकाशकरि भुवन शोभता है, तैसे शोभता भया, एक कालमें कछु कार्य मनविषे धारि तप करने निमित्त वनको गया, तब एक वनविषे कमलोंकारि पूर्ण ताल देखता भया, तिसविषे कंठपर्यंत जलमें स्थित होइकारि तप करने लगा अपना कार्य मनविषे धारिकारि विष्णुके ध्यानमें खड़ा हो रहा, अष्टमासपर्यंत दिन रात्रि जलमें खड़ा रहा, तिसके दृढ तपको देखिकारि जब विष्णु प्रसन्न हुए, तब जहां ब्राह्मण तप करता था तहां आनि प्राप्त भये, जैसे ज्येष्ठ आषाढकी तपी पृथ्वीपर मेघ आता है, तैसे आइकारि विष्णु कहते भये. हे ब्राह्मण! जलते बाहर निकसि आवहु अरु जो कछु वांछित फल है, सो मांग. तब गाधिने कहा-हे भगवन्! असंख्य जीवोंका हृदय कमल है; तिनके छिद्रविषे तुम भँवरे हौ अरु त्रिलोकीरूपी कमलोंके तुम तालाव हो, ऐसे ईश्वर जो तुम हौ, सो मेरा तुमको नमस्कार है. हे भगवन्! मुझको यह इच्छा है कि, तुम्हारी जो आश्चर्यरूप माया है; जिसकारि यह जगत् रचा है, तिसी प्रकार मैं तिसको देखौं. हे रामजी! जब इस प्रकार गाधि ब्राह्मणने कहा, तब विष्णुने कहा-

हे ब्राह्मण ! मायाको देखैगा अरु देखिकरि बहुरि त्यागि भी देवैगा, ऐसे कह करि विष्णु अंतर्धान हो गये तब ब्राह्मण वरको पाइकारि आनंदवान् हुआ अरु जलते निकसा, जैसे निर्धन पुरुष धनको पाइ करि आनंदवान् होता है, तैसे ब्राह्मण वरको पाइकारि आनंदवान् भया अरु चलते बैठते उसकी सुरत विष्णुके वरकी ओर लगी रहै कि, मैं माया कब देखौंगा, तब एक कालमें तिसी तालावपर स्नान करने लगा अरु डुबकी दीनी, मनविषे अघमर्षण मंत्रको जपने लगा, अघमर्षण कहिये पापोंको नाश कर्त्ता, तिस मंत्रको जपते तिसका चित्त विपर्यय होयकारि निकसि गया, तब उसको कृष्णमंत्र भूल गया अरु आपको बहुरि अपने गृहविषे स्थित देखता भया, बहुरि आपको मृतक हुआ देखा कि, मैं मृत्यु पाया हौं अरु सब कुटुम्बके लोग रुदन करते हैं, शरीरकी कांति जाती रही है, जैसे टूटे कमलोंकी शोभा जाती रहती है, तैसे प्राण निकस गया, जैसे पवनके ठहरेते वृक्ष अचल हो जाता है, तैसे अंग अचल हो गया अरु ओठ फाटि विरस हो गये, मानौ अपने जीवनेको हँसते हैं, माता गाधिको पकड़ि बैठी है, सब परिवार इकट्ठे हुए हैं, जैसे वृक्षपर पक्षी आनि इकट्ठे होते हैं, जैसे पुलके टूटे जल चलता है; तैसे रुदन करते हैं, तब बांधव लोग कहते भये, अब यह अमंगलरूप है, इसको जलाइये, ऐसे कहिकारि जलावनेको ले चले, चितामें डारिकै जलाय दिया, बहुरि अपने गृहमें आइकारि क्रिया कर्म करते भये.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे गाधिबोधोपाख्याने गाधिविनाश-वर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४५.

गाधिबोधोपाख्याने चाण्डालीवर्णनम ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! तिसते उपरांत ब्राह्मण एक देशविषे चाण्डाल भया उस देशविषे एक चांडालोंका ग्राम था, तहां आपको एक चांडालीके गर्भविषे देखता भया कि मैं यहां आनि पड़ा हौं, जैसे श्वानकी विष्ठाविषे

कृमि होता है, तैसे आपको प्रवेश किया देखता भया, तब समय पाइ-कारि गर्भते बाहर निकसा, जैसे पक्का फल वृक्षते गिरता है, तैसे श्याम मूर्ति चाण्डालीते निकसा अरु बहुत सुन्दर बालक जन्मा चांडालीकी इसके साथ प्रीति भयी, बढ़ता जावै, जैसे छोटा वृक्ष बढ़ जाता है, तैसे द्वादश वर्षका भया, बहुरि षोडश वर्षका भया, तब श्वान साथ लेकारि वनमें जावै, मृगोंको मारै इस प्रकार बहुत स्थानोंमें विचरै बहुरि विवाह भया, यौवन अवस्थाको यौवनविषे व्यतीत करता भया, बहुत बड़ा कुटुम्बी भया पुत्र कलत्र बहुत भये, बहुरि वृद्ध भया, शरीर जर्जरीभाव हुआ, तृणोंकी कुटी बनाय कारि बाहर जाय रहा, जैसे मुनीश्वर रहते हैं, वहां दुर्भिक्ष पड़ा, इसके बांधव क्षुधाकारि मरने लगे, तब वहांते एकला ही निकसा बहुतेरे स्थानोंको लँघता गया, एक कीर देश है तहां जाइ प्राप्त भया, सो सुंदर देशका राजा मृतक भया अरु यह राजमार्गको चला जाता था, सो उस राजाका एक बड़ा हस्ती था तिसको मंत्रियोंने छोड़ा था, जो कोई पुरुष इसके सम्मुखमें लगै, तिसको राजा करिये तब वह हस्ती चला आवै, इसने तिसको देखा बहुत सुंदर चरणोंकारि चला आवै, मानौ सुमेरु पर्वत चरणोंकारि चला आता है जब निकट आया; तब इसको शीशपर चढ़ाय लिया, जैसे सूर्यको सुमेरु शीशपर बैठा लेवै तैसे हस्तीने इस चाण्डालको बैठाय लिया, तब नगारे तुरहियाँ बाजने लगीं अरु बडे शब्द होने लगे मानौ प्रलयके मेघ गर्जते हैं अरु भाट आदिक आनि स्तुति करने लगे अरु इसके मुखकी शोभा हस्तीपर बैठते और हो गई तब सेनासहित राजा शोभता भया, जैसे ताराविषे चन्द्रमा शोभता है तैसे शोभता चला अन्तःपुरविषे जाय राणियोंमें स्थित भया, सब ओर राणियां सहेलियां इसके निकट आय स्थित भईं अरु इसको मिलने लगीं स्नान कराइके नाना प्रकारके हीरे मोती भूषण अरु सुंदर वस्त्र पहिराये तिसकारि शोभायमान भया राजा होइकारि राज्य करत भया, सब स्थान अरु सब देशोंविषे इसकी आज्ञा चलने लगी सब लोक इसते भय पावैं बडे तेज अरु बडी लक्ष्मीकारि संपन्न हुआ अरु तेजवान् होइकारि विचरने लगा जैसे

वनविषे सिंह विचरता है इस प्रकार चिरपर्यंत राज्य करता भया हस्ती-पर चढ़िकर शिकार खेलै गवल नाम राजा होइकरि सब देशपर आज्ञा करता भया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे गाधिबोधोपाख्यानेचाण्डाली-वर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ४६.

राजप्रध्वंसवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इस प्रकार लक्ष्मीको पाइकरि आनन्दवान् हुआ जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है तैसे शोभता भया अरु आठ वर्षपर्यंत राज्य करता भया तब एक समय भूषण वस्त्रोंको पहिरि बैठा है अरु मनविषे संकल्प आनि फुरा कि मुझको वस्त्र भूषणके पहिरनेकरि क्या ? अरु इनकी सुंदरता क्या है ? मैं तौ राजाधिराज अपने तेजकरि तेजस्वी शोभायमान हौं. हे रामजी ! ऐसे विचारकरि भूषण वस्त्र उतारि डारे, शुद्ध श्याम मूर्ति होइकरि स्थित भया, जैसे प्रातःकालविषे तारागणते रहित श्याम आकाश होता है, तैसे होइकरि बहुरि अपनी चंडाल अवस्थाके वस्त्र पहिरे, एकला ही निकसिकरि बाहिर डेवढीविषे जायकरि स्थित भया, जैसे सूर्य आकाशमार्गको एकला चलता है, तैसे एकला होइकरि राजमार्गकी डेवढ़ीविषे जाय खडा हुआ, तब उन देशके चाण्डाल जो दुर्भिक्षकरि यह छोड आया था, तामेंते बडे चाण्डाल उस मार्गमें आय निकसे; तिनविषे एक चाण्डाल तंत्री हाथविषे लेइकरि आता था, तिसने राजाको देखिकरि पहँचाना, तब राजाके सम्मुख आया, मानौ श्याम पर्वत चला आता है अरु कहत भया-हे भाई ! एता काल तू कहां था ? हमको छोडिकरि यहां आइकरि सुख भोगने लगा है. हे भाई ! यहांके राजाने तुझको सुखी किया होवैगा, काहेते कि तू गाता भला है राजाको राग प्यारा होता है अरु तू कोकिलाकी नाईं गाता है, इस कारणते प्रसन्न होइकरि बहुरि धन

दिया होवैगा अथवा किसी और धनीने तुझको प्रसन्न होइकारि मंदिर धन दिया होवैगा. हे रामजी! इस प्रकार वह चांडाल मुखते कहता अरु भुजा पसारता इसके सन्मुख चला आवै अरु यह नेत्र हाथोंसे उसको जनावै कि, तूष्णीं होहु, मुखते कछु न कहहु, परंतु वह चांडाल कछु समुझै नहीं, सम्मुख होइकारि चला आवै, ज्यों ज्यों वह चला आवै; त्यों त्यों राजाकी कांति घटती जावै, जैसे गैडेकारि मारे हुए कमलोंकी कांति घटि जाती है अरु ऊपर झरोखेविषे सहेलियां देखत भईं उन्होंने देखकर विचार किया कि, राजा चांडाल है, ऐसे विचार-कारि महाशोकको प्राप्त भईं और कहत भईं कि, हमको बडा पाप प्राप्त भया है, जो इसके साथ हमने स्पर्श किया है अरु भोजन किया है, चिरपर्यंत विचरी हैं, ऐसे शोकवान् होइकारि सबकी कांति नष्ट हो गई; जैसे बर्फ पडनेकारि कमलपंक्तिकी कांति जाती रहती है, जैसे वनको अग्नि लगनेकारि वृक्षोंकी कांति जाती रहती है, तैसे उनकी कांति जाती रही, शोकवान् होइकारि कष्ट पाती भयीं अरु सब नगरवासी भी सुनिकारि शोकवान् भये अरु हाय हाय शब्द करने लगे, तब वह चांडाल राजा अपने अंतःपुरविषे आया, जेते कछु अंतर लोग थे सो तिसको देखिकरके भागे, निकट कोऊ न आवै, जैसे पर्वतको अग्नि लगै, वहांते मृगपक्षी भाग जावैं, तैसे चांडाल राजाके निकट कोऊ न आवै, मंत्री टहलुए स्त्रियां सब दूरते भाग जावैं तब तिस देशविषे जो पंडित बुद्धिमान् थे, तिन्होंने विचार किया कि, बड़ा अनर्थ भया है, एता काल हम चांडाल राजा करिकै जीये हैं, हमको बड़ा पाप लगा है, इस पापका और प्रायश्चित्त कोई नहीं, हम सब चिता बनाय अग्निविषे प्रवेश कर जलि मरैंगे, तब यह पाप निवृत्त होवैगा. हे रामजी! जब यह विचार ब्राह्मण क्षत्रिय लोगोंने किया, तब तिसके अनंतर चिता बनाइकारि जलने लगे, पुत्र कलत्र बांधवोंको छोडिकारि अग्निमें प्रवेश करैं जैसे दीपकविषे पतंग प्रवेश करैं, तैसे जलैं अरु जैसे आकाशविषे तारे दृष्टि आवैं, तैसे अनेक चिताका चमत्कार दृष्टि आवै अरु धूम्रकारि अंधकार हो रहा, कई मनुष्य

धर्मात्मा अपनी इच्छाकारि न जले, जब अपनी इच्छाकारि न जले, तब तिनको अपर ले जलावैं, तब चाण्डाल राजा विचारत भया कि, मेरे एकके निमित्त एते नगरवासी जलते हैं, जीना भी तिसका श्रेष्ठ है, जिसते शोभा उत्पन्न होवै, जिसके जीनेकरि पाप उत्पन्न होवै, तिसको मरना श्रेष्ठ है. हे रामजी ! ऐसे विचारिकरि उस राजाने भी चिता बनाई अरु जैसे दीपकविषे पतंग प्रवेश करता है; तैसे राजा प्रवेश करता भया अरु अग्निका तेज शरीरको लगा, तब गाधिका शरीर जो तालावविषे डुबकी लगाया था, सो कंपायमान हुआ, तब जलते बाहर शीश निकासा, परंतु सावधान भया. वाल्मीकिरुवाच–इस प्रकार जब वसिष्ठजीने कहा, तब सूर्य अस्त भया, सब सभा परस्पर नमस्कार करिकै स्नानको गयी, बहुरि रात्रि नष्ट भयेते आनि स्थित भये.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे गाधिबोधोपाख्यानेराजप्रध्वंसवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४७.

प्रत्यक्षावलोकनवर्णनम् ।

2:48 mts.

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! एता भ्रम उसने दो मुहूर्त्तविषे देखा
5/2(24) अर्ध घटीपर्यंत बोध कछु न हुआ, तिसते उपरांत बोधवान् भया अरु उस संसारभ्रमते रहित हुआ, जैसे मद्यपानका कफ क्षीण भयेते बोधवान् होवै, तैसा बोधवान् हुआ, बाहर निकसिकरि विचारने लगा कि, मुझको कछु भ्रम जैसा हुआ, कहां था वह मेरा गृहविषे मरना, बहुरि 1.
2. चांडालके गृहविषे जन्म लेना, बहुरि कुटुंबविषे रहना, बहुरि राज्य करना, 3.
बडा भ्रम मुझको भया है. हे रामजी ! ऐसे विचारकरि बहुरि संध्यादिक कर्म करता भया, इस भ्रमको बहुरि बहुरि स्मरण करिकै आश्चर्यवान् होवै अरु ऐसे न जानि सकै कि, भगवान्का वर पाइकरि मैंने माया देखी, जब केताक काल व्यतीत भया, तब एक ब्राह्मण दुर्बल

जैसा क्षुधार्थी अरु थका हुआ इसके आश्रमपर आया, मानौ ब्रह्माके आश्रमपर दुर्वासा ऋषि आया है, तब गाधिने उस ब्राह्मणको आदर संयुक्त बैठाया अरु फल फूल इकट्ठे करिकै तिसके आगे आनि रक्खे, जैसे वसंत ऋतुकरिकै फल फूलसाथ वृक्ष पूर्ण होता है, तैसे उसको पूर्ण किया अरु केतेक दिन वहां रहा, संध्यादिक कर्म मंत्र जाप इकट्ठे करैं, रात्रिको पत्रोंकी शय्या बनाइकरि शयन करै, तब एक रात्रिके समय शय्यापर बैठे चर्चा वार्त्ता करते थे, तब प्रसंग पाइकरि गाधिने पूछा कि, हे ब्राह्मण ! तेरा शरीर कृश जैसा अरु थका हुआ है, सो क्या कारण है ? हे रामजी ! जब इस प्रकार गाधिने ब्राह्मणसे पूछा, तब उसने कहा–हे साधो ! जो कछु तैने पूछा है, सो मैं कहता हौं, हम सतवादी हैं, जैसे वृत्तांत हुआ है सो तू सुन. मैं एक कालमें देशांतर फिरता फिरता उत्तरदिशाकी ओर प्राप्त भया, तहां कीरदेश-विषे जाता भया, वहाँ रहने लगा, वहांके गृहस्थ भले प्रकार टहल करैं, तिनके भले भोजन वस्त्र करिकै प्रसन्न होऊं, रस स्वाद करिकै मेरा चित्त मोह गया, तब एक दिन मेरे मुखते यह शब्द निकसा कि यहांके लोग बहुत श्रद्धावान् दयावान् हैं, तब पास जो लोग बैठे थे, सो कहने लगे–हे साधो ! आगे यहां दया धर्म बहुत था, अब कछु घटि गया है, तब मैंने पूछा कि, क्योंकरि घटा है, सो वृत्तांत कहौ ? तब उसने कहा कि, इस देशका राजा मृतक हुआ था, बहुरि राजा एक चाण्डाल हुआ था, प्रथम किसीने न जाना, अष्ट वर्षपर्यंत राज्य करता भया, जब उसकी वार्त्ता प्रगट भयी कि, चाण्डाल है, तब देशके रहनेवाले ब्राह्मण क्षत्रिय थे, सो चिता बनाइकरिकै जलि मरे, अनेक जीव इस प्रकार जो ब्राह्मण आदिक जलि मरे; बहुरि राजा भी जलि मरा, ऐसा पाप इस देशविषे हुआ है; इस कारणते दया धर्म कछु घटि गया है. हे ब्राह्मण ! जब इस प्रकार नगरवासियोंते सुना, तब मैं बहुत शोकवान् हुआ अरु वहांते चला कि, हाय हाय मैं बडे पापी देशविषे रहा हौं, ऐसे विचारकरि मैं प्रयागादि तीर्थोंपर चला, तीर्थ करिकै कृच्छ् अरु चांद्रायण व्रत राखे; कृष्णपक्षविषे एक एक ग्रास

घटावता गया, जब अमावास्या आवै, तब निराहार रहा, बहुरि जब शुक्लपक्ष आवै, तब एक एक ग्रास बढाता गया, पूर्णमासीके चंद्रमाकी कलाकरि बढावना अरु कलासाथ घटावना; इस प्रकार मैंने तीन कृच्छ्र चांद्रायण किये हैं, वहांते चला तेरे आश्रम पर व्रत खोला है. हे साधो! इस निमित्त मेरा शरीर कृश अरु निर्बल हुआ है. हे रामजी! जब इस प्रकार ब्राह्मणने कहा, तब गाधि विस्मयको प्राप्त भया कि, जो मैं जानता था कि मुझको भ्रमसा हो गया, सो इसने प्रत्यक्षवार्त्ता कह सुनाई, ऐसे विचारकारि पूछा बहुरि उसने ऐसे ही कहा तब सुनकर आश्चर्यवान् हुआ, जब रात्रि व्यतीत भयी, सूर्य उदय भया, तब संध्या आदिक कर्म करता भया, वह अतीत रमता रहा, तब एकला होइकारि विचारत भया कि, मैंने कैसा भ्रम देखा है अरु ब्राह्मणने सत्यकारि देखा सो कैसे हो गया, ताते अब तिस देशको चलिकारि देखौं, जहां मुझको चांडालका शरीर भया है. हे रामजी! इस प्रकार विचारिकारि मनोराज्यके भ्रमको देखने गाधि ब्राह्मण चला, चलता चलता उस देशविषे जाय प्राप्त भया, जैसे ऊंट कंटकोंको ढूंढता कंटकोंके वनविषे जाता है, तैसे यह चण्डालके स्थानोंको प्राप्त भया, तब चाण्डालके स्थान देखता भया, जहां अपना स्थान था, तिसको देखा अपने खेती लगावनेका स्थान देखता भया, बाडी कछु खडी है, कछु गिर गयी है अरु पशुनके हाड़ चर्म जो अपने हाथसों डारे थे, सो प्रत्यक्ष देखता भया, देखिकारि आश्चर्यवान् भया. हे देव! यह क्या आश्चर्य है, चित्तका भ्रम मैंने प्रत्यक्ष देखा है, जो बालक अवस्थाविषे क्रीडा करनेके स्थान थे सो देखे अरु भोजनके स्थान, मद्यपानके स्थान अरु पात्र थे इत्यादिक जो खानपानके भोगके स्थान थे, सो प्रत्यक्ष देखता भया अरु महा वैराग्यको प्राप्त भया अरु ग्रामवासी मनुष्योंसे भी पूछत भया, जो कदाचित् कैसे कहैंगे. हे साधो! यहां एक चांडाल हुआ था, बडे श्याम शरीरवाला तुमको भी कछु स्मरण है? हे रामजी! जब इस प्रकार ब्राह्मणने पूछा तब ग्रामवासी कहत भये. हे ब्राह्मण! यहां एक कटंज नाम चाण्डाल होता भया, क्रमकरिकै बडा हुआ, बहुरि उसका

विवाह हुआ, बेटा बेटी परिवार सहित बडा कुटुंबी वृद्ध भया, सो दैवसंयोगकरि एकला ही निकसा, जाता जाता कीरदेशविषे गया, वहांके राजाकी मृत्यु भयी थी, उनने राज्य इसको दिया, तहां आठ वर्षपर्यंत राज्य करता भया, तब नगरवासियोंने सुना कि, यह चांडाल है, तब बहुत शोकवान् भये अरु चिता बनाइकरि जलि जलि मरे, इस प्रकार सुनिकरि गाधि बहुत आश्चर्यवान् हुआ, एकसों सुनकर औरसों पूछा, वह भी इस प्रकार कहै, ऐसे वारंवार लोकोंसे पूछता रहै, एक मास वह रहा, बहुरि आगे चला.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे गाधिबोधोपाख्याने प्रत्यक्षावलोकनवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः ४८.

मायामहत्त्ववर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! बहुरि नदियां पहाड देश हिमालय पर्वतकी उत्तर दिशाविषे कीरदेशमें जाय प्राप्त भया, जेता कछु स्थानोंका वृत्तांत था, सो सब ही देखता भया, जहां सुंदर स्त्रियां थीं, जहां चमर झूलते थे तिनको प्रत्यक्ष देखा, बहुरि नगरवासियोंते पूछता भया कि, यहां कोऊ चाण्डाल राजा भी हुआ है, कछु स्मरण है तौ मुझको कहो. हे रामजी ! तब नगरवासी कहत भये. हे साधो ! यहांका राजा मृत्यु पाया था अरु मंत्रियोंने हस्ती छोडा था, जो कोऊ मनुष्य हस्तीके सम्मुख आवै, तिसको राजा करना, जब हस्ती चला तब तिसके सम्मुख चाण्डाल आइ निकसा तब हस्तीने चाण्डालको शीशपर चढाइ लिया, बहुरि और विचार किसीने नहीं किया, उसको राज्यतिलक दिया, अष्ट वर्षपर्यंत राज्य करता भया, पाछे जब उसके बांधव आये अरु तिसके साथ चर्चा करने लगे तब सहेलियोंने ऊपरसों देखा कि, यह चाण्डाल है; ऐसे देखि उनने उसका त्याग किया, बहुरि लोक विचारवान् जो उसके साथ चेष्टा करते थे चांडा-

लोंका भाई जानिकरि सो जलि मरे अरु वह राजा भी आपको धिक्कारकरि जलि मरा, अष्ट वर्षपर्यंत वह राज्य करता भया अरु उसको द्वादश वर्ष मृत्यु पाये व्यतीत भये. हे रामजी! इस प्रकार श्रवण करिकै गाधि ब्राह्मण आश्चर्यको प्राप्त भया कि, कहां मैं जलविषे स्थित था अरु कहां एती अवस्थाको देखता भया, ऐसे विचार करता था, इतनेमें पूर्वका वृत्तांत स्मरण आया यह आश्चर्य भगवान्‌की माया है मैं वर मांगा था, इस मायाकरि एता भ्रम देखा है, यह आश्चर्य है, कि यहां दो मुहूर्त हैं अरु वहां ते एता काल मुझको भासा है, स्वप्नभ्रमकी नाईं अरु सत्य करि स्थित भया है, सो बडा आश्चर्य है, ताते संशय निवृत्त करने निमित्त बहुरि विष्णुजीका ध्यान करौं, जिसकी मायाकरि मैंने एता भ्रम देखा है और कोई इस संशय निवारनेको समर्थ नहीं. हे रामजी! इस प्रकार विचारि करि गाधि ब्राह्मण बहुरि पहाड़की कंदराविषे जाय तप करने लगा, एक अंजली जलपान करै और भोजन कछु न करै, इस प्रकार डेढ वर्षपर्यंत तप किया, तब त्रिलोकीके नाथ विष्णु भगवान् प्रसन्न होइकरि निकट आइकरि प्राप्त भये अरु कहा-हे ब्राह्मण! मेरी मायाको देखि जो जगत्‌जालको रचनेहारी है अब और क्या इच्छा करता है? हे रामजी! जब विष्णु भगवान्‌ने ऐसे कहा, तब ब्राह्मण कहता भया, जैसे मेघको देखिकरि पपैया बोलता है; तैसे ब्राह्मण बोलता भया.

गाधिरुवाच-हे भगवन्! तेरी माया तौ मैंने देखी, परंतु एक संशय मुझको है कि, यह स्वप्नभ्रमकी नाईं मैंने देखा, इसविषे कालकी विषमता कैसे हुई जो यहां दो मुहूर्त व्यतीत भये हैं अरु वहां चिरकाल पर्यंत भ्रमता रहा हौं अरु तिनझूठ पदार्थोंको जाग्रतविषे प्रत्यक्ष कैसे देखे?

श्रीभगवानुवाच-हे ब्राह्मण! और कछु नहीं तेरे चित्तहीका भ्रम है जिसके चित्तविषे तत्त्वकी अदृष्टता है, तिसको यह चित्त भ्रम होता है अरु वह क्या भ्रम था; जेता कछु जगत् प्रत्यक्ष दीखता है, सो भी तेरे मनविषे स्थित है, बाहिर पृथ्वी आदिक तत्त्व कोऊ नहीं, सब तेरे अंतर स्थित हैं, जैसे बीजके अंतर फूल फल पत्र हैं, तैसे पृथ्वी जल तेज वायु आकाश जेता कछु पांचभौतिक है, सो सब विस्तार चित्तविषे स्थित है,

जैसे वृक्षका विस्तार बीजविषे दृष्टि नहीं आता जब बोया हुआ उगता है तब विस्तार दृष्टि आता है, तैसे जब चित्त ज्ञानविषे लीन होता है, तब जगत् नहीं भासता अरु जब स्पंदरूप होता है, तब बडे विस्तार संयुक्त जगत् भासता है. हे ब्राह्मण ! जेता कछु जगत् दीखता है, सो सब चित्तका भ्रम है, जैसे एक कुलाल घटादिक वासना उत्पन्न करता है, तैसे एक ही चित्त अनेक भ्रमरूप पदार्थको उत्पन्न करता है अरु जो चित्त वासनाते रहित है, तिसते भ्रमरूप पदार्थ कोऊ नहीं उपजता, ताते चित्तको स्थित कर. हे ब्राह्मण ! इस चित्तविषे कोटि ब्रह्मांड स्थित हैं, जो तुझको चाण्डाल अवस्थाका अनुभव हुआ है, तौ इसविषे क्या आश्चर्य हुआ ? अरु तू कहता है कि, मैं बडी आश्चर्यरूप माया देखी है, सो उसको ही माया कहता है, अब जो तुझको विद्यमान भासता है, सो सब ही माया है, जो तुझको अपने गृहविषे अनुभव भया था अरु चाण्डालके गृहविषे जन्म लिया, कुटुंबी हुआ अरु राज्य किया, बहुरि चिताविषे जला, बहुरि अतिथि ब्राह्मणको मिला; बहुरि जाइकारि सब ही स्थान देखे सो भी माया थी, जैसे एता भ्रम तुझने मायाकरि देखा, तैसे यह पसारा भी सब माया है. हे साधो ! जैसे स्वप्नविषे नाना प्रकारके पदार्थ भासते हैं अरु जैसे मदिरापान करनेवालेको सब पदार्थ भ्रमते हैं, तैसे यह जगत् भी भ्रमते भासता है अरु जैसे नौकापर बैठेको तटके वृक्ष भ्रमते भासते हैं, तैसे यह जगत् भी भ्रममात्र भासता है अरु चित्तके स्थित कियेते जगत्भ्रम नष्ट हो जावैगा, अन्यथा भ्रम निवृत्त न होवैगा, जैसे पत्र, फूल, फल, टास काटनेकरि वृक्ष नाश नहीं होता, जब मूलते काटिये तब वृक्ष नाश हो जाता है, तैसे जब जगत् भ्रमका मूल चित्त ही नष्ट हो जावैगा, तब संपूर्ण भ्रम निवृत्त हो जावैगा, सो चित्तका नाश होना क्या है ? जो चित्तकी चैत्यता दृश्यकी ओर धावती है, सोई जगत्का बीज है, जब यही चैत्यता दृश्यकी ओर फुरनेते रहित होवै, तब जगत्भ्रम भी मिटि जावै अरु जगत्की ओर फुरना तब मिटै, जब जगत्को मायामात्र जानै. हे साधो ! यह सब जगत् मायामात्र है, कोऊ पदार्थ सत्य नहीं, जैसे वह भ्रम तुझको

मायामात्र भासा है, तैसे यह भी सब मायामात्र जान, ताते इस भ्रमको त्यागिकरि अपना जो ब्राह्मणका कर्म है, तिसविषे जाय स्थित होहु. हे रामजी ! इस प्रकार कहिकरि विष्णुदेव उठि खडे हुए, तब गाधि अरु अपर ऋषीश्वर जो वहां थे सो विष्णुकी पूजा करते भये, पूजा लेइकरि विष्णु क्षीरसमुद्रको गमन करते भये, तब वह ब्राह्मण बहुरि उसी भ्रमको देखने चला कीर देशविषे गया; तिनको देखकरि आश्चर्यवान् होवै अरु कैसे विष्णु हैं, मायामय कहाते हैं, यह जो प्रत्यक्ष मैं देखता हौं, जो कछु भ्रमविषे देखा था, सोई प्रत्यक्ष देखता हौं ऐसे विचारिकरि बहुरि कहता भया कि, इस संशयको दूर करनेको और कोऊ समर्थ नहीं; ताते बहुरि विष्णुका आराधन करता भया. हे रामजी ! इस प्रकार विचारिकरि गाधि बहुरि पहाडकी कंदराविषे जाय तब करने लगा, तप थोडे कालमें विष्णु भगवान् प्रसन्न होइकरि आये, जैसे मेघ मोरको कहै, तैसे ब्राह्मणको भगवान् कहते भये. हे ब्राह्मण ! अब क्या चाहता है ? तब गाधिने कहा, हे भगवन् ! तुम कहते हो सब भ्रममात्र है अरु यह तौ प्रत्यक्ष भासता है, जो भ्रम होता है सो प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता अरु मैंने बहुरि वह स्थान देखे हैं अरु थोडे कालकरि बहुत काल देखनेका मुझको संशय है, सो दूर करौ. हे रामजी ! जब इस प्रकार गाधिने कहा, तब भगवान् कहते भये-हे ब्राह्मण ! जो कछु तुमको यह भासता है, सो सब मायामात्र है अरु जिस प्रकार तुझको यह भासता है सो सब मायामात्र है अरु जिस प्रकार तुझको यह अनुभव भया है, सो श्रवण कर. हे ब्राह्मण ! वह कटंजा नाम चांडाल एक चांडालके गृहविषे उत्पन्न भया था, बहुरि क्रम करि बडा हुआ था अरु कुटुंबी हुआ बहुरि वहाँ दुर्भिक्ष पड़ा तब उस देशको त्यागिकरि जाइ कीर देशका राजा हुआ, बहुरि लोगोंने सुना, तब सब ही अग्निविषे जले, बहुरि वहां चाण्डाल आप भी अग्निविषे जला सो कटंज चाण्डाल और था, यह अवस्था तिसको भई थी सोई प्रतिभा तुझको आनि फुरी है, जैसी अवस्था तिसको हुई थी, सो तेरे चित्तविषे आनि फुरी, इस कारणते तू जानता भया कि, यह अवस्था मैंने देखी है. हे साधो ! अकस्मात ऐसे भी होता है, जो औरकी प्रतिभा औरको

फुर आती है, कहूं अन्यथा भी होती है, कहूं एक जैसे भी होती है, इस भ्रमका अंत लेना नहीं आता, यह चित्तके फुरणे करिकै होता है, जब चित्त आत्मपदविषे स्थित होता है, तब जगद्भ्रम निवृत्त हो जाता है अरु कालकी विषमता भी होती है, जैसे जाग्रत्की दो घडीविषे अनेक वर्षोंका स्वप्न देखता है, तैसे यह जान, सब चित्तका भ्रम है, तू इस भ्रमको न देख, चित्तको स्थिर करिकै अपने ब्राह्मणका आचार कर. हे रामजी ! ऐसे कहकरि विष्णु गुप्त हो गये, परंतु ब्राह्मणका संशय दूर न भया, वह ऐसे मनविषे विचारै कि, औरकी प्रतिभा मुझको कैसे भयी है यह तौ मैंने प्रत्यक्ष भोगी है अरु जाइकरि देखी है, यह औरकी वार्ता कैसे होवै, जो आंखोंसे देखी नहीं होती तिसका अनुभव नहीं होता अरु मैंने तौ प्रत्यक्ष अनुभव किया है, ऐसे ऐसे विचारकरि बहुरि वह स्थान देखै अरु आश्चर्यवान् होवै, बहुरि विचार करता भया कि, यह मुझको बडा संशय है, इसको दूर करनेका उपाय भगवान्सों पूछौं. हे रामजी ! ऐसे चिंतनाकरि बहुरि तप करने लगा, जब केताक काल पहाड कंदराविषे तप करते बीता, तब बहुरि विष्णुने आइकरि कहा-हे ब्राह्मण! अब तेरी क्या इच्छा है? ऐसे जब विष्णुने कहा तब गाधि ब्राह्मण कहता भया. हे भगवन् ! तुम कहते हौ, यह औरकी प्रतिभा तुझको फुरि आई है अरु मुझको अपनी होइकरि भासती है अरु कालकी विषमता भासती है, यह संशय जिस प्रकार मेरे चित्तते दूर होवै सो उपाय कहौ, और प्रयोजन मेरा कछु नहीं यह भ्रम निवृत्त करौ. श्रीभगवानुवाच-हे ब्राह्मण ! यह जगत् सब मेरी मायाकरि रचा है, तिसविषे मैं तुझको सत्य क्या कहौं अरु असत्य क्या कहौं, जो कछु तुझको भासता है, सो सब मायामात्र है, सो चित्तके भ्रमकरि भासता है अरु उस चांडालकी अवस्था भई है, सो तेरे चित्तविषे भासि आई है, जैसे एक जेवरीविषे किसीको सर्प भासै, इसी प्रकार औरोंको भी जेवरीविषे सर्प भासता है तैसे ही प्रतिभा तुझको भासि आई है अरु काल जो है तिसका रूप आकार कछु नहीं अरु काल भी तुझको एक पदार्थकी नाईं फुरि आया है, चित्तविषे पदार्थ कालकरि भासते हैं अरु काल पदार्थोंकरि भासता है,

अन्योन्य घट पट जो भासता है सो स्वप्नकी नाईं है, जैसे जाग्रत्के एक मुहूर्त्तविषे स्वप्नका अनंत कालका अनुभव होता है, यह चित्तका फुरना जैसे २ फुरता है, तैसे २ हो भासता है, रोगीको थोडा काल भी बहुत हो भासता है अरु भोगीको बहुत काल भी थोडा भासता है. हे साधो ! जो नहीं भोगा होता तिसको भी अनुभव होता है, जैसे त्रिकाल दर्शीको भविष्य वृत्तांत भी वर्त्तमानकी नाईं भासता है तैसे तुझको भी अनुभव भया है अरु एक ऐसे भी होता है कि, प्रत्यक्ष अनुभव किया विस्मरण हो जाता है, यह सब मायारूप चित्तका भ्रम है, जबलग चित्त आत्मपदविषे स्थित नहीं भया, तबलग अनेक भ्रम भासते हैं, जब चित्त स्थित होता है, तब भ्रम मिटि जाता है, केवल एक अद्वैत आत्मतत्त्वही भासता है, जैसे सम्यक् मंत्रके पाठकरि गडेका मेघ नष्ट हो जाता है, असम्यक् मंत्रकरि नाश नहीं होता, तैसे तेरा चित्त अबलग वश नहीं भया, चित्तको आत्मपदसों जोडते सब भ्रम निवृत्त हो जावैगा अरु अहं त्वम् आदिक जेते कछु शब्द हैं, सो अज्ञानीके चित्तविषे दृढ होते हैं, ज्ञानवान् इनविषे नहीं फँसता. हे साधो ! जेता कछु जगत् है, सो अज्ञानकरिकै भासता है, आत्मज्ञान हुएते नाश हो जाता है, जैसे जलविषे तुंबी नहीं डूबती तैसे अहं त्वम् आदिक शब्दोंविषे ज्ञानवान् नहीं डूबता सब शब्द चित्तविषे वर्त्तते हैं, सो ज्ञानीका चित्त अचित्तपदको प्राप्त भया है, ताते तू दश वर्ष पर्यंत तपविषे स्थित होहु, तब तेरा हृदय शुद्ध होवैगा, तेरा जब हृदय शुद्ध हुआ, तब संकल्पते रहित आत्मपद तुझको प्राप्त होवैगा, जब आत्मपद प्राप्त हुआ, तब सब संशय जगत्भ्रम मिटि जावैगा, ऐसे कहिकारि भगवान् अन्तर्धान हो गये.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे गाधिबोधोपाख्याने मायामहत्त्ववर्णनं नामाष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ४९.

गाधिबोधप्राप्तिवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जब त्रिलोकीके नाथ विष्णु अंतर्धान हो गये तब गाधि ब्राह्मण ऐसे मनविषे धारिकरि जाय तप करने लगा जो कछु मनका संसरना है, तिसको स्थित करता भया, दश वर्ष पर्यंत समाधिविषे चित्तको स्थित किया, जब ऐसे परम तप किया तब शुद्ध चिदानंद आत्माका साक्षात्कार बहुरि तिसको भया; बहुरि शांतिमान् होइकरि विचरत भया, जेते कछु राग द्वेष आदिक विकार हैं, तिनते रहित शांतिको प्राप्त भया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे गाधिबोधप्राप्तिवर्णनं नामैकोनपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ४९ ॥

पंचाशत्तमः सर्गः ५०.

राघवसेवनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह गाधिका आख्यान तुझको मायाकी विषमता जतावने निमित्त कहा है कि, परमात्माकी ऐसी माया है; सो मोहको देनेहारी है, विस्तृतरूप दुर्गम है, जो आत्मतत्त्वते भूला है, तिसको आश्चर्यरूप भ्रम दिखाती है, तूं देख कि दो मुहूर्त्त कहां अरु एता काल कहां ? अरु जो चांडाल अरु राजभ्रमको वर्षोंपर्यंत देखता रहा, बहुरि भ्रमकरि भासना अरु प्रत्यक्ष देखना, यह सब मायाकी विषमता है, सो असत्यरूप भ्रम है, सो दृढ़ होइकरि प्रसिद्ध भासा ताते आश्चर्य रूप परमात्माकी माया है, जबलग बोध नहीं होता, तबलग अनेक भ्रमको दिखाती है. राम उवाच–हे भगवन् ! यह माया संसार चक्र है तिसका बड़ा तीक्ष्ण वेग है अरु सब अंगोंको छेदनेहारा है, जिसकारि इस चक्रका रोधना होवै अरु इस भ्रमते छूटिये सो उपाय कहौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह जो मायामय संसार-

चक्र है, तिसका नाभिस्थान चित्त है, जब चित्त वश होवै, तब संसारचक्रवेग रोका जावै, और किसी प्रकार रोका नहीं जाता. हे रामजी ! इस वार्ताको तू भली प्रकार जानता है. हे निष्पाप ! जब चक्रकी नाभि रोंकता है, तब चक्र स्थित हो जाता है रोंकने विना स्थित नहीं होता, संसाररूपी चक्र ही चित्तरूपी नाभिको रोकता है, तब चक्र स्थित हो जाता है, रोंके विना स्थित नहीं होता, जब चित्तको स्थित करैगा, तब जगद्भ्रम निवृत्त हो जावैगा अरु जब चित्त स्थित होता है, तब परमब्रह्म प्राप्त होता है अरु जो कछु करना था, सो किया होता है, कृतकृत्य होता है अरु जो कछु प्राप्त होना था, सो प्राप्त होता है, बहुरि पाछे पाना कछु नहीं रहता, ताते जेते कछुत तप ध्यान तीर्थ दान आदिक उपाय हैं, तिन सबको त्यागिकारि चित्तके स्थित करनेका उपाय करौ, संतोंका संग अरु ब्रह्मविद्या शास्त्रका विचार इस उपायकरि चित्त आत्मपदविषे स्थित होवैगा, जो कछु संतों अरु शास्त्रोंने किया है, तिसका वारंवार अभ्यास करना, संसार मृगतृष्णाके जल अरु स्वप्नवत् जानिकरि इसते वैराग्य करना, इन दोनों उपायोंकरि चित्त स्थित होवैगा, आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी और किसी उपायकरि आत्मपदकी प्राप्ति न होवैगी. हे रामजी ! बोलने चालनेका वर्जन नहीं, बोलिये, दान करिये अथवा लेइये, परंतु अंतर चित्तको मत लगावहु, इनका साक्षी जाननेवाला जो अनुभव आकाश है, तिसकी ओर वृत्ति होवै, युद्ध करना होवै, तौ भी करिये परंतु वृत्ति साक्षीकी ओर होवै; तिसको अपना रूप जानिये अरु स्थित होइये शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह जो पांच विषय इंद्रियोंके हैं, इनको अंगीकार करिये, परंतु इनके जानने-वाले साक्षीविषे स्थित होहु, तेरा अपना स्वरूप वही चिदाकाश है, जब तिसका अभ्यास वारंवार करिये तब चित्त स्थित होवै अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवै. हे रामजी ! जबलग चित्त आत्मपदविषे स्थित नहीं होता, तबलग जगत्भ्रम निवृत्त नहीं होता, इस चित्तके संयोगते चेतनका नाम जीव है. जैसे घटके संयोगते आकाशको घटाकाश कहते हैं; जब घट टूटि जावै, तब महाकाश ही रहैगा, तैसे जब चित्तका नाश होवैगा, तब

यह जीव चिदाकाश ही होवैगा अरु यह जगत् भी चित्तविषे स्थित है, चित्तके अभाव हुएते जगद्भ्रम शांत हो जावैगा. हे रामजी ! जबलग चित्त है, तबलग संसार भी है, जैसे जबलग मेघ है, तबलग बूँदां भी हैं जब मेघ नष्ट हो जावै, तब बूँदां भी नहीं रहतीं अरु जैसे जबलग चंद्रमाकी किरणैं शीतल हैं, तबलग चंद्रमाके मंडलविषे, तुषार है, तैसे जबलग चित्त है, तबलग संसारभ्रम है, जैसे मांसका श्मशान होता है तहां पक्षी भी होते हैं और इकट्ठे नहीं होते, तैसे जहां चित्त है, तहां राग द्वेष आदिक विकार भी होते हैं अरु जहां चित्तका अभाव है, तहां बिकारता अभाव है. हे रामजी ! जैसे पिशाच आदिककी चेष्टा रात्रिविषे होती है, दिनविषे नहीं होती, तैसे राग द्वेष भय इच्छा आदिक विकार चित्तविषे होते हैं, जहां चित्त भी नहीं, तहां विकार भी नहीं, जैसे अग्नि विना उष्णता नहीं होती अरु बर्फ शीतलता विना नहीं होता, सूर्य विना प्रकाश नहीं होता, जल विना तरंग नहीं होता, तैसे चित्त विना जगद्भ्रम नहीं होता. हे रामजी ! शांति भी इसीका नाम है अरु शिवता भी वही है, सर्वज्ञता भी वही है, जो चित्त नष्ट होवै, आत्मा भी वही है, तृप्तता भी वही है अरु चित्त नष्ट नहीं भया, तहां एते पदोंविषे कोऊ नहीं. हे रामजी ! चित्तते रहित चैतन्य है, सो चैतन्य कहाता है अरु अमन शक्ति है अरु सब कलनाते रहित है; जबलग इसको बोध नहीं तबलग नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, जब वस्तुका बोध हुआ, तब एक अद्वैत एक आत्मसत्ता भासती है. हे रामजी ! ज्ञान संवित्की ओर वृत्तिको रखना, जगत्की ओर नहीं रखना, जाग्रत्की ओर नहीं जाना, जाग्रत्के जाननेवालेकी ओर जाना स्वप्न अरु सुषुप्तिकी ओर नहीं जाना, जो अंतरको जाननेवाली साक्षीसत्ता है तिसकी ओर वृत्ति रखनी यह चित्तको स्थित करनेका परम उपाय है, जो संतोंका संग अरु शास्त्रोंकरि निर्णय किया अर्थ है, जब इसका अभ्यास होवै, तब चित्त नष्ट हो जावै अरु जो अभ्यास होवै, तौ भी संतोंका संग अरु सच्छास्त्रोंका श्रवणकरि बल करिये, तब सहज ही चमत्कार हो आवैगा, मनको मनसाथ मथिये, तिसते ज्ञानरूपी अग्नि निकसैगी, सो आशारूपी सब फांसीको

जलाइ डारैगी अरु जबलग चित्त आत्मपदते विमुख है, तबलग संसारभ्रमको देखता है, जब आत्मपदविषे स्थित होता है, तब सब क्षोभ मिटि जाता है, जब मुझको आत्मपदका साक्षात्कार होवैगा तब कालकूट विष भी अमृतसमान हो जावैगा, विषका जो विषभाव मारना है, सो न रहैगा अरु यह जब अपने स्वभावविषे स्थित होता है, तब संसारका कारण मोह मिटि जाता है अरु जब निर्मल निरंश आत्मसंवित्ते गिरता है, तब संसारका कारण मोह आनि प्राप्त होता है अरु जब निरंश निर्मल आत्मसंवित्विषे स्थित होता है, तब संसार समुद्रको तरि ममतारूपी क्रीडाकारि अरु यह मेरा इस भावना करि चित्त कठिन हो जाता है अरु चित्तरूपी विषका वृक्ष है अरु देहरूपी भूमिपर लगा है, संकल्प विकल्प इसके टास हैं, दुर्वासनारूपी पत्र हैं अरु सुख दुःख आधि व्याधि मृत्युरूपी इसके फल हैं, अहंकाररूपी जो कर्म हैं सो जल है तिसके सींचनेकरि बढता है, काम भोगरूपी पुष्प हैं, चिंतारूपी बडी वल्ली हैं, जब विचार अरु वैराग्यरूपी कुठारकरि इसको काटै तब शांतिको प्राप्त होवै अन्यथा शांतिको प्राप्त न होवैगा. हे रामजी ! चित्तरूपी एक हस्ती है अरु शरीररूपी तलावविषे आनि स्थित भया है, शुभ बासनारूपी जलको मलिन कर डारा है अरु धर्म संतोष वैराग्यरूपी कमलको तोरि डारा है, भोगोंकी तृष्णा रूपी सूंडकरिकै तिसको तू आत्मविचाररूपी नेत्रोंकरि नखोंकरि छेद. हे रामजी ! चित्तरूप कौवा है, जैसे कौवा अपवित्र पदार्थोंकी भोजन करता है सर्वदा काँ काँ करता है, तैसे चित्त देहरूपी अपवित्रविषे बैठता है अरु सर्वदा भोगोंकी ओर धावता है, तिनके रसको ग्रहण करता है, मौन कबहूँ नहीं होता अरु दुर्वासना करिकै काककी नाई कृष्णरूप है, जैसे काकका एक ही नेत्र होता है, तैसे चित्त एक विषयोंको धावता है, ऐसे अमंगलरूपी कौवाको विचाररूपी धनुषसे मारै, तब सुखी होवैगा अरु चित्तरूपी ईल पखेरू है, भोगरूपी मांसके निमित्त सर्व ओरको भ्रमता है अरु जहां अमंगलरूपी ईल आता है, तहांते विभूतिका अभाव हो जाता है अरु मांसकी ओर ऊंचा होइकरि देखता है, नम्रीभाव नहीं होता, तैसे चित्तरूपी ईल

शरीररूपी स्थानविषे बैठता है, आत्मज्ञानरूपी विभूतिका अभाव हो जाता है अरु भोगरूपी मांसको देखिकारि गिरता है अरु अभिमानरूपी ग्रीवाको ऊँची रखता है, ऐसा जो चित्त अमंगलरूप ईल है, तिसको जब नाश करै, तब शांतिमान् होवैगा अरु जैसे पिशाच आय जिसको लगता है, सो खेदवान् होता है अरु शब्द करता है, तैसे चित्तरूपी इसको पिशाच लगा है अरु तृष्णारूपी पिशाचिनीके साथ शब्द करता है, तिसको काढहु, आत्माते इतर जो अभिमान करता है, ऐसा चित्तरूपी पिशाच है, तिसको वैराग्यरूपी मंत्रकारि दूर करहु, तब स्वभावसत्ताको प्राप्त होवोगे अरु यह चित्तरूपी वानर है, सो महाचंचल है, सदा भटकता रहता है, स्थिर कबहूँ नहीं रहता, कबहूँ किसी कबहूँ किसी पदार्थविषे धावता है, जैसे वानर जिस वृक्षपर बैठता है, तिसको ठहरने नहीं देता. हे रामजी! चित्तरूपी जेवरी है तिसके साथ संपूर्ण जगत् बांधा है, कर्त्ता कर्म क्रियारूपी गांठिकरिकै, जैसे एक सांकलीसे अनेक बंधवान् बांधते हैं अरु एक तागेसे अनेक मणके परोते हैं, तैसे एक चित्तसे सब देहधारी बांधे हैं, तिस जेवरीको असंग शस्त्रकारि काटै, तब सुखी होवै. हे रामजी ! चित्तरूपी अजगर सर्प है अरु भोगोंकी तृष्णारूपी विषकारि पूर्ण है, तिस सर्पने फूत्कारके साथ बडे बडे लोक जलाये हैं, शम दम धैर्यरूपी जो कमल हैं, सो सब जलि गये हैं, इस दुष्टके मारनेको और समर्थ कोऊ नहीं, एक विचाररूपी गरुड है, जब विचाररूपी गरुड उपजै तब इसको जीतता है अरु जेते ईश्वर बलवान् हैं, तिन सबनते तत्त्ववेत्ता उत्तम है, उनके आगे सब लघु हो जाते हैं, तिन पुरुषको किसी संसारके पदार्थकी अपेक्षा नहीं, उनका चित्त सत्यपदको प्राप्त हुआ है, ताते चित्तको स्थिर करौ, तब वर्तमानकाल भी भविष्यत् कालकी नाईं हो जावैगा, जैसे भविष्यत्कालका राग द्वेष नहीं स्पर्श करता, तैसे वर्त्तमानकालका राग द्वेष स्पर्श न करैगा. हे रामजी ! आत्मा परम आनंदरूप है, तिसके पायेते अमृत भी विष समान हो जाता है, अर्थ यह कि अमृतरूप होइकारि चित्तको खैंचता सो नहीं खैंचता, जिस पुरुषको आत्मपदविषे स्थिति भयी है, सो सबते उत्तम है, जैसे मेरु पर्वतके निकट हस्ती तुच्छ भासता है, तैसे तिसके

निकट त्रिलोकीके पदार्थ सब तुच्छ भासते हैं अरु वह बडे दिव्य तेजको प्राप्त होता है जिसको सूर्य नहीं प्रकाश कर सकता, परम प्रकाशरूप सब कलनाते रहित अद्वैततत्त्व है. हे रामजी ! तिस आत्मतत्त्वविषे स्थित होहु, जिस पुरुषने ऐसे स्वरूपको पाया है, उसने सब कछु पाया है अरु जिसने स्वरूपको नहीं पाया उसने कछु नहीं पाया, हमको ज्ञानकी वार्त्ता करते ज्ञानवान्‌को देखिकरि लज्जा कछु नहीं आती अरु जो तिस ज्ञानस्वरूपीकी वार्त्ताते विमुख हैं, यद्यपि महाबाहु होवैं, तौ भी गर्दभवत् हैं, जो बडे ऐश्वर्यकरि संपन्न हैं अरु आत्मपदते विमुख हैं, तिनको तू विष्ठाके कीटते भी नीच जान अरु जीवना तिनका श्रेष्ठ है, जो आत्मपदके निमित्त यत्न करते हैं अरु जीवना तिनका वृथा है, जो संसारके निमित्त यत्न करते हैं, देखनेमात्र तो चैतन्य है, परंतु शवकी नाईं हैं अरु जो तत्त्ववेत्ता भये हैं, सो अपने प्रकाशकरि प्रकाशते हैं अरु जिनको शरीरविषे अभिमान है सो मृतकसमान हैं. हे रामजी ! इस जीवको चित्तने दीन किया है, ज्यों ज्यों चित्त बड़ा होता है, त्यों त्यों इसको दुःख होता है अरु जिसका चित्त क्षीण भया है, तिसको कल्याण हुआ है, जब आत्मभाव अनात्मविषे दृढ होता है अरु भोगोंकी तृष्णा होती है, तब चित्त बड़ा हो जाता है अरु आत्मपदते दूर पडता है, जैसे बड़े मेघके आवरणकरि सूर्य नहीं भासता, तैसे अनात्माभिमानकरि आत्मा नहीं भासता अरु जब भोगोंकी तृष्णा निवृत्त हो जाती है, तब चित्त क्षीण हो जाता है, जैसे वसंतऋतुके गयेते पत्र कृश हो जाते हैं, तैसे भोगवासनाके अभावते चित्त कृश हो जाता है. हे रामजी ! चित्तरूपी सर्प है, दुर्वासनारूपी दुर्गंध अरु भोगरूपी वायुकरि शरीरविषे दृढ आस्थारूपी मृत्तिका स्थानकरि बडा हो जाता है, तिन पदार्थोंकरि जब बडा भया; तब मोहरूपी विषकरि इसको मारता है. हे रामजी ! ऐसे दुष्ट चित्तरूपी सर्पको जब मारे, तब कल्याण होवै; देहविषे जो आत्म अभिमान हो गया है अरु भोगोंकी तृष्णा फुरती है अरु मोहरूपी विष चढि गया है, जब विचाररूपी गरुडमंत्रको चिंतवता रहै, तब विष उतरि जावै और उपाय विष उतारने

कोई नहीं. हे रामजी ! अनात्माविषे आत्माभिमान अरु पुत्र दारा आदिकविषे ममत्व, इसकरि चित्त बड़ा हो जाता है; अहंकाररूपी विकारकरि नष्ट करै, जब चित्तरूपी सर्प नष्ट हुआ, तब आत्मारूपी निधि प्राप्त होवैगी. हे रामजी ! यह चित्त शास्त्रोंकरि काटा नहीं जाता अरु अग्निकरि जलता नहीं न और किसी उपायकरि नाश होता है, एक साधुसंग अरु सच्छास्त्रोंके विचार अभ्यासकरि नाश हो जाता है और किसी उपायकरि नष्ट नहीं होता. हे रामजी ! यह चित्तरूपी गडेका मेघ है, सो बड़ा दुःखदायक है अरु भोगोंकी तृष्णारूपी बिजली इसविषे चमकती है अरु जहां वर्षा होती है, तहां बोधरूपी क्षेत्र अरु शमदमरूपी कमल नाश होता है, जब विचाररूपी मंत्र होवै, तब शांत हो जावै. हे रामजी ! चित्तकी जो चपलता है तिसको असंकल्प करिकै त्यागहु, जैसे ब्रह्मास्त्र करिकै ब्रह्मास्त्रको छेदिता है, तैसे मनसाथ मनको छेदहु, अर्थ यह कि, अंतर्मुखी कर स्थित करहु, जब तेरा चित्तरूपी वानर स्थित होवै तब शरीररूपी वृक्ष क्षोभते रहित होवैगा. हे रामजी ! शुद्ध बोधकरिकै मनको जीतौ, यह जगत् तृष्णाते भी तुच्छ है, तिसके पारको प्राप्त होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे राघवसेवन-
वर्णनं नाम पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपंचाशत्तमः सर्गः ५१.

उद्दालकविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह जो मनकी वृत्ति है, सो इष्ट अनिष्टको ग्रहण करती है अरु खड्गकी धारावत् तीक्ष्ण है, इसविषे तू प्रीति मत कर, इसको मिथ्या जानिकरि त्याग कर. हे रामजी ! बोधरूप वल्ली शुभ क्षेत्र अरु शुभ काल करिकै प्राप्त भयी है, तिसको विवेकरूपी जलकरि सींचिये, तब परमपदकी प्राप्ति होवै. हे रामजी ! जबलग शरीर मलिनताको प्राप्त नहीं भया है अरु जबलग पृथ्वीपर नहीं गिरा, तब-

लग बुद्धिको उदारकरि संसारते मुक्त होहु, मैं तुझको वचन कहे तिनको तैंने जाने हैं, इनका दृढ़ अभ्यास करे तब दृश्य भ्रम निवृत्त हो जावैगा. हे रामजी! यह पंचभूतका शरीर जो तुझको भासता है, सो तेरा रूप नहीं, तू शुद्ध चेतनरूप है, शुद्ध बोध विचार करिकै आनात्मा पंचभूतके अभिमानको त्यागहु. राम उवाच-हे भगवन्! किस क्रम अरु किस प्रकार इनका अभिमान त्यागिकरि उद्दालक सुखी भया है? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! पूर्व जैसे उद्दालक भूतोंके समूहका विचार करिकै परमपदको प्राप्त भया है, सो तू श्रवण कर. हे रामजी! जगत्रूपी जीर्ण घर है, तिसके वायव्यकोणविषे एक देश है तहां बहुत पर्वत अरु तमालादिक वृक्ष हैं अरु महामणिनके स्थान हैं, ऐसे गंधमादन पर्वतपर एक स्थल था, तिस स्थानविषे एक उद्दालक नाम ब्राह्मण था, सो बुद्धिमान् मान करने योग्य विद्वान् था, परंतु अर्ध प्रबुद्ध था, काहेते परमपद तिसने पाया न था, ऐसा जो ब्राह्मण सो यौवन अवस्थाके पूर्व ही शुभेच्छा करिकै यम नियम तपको शास्त्रोंयुक्त साधत भया, तब तिसके चित्तविषे यह विचार उत्पन्न हुआ कि, जिसके पायेते बहुरि कछु पावने योग्य न रहै अरु जिस पदविषे विश्राम पायेते बहुरि शोक न होवै अरु जिसके पायेते बहुरि जन्मसाथ बंधन न होवै. हे देव! ऐसा पद मुझको कब प्राप्त होवैगा अरु कब मैं मनके मननभावको त्यागिकरि विश्रांतिमान् होऊंगा? जैसे मेघ भ्रमणको त्यागिकरि पहाडके शिखरमें विश्रांति करता है अरु चित्तकी दृश्यरूप बासना मेरी कब मिटि जावैगी? जैसे तरंगते रहित समुद्र शांतिमान् होता है तैसे मनके संकल्प विकल्पते रहित शांतिमान् होवैगा अरु तृष्णारूपी नदी है, सो बोधरूपी बेडी सत्संग अरु सच्छास्त्ररूपी मलाहकरिकै कब तरि जाऊंगा अरु चित्तरूपी हस्ती जो अभिमानरूपी मदकरि उन्मत्त है, तिसको विवेकरूपी सिंहकरि कब मारूंगा? अरु ज्ञानरूपी सूर्यकरि अज्ञानरूपी अंधकारको कब नष्ट करौंगा? जिसकरि चित्तरूपी घूघू जगत्ते अंध होवै. हे देव! सब आरंभोंको त्यागिकरि अलेप अकर्त्ता कब होऊंगा, जैसे जलविषे कमल अलेप रहता है, तैसे मुझको कर्म स्पर्श न करै अरु

परमार्थरूपी भासुर वपु मेरा कब उदय होवैगा जिसकरि मैं जगत्की गतिको हसौंगा अरु अंतरतोषको पाऊंगा विराट् आत्मा पूर्ण बोधकी नाईं होऊं वह समय कब होवैगा; कि, मैं जन्मोंके अंध ज्ञानरूपी नेत्रको कब प्राप्त होऊंगा, जिसकरि मैं परम बोधपदको देखौंगा अरु वह समय कब होवैगा, जो मेरा चित्तरूपी मेघ वासनारूपी वायुते रहित आत्मरूपी सुमेरु पर्वतविषे स्थित होयकरि शांतिमान् होऊंगा, अज्ञानदशा कब जावैगी, ज्ञानदशा कब प्राप्त होवैगी, अब वह समय कब होवैगा, जो मनको या प्रकृतियोंको देखिकरि मैं हँसौंगा अरु वह समय कब होवैगा जो जगत्के कर्मबालककी चेष्टावत् मिथ्या जानौंगा अरु जगत् मुझको सुषुप्तिकी नाईं हो जावैगा अरु वह समय कब होवैगा, जो पत्थरकी शिलावत् मुझको निर्विकल्प समाधि लगैगी अरु शरीररूपी वृक्षविषे पक्षी आलय करैंगे, निःसंग होइकरि छातीपर आनि बैठैंगे, हे देव! वह समय कब होवैगा जो इष्ट अनिष्ट विषयकी प्राप्तिते मेरे चित्तकी वृत्ति चलायमान न होवैगी अरु विराट्की नाईं सर्वात्मा होऊंगा अरु वह समय कब आवैगा, जो मेरा सम असम आकार शांत हो जावैगा, सब अर्थोंते निरिच्छितरूप मैं हो जाऊंगा अरु कब मैं उपशमको प्राप्त होऊंगा, जैसे मंदराचलते रहित क्षीरसमुद्र शांतिमान् होता है, कब मैं अपना चेतन वपु पाइकरि शरीरको अशरीरवत् देखौंगा अरु कब मेरी पूर्ण चिन्मात्र वृत्ति होवैगी अरु कब मेरी बाहर अंतर सब कलना शांत हो जावैगी अरु संपूर्ण चिन्मात्र ही मेरे ताईं भान होवैगा अरु मैं इंहता अरु ग्रहण त्यागते रहित कब संतोषको प्राप्त होऊंगा, अपने स्वप्रकाशविषे स्थित होइकरि संसाररूपी नदीके जरामरणरूपी तरंगोंते रहित कब होऊंगा अरु अपने स्वभावविषे स्थित कब होऊंगा? हे रामजी! ऐसे विचारिकरि उद्दालक चित्तको ध्यानविषे जोडने लगा, परंतु चित्तरूपी वानर दृश्यकी ओर निकसि जावै, स्थित न होवै, बहुरि ध्यानविषे जोडै, बहुरि भोगोंकी ओर निकसि जावै, जैसे वानर ठहरता नहीं, तैसे चित्त ठहरै नहीं जो बाहर विषयोंको त्यागिकरि चित्तको अंतर्मुख किया तब अंतर जो दृष्टि आई तौ भी विषयोंको चिंतवने लगा; निर्विकल्प होवै नहीं,

जब रोंक राखै, तब सुषुप्तिविषे लीन हो जावै, सुषुप्ति अरु लय जो निद्रा है, तिसहीविषे चित्त रहता है, तब वहांते उठिकरि और स्थानको चला, जैसे सूर्य सुमेरुकी प्रदक्षिणाको चलता है तब गंधमादन पर्वतकी एक कंदराविषे स्थित भया, कैसा पर्वत जो फूलोंसंयुक्त सुन्दर अरु पशु पक्षी मृगोंते रहित ऐसा एकांत स्थान है, जो देवताओंको भी देखना कठिन है अरु तहां अत्यंत प्रकाश भी नहीं अरु अत्यंत तम भी नहीं, न अत्यंत उष्ण है, न शीत है, जैसे मधुर कार्त्तिक होता है निर्भय एकांत स्थान जैसे मोक्षपदवी निर्भय एकांतरूप होती है तैसे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे उद्दालकविचारवर्णनं नामै-
कपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपंचाशत्तमः सर्गः ५२.

उद्दालकविचारवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! तिस पर्वतविषे कुटी बनाई वनदेवताका स्थान अथवा सिद्धका भी होवै, परंतु औरकी गम नहीं तिस कुटीविषे तमालपत्र अरु कमलोंका आसन करिकै ऊपर तिस पर्वतविषे मृगछाला बिछाइ तिसके ऊपर बैठिकरि सब कामनाका त्याग किया, जैसे ब्रह्माजी जगत्‌को उपजाइकरि छांड़ बैठैं, तैसे सब कलनाको त्यागिकरि पद्मासन बांधा अरु विचार करने लगा, अरे मूर्ख मन! तू कहां जाता है, यह संसार मायामात्र है, एता काल तू जगतविषे भटकता रहता है, जैसे कहूं तुझको शांति प्राप्त न भई, काहेते कि वृथा धावता है. हे मूर्ख मन! उपशमको त्यागिकरि भोगोंकी ओर धावता है, सो अमृतको त्यागिकरि विषका बीज बोवता है, यह सब तेरी चेष्टा दुःखोंके निमित्त है, जैसे घुराण अपना घर बनाइकरि आपहीको बंधन करती है, तैसे तू आपको आप संकल्प उठाइकरि बंधन करता है, अब तू संकल्पके संसर्गको त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होहु, जो तुझको शांति प्राप्त होवै. हे मन! जिह्वासे मिलिकरि जो तू शब्द करता है, सो दर्दु

रके शब्दवत् व्यर्थ है, जब श्रवणोंसे मिलिकारि श्रवण करता है, तब शुभाशुभ वाक्य ग्रहण करिकै मृगकी नाईं तू नष्ट होता है अरु त्वचासे मिलिकारि जो तू स्पर्शकी इच्छा करता है, सो हस्तीकी नाईं नाश होता है अरु रसनाके स्वादकी जो इच्छा करता है, सो मच्छीकी नाईं नाश होता है अरु गंध लेनेकी तू इच्छा करता है सो भँवरेकी नाईं नाश हो जावैगा, जैसे भँवरा सुगंधिके निमित्त फूलविषे फँसि मरता है, तैसे तू फँसि मरैगा अरु सुंदर स्त्रियोंकी वांछा करता है, सो पतंगकी नाईं जलि मरैगा. हे मूर्ख मन ! जो एक एक इंद्रियका स्वाद लेते हैं, सो भी नाश पाते हैं, तू तौ पंचविषयके सेवनेवाला है, नाश क्यों न होवैगा, ताते तू इनकी इच्छा त्याग, जो तुझको शांति प्राप्त होवै, जो इन भोगोंकी इच्छा न त्यागैगा, तौ मैं ही तुझको त्याग छोडौंगा, तू तौ मिथ्या असत्यरूप है, तुझसे मेरा क्या प्रयोजन है ? विचार करि मैं तेरा त्याग करता हौं. हे मूर्ख मन ! जो तू देहविषे अहम् अहं करता है, सो तेरा अहं किस पदार्थविषे है, अंगुष्ठसे लेइकारि मस्तकपर्यंत अहं वस्तु कछु नहीं, यह शरीर तौ अस्थि मांस रक्तका थैला है यह तौ अहंरूप है नहीं अरु श्वास जो है, सो वायुरूप है अरु पोल आकाशरूप है, यह पंचतत्त्वोंका जो शरीर बना है, तिसविषे अहंरूप वस्तु तौ कछु नहीं है. हे मूर्ख मन ! तू अहं क्यों करता है यह जो तू कहता है, मैं देखता हौं, मैं सुनता हौं, मैं सूंघता हौं, मैं स्पर्श करता हौं, स्वाद लेता हौं, मैं इनके इष्ट अनिष्टविषे राग द्वेषकारि जलता हौं सो वृथा कष्ट पाता है; रूपको नेत्र ग्रहण करता है, सो नेत्र रूपते उत्पन्न भया है, तेजका अंश नेत्रविषे स्थित है, सो अपने विषयको ग्रहण करता है, इनके साथ मिलिकारि तू क्यों तपायमान होता है, अरु शब्द आकाशते उत्पन्न हुआ है आकाशका अंश श्रवणविषे स्थित है, सो अपने गुण शब्दको ग्रहण करता है, इसके साथ मिलिकारि तू क्यों रागद्वेषवान् तपायमान होता है, अरु स्पर्श इंद्रिय वायुते उत्पन्न भया है, वायुका अंश त्वचाविषे स्थित है, वही स्पर्शको ग्रहण करता है, तिससे मिलिकारि तू क्यों रागद्वेषकारि तपायमान होता है अरु रसना इंद्रिय जलते उत्पन्न भई है, जलका

अंश जिह्वा है, अग्रभागविषे स्थित है, सोई रसको ग्रहण करता है, इस साथ मिलि तू क्यों वृथा तपायमान होता है अरु घ्राण इंद्रिय गंधते उपजी है, सो पृथ्वीका अंश घ्राणविषे स्थित है वही गंधको ग्रहण करती है, तिससों मिलिकरि तू क्यों वृथा रागद्वेषवान् होता है. हे मूर्ख मन ! इंद्रियां तौ अपने अपने विषयको ग्रहण करती हैं, तू इनविषे क्यों अभिमान करता है कि, मैं देखता हौं, सुनता हौं, मैं सूंघता हौं, मैं स्पर्श करता हौं, रस लेता हौं यह तौ इंद्रियां सब आत्मभर हैं, अर्थ यह कि अपने विषयको ग्रहण करती हैं. औरके विषयको ग्रहण नहीं करतीं, जो नेत्र देखते हैं, श्रवण नहीं करते अरु कर्ण श्रवण करते हैं, देखते नहीं इत्यादिक सर्व इंद्रियां अपना धर्म किसीको देती भी नहीं अरु लेती भी नहीं, अपने धर्मविषे स्थित हैं अरु विषयको ग्रहण करि इनको रागद्वेष कछु नहीं होता अरु इनको ग्रहण करनेकी वासना भी कछु नहीं अरु तू ऐसा मूर्ख है, औरोंके धर्म आपविषे मानिकरि रागद्वेषसों जलता है, जो तू भी राग द्वेषते होइकरि चेष्टा करै, तौ तुझको दुःख कछु न होवै, जो वासनासहित कर्म करता है, सोई बंधनका कारण होता है, वासना विना दुःख कछु नहीं अरु तू मूर्ख है, जो विचार करि नहीं देखता, तातें मैं तुझको त्याग करता हौं, तेरे साथ मिलकै मैं बड़े खेदको पाता हौं, जैसे बिघाडके बालकको सिंह चूर्ण करता है, तैसे तैंने मुझको चूर्ण किया है, तेरे साथ मिलिकरि मैं तुच्छ हुआ हौं, अब तेरे साथ मेरा प्रयोजन कछु नहीं, मैं तौ निर्विकल्प शुद्ध चिदानंद हौं, जैसे महाकाश घटसों मिलिकरि घटाकाश होता है, तैसे तेरे साथ मिलिकरि मैं तुच्छ हो गया हौं, इस कारणते मैं तेरा संग त्यागिकरि परम चिदाकाशको प्राप्त होऊंगा, मैं निर्विकार हौं, अहं त्वंकी कल्पनाते रहित हौं, तू क्यों अहं त्वं करता है, शरीरविषे व्यर्थ अहं करनेवाला और कोऊ नहीं तू ही चोर है, अब मैं तुझको पकड़िकरि तेरा त्याग किया है, तू तौ अज्ञानते उपजा मिथ्या असत्यरूप है, जैसे बालक अपने परछायेविषे वैताल जानकरि आप ही भयको पाता है, तैसे तुझने सर्वको दुःखी किया है, जब नाश

होवैगा, तब आनंद होवैगा, तेरे उपजनेकारि महादुःख है, जैसे कोऊ ऊंचे पर्वतते गिरिकै कूपविषे जाय पडै अरु कष्टवान् होवै तैसे तेरे संगकरि मैं आत्मपदते गिरा, देह अभिमानरूपी गर्त्तविषे रागद्वेषरूपी दुःख पाया था, अब मुझको त्यागिकरि मैं निरहंकारपदको प्राप्त भया हौं, सो कैसा पद है, न प्रकाश है, न तम है, न एक है, न दो हैं, न बड़ा है, न छोटा है, अहं त्वम् आदिकते रहित अचेत्य चिन्मात्र है, जरा मृत्यु राग द्वेषं भय सब तेरे संयोगते होते हैं, अब तेरे वियोगते मैं निर्विकार शुद्ध पदको प्राप्त होता हौं. हे मन ! तेरा होना दुःखका कारण है, जब तू निर्वाण हो जावैगा, तब मैं ब्रह्मरूप होऊंगा तेरे संगकरि मैं तुच्छ हुआ हौं, जब तू निवृत्त हुआ, तब मैं शुद्ध हुआ, जैसे मेघ आकाश कुहिडके होनेकारि मलिन आकाश भासता है, जब वर्षा गई तब शुद्ध निर्मल आकाश हो रहता है, तैसे तेरे निवृत्त हुएते आत्मा निर्लेप अपना आप भासता है. हे चित्त ! यह जो देह इंद्रियादिक पदार्थ हैं, सो भिन्न हैं, इनविषे अहं वस्तु कछु नहीं, इनको एक तुझने ही इकट्ठा किया है, जैसे एक तागा अनेक मणकेको इकट्ठा करता है, तैसे सबको इकट्ठा करिकै तू अहं अहम् करता है अरु तू मिथ्या राग द्वेष करता है, ताते तू शीघ्र ही सब इंद्रियोंको लेइकरि निर्वाण होहु, जो तेरी जय होवै.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे उद्दालकविचारो नाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ५३.

उद्दालकविश्रान्तिवर्णनम् ।

उद्दालक उवाच-आत्मा सूक्ष्मते सूक्ष्म है अरु स्थूलते स्थूल है, शुद्धनिर्विकार शांतरूप है, सो मैं हौं, अचेत्य चिन्मात्र हौं, मेरेविषे विकार कोई नहीं, जेते कछु जन्म मरण आदिक विकार भासते हैं, सो आत्मविषे चित्तके कल्पे हैं, आत्माको कोई नहीं, जन्म तिसको कहते हैं जो पहिले न होवै और पाछे उपजै, आत्मा तौ आगे ही सिद्ध है बहुरि

जन्म कैसे कहिये अरु मृत्यु तिसको कहते हैं, जो पाछे न होवै, पहले अभाव हो जावै, आत्मा तौ जगत्‌विषे अंत भी सिद्ध है, ताते सब विकारोंते रहित है, बहुरि मृत्यु प्रध्वंसाभाव कैसे कहिये? देहके आदि मध्य अंत तीनों काल सिद्ध हैं, ताते सब विकारोंते रहित है, सो चित्तके संयोगते विकारों सहित भासता है. हे चित्त! तेरे संयोगकारि मैं एते भ्रमको प्राप्त भया था अरु शरीरविषे व्यर्थ अहम् अहं होता है, सो जाना नहीं जाता कि, कौन है, शरीर तौ रक्तमांसका पिंड है, इंद्रियां मन आदिक सब जड हैं, अहं करनेवाला कौन है, जब अहं होता है, तब भाव अभाव पदार्थको ग्रहण करता है, जहां अहंका अभाव है, तहां भाव अभाव कैसे होवै? अहंकार झूठ है, इंद्रियां अपने अपने विषयको ग्रहण करती हैं अरु मनादिक भी अपने स्वभावविषे स्थित हैं यह अहं करनेवाला नहीं पाते कि, कौन है, अहंका रूप कछु नहीं पाते ताते निश्चय भया कि, सब पदार्थ झूठ हैं, अहंकार पदार्थ ग्रहण करनेवाला भी झूठ है. जेते कछु पदार्थ हैं सो अहंकारकारि होते हैं, मैं क्यों इसके साथ मिलिकारि देह इंद्रियोंके इष्ट अनिष्टविषे राग द्वेष करौं, इसका अरु मेरा संयोग तौ कछु नहीं, मैं तौ आत्मा निर्लेप अद्वैत हौं, संयोग किससे होवै, भावरूप वस्तु ब्रह्म है, सो मैं हौं, मेरा संयोग किससे होवै यह तौ है नहीं, सब असत्यरूप है अरु जो कहिये देहादिक हैं, तौ भी संयोग नहीं बनता, जैसे लोह अरु बटेका संयोग नहीं होता, यह बड़ा आश्चर्य है कि, सबका अहं करनेवाला कौन था, यह मिथ्या अहंकार अज्ञानकरिके दुःखदायक था, जैसे अज्ञान करिके बालकको बैताल भासिकारि दुःख देता है, तैसे अविचार करिके दुःख होता है जैसे पहाड़पर बादल स्थित होता है, सो पहाड़ बादल नहीं होता, अरु बादल पहाड़ नहीं, होता तैसे आत्मा अनात्मा नहीं होता अरु अनात्मा आत्मा नहीं होता; जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे अहंकार आत्माविषे भासता है, विचार कियेते अहंकार कछु नहीं निकसता जहां अहंकार होता है, तहां दुःख भी आय स्थित होता है, जैसे जहां मेघ होता है, तहां बिजली भी होती है, तैसे जहां अहंकार

होता है, तहां शरीररूपी वृक्षकी मंजरी बढती है, जैसे गरुडके विद्यमान सर्प नहीं रहता, तैसे आत्मविचारके विद्यमान अहंकार नहीं रहता, ताते चित्तादिक सब झूंठ हैं, अज्ञानकरि भासते हैं, इनकरि रचा हुआ जगत् सत्य कैसे होवै ? यह जगत् अकारण है ताते मिथ्या भ्रमकरिकै भासता है, जैसे भ्रांतिकरिकै आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, जैसे नौकाविषे बैठेते तटवृक्ष चलते हैं, जैसे गंधर्वनगर भासता है, जब चित्त नष्ट होवै, तब सब भ्रमका अभाव हो जाता है, देहविषे जो अभिमान है, सो दुःखोंका कारण है, जबलग विचार नहीं उपजता, तबलग भासता है, जैसे बरफकी पुतली तबलग होती है, जबलग सूर्यका तेज नहीं लगा, जब सूर्यका तेज लगा, तब बरफकी पुतली गलि जाती है, जैसे बालकको भ्रमणेकरि पृथ्वी भ्रमती भासती है, तैसे चित्तके भ्रमकरि यह जगत् भासता है अरु विचारके उपजेते अहंकार गलि जाता है. हे मन ! तेरे साथ मिलनेकरि बड़ा दुःख होता है अरु तुझते रहित मैं आपको देखा है, अब तू सब इंद्रियों सहित निर्वाण होहु आत्मविचारकरि आत्मअग्निविषे स्थित होहु, जो सब मल तेरा जलै अरु शुद्धताको प्राप्त होवै अरु इस देह साथ तेरा मिलाप है, सो दुःखके निमित्त है, मन अरु देहके अंतरते आपसमें शत्रुभाव है अरु बाहिरते स्नेह भासता है, अंतर परस्पर नाश करनेकी इच्छा करते हैं, जो दुःख होता है, तौ मन इसके नाशकी इच्छा करता है अरु देह कहता है, मन नाश होवै तौ मेरेविषे दुःख कोई नहीं, इसका मिलना ही दुःखका कारण है. हे मूर्ख मन ! देहको तेरे संगकरि दुःख होता है, आपते इसविषे भी कोऊ नहीं मनविषे देहका अभिमान न होवै, तौ भी दुःख कोई नहीं इनके संयोगकरि दुःख होता है अरु बिछुरनेकरि दुःख कछु नहीं, तैसे मन अरु देहविषे वियोग कछु नहीं, जैसे जहां अंगारेकी वर्षा होती है, तहां बुद्धिमान् नहीं रहते, तैसे इनविषे मिलकर हमको रहना योग्य नहीं. हे मूर्ख मन ! जेता कछु दुःख तुझको होता है, सो देहके मेल मिलापते होता है, इसके साथ तू किस निमित्त मिलता है अरु आपको सुख जानता है, इसके मिलनेकरि तुझको दुःख ही होता है, परंतु ऐसा मूर्ख है, जो वारंवार

देहकी ओर ही दौड़ता है, तू सुख जानता है अरु तेरा नाश होता है, जैसे पतंग दीपको सुखरूप जानिकारि मिलनेकी इच्छा करते हैं अरु जल मरते हैं, जैसे मच्छी मांसकी इच्छा करती है, सो कंडीविषे फँस मरती है, तैसे तू देहकी इच्छा करता है अरु नाशको प्राप्त होता है, ताते इसका अभिमान त्याग, जो तुझको शांति प्राप्त होवै अरु देह कछु वस्तु नहीं, मनहीका विकार है, पंच तत्त्वोंकी देह बनी हुई है, सो कछु वस्तु नहीं, सब मनके फुरणेकारि रचे हैं, ताते फुरणेको त्यागिकारि आत्मपदविषे स्थित होहु जो तुझको शांति प्राप्त होवै अरु मैं तौ सबते अतीत शुद्ध चिदानंद स्वरूप हौं, मेरे पास न कोऊ मन है, न इंद्रियां हैं, मैं अद्वैतरूप हौं, जैसे राजाके समीपमें कोई नहीं होता, तैसे मेरे निकट मन इंद्रियां कोई नहीं, मैं शुद्ध आत्मतत्त्व हौं भोगोंसाथ मेरा क्या प्रयोजन है, जो इससाथ मिलिकारि दीनताको प्राप्त होऊं मुझको इनके साथ कछु प्रयोजन नहीं, चिरपर्यंत रहैं, अथवा अब ही नष्ट हो जावैं, इनके नाश होनेकारि मेरा नाश नहीं होता अरु ठहरनेविषे प्रयोजन नहीं होता इनते आपको भिन्न जाना है, जैसे तिलोंते तेल निकासि लिया तब बहुरि नहीं मिलता अरु दूधते माखन निकास लिया तब बहुरि नहीं मिलता, तैसे विचार करिकै अपना आप काढि लिया तब बहुरि इनके साथ नहीं मिलता, मैं शुद्ध चिदानंद आत्मा हौं, सब जगत् मेरे आश्रय है, सबविषे मैं एक ही अनुस्यूत व्यापा हौं, अब तिस स्वरूपविषे स्थित होऊं. वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! ऐसें विचारि कारि उद्दालक ब्राह्मणने वृत्तिको विषयोंते निवृत्त करिकै पद्मासन धारा अरु प्रणव अर्धमात्रा अकार उकार मकार क्रमकारिकै तिसकी उपासना करने लगा, प्राणायाम करिकै मात्राका ध्यान करत भया, अकार ब्रह्मा, उकार विष्णु, मकार शिव, अर्धमात्र तुरीया, इनको क्रमसहित करने लगा, प्रथम रेचक प्राणायाम करने लगा, आकारकी ध्वनिसाथ रेचक करत भया तिसकारि सब प्राणवायु अंतरते निकसे तब अंतर शून्य अरु शुद्ध हुआ, जैसे अगस्त्यमुनिने समुद्रको शून्य किया था तैसे अरु आकाशकारि ऐसी ध्वनि उचरी जो ब्रह्मा विष्णु रुद्रपर्यंत चली गई अरु

देह अभिमानको त्यागिकरि पुर्यष्टकाको सुषुम्नाके मार्गविषे प्राप्त किया जैसे पक्षी आलयको त्यागिकरि अकाशमार्गको उड़ता है, तैसे उद्दालकने पुर्यष्टकाको ब्रह्मरंध्रविषे स्थित किया जबलग चित्त सुखेन रहा, तबलग स्थित रहा काहेते कि हठ करनेसों दुःख होता है, इसी कारणते जबलग सुखेन रहा, तबलग स्थित रहा, जब थका तब पुर्यष्टकका वायु अधःते आया, तब उकार विष्णुरूपकी ध्वनि अरु ध्यानसाथ कुंभक किया सब प्राणवायुको आधार चक्रविषे रोका न तलेको गमन करे, न ऊपरको गमन करे, तिसकारि प्राण स्थित संघट भये; तिसते अग्नि निकसी तिस अग्निकारि इसका पाप पुण्यरूपी शरीर जलि गया, तिसविषे जबलग सुखेन रहा, तबलग स्थित भया, काहेते कि, हठयोग दुःखदायक है; इस कारणते जबलग सुखेन रहा, तबलग स्थित भया, बहुरि मकारकी ध्वनिसों रुद्रका ध्यान करिकै पूरक प्राणायाम करत भया, पूरक प्राणायाम करिकै सब स्थान वायुसों पूर्ण किये, ऊर्ध्वको चित्तकला प्राप्त भई अरु जिसका स्पर्श महाशीतल है, जैसा चन्द्रमाका मंडल शीतल है, तिसते अमृतकी वर्षा होती है, तिसकरि यह औरको पवित्र करनेहारा हुआ है, जैसे धुआँ आकाशको जाता है अरु जलको पाइकरि औरोंको शीतल करने हारा होता है तैसे इसका शरीर औरोंको पवित्र करने हारा हुआ, जैसे मंदराचल करिकै मथा क्षीर समुद्र तिसते कल्पवृक्ष निकसा तैसे इसके शरीरविषे प्राणबायु स्थित भया पद्मासन बांधिकारि इंद्रियोंको रोंकता भया, जैसे हस्ती बँधनोंसाथ बंधता है; तैसे इंद्रियोंको रोंकता भया, अर्धमात्रा जो तुरीयापद है, तिसके दर्शननिमित्त यत्न करने लगा, नेत्रोंको अर्धमूँदत भया अरु बाह्य विषयोंका त्याग किया इंद्रियोंको भी त्यागिकरि प्राण अपानको मूलचक्रविषे रोंकता भया तिसकरि नव ही द्वार रोंके गये, जैसे बालकके खेलनेका पाणी चोर होता है, तिसके मुँदनेकरि चलता पाणी सब छिद्रोंते रोंका जाता है, तैसे मूलचक्रके रोंकने करि नव ही द्वार रोंके गये इस प्रकार चित्तको रोंकता भया जब मनरूपी चञ्चल मृग दौड़े तब वैराग्य अरु अभ्यासके बलकारि बहुरि ले आवै जैसे

पुलकरि जलका वेग रुकता है, तैसे चित्तको स्थित किया तब अंतःकरणकी जो सात्त्विकी वृत्ति है, तिसको त्यागिकरि स्थित भया तब मनकी वृत्ति जो है, निद्रारूप जडता तिसविषे मन मूर्छित हो गया, जैसे सूर्य बादलोंविषे होवै तैसे निद्राविषे लीन हो गया तब राजस तामसका प्रवाह बहुरि फुरने लगा तिसको आत्मविवेककरि निवृत्त किया जैसे प्रकाशकरि तमको निवृत्त करता है, तैसे यह विकल्परूपी तमको निवृत्त करता भया, विवेकके बलकरि चित्तकलाविषे लगाया तिसको चित्तकी वृत्तिके साथ साक्षात्कार किया, महाप्रकाशवान् अरु शांतिरूप तिसविषे एक क्षण चित्त स्थित रहा, बहुरि बाह्य निकसि गया जैसे पुलको तोडिकरि जल निकसि जाता है, तैसे निकसि गया, बहुरि अभ्यासके बलकरि आत्मकलाविषे लगाया, तब तिस परमपद शांत आत्मपदविषे चित्तकी वृत्ति स्थित भई, तहां परम आनंद अमृतविषे मग्न भई, जो अशब्द आनंदपरिणामते रहित है, तिसविषे स्थित हुआ, जिस पदविषे देवता ऋषीश्वर स्थित हैं, जिस पदविषे ब्रह्मा विष्णु रुद्र स्थित हैं, तिस पदविषे उद्दालक स्थित भया. हे रामजी ! जो एक क्षण भी तिसविषे स्थित भया है अरु जो वर्ष पर्यंत स्थित भया है सो दोनों तुल्य हैं, जिसको तिस पदका अनुभव भया है, सो भोगोंकी इच्छा नहीं करता, जैसे जिसने स्वर्गका नंदनवन देखा है, सो करंजुएका वन देखनेकी इच्छा नहीं करता, तैसे ज्ञानवान् भोगोंकी वांछा नहीं करता, अरु शोक कदाचित् नहीं उपजता जैसे जिसको राज्य प्राप्त भया है, सो हीनताको प्राप्त नहीं होता, तैसे जिसने आत्मपदविषे स्थिति पाई है तिसको विषयोंकी तृष्णा अरु शोक नहीं उपजता. हे रामजी ! इस प्रकार उद्दालक स्थित था, तब सिद्ध गंधर्व विद्याधरोंके समूह तिसके निकट आय प्राप्त भये, बडे तेजवान् अरु चंद्रमाकी नाईं मुख जिनके, सो आइकरि इसको नमस्कार करत भये अरु कहा-हे भगवन् ! स्वर्गको चलौ अरु दिव्य भोग भोगौ, तुमने बडी तपस्या करी है, धर्म अर्थ पुण्यका सार काम है अरु कामका सार जो स्त्रियां हैं, सो तुम्हारे

भोगने निमित्त हैं, सो कैसी स्त्रियाँ हैं, विद्याधरियां महादेवमूर्ति स्वर्ग भी इन्होंकरि शोभता है, जैसे वसंतऋतुकी मञ्जरियां और पुष्पोंकरि पृथ्वी शोभती है, ताते तुम विमानोंपर आरूढ होइकारि स्वर्गको चलो, बहुत कालपर्यंत भोग भोगौ. हे रामजी ! जब सिद्धोंने इस प्रकार बहुत कहा, तब उद्दालकने तिनको अतिथि जानिकारि निरादर न किया; यथायोग्य पूजा करिकै कहत भया-हे सिद्धो ! तुमको नमस्कार है, तुम जाओ, तिसकी सिद्धताविषे आसक्त न भया; काहेते कि परमानंदविषे स्थित रहा, विषयोंके सुख तुच्छ जानता भया, जैसे अमृत पीनेंवाला विषकी इच्छा नहीं करता, तैसे उद्दालक विषयोंके सुखको न चाहता भया, तब कछुक दिन रहि सिद्ध पूजते भये, बहुरि उठि गये, यह परमपदविषे स्थित भया, तिस पदविषे स्थित हो अपने प्रकृत व्यवहारको करता भया, मेरुपर्वत मंदराचल पर्वतविषे विचरा, कंदराविषे ध्यान कर बैठे, कहूँ एक दिन बैठा रहे, कहूं वर्षोंके समूह बीतिजावैं इस प्रकार समाधि करिकै उतरा, तब समाधि हो गई. हे रामजी ! चित्त तत्त्वज्ञ अभ्यास करिकै महाचेतन तत्त्वको प्राप्त होता है अरु दिशाविषे जैसे चित्रका सूर्य होता है, तैसे उदय अस्तते रहित हुआ उपशम परमपदको पाया अरु चित्त भले प्रकार शांत हो गया अरु जन्मरूपी फाँसीको तोडत भया अरु देहरूपी भ्रम क्षीण हो गया शरत्कालके आकाशवत् निर्मल भया अरु विस्तृत उत्कृष्ट प्रकाशरूप उद्दालकका वपु हो गया अरु सत्तासामान्यविषे स्थित होइकारि विचरने लगा, परम शांतिको प्राप्त भया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपमप्रकरणे उद्दालकविश्रांतिवर्णनं नाम त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुष्पञ्चाशत्तमः सर्गः ५४.

उद्दालकनिर्वाणवर्णनम् ।

राम उवाच-हे आत्मरूप ज्ञानदिनके प्रकाशकर्त्ता सूर्य ! हे संशयरूपी तृणोंके जलावने हारे अग्नि ! हे अज्ञानरूपी तापोंके शांतकर्त्ता चंद्रमा !

हे ईश्वर वसिष्ठजी ! सत्तासामान्यका रूप क्या है ? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जगत्के अत्यंत अभावकी भावना करिकै जब चित्त क्षीण हो जावै तिसते शेष जो रहै, सो सत्तासामान्य है, जब चित्तते रहित आत्मसत्ता होवै, जिसविषे चित्त लीन हो जावै, तब सत्तासामान्य उदय हो आवै, जो असत्यकी नाईं स्थित है, सो सत्तासामान्य है. हे रामजी ! जब सब इंद्रियां प्रपंच शांति हो जावैं अरु शुद्ध बोध रहै, अंतर बाहरका व्यवधान मिटि जावै, सब जगत् एकरूप हो जावै, समाधि अरु उत्थान एक जैसा हो जावै, ऐसी दशाकी जो प्राप्ति है सो सत्तासामान्य है, सो देहके होते ही विदेहरूप है तिसको तुरीयातीत पद कहते हैं, समाधिविषे स्थित होवै, तौ भी केवलरूप है, उत्थान होवै, तौ भी केवलरूप है अरु अज्ञानी जो है, तिसको समाधि उत्थान तुल्य नहीं होता, काहेते कि, ज्ञानते उपजी समाधि तिसको नहीं प्राप्त भई, जो जीवन्मुक्त पुरुष हैं, हमते आदि लेकरि जिनको ज्ञानदृष्टि प्राप्त भई है, नारद देवर्षि ब्रह्मा विष्णु रुद्र आदिक और भी ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो सत्ता सामान्यविषे स्थित हैं, तिनको समाधि अरु उत्थानविषे तुल्यता है, जैसे आकाशविषे पवनका चलना अरु ठहरना समान है, जैसे पृथ्वीविषे जल स्थित है अरु अग्निविषे उष्णता स्थित है, तैसे सत्ता सामान्यविषे स्थित है, तिस पदविषे स्थित होइकरि उद्दालक विचार करता था, जबलग जगत् कोटरविषे विचरनेकी इच्छा थी, तबलग ऐसे विचरता रहा, जब विदेहमुक्त होनेकी इच्छा भई तब पहाड़के कंदराविषे पत्रोंका आसन बनाइकरि पद्मासन बांधा, बाह्य इंद्रियोंके विषयोंका त्याग किया, दंतोंके साथ दन्तोंको मिलाइकरि सब संकल्पका त्याग किया, प्राणवायुको मूल आधार चक्र करिकै नवोंही द्वार खेचरी मुद्राकरि रोकत भया, न अंतर न बाहिर न अधः न ऊर्ध्व, सर्व भाव विकल्पको त्यागिकरि आत्मतत्त्वविषे चित्तकी वृत्तिको जोड़ता भया, तब शुद्ध चिन्मात्रविषे चित्तकी वृत्ति जाय प्राप्त भयी रोम खड़े हो आये तिस व्युत्थानको भी त्याग किया, तब सत्तासामान्य विश्वंभर पदको प्राप्त भया, परम विश्रांति अनादि आनंद सुंदररूप

है, तिस पदको प्राप्त हुआ, चिरकाल करिकै क्षीण मन भया, तब पुतलीकी नाईं शरीर हो गया, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे निर्मल पदको प्राप्त भया, जिसते चित्त उपजा था तिसविषे जाय लीन भया, जैसे सूर्यकी किरणोंद्वारा वृक्षविषे रस होता है अरु सूर्य ही खैंचि लेता है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजिकरि तिस ही विषे लीन होते हैं, तैसे चित्त लीन हो गया अरु संकल्प संपूर्ण उपाधिविलासते रहित भया, तिस आनंदपदको प्राप्त भया. जिसविषे इंद्रादिकको आनंद तुच्छ भासता है, ऐसा विश्वंभर आनंद जो उत्तम पुरुषोंकरि सेवने योग्य है, तिसको उद्दालक प्राप्त भया अद्वैत अशब्द सत्तासामान्य पदविषे स्थित भया, परम शांतिरूप होता भया, तब केतेक काल पीछे तिसका शरीर गिर पड़ा, जैसे रस सूखेते वृक्ष गिर पडता है, सूर्यकी किरणोंकरि सूखा हुआ शरीर वीणाकी नाईं होत भया जैसे वीणा बाजती है अरु तिसका शब्द प्रगट होता है, तैसे जब वायु चलै, तब तिस शरीरविषे प्रवेश करि निकसेते शब्द प्रगट होता है, केतेक काल पीछेते देवताओंकी स्त्रियां अरु अश्विनीकुमारकी शक्ति आदिक आईं, महाअग्निकी नाईं जिनका प्रकाश है अरु देव देवी हैं, सब देवतोंकरि पूज्य सो सखियोंसहित आइकरिकै गलेविषे सुंदर पुष्पोंकी माला पहिराई अरु मोरके पुच्छवत सुंदर करिकै तिसके आगे पूजा करि नृत्य करने लगीं अरु लीलाकरिकै शोभती भयीं. हे रामजी! उद्दालकके चित्तकी वृत्तिमें कलनाते रहित विवेकरूपी वल्ली प्रगट भयीं तिसको आत्मानन्दरूपी फल भया और जिसके हृदयविषे ऐसे फूलोंकी सुगंधि स्थित होवै, सो भी सब भ्रमको तरि जावै, जिसको ऐसा विवेक प्राप्त होवै सो सब भ्रमते मुक्त होवै.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे उद्दालकनिर्वाणवर्णनं नाम चतुष्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशत्तमः सर्गः ५५.

ध्यानविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इस प्रकार उद्दालक ऋषीश्वर आत्मपदको प्राप्त भया है, तैसे क्रमकरिकै अपने आपको विचारकरिकै तू आत्मपदको प्राप्त होहु. हे कमलनयन ! कर्तव्य यही है कि, गुरु अरु शास्त्रोंके वचनोंको धारि जगत्भ्रमते मुक्त होहु अरु आत्माभ्यासकरि शांतपदको प्राप्त होओ, प्रथम गुरु अरु शास्त्रोंके वाक्योंको समझिये, तिसकरि जो विषयभूत अर्थ है, तिसके अभ्यासविषे बुद्धिको लगाइये, इसप्रकार जब होवै, तब परमपदकी प्राप्ति होवै, अथवा एक बुद्धिविषे तीक्ष्ण अभ्यास दृढता होवै कलंक कलनाते रहित ऐसा बोध होवै अरु साधनादि सामग्रीते सहित होवै, अथवा वैराग्यादिक सामग्रीते रहित होवै तौ भी अविनाशी पदको प्राप्त होवै. राम उवाच-हे भूतभविष्यके ईश्वर ! एक ज्ञानवान् पुरुष समाधिविषे स्थित होता है, बहुरि जगत्व्यवहारविषे विचरता है अरु एक समाधिविषे स्थित है, जगतका व्यवहार नहीं करता, तिन दोनोंविषे श्रेष्ठ कौन है ? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! प्रथम समाधिका लक्षण सुन कि, समाधि किसको कहते हैं अरु व्युत्थान किसको कहते हैं सो सुन. यह गुणोंका समूह अहंकारते लेकरि तत्त्वगुणात्मक है, जो इनको अनात्मरूप देखता है अरु आपको केवल इनका साक्षी चेतन जानता है अरु स्वाभाविक जिसका चित्त शीतल है, तिसको समाधि कहते हैं, जो मैत्री करुणा अमान्यता आदिक गुणकरि स्थित हुआ है, मन आत्मविषयकरि शांतिको प्राप्त होता है, तिसको समाधि कहते हैं. हे रामजी ! जिसको ऐसा निश्चय होता है कि, मैं शुद्ध चिदानंदस्वरूप ही अरु दृश्यके संबंधते रहित हौं, ऐसे निश्चयकरि जिसका अन्तःकरण शीतल होता है, सो कोऊ वनविषे अथवा गृहविषे रहैं, सो दोनों स्थान उनको तुल्य हैं अरु वह दोनों पुरुष तुल्य हैं. जो अंतःकरण शीतल होवै, सो बड़े तपोंका फल अनंत है. हे रामजी ! जो इंद्रियोंको शमन करिकै बैठा है अरु मनकरि जगत्के पदार्थकी चिंतवना करता है,

तिसकी समाधि मिथ्या है, वह उन्मत्तकी नाईं नृत्य करता है अरु जिसको वासना कोई नहीं अरु मनविषे व्यवहार करता है, तिसको बुद्धिमान्‌की समाधिके तुल्य जान, कोऊ ज्ञानी व्यवहार करता है, कोऊ ज्ञानवान् व्यवहारको त्यागिकरि वनविषे समाधिविषे स्थित हो बैठता है, सो दोनों निश्चयकरि परमपदको प्राप्त होते हैं, इसविषे संशय नहीं करना, ज्ञानवान् निर्वाह पुरुषार्थ करता भी दृष्टि आता है, तौ भी अकर्त्ता है अरु जो अज्ञानी कर्त्ता भी नहीं, परंतु वासनाकरिकै कर्तव्यभावको प्राप्त होता है, जैसे कोऊ पुरुष कथा श्रवण करने बैठा है अरु मन किसी और ठौर निकस गया है; तौ सुनता बैठा भी नहीं सुनता, तैसे ज्ञानवान्‌का चित्त आत्मपदकी ओर लगा है, ताते वह कर्त्ता भी नहीं कर्त्ता, उसको कर्तृत्वका अभिमान कछु नहीं होता अरु घनवासना सहित अज्ञानी सब इंद्रियोंते स्थित करिकै सोइ गया है, तिसको स्वप्न आया सो पर्वतते टोयेविषे आपको गिरा देखता है अरु कष्टवान् होता है, ताते जहां वासना है, तहां क्षोभ भी है, जहां वासना कछु नहीं तहां शांति है. हे रामजी ! जिसविषे कर्तृत्वका अभिमान नहीं, अरु निश्चयकरि आपको अकर्त्ता जानता है, तिसको केवलीभावते समाधिस्थित जान अरु जिसविषे कर्तृत्व अभिमान है अरु समाधिकरि बैठा है, तौ भी तिसको व्युत्थान जान. हे रामजी ! चित्तको चलावनेका कारण स्मृति है जो स्मृति जगत्‌की लेकरि समाधि लगाय बैठता है, तौ भी चित्तवासना करिकै विस्तारको पाता है, जैसे बीजसों अंकुर उपजता है अरु विस्तारको पाता है, तैसे मनविषे जो स्मृति वासनाकी होती है, तिसकरि चित्त विस्तारको पाता है अरु जो जगतकी वासना मनते जाती रही, अर्थ यह कि, जब जगतका सद्भाव निवृत्त होता है, तब चित्त अचल हो जाता है. हे रामजी ! जिस चित्तसों वासना नष्ट होती है, तिसको अचल स्थिति कहते हैं, सो ध्यानविषे केवली भावविषे स्थित होता है अरु जिसके चित्तविषे सदा वासना फुरती है, तिसको सदा क्षोभ होता है, ताते निर्वासनिक होइकरि परम पदको प्राप्त होहु. हे रामजी ! जिस चित्तविषे वासनागंध होती है

तहां कर्तृत्वका अभिमान स्फुरता है, तिसकरि सदा दुःखी होता है, वासनाके क्षीण हुएते मुक्त होता है, जिस पुरुषके चित्तसों जगत्की आस्था निवृत्त भई है अरु वीतशोक भया है, सो स्वस्थात्मा है, तिसको समाधि कहते हैं. हे रामजी ! जिसके अंतते संसारका राग द्वेष मिटि गया है अरु शांतिको प्राप्त भया है, तिसको सदिव्य समाधि कहते हैं, ताते चित्तविषे जो पदार्थभावना है, तिसकों त्यागिकरि अपने स्वभावविषे स्थित होहु, तब गृहविषे रहहु, अथवा वनविषे जावहु, दोनों तुझको तुल्य हैं. हे रामजी ! गृहविषे स्थित हैं, अरु चित्त जिनका समाहित है, अहंकारके दोषते रहित है, तिनको कुटुम्ब अरु जनोंके समूह भी वनकी नाईं हैं, जैसे उसको वन है, तैसे ज्ञानवान्को गृह वनतुल्य है अरु देहाभिमानी जो अज्ञानी है, सो वनविषे जाय समाधि लगाय बैठता है, अरु चित्तकी वृत्ति विषयोंकी ओर रहती है, तब वह जगत्के समूहको देखता है, अथवा सुषुप्तिविषे जड़भूत हो जाता है. हे रामजी ! चित्त उत्थानविषे स्वरूपते गिरा हुआ जगत्भ्रमको देखता है अरु जो चित्त निर्वाणपद आत्माविषे स्थित होता है, तब उपशम होता है. हे रामजी ! जो पुरुषभाव सर्व पदार्थोंते आत्माको अतीत जानता है, सो समाहितचित्त कहाता है अरु जिसको जाग्रत् जगत् स्वप्नवत् भासता है, सो समाहितचित्त कहाता है, वह पुरुष उनके समूहविषे रहता है, तौ भी उसका संबन्ध किसीसाथ नहीं, जैसे कोऊ पुरुष राजमार्गविषे चला जाता है, तहां किसी मार्गके पदार्थसाथ संबंध नहीं होता; तैसे उस पुरुषका अभिमान किसीविषे नहीं स्फुरता; जिस पुरुषका चित्त अंतर्मुख हुआ है, सो सोवै अथवा बैठै, अथवा चलै, देखै, नगर ग्राम सब उसको महावनरूप भासता है, सब जगत् उसको आकाशरूप भासता है, जिस पुरुषको आत्माविषे प्रीति भई है, तिसको अंतर्मुखी कहते हैं, जिसका अंतर आत्मज्ञानकरि शीतल भया है, तिसको सब जगत् शीतलरूप भासता है, जबलग जीता है, तबलग विगतज्वर होइकरि जीता है अरु जिसका अन्तर तृष्णाकरि जलता है, तिसको सब जगत् दावाग्निसाथ तपता भासता है.

हे रामजी ! यह सब जगत् इसके चित्तविषे स्थित है, जैसी भावना चित्तविषे होती है, तिसके अनुसार जगत् भासता है, स्वर्ग पृथ्वी लोक पाताल वायु नदियां आकाश देश काल जेता कछु जगत् है, सो सब चित्त अंतःकरणविषे हैं, वही बाहर विस्तार होइकरि भासता है, जैसे वटके बीजविषे वटका विस्तार होता है, तैसे चित्तविषे जगत्का विस्तार होता है अरु बाहर जो सूर्य आदिक भासता है, सो भी चित्तके अंतर स्थित है, जैसे फूल खिलता है, तिसके अंतरकी सुगंधि बाहर भासती है अरु वस्तुते न कछु अंतर है, न बाहिर है, जैसा किंचन होता है, तैसा ही चेत्यताकरि फुरता है, तैसे वही सत्ता जगत्रूप होइकरि भासती है, जगत् सब आत्मरूप है, और न कोऊ सत्य है, न असत्य है, एक आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनको सदा ऐसे ही भासता है. हे रामजी ! जिसके अंतर शांति है, तिसको सब जगत् शांतिरूप है अरु जिसका अंतर देहाभिमानविषे स्थित है, सो नाशरूप होता है अरु भयको प्राप्त होता है, किसी ओरते शांति उसको प्राप्त नहीं होती, स्वर्ग, पृथ्वीलोक, पाताल, वायु, आकाश, पर्वत, नदियां, देश, काल सबको प्रलयकालकी अग्निवत् जलता देखता है; जिसके अंतर ताप होता है, तिसको सब जगत् तपता भासता है, आत्मज्ञानीको शांतरूप भासता है, जैसे अंधको सब जगत् तमरूप भासता है अरु नेत्रोंवालेको सब जगत् प्रकाशरूप भासता है. हे रामजी ! जिस पुरुषको आत्मपदविषे प्रतीति भई है अरु इंद्रियोंके साथ कर्म भी करता है, परंतु हर्षशोकके वश नहीं होता, सो समाहितचित्त कहाता है जो पुरुष सबको आत्मा देखता है, चित्तको चिंतवता नहीं अरु भविष्यत्की इच्छा नहीं करता वर्त्तमानविषे रागद्वेषते रहित होइकरि विचरता है सो समाहितचित्त कहाता है. हे रामजी ! जो पुरुष जगत्की पूर्वापर गतिको देखिकरि हँसता है अरु शमपदविषे स्थित होता है, किसीविषे ममता नहीं करता, सो समाहितचित्त कहाता है अरु जो पुरुष अहं ममताते रहित है अरु जगत्की विभागकलनाते रहित है, चेतन अचेतन भाव जिसको नहीं

फुरता सो पुरुष सत्य है अरु आकाशकी नाईं स्वच्छ निर्मल है, राग द्वेष क्रोध विकारोंते काष्ठ लोष्ट समान हो रहता है अरु सब भूतोंको अपनेसमान देखता है अरु औरके द्रव्यको देखिकरि दृष्टि नहीं करता, स्वभावहीकरि नहीं चाहता, कछु द्वंद्वके भयकरि नहीं त्यागता, ऐसे जो देखता है अरु अहंकारते रहित होता है, जगत्‌के न सत्यभावको देखता है, न असत्यभावको देखता है, न ज्ञानको देखता है, न अज्ञानको देखता है, न जड़ देखता है, न चेतन देखता है, केवल अद्वैततत्त्व देखता है, सो महाशांत पदविषे स्थित है, सो उठि खड़ा होवै, अथवा बैठा रहै, उदय होवै, अथवा अस्त होवै, बड़े भोगोंविषे रहै, अथवा वनविषे जाय बैठे, अथवा मद्यपानकरि उन्मत्त होवै अरु नृत्य करे अरु गयादिक तीर्थोंविषे निवास करे, अथवा कंदराविषे जाइ निवास करै, शरीरको अगर चंदनका लेपन अथवा चीकडके साथ लपेटै अथवा देह अब ही गिरै, अथवा कल्पपर्यंत रहै, कछु कदाचित् भी तिस पुरुषको कलंक नहीं लगता, जैसे स्वर्णको चीकड़के मिलापका दोष नहीं लगता; तैसे ज्ञानवान्‌को कर्तृत्वका दोष नहीं लगता. हे रामजी! इस संवित्‌को अहंता ही कलंक है, सो महापुरुष अहंकारते रहित है, ताते स्पर्श नहीं होता, जैसे सीपीको रूपेका आभास नहीं स्पर्श करता तैसे ज्ञानवान्‌को क्रिया स्पर्श नहीं करती. हे रामजी! अहंता ही करिकै यह दीन होता है, जब अहंता इसको फुरती है, तब अनेक प्रकारके दुःख सुख देखता है, परंपरा जन्मोंको देखता है अरु भयको प्राप्त होता है, जैसे किसीको जेवरीविषे सर्प भासता है, अरु भय पाता है, जब भले प्रकार दीपकके प्रकाशकरि देखता है तब सर्पभय निवृत्त होता है तैसे अहंताकरि यह दुःख पाता है, अहंताके शांत हुएते शांतिमान् होता है. हे रामजी! ज्ञानवान् जो कछु कर्म करता है, खाता पीता लेता देता हवन करता है; तिसविषे अहंताका अभिमान नहीं करता, ताते करनेविषे तिसका कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता अरु जो नहीं करता तिसविषे कछु अभिमान नहीं, ताते करनेते

उसकी हानि कछु नहीं होती, अपने स्वभावविषे स्थित है; जगत्‌को द्वैतभावकरि नहीं देखता, सर्व आत्मभावकरि देखता है, ताते कर्म स्पर्श नहीं करता.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे ध्यानविचारवर्णनं नाम पञ्चपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पंचाशत्तमः सर्गः ५६.

भेदनिरासवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच– हे रामजी ! चित्त आदिक जो जगत् है, सो वास्तव आत्माते भिन्न कछु नहीं, आत्मारूपी मिरच हैं, तिसविषे चित्त अहंतारूपी देश काल तीक्ष्णता भिन्न नहीं, जैसे इक्षुते मधुरता भिन्न नहीं, तैसे आत्माते जगत् भिन्न नहीं, जैसे पत्थरविषे कठोरता है, तैसे आत्माविषे जगत् है, जैसे पर्वतविषे जडता होती है, तैसे आत्माविषे अहंता होती है, जैसे जलविषे द्रवता होती है, तैसे आत्माविषे अहंता आदिक होती है, जैसे फूल फल टास वृक्षते भिन्न नहीं होते, तैसे आत्माविषे अहंता आदिक अभेद होते हैं, जैसे तीक्ष्णता मिरचते भिन्न नहीं तैसे चित्त अहंतारूपी देश काल आत्माते भिन्न नहीं; जैसे अग्निविषे उष्णता होती है, बरफविषे शीतलता होती है, सूर्यविषे प्रकाश होता है, गुडविषे मधुरता होती है, तैसे आत्माविषे जगत् होता है, जैसे अमृतविषे स्वादवेदना होती है, तैसे आत्माविषे देशकाल वेदना होती है. हे रामजी ! जैसे मणिविषे प्रकाश होता है, तैसे आत्माविषे अहंता होती है, जैसे जलते तरंग भिन्न नहीं होता, तैसे आत्माते अहंता भिन्न आदिक नहीं होते, जेता कछु जगत् भासता है सो आत्मतत्त्वका प्रकाश है, सो आत्मा अनन्त है, सबविषे पूर्ण है, एक ही ईश्वरभावविषे स्थित है, महा घनशिलाकी नाईं स्थित है, तिसते भिन्न कछु नहीं, जैसे आकाश अपने भावविषे स्थित है, तैसे सत्य केवल आत्माविषे स्थित है, अपने आपकरि निर्वेद है अरु वेदना भी तिसते भिन्न कछु नहीं, जैसे जल ही

तरंगरूप हो भासता है अरु तैसे आत्मा वेदनरूप हो भासता है, जैसे जल-विषे द्रवता भासती है अरु पवनविषे चलना भासता है, तैसे ज्ञानरूप आत्माविषे अहंतारूप देश काल जगत् भासता है. हे रामजी ! जीवोंका जीवना ज्ञानकरि होता है अरु ज्ञानसत्ताका जीवना चेतनकरि होता है, तैसे चिन्मात्र अरु जीवोंविषे रंचकमात्र भी कछु भेद नहीं, जैसे ज्ञान चेतनसत्ता अरु जीवविषे भेद नहीं तैसे ज्ञाता अरु जगत्विषे भेद कछु नहीं एक ही अखंड सत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है. हे रामजी ! सर्व सत्ता एक अज अनादि अरु आदि अन्त मध्यते रहित प्रकाशरूप है, चिन्मात्र अद्वैततत्त्व अपने आपविषे स्थित है, अशब्द है, तिसविषे वाणी प्रवेश नहीं करसकती अरु जेते कछु वाक्य हैं, सो तिसके जतावने निमित्त कहे हैं वास्तवते द्वैत वस्तु कछु नहीं, एक आत्मतत्त्वको अपने हृदयविषे धारिकरि स्थित होहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठ उपशमप्रकरणे भेदनिरासवर्णनं नाम षट्पञ्चाशत्तमः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ५७.

सुरघवृत्तान्तमांडव्योपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! एक आगे पुरातन इतिहास हुआ, तिसको ऋषीश्वर कहते हैं, सो तू सुन. क्रांत देशका राजा सुरघ होता भया, तिसका एक वृत्तांत है, सो विस्मयको उपजावनेहारा है. हे रामजी ! उत्तर दिशाविषे पृथ्वी है, तहां सुंदर सुगन्धता है, मानौं कपूरकरि लीपी हुई है, मानौं सदाशिवके हंस आय स्थित हुए हैं, हिमालयके शिखरऊपर कैलासपर्वत है, सो सब पर्वतोंते उत्तम है अरु उज्ज्वल श्वेत है, सो रुद्रके रहनेका स्थान है, तहां कल्पवृक्ष अरु गंगाका प्रवाह चलता है और भी बडी नदी चलती हैं अरु कमलोंसहित ताल बहुत महासुन्दर स्थित हैं, जिसमें मृग पक्षी बहुत हैं, तिस हिमालयके तले स्वर्ण-वत् जटावाले क्रांत रहते हैं, जैसे वृक्षके मूलविषे पिपीलिका रहती है, तैसे

पर्वतके आश्रय क्रांत देशके जीव रहते हैं, तिस क्रांत देशका राजा सुरघ होता भया, कैसा राजा मानो प्रत्यक्ष लक्ष्मीमूर्तिधारी भुजविषे है, वेगवान् ऐसा मानो पवनकी मूर्ति है अरु बैराग्यवान् ऐसा मानो जिनेंद्र है अरु बुद्धिमान् ऐसा मानो बृहस्पति अरु कवि ऐसा मानो शुक है अरु राजा ऐसा मानो इन्द्र अरु धनी ऐसा मानो कुबेर, ऐसा राजा होइकारि राज्य करता भया, भले प्रकार प्रजाकी पालना करै, जो भले मार्गविषे वर्तैं तिनकी रक्षा करै अरु जो पापकर्म चोरी आदिक करैं, तिनको दंड देवै, जैसा कर्म आनि प्राप्त होवै, तिसविषे रागद्वेषते रहित होइकारि व्यतीत करै, एक काल में अपने स्थानविषे बैठा है कि, चित्तविषे विचार आनि उपजा, संशयरूपी बायुकरिकै तिसकी बुद्धिरूपी पक्षिणी डोलायमान भई है, बडा अनर्थ है कि, मैं जीवोंको कष्ट देता हौं, ताते इसको धन देऊं अरु कष्ट न देऊं जैसे तिलोंको तेली पेरता है, तैसे मैं पापियोंको कष्ट देता हौं अरु दुष्टोंको कष्ट दिये विना राज्य नहीं चलता जैसे जल विना नदीका प्रवाह नहीं चलता, तैसे दुष्टोंको कष्ट दिये विना राज्य नहीं चलता अरु जब दंड देता हौं तब दुःख पाते हैं, मैं क्या करौं दोनों बातोंविषे कष्ट है. हे रामजी ! ऐसे विचारविषे राजा भ्रमता रहै, तब एक दिन तिसके गृहविषे मांडव्यमुनि आनि प्राप्त भया, जैसे इंद्रके गृहविषे नारद आवै तैसे आया; तब राजा भले प्रकार तिसका पूजन करता भया अरु संदेहवान् होइकारि संशयरूपी कुत्सित वृक्षके नाशकर्त्ता कुहाडे सर्ववेत्तासों पूछता भया. सुरघ उवाच–हे भगवन् ! सर्व धर्मगत तुम्हारे आवनेकारि मैं बडे आनंदको प्राप्त भया हौं जैसे वसंत ऋतुकारि पृथ्वी प्रफुल्लित होती है तैसे प्रफुल्लित भया हौं कि मैं भी अब आपको पुण्यवान् जानत भया हौं कि, मैं भी पुण्यवानोंविषे प्रसिद्ध होऊंगा, काहेते जो तुम मेरे गृहविषे आये हौ, जैसे सूर्यके उदय हुएते प्रकाश हो आता है, तैसे मैं तुम्हारे दर्शनकारि प्रसन्न भया हौं. हे भगवन् ! मुझको संशय है, तिसके निवारणको योग्य हौ, जैसे सूर्यके उदय हुएते अंधकार नष्ट हो जाता है; तैसे तुमकारि मेरा संशय निवृत्त हो जावैगा, जो कोऊ महापुरुषोंका संग करता है, तिसका संशय अवश्य

निवृत्त हो जाता है अरु संशय परम दुःखोंका कारण है, ताते मेरे संशयको तुम दूर करौ, सो मुझे यह संशय है कि, जो कोऊ दुष्ट कर्म करता है, तिसको मैं दंड देता हौं अरु जब उसको दुःख देखता हौं, तब मुझको दया उपजती है, जैसे सिंहके नख हस्तीको खैंचते हैं तैसे यह संशय मुझको खैंचता है ताते यही उपाय कहो, जिसकरि मुझको समता प्राप्त होवै जैसे सूर्यकी किरणैं सब ठौरविषे सम होती हैं तैसे इष्ट अनिष्टविषे मैं सम होऊं कृपाकरि मुझको कहौ. मांडव्य उवाच-हे राजन्! यह तौ बहुत सुगम है अरु अपने अधीन है आप ही करि सिद्ध होता है अरु अपने ही गृहविषे है. हे राजन्! सब उपाधि मनविषे उठती हैं सो मन तुच्छ है, विचार कियेते निवृत्त हो जाता है, जैसे उष्णताकरि बरफ जलमय हो जाता है, तैसे विचार कियेते मनभाव लीन हो जाता है, तब ताप भी निवृत्त हो जाता है, जैसे शरत्कालके आयेते कुहिड नष्ट हो जाती है, तैसे विचार कियेते मनभाव नष्ट हो जाता है, सो विचार इस प्रकार कि, मैं कौन हौं, अरु इंद्रियां क्या हैं, अरु जगत् क्या है, जन्ममरण किसको कहते हैं? इस विचारकरि जब तू अपने स्वभावविषे स्थित होवैगा तब तुझको हर्ष शोक अरु क्रोध राग द्वेष चलायमान न कर सकैगा, जैसे वायुकरि पर्वत चलायमान नहीं होता, तैसे तू अचल रहैगा. हे राजन्! जब आत्मबोध होवैगा. तब मन अपने मनभावको त्यागि देवैगा, तू अचल संतापते रहित अपने स्वरूपको प्राप्त होवैगा, जैसे तरंगभाव मिटनेकरि जल निर्मल हो जाता है, तैसे तू अचल होवैगा, मनधर्मभी रहैगा, परंतु मध्यसों अज्ञान नष्ट हो जावैगा आत्मसत्ता भाव होवैगा, जैसे काल वही रहता है, परंतु ऋतु और हो जाता है तैसे मन वही होवैगा, परंतु स्वभाव और हो जावैगा अरु तेरे टहलुए प्रजा भी साधु हो जावैंगे तेरी आज्ञामें वर्तैंगे अरु तुझको देख प्रसन्न हो-जावैंगे. राजन्! जब तू विवेकरूपी दीपकसे आत्मरूपी मणि पावैगा तब तेरी बडाई सुमेरु अरु समुद्र अरु आकाशते भी अधिक होवैगी, जब तुझको विवेकसों आत्ममहत्त्वका प्रकाश होवैगा, तब तू संसारकी तुच्छ वृत्तिविषे न डूबैगा, जैसे गोपदके जलविषे हस्ती नहीं डूबता, तैसे

तू रागद्वेषविषे न डूबैगा, जिसको देहविषे अभिमान है अरु चित्तविषे वासना है, सो तुच्छ संसारकी वृत्तिविषे डूबते हैं, ताते जेता कछु अनात्मभाव दृश्य है, तिसका त्याग कारि पाछे जो शेष रहै; सो परमतत्त्व आत्मा है. हे राजन् ! जो कछु सत्य वस्तु है, तिसको हृदयविषे धर अरु जो असत्य है तिसका त्याग कर, जैसे तबलग कलरकारि सोनार धोता है, जबलग स्वर्ण नहीं निकसता, जब सुवर्ण निकसता है, तब धोनेका त्याग करता है, तैसे तबलग आत्मविचार कर्तव्य है, जबलग आत्माका साक्षात्कार नहीं भया, जब आत्मतत्त्वका साक्षात्कार होता है तब विचारसाथ प्रयोजन नहीं रहता. हे राजन् ! सबविषे सब प्रकार सब काल सब आत्माकी भावनाकर अथवा जेता कछु दृश्यभाव हैं, सो सब त्यागिकारि जो शेष रहैगा सो तुझको भासि आवैगा, जबलग सर्व दृश्यका त्याग न करैगा, तबलग आत्मपदका लाभ न होवैगा सर्व दृश्यके त्यागते आत्मपद भासैगा. हे राजन् ! किसी वस्तुके पानेका यत्न करता है, तौ औरको त्यागिकारि उसका यत्न करिये तौ प्राप्त होता है, तौ आत्मतत्त्व अनन्य होइकारि चित्त विना कैसे प्राप्त होवैगा, जब संपूर्ण अपना यत्न एक ही ओर लगता है. तब तिस पदकी प्राप्ति होती है, ताते आत्मपद पावनेनिमित्त सब दृश्यका त्याग कर सबके त्याग कियेते जो शेष रहै, सो परमपद है. हे राजन् ! सबके त्याग कियेते पाछे जो सत्ता अधिष्ठान रहैगा सो तुझको आत्मभावकरि प्राप्त होवैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघवृत्तांतमांडव्योपदेशो नाम सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥

सुरघवृत्तांतवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! इस प्रकार कहिकारि मांडव्यमुनि अपने स्थानको गया, तब सुरघराजा एकांतमें बैठिकारि विचार करने लगा कि,

मैं कौन हौं? न मैं सुमेरु हौं, न मेरा सुमेरु है, न मैं जगत् हौं, न मेरा जगत् है, न मैं पृथ्वी हौं, न मेरी पृथ्वी है, न मैं क्रांत मंडल हौं, न मेरा क्रांत मंडल है, काहेते जो अपने भावविषे स्थित है, मेरे भावकरि तौ यह स्थित नहीं, जो मैं न होऊं, तो भी यह ज्योंकी त्यों स्थित है, तौ मेरे कैसे होवैं अरु मैं इनका कैसे होऊं ? न मैं नगर हौं, न मेरा नगर है, हस्ती घोड़ा मंदिर धन स्त्री पुत्रादिक जेते कछु पदार्थ हैं, सो न मेरे हैं, न मैं इनका हौं, इनविषे आसक्त होना वृथा है, इनविषे संबंध मेरा कछु नहीं, जेते कछु भोगोंके समूह हैं, न मैं हौं, न यह मेरे हैं, टहलुए भृत्य कलत्र सब अपने भावकारि सिद्ध हैं, मेरा इनके साथ संबंध कछु नहीं, न मैं राजा हौं, न मेरा राज्य है, मैं एकाएकी शरीरमात्र हौं, इनविषे मैं ममत्व करता हौं, सो वृथा है अरु शरीरविषे जो मैं अहं कर्त्ता हौं, सो भी व्यर्थ है, काहेते जो हाथ पाँव आदिकका स्वरूप है, सो भिन्न है, न यह मैं हौं, न यह मेरे हैं, इनविषे मेरा शब्द कछु नहीं, रक्त मांस हाड आदिकरूप हैं, सो मैं नहीं, यह जड़ हैं, मैं चेतन हौं, इनके साथ मेरा कैसे संबंध होवै? जैसे जलका स्पर्श कमलको कछु नहीं, तैसे इनका स्पर्श मुझको नहीं, न मैं कर्म इंद्रियां हौं न मेरी कर्म इंद्रियां हैं, यह जड हैं, मैं चैतन्य हौं, न मैं ज्ञान इंद्रियां हौं; न मेरी ज्ञानइंद्रियां हैं, इनते परे मन है, सो भी मैं नहीं, यह जड है, मन बुद्धि चित्त अहंकार यह सब अनात्मारूप हैं, मेरा इनके साथ अविद्या कारि संबन्ध है, भ्रांति करिकै मैं इनको अपना स्वरूप जानता था, यह सब भूतोंका कार्य है, इनके पाछे चेतन जीव है, सो चेतन दृश्यको चैतनेवाला है, सो चेतन चेतना मैं नहीं, इस सर्वते शेष अचेत्य चिन्मात्र है; सो सत्ता मेरा स्वरूप है, बड़ा कल्याण भया, जो मैं अपना आप पाया हौं, अब मैं जागा हौं, अपना स्वरूप पाया हौं, बडा आश्चर्य है; जो मैं वृथा देहादिकको आप जान शोक मोहको प्राप्त होता था, मैं तो एक निर्विकल्प चेतन हौं, अरु अनंत आत्मा हौं, सबविषे व्याप रहा हौं, ब्रह्मरूप आत्मा हौं इंद्रियोंते आदि जेते भूतगण हैं, सो सबका आत्मा हौं, यह भगवान् आत्मा सबके अन्तर व्याप्य है, जैसे सबके

अंतर तत्त्व होते हैं, तैसे यह चेतनरूप सर्व भावको भरि रहा है अरु सर्व भावोंविषे व्यापि रहा है, भैरव अरु उदय अस्तभाव आदि विकारोंते रहित है, ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत सबका आत्मा यही है, सब प्रकाशोंका दीपक प्रकाश करनेहारा है अरु संसाररूपी मोतियोंके परोवनेहारा तागा यही है, सबका कारण कार्य यही है अरु साकारते रहित है, शरीर आदिक सब इसकी सत्ताकरि उपलब्ध होते हैं, शरीररूपी रथ इसीकरि चलता है अरु वास्तवते शरीरादिक कछु वस्तु नहीं, यह जगत् चित्त-रूपी नटकी नृत्य लीलारूप है, चित्तविषे जगत् फुरता है, वास्तव और वस्तु कछु नहीं, बडा कष्ट है, मैं वृथा संग्रह असंग्रहकी चिंता करता था, यह गुणोंका प्रवाह है, इसविषे मैं क्यों शोकवान् होता था? बडा आश्चर्य है, जो असत्य भ्रम सत्य हो मुझको दीखता था, अब मैं निश्चयकरिकै समप्रबोध हुआ हौं, दुर्दृष्टि मेरी दूर भयी, दृष्टिकी जो अलख दृष्टि है, सो मैंने देखी है अरु जो कछु पावने योग्य था, सो मैं पाया हौं, अचैत्य चिन्मात्र तत्त्वको प्राप्त भया हौं, जेता कछु दृश्य है, तिसको मैंने स्वरूपते देखा है अरु अहं मम दुःख मेरा नष्ट भया है, मैं चिदानंदपूर्ण आत्मा हौं, नित्य शुद्ध अनंत आत्मा अपने आपविषे स्थित हौं अरु ग्रहण क्या अरु त्याग क्या ? यह क्लेश कोऊ नहीं, न कोऊ दुःख है, न सुख है, सर्व ब्रह्म है और दूसरी वस्तु कछु नहीं राग किसका करौं अरु द्वेष किसका करौं ? मैं मिथ्या मूढताको प्राप्त होइ करि दुःखी होता था, अब कल्याण हुआ मैं अमूढ होइकरि अपने आप स्वभावविषे स्थित भया हौं, ऐसे आत्माके साक्षात्कार विना दुःखी था, इसके देखते अब किसका शोक करौं अरु कैसे मोहको प्राप्त होऊँ ? अब मैं क्या देखौं अरु क्या करौं, कहां स्थित होऊं ? यह सब जगत् आत्माके प्रकाशकरि है अरु सब आत्मारूप है. हे अतत्त्वरूप ! अर्थ यह कि जिसविषे तत्त्वोंकी उपाधि कछु नहीं. तेरी दृष्टि निष्कलंक है, मैं अब सम्यक् ज्ञानवान् हुआ हौं, मेरा मुझहीको नमस्कार है, मैं अनंत आत्मा हौं, अनुभवरूप हौं, भ्रमते रहित निष्कलंक सब

इच्छाते रहित सुषुप्तिकी नाईं शांतरूप हौं, अचेत्य चिन्मात्र हौं, सदा अपने आपविषे स्थित हौं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघवृत्तांतवर्णनं नाम अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ५९.

सुरघवृत्तान्तसमाप्तिवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! कीर जो स्वर्णरूप देश है, तिसका राजा परमानंदको प्राप्त भया, इस प्रकार विचार अभ्यासकरि ब्रह्मरूप हुआ, जैसे गाधिका पुत्र विश्वामित्र तपस्या करिकै उसी शरीरसाथ क्षत्रियते ब्राह्मण हुआ, तैसे राजा सुरघ अभ्यास करिकै ब्रह्मरूप ब्रह्मबोध हुआ, अनेक राज्यके कार्योंको करत भया, जैसे सूर्य इष्ट अनिष्टविषे सम है, विगतज्वर होइकरि दिनोंको व्यतीत करता है, तैसे रागद्वेषते रहित राज्यका कार्य करत भया, जैसे जल ऊंची नीची ठौरविषे गमन करता है, अपना जलभाव नहीं त्यागता सम रहता है, तैसे राजा हर्षशोकते रहित होइकरि राज्यकार्य करत भया अरु स्वभावको न त्यागत भया. आत्मविचारको धार सुषुप्तिकी नाईं वृत्ति हो गयी संसार भावको फुरना कछु न फुरै, जैसे वायुते रहित दीपक प्रकाशता है, तैसे शुद्ध प्रकाशको धारता भया. हे रामजी! दया करता भी दृष्टि आवै, परंतु उसकी दृष्टिविषे कछु दया नहीं अरु दयाते रहित भी औरोंको दृष्टि आवै, परंतु उसकी दृष्टिविषे निर्दयता नहीं, न कछु सुख, न दुःख, न अर्थ, न अनर्थ सब पदार्थोंविषे सम एक भाव आत्मा देखै अरु अंतरते पूर्णमासीके चंद्रवत् शीतल रहै अरु आत्माका किंचनरूप जगत्को जानत भया, सुख दुःखका भाव शांत हो गया, जैसे सूर्यके उदय हुएते अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे सुखदुःख नष्ट हो गये अरु शोक विलास कर्त्ता, मत्त होता, स्थित होता, चलता, श्वास लेता अरु पाचों विषयोंको ग्रहण कर्त्ता रागद्वेषको प्राप्त न भया, जैसे पत्थरविषे फुरना कछु नहीं फुरती,

तैसे उसको कर्तृत्व भोक्तृत्वका अभिमान कछु न फुरा, सब कर्तव्यको करता हुआ भी निःसंग रहा, जैसे जलविषे कमल अलेप रहता है, तैसे राज्यविषे निर्लेप होइकरि जीवन्मुक्त हुआ बहुत काल बितावता भया, तिसके अनंतर शरीरका त्याग किया. जैसे बरफका कण सूर्यके तेजकरि जलमय हो जाता है, तैसे शरीर अपने भावको त्यागिकरि आत्मतत्त्वविषे लीन हो गया. जैसे नदी समुद्रविषे लीन होती है, बहुरि इतर नहीं भासती, तैसे सुरघ अपने भावको त्यागिकरि उज्ज्वल भावको प्राप्त भया, कलनारूपी मलको त्यागिकरि निर्मल ब्रह्म होता भया, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे निर्मल चिदानन्द ज्योतिर्भावको प्राप्त भया, जैसे घट फूटेते घटाकाश महाकाश हो जाता है, तैसे पूर्ण ब्रह्म चिदानंद तत्त्व होता भया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघवृत्तांतसमाप्तिर्नामैकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

षष्टितमः सर्गः ६०.

सुरघपरघसमागमवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी! तुम भी इसी दृष्टिको आश्रय करिकै विचारौ, तब सब भय मिटि जावैगा; जैसे घोर तमविषे बालक भयको पाता है, सो जब दीपकका प्रकाश होता है, तब निर्भय होता है, तैसे संसाररूपी घोर तमविषे आया पुरुष दुःख पाता है, जब ज्ञानरूप दीपक उदय होवै, तब निर्भय हो जाता है. हे रामजी! जब आत्मविचारविषे कछु भी चित्त विश्राम पाता है, तब तिस विश्रामको आश्रयकरि संसारसमुद्रते निकसि जाता है, जैसे टोएविषे गिरै ताको तृणका बूटा हाथ लगै, तौ भी तिसके आश्रयकरि निकसि आता है. हे रामजी! यह पावन दृष्टि मैंने तुझको कही है, इसको चित्तविषे विचारि परस्पर मिलिकरि उदाहरण साथ अभ्यासकरि नित्य एक समाधिविषे स्थित होहु अरु पृथ्वीका भूषण होइकरि लोकोंविषे विचरो. राम उवाच—

हे मुनीश्वर ! एक समाधि किसको कहिये अरु कैसे होती है ? सो कहौ, और मेरा चित्त फुरता है, सो स्थित होवै, जैसे वायुकरि मोरका पुच्छ हलता है, तैसे चंचलरूप चित्त सदा फुरता है. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जब सुरघ प्रबुद्ध हुआ था, तब तिसका संवाद पर्णाद राजा ऋषिसों हुआ था, महाअद्भुत समाधि है, तिसको सुनिकारि विचारै तौ तू एक समाधिमान् होवैगा, जो इनने मिलिकारि परस्पर चर्चा करी है, सो सुन. हे रामजी ! पारश देशका राजा महावीर्यवान् था अरु परघ तिसका नाम था सो सुरघका मित्र था, जैसे नंदनवनविषे कामदेव अरु वसंतऋतुका मित्रभाव होता है, तैसे सुरघ अरु परघका मित्रभाव होत भया, एक कालमें परघके देशविषे प्रलयकाल विना प्रलयकालकी नाईं होत भया, तिसकरि सब जीव दुःख पाने लगे, प्रजाके जीवोंकी जो पापबुद्धि थी, तिसीका फल आनि लगा, महादुर्भिक्ष पड़ा, कई क्षुधाकारि मृतक भये, कई अग्निकारि जलि मरे, कई झगडा करि मृतक भये, प्रजाके लोग बहुत दुःखको प्राप्त भये अरु राजाको दुःख कछु न प्राप्त भया, जब प्रजा बहुत दुःख पाई, तब राजा प्रजाको दुःखी देखत भया अरु प्रजाके दुःख निवारणेको समर्थ न भया, तिसकरि प्रजा अरु कुटुम्बको त्यागि गया, जैसे वनको अग्नि लगेते पक्षी त्यागि जाते हैं. जैसे ग्रामको अग्नि लगै तौ पेंढाई त्यागि जाते हैं, तब एक पहाडकी कंदराविषे तप करने लगा, ऐसा तप करने लगा, जैसा जिनेंद्रने तप किया था, तिस कंदराविषे फल न पावै सूखे पान ले खावै, जैसे अग्नि सूखे पानको भक्षण करती है, तैसे सूखे पान खावै, तिसकरि तिसका नाम पर्णाद होत भया. वह तौ एकांत जाइकारि तप करने लगा, परंतु द्वीपविषे तिसका नाम पर्णाद प्रसिद्ध भया अरु तप यही कि, चित्तकी वृत्तिको आत्मपदविषे जोडता भया. सहस्र वर्ष पर्यंत तप किया तब अभ्यास करि चित्त स्थित भयेते केवल ज्ञानस्वरूप आत्मतत्त्व हृदयकी निर्मलताकारि प्रकाशि आया, तब सब तप्तता मिटि गई, रागद्वेषते रहित निष्क्रिय आत्मदर्शी जीवन्मुक्त होइकारि विचरने लगा, रागद्वेषते रहित हुआ, त्रिलोकीरूपी मढीविषे विचरै सिद्धोंके स्थानोंविषे जावै.

जैसे सरोवरोंविषे कमलोंके निकट भँवरा हंसोंसाथ जाय मिलता है, तैसे सिद्धोंसाथ राजा जाय मिले, ऐसे फिरता फिरता कीर देशविषे सुरघके स्थानोंको जाय प्राप्त भया, तब सुरघ पूर्व मित्रको देखि करि उठि खड़ा भया, परस्पर कण्ठ लगाइकरि मिले अरु परस्पर भावकरिकै एक आसनपर चंद्रमा अरु सूर्य जैसे बैठ गये अरु आपसमें कुशल पूछने लगे, प्रथम परघ बोलता भया. परघ उवाच-हे मित्र! तेरे दर्शनते परमानंदको प्राप्त भया हौं, जैसे कोई चन्द्रमाके मंडलविषे जाय आनंदवान् होवै, तैसे आनंदवान् हुआ हौं, बहुत कालका जो वियोग होता है, तब बहुत प्रीति बढ़ती है, जैसे वृक्षको ऊपरते काटते बहुरि बढ़ता है, तैसे प्रीति बढ़ती है. हे साधो! अब मैं भी ज्ञानवान् हुआ अरु तू भी मांडव्य मुनि अरु आत्माके प्रसादकरि ज्ञानको प्राप्त भया है. हे राजन्! मेरा अभीष्ट प्रश्न है कि, अब दुःखोंते क्यों मुक्त भया है अरु विश्रामको क्यों प्राप्त भया है? अरु आत्मपद पानेकी बडाई मेरु आदिकते भी ऊँची है, तिसको तू क्यों प्राप्त भया है, परम कल्याणवान् आत्माराम क्यों हुआ है? अरु तू रागद्वेष मलते क्यों रहित हुआ है, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है;तैसे निर्मल क्यों हुआ है? अरु सब कार्योंको कर्त्ता समभावविषे क्यों रहता है? अरु आधि व्याधि ताप तेरे क्यों दूर भये हैं? अरु तेरी प्रजा भी विगतज्वर क्यों भई है? अरु धन राज्य मालविषे भी कुशल क्यों है? जैसे चंद्रमाकी किरणोंकरि शीतलता पसर रहती है, तैसे तेरा यश दशों दिशामें क्यों पसारि रहा है? अरु तेरा यश ग्रामवासी क्षेत्रोंविषे अरु कुंडिया क्यों गावती हैं? हे राजन्! प्रजा टहलुए पुत्र कलत्र सबआधिव्याधिते क्यों रहित हुए हैं? अरु आपातरमणीय जो विषय पदार्थ हैं, तिनविषे अब तेरी प्रीति क्यों नहीं है? अरु तृष्णरूपी सर्पिणी तुझको अब क्यों नहीं डसती? हे राजन्! तुम्हारी हमारी मित्रता हुई थी सो समय पाइकरि तुम कहां रहे, हम कहाँ रहे अब बहुरि आनि हुए हैं, बड़ा आश्चर्य है,ईश्वरकी नीति जानी नहीं जाती,सुख गयेते दुःख हो जाता है अरु दुःख गयेते सुख हो जाता है, संसारकी दिशा अगमापायी है; संयोगका वियोग होता है, वियोगका संयोग होता है, तैसे तुम्हारा

हमारा संयोगका वियोग हो गया था, बहुरि वियोगका संयोग आनि हुआ है, बड़ा आश्चर्य है, ईश्वरकी नीति अद्भुतरूप है. सुरघ उवाच-हे देव! परमात्मा देवकी नीतिको जानि नहीं सकते, सो महागंभीर विस्मयको देनेहारी अरु दुर्ज्ञात है, तुम्हारा हमारा वियोग हुआ तब दूरते दूर जाय पड़े, तुम कहां अरु हम कहां बहुरि आनि इकट्ठे भये हैं, जो देवताकी नीति आश्चर्यरूप है, तुम जो मुझको कुशल पूछा, सो तुम्हारा आवना ही जो पुण्य है, तिसकरि मैं परम पावन हुआ हौं, तुम्हारे दर्शनकरि पाप सब नष्ट हो जाता है, आज हमारे पुण्यका फल लगा है जो तुम्हारा दर्शन भया है अरु जेता कछु यश संपदा है, सो सब आज प्राप्त भया है. हे भगवन्! संतोंका जो आवना है, सो मधुर अमृतकी नाईं है, जैसे अमृत झरनेते निकसता है, तैसे तुम्हारे दर्शनते अरु वचनोंकरि परमार्थरूपी अमृत स्रवता है, जिसको पाइकरि जीव निर्भयताको प्राप्त होते हैं, संतोंका मिलना परमपदके तुल्य है, सो हम परम शुद्धताको प्राप्त भये हैं.

इति श्रीयोवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघपरघसमागमवर्णनं नाम षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमः सर्गः ६१.

समाधिनिश्चयवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जब इस प्रकार पूर्व वृत्तांत कहा तब बहुरि परघ बोलत भया. परघ उवाच-हे राजन्! जो जो समाहितचित्त इस जगज्जालविषे कर्म करता है, सो सुखरूप होता है, अब संकल्पते रहित जो परम विश्राम अरु परम उपशम समाधि है, तिसविषे क्या स्थित हुआ है? सुरघ उवाच-हे भगवन्! तुम ही कहौ कि, सब संकल्पते रहित परम उपशम समाधि किसको कहते हैं अरु जो तुम मुझते पूछौ तौ श्रवण करौ. जो ज्ञानवान् महात्मा पुरुष हैं, सो तूष्णीं रहैं अथवा व्यवहार करैं, वह असमाहितचित्त कदाचित् नहीं होते. हे साधो!

नित्य प्रबुद्ध जिनका चित्त है अरु जगत्के कार्य भी करते हैं अरु आत्मतत्त्वविषे स्थित हैं, तौ वह सर्वदा समाधिविषे स्थित हैं अरु पद्मासन बांधिकरि बैठते हैं, ब्रह्मअंजली हाथविषे रखते हैं अरु चित्त आत्मपदविषे स्थित नहीं होता अरु विश्रांतिको नहीं पाता, उनको समाधि कहां, वह समाधि नहीं कहाती. हे भगवन्! परमार्थतत्त्वबोध है, सो सब आशारूपी तृणोंको जलानेहारी अग्नि है, ऐसी निराशरूप जो समाधि है, सोई समाधि है. तूष्णीं होनेका नाम समाधि नहीं. हे साधो! जिसका चित्त समाहित अरु नित्य तृप्त है, सदा शांतरूप है अरु यथाभूतार्थ है, अर्थ यह कि, यथार्थ ज्योंका त्यों ज्ञान हुआ है अरु तिसीविषे निश्चय है, सो समाधि कहाती है, तूष्णीं होनेका नाम समाधि नहीं. जिसके हृदयविषे संसाररूप सत्यताका क्षोभ नहीं, निरहंकार है अरु अनउदय ही उदय है, सो पुरुष समाधिविषे कहाता है. ऐसा जो बुद्धिमान् है, सो मेरुते भी अधिक स्थित है. हे साधो! जो पुरुष निश्चित है, ग्रहणत्यागते जिसकी बुद्धि निवृत्त भई है अरु पूर्ण आत्मतत्त्व ही भासता है अरु व्यवहार भी करता दृष्टि आता है, तौ भी तिसको समाधि कही है, जिसका चित्त एक क्षण भी आत्मतत्त्वविषे स्थित होता है, तिसकी अत्यंत समाधि हो जाती है, क्षण क्षण बढती जाती है, निवृत्त नहीं होती, जैसे अमृतके पान कियेते अमृतकी तृष्णा बढती जाती है, तैसे एक क्षणकी समाधि बढती जाती है. जैसे सूर्यके उदय हुएते सब किसीको दिन भासता है, तैसे ज्ञानवान्को सब आत्मतत्त्व भासता है, इतर कदाचित् नहीं भासता है, जैसे नदीका प्रवाह किसीते रोका नहीं जाता, तैसे ज्ञानवान्की आत्मदृष्टि किसीते रोकी नहीं जाती; जैसे कालकी गति कालको एक क्षण भी विस्मरण नहीं होती तैसे ज्ञानवान्की आत्मदृष्टि विस्मरण नहीं होती. जैसे पवन चलते ठहरतेको अपनेका पवनभाव विस्मरण नहीं होता, तैसे ज्ञानवान्को चिन्मात्रतत्त्वका विस्मरण नहीं होता; जैसे सत् शब्द विना कोऊ पदार्थ सिद्ध नहीं होता, तैसे ज्ञानवान्को आत्माविना कोऊ पदार्थ नहीं भासता, जिस ओर ज्ञानवान्की दृष्टि जाती है, तहां अपना आप भासता है. जैसे दर्पणोंके मंदिरविषे

सर्व ओर अपना मुख भासता है, तैसे ज्ञानवान्को सर्व ओर अपना आप ही भासता है; जैसे उष्णता विना अग्नि नहीं, शीतलता विना बर्फ नहीं, श्यामता विना काजर नहीं पाया जाता, तैसे आत्मा विना जगत् नहीं पाया जाता. हे साधो ! जिसको आत्माते भिन्न पदार्थ कोई नहीं भासता, तिसका उत्थान कैसे होवै, सर्वदा मैं बोधरूप हौं अरु सर्वदा निर्मल हौं, सर्वदा सर्वात्मा समाहितचित्त हौं, ताते उत्थान मुझको कदाचित् नहीं, आत्माते भिन्न मुझको कोऊ नहीं भासता, सर्व प्रकार अत्मतत्त्व मुझको भासता है. हे साधो ! आत्मतत्त्व सर्वदा जानने योग्य है सर्वदा और सर्व प्रकार आत्मा स्थित है, बहुरि समाधि अरु उत्थान कैसे होवै ? जिसको कार्यकारणविषे विभागकलना नहीं फुरती अरु आत्मतत्त्वविषे स्थित है तिसको समाहित असमाहित क्या कहिये ? समाधि अरु उत्थानका वास्तव कछु भेद नहीं, मिथ्या है, आत्मतत्त्व सदा अपने आपविषे स्थित है, द्वैत भेद कछु नहीं, तौ समाहित असमाहित क्या कहिये ?.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे समाधिनिश्चयवर्णनं नामैकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ६२.

सुरघपरघनिश्चयवर्णनम्।

सुरघ उवाच-हे राजन् ! निश्चय करिकै अब तू जागा है अरु परमपदको प्राप्त भया है अरु पूर्णमासीके चंद्रवत् शीतल अंतःकरण भया है अरु परम शोभाकारि मुख शोभित भया है अरु ब्रह्मलक्ष्मीकारि संपन्न परमानंदसों पूर्ण भया है, शीतल अरु स्निग्ध तेरा हृदयकमल विराजमान है,निर्मल विस्तृत गंभीरता तेरी मुझको प्रगट भासती है अरु निर्मल शरत्कालके आकाशवत् तेरा हृदय भासता है, अहंकाररूपी मेघ तेरा नष्ट भया है.हे राजन् ! अब तुझको सर्वत्र स्वस्थता अरु सर्वथा संतुष्टता है अरु किसीविषे राग नहीं, वीतराग होइकारि विरा-

जता है, सार असार को तुझने भले प्रकार जाना है अरु जानिकरि असार संसाररूपी समुद्रते पारको प्राप्त भया है अरु महाबोधको ज्योंका त्यों जानिकरि अखंड स्थिति पाई है, भाव अभाव पदार्थ दोनोंको तू जानत भया है, सम असम जो जगत्‌के पदार्थ हैं, तिनते मुक्त भया है, मुदित शांत आशय हुआ है, इष्ट अनिष्ट ग्रहण त्याग तेरा निवृत्त भया है, राग द्वेष तृष्णारूपी मेघ बादलोंते रहित निर्मल आकाशवत्‌ तू शोभता है अरु अपने आपकारि तृप्त भया है, कछु इच्छा तुझको नहीं है. सुरघ उवाच–हे मुनीश्वर! इस जगत्‌विषे ग्रहण करने योग्य वस्तु कोई नहीं, जेते कछु दृश्य पदार्थ हैं सो सब आभासरूप हैं तौ किसको ग्रहण करिये अरु जो कहिये ग्रहण करने योग्य नहीं तौ त्याग करिये, सो आभासरूप पदार्थोंका त्याग क्या करिये अरु ग्रहण क्या करिये? काहेते जो है नहीं, सब तुच्छ अतुच्छ पदार्थ हैं, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है, सो जलाभासका कौन अंग ग्रहण करिये अरु कौन अंग त्याग करिये? तैसे यह जगत्‌ भी है. हे मुनीश्वर! जगत्‌के एक तुच्छ पदार्थ हैं, एक अतुच्छ हैं, थोडे कालविषे नष्ट हो जाते हैं, सो तुच्छ हैं अरु चिरकालपर्यंत रहते हैं, सो अतुच्छ हैं, परंतु दोनों कालते उपजे हैं, अब मैंने अकाल स्वरूपको देखा है, तब दोनों तुल्य हो गये हैं, बहुरि इच्छा किसकी करौं, जो है कछु नहीं. हे मुनीश्वर! जो रमणीय पदार्थ जानते हैं, तिसकी इच्छा करते हैं, सो त्रिलोकीविषे रमणीय पदार्थ कोऊ नहीं, सब तुच्छ नाशरूप हैं अरु जीवोंको जो बड़े पदार्थ भासते हैं, सो अविचार करि भासते हैं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध जेते इंद्रियोंके विषय हैं, सो सब असार रूप हैं, स्त्रीको बडा पदार्थ जानते हैं, सो देखने मात्र सुन्दर है, अन्तरते रक्त मांस विष्ठा मूत्रका थैला बना हुआ है, इसविषे सार कछु नहीं अरु पर्वत बडे पदार्थ हैं, सो पत्थर बंटे हैं अरु समुद्र है सो जल है, वनस्पती काष्ठ पत्र हैं, इनते आदि जो कछु पदार्थ हैं, सो आपातरमणीय हैं, सो विचार विना सुन्दर भासते हैं, इनकी जो इच्छा करते हैं, सो अपने नाशके निमित्त करते हैं, जैसे पतंग दीपककी इच्छा करता है, सो अपने नाशके निमित्त

करता है; जैसे हरिण नाद श्रवणकी इच्छा करता है सो नाशको प्राप्त होता है, तैसे जो विषयोंकी तृष्णा करते हैं सो अपने नाशको करते हैं, ताते विचारते रहित जो अज्ञानी है सो पदार्थको रमणीय जानिकरि अपने नाशके निमित्त इच्छा करता है अरु जो समदर्शी ज्ञानवान् हैं, सो अरमणीय जानि करि किसी जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं करते, जैसे सूर्य उदय हुएते अन्धकारका अभाव होता है ताते जब पदार्थोंका राग उठि गया, तब तृष्णा किसविषे रहै? हे साधो! राग द्वेष इच्छा ग्रहण त्याग जेते कछु विकार हैं, तिन सबते रहित शुद्ध आत्मतत्त्वविषे स्थित होहु, बहुत कहनेकारि क्या है, जिस पुरुषके मनते वासना नष्ट हो गयी है, सो उपशमवान् कल्याणमूर्ति परमपदको प्राप्त हुआ है अरु संसार समुद्रको तरि गया है.

इति श्रीयोगवासिष्ठ उपशमप्रकरणे सुरघपरघनिश्चय-
वर्णनं नाम द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ६३.

कारणोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! इस प्रकार सुरघ अरु परघ जगत्को भ्रमरूप विचारते भये, विचार करिकै परस्पर गुरु जानिकरि पूजते भये; बहुरि परघ चलता रहा. हे रामजी! इसका परस्पर संवाद तुझको श्रवण कराया है, सो परम बोधका कारण है, इस विचारके क्रमकरि बोधकी प्राप्ति होती है, तीक्ष्ण बोधकरिकै जब विचार करैगा, तब अहंकाररूपी बादलका अभाव हो जावैगा अरु शुद्ध हृदयरूपी आकाशविषे आत्मरूपी सूर्य प्रकाश हो जावैगा, ताते परमपदके लाभके निमित्त अहंकाररूपी बादलके अभावका यत्न करो, सो आत्मा सत्य है, सब आनन्दकी सम्पदा है, चिदाकाश है, तिसविषे स्थिति पावैगा. हे रामजी! जो पुरुष नित्य अन्तर्मुखी अध्यात्ममय है अरु नित्य चिदानन्दविषे चित्तको ज़ोडता है, सो सदा सुखी है, तिसको शोक कदाचित् नहीं होता, जो

पुरुष आत्मपदविषे स्थित हुआ है; सो बडे व्यवहार करे अरु रागद्वेष सहित दृष्टि आवे तौ भी तिसको कछु कलंक प्राप्त नहीं होता, जैसे कमल जलविषे दृष्टि आता है, तौ भी ऊंचा रहता है, जल उसको स्पर्श नहीं करता, तैसे ज्ञानवान्को व्यवहारका रागद्वेष अन्तर स्पर्श नहीं करता. हे रामजी! जिसका अन्तर मन शांत हुआ है, तिसको संसारके इष्ट अनिष्ट पदार्थ चलाय नहीं सकते, जैसे सिंहको मृग दुःख दे नहीं सकते, तैसे ज्ञानवान्को जगत्के पदार्थ दुःख नहीं दे सकते, जिस पुरुषको आत्मानंद प्राप्त भया है, तिसको विषयोंकी तृष्णा नहीं रहती, विषयोंके निमित्त दीन कदाचित् नहीं होता, जैसे जो पुरुष नन्दनवनविषे स्थित भया है, सो कंकरेके वृक्षकी इच्छा नहीं करता, तैसे ज्ञानवान् जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं करता. हे रामजी! जिस जिस पुरुषने जगत्को अविद्यारूप जानिकरि त्याग किया है, तिसके चित्तको जगत्के पदार्थ दुःख दे नहीं सकते. जैसे विरक्तचित्त पुरुषकी स्त्री मरि जावे, तब उसको दुःख नहीं होता, सो ज्ञानवान्के चित्तविषे भोगोंकी दीनता नहीं उपजती, जैसे नन्दनवनविषे कंटकका वृक्ष नहीं उपजता. जिस पुरुषको आत्मबोध हुआ है अरु संसारका कारण मोह निवृत्त भया है, सो जगत्के कार्य करता दृष्टि आता है परन्तु उसको स्पर्श नहीं करता, जैसे आकाशविषे अन्धकार दृष्टि आता है, परन्तु आकाशको स्पर्श नहीं करता. हे रामजी! अविद्याकी निवृत्तिका कारण विद्या है और किसी उपायते निवृत्त नहीं होती, जैसे प्रकाश विना तम निवृत्त नहीं होता, तैसे विचार विना अविद्या निवृत्त नहीं होती, अविचारका नाम अविद्या है अरु विचारका नाम विद्या है, जब अविद्या नष्ट होवैगी, तब विषयभोग स्वाद न देवैंगे, आत्मानंदकरि संतुष्टमान रहैगा. हे रामजी! ज्ञानवान्को विचारते इंद्रियोंके व्यवहार अंध नहीं कर सकते. जैसे जलविषे मच्छी रहती है, तिसको जल अंध नहीं कर सकता और आप अंध रहता है, तैसे ज्ञानवान् व्यवहारविषे भी अंध नहीं होता और जीव अंध हो जाते हैं; जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होता है, तब अज्ञानरूपी रात्रि निवृत्त हो जाती है अरु चित्त परमानंदको प्राप्त होता है अरु रागद्वेषरूपी

निशाचर नष्ट हो जाता है, तब बहुरि मोहको प्राप्त नहीं होता, जिसके हृदय आकाशविषे आत्मज्ञानरूपी सूर्य उदय हुआ है तिसका जन्म अरु कुल सफल होता है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अपने अमृतको पाइकरि अपनेविषे शीतल होता है, तैसे जो पुरुष आत्मचिंतनाविषे अभ्यास करता है, सो शांतिको प्राप्त होता है. हे रामजी ! बुद्धि भी वही है, श्रेष्ठ दिन भी वही अरु मृत्यु भी वही है अरु शास्त्र भी वही है, जिसकरि संसारते वैराग्य उपजै अरु आत्मतत्त्वकी चिंतना उपजै, जब आत्मपदको पाता है तब इसका सब क्लेश मिटि जाता है अरु जिसको आत्मचिंतनाविषे रुचि नहीं, सो महाअभागी है, चिरपर्यंत कष्ट पावैगा. जन्मरूपी जंगलका वृक्ष होवैगा. हे रामजी ! जीवरूपी बैल है अरु अनेक आशारूपी फांसियोंकरि बांधा है अरु जरा अवस्थारूपी पत्थरोंके मार्गकरिकै जर्जरीभाव होता है, भोगरूपी तलाबडी मर्त्तविषे गिरा है, कर्मरूपी भारको लिये जन्मरूपी जंगलविषे भटकता हुआ कर्म कीचडविषे फँसा हुआ रागद्वेषरूपी मच्छरोंकरि दुःखी होता है, स्नेहरूपी रथको पकडि खैंचता है अरु पुत्र स्त्रियादिककी ममतारूपी कीचडविषे गोते खाता है अरु मोहसंसाररूपी मार्गविषे कर्मरूपी रथके साथ जोडता है अरु ऊपरते, अज्ञानरूपी तप्तताकरि जलता है, संतजन अरु सच्छास्त्ररूपी वृक्षकी छायाको नहीं पाता. हे रामजी ! जीवरूपी बैल ऐसा है सो निकसनेका यत्न करै, जब तत्त्वका अवलोकन करै तब चित्तभ्रम नष्ट हो जावै. हे रामजी ! संसाररूपी जो समुद्र है, तिसके तरणेका उपाय सुन महापुरुष संतजन है सो मलाह है अरु तिनकी युक्तिरूपी जहाज होवै तिसकरि संसाररूपी समुद्रको तरि जावेगा और उपाय कोई नहीं, यह परम उपाय है जिस देशविषे संतजनरूपी वृक्ष नहीं, जिनकी फलोंसहित शीतल छाया है नहीं, तिस निर्जन देश मरुस्थलविषे एक दिन भी रहिये. हे रामजी ! संतजनरूपी कैसे वृक्ष हैं, स्निग्ध अरु शीतल वचनरूपी जिनके पत्र हैं अरु उनका प्रसन्न होना सुंदर फूल हैं अरु उनका निश्चय उपदेशरूपी फल है, जब यह पुरुष तिनके निकट जावै, तब महामोहरूपी तप्तताते छूटेगा अरु शांतिको प्राप्त होवैगा अरु तिनको

पाइकरि तृप्त होवैगा अरु तिन फलोंको पाइकरि अघावैगा, सब दुःखोंते मुक्त होवैगा. हे रामजी ! अपना आप ही मित्र है अरु अपना आप ही शत्रु है, अपने आपको जन्मरूपी कीचड़विषे न डारै, जो देहविषे अहं मानकरि विषयोंकी तृष्णा करता है सो अपना आप ही नाश करता है अरु जो देहभावको त्यागिकरि आत्माभ्यास करता है,तब अपना आप उद्धार करता है,सो अपना आप ही मित्र है अरु जो आपको संसारसमुद्र-विषे डारता है,सो अपना आप ही शत्रु है.हे रामजी ! प्रथम विचार यह करि देखै कि जगत् क्या है अरु कैसे उत्पन्न भया है अरु कैसे निवृत्त होवैगा अरु मैं कौन हौं अरु सत्य क्या है अरु असत्य क्या है, ऐसे विचारकरि जो सत्य है तिसको अंगीकार करै अरु जो असत्य है,तिसका त्याग करै. हे रामजी!न इसका धन कल्याण करता है,न मित्र बांधव न शास्त्र कल्याण करते हैं; अपना उद्धार आप ही करता है, ताते अपने मनसाथ मित्राई करै; दृढ वैराग्य अरु अभ्यास करै तब संसार कष्टते छूटै, जब वैराग्य अभ्यासकरि तत्त्वके अवलोकनरूपी बेड़ी कटै तब संसारसमुद्रते तरि जाता है. हे रामजी ! जीवरूपी हस्ती है अरु जन्मरूपी गर्त्तविषे गिरा हुआ है अरु तृष्णा अहंकाररूपी जंजीरोंसे बांधा है अरु कामनारूपी मदकरि उन्मत्त है, जब तिनते छूटै, तब मुक्त होवै. हे रामजी ! हृदयरूपी नेत्रोंविषे अनात्मा अभिमानरूपी मल रक्त हो गया है, जब विचा-रूपी औषधीकरि तिसको दूर करिये, तब आत्मरूपी सूर्यका दर्शन होवै. हे रामजी ! और उपाय कोई न करै तौ एक उपाय करै जो देहको काष्ठ लोष्टवत् जानिकरि इसका अभिमान त्यागै, जब अहम् अभिमान-रूपी बादल नष्ट होवैगा, तब आप ही आत्मारूपी सूर्य प्रकाश आवैगा, जब अहंकाररूपी बादल लय होवैगा, तब आत्मतत्त्वरूपी सूर्य भासैगा सो परमानंदस्वरूप है, सुषुप्तिते मौन अंकुर है, केवल अद्वैत तत्त्व है, वाणीकरि कहा नहीं जाता, अनुभव करिकै आप ही जाना जाता है. हे रामजी ! सब जगत् अनंत आत्मा है; जब चित्तका दृढ परिणाम उस-विषे होवै, तब स्थावरजंगमरूप जगत्विषे वही दिव्य देव भासैगा और वासना सब निवृत्त हो जावैंगी, केवल परमानन्द आत्मतत्त्व अनु-

भवकरि दिखाई देवैगा, सो स्वरूप पूर्ण अद्वैत है और सब जगत्को त्यागिकरि तिसके पानेका यत्न करौ.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे कारणोपदेशवर्णनं नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ६४.

भासविलासवृत्तांतवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! मनकरि मनको छेदौ अरु अहं मम भावको त्यागौ, जबलग मन नष्ट नहीं होता तबलग जगत्के दुःख निवृत्त नहीं होते. जैसे मूर्तिका सूर्य मूर्तिके नष्ट हुए विना अस्त नहीं होता, जब मूर्ति नष्ट होवै, तब सूर्यका आकार दूर हो जावै, तैसे जब मन नष्ट होवै, तब संसारके दुःख नष्ट हो जावैंगे, अन्यथा नहीं होते. हे रामजी ! जैसे प्रलयकालविषे अनंत दुःख होते हैं, तैसे मनके होनेकरि अनंत दुःख होते हैं, जैसे मेघके वर्षणेकरि नदी बढ़ती जाती है, तैसे मनके जागेते आपदा बढ़ती जाती है, इसहीपर पुरातन इतिहास मुनीश्वर कहते हैं सो परस्पर सुहृदोंका है, तू श्रवण कर. हे रामजी ! सह्याचल पर्वतोंविषे बडा पर्वत है, तिस ऊपर फूलोंके समूह हैं अरु नानाप्रकारके वृक्ष हैं अरु जलके झरने चलते हैं, मोतियोंके स्थान अरु स्वर्णके शिखर हैं, कहूँ देवताके स्थान हैं पक्षी शब्द करते हैं अरु तले क्रांत रहते हैं, ऊपर सिद्ध देवता विद्याधर रहते हैं, पीठविषे मनुष्य रहते हैं, नीचे नाग रहते हैं, मानौ संपूर्ण जगत्का गृह यही है, तिसके उत्तर दिशामें सुंदर तलाव है, वृक्ष फूलोंकरि पूर्ण है, महासुन्दर रचना स्वर्ग जैसी उपमा तिनकी. तहां अत्रि नाम ऋषीश्वर रहता था, साधुओंके श्रमको दूर करनेहारा था, तिसके आश्रमके पास दो तपस्वी आनि रहे. जैसे आकाशविषे बृहस्पति अरु शुक्र आये हैं, तैसे यह दोनों रहें, तिन दोनोंके गृहविषे दो पुत्र महासुन्दर उत्पन्न भये, जैसे कमल उत्पन्न होवै, तैसे उत्पन्न भये एकका नाम भास एकका नाम विलास भया, दोनों

क्रमकरि बडे हुए जैसे अंगुरीके दोनों पर्व हैं, सो बढते हैं, तैसे बढ़ते जावैं अरु परस्पर तिनकी प्रीति बहुत बढ़ी अरु इकट्ठे ही रहैं, जैसे तिल अरु तेल इकट्ठे ही रहते हैं, जैसे फूल अरु सुगंधि इकट्ठे रहते हैं, जैसे स्त्री अरु पुरुषकी प्रीति आपसमें होती हे, तैसे उनकी प्रीति बढ़ी. अरु देखने मात्र तौ दो मूर्ति दृष्टि आवैं, परंतु मानौ एक ही हैं, स्नान आदिक क्रिया भी तिनकी एक समान, मानसी क्रिया भी एक समान अरु महासुन्दर प्रकाशवान्, जैसे चंद्रमा अरु सूर्य हैं, तैसे जब केताक काल व्यतीत भया, तब तिनके माता पिता शरीरको त्यागिकरि स्वर्गको गये तिनके वियोगते दोनों शोकवान् भये, जैसे कमलकी कांति जल विना जाती रहै, तैसे उनके मुखकी कांति कुम्हलाय गई, फेरि इनके मरनेकारि क्रिया सब करत भये, पाछे गुण स्मरण करिकै विलाप करि महाशोकवान् होवैं, महापुरुष भी लोकमर्यादा लंघते नहीं. हे रामजी! इस प्रकार शोककरि उनका शरीर कृश हो गया.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे भासविलासवृत्तांतवर्णनं नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

पंचषष्टितमः सर्गः ६५.

अनित्यताप्रकरणम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जैसे उजाड वनका वृक्ष जल विना सूख जाता है, तैसे उनका शरीर सूख गया, तब दोनों विगतज्वर होइकरि विचरने लगे, जैसे यूथ समूहसों विछुरा हरिण शोकवान् होता है, तैसे आपसमें बिछुरि गये अरु शोकको प्राप्त भये; एकले एकले फिरने लगे, निर्मल ज्ञान तिनको प्राप्त न था, सो जब केताक काल व्यतीत भया तब बहुरि आय मिले अरु विलास कहत भये. हे भाई! मेरे हृदयको आनंद देनेहारे अमृतके समुद्र जीवनेरूपी जो वृक्ष है, तिसका फल सुख है, सो तू एता काल क्या सुख सों रहा है अरु तेरा मेरा वियोग हो गया, अब तू कैसी क्रिया करत भया, क्या तुझने कछु निर्मल चित्त किया है? क्या तुझने अब

आत्मपद पाया है अरु क्या तेरी बुद्धि शोकते रहित है अब तुमको क्या विद्या फली है क्या तू अब कुशलरूप हुआ है? भास उवाच-हे साधो! अब हमको कुशल भया है, जो तेरा दर्शन भया है अरु जो जगत्-विषे कहौ तौ कुशल कहां है, इस संसारविषे स्थित हुए हमको सुख अरु कुशल कहां है? हे साधो! जबलग ज्ञेय परमात्मतत्त्वको नहीं पाया अरु जबलग चित्त भूमिका क्षीण नहीं भयी अरु जबलग संसार समुद्रको नहीं तरे, तबलग कुशल कहां है, जबलग चित्तसों दुःख निवृत नहीं होता, तबलग चित्तकी भूमिका नष्ट नहीं होती, जबलग संसार समुद्रते पारको प्राप्त नहीं भया, तबलग हमको सुख कहां है जबलग चित्त-रूपी क्षेत्रविषे आशारूपी कंटकोंकी वल्ली वढती जाती है, सो आत्म-विचाररूपी रात्रि साथ नहीं काटी; तबलग हमको कुशल कहां, जब-लग आत्मज्ञान उदय नहीं भया, तबलग हमको कुशल कहां है. हे साधो! संसाररूपी विषूचिका रोग है, आत्मरूपी औषध विना दूर नहीं होता, सब जीव नित्य वही क्रिया करते हैं, जिसकरि दुःखकी प्राप्ति होवै है, सुखको प्राप्त नहीं होते, देहरूपी एक वृक्ष है, तिसविषे बाल अव-स्थारूपी पत्र हैं, यौवन अवस्थारूपी फूल हैं, वृद्ध अवस्थारूपी फल हैं, सो मृत्युके मुखमें जाय पड़ता है, उपजता है, बहुरि नष्ट होता है, यह सुख जो लवाकार है अरु दुःख जिसका स्थावर दीर्घते दीर्घ है, ऐसे जो शुभ अशुभ आरंभ हैं, तिनविषे इनको दिनरात्रि व्यतीत होते हैं. हे साधो! चित्तरूपी हस्ती है, सो वैराग्यरूपी सांकर विना दूरते दूर तृष्णारूपी हस्तिनीके पाछे चला जाता है, जैसे इल्लपक्षी मांसकी ओर चला जाता है; तैसे चित्त विषयोंकी ओर धावता है, आत्मारूपी जो चिंतामणि है, तिसकी ओर नहीं जाता, अहंकाररूपी जो इल्ल है सो देहादिकरूपी मांसको धावता है अरु सुखरूपी जो कमल है, अपमान-रूपी धूलकरि धूसर हो जाता है अरु योगरूपी बर्फकरि नष्ट हो जाता है. हे साधो! देहरूपी कूपविषे गिरा है; तिसविषे भोगरूपी सर्प है अरु आशारूपी कंटक है, तृष्णारूपी जल है, तिसविषे यह दुःख पाता है. हे साधो! नाना प्रकारके रंगरंजनारूपी जिसविषे रंग हैं अरु जिसविषे

तृष्णारूपी चंचलता है ऐसे चेत्य दृश्यविषे मग्न है चित्तरूपी एक ध्वजा है, सो कालरूपी चञ्चलता वायुकरि भासती है, चित्तरूपी समुद्र है अरु चिंतारूपी तिसविषे घुमर घेर हैं, जीवरूपी तृण तिसविषे आय कष्ट पाता है अरु बुद्धिरूपी पक्षिणी है, वासनारूपी जालविषे कष्ट पाती है यह मैंने किया है, यह करता हौं, यह करौंगा, इसी वासनारूपी जालविषे बुद्धिरूपी पक्षिणी कष्ट पाती है, एक क्षण भी विश्रामवान् नहीं होती. हे भाई! यह चित्तरूपी कमल है, इसको रागद्वेषरूपी हस्ती चूर्ण करता है, कि यह मेरा सुहृद् है, मेरा शत्रु है, अहं मम इसको मारता है, शुद्ध आत्मरूपको त्यागिकरि देहादिक अनात्मरूपविषे अहंभाव करता है अरु दीनताको प्राप्त होता है, जैसे राज्यते रहित राजा कष्ट पाता है, तैसे आत्मभावते रहित कष्ट पाता है, देहाभिमान करिकै जन्ममरणके दुःखोंको देखता है, जब देहाभिमानका त्याग करै, तब कुशल होवै अन्यथा कुशल नहीं होता.

इति श्रीयोगवासिष्ठ उपशमप्रकरणे अनित्यता-
प्रकरणं नाम पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ६६.

अन्तरासंगविचारवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! इस प्रकार उनने परस्पर कुशलका प्रश्न किया, जब केताक काल व्यतीत भया, तब अभ्यासद्वारा उनको निर्मल ज्ञान प्राप्त भया अरु मोक्षपदको प्राप्त हुए. ताते हे रामजी! ज्ञानते और मार्ग कल्याण निमित्त कोऊ नहीं, जिसका चित्त आशारूपी फाँसीसे बाँधा हुआ है, सो संसारसमुद्रके पार होनेको समर्थ नहीं होता, ताते जीव संसारसमुद्रविषे गोते खाता है अरु ज्ञानवान् शीघ्र ही तरि जाता है, जैसे गोपद लंघनेविषे सुगम होता है: अरु जिस पक्षीके पक्ष टूटे हैं, सो समुद्रको नहीं तर सकता, बीचमें ही गिरिकै गोते खाता है अरु पंखोंसे गरुड शीघ्र ही लंघि जाता है, तैसे जिन पुरुषोंके वैराग्य अरु अभ्यास-रूपी पंख टूटे हैं सो संसारसमुद्रते पार नहीं हो सकते अरु जिन पुरुषोंके वैराग्य अभ्यासरूपी पंख हैं ऐसे ज्ञानवान् शीघ्र ही तरि जाते हैं. हे रामजी!

जो देहते अतीत महात्मा पुरुष चिन्मात्रतत्त्वविषे स्थित हुए हैं, सो ऊंचे होकरि देखते हैं अरु अपने देहको देखि हँसते हैं, जैसे सूर्य जनताको देखि हँसता है, अर्थ यह कि, जगत्की क्रियाते निर्लेप रहता है, जैसे रथके टूटते रथ वायुको खेद कछु नहीं; तैसे देहके दुःखकरि ज्ञानवान्को खेद कदाचित् नहीं होता अरु मनके क्षोभकरि भी आत्मतत्त्वविषे कछु क्षोभ नहीं होता, जैसे तरंगके ऊपर धूलि परती है, तिसकरि समुद्रको कछु लेप नहीं होता, तैसे मनके दुःखकरि आत्माको क्षोभ नहीं होता. हे रामजी ! देह अरु आत्माका संयोग नहीं, जैसे जल अरु हंसका संयोग कछु नहीं, जैसे जल अरु बेडीका संबंध कछु नहीं, तैसे देह अरु आत्माका संबंध कछु नहीं, जैसे पहाड़ समुद्रका संबंध कछु नहीं, जैसे जल अरु पत्थर अरु काष्ठ एक ठौर रहते हैं, परंतु संबंध कछु नहीं, जैसे जल अरु बेडी संघट्ट होता है, तौ जलकणके उठते हैं, तैसे देह अरु आत्माके संयोगते चित्तवृत्ति फुरती है. हे रामजी ! इसको दुःख जो होता है, सो संगकरि होता है, जहां अहं मम अभिमान होता है तहां दुःख भी होता है अरु जहां अहं ममका अभिमान नहीं तहां दुःख भी कछु नहीं अरु मच्छीको जलविषे अहं होता है, तिसके वियोगकरि कष्ट पाती है, तैसे जिस पुरुषको देहविषे अहं ममभाव है, सो बड़ा कष्ट पाता है अरु जिसको देहविषे अभिमान नहीं, तिसको दुःख भी कछु, नहीं. हे रामजी ! ज्यों ज्यों मनते संसर्गता निवृत्त होती है, त्यों त्यों भोग प्रवाह कष्ट नहीं देते. जैसे जल अरु पत्थरको कष्ट नहीं होता, जैसे दर्पण-विषे पर्वतका प्रतिबिंब होता है, सो दर्पणको प्रतिबिंबका संग नहीं होता अरु कष्ट भी नहीं होता, तैसे जब देहविषे संसर्गभाव उठि जावै, तब कष्ट कोई नहीं होता, जैसे दर्पणको कछु नहीं होता, तैसे आत्मा अरु जगत्की क्रिया है. हे रामजी ! सर्वथा संवितमात्र आत्मतत्त्व स्थित है, सो शुद्ध है, द्वैत शब्दके फुरणेते रहित है, जो तिसविषे स्थित है, तिसको द्वैत शब्द नहीं फुरता अरु जो अज्ञानी है, तिसको द्वैत कलना उठती है. हे रामजी ! यह सब जीव अदुःखरूप हैं, परंतु अज्ञानभ्रमकरि आपको दुःखी जानते हैं, जैसे स्थाणुविषे चोरभावना अविचारकरि होती है, तैसे

आत्माविषे दुःखकी भावना अविचारकरि होती है. यह पुरुष अशब्दरूप है, परंतु कलनाके वशते आपको संबंधी जानता है, जैसे स्वप्नविषे अंगना बंधन करती है, जैसे स्थानविषे वेताल भासता है अरु भयको प्राप्त करता है, तैसे अपनी कल्पनाकरि बंधमान होता है. हे रामजी ! देह अरु आत्माका संबंध असत्य है, जैसे जल अरु बेडीका संबंध असत्य है, जब जलका अभाव होवै, तब बेडीको चिंता कछु नहीं होती अरु बेड़ीका अभाव हो जावै तौ जलको कछु चिंता नहीं होती ताते असत्य संबंध है, तैसे आत्मा अरु देहका संबंध असत्य है, जब ऐसे जानकरि अंतर संगते रहित होवै, तब देहका दुःख कछु नहीं लगता, देहके दुःखविषे आपको दुःखी मानना, देहविषे अहंभावनाकरि आत्मा दुःखी होता है; जब देहविषे अभिमानको त्यागि देवै, तब सुखी होवै, ऐसे बुद्धीश्वर कहते हैं, जैसे जल अरु पत्थर इकट्ठे रहते हैं, परंतु अंतर संगका अभाव है, ताते दुःख कछु नहीं लगता, तैसे अंतरते संगरहित होवै तब देह इंद्रियोंके होते भी दुःखका स्पर्श कछु न होवै, न दुःखपदविषे प्राप्त होवै. हे रामजी ! जिसको देहविषे आत्माभिमान है, तिसको जन्ममरण सुखदुःखरूप संसार है, जैसे बीजते वृक्ष उत्पन्न होता है तैसे देहाभिमानते सुखदुःखरूप संसार उत्पन्न होता है अरु संसारसमुद्रविषे डूबता है अरु जो अंतरसंगते रहित होता है, सो संसारसमुद्रके पारको प्राप्त होता है. हे रामजी ! जिसके अंतर देहाभिमान है, तिसके चित्तरूपी वृक्षविषे अनेक मोहरूपी शाखा उत्पन्न होती हैं अरु जो अंतर संगते रहित है, तिसका मोह लीन हो जाता है, वह चित्त लीन कहाता है जिसका चित्त देहादिकोंविषे बंधमान है, तिसको नाना प्रकारका भ्रमरूप जगत् भासता है अरु जिसका चित्त देहादिकोंविषे बंधमान नहीं, सो एक आत्मभावको देखता है, जैसे टूटी आरसीविषे अनेक प्रतिबिंब भासते हैं अरु सारी एक ही प्रतिबिंबको ग्रहण करती है, तैसे संशयित चित्तविषे नाना प्रकारका जगत् भासता है अरु शुद्धचित्तविषे एक आत्मा भासता है. हे रामजी ! जो पुरुष व्यवहार करते अरु संगते रहित हैं; ऐसे जो निर्मल पुरुष हैं, सो संसारते मुक्त हैं अरु जो सर्व

व्यवहारको त्यागि बैठा है अरु तप भी करता है अरु अंतर चित्त आसक्त है सो बंधनमें है अरु जो अंतर संगते रहित है सो मुक्त है अरु अंतर चित्त किसी पदार्थविषे रागी है सो बंध है, बन्ध अरु मुक्तका एता ही भेद है, अंतर असंग है सो सर्व कार्यकर्त्ता भी अकर्त्ता है, जैसे नट स्वांगको धरता भी अलेप है, तैसे वह पुरुष अलेप है अरु जो अंतर अभिमान सहित है, सो कछु नहीं करता है, तौ भी करता है, जैसे सर्व व्यवहार त्यागिकरि शयन करता है अरु स्वप्नविषे अनेक सुख दुःख भोगता है, तैसे वह सब कछु करता है, चित्तके करनेकारि करता है, चित्तके अकरने करि अकरता है, शरीरकारि करना सो करना नहीं अरु शरीरकारि अकरना सो अकरना नहीं जो ब्रह्महत्या करता है, तौ असंसक्त पुरुषको कछु पाप नहीं लगता अरु जो अश्वमेध यज्ञ करै तौ कछु पुण्य नहीं होता, जिसके चित्तते सर्व आसक्तता दूर भई है, सो पुरुष मुक्तस्वरूप है अरु धन्य २ है अरु जिसका चित्त आसक्त है, सो बंध अरु दुःखी है जो पुरुष आसक्तताते रहित है, सो आकाशकी नाईं निर्मल है, समभाव एक अद्वैत आत्मतत्त्वविषे स्थित है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे अंतरासंगविचारो नाम षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ६७.

संसक्तविचारवर्णनम्।

राम उवाच-हे भगवन्! संग किसको कहते हैं अरु बंधरूप संग किसको कहते हैं अरु मोक्षरूप संग किसको कहते हैं अरु संगबंधनोंते मुक्त किसको कहते हैं अरु किस उपायकरि मुक्त होता है? सो कहो. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! देह अरु देहीका जो विभाग है, तिसका त्याग कर अरु तिस साथ जो मिलिकारि करता है अरु देहमात्रविषे अपना विश्वास करता है, जो एता ही मात्र मैं हौं; इसको संग अरु बंध कहते हैं. हे रामजी! आत्मतत्त्व अनंत है अरु देहमात्रविषे अहंभाव-

नाकरि आपको एता मात्र पुरुष जानता है, तिसविषे अभिमान करता है अरु सुखकी इच्छा करता है, इसका नाम बंध अरु संग कहते हैं अरु जिसको यह निश्चय हुआ है, कि सर्व आत्मा ही है, किसकी इच्छा करौं अरु किसका त्याग करौं, इस असंगकरि जीवन्मुक्त कहाता है, अथवा न मैं हौं, न यह जगत् है, सर्व भाव अभावको त्यागि करि अद्वैत सत्ताविषे स्थित होता है, इसका नाम जीवन्मुक्त है, न कर्मोंके त्यागकी इच्छा है, न करनेकी इच्छा है अरु अंतरते कर्तृत्वभाव नहीं, इस संगका जिसने त्याग किया है, सो असंग कहाता है. हे रामजी ! जिसको आत्मतत्त्वविषे निश्चय है अरु राग द्वेष हर्ष शोकके वश नहीं होता, सो असंसर्ग कहाता है अरु सर्व कर्मोंका फल जिसने त्याग किया है, कि मैं कछु नहीं करता, ऐसा जो मनकरि त्यागी है, सो असंसर्ग कहाता है तिसको कोऊ कर्म बंधन नहीं करि सकता, सर्व संपदा तिसको होती है अरु जो संसक्त पुरुष कर्तृत्व भोक्तृत्वके अभिमानसहित है, तिसको अनंत दुःख उत्पन्न होते हैं, जैसे कोई गर्त्तविषे गिर पड़े, तिसविषे कंटकोंके वृक्ष होवैं, तिसकरि कष्ट पाता है, तैसे संसक्त पुरुष कष्ट पाता है. हे रामजी ! संगके वशते विस्तृत दुःखकी परंपरा उत्पन्न होती है, जैसे टोयेके वृक्ष साथ कंटक उत्पन्न होवै. हे रामजी ! जैसे नासिकाविषे रसडी पाइकरि ऊंट, बैल, गंधर्व भार उठाये फिरते हैं अरु मार खाते हैं, तैसे संसक्त पुरुष आशारूपी फांसीसाथ बांधे हुए दुःख पाते हैं, वही संसक्तताका फल ऊंटादिक भोगते हैं, जलविषे रहते हैं, शीत उष्णकरि कष्टवान् होते हैं अरु कुहाडे साथ काटते हैं इस प्रकार संसक्तताका फल वृक्ष भोगते हैं पृथ्वीके छिद्रविषे कीट होते हैं अरु अंग पीडाकरि कष्ट पाते हैं, सो संसक्तताका फल पाते हैं और जो क्रियादिक अन्नादिक उगते हैं अरु दात्रीसाथ काटते हैं, सो अंतर दुःख पाते हैं, बहुरि बोता है, बहुरि काटते हैं, सो संसक्तताका फल भोगते हैं, इस प्रकार योनिको पाते हैं अरु कष्टवान् होते हैं, सो संसक्त हैं, हरे तृणोंको, हिरण खाता है अरु वधिक इसको बाणकरि मारता है अरु कष्टवान् होता है, जो

जीव तुझको दृष्टि आते हैं, सो इस प्रकार संसक्तताकरि बांधे हुए हैं, सो संसक्तता भी दो प्रकारकी है, एक बंध है, एक बंधन करने योग्य है, जो मूढ़ जीव हैं अरु जो तत्त्ववेत्ता हैं, सो वंदना करने योग्य हैं. हे रामजी ! आत्मतत्त्वते जो गिरा है अरु देहादिकविषे अभिमानी हुआ है, सो मूढ है, संसारविषे जन्ममरणको प्राप्त होता है अरु जिसको आत्मतत्त्वका ज्ञान हुआ है अरु निष्ठा है, सो वंदना करने योग्य है, तिसको बहुरि जन्ममरण रूप संसार नहीं होता, शंख चक्र गदा पद्म जिसके हाथविषे हैं अरु आत्मतत्त्वविषे निश्चय है, आत्मतत्त्व-विषे संसक्त है अरु तीन लोककी पालना करता है, सो वंदना करने योग्य है अरु जो निरालंब सूर्य आकाशविषे विचरता है अरु सदा स्वरूपनिष्ठ है, सो वंदना करने योग्य है अरु जो महाप्रलयपर्यंत जगत्को उत्पन्न करता है अरु सदा शिवस्वरूपविषे संसक्त है, ब्रह्मा-रूप होकरि विराजता है, सो वंदना करने योग्य है अरु जो लीलाकरि स्त्रीको अर्धांग रखता है, उसके प्रेमरूपी बंधनसाथ बांधा है अरु विभू-तिको लगाता है, सदा स्वरूपविषे संसक्त है, शंकरवपुको धारिकरि स्थित है, सो वंदना करने योग्य है, इसते आदि लेकरि सिद्ध देवता विद्याधर लोकपाल जिनकी संसक्ति स्वरूपविषे है, सो मुक्तस्वरूप है अरु वंदना करने योग्य है अरु जो देहादिकोंविषे संसक्त है, सो बंध है, जन्म जरा मृत्युको पाता है अरु कष्टवान् होता है. हे रामजी ! जिनको शरीरविषे अभिमान है अरु बाहरते उदार भी दृष्टि आता है, परंतु जब भोगोंको देखता है, तब इस प्रकार गिरता है, जैसे मांसको देखिकरि आकाशते इल्ह पखेरू गिरते हैं, तैसे व गिरते हैं अरु वृथा यत्न करते हैं. हे रामजी ! संसक्त जो जीव हैं, सो बांधे हुए कई देवता-रूप धारि स्वर्गविषे रहते हैं, कई मनुष्यलोकविषे रहते हैं, कई सर्प आदिक पातालविषे रहते हैं, तीनों लोकोंविषे भटकते फिरते हैं, जैसे गूलरविषे मच्छर रहते हैं, तैसे ब्रह्मांडविषे संसक्त जीव रहते हैं अरु मिट जाते हैं, कालरूपी बालकका जीवरूपी गेन्द है, कभी अधःको उछालता है; कभी ऊर्ध्वको उछालता है. हे रामजी ! जेता कछु जगत्

है सो सब असत्यरूप है, मनरूपी चितेरेने संगरूपी रंगसाथ शून्य आकाशविषे देहादिक जगत् लिखा है, सो सब असत्यरूप है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु मिट जाते हैं; तैसे जीव ब्रह्मांडविषे उपजते रहते हैं, जिसका मन देहादिकविषे संसक्त है, सो तृष्णारूपी अग्निकरि तृणोंकी नाईं जलते हैं. हे रामजी ! जो संसक्त पुरुष हैं तिनके शरीर पानेकी कछु संख्या नहीं, मेरुके शिखरते लेकरि चरणोंपर्यंत गंगाका प्रवाह चलै, तरंगोंसहित तिसके मोतियोंवत् जो लव-कणके हैं, तिनके गिननेकी संख्या होवै, परंतु संसक्त जीवके शरीर गिननेकी संख्या नहीं अरु जेती कछु आपदा हैं, सो तिनको प्राप्त होती हैं, जैसे समुद्रविषे सब नदियां आय प्राप्त होती हैं, तैसे सब आपदा तिसको प्राप्त होती हैं. हे रामजी ! जो देहाभिमानी सदा विषयोंकी सेवना करता है, सो रौरव कालसूत्र आदिक जो नरक हैं, सो नरक अग्निकी लकड़ियां होवैंगे, जलैंगे, कष्ट पावैंगे और जेते कछु दुःखके स्थान हैं, सो सब संसक्त जीवको प्राप्त होवैंगे अरु जो पुरुष असंग चित्त हैं, तिन पुरुषोंको सब विभूति पदार्थ प्राप्त होवैंगे, जैसे वर्षाकालविषे नदियां जलकरि पूर्ण होती हैं, जैसे मानसरोवरविषे सब हंस आनि स्थित होते हैं, तैसे असंसक्तचित्त पुरुषको सब सम्पदा प्राप्त होती हैं अरु जिस पुरुषका देहाभिमान बढ़ि जाता है, सो विषकी नाईं जान अरु जिसका देहाभिमान घटि जाता है, तिसको अमृतरूप जान, विष ज्यों ज्यों बढ़ता है, त्यों त्यों मारता है अरु अमृत ज्यों ज्यों बढ़ता है, त्यों त्यों अमर करता है. हे रामजी ! जो पुरुष देहाभिमानका त्यागकरि स्वरूपविषे संसक्त होता है, सो सुखी होता है अरु जिसको अन्तर दृश्यका संग है, तिसके यह संसक्तरूपी अंगार अंगोंको जलावैगा अरु जिसके अन्तर संग नहीं वह असंगरूपी अमृतकारि सुखी होवैगा अरु चंद्रमाकी नाईं शीतल मुक्तरूप है, अविद्यारूपी विषूचिका रोग तिसका नष्ट हो जाता है, शांतरूप होता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठ उपशमप्रकरणे संसक्तविचारो नाम सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमः सर्गः ६८.

शांतसमाचारयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! यह जो मैंने तुझको उपदेश किया है, तिसको विचार करि अभ्यास कर, जो सर्वकाल सर्व स्थान सर्व कर्मोंको करता चित्तको देहादिकविषे संसक्ति मत कर, केवल आत्मचेतनविषे स्थित होहु. हे रामजी! न संसक्तविषे चित्त होवै, न चेष्टाविषे चित्त होवै, न किसी वस्तुविषे सत्य जानि चित्त होवै, न आकाशविषे, न अधःविषे, न ऊर्ध्वविषे, न दिशाविषे, न बाहर, न अंतर चित्त होवै, न प्राणोंविषे, न उरविषे, न तालुविषे, न भौंहके मध्यविषे, न नासिकाविषे, न जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिविषे, न तमविषे, न प्रकाशविषे, न श्यामवर्ण, न रक्त पीत श्वेतविषे, न स्थिरविषे, न चलविषे, न आदिविषे, न अंतविषे, न मध्यविषे, न दूरविषे, न निकटविषे, न किसी पदार्थविषे, न चित्तादि अंतःकरणविषे, न शब्द स्पर्श रूप रस गंधविषे, न कलना अकलनाविषे चित्तको लगावहु, सर्व ओरते चित्तको वर्जिकरि चेतनतत्त्वविषे विश्राम कर कछुक द्वैतको लेकरि चेतनतत्त्वका आश्रय न कर. हे रामजी! जब सर्वते निराश हुआ अरु आत्मतत्त्वविषे स्थित हुआ, तब विगतसंग होवैगा, जीवका जीवतत्त्व चलता रहैगा, केवल चिदात्मा होकरि स्थित होवैगा, सर्व व्यवहार करै अथवा न करै, करते भी अकर्ता होवैगा, अथवा इसका भी त्यागकरि केवल चिदानंद शांतरूप जो तत्त्व है, तिसविषे स्थित होउ; अद्वैतरूप तत्त्व स्वाभाविक भासैगा, जैसे बादलोंके दूर भये सूर्य स्वाभाविक भासि आता है, तैसे फुरणेते रहित चेतनतत्त्व भासि आवैगा, जैसे चिंतामणि प्रकाशरूप स्वाभाविक भासि आती है, तैसे आत्मा प्रकाश स्वाभाविक भासि आवैगा, बहुरि जो कछु क्रिया करैगा, सो फलदायक न होवैगी, जैसे कमलको जल नहीं स्पर्श करता, तैसे तुझको

क्रिया स्पर्श न करैगी अरु चित्त आत्मगत निर्वाणरूप होवैगा, क्रिया कर्ता भी अकर्ता रहैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे शांतसमाचारयोगोपदेशो नाम अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ६९.

संसक्तचिकित्सावर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जो असंसक्त पुरुष है सो ध्यान करै अथवा व्यहार करै, सदा ध्यानविषे स्थित है अरु शोकते रहित है; जैसे बाह्य क्षोभवान् दृष्टि आता है, परंतु अंतर सर्व कलनाते रहित है, वह संपूर्ण लक्ष्मीकारि शोभता है. हे रामजी! जिस पुरुषका चित्त चैत्यते रहित अचलचित्त है, सो विगतज्वर है, तिसको कछु दुःख स्पर्श नहीं करता. जैसे जल कमलोंको स्पर्श नहीं करता, किन्तु वह औरोंको भी निर्मल करता है, जैसे निर्मली मलीन जलको निर्मल करती है, तैसे वह जनताको निर्मल करता है अरु जो आत्मतत्वविषे लीन है, सो क्षोभवान् भी दृष्टि आता है, परंतु क्षोभ कदाचित् नहीं, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब क्षोभवान् दृष्टि आता है परंतु सूर्यको क्षोभ कदाचित नहीं, तैसे ज्ञानवान्का चित्त क्षोभायमान दृष्ट आता है, तौ भी क्षोभ कदाचित् नहीं. हे रामजी! आत्मारामी जो पुरुष है, सो बाह्य मोरके पुच्छवत् चंचल भी दृष्टि आता है, परंतु अंतर सुमेरु पर्वतकी नाईं अचल है, जिनका चित्त आत्मपदविषे स्थित भया है, तिनको सुखदुःख अपने वश नहीं कारि सकते, जैसे फाटकको प्रतिबिंबका रंग नहीं चढता, तैसे ज्ञानवान्को सुखःदुखका रंग नहीं चढता, जिस पुरुषको परावर ब्रह्मका साक्षात्कार हुआ है, तिनका चित्त रागद्वेषकारि रंजित नहीं होता, जैसे आकाशविषे बादल दृष्टि आता है, परंतु आकाशको स्पर्श नहीं करता, तैसे ज्ञानवान्के चित्तको रागद्वे-स्पर्श नहीं करते, जो आत्मध्यानी है, जिसको परम बोधका साक्षाष-

त्कार भया है अरु कलनामलते मुक्त हुआ है, सो पुरुष असंसक्त कहाता है. हे रामजी ! जो आत्मारामी पुरुष है, तिसकी आत्माज्ञानके अभ्यासकरि संसक्तता निवृत्त हो जाती है, अन्यथा संसक्तभाव निवृत्त नहीं होता, जब चित्त परिणाम आत्माकी ओर होवैगा, जैसे चंद्रमा परिणामके वशते अमावास्याको सूर्यरूप हो जाता है, तैसे चित्त दृढपरिणामके वशते आत्मरूप हो जाता है, जब चित्त चेत्य-भावते हीन होता है; तब क्षीणचित्त कहाता है अरु शांत कलना कहाता है, तब जाग्रत् इसको सुषुप्तिरूप हो जाता है, तिस अव-स्थाविषे जो कछु क्रिया करता है, सो फलका आरंभ नहीं होता, काहेते कि, निरहंकार हो जाता है, जैसे यंत्रीकी पुतली अहंकारते रहित चेष्टा करती है अरु संवेदनते रहित है, तिसको कोऊ दुःख नहीं होता, तैसे निरहंकार निःसंवेदन पुरुष निर्दुःख अरु निर्लेप कहाता है. हे रामजी ! इष्ट अनिष्ट भाव अभावरूपी जगत् चित्तविषे होता है, जब चित्त आत्म-भावको प्राप्त हुआ तब किसकरि किसको किसका बंधन होवै ? सर्व आत्मतत्व होता है,जैसे नट सर्व स्वांगको धारता है अरु अपना अभिमान किसीविषे नहीं होता, तैसे सुषुप्तिबोध पुरुष जगत्की क्रिया करता है अरु बंधमान नहीं होता, जीवन्मुक्त होकरि स्थित होता है. हे रामजी ! सुषुप्तिबोधको आश्रयकरिकै जगत्की क्रिया करौ; क्रिया कर्म कर्ता त्रिपुटीकी भावनाते रहित होहु,तब तुमको दुःख कछु न होवैगा,न आदा-नविषे न त्यागविषे अभिमान होवैगा,यथाप्राप्तविषे स्थित होवैगा, जो सुषुप्ति बोधविषे स्थित है, सो करता हुआ भी कछु नहीं करता;ऐसे निश्च-यको धारिकरिकै जैसे इच्छा होवै तैसे करौ. हे रामजी ! ज्ञानवान्की चेष्टा बालकवत् होती है, जैसे बालक अभिमानते रहित पिंगुड़ेविषे अंगोंको हिलाता है, तैसे ज्ञानवान् अभिमानते रहित काम करता है, फलका स्पर्श नहीं होता, जब चित्त अचित्तरूप हो जाता है, तब जाग्रत् जगत् सुषुप्तिरूप हो जाता है अरु जो कछु क्रिया करता है सो स्पर्श नहीं करती. हे रामजी ! इसको जब जगतते सुषुप्ति दशा प्राप्त भई, तब इसका अंतर शीतल हो जाता है, रागद्वेष कछु नहीं

फुरते, आत्मानंदकरि पूर्ण होता है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है, तैसे वह शोभता है, जो सुषुप्ति बोधविषे स्थित है, सो महातेजवान् महाघूर्म होता है, आत्मानंदकरि पूर्ण चंद्रमाकी नाईं हो जाता है. हे रामजी ! जो पुरुष सुषुप्ति अवस्थाविषे स्थित है, सो किसी संसारके क्षोभकरि चलायमान नहीं होता. जैसे पर्वत सर्व कालविषे क्षोभायमान नहीं होता, जैसे भूकंपकरिके सब वृक्षादिक चलायमान होते हैं अरु अस्ताचलपर्वत कंपायमान नहीं होता, तैसे ज्ञानवान् चलायमान नहीं होता, जैसे पर्वत सर्व कालविषे सम रहता है अरु तरु डगिके गिर पडता है, पर्वत ज्योंका त्यों रहता है, तैसे ज्ञानवान् अनेक प्रकारकी क्रियाविषे सम रहता है. हे रामजी ! ऐसी सुषुप्तिदशा अभ्यास योगकरि प्राप्त होती है, जब यह दशा प्राप्त होती है, तब इसको तत्त्ववेत्ता तुरीयापद कहते हैं, सो परमानंदरूप है, तिसविषे सर्व दुःख नाश हो जाते हैं, असंसक्त हो जाता है, मनका मननभाव निवृत्त हो जाता है, तब ज्ञानवान्‌को परम सुख उदय होता है; तिसकरि परमानंद घूर्म हो जाता है, इस संसार-रचनाको लीलारूप देखता है, सर्व शोकते रहित निर्भय होता है, संसार भ्रम दूर हो जाता है, जब तुरीयापदविषे प्राप्त हुआ है, तब संसारविषे बहुरि नहीं गिरता, जो यत्नवान् पुरुष परमपावन पदविषे स्थित हुए हैं, सो संसारकी अवस्थाको देखिकरि हँसते हैं, जैसे पहाडके ऊपर बैठा पुरुष नगरको जलता देखिकरि हँसता है, तैसे ज्ञानवान् आत्मानंदको पाइ-करि संसारके कार्योंमें दुःख जानिकरि हँसते हैं. हे रामजी ! जो तुरीयाव-स्थाविषे स्थित है, सो अविनाशी होता है अरु आनंदरूप आनंदकलनाते आनंदकलना है, जब ऐसे तुरीयातीत पदको प्राप्त होता है, तब जन्म-मरणके बंधनते मुक्त होता है, अभिमान आदिक कलनाते रहित परम ज्योतिविषे लीन होता है, जैसे लूनकी गोली समुद्रविषे जलरूप हो जाती है, तैसे वह आत्मरूप हो जाता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे संसक्तचिकित्सा नामैकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमः सर्गः ७०

संसारयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जबलग तुरीयापदविषे स्थित होता है, तबलग केवल जीवन्मुक्त होता है, इसते उपरांत विदेहमुक्त तुरीयातीत है, सो वाणीका विषय नहीं, जैसे आकाशको भुजाकरि कोई पकडि नहीं सकता, तैसे तुरीयातीत वाणीका विषय नहीं, तुरीयातीत पदते विश्रांति भी दूर है, विदेहमुक्त कर पाता है अब तुम कछु काल ऐसी सुषुप्ति अवस्थाविषे स्थित हो, पाछे परमानंदपदविषे स्थित होना. हे रामजी! तुरीयावस्थाविषे जो स्थित हुआ है, सो निर्द्वंद्वभावको प्राप्त हुआ है, जब तू सुषुप्ति अवस्थाविषे स्थित होवैगा, तब जगत्के कार्य भी करता रहैगा सदा पूर्ण रहैगा, उदय अस्तके भावको कदाचित् प्राप्त न होवैगा, जैसे मूर्तिका चंद्रमा लिखा उदय अस्तको नहीं प्राप्त होता है, तैसे तू उदय अस्तभावको प्राप्त न होवैगा. हे रामजी! इस शरीरको आप जानिकरि रागद्वेषविषे जलता है, जिस पदार्थका सन्निवेश होता है, तिसके नष्ट हुए नष्ट हो जाता है,जैसे मृत्तिकाका अन्वय घटविषे होता है, घटके नाश हुए मृत्तिकाका नाश न होवै,तैसे भ्रमको मत अंगीकार करहु तू सदा ज्योंका त्यों है;तेरा सन्निवेश तौ इसविषे कछु न हुआ,ताते ज्ञानवान् देहके नाश हुए शोकवान् नहीं होता अरु देहके स्थित हुए सुखी भी नहीं होता काहेते कि देहके साथ संबंध कछु नहीं, जो तत्त्वदर्शी पुरुष है, सो यथाप्राप्तविषे निर्दोष होकारि विचरता है, अभिमानादिक विकारोंते रहित निर्मल आकाशवत् है, जैसे शरत्कालकी रात्रिविषे स्थित चंद्रमाकरि आकाश निर्मल होता है, तैसे वृत्ति विकारोंते रहित मनकरि आत्मपदविषे स्थित होता है, संसारकी ओर नहीं गिरता, जैसे योग मंत्र तप सिद्धिकरि संपन्न आकाशविषे उड़ता जाता है सो पुरुष पृथ्वीपर नहीं गिरता. हे रामजी! तू भी अपने प्रकृतिभावविषे स्थित होकारि यथाप्राप्त क्रियाको कर्ता निर्द्वंद्व होउ अरु तूभी अब स्वरूपका ज्ञाता

हुआ है, परमपदविषे जागा है, अपने स्वरूपको प्राप्त हुआ है, पृथ्वीविषे विशोकवान् हुआ विचरौ, इच्छा अनिच्छाको त्यागकरि शीतल तप्त प्रकाश अंधकार अरु मेघते रहित शरत्कालके आकाशवत् निर्मल शोभैगा. हे रामजी ! यह जगत् चिदानंदस्वरूप है अरु आदि अंतते रहित है; अहं त्वम् आदिक भ्रमते रहित तिसविषे स्थित होउ, आत्मा केवल अव्यक्त चिंतनाते रहित है, तिसका शरीरसाथ संबंध कैसे होवै ? आत्मा आदिक नाम भी व्यवहारके निमित्त कल्पे हैं, नामरूप भेद भयते रहित अशब्दपद है, सोई जगत्रूप होइकरि स्थित भया है, जगत् कछु भिन्न वस्तु नहीं, जैसे जल तरंगरूप हो भासता है, सो जलते कछु भिन्न वस्तु तरंग नहीं, तैसे आत्माते भिन्न जगत् कछु नहीं, जैसे समुद्र सब जलरूप है, जलते इतर कछु भिन्न नहीं, तैसे सब जगत् आत्मरूप है, भिन्न कछु नहीं, जैसे जल अरु तरंगविषे भेद नहीं, पट अरु तंतुविषे भेद नहीं तैसे ब्रह्म अरु जगत्विषे भेद नहीं. हे रामजी ! और द्वैत कछु वस्तु है नहीं, परंतु मैं तेरे उपदेशके निमित्त द्वैतको अंगीकार करि कहता हौं, यह जो शरीर है, तिसके साथ तेरा संबंध कछु नहीं. जैसे धूप अरु छायाका संबंध नहीं होता, प्रकाश अरु तम इकट्ठे नहीं होते, तैसे आत्मा अरु देहका संबंध नहीं, देह जड अरु मलिन है दृश्य अरु असत्य है, आत्मा निर्मल चेतन है अरु सत्य है, तिसका देहसाथ संबंध कैसे होवै ? जैसे शीत अरु उष्णका परस्पर विरोध है, तैसे आत्मा अरु देहका संबंध नहीं. जैसे वनको अग्नि लगेते जंतु जलते हैं, तैसे भ्रमदृश्यरूप देहविषे अहंभाव करिकै जलते हैं. हे रामजी ! जैसे दावाग्निविषे कुबुद्धि जलबुद्धि करै तैसे अज्ञानी देहविषे आत्मबुद्धि करते हैं. जैसे मरुस्थलविषे सूर्यकी किरणोंमें जल भासता है, तैसे आत्माविषे देह भाव रखते हैं. हे रामजी ! चिदात्मा निर्मल नित्य अरु स्वयंप्रकाश है अरु देह मलिन है, अस्थि मांस रक्तमय है, इसके साथ आत्माका संबंध कैसे होवै, आत्माविषे देहका अभाव है केवल एक अद्वैत तत्त्व अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे द्वैतभ्रम कैसे होवै ? हे रामजी ! स्वरूपते न कोऊ बंध है, न कोऊ मुक्त है, सर्व सत्ता एक आत्मतत्त्व स्थित है अंतर बाहर सर्व वही है, मैं सुखी

हौं मैं दुःखी हौं, मैं मूढ हौं, इस मिथ्या दृष्टिको दूरते त्याग, आपको केवल आत्मरूप जानिकरि स्थित होहु, यह जो दृश्य है, सो परम दुःख देनेहारा है, इसकरि दुःख प्राप्त होवैगा, जैसे तृण अरु पहाड़की एकता नहीं होती, पट अरु पत्थरकी एकता नहीं होती; तैसे आत्मा अरु शरीरकी एकता नहीं होती, जैसे तम अरु प्रकाशका संयोग नहीं होता, तैसे देह अरु आत्माका संयोग नहीं होता अरु दोनों तुल्य भी नहीं होते. जैसे शीत अरु उष्णकी एकता नहीं होती; जैसे जड़ अरु चेतनकी एकता नहीं होती, तैसे शरीर अरु आत्माकी एकता नहीं होती. हे रामजी! शरीर जो बोलता है, सो वायुके बलकरि चलता बोलता है, आठ स्थानोंविषे वायुके बलकरि अक्षरोंका उच्चार होता है, उर, कंठ, शिर, जिह्वामूल, दंत, नासिका, होठ, तालु, यही अष्ट स्थान हैं, क ख ग घ, इन चारोंका उच्चार कंठविषे होता है, च छ ज झ, इन चारोंका तालु स्थानविषे उच्चार होता है, ट ठ ड ढ, इन वर्णोंका मूर्द्धनि (शिरविषे) उच्चार होता है, त थ द ध, इनका दंतोंविषे उच्चार होता है, प फ ब भ, इनका होठोंविषे उच्चार होता है, ङ ञ ण न म, इन पांचोंका नासिका और कंठविषे उच्चार होता है, जिह्वाविषे जिह्वामूलीयका उच्चार होता है, जिसपदके आदिका हकार होवै, सो हृदयविषे उच्चार होता है, आठों स्थानोंविषे इन वर्गोंका वायुकरि उच्चार होता है, अरु नव स्वर सूक्ष्मका उच्चार होता है, आत्मा इनते निर्लेप होता है, जैसे बाँसुरी वायुकरि शब्द करती है, तैसे यह पांच तत्त्वोंकरि शब्द होता है, इनविषे आत्माभिधान करना कि मैं कर्त्ता हौं, सो महामूर्खता है अरु नेत्रादिक भी इंद्रियां वायुकरि चेष्टा करती हैं, ताते इस भ्रमको त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होउ, आत्मा आकाशवत् सर्वविषे पूर्ण है; जैसे आकाश सब ठौरविषे पूर्ण है परंतु जहां आदर्श होता है, तहां प्रतिबिंब होकारि भासता है, तैसे आत्मा सब ठौरविषे पूर्ण है, परंतु जहां चित्त होता है तहां भासता है. हे रामजी! जहां वासनाकरि चित्तरूपी पक्षी जाता है, तहां आत्माको अनुभव होता भासता है; जो मैं यहां हौं, जैसे जहां पुष्प होता है, तहां सुगन्धि भी होती है, तैसे जहां चित्त होता है, तहां

अहंभाव भी होता है, जैसे आकाश सर्व ठौरविषे है, परंतु जहां प्रतिबिंब होता है तहां भासता है, जैसे जल सर्व पृथ्वीविषे है, परंतु तहां भासता है, जहां खोदा जाता है, तैसे आत्मा सब ठौर पूर्ण है, परंतु तहां भासता है जहां चित्त है, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब सब ठौर है, परंतु जहां आदर्श अथवा जल है, तहां भासता है, तैसे आत्मा जहां तहां पूर्ण है, परंतु चित्तके अहंभावकरि भासता है, आत्माका प्रतिबिंब चित्तहीविषे भासता है, सो चित्त आत्माकी सत्ताकरि जगत्‌रचनाको पसारता है, जैसे सूर्यकी किरणैं धूपको पसारती हैं. हे रामजी ! भूतोंका कारण अंतःकरण ही है अरु आत्मतत्त्व तौ अतीत ही है, आदिकारण नहीं है अरु वास्तवते अकारण है, जगत् जो सत् भासता है, सो अविचारकरि भासता है तिसके निवृत्तिका उपाय आत्मज्ञान है. हे रामजी ! संसारका कारण अंतःकरण है, असम्यक् ज्ञान करिकै सत्यरूप भासता है, जैसे मरुस्थलविषे असम्यक् ज्ञानकरिकै जल भासता है, जब यथार्थ ज्ञान होता है, तब जगत्‌का कारण चित्त नष्ट हो जावै, जैसे दीपकके प्रकाशकरि अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे आत्मज्ञानकरि चित्त नष्ट हो जाता है, संसारका कारण अपना चित्त ही है, इसका नाम जीव, अंतःकरण, चित्त, मन है. राम उवाच–हे महाआनंदके देनेहारे ! एती संज्ञा चित्तकी कैसे हुई है? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! सर्वभावरूप एक परमात्मा तत्त्व है, जैसे समुद्र, नदियां,तरंग आदि संज्ञा एक जल ही धरता है,तैसे चित्तादिक अनेक संज्ञाको आत्मा धारता है अरु सदा एकरूप है संवेदन फुरणेकरि अनेकरूप धारता है, जैसे एक जलको अनेक तरंग कहूँ बुद्बुदे, कहूँ जल, कहूँ चक्र, कहूं स्थिर एती संज्ञाको धारता है, परंतु सब ही जलरूप है,तैसे सर्वशक्ति आत्मा सर्व शरीरोंविषे सर्वरूप होता है, जब स्पंदकलना दूर होती है, तब शुद्धस्वरूप हो भासता है अरु जहां अज्ञान संसरणेको अंगीकार करता है,तहां वही अनंत आत्मा जीव कहाता है,जैसे केसरीसिंह पिंजरेविषे फँसता है, तैसे यह जीवरूप होता है. हे रामजी ! जहां अहंभाव फुरता है, तहां जीव कहाता है अरु जो निश्चयवृत्तिकरि फुरता है, तिसको बुद्धि कहते हैं, संकल्पविकल्पकरि मन कहाता

है, चिंता करनेते चित्त कहाता है, प्रकृत भावकरि प्रकृति कहाता है. हे रामजी! प्रकृतिरूप जो पदार्थ है, सो जड़ कहाता है अरु चेतन है सो जीव कहाता है अरु जड़ जो दृश्यभावकरि संवित् भाग है, अजड़ जो जीव अहं सो द्रष्टाभावकरि सिद्ध होता है, इनके जो मध्य है, सो परमात्मा तत्त्व है, सो नानारूप हो भासता है, यह रूप जीवका बृहदारण्य उपनिषद्‌विषे बहुत प्रकारकरिकै और वेदांतशास्त्रोंविषे कहा है, इसते इतर संज्ञा शास्त्रकारने कल्पिकरि कही है, सो वृथा कल्पना कही है, जबलग अहंभावकरिकै चित्त संसरता है तबलग जगत्‌भ्रम होता है. जैसे जबलग सूर्य है तबलग प्रकाश होता है, जब सूर्य अस्त होता है, तब प्रकाश जाता रहता है, तैसे जब चित्तका अभाव हुआ, तब जगत्‌भ्रम जाता रहता है, देहविषे आत्मबुद्धि करनी सो महामूर्खता है, काहेते यह अधः ऊर्ध्व संयोग है जो आत्माका ऐसे संयोग होवै तौ देहके नाश हुए आत्मा भी नाश हो जावै, देहके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे वृक्षके पात नाश हुए वृक्षका नाश नहीं होता, तैसे शरीरके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे घटके नाश हुए आकाशका नाश नहीं होता, तैसे शरीरके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे पुरातन वस्त्रको त्यागिकरि पुरुष नूतन वस्त्र पहिरता है, तैसे आत्मा पुरातन शरीरको त्यागिकरि नूतन शरीरको अंगीकार करता है इसका नाम मूर्ख मृत्यु कहते हैं, शरीरके नाश हुए आत्माका नाश तौ कछु नहीं होता. हे रामजी! जिसका चित्त निर्वासनिक हुआ है, उसका शरीर जब छुटता है, तब उसका चित्त चिदाकाशविषे लीन हो जाता है अरु जिसका चित्त वासनासहित है, सो एक शरीरको त्यागिकरि और शरीरको पाता है, तौ भी शरीरके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जो देहके नाश हुए आपको नाश मानता है सो मूर्ख है, जैसे स्थाणुविषे अज्ञानकरिकै वैताल भासता है, जैसे माताके स्थानोंविषे मूर्ख बालकको वैताल भासता है, तैसे अज्ञानकरि आत्माविषे मृत्यु भासता है अरु जो इसका आत्मतत्त्व नाश होवै, अर्थ यह कि चित्तनाश हो

जावै, बहुरि फुरै नहीं सो तौ आनंद हुआ अरु जो शरीरके नाश हुए आत्माका नाश कहते हैं, सो मूढ हैं, मिथ्या कहते हैं, जैसे कोऊ देशते देशांतरको जाता है, तौ उसका अभाव नहीं होता, तैसे शरीरको त्यागिकरि और शरीरको प्राप्त होता है, आत्माका नाश नहीं होता, जैसे जलविषे तरंग फुरता है, बहुरि लीन होकरि और ठौरविषे जाय फुरता है, तैसे आत्मा एक शरीरको त्यागिकरि औरको धारता है. जैसे पक्षी उड़ता उड़ता दूर जाता है, तब दृष्टि नहीं आता, परन्तु नाश नहीं होता, तैसे शरीरके नाश हुए आत्मा और ठौर प्रगट होता है, नाश नहीं होता. हे रामजी! वासनाके वशते यह जीव एक शरीरको त्यागिकरि और शरीरको जाय प्राप्त होता है, इसी प्रकार वासनाके अनुसार जीव फिरता है, वासनारूपी जेवरीसाथ बांधा जीवरूपी वानर शरीररूपी स्थानोंविषे भटकता है. हे रामजी! जीव वासनारूपी रसडीसाथ बांधा हुआ कबहूँ ऊर्ध्वलोक, कबहूँ मनुष्यलोकविषे घटी-यन्त्रकी नाईं भ्रमता है. हे रामजी! जीवको हृदयविषे जो वासना होती है, तिसकरि जरा मृत्यु जन्म आदि दुःखोंको पाता है अरु कर्मोंरूपी भारको उठाइ फिरता है, कबहूँ स्वर्गको जाता है, कबहूँ पातालको जाता है, कबहूँ मध्यस्थानविषे जाता है, शांतिको प्राप्त कदाचित् नहीं होता. ताते हे रामजी! अविद्यारूपी जो संसार है, इसको भ्रमरूप जानिकरि इसकी वासनाका त्याग करि अपने स्वरूपविषे स्थित होउ. वाल्मीकिरु-वाच-इस प्रकार जब वसिष्ठजीने कहा, तब सूर्य अस्त हुआ, सब सभा स्नानके निमित्त उठी, परस्पर नमस्कार करिकै अपने अपने स्थानको गये, रात बिताय सूर्यकी किरणोंसाथ आइ बैठे.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे संसारयोगो-पदेशो नाम सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः ७१.

मोक्षस्वरूपोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! आत्मा देहके उपजेते उपजता नहीं अरु नाश हुएते नाश नहीं होता, सो तू निष्कलंक आत्मा है, तुझको देहसाथ संबंध कदाचित् नहीं, जैसे कुंजविषे फूल फल होता है, जैसे घटविषे घटाकाश होता है, सो परस्पर भिन्नरूप होता है, एकके नाश हुए दूसरेका नाश नहीं होता, तैसे देहके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता अरु जो देहके नाशविषे अपना नाश मानता है, सो मूर्ख जड़ है, तिस अर्थ चेतनताको धिक्कार है. हे रामजी! जैसे रथ अरु रसडियां अरु घोड़ेका स्नेहते रहित संयोग होता है, तैसे शरीर चित्त अरु इंद्रियोंका संयोग है. हे रामजी! रथ टूटेते रथके वायुकी हानि तौ नहीं होती, तैसे देह इंद्रियोंके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे पृथ्वी पहाड़ऊपर जलके प्रवाहका संयोग होता है अरु वियोग भी होता है, सो एकके नाश हुएते दूसरेका नाश नहीं होता है, तैसे देह इंद्रियका संयोग है, इनके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे स्थाणुविषे वेताल भासता है अरु भयमान होता है, तैसे देहविषे अहंभावकरि रागद्वेष सुखदुःख पावता है, जैसे एक काष्ठकी अनेक पुतलियां होती हैं, सो काष्ठते इतर कछु नहीं, तैसे जेते कछु शरीर हैं सो पंच भूतोंके हैं, पांच भूतोंते हैं, इतर कछु वस्तु नहीं, बहुरि यह पंच भूतोंका शरीर पंच भूतोंविषे लीन होता है, तिसको मृतक हुआ कहते हैं, यह आश्चर्य है, जो प्रत्यक्ष पंच भूतोंका शरीर है, तिसविषे आत्मभावना श्वान करते हैं, बहुरि हर्षकरि शोकको प्राप्त होते हैं, इसीते मूर्ख हैं. हे रामजी! न कोऊ पुरुष है, न कोऊ स्त्री है अरु इनके निमित्त मूढ रुदन करते हैं. जैसे मृत्तिकाके खिलोने हस्ती घोडा आदिक विचित्र रचना होती है, तिसकी प्राप्ति अप्राप्तिविषे अज्ञानी बालक तुष्टिमान् अरु खेदवान् होता है, तैसे अज्ञानी पांचभौतिक रचना देखिकरि प्राप्तिविषे राग द्वेष करता है, ज्ञानवान्को सब भूत भ्रांतिमात्र भासते हैं, जैसे

माटीके पुरुष आपसमें मिलैं तब उनको रागद्वेष कछु नहीं होता है, तैसे बुद्धि इंद्रियां मन आत्माका मिलाप है, तिसविषे तुझको रागद्वेष कछु नहीं होता. जैसे पाषाणकी पुतलियां मिलती हैं, उनको स्नेहबंधन कछु नहीं होता, तैसे देह, इंद्रियां प्राण, आत्माके आपसमें स्नेहबुद्धिते रहित हैं, ताते तू स्नेहते रहित होउ, शोक काहेको करता है, जैसे तृण अरु जलके तरंगका संयोग होता है, तृण इधर उधर जाता है, जलको कछु हर्षशोक नहीं होता है, तैसे देहभूत आत्माका योग है इनको मिलाप अरु बिछुरेका दुःख सुख कछु नहीं होता, आत्मा अरु अनात्मा देह इंद्रियां प्राण मन बुद्धि आदिक विलक्षण भाव हैं परस्पर इनके क्षय अरु उदयविषे हर्षशोक कछु नहीं परंतु चित्तके उदयकरिकै अनात्मा धर्म आत्माविषे प्रतिबिंबित भासता है, ताते तुम तत्त्वबोधका विचार करिकै चित्तको त्यागि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, जैसे जल तरंगभावको त्यागिकरि अपने स्थित स्वभावको प्राप्त होता है, तैसे तू अपने अक्षोभभावको प्राप्त होवैगा, तब भौतिक देहते आपको भिन्न जानैगा, जैसे वायुमंडलको प्राप्त हुआ देहादिक जीव पृथ्वीमंडलको देखता है, तैसे तू आत्मपदको स्थित हुआ देहादिक भूतोंको देखैगा. हे रामजी ! तुम देहादिक भूतोंको देख त्यागिकरि अतीत अजन्मा पुरुष हो रहौ, तब तुम परम प्रकाशको पावैगा. जैसे सूर्यकांतमणि सूर्यके उदय हुए परम प्रकाशको प्राप्त होता है, तैसे जब बोधकरिकै द्रष्टा दर्शन दृश्य भाव तेरा जाता रहैगा, तब तू अपने भावको ज्योंका त्यों जानैगा, जैसे मद्यकरि क्षीब हो जाता है, मद्यके उतरेते आपको ज्योंका त्यों जानता है अरु मद्यभावको स्मरण करता है तैसे स्मरण करैगा, आत्मतत्त्वका जो स्पंद फुरना हुआ है, तिसका नाम चित्त है, सो अवस्तुरूप है, जैसे समुद्रविषे तरंगभाव उदय होता है, सो कछु वस्तु नहीं, तैसे चित्तादिक कछु वस्तु नहीं, भ्रांतिरूप हैं, इस प्रकार जानिकरि महाबुद्धिमान् वीतराग निष्पापरूपी जीवन्मुक्त हुए हैं, महाशीत पदकी प्राप्तिमें विचरते हैं. जैसे रत्नमणिकी किंचन नाना प्रकारकी लहरी होती हैं, सो मनन कलनाते रहित चमत्कार है, तैसे मनुष्योंविषे जो ज्ञानवान् उत्तम पुरुष हैं,

तिनका व्यवहार कलनाते रहित होता है, जैसे कूपविषे प्रतिबिंब पड़ता है, जैसे आकाशविषे धूलि उड़ती भासती है, आकाश मलिनताको प्राप्त नहीं होता, तैसे ज्ञानवान् पुरुष अपने व्यवहारविषे कर्तृत्वके अभिमानको नहीं प्राप्त होता, जैसे मेघके आने जानेकरि समुद्रको रागद्वेष नहीं होता, तैसे आत्मा ज्ञेय पुरुषको भोगोंके आने जानेविषे रागद्वेष नहीं होता. हे रामजी ! जिस मनविषे जगत्के किसी पदार्थोंकी मननवासना नहीं फुरती, तिस चित्तविषे जो कछु फुरणा भी भासती है सो विलास स्वरूप जान, उसको बंधनका कारण कछु नहीं होता अरु जिस चित्तविषे अहं त्वम् आदिक जगत्की भावना है, परंतु अंतरते तिसको सत्यताबुद्धि है, तिसकरि वह दृश्य द्रष्टा अरु दर्शन संबंध तीनों कालोंसंयुक्त जगत्को विस्तारैगा, जो कछु दृश्य है, सो असत्यरूप है अरु जो सत्य है, सो एक अव्यक्तरूप है तिसको आश्चर्यकरिकै अलेप होहु, तब हर्षशोककी दिशा कहां है, जेता कछु दृश्य जगत् भासता है, सो सब असत्यरूप है, जो सत्य है, सो सदा ज्योंका त्यों है असत्यरूप दृश्यके निमित्त तू क्यों वृथा मोहको प्राप्त करता है ? असम्यक् दर्शनको त्यागिकरि सम्यक्दर्शी होहु. हे सुलोचन रामजी ! जो सम्यग्दर्शी है, सो मोहको नहीं प्राप्ति होता, दृश्य जो विषय अरु दर्शन कहिये इंद्रियां, तिनके विषे संबन्ध मिलनेविषे जो आत्मसुख है अनुभवरूप सो परब्रह्म कहाता है अरु अनुत्तम सुख सो तिस संवित्विषे स्थित है, सो ज्ञानवान् है; तिसको मोक्ष प्राप्ति है अरु जो दृश्य दर्शनविषे स्थित होता है, तिस अज्ञानीको वह संवित् संसारभ्रम दिखावती है अरु दृश्य दर्शनविषे जो अनुभवसत्ता है, सो सुख आत्मरूप है जो दृश्य साथ लगा है, सो बंध है अरु जो दृश्यते मुक्त होइ संवित्विषे स्थित है सो मुक्त कहाता है. हे रामजी ! दृश्य दर्शनके संबंधविषे मध्य जो संवित् है, सो अनुभवगोचर है, तिस संवितको आश्रय करिकै दृश्य दर्शनते जो मुक्त है, सो संसारसमुद्रको तरैगा, यह सुषुप्तिरूप अवस्था है तिसको प्राप्त हुआ परम प्रकाशको प्राप्त होता है, इसीको मुक्त कहते हैं, जो दृश्य दर्शनते मुक्तबुद्धि है, सो मुक्त कहाता है

अरु जो दृश्य दर्शनसाथ बांधा है, सो बंध है, अन्य सर्वोंका अनुभव करनेहारा आत्मा है, सो न स्थूल है, न अणु है, न प्रत्यक्ष है, न अप्रत्यक्ष है, न चेतन है, न जड़ है, न सत्य है, न असत्य है, न अहं है, न त्वं है, न एक है, न अनेक है, न निकट है, न दूर है, न अस्ति है, न नास्ति है, न प्राप्त है, न अप्राप्त है, न सर्व है, न असर्व है, न पदार्थ हैं, न अपदार्थ है, न पांचभौतिक है, न अपांचभौतिक है, जेती कछु दृश्य जाति है, सो मनसहित षट् इंद्रियोंकरि भावको प्राप्त होता है, जो इनते अतीत है, सो इनका विषय नहीं, सो विषय कैसे होवै, निष्किंचनरूप है अरु यह भी सब वही रूप है, ज्योंका त्यों जानेते सब आत्मरूप है, जगत् अनात्मरूप कछु नहीं, सम्यक्ज्ञानकरि ऐसे भासता है, यह जो कठिनरूप पृथ्वी भासती है, द्रवतारूप जल भासता है, स्पंदरूप वायु, उष्णतारूप अग्नि, अवकाशरूप आकाश भासता है, सो सब आत्मरूप है, जो कछु वस्तु अवस्तुरूप जगत् भासता है, सो आत्मसत्तातै इतर कछु नहीं; आत्मातै इतर जगत्को मानना उन्मत्तचेष्टा है, मूर्ख मानते हैं, महात्मा पुरुषको काल कलनारूप जगत् सब आत्मरूप है, कल्पते आदि लेकरि अंतपर्यंत सब आत्माका चमत्कार है, इतर कछु नहीं, ऐसे जानिकरि तुम अपने स्वरूपविषे स्थित होहु अरु संसारसमुद्र तरि जावहु.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे मोक्षस्वरूपोपदेशो नामैकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमः सर्गः ७२.

आत्मविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह जो मैं तुझको द्वैतके त्यागकी विचारदृष्टि कही है, इस विचार करिकै अपना जो आत्मस्वभाव है, सो प्राप्त है, जैसे बुद्धिमान्को उपासना अभ्यासकरिकै चिंतामणि प्राप्त होता है अरु इसके उपरांत और भी परम दृष्टि सुन, जिस दृष्टिकरिकै अचल

आत्मरूपको देखता है, कि मैं ही आकाश हौं, मैं ही दिशा हौं, मैं ही सूर्य हौं, अधः ऊर्ध्व मैं ही हौं, देवता दैत्य मैं ही हौं, प्रकाश तम अरु मेघ पर्वत मैं ही हौं, पृथ्वी समुद्र पवन धूलि अग्नि आदिक स्थावर जंगम जगत् मैं ही हौं. हे रामजी ! सर्व जगत् आत्मा ही है, तौ अहम् अरु त्वंते भिन्न और अनेक अरु एक कैसे होवै ? ऐसा निश्चय जिसके अंतर होता है, तिसको सब जगत् आत्मरूप भासता है, सो पुरुष हर्ष शोकको नहीं प्राप्त होता, जो सब जगत् मनोमात्र है, तौ अपना अरु पराया क्या कहिये ? ज्ञानवान्‌को आत्माते इतर नहीं भासता, ताते हर्षविषादको नहीं प्राप्त होता. हे रामजी ! अहंकार भी तीन प्रकारके हैं, दो प्रकार सात्त्विक निर्मल हैं, तत्त्वज्ञानकरि प्रवर्त्तता हैं अरु मोक्षदायक परमार्थरूप है अरु तीसरा संसारको दिखावता है, एक अहं है, जो तुझको कहा है, सर्व मैं ही हौं, मुझते अन्य कछु नहीं अरु दूसरा यह जो परम अणु जो सूक्ष्मते अतिसूक्ष्म है, साक्षिभूत अव्यक्तरूप हौं, यह दोनों मोक्षदायक हैं अरु तीसरा यह जो आपको नख शीशपर्यंत देहरूप जानना, सो दुःखदायक संसारका कारण है, शांतिसुखका कारण नहीं, अथवा इन तीनोंको त्यागकरि स्थित होउ, यह सर्व सिद्धांतका कारण है, जैसे तेरी इच्छा होवै तैसे कर, आत्मा सर्वते अतीत है अरु सर्वते परे है; तौ भी अपनी सत्ताकरिकै जगत् पूर्णकरि रहा है अरु सर्वका प्रकाशरूप वही है, अपने अनुभवकरि सदा वस्तु उदयरूप है अरु किसी प्रमाणका विषय नहीं, अनुमान आदिक अरु सत्यवाद इनते परे रहित है अरु सर्व-काल सर्वको अपने प्रकाशकरि प्रकाशता है अरु यह जो दृश्य जगत् है, सो सब आत्मा भगवान् है अरु दृश्य दर्शन सत् असत् सूक्ष्म स्थूल सबते आत्मा रहित है अरु वही सर्वरूप है, सर्वकी वाणी कहनेविषे भी वही आता है अरु किसीके कहनेविषे भी नहीं आता, जो नानात्व भासता है, सो भी तिसते अन्य कछु नहीं, आत्मा आदिक संज्ञा भी शास्त्रोंने उपदेशके निमित्त कल्पी हैं, सर्व शक्ति तिसविषे कल्पी हैं, सर्वत्र तीनों कालोंविषे स्थित है अरु प्रकाशरूप है, सूक्ष्मभावकरि भी वही है, स्थूलरूप भावकरि भी वही है, सो सर्व ठौर व्यापक है अरु अपने

फुरणेकरि जीवरूप हो भासता है, जब चित्तसंवित् फुरणेरूप होती है, तब जीव आदिकरूप हो भासता है, फुरणेते रहित द्वैतकलना मिटि जाती है, जैसे आकाशविषे जब पवन फुरता है, तब उष्ण शीत हो भासता है, तैसे फुरणेकरि जीवादिक भासता है अरु आत्मा चेतन सर्वत्र व्यापक रूप है अरु कबहूं किसी भावको प्राप्त नहीं भया, जैसे पदार्थ अपने अपने भावविषे स्थित हैं, तैसे परमेश्वर आत्मा अपने स्वभावविषे स्थित है, परंतु तिसका भासना पुर्यष्टकाविषे होता है, जैसे वायुविना धूलि उड़ती नहीं, जैसे अंधकारविषे प्रकाश विना पदार्थ भासता नहीं, तैसे पुर्यष्टका विना आत्मा भासता नहीं, पुर्यष्टकाविषे प्रतिबिंब भासता है, जैसे सूर्यके उदय हुए सर्व जीवोंका व्यवहार होता है अरु सूर्यके अस्त हुएते लीन होता है अरु सूर्य दोनोंविषे अलेप है, तैसे आत्मा सर्वका प्रकाशक अरु निर्लेप है, शरीरोंके व्यवहार होनेविषे अरु इष्टताविषे ज्योंका त्यों है न उपजता है न विनशता है, न वांछता है, न त्यागता है, न मुक्त है, न बंध है, सर्वदा सर्व प्रकार आत्मा ज्योंका त्यों एकरूप है, तिसके अज्ञानकरि जीव अनात्मा भावको प्राप्त होता है. जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है अरु केवल दुःखोंका कारण होता है आत्मा आदि अंतते रहित अज अविनाशी है, अपने आपते इतर कछु नहीं हुआ इसते वांछा त्यागि देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित है, ताते बंध नहीं, जो बंध नहीं तौ मुक्ति कैसे होवै ? सर्व कलनाते रहित ऐसा आत्मा सर्वका अपना आप है, अविचार करिकै मूढ रुदन करते हैं, ताते मैं जो तुझको उपदेश किया है, तिसको आदिते लेकरि अंतपर्यन्त भले प्रकार विचारि देख, इस युक्तिकरिकै शोकका त्याग कर, मूर्खोंवत् लोकोंविषे शोकको मत प्राप्त होहु. हे सुमते ! बंधमोक्षकी कल्पनाका त्याग कर, न बंधके त्यागकी इच्छा कर, न मोक्षकी प्राप्तिकी इच्छा कर, यंत्रकी पुतलीवत् अभिमानते रहित चेष्टा कर, इसका नाम आत्मा मौन है. हे रामजी ! मोक्षका नाम कोऊ पदार्थ आकाशविषे स्थित नहीं, न कोऊ पातालविषे स्थित है, न भूमिलोकविषे स्थित है, चित्तका निर्मल होना मोक्ष है, जो अनात्मासाथ आपको मिलावना, तिसविषे आत्माभिमान करना, यह मैल है इसका

त्याग करना अरु शुद्ध आत्मविषे चित्तको लगावना, इसका नाम मोक्ष है जब चित्तसों गुणोंमें वृत्तिका त्याग होवै अरु सम्यक् आत्मज्ञान होवै, तिसको तत्त्वदर्शी मोक्ष कहते हैं. हे रामजी! जबलग आत्मबोध नहीं होता, तबलग यह दीन दुःखी होता है, जब आत्माका निर्मल बोध होता है, तब दुःखोंते मुक्त होता है, तातें और उपायोंको त्यागि भक्ति करिकै मोक्षकी वांछा कर अरु चिरकालकरिकै जब इस बोधको साध्य चित्त विस्तृत पदको प्राप्त हुआ, तब दश मोक्षकी वांछा नहीं करता, एक मोक्ष क्या है. हे रामजी! जीवको और उपाय मोक्षका कोऊ नहीं, आत्मबोधको पाइकरि सुखी होवैगा, जब चित्त अचित्त होता है, तब सब जगद्भ्रम मिटि जाता है अरु जगत् कछु दूसरी वस्तु नहीं, अद्वैत आत्मतत्त्व है, जो वही है, तौ बंध किसको कहिये? अरु मोक्ष किसको कहिये? बंधमोक्षकी कल्पना तुच्छ है, तिसको त्यागिकरि चक्रवर्ती हो पृथ्वीकी पालना कर, तुझको कर्तृत्वका स्पर्श कछु न होवैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे आत्मविचारो नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः ७३.

निरास्पदमौनविचारवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! इसके संकल्पते जगत् उपजा है. अज्ञानकरिकै आपको शरीर जानता है, अपने संकल्पको उपजाइकै अपना स्वरूप जानता है, जैसे कोऊ सुंदर पुरुष होवै, तिसको देखे विना कुरूप जानै, तैसे आत्माके साक्षात्कार विना देहरूप आत्माको जानता है कि, मैं देह हौं ज्यों ज्यों आत्माका प्रमाद होता है, त्यों त्यों देहविषे अधिक अभिमान होता है, जैसे ज्यों ज्यों मद्यपान करता है, त्यों त्यों उन्मत्त होता है. हे रामजी! यह जो नाना प्रकारका दृश्य भासता है, सो अज्ञानकरि भासता है, जैसे सूर्यकी किरणोंकरिके मरुस्थलविषे जल भासता है, तैसे असम्यक्ज्ञान करिकै

आत्माविषे जगत् भासता है, एक कलनाके फुरणेकरि मन बुद्धि चित्त अहंकार इंद्रियां देह भासते हैं, सो एक फुरणेकी एती संज्ञा है, जैसे एक जलकी अनेक संज्ञा होती हैं, तैसे एक फुरणेकी अनेक संज्ञा हुई हैं. जो चित्त है, सो अहंकार है, जो अहंकार है, सोई मन है; जो मन है, सोई बुद्धि है, इनविषे भेद कछु नहीं, जैसे बर्फ अरु शुक्लता अरु शीतलताविषे भेद कछु नहीं, तैसे मन बुद्धि आदिकविषे कछु भेद नहीं एकके नाश हुए दोनोंका नाश हो जाता है, ताते मनविषे जो कछु कलना है, तिसको त्यागिकरि मोक्षकी इच्छाका भी त्याग करि बंधनवृत्तिको भी त्याग कर. हे रामजी ! वैराग्य अरु विवेक अभ्यासकरिकै मनको निर्मल करौ, जब मन निर्मल हुआ, तब मनका मननभाव नष्ट हो जावैगा, जब यह फुरणा फुरती है कि, मैं मुक्त होऊं तब भी मन जागि आता है अरु मनके जागते मनन भी हो आता है मनन हुआ, तब अपने साथ शरीर भी भासि आता है अरु अनेक दुःख भी भासि आते हैं. हे रामजी ! अत्मतत्त्व सबते अतीत है अरु सर्वरूप भी वही है तब कौन बंध है अरु कौन मोक्ष है ? जब मनका मनन निवृत्त हुआ, तब न कोऊ बंध है, न कोऊ मुक्त है, आत्मा सर्व क्रियाते अतीत है अरु क्रिया भी इस प्रकार होती है, जैसे वायुके हिलनेकरि वृक्षके पत्र फूल हिलते हैं, तैसे प्राणोंके फुरणेकरि हाथ पांव आदिक इंद्रियां चेष्टा करती हैं. हे रामजी ! चित्तशक्ति है सो सर्वव्यापी सूक्ष्म है अरु अचल है, न आप ही चलती है, न और किसीकी प्रेरी हुई चलती, है सदा स्थितिरूप है, जैसे मेरु पर्वत न आप ही चलता है, न वायुकरि चलाया चलता है, तैसे चित्तशक्ति अचल है. हे रामजी ! जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो आत्मारूपी दर्पणविषे प्रतिबिंबित भासते हैं, जैसे सर्व पदार्थोंको दीपक प्रकाशता है; तैसे सब पदार्थोंको आत्मा प्रकाश करता है अरु सब पदार्थोंविषे एक आत्मा अनुस्यूत प्रकाशता है, अहं त्वम् आदिक कलनाते रहित है, जहां अहं त्वम् आदिक कलना नहीं फुरती, तहां सुखदुःख भी नहीं फुरता, जैसे वृक्षों अरु पहाडोंते अहं त्वं शब्द नहीं फुरता, तैसे आत्माविषे नहीं फुरते, ताते ज्ञानवान्‌विषे कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं फुरते. हे रामजी ! आत्मा

निरहंकार अरु निराकार है, तिसविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसे होवै? कर्तृत्व भोक्तृत्व आत्माविषे अज्ञानकरि भासता है, जैसे मरुस्थलविषे जल भासता है. हे रामजी! अज्ञानरूपी मदिरापान करिकै मनरूपी मृग मत्त हुआ है, तिसकरि सत् असत्का विचार नहीं करि सकता, जैसे मृगतृष्णाकी नदी असत् ही सत् भासती है, मृग तिसको सत् जानिकरि पान करनेके निमित्त दौडता है, तैसे यह जीव असरूप संसारको सरूप जानिकरि दौडता है, जब आत्मसत्ताका सम्यक् बोध होता है, तब यह अविद्या नाश हो जाती है, जैसे ब्राह्मणोंके मध्य चंडाली आनि बैठे, जब उन ब्राह्मणोंने उसको पिछानी कि, यह चंडाली है तब छुप जाती है, तैसे जब अविद्याको जाना कि, यह अविद्या है, तब नष्ट हो जाती है. हे रामजी! जब अविद्याको ज्योंकी त्यों जानी, तब अविद्यारूप जगत् मनको खैंच नहीं सकती, जैसे मृगतृष्णाकी नदीको जब जाना, तब तृष्णा होवै तो भी मनको जल खैंच नहीं सकता. हे रामजी! जब परमार्थसत्ताका बोध हुआ, तब मूलते वासना नष्ट हो जाती है, जैसे दीपके उदयते अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे आत्मज्ञानकरि अविद्या वासनासहित नष्ट हो जाती है. हे रामजी! अविद्या अविचारते सिद्ध है, जब सच्छास्त्रोंकी युक्तिकरि विचार इसको प्राप्त होता है, तब अविद्या नाश हो जाती है, जैसे बर्फका कणका धूपकरि गलि जाता है अरु जलमय हो जाता है, तैसे विचारकरि अज्ञान नष्ट हो जाता है. हे रामजी! देह जड है, आत्मा सदा चेतनरूप है, बहुरि देह जडके निमित्त भोगोंकी वांछा करनी यह बडी मूर्खता है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो इस बंधनको तोडि डारते हैं. हे रामजी! आशारूपी फांसीको हृदयते काटौ, जब अशारूपी आवरण दूर भया, तब पूर्णमासीके चंद्रवत् अंतर शीतल हो जावैगा, तैसे यह पुरुष भी तीन तापोंते मुक्त शीतल हो जाता है, जैसे पर्वत होकरि अग्नि लगै, तिसके ऊपर जलकी महत् वर्षा होवै, तब तप्तताते मुक्त हुआ शांतिमान् होता है. हे रामजी! जैसे केसरीसिंह पिंजरेको तोड़िकरि निकसता है, तैसे ज्ञानवान् पुरुष भोगवासनाके बंधनको तोरि डारता है. हे रामजी! आत्माके साक्षात्कार हुए परमानंदको प्राप्त होता है, जैसे रंकको

त्रिलोकीके राज्य मिलनेकारि आनंदकी प्राप्ति होवै; तैसे ज्ञानवान्‌को आनंद प्राप्त होता है, परम निर्मल लक्ष्मीकारि शोभता है, जब इसके आकाशरूपी हृदयसों मैल जाता है, तब जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल शोभता है, तैसे शोभता है. हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुष अपने आपविषे नहीं समावता है, जैसे महाकल्पका समुद्र नहीं समावता अरु जैसे मेघजलको त्यागिकरि मौन हो जाता है, तैसे ज्ञानवान् आशाको त्यागिकरि आत्ममौन हो जाता है, जैसे अग्नि लकड़ीको जलाइकारि धुँवाते रहित अपने आपविषे स्थित हो जाता है, तैसे चित्तकी वृत्तिते रहित हुआ आत्मपदविषे निर्वाण हो जाता है, जैसे दीपक निर्वाण हो जाता है, तैसे चित्त निर्वाण हुआ परमानंदको प्राप्त होता है, जैसे अमृतको पान करि पुरुष आनंदवान् होता है, तैसे परमानंदकारि पूर्ण अपने आपविषे प्रकाशता है, जैसे वायुते रहित दीपक स्थानविषे प्रकाशता है, जैसे शुद्ध मणि अपने प्रकाशकारि प्रकाशता है, तैसे ज्ञानवान् अपने आपकारि प्रकाशता है, मैं सर्वात्मा हौं, सर्वगत हौं, ईश्वर हौं, सर्वाकार हौं, निराकार हौं, केवल चिदानंद आत्मा हौं, सदा अपने आपविषे स्थित हौं. हे रामजी! ऐसे ज्ञानी अपने आपको जानता है अरु पूर्वदिन व्यतीत हो गया है तिनको हँसता है, मैं तौ अनंत आत्मा हौं, मायाके भ्रमकारि आपको कर्ता भोक्ता मानता था. हे रामजी! ऐसे जानिकरि राग द्वेषते रहित परम शांतिको प्राप्त होता है, उसके ताप सब निवृत्त हो जाते हैं अरु सदा आत्माविषे प्रीति रहती है, चित्त सर्व ओरते पूर्ण हो जाता है अरु सबको पवित्र करनेहारा होता है, कामरूपी चक्रते मुक्त होता है, जन्मोंके बंधन काटि डारता है रागद्वेष आदिक द्वंद्व अरु सर्व भयते मुक्त होता है, अविद्यारूपी संसारसमुद्रको तरि जाता है, उत्तम लक्ष्मीको प्राप्त होता है, अर्थ यह कि, परमपदको प्राप्त होता है, बहुरि संसारके जन्ममरणको नहीं प्राप्त होता अरु कर्मोंका अंत हो जाता है. हे रामजी! ज्ञानवान्‌की क्रियाको देखिकारि और वांछा नहीं करते हैं, परंतु औरोंकी क्रियाको देखिकारि ज्ञानवान् किसीकी वांछा नहीं करता अरु सबको आनंदवान् करता है अरु आप किसीकारि आनंदवान् नहीं होता, न किसीको देता

है, न लेता है, न किसीकी स्तुति, न निंदा करता है, न किसी उत्तम पदार्थोंको पाइकरि उदय होता है, न अनिष्टको पाइकरि नष्ट होता है, हर्षशोकते रहित है अरु सर्व फलका त्याग किया है, सर्व उपाधिते रहित है, कर्तृत्व भोक्तृत्वते आपको न्यारा मानता है, ऐसा जो पुरुष है, सो जीवन्मुक्त है. हे रामजी ! जब तू सर्व इच्छा त्यागिकरि मौन करै है, तब निर्विशेष भावको प्राप्त होवैगा जैसे मेघ जलका त्याग करि मौन भावको प्राप्त होता है, तैसे तू मोक्षभावको प्राप्त होवैगा. हे रामजी ! जैसे कामी पुरुष स्त्रीको कंठ लगायकरि आनंदवान् होता है, तिसको ऐसा आनंद नहीं होता, जैसा आनंद निर्वासनिक पुरुषको होता है अरु फूलगुच्छेकरि ऐसा वसंतऋतु नहीं शोभता, जैसे उदारबुद्धि आत्मा मौनवान् शोभता है अरु हिमालय पर्वतविषे प्राप्त हुआ भी ऐसा शीतल नहीं होता, जैसा निर्वासनिक पुरुषका मन शीतल होता है, मोतियोंकी मालाकरि अरु केलेके वनको प्राप्त हुआ ऐसे सुखको नहीं पाता अरु चंदनोंके लेप करनेहारा ऐसा शीतल नहीं होता, जैसा शीतल निर्वासनिक मन होता है अरु चंद्रमाको स्पर्शकरि ऐसा शीतल नहीं होता, जैसा निर्वासनिक पुरुष शीतल होता है, चंद्रमा बाहरकी तप्तता मिटाता है, परंतु अंतर तप्तताको निवृत्त नहीं करता अरु निराशताकरिकै अंतरकी तप्तता मिट जाती है, परम शांतिको प्राप्त होता है, जैसी शीतलता निर्वासनिक पुरुषके संगकरि होती है, तैसी और किसी उपायते नहीं प्राप्त होती. हे रामजी ! ऐसा सुख स्वर्गविषे नहीं प्राप्त होता अरु सुंदर स्त्रियोंके स्पर्शकरि भी ऐसा सुख नहीं प्राप्त होता, जैसा सुख निर्वासनिकको प्राप्त होता है, निर्वासनिक पुरुष तिस सुखको प्राप्त होता है, जिस सुखविषे त्रिलोकीके सुख तृणवत् भासते हैं. हे रामजी ! आशारूपी एक करंजुएका वृक्ष है, तिसके काटनेको उपशमरूपी कुहाड़ा है, जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है, तिसको सब पृथ्वी गोपदके समान तुच्छ भासती है अरु मेरु पर्वत एक टूटे वृक्ष समान भासता है अरु दिशा डब्बीके समान भासती हैं. काहेते कि, उत्तम पदको प्राप्त हुआ है, त्रिलोकीकी विभूति तृणकी नाईं तुच्छ देखता है, जो पुरुष निर्वासनिक

हुआ है, सो जगत्को देखिकरि हँसता है अरु कदाचित जगत्के पदार्थोंकी कल्पना नहीं फुरती, तृणवत् जानिकरि जगत्को त्याग दिया है अरु सदा आत्मतत्त्वविषे स्थित है, तिसको उपमा किसकी दीजै ? तिस पुरुषकी उदय अस्त अहं त्वम् आदिक कलना नष्ट हो गई हैं, केवल आत्मभावको प्राप्त हुआ है, तिस ईश्वर आत्माको तोलि कौन सकै ? जब दूसरा उसके समान होवै, तब तोलै. हे रामजी ! वह पुरुष सब संकटोंके अंतको प्राप्त भया है. हे रामजी ! यह जगत् मिथ्या भ्रमरूप है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि भासता है, जैसे भ्रमकरि मरुस्थलविषे नदी भासती है, जैसे मद्यपानकरि नगर भ्रमता भासता है, तैसे यह मिथ्या जगत् भ्रमकरिकै भासता है, इसकी आशा मत कर, तू बुद्धिमान् पंडित है, मूर्खोंकी नाईं मोहको प्राप्त क्यों होता है ? यह मैं, यह मेरा, अज्ञानकरिकै भासता है, इस कलनाको चित्तते दूर कर, यह वास्तव कछु नहीं सब जगत् आत्मारूप है, नानात्व कछु है नहीं, जो सम्यक्दर्शी पुरुष है, सो जगत् एकरूप जानिकरि धैर्यवान् रहता है खेदको कदाचित् प्राप्त नहीं होता. हे रामजी ! जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है अरु आत्मविचारकरि आत्मपदको प्राप्त हुआ है, तिसको देखिकरि मोहनेवारी माया भी भागि जाती है, निकट नहीं आती, जैसे सिंहके निकट मृग नहीं आता, तैसे ज्ञानवान्के निकट माया नहीं आती, सुन्दर स्त्रियां अरु मणि कांचन आदिक धन अरु पत्थर काष्ठ तिसको तुल्य भासता है, भोगोंकरि उसको सुख नहीं होता अरु आपदाकरि खेद नहीं होता, सदा ज्योंका त्यों रहता है, जैसे पर्वत वायुकरि चलायमान नहीं होता, तैसे वह पुरुष सुखदुःखकरि चलायमान नहीं होता, सुन्दर बाल, स्त्री उसके चित्तको खैंच नहीं सकती अरु कामदेवके बाण चलाये उसपर टूक टूक हो जाता है, रागद्वेष उसको खैंचि नहीं सकते, सदा आपको निराकार अद्वैत निष्क्रिय निर्गुण जानता है अरु सुंदर बगीचे ताल वल्ली शय्या इंद्रियोंके विषयभोग अरु दुःख देनेहारे उसको तुल्य है, रागद्वेषको नहीं प्राप्त करते, जैसे पर्वतविषे ऋतुअनुसारकरि मीठे कटु फल होते हैं, सो उसको किसीविषे रागद्वेष नहीं होता, अकस्मात्

जो भोग आय प्राप्त होता है, तिसको भोगता है, परंतु हर्ष शोकवान् नहीं होता. हे रामजी ! यथार्थदर्शी इष्ट अनिष्टविषे चलायमान नहीं होता, जैसे वसंतऋतुके आनेजानेविषे पर्वत सुखदुःखको नहीं प्राप्त होते कर्मइंद्रियोंकरि कर्म करता है, परंतु तिसविषे आसक्त नहीं होता, बाह्य दृष्टिसों आसक्त भासता है, परंतु अंतर आसक्त नहीं होता अरु जो बाह्य आसक्त नष्ट नहीं होता, परंतु अंतर देहविषे चित्त आसक्त है, सो मग्न हो डूबता है, जैसे शुद्धमणि कीचड़विषे दृष्टि आती है, तौ भी तिसको कलंक कछु नहीं अरु जो बीचते खोटी है, बाह्य उज्ज्वल भी भासती है, तौ भी सकलंक है तैसे जो चित्तकारि आसक्त है, सो आसक्त है अरु जो चित्तभावकरि आसक्त नहीं सो आसक्त नहीं. हे रामजी ! आत्मसत्ता सदा प्रकाशरूप है अरु नित्यशुद्ध परम आनंदस्वरूप है, जिस पुरुषको अपने शुद्ध स्वरूपका ज्ञान है, तिसको विस्मरण नहीं होता. हे रामजी ! शरीरसों अहंभाव जिसका उठि गया है, इंद्रियोंकरि कर्म करता है, तौ करता भी नहीं करता अरु जो देहविषे अहंभाव है, सो नहीं करता भी करता है, जैसे किसीको बांधव चिरकालते मिला बहुरि विस्मरण नहीं होता, तैसे अपना स्वरूप जिनने जाना है, तिसको विस्मरण नहीं होता. हे रामजी ! जिनको शुद्धस्वरूपका सम्यक्ज्ञान होता है, तिनको भ्रांतिरूप जगत् नहीं भासता. जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, जब भ्रम निवृत्त हुआ, तब ज्योंकी त्यों जेवरी भासती है, सर्प नहीं भासता, जैसे मरुस्थलविषे जलबुद्धि निवृत्त भई बहुरि जलबुद्धि नहीं होती, तैसे आत्माके जाननेते देहभाव नहीं होता, जैसे पहाड़ते नदी उतरती है, सो बहुरि पहाड़ पर नहीं चढ़ती, जैसे स्वर्णका खोट अग्निकरि जला हुआ बहुरि खोटा नहीं होता, कीचड़विषे डारिये तौ भी खोटा नहीं होता,; तैसे जब हृदयकी चिद्ग्रन्थि टूटी तब गुणोंके व्यवहारविषे भी गांठ नहीं पडती. अर्थ यह कि, बंधवान नहीं होता, जैसे वृक्षते टूटा फल बहुरि नहीं लगता, तैसे जिसका देहाभिमान टूटा है, सो बहुरि नहीं होता है अरु स्वरूपविषे ही अभिमान होता है, जैसे लोहके हथोडेसाथ परका चूर्ण किया, तब बहुरि नहीं फुरता, जिस पुरुषने अविद्याको जाना है सो बहुरि उसकी सङ्गति

नहीं करता, जैसे जिस ब्राह्मणने चण्डालोंकी सभा जानी तब बहुरि उनकी संगति नहीं करते, तैसे जब आत्मविचारकारि मनको चूर्ण किया, तब बहुरि नहीं फुरता, जैसे जिस पुरुषने अविद्यारूप जगत्को जाना है, सो बहुरि जगत्के पदार्थोंविषे आसक्त नहीं होता. हे रामजी ! विष जो मधुर जलसाथ मिला होवै, सो जबलग जाना नहीं, तबलग तिसको पान करता है अरु जब उसको जाना तब बहुरि नहीं पान करता, तैसे जबलग इस संसारको ज्योंका त्यों नहीं जाना, तबलग इसके पदार्थोंकी इच्छा करता है, जब जाना कि, मायामात्र है, तब इसकी इच्छा नहीं करता. हे रामजी ! सुन्दर स्त्रियां जो नानाप्रकारके वस्त्रों भूषण सहित दृष्टि आती हैं, इनको जानता है कि, यह असत् मांस रुधिर आदिकी पुतलियां बनीं हैं और कछु नहीं, ऐसे जानिकरि जो तिनकी इच्छा त्यागता है, सो निवृत्त हो जाता है, जैसे मूर्तिऊपर रंग नील पीत श्याम लिखे होते हैं, तैसे उसके वस्त्र अरु केश हैं. हे रामजी ! जिस पुरुषको आत्माका साक्षात्कार होता है, तिसको अवस्तुविषे वस्तुबुद्धि नहीं होती, अवस्तुविषे वस्तुबुद्धि तब होती है, जब वस्तुका विस्मरण होता है, सो तौ ज्ञानवान्को सदा स्वरूपका स्मरण है, तिसको अवस्तुविषे वस्तुबुद्धि कैसे होवै ? जिसको आत्मबुद्धि हुई है, उसको विस्मरण नहीं होता, जैसे जिस पुरुषने गुड किसीके पास रक्खा होवै अरु वह खाय जावै, तौ उसको दंड आदिक कर्मकरि सकैगा, परंतु उसका रस दूर करनेको समर्थ नहीं, तैसे जिसको आत्माका अनुभव हुआ है, तिसको दूर करनेको कोऊ समर्थ नहीं. हे रामजी ! जैसे परव्यसनी नारी होती है, किसी पुरुषसाथ उसका चित्त लगता है, तब गृहका कार्य भी करती है, परंतु चित्त तिसका सदा उसविषे रहता है, तैसे ज्ञानवान् क्रिया करता है, परंतु तिसका चित्त सदा आत्मपदविषे रहता है, जैसे परव्यसनी नारीको अपना भर्त्ता दंड भी करता है, तौ भी स्पर्शका सुख उसके हृदयते दूर नहीं करि सकता, तैसे जिसको आत्मानुभव हुआ है, तिसके दूर करनेको कोई समर्थ नहीं; देवता दैत्य दूर नहीं करि सकते तौ और की क्या वार्ता है, बडे जो सुख अथवा दुःख अनुभव प्रवाह आनि पडै तौ भी तिसको खण्डन नहीं कर सकते, कर्ता हुआ भी अकर्ता हुआ है,

जैसे परव्यसनी नारी परपुरुषके संयोगकारि दुःख पाती है, परंतु इसको स्पर्शके सुखका अनुभव हुआ है तिसके संकल्पकारि अनुभव अखण्ड करती है, तिसकारि उसको दुःख नहीं भासता, तैसे जिसको आत्मसुख प्राप्त भया है, तिसको दुःख सुख अपर कछु नहीं भासता. हे रामजी ! सम्यक् ज्ञानकारि जिसकी अविद्या नष्ट भई है, सो दुःखोंको नहीं देखता, जो उसके अंग काटे तौ भी दुःख नहीं होता शरीरके नष्ट हुए नष्ट नहीं होता, सुख दुःख उसके नष्ट हो गये हैं, सदा आत्मपदविषे निश्चय रहता है, संकटवान् भी दृष्ट आता है, परंतु तिसको संकट कोऊ नहीं वनविषे रहै अथवा गृहविषे रहै, व्यवहार करै अथवा समाधि करै, वह सदा ज्योंका त्यों रहता है, उसको खेद कष्ट किसी प्रकार नहीं होता.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे निरास्पदमौनविचारो नाम त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः ७४.

मुक्तामुक्तविचारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! राजा जनक राज्यव्यवहार करता रहा, परंतु आत्मपदविषे स्थित था; तिसकारि उसको कलंक न भया, सदा विगतज्वर ही रहा अरु तेरा प्रपितामह जो राजा दिलीप था, सो भी सर्व आरंभोंको करता रहा, परंतु अंतर रागद्वेषको न प्राप्त भया, जीवन्मुक्त होके चिरपर्यंत पृथ्वीका राज्य राजा करत भया अरु राजा अज नाना प्रकारके युद्ध राज्यव्यवहारकी पालना करत भया अरु सदा जीवन्मुक्त स्वभावविषे स्थित भया. राजा मांधाता नानाप्रकारकी युद्धचेष्टा करता रहा, परंतु सदा परमपदविषे निश्चय रहा, कदाचित् मोहको प्राप्त न भया अरु राजा बलि पातालविषे स्थित हुआ, महात्यागी राज्यव्यवहारको करता भी दृष्ट आया, परंतु स्वरूपके ज्ञानकारि सदा शांतरूप जीवन्मुक्त होकरि विचरता भया अरु नभचर दैत्योंका राजा सदा नाना युद्ध आदिक क्रियाविषे रहा, देवताओंके साथ सदा विरोध

रहा, परंतु हृदयविषे कछु ताप न भया अरु इंद्रके युद्धविषे वृत्रासुर दैत्य मारा, परंतु सदा शीतल कदाचित् क्षोभको प्राप्त न भया अरु दैत्योंका राजा प्रह्लाद पातालविषे राज्य करता रहा, परंतु हृदयविषे कछु क्षोभ न भया. हे रामजी ! शम्बर नामक दैत्य अपनी सृष्टिके रचनेको उदय भया, सो तिस रचनेविषे बंधमान न भया, सदा शांबरी मायापरायण भया अरु मायासाथ एक मायावीरूप होकरि स्थित हुआ. हे रामजी ! यह संसार जो शांबरीमायारूप है, तिसका शांबरी त्याग करि अपने स्वरूपविषे स्थित रहे अरु विष्णु भगवान् सदा दैत्योंको मारता है, युद्ध करता रहता है अरु हृदयविषे अलेप बुद्धि है, तिसकरि सदा सुखी जीवन्मुक्त है अरु मूसल नाम दैत्य विष्णुसाथ युद्धकरि शरीरको छांडत भया, परंतु अंतर देहसाथ संबंध कछु न था; तिसकरि जीवन्मुक्त सुखी रहा, पिंडको न प्राप्त भया. हे रामजी ! सर्व देवताओंका मुख अग्नि है, सो यज्ञलक्ष्मीको चिरकालपर्यंत भोगता है, परंतु ज्ञानवान् है, इसकरि क्षोभवान् नहीं होता, सदा शीतल रहता है अरु देवता सदा चंद्रमाकी किरणोंते अमृतपान करते हैं, परंतु चंद्रमाको कछु क्षोभ नहीं होता अरु देवताओंका गुरु बृहस्पति स्त्रीऊपर चंद्रमासाथ युद्ध करता भया अरु देवताके निमित्त नाना प्रकारके कर्म करता है अरु रागद्वेषको नहीं प्राप्त होता, ताते जीवन्मुक्त है. हे रामजी ! दैत्योंका गुरु शुक्रजी, सो दैत्योंके निमित्त सदा यत्न करता रहता है अरु लोभीकी नाईं अर्थको चिंतवता है, परंतु जीवन्मुक्त है, जो अंतर सदा शीतल रहता है, कदाचित् खेदको प्राप्त नहीं होता अरु पवन प्राणियोंके अंगोंको चिरकाल फेरता है, चेष्टा करता है अरु खेदको प्राप्त नहीं होता, ताते जीवन्मुक्त है अरु ब्रह्मा सदा लोकोंको उत्पन्न करता है अरु प्रलयपर्यंत इसकी क्रियाविषे रहता है, परंतु स्वरूपका साक्षात्कार है, ताते जीवन्मुक्त है अरु विष्णु भगवान् युद्धादिक द्वन्द्वोंविषे रहता है; जरा मृत्युआदिक भावको प्राप्त होता है, परंतु सदा मुक्तस्वरूप है अरु सदाशिव त्रिनेत्र है, अर्धांगधारी रहा है, परंतु हृदयविषे संसक्त नहीं ताते जीवन्मुक्त है अरु गौरी मोतियोंकी माला कंठविषे पहरती है,

अरु त्रिनेत्रको सदा मालावत् कंठसाथ रखती है, परंतु अंतरते शीतल रहती है, ताते जीवन्मुक्त है अरु स्वामिकार्तिक दैत्यसाथ युद्ध करता रहा, परंतु ज्ञानरूपी रत्नोंका समुद्र था, अंतरते शीतल रहा अरु सदाशिवका भृंगीगण अपना रक्त मांस माताको देता भया, परंतु धैर्यविषे रहा, खेदको न प्राप्त भया, नाना प्रकारकी क्रिया करता भया, परंतु जीवन्मुक्त है, ताते सदा सुखी है अरु नारद मुनि सदा मुक्तस्वभाव है, सदा जगत्की क्रियाजालविषे रहता है, परंतु क्षोभको नहीं प्राप्त भया, ताते जीवन्मुक्त है अरु जीवन्मुक्तमन मुनि जो विश्वामित्र है सो वेदोक्त कर्म कर्त्ता है अरु फिरता रहता है, ताते जीवन्मुक्त है अरु सूर्य भगवान् दिनको प्रकाश करता है अरु फिरता रहता है, परंतु जीवन्मुक्त है, सदा सुखी रहता है अरु यम सदा जीवोंको दंड करता रहता है अरु क्षोभविषे रहता है, परंतु जीवन्मुक्त है, इंद्र कुबेरते आदि लेकरि त्रिलोकीविषे जीवन्मुक्त हैं, व्यवहारविषे शीतल हैं, कई मूढ शिलावत् हो रहे हैं, कई परमबोधवान् वनविषे जाय स्थित भये हैं, जैसे भृगु भारद्वाज, विश्वामित्र, जाय स्थित भये हैं अरु कई चिरकालपर्यंत राज्य पालना करते रहते हैं, जैसे जनक, मांधाता आदिक करते हैं, कई आकाशविषे बड़ी कांति धारिकारि बृहस्पति, चन्द्रमा, शुक्र, सप्तर्षि आदिक जाय स्थित भये हैं, कई स्वर्गविषे अग्नि, वायु, कुबेर, यम, नारदादिक जाय स्थित भये हैं, कई जीवन्मुक्त पातालविषे प्रह्लादादिक जाय स्थित भये हैं, कई देवतारूप धारिकारि आकाशविषे स्थित हैं, कई मनुष्यरूप धारिकारि मनुष्यलोकविषे स्थित हैं, कई तिर्यग्योनिविषे स्थित हैं, उनको सर्वथा सर्व प्रकार सर्वविषे सर्वात्मारूप भासता है, इतर कछु नहीं, नाना प्रकारका व्यवहार है, सो भी अद्वैतकरि किया. हे रामजी! दिव्य विष्णु कर्त्ता धाता जीव सर्व ईश्वर अरु शिव आदिक सब आत्माके नाम हैं अरु वस्तुरूपविषे जो अवस्तु है अरु अवस्तुविषे जो वस्तु है, सो अवस्तुसों वस्तु तब निकसती है, जब युक्ति होती है अरु वस्तुसों अवस्तु भी युक्तिकरि दूर होती है, जैसे अवस्तुरूप रेत है, तिससों स्वर्ण युक्तिकारि निकसता है अरु वस्तुरूपी सोनेसों मैल युक्तिकरि दूर होता है, तैसे अवस्तुरूप

देहादिकोंविषे वस्तुरूप आत्मा शास्त्रोंकी युक्तिकरि पाता है अरु वस्तुरूप आत्मासों दृश्यरूप अवस्तु भी शास्त्रोंकी युक्तिकरि दूर होती है. हे रामजी ! जो पापते भय करता है, सो जब धर्मविषे प्रवर्तता है, तब निर्भय होता है, तैसे दुःखोंके भयकरिकै जीव आत्मपदकी ओर प्रवर्तता है, तब भावनाके वशते असत्सों सत्को पाता है, ध्यान अरु योग भी शून्य हैं परंतु यत्नके बलकरि तिससों सत् पाता है अरु जो असत् है, सो उदय होकरि सत् भासता है, जैसे बाजीगरकी बाजीसों शशेके सींग भासि आते हैं, तैसे आत्माविषे असद्रूप जो जगत् सो अज्ञानकरि दृढ हो भासता है परंतु कल्पके अंतविषे यह भी नष्ट हो जाता है. हे रामजी ! यह जो सूर्य चन्द्रमा इन्द्रादिक हैं, तिनके नाम भिन्न रहैंगे अरु बडे सुमेरु आदि पर्वत अरु समुद्र आदिक सब नाश हो जावैंगे जेते कछु भाव पदार्थ तुझको भासते हैं, उत्तम मध्यम कनिष्ठ सो सब नाश हो जावैंगे; सब मायामात्र हैं; कोई नहीं रहेगा, ऐसे विचार करिकै इनके भाव अभावविषे हर्षशोक मत कर अरु समताभावको प्राप्त होहु. हे रामजी ! जो असत् है, सो सत्यकी नाईं भासता है अरु जो सत् है सो असत्की नाईं भासता है, ताते यथार्थ विचारकरि सत्रूप आत्मपदविषे स्थित होहु अरु असत्रूप जगत्की आस्थाको त्यागि समता भावको ग्रहण कर, इस लोकविषे जो अविवेकमार्गविषे विचरता है सो मुक्त नहीं होता, इस प्रकार कोटि जीव संसारसमुद्रविषे डूबते हैं अरु जो विवेकविषे प्रवर्तता है सो मुक्त होता है. हे रामजी ! जिसका मन क्षय हुआ है, तिसको मुक्तरूप जान अरु जिसका मन क्षय नहीं भया सो बन्धनविषे है, ताते जिसको सर्व दुःखोंते मुक्तिकी इच्छा होवै सो आत्मविचार करै, तिसकरि सर्व दुःखनाश हो जावैंगे. हे रामजी ! दुःखोंका मूल चित्त है, जबलग चित्त है तबलग दुःख है जब चित्त नष्ट हो जाता है, तब दुःख सब मिटि जाते हैं. हे रामजी ! जब आत्मज्ञान होता है तब चित्तका अभाव हो जाता है अरु दुःख सब मिटि जाते हैं अरु राग इच्छा भय सब मिटि जाते हैं केवल शांतरूप होता है, जनक आदिक जो जीवन्मुक्त हुए हैं, सो निराग निःसन्देह होकरि महाबोधवान् व्यवहार भी करते रहे, परंतु सदा

शीतलचित्त रहे हैं, ताते तू भी विवेककरि चित्तको लीन कर, ढलोहर बंटा पत्थर अरु स्वर्ण सम जीवन्मुक्त होकारि विचर. हे रामजी! मुक्ति भी दो प्रकारकी है, एक जीवन्मुक्ति है एक विदेहमुक्ति है, जो पुरुष सर्व पदार्थोंविषे असंसक्त है अरु मन शांतभावको प्राप्त हुआ है, सो मुक्त कहाता है अरु जिस पुरुषका सर्व पदार्थोंका ज्ञानकरि स्नेह नष्ट भया है अरु व्यवहार करता दृष्टि आता है तौ भी शीतलचित्त है सो जीवन्मुक्त कहाता है, जो पुरुष सर्व भाव अभाव पदार्थोंको त्यागिकरि केवल अद्वैततत्त्वको प्राप्त हुआ है अरु शरीर आदिक क्रिया कोऊ दृष्ट नहीं आती सो विदेहमुक्त कहाता है अरु जो तीसरा है, जिसका स्नेह पदार्थोंते दूर हुआ नहीं सो बंध कहाता है, मुक्तिके अर्थ भी यत्न करता है, जब युक्तिपूर्वक यत्न करता है, तब दुस्तर भी सुगम हो जाता है अरु जो युक्तिते रहित यत्न करता है, तिसको गोपद भी समुद्र हो जाता है. हे रामजी! जिनने आत्मकारि आत्मविचार किया है, तिनको विस्तृत जगत् समुद्र गोपद हो जाता है अरु अज्ञानीको गोपद भी दुस्तर हो गया है, कोऊ इष्ट अनिष्ट अल्प भी आनि प्राप्त होता है; तिसविषे डूबि जाता है, निकस नहीं सकता, तिसको गोपद भी समुद्र है अरु ज्ञानीको अत्यंत विभूति ऐश्वर्य आनि प्राप्त होवै अथवा विपर्यय तिसका अभाव हो जावै, तौ भी तिसविषे रागद्वेषकारि नहीं डूबता. हे रामजी! जिसको कछु प्राप्त होवै सो अपने प्रयत्नके बलकारि होती है, जो कोऊ प्रधान हुआ है, सो प्रयत्नरूपी वृक्षके फलकरि हुआ है, आत्मपदकी प्राप्ति भी प्रयत्नरूपी वृक्षका फल है ताते और उपाय त्यागिकरि आत्मपदकी प्राप्तिका प्रयत्न कर.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे मुक्तामुक्तविचारो नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

पंचसप्ततितमः सर्गः ७५.

संसारसागरयोगोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जेती कछु जगज्जाल है सो सब आत्मा ब्रह्मका आभासरूप है, अज्ञानकरि स्थिरताको प्राप्त हुआ है, विवेककरि शांति हो जाती है, ब्रह्मरूपी समुद्रविषे जगतरूपी आवर्त फुरते हैं तिनकी संख्या करनेको कोऊ समर्थ नहीं, आत्मरूपी सूर्यके जगत्‌रूपी त्रसरेणु हैं. हे रामजी! असम्यक् दर्शन जगत्‌की स्थितिका कारण है अरु सम्यक् दर्शनकरि शांत हो जाता है, जैसे मरुस्थलविषे असम्यक् दर्शनकरि जल भासता है, सम्यक् दृष्टिकरि अभाव हो जाता है. हे रामजी! संसाररूपी समुद्र अपार घोररूप है, सो शास्त्र युक्ति अरु आत्माभ्यास विना तरना कठिन है, मोहरूपी जलकरि पूर्ण है अरु मरणरूपी आवर्त है अरु पुण्यरूपी जग है अरु वडवाग्नि इसके अंगोंविषे नरक समान है अरु तृष्णारूपी घूमरघेर है अरु इंद्रियां मनरूपी तंदुल मच्छ हैं, क्रोधरूपी सर्प हैं, तिनविषे जीवरूपी नदियां हैं, सो प्रवेश करती हैं, जन्ममरणरूपी वृत्तचक्र हैं, तिनको जो तरि जाता है, सो पुरुष है अरु स्त्रियां जो सुन्दर लगती हैं, सो महाबलवंत हैं, नेत्र जिनके पहाड़के खैंचनेविषे समर्थ हैं कमलकी नाईं अरु दंत मोतियोंकी नाईं हैं, होठ तरियांवत् हैं, इत्यादिक जो सुंदर अंग हैं, सो महादुःखके देनेहारे हैं, वडवाग्निकी नाईं हैं, जो इनको तरि जाता है, सोई पुरुष है. हे रामजी! जो जहाज अरु मल्लाह होते हैं, तौ भी इनको नहीं तरता, तिसको धिक्कार है, जहाज अरु मल्लाह कौन हैं, सो श्रवण कर, मनुष्यशरीरविषे कछु विचारसहित बुद्धि है, सो जहाज है अरु संतरूपी मल्लाह हैं, इनको पाइकरि जो संसारसमुद्रको नहीं तरते तिनको धिक्कार है, ऐसे संसारसमुद्रको ग्रहणकरि जो तरि गया है, तिसको पुरुष कहते हैं. हे रामजी! जिस पुरुषने आत्मविचारविषे बुद्धिको लगाई है, सो तरि जाता है, अन्यथा तरि नहीं सकता, जिसको आत्माभ्यास दृढ भया है, सो तरनेको समर्थ होता है. हे रामजी! प्रथम

आर्जव सो ज्ञानवान् पुरुषोंके साथ विचार अरु बुद्धिकारि संसारसमुद्रको देखौ, जब तैंने इसको ज्योंका त्यों जाना तब तू विलासक्रीडा करने-योग्य होवैगा. हे रामजी! तू तौ भगवान् है, परंतु बोधके विचारकारि संसारसमुद्रको तरि जाउ, तू तौ जवान है, तेरे पाछे और तेरे स्वभावको विचारिकारि संसारसमुद्रको तरि जावैंगे अरु जो इस शुभ मार्गको त्यागिकारि विषयमार्गको धारते हैं, सो संसारसमुद्रविषे डूबे हैं. हे रामजी! यह जो विषयभोग हैं, सो विषरूप हैं, जो इनको सेवैगा सो नष्ट होवैगा, परंतु जिसको ज्ञान प्राप्त हुआ है तिसको यह जैसे गरुड़-मंत्र पढ़नेवालेको सर्प दुःख नहीं दे सकते, तैसे दुःख दे नहीं सकते, जिसका परिणाम शुद्ध हुआ है, सो विभूतिमान् है, बल बीर्य तेज यह तीन तत्त्वोंके साक्षात्कारकारि चढ़ि आते हैं; जैसे वसंतऋतुके आयेते रस फूल फल सब सुन्दर हो आते हैं. हे रामजी! जो ज्ञानकी धर्म-लक्ष्मी प्राप्त भई सो पूर्ण अमृततुल्य है, शीतल शुद्ध सम प्रकाशरूप है, लक्ष्मीको पाइकारि विदितवेद्य स्थित हो रहते हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे संसारसागरयोगोपदेशो नाम पञ्चसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः ७६.

जीवन्मुक्तवर्णनम्।

राम उवाच-हे मुनीश्वर! संक्षेपते तत्त्ववेत्ताके लक्षण बहुरि कहो जिनको तत्त्वका चमत्कार हुआ है, तिनकी उदार वाणीकारि वृत्ति कहौ, ऐसे कोन हैं, जो तुम्हारे वचन सुनते तृप्त होवैं?. वसिष्ठ उवाच-हे राम-जी! जीवन्मुक्तके लक्षण मैं तुझको बहुत प्रकार आगे कहे हैं, बहुरि भी सुन. हे महाबाहो! संसारको ज्ञानवान् सुषुप्तिकी नाईं जानता है अरु सब ईषणा तिसकी नष्ट हो गई हैं अरु सब जगत्को आत्मारूप देखता है, केवल भावको प्राप्त होता है अरु संसार सुषुप्तिरूप हो जाता है, आत्मा-नंदविषे घूर्म रहता है, देता है, परंतु अपने जाननेकारि किसीको नहीं

देता अरु लोकदृष्टिकरि प्रत्यक्ष हाथोंहाथ ग्रहण करता है, परंतु अपनी दृष्टिकरि कछु नहीं लेता, ऐसा जो आत्मदर्शी ज्ञानवान् उदारात्मा है सो यंत्रकी पुतलीवत् चेष्टा करता है, जैसे यंत्रकी पुतली अभिमानते रहित चेष्टा करती है, तैसे ज्ञानवान् अभिमानते रहित चेष्टा करता है, देखता है; हँसता है, लेता है, देता है, परंतु अंतरते सदा शीतलबुद्धि रहता है, भविष्यका कछु विचार नहीं करता अरु भूतका चिंतवन नहीं करता अरु वर्त्तमानविषे स्थिति नहीं करता, सर्व कार्योंविषे अकर्त्ता है, संसारकी ओरते सोई रहा है, आत्माकी ओरते जाग्रत् है, अंतरते सर्वका त्याग किया है, बाह्य सर्व कार्योंको करता है, अंतर किसी पदार्थकी इच्छा नहीं अरु बाह्य जैसे प्रकृत आचार आनि प्राप्त होता है, अभिमानते रहित तैसे करता है, दोष किसी विषे नहीं करता, सुखदुःखविषे पवनकी नाईं होता है, भ्रमको त्यागिकरि सर्व कार्य कर्मोंको करता है, उदासीकी नाईं न किसीकी वांछा है, न किसीविषे खेदवान् है, बाह्यते सब कछु कर्त्ता दृष्टि आवै, अन्तरते सदा असंग है. हे रामजी ! भोक्ताविषे भोक्ता है, अभोक्ताविषे अभोक्ता है, मूर्खौंविषे मूर्खवत् स्थित है, बालकोंविषे बालकवत् स्थित है, वृद्धविषे वृद्धवत्, धैर्यवान्‌विषे धैर्यवान् स्थित है, सुखविषे सुखी है, दुःखविषे धैर्यवान् है, अरु सदा पुण्यकर्त्ता बुद्धिमान् है, सदा प्रसन्न मधुर वाणीसंयुक्त है अरु अंतरते सदा तृप्त है, दीनता तिसकी निवृत्तभई है, सर्वथा कोमलस्वभाव है, चंद्रमाकी नाईं शीतल है, पूर्ण शुभ कर्म करनेविषे कछु अर्थ नहीं, अशुभविषे कछु पाप नहीं ग्रहणविषे ग्रहण नहीं न त्यागविषे त्याग है, न बंध है, न मुक्त है, न आकाशविषे कार्य है, न पातालविषे कार्य है, यथावस्तु यथादृष्ट आत्माको देखता है, द्वैतभाव तिसको कछु नहीं फुरता अरु बंध मुक्तके निमित्त कछु कर्तव्य नहीं, सर्व संदेह सम्यक्‌ज्ञानकरि जलि गये, जैसे पेटीते मुक्त हुआ पक्षी आकाशमें उडता है, तैसे शंकाते रहित चित्त उनका आत्मा आकाशको प्राप्त हुआ है. हे रामजी ! जिसका मन संसारभ्रमते मुक्त हुआ है अरु समरस आत्मभावविषे स्थित भया है, तिसको इष्ट अनिष्टविषे कछु राग द्वेष नहीं होता आकाशकी नाईं सब-

विषे सम रहता है, जैसे पिंगुडेविषे बालक अभिमानते रहित अंगोंको हिलाता है, तैसे ज्ञानीकी चेष्टा अभिमानते रहित होती है, जैसे मद्यपान करनेवाला उन्मत्त हो जाता है, तैसे आत्मानंदविषे ज्ञानी घूर्म हो जाता है, द्वैतकी संभाल तिसको कछु नहीं, हेयोपादेय बुद्धिते रहित होता है. हे रामजी ! सर्वको सर्व प्रकार ग्रहण करता है अरु त्याग भी करता है, परंतु अंतरते ग्रहण त्याग कछु नहीं करता, जैसे बालकोंको ग्रहणत्यागकी बुद्धि नहीं होती, तैसे ज्ञानीको नहीं होती, उसको सर्व कार्योंविषे राग द्वेष नहीं फुरता, जगत्के पदार्थोंको न सत् जानिकरि ग्रहण करता है, न असत् जानिकरि त्याग करता है, सर्वविषे एक अनुस्यूत आत्मतत्त्व देखता है, न इष्टविषे सुखबुद्धि करता है, न अनिष्टविषे दोषबुद्धि करता है. हे रामजी ! जो सूर्य शीतल हो जावै अरु चंद्रमा उष्ण हो जावै, अग्नि अधःको धावै, तौ भी ज्ञानीको कछु आश्चर्य नहीं भासता है, सब चिदात्माकी शक्ति फुरती है, न किसीपर दया करता है, न अदया है, न लज्जा करता है, न अलज्जा करता है, न दीन होता है, न उदार होता है, न सुखी होता है, न दुःखी होता है, न हर्ष है, न उद्वेग है सर्व विकारोंते रहित शुद्ध अपने आपविषे स्थित है, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे निर्मल भावविषे स्थित है. जैसे आकाशविषे अंकुर नहीं उदय होता, तैसे उसको रागद्वेष नहीं उदय होते. हे रामजी ! ऐसा पुरुष सुखदुःखको कैसा ग्रहण करै, उसको जगज्जाल ऐसे भासता है, जैसे जलविषे तरंग होता है, ऐसे जानिकरि तू भी अपने स्वभावविषे स्थित होउ. हे रामजी ! स्वप्नविषे एक निमेषकरि स्वप्नसृष्टि फुरि आती है अरु क्षणविषे नष्ट हो जाती है, तैसे जाग्रत्विषे सृष्टि उपजि आती है अरु लीन हो जाती है, जेती कछु इच्छा अनिच्छा दुःखसुख शोक मोह आदिक विकार हैं, सो सब मनविषे फुरते हैं, जहां मन होता है, तहां विकार भी होता है, जैसे जहां समुद्र होता है, तहां तरंग भी होता है, तैसे जहां मन होता है, तहां विकार भी होता है, जहां चित्तका अभाव है, तहां विकारोंका भी अभाव है, जबलग चित्त फुरता है, तबलग जगद्भ्रम होता है, जब विचाररूपी सूर्यके तेजकरि मनरूपी बर्फका

पुतला गलि गया, तब आनन्द हुआ, तब सुखदुःखकी दशा शांत होजाती है जब सुखदुःखका अभाव हुआ, तब ग्रहण त्याग मिटि जाता है,इष्ट अनिष्ट वांछित नष्ट हो जाते हैं, जब यह नष्ट हो जाते हैं तब शुभ अशुभ भी नहीं रहता जब शुभ न रहे, तब रमणीय अरमणीय भी नष्ट हो जाता है अरु भोगोंकी इच्छा भी नष्ट हो जाती है, जब भोगोंकी इच्छा नष्ट हो जाती है, तब मन भी निराशपदविषे लीन हो जाता है. हे रामजी! जब मूलसहित मन नष्ट भया, तब मनविषे जो संसारके संकल्प सो कहां रहैं. जैसे तिलोंके जलेते तेल नहीं रहता, तैसे मनविषे संकल्प विकल्प नहीं रहते, तब केवल शांत आत्मा शेष रहता है, जैसे मंदराचलके क्षोभ मिटेते क्षीरसमुद्र शांतिमान् होता है, तैसे चित्त शांत होता है. हे रामजी! ताते भावविषे अभावकी भावना दृढ करहु अरु स्वरूपका अभ्यास करहु, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे कलनाको त्यागिकरि महात्मा पुरुष निर्मल हो जाता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे जीवन्मुक्तवर्णनं नाम षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः ७७.

जीवन्मुक्तज्ञानबंधवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जैसे जलविषे द्रवताकरिकै चक्र आवृत होते हैं, सो असत् ही सत् होकरि भासते हैं, तैसे चित्तके फुरनेकरि असत् जगत् सत् हो भासता है, जैसे नेत्रोंके दूखनेकरि आकाशविषे तरुवरे मोरके पुच्छवत् मुक्तमाला हो भासते हैं, सो असत् ही सत् भासते हैं, तैसे चित्तके फुरणेकरि जगत् भासता है. जैसे बादलोंके चलनेकरि चन्द्रमा धावता दृष्टि आता है, तैसे चित्तके फुरणेकरि जगत् भासता है. राम उवाच–हे भगवन्! जिसकरि चित्त फुरता है अरु जिसकरि अफुर होता है, सो प्रकार कहौ, जिससे तिसका उपाय करौं. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जैसे बर्फविषे शीतलता होती है अरु तिलोंविषे

तेल होता है अरु फूलोंविषे सुगंध होता है, अग्निविषे उष्णता होती है; तैसे चित्तविषे फुरना होती है, चित्त अरु फुरना दोनों एक वस्तु अभेद हैं दोनोंविषे जब एक नष्ट होवै, तब दोनों नष्ट हो जावैं, जैसे शीतल अरु श्वेतताके नष्ट हुए बर्फ नष्ट हो जाता है, तैसे एकके नाश हुए दोनों नाश हो जाते हैं, सो चित्तके नाशके दो क्रम हैं, योग अरु ज्ञान, योग कहिये चित्तकी वृत्तिका निरोध करना अरु ज्ञान कहिये सम्यक् विचारना. राम उवाच-हे भगवन्! वृत्तिका निरोध किस युक्तिकरि होता है, प्राण और अपान पवनका रोकना कैसे होता है? जिस योगकरि अनंत सुखसंपदा प्राप्त होती है. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! इस देहविषे जो नाड़ी हैं, तिनविषे प्राणवायु फिरता है, जैसे पृथ्वीऊपर नदियोंका जल फिरता है, सो प्राणवायु एक है, स्पंदके वशते नाना प्रकारकी विचित्र क्रियाको प्राप्त होता है, तिसकरि अपान आदिक संज्ञाको पाता है, योगीश्वर कल्पते हैं, जैसे पुष्पविषे सुगंध अभेदरूप है अरु बर्फविषे शीतता अभेद है, आधार आधेय एकरूप हैं, तैसे प्राण अरु चित्त अभेदरूप हैं, जब अंतर प्राणवायु फुरता है, तब चित्तकला फुरती है, फुरिकरि संकल्पके सम्मुख होती है, तिसका नाम चित्त कहाता है, जैसे जल द्रवीभूत होता है, तिसविषे लहरीचक्र फुरि आते हैं, तैसे प्राणोंकरि चित्त फुरि आता है, चित्तके फुरनेका कारण प्राणवायु है, जब प्राणवायुका निरोध होता है, तब निश्चयकरि मन भी शांत होता है, सो मनके लीन हुए संसार भी लीन हो जाता है, जैसे सूर्यप्रकाशके अभाव हुए रात्रिविषे मनुष्योंका व्यवहार शांत हो जाता है. राम उवाच-हे भगवन्! यह जो दिन अरु रात्रि निरंतर आगमन करते हैं, देहरूपी गृहविषे प्राणवायुका रोकना किस प्रकार होता है? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! संतजनोंका संग अरु सत् शास्त्रका विचार अरु विषयते वैराग्य तिसकरि योग्य अभ्यास होता है, प्रथम जगत्विषे असत् बुद्धि करनी अरु वांछित जो अपना इष्ट देव है, तिसका ध्यान करना जब चिरकाल ध्यान करता है, तब एक तत्त्वका अभ्यास होता है, तिसकरि प्राणोंका स्पंद रोका जाता है, रेचक पूरक कुंभक जो प्राणयाम

हैं, जब अखेदचित्त होकरि अभ्यास दृढ़करता है अरु एकध्यान संयुक्त होता है, तिसकरि भी प्राणोंका स्पंद रोंका जाता है; उकारका उच्चार करना, ऊर्ध्व तिसकी जो सूक्ष्म ध्वनि होती है, प्रथम शब्द बडी ध्वनिसों होता है, सूक्ष्म ध्वनि शेष रहती है, तिसविषे चित्तकी वृत्तिको लगावनी, तब सुषुप्तिरूप अवस्थाविषे वृत्ति तद्रूप हो जाती है, तब प्राणस्पंद रोंका जाता है अरु रेचक प्राणायाम जो करता है, तिसके अभ्यासकरि विस्तृत प्राणवायुसों शून्यभाव आकाशविषे जाय लीन होता है, तब प्राणस्पंद रोका जाता है अरु कुंभककरि जो प्राणवायुको अभ्यासके बल स्थित करना, तब प्राणवायु रोंका जाता है अरु तालु मूलसाथ यत्नसों जिह्वाको ताल घंटासाथ लगानी, इस खेचरी मुद्राकरि वायु ऊर्ध्वरंध्रको जाता है, ऊर्ध्वरंध्रविषे गया भी प्राणवायुका स्पंद रोका जाता है अरु जो द्वादश अंगुलपर्यंत नासिकाके अग्रविषे अपानरूपी चंद्रमाका निर्मल स्थान आकाशमें है, तिसका देखना ज्योंका त्यों होवै, तौ भी प्राणस्पंद रोंका जाता है, तालुके द्वादश अंगुल ऊर्ध्वरंध्रका अभ्यास होवै, तिसके अंतविषे जब प्राणोंको लगावैं, तब तिस संवित्‌विषे प्राणोंका फुरणा नष्ट हो जाता है अरु जो भव-मध्य त्रिपुटीविषे और प्रकाशको त्यागिकरि तिसविषे चेतसकला रहती है, तहां वृत्तिको जोडै वृत्तिको जोड़ते प्राणकला रोंकी जाती है अरु जो सर्व वासनाको त्यागिकरि हृदय आकाशविषे चेतनसंवित्‌का ध्यान करै, तौ भी चिरकालके अभ्यासकरि ऐसे प्राणस्पंद रोंका जाता है. राम उवाच—हे भगवन् ! जगत्‌के भूतोंका हृदय किसको कहते हैं, जिस महाआदर्शविषे सर्व पदार्थ प्रतिबिंबित हो जाते हैं. वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! जगत्‌के भूतके दो हृदय हैं, एक ग्रहण करने योग्य है, एक त्यागने योग्य है, तिसका भेद सुन, नाभिते जो देहविषे दश अंगुल ऊर्ध्व है सो त्यागने योग्य है परिच्छिन्न भावकरिकै देहके एक स्थानविषे स्थित है अरु तिसविषे जो संवितमात्र ज्ञानस्वरूप अनुभवकरि प्रकाशता है सो मनुष्यको ग्रहण करने योग्य है; जो अंतर बाहिर व्याप रहा है अरु वास्तव अंतर बाहिरते भी रहित है, सो प्रधान हृदय है अरु सर्व पदार्थोंका

प्रतिबिंब धरनेहारा आदर्श है, सर्व संपदाका भंडार है, सो सर्व जीवोंका संवित् हृदय है, एक अंगका नाम हृदय नहीं, जैसे जलविषे एक पत्थर पुरातन पड़ा होवे, सो जल नहीं हो जाता, तैसे संवित्मात्रके निकट संवित्मात्र तौ नहीं होता, यह जड़रूप है, आत्मा चेतन आकाश है सो यह प्रधान हृदय है; ताते बलकारिकै संवित्मात्रकी ओर चित्तको लगावहु, तब प्राणस्पंद भी रोका जावैगा. हे रामजी! यह प्राणोंका रोकना मैंने तुझको कहा है और भी शास्त्रोंविषे अनेक प्रकार करि कहा है, जिस जिस प्रकार गुरुके मुखते श्रवण किया है, तिसी प्रकार अभ्यास करे, तब प्राणोंका निरोध होता है, गुरुके उपदेशते अन्यथा सिद्ध नहीं होता जिसको अभ्यासकरिकै निरोध सिद्ध भया है, सो कल्याणमूर्ति है और कल्याणमूर्ति नहीं होता. हे रामजी! अभ्यासकरिकै प्राणायाम होता है अरु वैराग्यकी दृढताकरिकै वासनायाम होता है, अर्थ यह कि, वासना रोकी जाती है, जब दृढ अभ्यास करै, तब चित्त अचित्त हो जाता है. हे रामजी! भ्रुकुटीके दश अंगुलपर्यंत जो वायु जाता है, तिसका वारंवार जब अभ्यास करता है, तब क्षीण हो जाता है अरु खेचरी मुद्राते तालुसाथ जिह्वा लगाइकरिकै जो अभ्यास करै तौ भी प्राण रोके जाते हैं, इसके अभ्यासकरि चित्तकी व्याकुलता जाती रहती है, परम उपशमको प्राप्त होता है, यह पुरुष आत्मारामी होता है सब शोक दूरि हो जाते हैं, अंतर आनंदकी प्राप्ति होती है, ताते तू भी अभ्यास कर. जब प्राणस्पंद मिट जाता है, तब चित्त भी स्थित हो जाता है; तिसके पाछे जो पद है, सो निर्वाणरूप है. हे रामजी! जब प्राणस्पंद मिटि जाते हैं, तब चित्त भी स्थित हो जाता है, जब चित्त स्थित हुआ तब वासना नष्ट हो जाती है, जब वासना नष्ट हो जाती है, तब मोक्षकी प्राप्ति होती है, जबलग चित्त वासनाकरि लपेटा है; तबलग जन्ममरणको देखता है, जब मन वासनाते रहित होता है, तब मोक्ष होता है. हे रामजी! प्राणवायुको रोककरि वासनाते रहित हुआ, जहां तेरी इच्छा होवे तहां विचर, तुझको बंधन न होवैगा; जब प्राण फुरता है, तब मन उदय होता है, जब मन उदय हुआ तब संसारभ्रम होता है, जब मन क्षीण

होता है, तब संसारभ्रम नष्ट हो जाता है. हे रामजी ! जब मनसों संसारकी वासना कलना मिटि जाती है; तब अशब्दपद प्राप्त होता है, तिसते यह सर्व है अरु जो यह सर्व है अरु जिसते न सर्व है अरु जो न सर्व है अरु जो न सर्वविषे है, जिसविषे न यह सर्व है, ऐसा जो निर्गुण तत्त्व है, सो सर्व कलनाके त्यागते प्राप्त होता है, तिसको उपमा किसकी दीजै ? आत्मा अविनाशी निर्विकल्प निर्गुण है, यह जगत् नाशरूप संकल्पके रचित गुणरूप तिसको किस पदार्थसाथ दृष्टांत दीजै ? अर्थ यह कि; दूसरा कछु नहीं, जेते कछु स्वाद हैं, तिनको स्वादकर्ता वही है अरु जेते प्रकाश हैं, तिनको प्रकाश कर्ता वही है, सर्वकलनाका कलनारूप वही है, जेते कछु पदार्थ हैं, तिन सबनका अधिष्ठानरूप वही है, सो चित्त अरु आवरणके दूर हुए प्राप्त होता है, अरु सर्व पदार्थोंकी सीमा वही है, ऐसा जो आत्मारूप चंद्रमा शीतल है, जब तिसविषे बुद्धिमान् स्थित होता है, तब जीवन्मुक्त कहाता है अरु सर्व इच्छा आश्चर्य नष्ट हो जाता है, अहं त्वम् आदिक कल्पना मिटि जाती हैं, सर्व व्यवहार विस्मरण होता है, ऐसा जो मुक्तमन है, सो पुरुषोत्तम होता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे जीवन्मुक्तज्ञानबंधो नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः ७८.

सम्यग्ज्ञानवर्णनम् ।

राम उवाच–हे प्रभो ! योगीकी युक्ति तुमने कही, जिसकरि चित्त उपशम होता है, अब सम्यक् ज्ञानका लक्षण भी कृपा करि कहौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! यह निश्चय है, कि आत्मा आनंदरूप, आदिअंतते रहित प्रकाशरूप सर्व परमात्मा तत्त्व है, इस निश्चयको सम्यक् ज्ञान बुद्धीश्वर कहते हैं अरु यह जो घटपटादिक अनेक पदार्थशक्ति हैं, सो सब आत्मा परमानंदरूप हैं, तिसते इतर नहीं, ऐसा जो देखना है, सो

सम्यक् देखना है, सर्वात्मा है, नित्यशुद्ध है, परमानंदस्वरूप है, सदा अपने आपविषे स्थित है, ऐसा निश्चय सम्यक् ज्ञान है अरु जो इसते इतर होवै, सो असम्यक् ज्ञान है. हे रामजी ! सम्यक्दर्शीको मोक्ष है, असम्यक्दर्शीको बंध है तिसको आत्मा जगत्‌रूप भासता है, सम्यक् दर्शीको केवल आत्मा भासता है. जैसे जेवरीविषे असम्यक्दर्शीको सर्प भासता है सम्यक्दर्शीको जेवरी भासती है, सर्व संवेदन संकल्पते रहित शुद्ध संवित परमात्मा है तिसको जो जानता है, सो परमात्माके जानने-वाला बुद्धीश्वर है,इसते इतर है, सो अविद्या है.हे रामजी!आत्मतत्त्व सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे द्वैतकलना कोई नहीं,ऐसा जो यथार्थ-दर्शी है, सोई सम्यक्दर्शी है,सर्व आत्मा पूर्ण है भावअभाव बंधमोक्ष कोई नहीं, न एक है, न द्वैत है, ब्रह्म ही अपने आपविषे स्थित है, जो सर्व चिदाकाश है, तौ बंध कौनको कहिये अरु मोक्ष कौनको कहिये, ऐसा जिनको ज्ञान है, तिनको काष्ठ पाषाणब्रह्माते चेटीपर्यंत सब सम भासता है, अल्पमात्र भेद भी नहीं भासता, कल्पनाके सम्मुख कैसे होवै ? हे रामजी ! वस्तुके आदि अंत जो अन्वय व्यतिरेक करिकै आत्मा सिद्ध होता है, अर्थ यह जो पदार्थ है सो है, तौ भी आत्मसत्ताकरि सिद्ध होता है अरु जो पदार्थका अभाव हो जाता है तौ भी आत्मसत्ता शेष रहती है तू तिस परायण होउ,जो अविनाशी अनुभव धारि तिसविषे स्थित होउ वही अनुभवसत्ता जगत्‌रूप होकरि भासती है,जरामरण आदिक जो नाना प्रकारके विकार वस्तुरूप भासते हैं, सो वस्तु अपने आपविषे फुरती है, जैसे जलविषे द्रवताकरिकै नाना प्रकारके तरंग बुद्‌बुदे होते हैं,सो जलरूप हैं इतर कछु नहीं, तैसे चित्तके फुरनेकरि नाना प्रकारके पदार्थ भासते हैं, सो आत्मरूप हैं, इतर कछु नहीं, आत्मतत्त्व ही अपने आपविषे स्थित है जब तिसविषे स्थित होता है, तब बहुरि दीन नहीं होता, जो पुरुष दृढ विचारवान् है, सो भोगोंकरि चलायमान नहीं होता, जैसे मंद पवनकरिकै मेरुपर्वत चलायमान नहीं होता अरु जो अज्ञानी हैं विचारते रहित मूढ हैं, तिनको भोग ग्रासि लेते हैं, जैसे जलते रहित

मच्छीको बगला ग्रासि लेता है अरु जिसको सर्व आत्मा ही भासता है, सो सम्यक्दर्शी पुरुष कहाता है, वही मुक्तरूप है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सम्यक्ज्ञान-
वर्णनं नामाष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमः सर्गः ७९.

चित्तोपशमयोगवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! जो विवेकी पुरुष भोगोंके निकट आय प्राप्त होता है, तौ भी इच्छा नहीं करता काहेते कि, अर्थबुद्धि ही तिसविषे कछु नहीं, जैसे सुन्दर कमलिनी चित्रकी लिखी हुई के निकट भँवरा आनि प्राप्त होता है, तौ भी इच्छा नहीं करता; तैसे विवेकी भोगोंविषे अर्थबुद्धि नहीं करता. हे रामजी ! सुखदुःखकी प्राप्ति अरु निवृत्तिविषे इच्छा तबलग होती है, जबलग देहाभिमान होता है, जब देहाभिमान निवृत्त हुआ, तब कछु इच्छा नहीं होती. हे रामजी ! ममताकरिकै दुःख होता है, जब रूपको नेत्र देखते हैं, तिसको इष्ट मानिकरि प्रसन्न होते हैं अरु अनिष्ट मानिकरि दोष करते हैं, जैसे बलद भारवाहक चेष्टा करता है तिसको लाभ टोटा कछु नहीं होता, जिसको उसविषे ममत्व होता है, वह लाभ टोटेका शोक करता है, तैसे यह ममत्वकरि इंद्रियोंके विषयोंमें हर्ष शोकवान् होता है, जैसे गर्दभ कीचड़विषे डूबै अरु राजा शोक करता है कि, मेरे नगरका गर्दभ डूबा है, तैसे यह ममत्वकरिकै इंद्रियोंके विषयोंमें दुःख पाता है, नहीं तौ गर्दभ कीचड़विषे डूबेते राजाका क्या नष्ट होता है ? हे रामजी ! यह इंद्रियां तौ अपने विषयोंको ग्रहण करती हैं, इसविषे जीव तपायमान होता है, सो आश्चर्य है अरु इन विषयोंकी यह चेष्टा इच्छा करते हैं, सो क्षण क्षणविषे नष्ट हो जाते हैं. हे रामजी ! जो मार्गविषे किसीसाथ स्नेह हो जाता है, तौ प्यार ममत्वकरि दुःख होता है, तब जो देहविषे ममत्व करैगा, तिसको दुःख क्यों नहीं होवैगा, भावै कैसा बुद्धिमान् होवै, शूरमा होवै, तौ भी संगकरि बंधमान होता है.

अर्थ यह कि, इंद्रियोंकी विषयोंका अहंभावकरि ग्रहण करैगा, तौ तिनके नाश होनेकरि यह भी नाश होवैगा, जिन नेत्रोंका विषय रूप है, सो नेत्र साक्षी होकरि रूपको ग्रहण करते हैं अरु ऐसा मूर्ख है, जो औरोंके धर्म आपविषे मानि लेता है अरु तिनविषे तपायमान होता है, जैसे भ्रमदृष्टिकरिकै आकाशविषे मोरपुच्छवत् तरुवरे भासते हैं अरु दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे मूर्खताकरिकै इंद्रियोंके धर्म अपनेविषे मानि लेता है, जैसे इंद्रियां साक्षी होकरि विषयोंको ग्रहण करती हैं, तैसे चित्त भी अभिमानते रहित साक्षी होकरि ग्रहण करै तौ रागद्वेषकरि तपायमान न होवै, जैसे जलविषे चक्र तरंग फुरते दृष्टि आते हैं, तैसे यह इंद्रियोंके रूप विषय अरु इंद्रियां फुर आती हैं, आधार आधेयकरि इनका संबंध होता है अरु चित्त इनके साथ मिलि व्याकुल होता है, रूप इन्द्रिय अरु मन इनका परस्पर असंगभाव है, जैसे मुख अरु दर्पण अरु प्रतिबिंब भिन्न भिन्न असंग हैं, तैसे यह भिन्न भिन्न असंग हैं, परंतु अज्ञानकरि मिले हुए भासते हैं. जैसे लाखकरिके सोने रूपे चीनीका संयोग होता है, तैसे अज्ञानकरिकै रूप अवलोकन मन संस्कारका संयोग होता है, जब ज्ञान अग्निकरि अज्ञानरूपी लाख जलि जावै, तब परस्पर भिन्न भिन्न हो जाते हैं, बहुरि किसीका दुःख सुख किसीको नहीं लगता, जैसे दो लकडीका संयोग लाखकरि होता है तैसे अज्ञानकरि विषय इन्द्रियां मनका संयोग होता है, ज्ञानरूपी अग्निकरि जब बिछुरि जाते हैं, तब बहुरि नहीं मिलते. जैसे भिन्न भिन्न मणके सूत्रके तागेकरि इकट्ठे होते हैं, तैसे देह इन्द्रियोंविषे अज्ञानकरि इकट्ठे होते जब विचार करिकै तागा टूटि पडे, तब भिन्न भिन्न हो जावै बहुरि मिलै नहीं. हे रामजी! जिन पुरुषोंको आत्मविचार भया है, सो ऐसे विचारते हैं, कि जो हमको दुःख देनेहारा चित्त था, चित्तके नष्ट हुए आनन्द भया है, जैसे मंदिरविषे दुःख देनेहारा पिशाच रहता है, तब दुःख होता है, नहीं तौ मंदिर दुःख नहीं देता, पिशाच दुःख देता है, तैसे शरीररूपी मंदिरविषे दुःख देनेहारा चित्त है. हे चित्त! तुझने मिथ्या मुझको दुःख दिया था, अब मैं आपको जाना है, तू आदि

भी तुच्छ है, अंत भी तुच्छ है वर्तमानमें भी तू मिथ्या जीवको दुःख देता है, जैसे मिथ्या परछाया बालकको वैताल होकरि दुःख देता है बड़ा आश्चर्य है. हे चित्त ! तू तबलग दुःख देता है, जबलग आत्मस्वरूपको नहीं जाना जब आत्मस्वरूपका ज्ञान भया, तब तू कहूं दृष्ट न आवैगा, तू तौ मायामात्र है, अब तू रहु अथवा जाउ, मैं अब तुझसों मोहित नहीं होता, तू तौ मूर्ख जड है अरु मृतक है, तेरा आकार अविचारते सिद्ध है, अब मैं पूर्वका स्वरूप पाया है, तू तत्त्व नहीं भ्रांतिमात्र है, जो मूढ है सो तुझकरि मोहित होता है; विचारवान् मोहित नहीं होता, जैसे दीपककरि अंधकार दृष्टि नहीं आता, तैसे ज्ञानकरि तू दृष्टि नहीं आता. हे मूर्ख चित्त! तू बहुत काल इस देहरूपी गृहविषे रहा है अरु तू वेतालरूप है, जैसे अपवित्र स्थानविषे वेताल रहता है जहां श्मशान आदिक स्थान होते हैं, तैसे सत्संगते रहित देहरूपी गृह सो श्मशानके समान सदा अपवित्र है, तहां तेरे रहनेका स्थान है अरु जहां संतोंका निवास होता है, तहां तुझ सारिखे ठौर नहीं पाते हैं, सो मेरे देहरूपी गृहविषे सद्विचार संतोषादिक संतजन आनि स्थित हुए हैं, तेरे बसनेका ठौर नहीं. हे चित्तपिशाच ! तू पूर्व तृष्णारूपी पिशाचिनी अरु कामक्रोधादिक गुह्यक अपने साथ लेकरि चिरपर्यंत विचरा था, अब विवेकरूपी मंत्रकरि मैंने तुझको निकाला है, तब कल्याण हुआ. हे चित्त ! पिशाचरूप ! तू प्रमादरूपी मद्यपानकरि मत्त हुआ था अरु चिरपर्यंत नृत्य करता था, विवेकरूपी मंत्रकरि तुझको काढा, अब देहरूपी कंदरा शुद्ध भई है अरु शुद्ध भाव पुरुषोंने निवास किया है, जैसे सिंह कंदरासों निकसि जाता है, तब मुनीश्वर आनि निवास करता है, तैसे यहां शुद्धभावहूँने प्रवेश किया है. हे चित्त ! मैं तुझको विवेकरूपी मित्र करिकै वश किया है अब तेरा क्या पराक्रम है ? तू तबलग दुःख देता था, जबलग विचाररूपी मित्र पाया न था, अब तेरा बल कछु नहीं चलता, अब मैं केवल महाभावविषे स्थित हौं, आगे भी मैं तुझको जगाता था, आपते तू सबरूप है, जैसे कच्चे मंत्रवाला सिंहको जगाता है अरु आप कष्ट पाता है, तैसे मैं तुझको

जगाइकारि कष्ट पाता था, अब मैं आत्मविचारकारि परिपक्क मंत्रकारि वश किया है, तब शांतिमान् हुआ हौं ममता मान मेरे कछु नहीं, मोह अहंकार सब नष्ट हो गया है इनका कलत्र भी नष्ट हो गया है, मैं निर्मल चेतन आत्मा हौं, मेरा तुझको नमस्कार है, न मेरेविषे कोऊ आशा है, न कर्म है, न संसार है, न कर्तृत्व है, न मन है, न भोक्तृत्व है, न देह है, ऐसा जो निर्गुणरूप आत्मा है, मेरा मुझको नमस्कार है. न कोऊ आत्मा है, न अनात्मा है, न अहं है, न त्वं है, किसी शब्दका प्रवेश नहीं, ऐसा निराश है, न रूप हौं, न प्रकाशरूप हौं अरु निर्मल आत्मा हौं, अपने आपविषे स्थित हौं, ऐसा जो मैं आत्मा हौं, सो मेरा मुझको नमस्कार है. अविकार हौं, नित्य हौं, निराश हौं, सर्व कार्योंविषे अनुस्यूत हौं, अंशांशिभावते रहित हौं, ऐसा सर्वात्मा जो मैं हौं, सो मेरा मुझको नमस्कार है. सम हौं, सर्वगत हौं, सूक्ष्म हौं, अपने स्वभावविषे स्थित हौं, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, आकाश आदिक जगत् मैं नहीं अरु मैं हीं सर्व पदार्थ होइकारि भासता हौं, ऐसा मैं सर्वात्मा हौं, अब मैं सर्वभावको प्राप्त भया हौं अरु मनभाव मुझते दूर भया है, मेरे प्रकाशकारि विश्व भासता है, अजर अमर अनंत हौं, गुणातीत अद्वैत हौं मनन जिसते दूर भया है, ऐसा जो मैं सुन्दररूप हौं, कैसा हौं, जिसविषे विश्व प्रगट है अरु स्वरूपते अविनाशी हौं, अनंत अजर अमर गुणातीत ईश्वररूपको नमस्कार है.

इति श्रीयोगवासिष्ठ उपशमप्रकरणे चित्तोपशमयोगवर्णनं नाम एकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अशीतितमः सर्गः ८०.

चित्तशांतिप्रतिपादनवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इस प्रकार विचारकारि तत्त्ववेत्ता आत्माको सम्यक्कारि जानते हैं, तू भी आत्मविचारका आश्रय करिकै आत्मपदके आश्रय होउ, यह जगत् सब आत्मारूप है ऐसे जानिकारि चित्तसों

जगत्की सत्यताको त्यागिकारि जब ऐसे विचार करै, तब चित्त कहां है ? बड़ा आश्चर्य है कि, जो चित्त वस्तुरूप दिखाई देता था, सो चित्त अविदित मायामात्र असतरूप था, जैसे आकाशके फूल कहनेमात्र हैं, तैसे चित्त कहनेमात्र है, अविचारकारि दिखाई देता है, विचारवान्को चित्त असत् भासता है, काहेते कि, अविचारते सिद्ध है, जैसे नौकापर बैठे बालकको तटके वृक्ष चलते भासते हैं, बुद्धिमान्को चलनेविषे सद्-भाव नहीं होता, तैसे मूर्खको चित्तसत्ता भासती है अरु विचारवान्का चित्त नष्ट हो जाता है, जब मूर्खतारूप भ्रम शांत हुआ तब चित्त कछु नहीं पाता. जैसे बालक चक्रपर चढ़ा हुआ फिरता है, तो पर्वत आदिक पदार्थ तिसको भ्रमते हैं, जब चक्र ठहरि जाता है, तब पर्वत आदि पदार्थ अचल भासते हैं, तैसे चित्तके ठहरनेते द्वैत कछु नहीं भासता. आगे मुझको द्वैत भासता था, सो चित्तके फुरनेकारि नाना प्रकारकी तृष्णा इच्छा उठती थी, अब चित्तके नष्ट हुए इन पदार्थोंकी भावना नष्ट भई है, संशय शोक सब मेरे नष्ट हो गये हैं, अब विगतज्वर स्थित हौं, जैसा मैं स्थित हौं तैसे हौं, ईषणा कोई नहीं, जब चित्तका चैत्यभाव नष्ट हुआ, तब इच्छा आदिक गुण कहां रहे, जैसे प्रकाश नष्ट हुए वर्णज्ञान कछु नहीं रहता है, तैसे चित्तके नाश हुए इच्छा आदिक नहीं रहते, अब चित्त नष्ट हुआ, तृष्णा नष्ट हो गई मोहका पींजरा टूटि पड़ा, अब मैं निरहंकार हौं, बोधवान् हौं, सब जगत् शांतरूप आत्मा हौं और नानात्व कछु नहीं, मैं निराभास आदिअंतते रहित आनंदपदको प्राप्त हुआ हौं, सर्वगत सूक्ष्म आत्म तत्त्व अपना आप है, तिसविषे मैं स्थित हौं, निरंतर इन विचारों साथ अब क्या प्रयोजन है ? जबलग आपको मैं देह जानता था, तबलग यह विचार मूर्ख अवस्थाविषे थे, अब मैं अमित निराकारको प्राप्त हुआ हौं, केवल परमानंद सच्चिदानंदको प्राप्त हुआ, किस पदका विचार करौं, आगे मैं चित्तरूपी वेतालको आप ही जगावता था अरु आप ही दुःखी होता था, अब विचाररूपी मन्त्रकारि मैं इसको नष्ट किया है अरु निर्णयकारि अपने स्वरूपको प्राप्त भया हौं, शांत आत्मा अपने आपविषे स्थित हौं. हे रामजी! जिसको यह निश्चय प्राप्त हुआ है, सो निर्द्वंद्व रागद्वेषते रहित हो-

करि स्थित होता है, प्रकृत कर्म करता है, मानमदते रहित आनंदकरिकै पूर्ण होता है, जैसे शरत्कालकी रात्रिको पूर्णमासीका चंद्रमा अमृतकरि पूर्ण होता है, तैसे प्रकृत आचार कार्यकर्त्ता ज्ञानवान्का शांत पूर्ण आत्मा है.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे चित्तशांतिप्रतिपादन-
वर्णनं नाम अशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमः सर्गः ८१

वीतवोपाख्याने चित्तानुशासनवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! यह विचार वेदविदोंने कहा है, पूर्व मुझको ब्रह्माने विंध्याचल पर्वतविषे कहा था, इस विचारकरिकै वह परमपदविषे स्थित हुआ है, इस दृष्टिको आश्रयकरिकै यह आत्मविचार होकरि तमरूपी संसारसमुद्रको तरिजावहु. हे रामजी ! इसके ऊपर एक और परम दृष्टांत सुन, सो दृष्टांत परमपदको प्राप्त करनेहारा है, जिस प्रकार वीतव मुनीश्वर विचारकरिकै निःशंक स्थित हुआ है सो सुन, वीतव मुनीश्वर महातेजवान् था, सो संसार आधिव्याधिते वैराग्य करत भया अरु नागादि होके पर्वतोंकी कंदराविषे विचरने लगा, जैसे सूर्य सुमेरु पर्वतके चौफेर फिरता है, तैसे विचरने लगा अरु संसारकी क्रियाओंको दुःखरूप विचारता भया कि,यह बडे भ्रमके देनेहारी हैं ऐसे जानिकरि उद्वेगवान् हुआ निर्विकल्प समाधिकी इच्छा करता भया, अपना जो कछु व्यवहार था,तिसको त्यागत भया अरु गौर जो अपनी कुटी थी,तिसका त्याग करिकै और केलेके पत्रोंकी बनाइकरि बैठा, जैसे भँवरा कमलनको त्यागिकरि नील कमलपर जाय बैठता है. तैसे गौर कुटीको त्यागिकरि श्याम कुटीविषे जाय बैठा,नीचे कुश बिछाइ तिस ऊपर मृगछाला बिछाइकरि पद्मासन मार बैठे जैसे मेघ जलको त्यागिकरि बद्धमौन स्थित होता है, तैसे और क्रियाको त्यागिकरि शांतिके निमित्त शांतरूप स्थित है, हाथोंको तले किया मुखको ऊपर किया, ग्रीवाको सुधारिकै स्थित करत भया इंद्रियोंकी वृत्तिको रोकत भया, बहुरि मनकी वृत्तिको भी

रोक दिया, जैसे सुमेरुकी कंदराविषे सूर्यका प्रकाश बाह्यते मिट जाता है, तैसे इंद्रियोंकी वृत्ति रोकि बाहरते मिट जाती है अरु अंतरते भी विषयोंकी चिंतवनाका त्याग किया, इस प्रकार वह क्रमकरिकै मन स्थित करता भया, जब मन निकसि जावै, तब कहै, बडा आश्चर्य है, मन महाचंचल है, जो मैं स्थित करता हौं, तौ बहुरि निकस जाता है, जैसे सूखा पात तरंगविषे पड़ा ठैरता नहीं तैसे मन एक क्षण भी ठहरता नहीं, सर्वदा इंद्रियोंकरि विषयोंकी ओर धावता है, जैसे गेंदको ज्यों ज्यों ताड़ना करता है, त्यों त्यों उछलता है, तैसे इस मूर्ख मनको जिस ओरते खैंचता हौं तिसी ओर बहुरि धावता है, उन्मत्त हस्तीकी नाईं, जो घटकी ओरते खैंचता है, तौ रसकी ओर निकस जाता है अरु जो रसकी ओर खैंचता है, तौ गंधकी ओर धावता है, स्थिर कदाचित् नहीं होता, जैसे वानर कबहूँ किसी टासपर, कबहूँ किसी टासपर जाय बैठता है, इस प्रकार मूर्ख मन शब्द स्पर्श गंध रूप रसकी ओर धावता है, स्थिर नहीं होता इसके ग्रहण करनेको पंच स्थान हैं, जिस मार्गकरि विषयोंको ग्रहण करता है, सो पंचज्ञानइंद्रियां हैं. अरे मूर्ख मन ! तू किस निमित्त विषयोंकी ओर धावता है ? यह तौ आप जड असतरूप भ्रांतिमात्र हैं, तू इन करि शांतिको कैसे प्राप्त होवैगा ? इनविषे चपलता करि इच्छा करना अनर्थका कारण है, ज्यों ज्यों इनके अर्थोंको ग्रहण करैगा, त्यों त्यों दुःखके समूहको प्राप्त होवैगा, ये विषय भी जड असत्रूप हैं, तू भी जड है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी असत होती है, तैसे यह असद्रूप हैं. हे मुने ! यह तौ सब असाररूप है अरु तू भी इंद्रियां सहित जडरूप है, तू कर्तृत्वका अभिमान क्यों करता है ? सबका कर्ता चिदानन्द आत्मा भगवान् है अरु सदा साक्षीभूत है, तैसे आत्मा साक्षीभूत है, तू क्यों वृथा तपायमान होता है ? जैसे सूर्य सबकी क्रियाको करावता साक्षीभूत है, तैसे आत्मा साक्षीभूत है अरु जगत सब भ्रांतिमात्र है, जैसे अज्ञानकरि जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे अज्ञानकरिकै आत्माविषे जगत भासता है, जैसे आकाश अरु पातालका संबंध कछु नहीं होता जैसे ब्राह्मण अरु चंडालका संयोग नहीं होता, जैसे सूर्य अरु तमका संबंध

नहीं होता, तैसे आत्मा अरु चित्त इंद्रियोंका संबंध कछु नहीं होता, आत्मा सत्तामात्र है, यह जड असत्‌रूप है, इनका संबंध कैसे होवै? आत्मा न्यारा साक्षीभूत है, जैसे सूर्य सब जनोंते न्यारा रहता है, तैसे आत्मा न्यारा साक्षीभूत है. हे चित्त! तू तौ मूर्ख है, विषयरूपी चबेणेविषे तू रहै औरको भक्षण कर्ता तू तृप्त कदाचित् नहीं होता अरु विचार मिथ्या कूकरकी नाईं चेष्टा करता है, तेरेसाथ हमको कछु प्रयोजन नहीं. हे मूर्ख! तू तो मिथ्या अहम् अहं करता है अरु तेरी वासना अत्यंत असत्‌रूप है अरु जिन पदार्थोंकी तू वासना करता है; सो भी असत्‌रूप हैं, तेरा अरु आत्माका संबंध कैसे होवै, आत्मा चेतनरूप है अरु तू मिथ्या जडरूप है अरु यह मैं जानता हौं कि, जन्ममरण आदिक विकार अरु जीवत्वभावको तुझने मुझको प्राप्त किया था,मैं तौ केवल चेतन परब्रह्म हौं,मिथ्या अहंकारकरिकै जीवत्वभावको प्राप्त किया था अरु देहमात्र आपको जानता था, मैं तौ संवित्‌मात्र नित्यशुद्ध हौं आदि अंतते रहित परमानंद चिदाकाश अनंत आत्मा हौं,अब मैं स्वरूपविषे आप जागा हौं और सद्भाव मुझको कछु नहीं दृष्टि आता.हे मूर्ख मन! जिन भोगोंको तू सुखरूप जानिकरि धावता है सो अविचारकरिकै प्रथम तो अमृतकी नाईं भासते हैं अरु पाछे विषकी नाईं हो जाते हैं, वियोगकरिकै जलावते हैं अरु आपको तू कर्ता भोक्ता भी मिथ्या मानता है, तू भी कर्ता भोक्ता नहीं अरु इंद्रियां भी कर्ता भोक्ता नहीं, काहेते कि, जड है, जो तुम जड हुए तौ तुम्हारे साथ मित्रभाव कैसे होवै अरु जो तू जड असत्‌रूप है तौ कर्ता भोक्ता कैसे होवै? अरु जो चेतन सत्‌रूप है,तौ भी तेरेविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं संभवता, तू मिथ्या है, मैं प्रत्यक्ष चेतन हौं तू कर्तृत्व भोक्तृत्व मिथ्या अपनेविषे स्थापन करता है, तू मिथ्या है, जब मैं तुझको सिद्ध करता हौं, तब तू होता है, तू निश्चयकरि जड है, तुझको कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसे होवै?जैसे पत्थरकी शिला नृत्य करनेको समर्थ नहीं होती, तैसे तुझको कर्तृत्वकी समर्थता नहीं, तेरेविषे कर्तृत्व जो है सो मेरी शक्ति है, जैसे दात्री घास तृण आदिकको काटती है, सो केवल आपते नहीं काटती पुरुषकी शक्तिते काटती है अरु खड्गकरि जो हनन

क्रिया होती है, सो भी आपते नहीं होती, पुरुषकी शक्ति है, तैसे तुम्हारेविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व मेरी शक्तिकरि होता है, जैसे पात्रकरि जल पान करता है, सो पात्र नहीं करता, पान पुरुष करता है पात्र करिकै पान करता है, तैसे तुम्हारेविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व मेरी शक्ति करती है मेरी सत्ता पाइकरि तुम अपनी चेष्टाविषे विचरते हौ, जैसे सूर्यका प्रकाश पाइकरि लोक अपनी अपनी चेष्टा करता है, तैसे मेरी शक्ति पाइकरि तुम्हारी चेष्टा होती है, अज्ञानकरिकै तुम जड़ जीवते रहते हौ, ज्ञानकरिकै लीन हो जाते हौ. जैसे सूर्यके तेजकरि बर्फका पुतला गलि जाता है, ताते हे चित्त ! अब मैं निश्चय किया है कि, तू मृतक रूप मूढ है, परमार्थते न तू है, न इंद्रियां हैं, जैसे इंद्रजालके बाजीके पदार्थ भासते हैं सो सब मिथ्या हैं, केवल विज्ञानरूप मैं अपने आपविषे स्थित निरामय अजर अमर नित्य शुद्ध बोध परमानंदरूप हौं अरु मैं ही नानारूप होकरि भासता हौं, परंतु कदाचित् द्वैतभावको प्राप्त न हुआ, सदा अपने आपविषे स्थित हौं, जैसे जलविषे तरंग बुद्बुदे दृष्टि आते हैं, सो जलरूप हैं, तैसे सर्व पदार्थ मेरेविषे भासते हैं, सो इतर कछु नहीं. हे चित्त! तू भी चिन्मात्र भावको प्रात होउ, जब तू चिन्मात्रभावको प्राप्त होवैगा, तब तेरा भिन्न भाव कछु न रहेगा अरु शोकते रहित होवैगा, आत्मतत्त्व सर्व भावविषे स्थित सर्वरूप है, जब तिसको तू प्राप्त होवैगा, तब सब कछु तुझको प्राप्त होवैगा, न कोऊ देह है, न जगत् है, सर्व ब्रह्म ही है; ब्रह्म ही ऐसे भासता है, वास्तव अहं त्वं कल्पना कोऊ नहीं. हे चित्त ! जो आत्मा चेतनरूप है, सो सर्वगत आत्मा है, आत्माते इतर कछु नहीं, तौ भी तुझको संताप नहीं अरु जो अनात्मा जड़ असत्रूप है, तौ भी तू न रहा, जो कछु परिच्छिन्न जैसा तू बनता है सो मिथ्या भ्रम है, आत्मतत्त्व सर्वव्यापकरूप है, द्वैत कछु नहीं, सर्व वही है तौ भिन्न अहं त्वं की कल्पना कैसे होवै ? अरु असत्सों कार्यकी सिद्धता कछु नहीं, शशेके सींग जैसे असत् हैं, तिनसों कछु मारनेका कार्य सिद्ध नहीं होता, तैसे तुम असत् हौ, तुमसों कर्तृत्व भोक्तृत्व कार्य कैसे होवै ? अरु जो तू कहै, मैं सत् असत् चेतन जड़के मध्यभाव

हौं, जैसे तम अरु प्रकाशका मध्यभाव छाया है, तैसे सूर्यरूप परमात्मा निरंजनके विद्यमान मंदभावी छाया कैसे रहती है; ताते कर्तृत्व भोक्तृत्व तुझको नहीं होता. काहेते कि, तू जड है, जैसे दात्री पडी होवे; तिसको घास काटनेका कार्य आपते नहीं होता, जब पुरुषके हाथ शक्ति होती है, तब कार्य होता है, तैसे तुमसों कार्य कछु नहीं होता, जब आत्मसत्ता तुमसों मिलती है, तब तुमसों कार्य होता है, तुम क्यों अहंकारकरिके वृथा तपायमान होते हौ? अरु हे चित्त! जो तू कहै कि ईश्वरका उपकार है तौ ईश्वर जो परमात्मा है, तिसको करने अकरनेविषे कछु प्रयोजन नहीं अरु सबका कर्त्ता भी वही है अरु अकर्त्ता है, जैसे आकाश पोल करिकै सबको वृद्धता देनेहारा है, परंतु स्पर्श किसीसाथ नहीं करता, तैसे परमात्मा सबको सत्ता देनेहारा है अरु अलेप है. हे मूर्ख मन! तू क्यों भोगोंकी वांछा करता है; तू तो जड असत्रूप है अरु देह भी जड असत्-रूप है भोग कैसे भोगैंगे अरु जो परमात्माके निमित्त इच्छा करता है, तौ परमात्मा सदा तृप्त है अरु इच्छाते रहित है सर्वविषे वही पूर्ण है, दूस-रेते रहित एक अद्वैत प्रकाशरूप अपने आपविषे स्थित है, तुझको किसकी चिंता है? ताते वृथा कल्पनाको त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होउ, जहां सर्व क्लेश शांत हो जाते हैं अरु जो तू कहै कि, परमात्मासाथ मेरा कर्तृत्व भोक्तृत्वका सम्बंध है, तौ नहीं बनता, जैसे फूल अरु पत्थरका संबंध नहीं होता, तैसे परमात्मासाथ तेरा संबंध नहीं होता, समान अधि-करण द्रव्यका संबंध होता है, जैसे जलमृत्तिकाका संबंध होता है, जैसे औषधिविषे चंद्रमाकी सत्ता प्राप्त होती है, जैसे सूर्यकी तप्तताकरि शिला तप जाती है, जैसे बीज अंकुरका सम्बन्ध होता है; जैसे पिता अरु पुत्रका संबन्ध होता है, द्रव्य अरु गुणका संबन्ध होता है, जो आकारसहित वस्तु है, तिसका कैसेहू संबन्ध बनता है अरु जो निराकार निर्गुण वस्तु है, तिसका कैसे संबन्ध होवै समानकरि संबन्ध नहीं, जो परमात्मा चेतन है, तू जड़ है, वह प्रकाशरूप है, तू तमरूप है, वह सत्रूप है, तू असत्रूप है; संबन्ध तौ किसीसाथ नहीं बनता, तू क्यों वृथा जलता है, तू मनरूप है, परमात्मा सर्व कलनाते रहित है, तेजकी एकता तेजकरि होती है, अरु जलकी एकता जलसाथ होती है, तू कलंकरूप है,

परमात्मा निष्कलंकरूप है, तेरी एकता तिससाथ कैसे होवै, जिसका अंग कछु होता है, तिसका संबंध भी होता है, सो संबंध तीन प्रकारका है, सम, अर्धसम अरु विलक्षण, इनका संबध होता है,जैसे जलसाथ जलकी एकता होती है, तेज साथ तेजकी एकता होती है, यह सम है, जो तेरा आत्मसाथ सम संबंध नहीं, एक अर्धसम है, जैसे स्त्री अरु पुरुषके अंग समान होते हैं, परंतु विलक्षणरूप हैं सो अर्धसम भी तेरा अरु आत्माका संबंध नहीं अरु कछुक अन्यकी नाईं भी तेरा संबंध नहीं, जैसे जल अरु दूधका संबंध होता है, तैसे तेरा भी नहीं अरु अत्यंत जो विलक्षण है, तिनकी नाईं भी तेरा नहीं; जैसे काष्ठ अरु लाखका अरु पुरुष अरु हाथी घोड़ा आदिकका संबंध नहीं अरु आधार आधेयवत् भी तेरा संबंध नहीं, जैसे बीज अंकुर पिता पुत्र आदिक जो संबंध है, तैसे भी तेरा अरु आत्माका संबंध कोई नहीं, काहेते कि संबंध जिसका होता है, तिससाथ कछु भी अंग मिलता है, जिसका अंग कोऊ नहीं मिलता, परस्पर विरोध होवै, तिसका संबंध कैसे कहिये, जैसे कहिये शशेके सींग ऊपर अमृतका चंद्रमा बैठा है, तम अरु प्रकाश इकट्ठे हैं, जैसे यह नहीं बनता, तैसे आत्मसाथ देह मन इंद्रियोंका संबंध नहीं बनता. काहेते कि, आत्मा सर्व कलनाते अतीत नित्य शुद्ध अद्वैत प्रकाशरूप है अरु मनआदिक जड असत् मिथ्या तमरूप हैं, इनका संबंध नहीं जो परस्पर विरोध होवै, तिनका संबंध कैसे होवै परमात्माके अज्ञानकरि मन इंद्रियां देहादिक उदय हुए हौ, आत्माके ज्ञानकरि अभाव हो जाते हैं बहुरि संबंध कैसे होवै ! हे मन ! जेते कछु जगत् हैं, सो सब ब्रह्मस्वरूप हैं, तिसते इतर द्वैत कछु नहीं, अहं त्वंकी कलपना कोई नहीं, ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, सब कलना तेरेविषे थी अरु तू तबलग था, जबलग स्वरूपका अज्ञान था, जब स्वरूपका ज्ञान भया अरु अज्ञान नष्ट भया,तब तू कहां है, जैसे रात्रिके अभावते निशाचरोंका अभाव हो जाता है, तैसे अज्ञानके नाश हुए तेरा अभाव हो जाता है.

इति श्रीयोगवासिष्ठ उपशमप्रकरणे वीतबोपाख्याने चित्तानुशासनंनाम एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमः सर्गः ८२.

बीतवोपाख्यानेऽनुशासनयोगोपदेशवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! इस प्रकार बीतव मुनीश्वर विंध्याचल पर्वतकी कंदराविषे विचार करत भया, तीक्ष्ण बुद्धिसाथ और भी जो कछु कहा है सो सुन, अनात्मा जो देह इंद्रियां मनआदिक हैं सो संकल्पते उपजे हैं जब ज्ञान उदय हुआ, तब इनका अभाव हो जाता है. हे मन! जैसे सूर्यके उदय हुए, तम नष्ट हो जाता है, तैसे नित्य उदितरूप परमात्मा अनुभव स्वरूपके उदय हुए तुम्हारा अभाव हो जाता है, वासनाकरिकै तिसका आवरण था, जब वासनाका अभाव हो जाता है, तब आवरणका भी अभाव हो जाता है, जैसे मेघके नष्ट हुए सूर्य प्रकाशता है, तैसे वासनाके अभाव हुए आत्मतत्त्व प्रकाशता है, वासनाका मूल अज्ञान है, जब अज्ञानसहित वासना नष्ट भई, तब चिदानंद ब्रह्म प्रकाशता है, वासनाहीका नाम बंध है, वासनाके निवृत्तिका नाम मोक्ष है जब वासनारूपी जेवरी काटैगा तब परमात्माका साक्षात्कार होवैगा, जैसे प्रकाश विना अंधकारका नाश नहीं होता, तैसे मन इंद्रियां देहादिकका आत्मविचार विना नाश नहीं होता, जब विचारकरिकै आत्मपद प्राप्त होवै, तब मनसहित षट् इंद्रियोंका अभाव हो जाता है, अर्थ यह कि, इनका अभिमान नष्ट होता है, इनके धर्म अपनेविषे नहीं भासते; जबलग देह इंद्रियोंके साथ मिला है, तबलग आत्मपदको पाइ नहीं सकता, ताते आत्मपद पानेका कल्याणके निमित्त अभ्यास कर. जबलग मन इंद्रियोंके गुणोंसाथ आपको मिला जानता है, तबलग इसको अपने स्वरूपकी विभुता अरु सिद्धता नहीं भासती, जब आत्माका साक्षात्कार हो जावै, तब रागद्वेषादिक विकार नष्ट हो जावैंगे, जैसे सूर्यके उदय हुए निशाचरोंका अभाव हो जाता है, तैसे आत्माके साक्षात्कार हुए विकारोंका अभाव हो जाता है, जिसके देखते इनका अभाव हो जाता है, तिनका आत्मासाथ संबंध कैसे होवै? जैसे प्रकाश अरु तमका संबंध नहीं होता, तैसे सत असतका सम्बंध नहीं होता, जैसे जीवते अरु मृतकका

सम्बंध नहीं होता, तैसे आत्मा अनात्माका संबंध नहीं होता, आत्मा सर्व कल्पनाते रहित है, मन आदिक सर्व कल्पनारूप हैं, कहां यह मूक जड अनात्मरूप अरु कहां नित्य चेतन प्रकाश निराकार आत्मरूप, इनका परस्पर स्पष्ट विरोध है; संबंध कैसे कहिये ? यह तौ निश्चयकरि अनर्थका कारण है, जबलग इनका अभिमान है, तबलग जगत् दुःखरूप है, जब इनका वियोग होवै, तब जगत् परमात्मारूप होता है, जबलग इसको आत्माका अज्ञान है, तबलग आपको इनमें मिला देखता है, दुःख पाता है, जब आत्माका ज्ञान हुआ, तब अपनेसाथ इनका संयोग नहीं देखता है अरु यह मैं निश्चयकरि जाना है, कि इंद्रियां अरु मनके संयोगते जगत् भासता है, जब इंद्रियोंका ग्राम नष्ट हो जाता है, तब जगत् परमात्मारूप हो जाता है अरु मैं जो आत्मा अरु मन इंद्रियोंका इकट्ठा जानता था, सो प्रमादरूपी मद्यके पानकरि मत्त हुआ मनकरि जानता था, अब आत्मविचारकरिकै मन नष्ट भया, तब सुखी भया, जो विषको पान करि मूर्छित होवै, सो तौ बनता है, परंतु पान किये विना मूर्छित होवै, सो आश्चर्य है, ताते जब अनात्माका इस साथ संयोग होता, तब सुखदुःख करिकै रागद्वेषवान् होना भी बनता है, आत्मा तौ सुखदुःखका साक्षीभूत है, सुखदुःखका संयोग ही जिससाथ नहीं अरु रागद्वेषकरि जलता है, तौ महामूर्खता है, आत्मा तौ सुखदुःखका साक्षीभूत है. जैसा तिसके आगे अभ्यास होता है, तैसा ही भासता है, कदाचित् विपर्यय भावको प्राप्त नहीं होता सुखदुःखविषे मूर्ख मनआदिक रागद्वेषवान् होता है, आत्मा तौ सदा साक्षीभूत क्षीणवृत्ति है, तिससाथ इंद्रियोंका संयोग कैसे होवै ? जो संयोगका अभाव सिद्ध हुआ, तौ आत्माविषे कर्तृत्त्व भोक्तृत्व कैसे कहिये ? जहां चित्तकलना होती है, तहाँ कर्तृत्व भोक्तृत्व होता है, जहां चित्तकलनाका अभाव है, तहाँ कर्तृत्व भोक्तृत्व अभाव है, ऐसा निष्कलंक आत्मा तत्त्व मैं हौं, जो न कर्ता हौं, न भोक्ता हौं, न मेरेविषे बंध है, न मोक्ष है, न अहंता है, मैं सर्वात्मा अलेपरूप हौं. हे मन ! तू भी मैं हौं अरु पृथ्वी आप तेज वायु आकाश पांचों तत्त्व मैं हौं, इस प्रकार

निर्णय करि जिसने धारा है, सो मोहको प्राप्त नहीं होता, जो अहम् अभिमान करनेवाला आत्माते भिन्न आपको जानता है, तब दुःखी होता है, जब अपने स्वभावविषे स्थित होता है, तब परमसुखी होता है, ताते जिसको कल्याणकी इच्छा होवै, तिसको ज्ञानकरि एक आत्मपरायण होना योग्य है, जब स्वरूपको त्यागिकरि संकल्पके ओर धावता है, तब दुःखोंके समूहको प्राप्त होता है. हे चित्त! जो तू अपनेविषे कर्तृत्व देखता था, सो तू इंद्रियां सहित जडरूप पत्थरके समान है, जैसे आकाशविषे पवन नहीं लगता, तैसे तुमसों कर्तृत्व नहीं होता, जब इसको स्वरूपका प्रमाद होता है, तब चित्त आदिके साथ आपको मिला जानता है अरु चित्तादिक आत्माकी सत्ता पाइकरि चेतन होता है, जैसे अग्निकी सत्ता पाइकरि लोह जलावनेको समर्थ होता है, तैसे तुम आत्माकी सत्ता पाइकरि कर्तृत्व भोक्तृत्वविषे समर्थ होते हौ, जब आत्मविचार करिकै स्वरूपका साक्षात्कार होता है अरु अज्ञानवृत्ति निवृत्त हो जाती है, मन आदिकका वियोग होता है, सर्व कलनाते रहित हुआ, तब केवल मोक्षरूप आत्मा होता है, कर्तृत्व भोक्तृत्वका अभाव हो जाता है, जैसे आकाशविषे लालीका अभाव है, तैसे आत्माविषे कर्तृत्वका अभाव है, सब जगत् आत्मस्वरूप भासता है, जैसे समुद्र तरंग आदिक नाना प्रकार होता है, सो सब जलरूप है, इतर कछु नहीं, तैसे सर्व जगत् आत्मरूप है, आत्माते इतर कछु नहीं, सो सच्चिदानंद आत्मा मैं सदा अपने आपविषे स्थित हौं और द्वैतकलना मेरेविषे कोई नहीं, जैसे समुद्र उष्णताते रहित है. तैसे परमात्मा सर्व कलनाते रहित है, जैसे आकाशविषे वन नहीं होता, तैसे परमात्माविषे कलना नहीं होती, संवेदनते रहित संवित्मात्र सर्वात्मा है; जब तिसका साक्षात्कार होता है, तब अहं त्वम् आदिक कलनाका अभाव हो जाता है, सो अनादि अरूप सर्वगत है, सदा अपने आपविषे स्थित है, ऐसा जो अद्वैत तत्त्व है, तिसको द्वैत कलना आरोपनेको कौन समर्थ है? ऐसा कौन है, जो आकाशविषे ऋग्वेदको लिखै; नित्य उद्योत सर्वका सार अद्वैत आत्मा है, तिसविषे द्वैतकलनाका अभाव

है, सर्वविषे पूर्ण निर्मल नित्य आनंदरूप है, ऐसे आत्माको अब मैं प्राप्त हुआ हौं, जगत्का सुखदुःख अब नष्ट भया है, सम शांतरूप हुआ हौं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवोपाख्यानेऽनुशासन-योगोपदेशो नाम द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमः सर्गः ८३.

वीतवोपाख्याने चित्तोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच—हे रामजी ! इस प्रकार वीतव मुनिश्रेष्ठ विचार करता भया, बहुरि जो कछु निर्मल बुद्धिसाथ विचारने लगा सो सुन. हे इंद्रियरूप मन ! तुम क्यों अपने अर्थोंकी ओर धावते हो ? तुमको विषयोंकरि शांति प्राप्त नहीं होती, जैसे मृग मरुस्थलकी नदी देखिकरि दौडता है अरु शांतिमान् नहीं होता, तातें तुम विषयोंकी ओर तृष्णाकरि शांतमान् न होहुगे, इनकी इच्छा त्यागिकरि जो सत्य है, परमात्मतत्त्व अविनाशी सर्व अवस्थाविषे एकरस है, तिसको ग्रहण करौ, तब सर्व दुःख तुम्हारे मिटि जावैंगे, तुम्हारे साथ मैं मिला था, तब मैं भी दुःख पाया था, तुम अज्ञानकरिकै उत्पन्न भये हौ, जो तुम्हारे साथ मिलता है, तिसको भी दुःख प्राप्त होता है, जैसे तपी हुई लख जिसके शरीरसाथ स्पर्श करती है, तिसको जलावती है, तैसे जिसको तुम्हारा संग भया है, सो दुःखको प्राप्त होता है. हे मन ! यह जीव जो मरता है सो कालके मुखमें जाय प्रवेश करता है, सो तुम्हारे संगकरि जाय पड़ता है, जैसे नदी जलसहित होती है, तब समुद्रकी ओर चली जाती है, जलते रहित होवै तौ क्यों जावै ? तैसे तुम्हारे संगकरि कालके मुखमें जाय पड़ता है, तुम्हारा संग न होवै, तौ काहेको पड़ै ? जैसे मेघ कुहिडकरि सूर्यको आच्छादि लेता है, तैसे मनरूपी मेघ तू इच्छारूपी कुहिड़करि आत्मारूपी सूर्यको आच्छादि लेता है अरु परंपरा दुःखोंकी वर्षा करनेहारा है. हे मन ! तेरेविषे चिंता उठती है, सो तू मर्कटकी नाईं है, जैसे मर्कट वृक्षको ठहरने नहीं देता, पड़ा हिलावता है, तैसे चित्त देहको

ठहरने नहीं देता अरु चित्तरूपी पखेरू है, लोभ लज्जा तिसके दो पंखें हैं अरु रागद्वेषरूपी चंचु हैं, तिसकरि शरीररूपी वृक्षपर बैठ शुभ गुणोंको काटि काटि खाता है अरु चित्तरूपी कूकर महानीच है, भोग भावनारूपी जो महा अपवित्र पदार्थ है, तिसको हृदयरूपी स्थानविषे इकट्ठा करता है, ऐसी चेष्टाते कदाचित् रहित नहीं होता अरु चित्त-रूपी उलूक है, अज्ञानरूपी रात्रीविषे आइ विचरता है, चेष्टाकरि प्रसन्न होता है अरु शब्द करता है, जैसे श्मशानविषे वेताल शब्द करता है, जब अज्ञानरूपी रात्रि नष्ट होवै, तब चित्तरूपी उलूकका अभाव होवै अरु संपदा आनि प्रवेश करै, जैसे सूर्यके उदय हुए; सूर्यमुखी कमल खिलि आता है, तैसे संपदा प्रफुल्लित होती हैं, जहां मोहरूपी कुहिड अरु इच्छारूपी धूलि हृदयरूपी आकाशसों निवृत्त होती है, तब निर्मल आकाश प्रगट होता है. हे चित्त! जबलग तू नष्ट नहीं होता, तबलग शांति नहीं होती अरु जैसे अकस्मात् मेघ आवै अरु गडेकी वर्षा करै तिसकरि मार्ग चलनेवाले कष्ट पाते हैं, तैसे स्वस्थ बैठे हुए जो चिंता आनि प्राप्त होती है, सो तेरे सयोगकरि होती है, संकल्पविकल्प-रूपी गडेकी वर्षाकरि सत्मार्ग चलनेवाला दुःख पाता है अरु जहां चित्त नष्ट होता है, तहां सर्व आनंद होता है, शीतलता अरु मित्रता-करि पावन होता है, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, मेघके नष्ट हुए सूर्य प्रकाशता है, तैसे अज्ञानके नष्ट हुए आत्मा प्रकाशता है, तब प्रसन्नता, गंभीरता, उदारता अरु समता होती है, जैसे वायु अरु मन्दराचल पर्वतते रहित क्षीरसमुद्र शांतिमान् भया अरु जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है, तैसे अज्ञानके नाश हुए आत्मानंद पाइकरि यह शोभता है. हे चित्त! यह स्थावर जंगम जगत् संवित्रूप आकाशविषे है, तिस महत् ब्रह्मको तू भी प्राप्त होउ, जो पुरुष आशारूपी फाँसीको तोड़िकरि आत्मपदविषे प्राप्त हुआ है अरु संसारका सद्भाव निवृत्त किया है, सो जन्ममरणके बंधनमें नहीं पड़ता, जैसे जला पत्र बहुरि हरा नहीं होता, तैसे नष्ट हुआ चित्त जन्ममरणको नहीं पाता. हे चित्त! सर्वको भक्षण करने-

हारा जो तू संसारको सत् मानकर तिसकी ओर धावैगा, तब तेरा कल्यान न होवैगा अरु जो आत्माकी ओर आवैगा, तब तेरा परम कल्याण होवैगा, जब तू अपना अभाव करि आत्मपदविषे स्थित होवैगा, तब कल्याणरूप होवैगा अरु जब तू अपना सद्भाव करैगा जो आकारको न त्यागैगा, तब दुःखी होवैगा, जो तेरा जीवना है सो मृत्युसमान है अरु जो मृत्यु है सो जीवनेसमान है, दोनों पक्षविषे जो तेरी इच्छा है, सो अंगीकार कर, जो तू अब ही आपको आत्मपदविषे निर्वाण करैगा, तब परमपदको प्राप्त होवैगा, अरु परमसुखी होवैगा अरु जो न करैगा तौ परमदुःखी होवैगा, जो आत्मपदका त्याग करैगा सो मूढ है, तेरा निर्वाण होना आत्मपदविषे जीवनेनिमित्त है अरु आत्माते इतर जो तू जीनेकी इच्छा करता है, सो तेरा जीना मिथ्या है, अर्थ यह जो तू आदि भी मिथ्या है, अब भी विचार विना भ्रममात्र है, विचार कियेते नाश हो जावैगा, जैसे सूर्यके प्रकाश विना अंधकार होता है, प्रकाशकरि नाश हो जाता है, तैसे विचार विना चित्त है विचारकरि नाश हो जाता है, एता काल मैं अविवेककरि नाश हो जाता था, जैसे बालकोंको अपने परछाईविषे वेतालकल्पना होती है, विचार विना भयको प्राप्त है, विचार कियेते निर्भय होता है, तैसे अब मैं तेरे संगते छूटा, अपने पूर्व स्वरूपको प्राप्त हुआ हौं, विवेककरि तेरा अभाव हुआ है, ताते विवेकको नमस्कार है. हे चित्त! अविवेककरि तू मेरा मित्र था, अब बोधकरिकै तेरा चित्तभाव नष्ट हो गया, तू परमेश्वररूप है, अब वासना नष्ट भई है, आगे तेरेविषे नाना प्रकारकी वासना थी, तिसकरि तू मलिन दुःखरूप था, अब वासना नष्ट भई है, तौ परमेश्वर रूप भया है, चित्तस्वभाव तेरेविषे अज्ञानकरि उपजा दुःखोंका कारण था, सो विवेककरि लीन भया है, जैसे रात्रिके पदार्थ सूर्यके उदय हुए लीन हो जाते हैं, तैसे विवेककरि चित्तभाव नष्ट भया है, सो सिद्धांतका कारण है, तेरे संगकरि मैं तुच्छ जैसा हो गया था, अब शास्त्रोंकी युक्तिकरि निर्णय किया है कि, न तू आगे था, न अब है, न बहुरि होवैगा, जबलग मैं आपको जाना न था

तबलग तेरा सद्भाव था, अब मैं आपको जाना है अरु अपने आपविषे स्थित भया हौं, अब मैं परम निर्वाण शांतरूप हौं सब ताप मेरे नष्ट भये हैं, नित्य शुद्ध चिदानंद परब्रह्मस्वरूप हौं, जगत्‌की सत्य असत्य कलना मेरी नष्ट भई है, काहेते कि, कलना सब चित्तविषे थी जब चित्त निर्वाण हो गया, तब कलना कहां रही ? मैं केवल शुद्ध आत्मा हौं, प्रतियोगी कोऊ नहीं, न व्यवच्छेद है, काहेते कि, दूसरा कोऊ नहीं, चित्तकी चेतना फुरती थी, सो निर्वाण होगयी है, अब मैं स्वस्थ भया हौं, जैसे तरंगोंते रहित समुद्र अचल होता है, तैसे मैं सर्व कलनाते रहित वीतराग हौं, संवेदनते रहित सम सत्तामात्र अपने आपविषे स्थित हौं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवोपाख्याने चित्तोपदेशो नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमः सर्गः ८४.

वीतवमनोज्ञवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! इस प्रकार वीतवने निर्वासनिक होकरि निर्णय किया, विंध्याचल पर्वतकी कंदराविषे समाधि करता भया, आकाशवत् निर्मल चित्त इंद्रियोंकी वृत्ति बाह्यते खैंचिकरि अचल करत भया, शिर अरु ग्रीवाको सम करिकै चित्तकी वृत्ति अनंतर आत्मा साक्षिभूतविषे स्थित करी, जैसे लकडियोंको जलाइकरि अग्निकी ज्वाला शांत हो जाती है, तैसे प्राण अरु मनकी वृत्तिका स्पंद मिट गया, जैसे शिलाविषे पुतली होती है, जैसे मूर्त्तिकी लिखी पुतली होती है, तैसे स्थित हो गया. तीनसौ वर्ष समाधिविषे रहा, जैसे एक घडी होती है, तैसे समाधि लगे हुए व्यतीत हो गया, मेघोंकी वर्षा शिरके ऊपर होवै अरु मंडलेश्वर आनि शिकार खेलै अरु बडे शब्द होवैं, रीछ वानरोंके शब्द होवैं, सिंहके हाथियोंके शब्द होवैं, वनको अग्नि लगै, गडेकी वर्षा होवै, वायु चलै, धूप पडै, तौ भी समाधिते न जागै, जैसे पहाडविषे शिला दबी होती है,

तैसे शरीर दब गया जब तीनसौ वर्ष व्यतीत भये तब चित्त आनि फुरा कि, शरीर मेरे साथ है, परंतु प्राण नहीं फुरें, तब चित्तके फुरनेविषे आपको कैलास पर्वत ऊपर देखत भया, कदम्ब वृक्षके नीचे देखत भया, सौ वर्षपर्यंत मौन होकारि जीवन्मुक्त निर्मल आत्माकारि विचरा, बहुरि विद्याधरोंविषे विद्याधर होकारि सौ वर्षपर्यंत विचरा, तिसके अनंतर और पंचयुग होकारि इंद्र हुआ, देवता नमस्कार करै हैं. राम उवाच–हे भगवन्! देशकाल अरु मन आदिक प्रतिभा अनियत अनियम उसको कैसे भासा? वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! चित्त सर्व आत्मारूप है, जैसा जैसा तिसविषे फुरणा होता है, तैसा हो भासता है, जैसे जैसे देशकालका फुरणा होता है, तैसे ही अनुभव होता है. हे रामजी! जेता कछु प्रपंच है, सो मनोमात्र है; जैसा फुरणा तीव्र होता है, तैसे अनुभवसत्ताविषे भासता है, तहां स्थित होता है, जब और भ्रमविषे गया तो नियमके जैसा होता जाता है, तैसे ही जो अज्ञानी होता है, तिसको वासनाकारि नाना प्रकारका जगत् भसाता है अरु ज्ञानवान् होता है, सो सब आत्माको देखता है, तिसका फुरणा भी अफुरणा है अरु वासना भी अवासना है, वीतव मुनीश्वर जो देखता भया, सो चित्तके फुरणेकारि देखता भया, परंतु स्वस्थरूप था, उसकी वासना भी अवासना थी, जैसे भूना बीज नहीं उगता, तैसे वासना अवासना थी, भ्रांतिका कारण न था, कल्पपर्यंत चंद्रधारी सदाशिवका गण होकारि विचारि, समस्तविद्योंका ज्ञाता सर्वज्ञ त्रिकालदर्शी जीवन्मुक्त होकारि विचरा. हे रामजी! जैसा किसीका संस्कार दृढ होता है, तैसा तिसको अनुभव होता है, जैसे वीतव चित्तको स्पंदकारिके जीवन्मुक्तका अनुभव करता भया. राम उवाच–हे भगवन्! जो ऐसे है तो जीवन्मुक्तके मतिविषे बंध मोक्ष हुआ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी! जीवन्मुक्तको सब ब्रह्मस्वरूप भासता है, बंध मोक्ष अवस्था तिसविषे कहां है, ज्ञानमात्र आकाशविषे जैसा फुरणा होता है, तैसा हो भासता है. हे अंग! यह सब चिन्मात्रस्वरूप है अरु जगत् जो नाना प्रकार भासता है; सो मनकारि भासता है वास्तवते न जगत् है; न अजगत् है, केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है, जगत्के भूत भविष्य

केवल ब्रह्मसत्ता भासती है, चिन्मात्रते इतर जो कछु जगत् भासता है, सो मनके फुरणेकरि भासता है, जिनको ऐसा ज्ञान नहीं तिनको जगत् वज्रसारते दृढ हो भासता है अरु ज्ञानवान्को आकाशवत् भासता है. हे रामजी! अज्ञानकरिकै मन उपजा है, तिसकरि संपूर्ण जगत् हुआ है, वास्तवते और कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग हुल्लास होता है, तैसे चिदाकाशविषे आकार भासते हैं, जब चित्त अचित्त हो जाता है, तब द्वैत कछु नहीं भासता.

इति श्रीयोगवासिष्ठ उपशमप्रकरणे वीतवमनोज्ञ-
वर्णनं नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

पञ्चाशीतितमः सर्गः ८५.

वीतवसमाधियोगोपदेशवर्णनम्।

राम उवाच-हे भगवन्! वीतव मुनीश्वरका जो शरीर विंध्याचल पर्वतविषे पड़ा था, बहुरि तिसकी क्या अवस्था भई? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! तिसके अनंतर आत्मवेत्ता वीतव मुनीश्वर जो तेजवान् था, सो एक कालविषे शरीर गुणोंको मनकरि विचारत भया, कई नष्ट हो गये हैं, कई अनष्ट हैं, तिन अनष्टोंविषे पृथ्वीके मध्य जो स्थित था, तिसको देखत भया, जो कंदराविषे धूलि पडी थी, वर्षा करिकै क्षुभ गया है, कीचड़विषे फँसा ऊपर तृण जाल जम गया है, तिसको देखिकरि कहने लगा कि, इसविषे प्रवेश करौं, बहुरि विचार किया कि यह तौ जड़ गुंग है अरु फँसा हुआ है, इसके निकासनेको मैं समर्थ नहीं, ताते सूर्यमंडलको जाऊं, जो सूर्यका सारथि अरुण पंगु है, सो इसको निकासैगा, अथवा इसके साथ मेरा क्या प्रयोजन है! यह नाश हो जावै अथवा रहै, एता यत्न मैं किस निमित्त करौं, अपने निर्गुण स्वरूप-विषे स्थित होऊँ, देहसाथ मेरा क्या है, इस प्रकार वीतव तूष्णीं हो गया एक क्षणके अनंतर बहुरि चिंतना भयी, जो पृथ्वीविषे देहकरि न कछु त्यागने योग्य है, न कछु ग्रहण करने योग्य है, ताते देहका त्यागना रखना समान है, यह शरीर किस निमित्त दबा रहै अरु

कछुक काल इसका प्रारब्ध वेग है, आकाशविषे सूर्य स्थित है, तिसविषे प्रवेश करौं, जैसे आदर्शविषे प्रतिबिंब प्रवेश करता है, तैसे करों अरु शरीरको सूर्यके सारथिकरि निकासौं. हे रामजी ! ऐसे विचारकरि मुनीश्वर पुर्यष्टकारूपसों आकाश मार्गमें चढे, सूर्यके अंतर वायुरूप प्राणायाम करिकै प्रवेश किया, जैसे शस्त्र पिंडविषे अग्नि प्रवेश करता हैं, तब सूर्य जानत भया कि, वीतवमुनीश्वरने प्रवेश किया है, सो किस निमित्त आया है, सर्वज्ञ था, तिसकरि जानत भया कि, पृथ्वीविषे इसका शरीर कीचड अरु तृणोंकरि आच्छादित हुआ है, तिसके निकासने निमित्त आया है ऐसे विचार अपने सारथीको कहत भया. हे सारथी ! विंध्याचल पर्वतकी कंदराविषे वीतवमुनीश्वरका शरीर दबा पड़ा है, तिसको तू जाइकरि निकास दे, तब अरुण नामक जो सारथी जिसका शरीर हस्तिवत है, सो विंध्याचल पर्वतविषे आइकरिकै नखोंसे शरीरको निकासत भया सो कैसे नख हैं, जिनसे पहाड उखार डारे हैं, उन नखोंसे धराकोटरविषे गाडे हुए शरीरको काढत भया, जैसे समुद्रके तीर भिहका तंतु काढि पाते हैं, तैसे पर्वतकी कंदराते शरीरको निकास डारा, तब मुनीश्वरने पुर्यष्टकाकरिकै शरीरविषे प्रवेश किया, जैसे पक्षी आकाश मार्गते उड़ता आलयविषे आइ प्रवेश करै, तैसे शरीरविषे आइ प्रवेश किया अरु सावधान होकारि अरुणको नमस्कार करत भया, अरुण वीतवको नमस्कार करत भया, परस्पर नमस्कार करिकै अपने कार्यकी ओर हुए; अरुण आकाशमार्गको गया अरु मुनीश्वर तालावकी ओर गया, कीचडसाथ भरा हुआ शरीरसों मुनीश्वर तालावविषे डुबकी मारत भया, जैसे हस्ती मल धोता है, तैसे स्नान करिकै संध्यादिक कर्म करत भया, सूर्य भगवान्‌का पूजन किया, जैसे प्रथम तपकरि शरीर शोभता था, तैसे भूषित किया, मैत्री समता सत्य मुदिता आदिक गुणोंकरि संपन्न भया, ब्रह्मलक्ष्मीकरि शोभता भया अरु सबके संगते रहित भया, जो इन गुणोंको भी स्वरूपविषे स्पर्श न करै, आपको शुद्ध स्वरूप जानै.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवसमाधियोगोपदेशो नाम पञ्चाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

षडशीतितमः सर्गः ८६.

वीतवोपाख्यान इंद्रियनिर्वाणवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! इस प्रकार जब केतेक दिन व्यतीत भये, तब समाधिके निमित्त मुनीश्वरका मन उदय हुआ, तब जाइकरि विंध्याचल पर्वतकी कंदराविषे स्थित भया, पूर्व जो विचार अभ्यास किया था अरु परावर परमात्मा दृष्टि भयी थी, तिसकरि बहुरि चित्तको कहत भया-हे चित्त! हे इंद्रियों! मैं तुम्हारा पूर्व ही प्रहार कर छोडा है, अब तुम्हारे अचित्तविषे अनर्थ अर्थ कोई नहीं, काहेते जो अस्ति नास्ति कलना मेरी नष्ट भयी है, अस्ति नास्तिके पीछे जो शेष रहता है, तिसविषे स्थित हौं जैसे पहाडका सिंह अचल होता है, तैसे अचल हौं अरु सदा उदयरूप असत्की नाईं स्थित हौं, उदयस्वरूप इसकरि जो सदा ज्ञानरूप प्रकाशवान् हौं अरु असत्की नाईं इस प्रकार जो सदा अक्रियरूप हौं अरु असत्रूप उदयकी नाईं स्थित हौं, असत इस कारणते कि, मन इंद्रियोंका विषय नहीं अरु उदयकी नाईं इस कारणते कि, सबका साक्षीभूत हौं अरु सदा समरस प्रकाशरूप अपने आपविषे स्थित हौं, बहुरि कैसा हौं प्रबुद्ध हौं अरु सुषुप्तिविषे स्थित हौं, प्रबुद्ध इस कारणते जो इंद्रियोंको विषयकी उपलब्धि करता हौं अरु सुषुप्त इस कारणते कि हर्ष शोक इष्ट अनिष्टसों रहित हौं अरु जगत्की ओरते सुषुप्ति समाधिविषे हौं, तहां जाग्रत् हुआ, तुरीयापद आत्मतत्त्व-विषे स्थित हौं, जैसे स्थाणु स्तंभ स्थित होता है, तैसे स्थितरूप हौं नित्य शुद्ध समान सत्ता आत्मपद तहां मैं निरामय स्थित हौं. हे रामजी! इस प्रकार चिंतवता हुआ मुनीश्वर ध्यानविषे जुडा षट्दिनपर्यंत ध्यानविषे रहा, उपरांत जागा तब एक क्षणके समान जानत भया, जैसे सोया हुआ क्षणविषे जागै, इसी प्रकार वीतव शुद्ध पदको प्राप्त भया जीवन्मुक्त होइकरि चिरकालपर्यंत विचरत भया, न कोऊ वस्तु हर्ष देवै, न शोक देवै, चलता हुआ भी स्थिर रहै, इंद्रियोंका व्यवहार करता इष्ट अनिष्ट प्राप्तिविषे सम रहै, कदाचित् किसीविषे चलायमान न होवै, चलता

बैठता मन इंद्रियोंको कहै. रे इंद्रियों! मरहु, हे मन! तू शमवान् अब हुआ है, आत्माको पाइकरि अब देख, तुझको क्या सुख है जिस सुखके पायेते और पाने योग्य कछु न रहता निराग सुख है, ऐसा जो परम शांतरूप अचल सुख है, तिसका आश्रय करि चंचलताको त्याग अरु हे इंद्रियों! तुम्हारा वास्तवते स्वरूप कछु नहीं अरु आत्मपदविषे तुम दृष्टि नहीं आती, अपने स्वरूपके जाने विना तुम मुझको दुःख देती थी, अब मैं अपने स्वरूपको प्राप्त भया हौं, मेरेको वश करनेकी समर्थता तुमको नहीं, काहेते कि तुम अवस्तुरूप हौं, आत्माके प्रमादकरि तुम्हारा भान होता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे अनात्माविषे आत्माभावना अरु आत्माविषे अनात्मभावना होती है, सो अविचारकरि होती है अरु विचार करिकै नहीं होती, अब विचार करिकै यह भ्रम निवृत्त भया है, तुम इंद्रियांगण और हौ, अहंकार और है, ब्रह्म और है, कर्तृत्व और है, भोक्तृत्व और है, औरका दुःख आपविषे मानना यही मूर्खता है, जैसे वनकी लकडी और है, बांस और हैं, चर्म और है जिस करिकै रथ बनता है अरु लोहा और पीतल और बडे और जिसकरि रथ जडा है, बैल और जो रथको चलावते हैं, तिन सब करिकै रथ बनता है, जैसे गृहका आकार होता है, तैसे रथ है, तिसविषे बैठनेवाला पुरुष और होता है, रथकी सामग्री परस्पर और होती है, तिसविषे बैठनेवाले कहैं कि, मैं रथ हौं सो नहीं बनता, तैसे शरीररूपी रथ है, अज्ञानकरिकै मिला है, इंद्रियां और हैं, मनआदिक और हैं, तिसविषे पुरुष है, सो जीव है जीव कहै मैं शरीर हौं, बडी मूर्खता है, तिस शरीरके सुख दुःख मूर्खताकरिकै आपको मानते हैं, जो विचार करिकै देखैं तौ रागद्वेष क्षोभते मुक्त होवैं, मैं अविचाररूपी विस्मृति स्वरूपको दूरते त्यागा है अरु स्वरूपकी स्मृति स्पष्ट करी है, जो आत्मतत्त्व सत् है, तिसको सत् जाना है अरु अनात्मा असत् है, तिसको असत् जाना है, जो सत् है, सो स्थित है, जो असत् है, सो क्षीण हो जाता है. हे रामजी! इस प्रकार वीतव मुनि विचार करिकै जीवन्मुक्त हुआ, अपने स्वरूपविषे बहुत वर्षोंको व्यतीत

किया, अपना जो निर्भय पद है, जिसविषे चित्तादिक भ्रम सब नष्ट हो जाते हैं, ऐसे शुद्ध पदको प्राप्त हुआ यथाभूतार्थ आत्मध्यानविषे स्थित भया, ग्रहण अरु त्यागनेकी भावना कछु नहीं रही, परिपूर्ण आत्मपदको प्राप्त भया, अगस्त्यमुनिका पुत्र वीतव मुनि तिस पदको पाइकरि निर्वासनिक हुआ, बहुरि जिसकालविषे जिस प्रकार विदेहमुक्त हुआ है, सो सुन. बीस हजार अरु सातसौ वर्ष जीवन्मुक्त होकारि रहा, बहुरि विदेहमुक्त भया, जो इच्छा अनिच्छाते रहित पद है, जन्ममरणका जिसविषे अंत है, रागद्वेषते रहित पदको प्राप्त हुआ है. हे रामजी ! हिमालयपर्वतकी कंदरा थी, तिसविषे प्रवेश किया, पद्मासन धारिकरि हाथ जोडकर कहत भया-हे राग ! तू निरागताको प्राप्त होउ अरु तू निर्दोषताको प्राप्त होउ, तुम्हारे साथ मैं चिरपर्यंत क्रीडा करी है परंतु विवेकते रहित करी है, तुम अब जाओ, मेरा तुमको नमस्कार है अरु हे भोग ! तुम्हारी लालसाकारि मुझको परमपदका विस्मरण हो गया था; जैसे माता सुखके निमित्त पुत्रकी लालसा करती है, तैसे मैं सुख जानिकारि तुम्हारी लालसा करता था, अब जाओ तुमको मेरा नमस्कार है, अब निर्वाण पदको प्राप्त होता हौं. हे दुःख ! तुझको भी नमस्कार है, तेरे उपदेशकारि मैं आत्मपदको प्राप्त हुआ हौं, काहेते कि, मैं सदा भोग सुखको चाहता था, जब सुख प्राप्त होता था, तब तुझको भी साथ ले आता था, सुखते तेरी उत्पत्ति होती है, सुखकी लालसाविषे तौ मैं अनेक जन्म पाता रहा अरु जब सुख आवै तब तुझको भी साथ ले आवै, तुझको देखिकारि मुझको आत्मपदकी इच्छा उपजी, तेरे प्रसादकारि मैं परम शीतल पदवीको प्राप्त हुआ हौं. हे दुःख ! तू तौ दुःख था, परंतु मुझको सुख प्राप्त किया, ताते तेरा कल्याण होवै तू अब जाउ. हे मित्र ! संसारविषे जीवना असार है, जिसका संयोग होता है, तिसका वियोग भी होता है अरु तुझने मेरे साथ बड़ा उपकार किया है, जो अपना नाश किया है अरु मुझको सुख प्राप्त किया है, जो तू मुझको प्राप्त न था, तौ मैं आत्मपदके निमित्त कब यत्न करता ? तुझने अपना नाश करना माना, परंतु मुझको सुख प्राप्त किया. हे

मित्र ! तू बांधवोंकी नाईं चिरकालपर्यंत मेरे साथ रहा, तू कदाचित् मुझते दूर न भया, मैं तेरा नाश नहीं किया, तुझने अपना नाश आप ही किया है, तू मुझको जब प्राप्त हुआ था, तब मुझको विवेकोत्पत्ति भयी, तिस विवेकने तेरा नाश किया है, ताते तुझको मेरा नमस्कार है. हे माता तृष्णा ! तुझको नमस्कार है, तू सदा मेरे साथ होइ रही है, कदाचित् त्याग नहीं किया, जैसे अयाने बालकका त्याग माता नहीं करती, तैसे तुझने मेरा त्याग नहीं किया, अब तू जा. हे कामदेव ! तुझने आप ही विपर्यय होकरि अपना नाश किया है, जब तू बहिर्मुख था, तब जीवता था, जब अंतर्मुख हुआ, तब तू मिट गया, तुझको नमस्कार है अरु हे सुकृतो ! तुमको नमस्कार है, तुमने भी बड़ा उपकार किया था, जो नरकोंसे निकास करि स्वर्गोंविषे प्राप्त किया था परंतु अंत सबका वियोग होना है, ताते तुम भी जाउ. हे दुष्कृतो ! तुम भी जाउ, विकर्मरूपी तुम्हारा क्षेत्र है अरु युवा अवस्था बीज है, तिसते नरक दुःख फल होता है, सो तुम्हारे साथ भी संयोग हुआ था, ताते तुमको भी नमस्कार है, तुम भी जाउ. हे मोह ! तुमको भी नमस्कार है, तुझकरि चिरकाल मैं बांधा था अरु नाना प्रकारके स्थानको प्राप्त होता था अरु तू भय दिखाता था, तिसकरि मैं भयको प्राप्त होता था, ताते तुझको नमस्कार है, अब तू जाउ. हे गिरिकंदरा ! तुझको भी नमस्कार है, तुझविषे मैं चिरकाल तप किया है. हे बुद्धि ! हे विवेक ! तुमको भी नमस्कार है, तुमने मेरे ऊपर उपकार किया है, जो संसार बंधनते मुक्त किया है, तुम भी जाओ. हे दंड ! अरु तुंबा ! तुमको भी नमस्कार है, तुम भी जाओ, बहुत काल तुम भी मेरे सम्बन्धी रहे हौ. हे देह ! रक्त मांसका पिंजर होइकरि तू मेरे साथ बहुत काल रहा है अरु तुझने उपकार किया है कि, विवेक उपजानेका स्थान तू ही है, तेरे संयोगकरि मैं परमपद पाया है, तू भी अब जा, तुझको नमस्कार है. हे संसारके व्यवहारो ! तुमको भी नमस्कार है, तुम्हारेविषे मैं बहुत क्रिया करी है, स्थान देश क्रिया कर्म किया है, ऐसा पदार्थ जगत्‌विषे कोई नहीं जो दिया लिया न होवैगा अरु ऐसा

कर्म कोई नहीं मेरेविषे जो किया न होवैगा अरु ऐसा देश कोई नहीं जो देखा न होवैगा, अब सबको नमस्कार है. हे इंद्रियो ! प्राण मन आदिक ! तुमको नमस्कार है, हमारा चिरकाल संयोग था, अब वियोग हुआ. काहेते कि, जिसका संयोग होता है; तिसका वियोग भी होता है; ताते तुम्हारा हमारा भी वियोग होता है, नेत्रोंकी ज्योति सूर्यमंडलविषे जाय लीन होवैगी, घ्राणोंकी गंध पृथ्वीविषे जाय लीन होवैगी, प्राण त्वचा पवनविषे जाय लीन होवैंगे, श्रवणके शब्द आकाशविषे लीन होवैंगे, मन चंद्रमाविषे लीन होवैगा, जिह्वा रसविषे लीन होवैगी, इसी प्रकार सब अपने अपने अंशविषे जाय लीन होवैंगे; जैसे लकडियोंके जलेते अग्नि शान्त हो जाती है, जैसे शरत्कालविषे मेघ शांत हो जाता है, जैसे तेलते रहित दीपक निर्वाण हो जाता है, जैसे सूर्यके अस्त हुए प्रकाश शांत हो जाता है, तैसे मन आदिक शान्त हो जावैंगे. हे रामजी ! ऐसे विचार करते करते मन सर्व कार्योंते रहित प्रणवके ध्यानविषे लगा, सर्व दृश्यते शान्त हो गया, मोहरूपी मलको त्यागिकरि चित्त प्रणवके विचारमें लगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवोपाख्यान इंद्रियनिर्वाणवर्णनं नाम षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमः सर्गः ८७.

वीतवनिर्वाणयोगोपदेशवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इस प्रकार शब्दब्रह्म प्रणवका उच्चार करत भया, पंचम भूमिका जो चित्तकी अवस्था है, तिसको प्राप्त भया है, अन्तर बाह्यके जो स्थूल सूक्ष्म पदार्थ हैं अरु त्रिलोकीके संकल्प सर्व त्यागिकरि अक्षोभरूप स्थित भया, जैसे चिंतामणि अपने प्रकाशविषे स्थित होती है, जैसे पूर्णकालकरि चंद्रमा अपने आपविषे स्थित भया है अरु जैसे मंदराचलके निकसे क्षीरसमुद्र स्थित भया है, जैसे मथनेते रहित मंदराचल स्थित भया है, जैसे कुंभारका चक्र फिरता फिरता ठहर जाता है, जैसे सूर्यके अस्त हुए व्यवहारक्रिया जीवोंकी ठहर जाती है

अरु जैसे मेघते रहित शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, जैसे प्रकाश तमते रहित आकाश होता है, तैसे फुरणेते रहित मन शांतिको प्राप्त भया प्रणवके ध्यान करिकै बहुरि तिस वृत्तिके अंतको प्राप्त भया मंत्रको भी त्यागता भया, जैसे महापुरुष क्रोधको त्यागता है, तैसे वृत्तिको त्यागत भया, बहुरि तेज प्रकाश उदय हुआ, तिसको भी निमेषविषे त्यागत भया, आगे न तेज है, न तम है, तिसविषे अभाववृत्ति रहती है, तिसको भी निमेषविषे त्यागता भया, तब जैसे नूतन बालककी जन्मके समय पदार्थज्ञानते रहित अवस्था होती है; तैसे अवस्था प्राप्त भयी, तब जो सत्तामात्र आत्मतत्त्व सुषुप्त पद है, तिसका आश्रय किया महा अचलजो सुमेरुकी नाई स्थिर अवस्था है, तिसको प्राप्त हुआ, बहुरि केवल अचेतन चिन्मात्रपद तुरीया निरानंद आनंद है, जिसविषे स्वरूपते इतर और आनंद नहीं, ऐसे आनंदको प्राप्त हुआ जो असत्सत्‌रूप है, सर्वक्रियाते अतीत है, इस कारणते असत है, अनुभवरूप है, इस कारणते सत्यस्वरूप है, ऐसे अशब्द पदको प्राप्त हुआ, जो परम शुद्धपावन पद है अरु सर्व भावके अंतर प्राप्त है अरु सर्व भाव शब्दते रहित है, जिसको शून्यवादी शून्य कहते हैं, ब्रह्मवादी ब्रह्म कहते हैं विज्ञानवादी जिसको विज्ञान कहते हैं, सांख्यमतवाले जिसको पुरुष कहते हैं, योगवाले जिसको ईश्वर कहते हैं, शैवी जिसको शिव कहते हैं, वैष्णव जिसको विष्णु कहते हैं, शाक्त जिसको परमशक्ति कहते हैं, कालवादी जिसको काल कहते हैं, आत्मवादी जिसको आत्मा कहते हैं अरु माध्यमिक जिसको मध्यम कहते हैं, इत्यादिक जो शास्त्रोंवाले कहते हैं, सो एक परब्रह्म कहेते हैं, काहते जो सर्वदा सर्वकाल सर्वप्रकार सर्वविषे सर्वरूप वही है, ऐसे सर्वात्माको वीतव मुनीश्वर प्राप्त भया, जिस आनंद समुद्रके बलकरि सर्वको आनंद होता है, ऐसे आत्मतत्त्व अनुभवरूप अपने आनंदको प्राप्त हुआ वहीरूप होत भया, जो अन्य है, निरन्य है, निरंजन है, सर्व है, असर्व है, अजर है, अमर है, सबकी आदि है, सकलंक है अरु निष्कलंक है, ऐसा जो आकाशते निर्मल पद है, तिसको वीतव मुनीश्वर प्राप्त हुआ.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवनिर्वाणयोगोपदेशो नाम सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमः सर्गः ८८.

वीतवविश्रांतिसमाप्तिवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! दुःखरूप संसार समुद्रके पार वीतव मुनीश्वर परमपदको प्राप्त हुआ, जिस पदके प्राप्त हुए जन्म मरणको बहुरि नहीं पाता, जिस पदविषे स्थित हुआ परमशांत उपशम आनंदको प्राप्त भया. जैसे समुद्रविषे बुंद पड़ी हुई समुद्र हो जाती है, तैसे ब्रह्मसमुद्रविषे ब्रह्म होत भया अरु शरीर जो वीतवका था, सो विरस होकारि गिर पडा, जैसे शीतकालविषे वृक्षोंके सूखे पत्र गिर पडते हैं, तैसे शरीर गिर पडा, शरीररूपी वृक्ष था, तिसविषे हृदयरूपी आलय था, तिसविषे प्राणरूपी पक्षी रहता था, सो चिदाकाशविषे प्राप्त हुआ; जैसे खंभाडीकारि पत्थर धावता है, तैसे जाय प्राप्त भया, अपने स्वरूपविषे स्थित हुआ. हे रामजी ! यह मैं वीतवकी कथा तुझको सुनाई है; सो अनंत विचारकारि युक्त है, इस प्रकार विचार कारि वीतव विश्रामवान् हुआ है, तुम भी उसको विचारिकारि सिद्धतासारको प्राप्त होउ, और दृश्यकी चिंतवनाको त्यागि सावधान होउ. हे रामजी ! जो कछु मैं तुझको पूर्व कहा है, सो तिसविषे प्राप्त हुआ बहुरि पाने योग्य कछु नहीं रहता अरु अब जो कछु कहता हौं, अरु जो कछु पाछे कहौंगा तिसको विचार कि, मुक्ति ज्ञानहीकारि होती है अरु ज्ञानहीकारि सब दुःख नाश होते हैं, ज्ञानहीकारि अज्ञान निवृत्त होता है अरु ज्ञानहीकारि परम सिद्धताको प्राप्त होता है, पाने योग्य यही वस्तु है, दुःखोंके नाश करनेको और कोई समर्थ नहीं, यह निश्चय है कि ज्ञानकारि सब फांस काटे जाते हैं, ज्ञानहीकारि वीतवने मनको चूर्ण किया. हे रामजी ! वीतवकी संवित् जगतके अतीत होत भयी, जेता कछु दुःख है, सो मनकारि होता है, मनके उपशम हुए सब जगत अनुभवरूप हो जाता है, वीतव भी मनोमात्र था, मैं भी मनोमात्र हौं, तू भी मनोमात्र है, पृथ्वी आदि जगत् सर्व मनोमात्र है, मनते इतर कछु नहीं, जहां मन होता है, तहां जगत् होता है, मन ही जगतरूप है अरु जगत् ही मनरूप है, जो

ज्ञानवान् पुरुष है, सो मनकी दिशाको त्यागिकरिकै केवल चिदानंद आत्मतत्त्वविषे स्थित होता है, रागद्वेष विकार आदि तिनके मिट जाते हैं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवविश्रांतिसमाप्तिर्नाम अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

एकोननवतितमः सर्गः ८९.

सिद्धिलाभविचारवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! वीतवकी नाईं विदितवेद्य होकरि राग द्वेषते रहित स्थित होउ, जैसे सहस्र वर्ष वीतव वीतशोक जीवन्मुक्त होकरि विचरा है, तैसे तू भी विचर; और भी बोधवान् राजा अरु मुनीश्वर हुए हैं, जैसे प्राप्त हुए राज्यादिक व्यवहारविषे रहे हैं, तैसे तू भी जीवन्मुक्त होकरि रहहु. हे रामजी! सुख दुःख कर्म आत्माको स्पर्श नहीं करते, आत्मा सर्वज्ञ है, तू किस निमित्त शोक करता है, बहुत विदित-वेद्य पृथ्वीविषे विचरते हैं, परंतु शोकको कदाचित् नहीं प्राप्त होते, जैसे तुम अब शोक नहीं करते. हे रामजी! तू अब स्वस्थ है, उदार है, सम सर्वज्ञ है; आत्मा है, तुझको बहुरि जन्म नहीं, जीवन्मुक्त पुरुष जो अपने स्वरूपविषे स्थित है, सो हर्ष शोकको नहीं प्राप्त होता है, जैसे सिंह वानर गीदड़ आदिकके वश नहीं होता, तैसे जीवन्मुक्त विकारोंते रहित होता है. राम उवाच-हे भगवन्! इस प्रसंगविषे मुझको संदेह हुआ है, तिसको निवृत्त करौ, जैसे शरत्कालकरि मेघ नष्ट हो जाता है, तैसे नाश करौ. हे तत्त्ववेत्ताविषे श्रेष्ठ! जीवन्मुक्तके शरीरविषे शक्ति क्यों नहीं दृष्टि आती जो आकाशविषे उड़ता फिरै अरु सूक्ष्मरूपकरि और शरीरविषे प्रवेश करि जावै, इत्यादिक शरीरविषे नहीं देखते. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! आकाशगमनादि जो सिद्धि हैं, सो तपादिक कर्मोंकी शक्ति हैं, जेते कछु जगत् विचित्र हैं; देखाई देना बहुरि गुप्त हो जाना इत्यादिक वस्तु द्रव्यके स्वभाव हैं, आत्माके ज्ञानके नहीं. हे रामजी! कोऊ द्रव्य क्रिया कालको यथाक्रम साधता है, तिसको शक्ति प्राप्त होती है,

ज्ञानी साधै अथवा अज्ञानी साधै शक्ति प्राप्त होती है, परंतु शक्ति आत्मज्ञानका फल नहीं, आत्मज्ञानीको आत्मज्ञानकी सिद्धता होती है, आत्माकरि आपविषे तृप्त होता है, सिद्ध जो अविद्यारूप है, तिसकी ओर नहीं धावता, जेता कछु जगत् है; सो तिसने अविद्यारूप जाना है, ऐसे जानकरि पदार्थोंविषे नहीं डूबता, जो अज्ञानी है, सो सिद्धताके निमित्त इन पदार्थोंको साधता है अरु जो ज्ञानवान् है, सो इन पदार्थोंके वास्ते यत्न नहीं करता अरु जो यत्न करै तौ ज्ञानी होवै, अथवा अज्ञानी होवै इंद्रादिकोंके ऐश्वर्यको पाता है अरु ज्ञानकी शक्ति नहीं, द्रव्यकी शक्ति है सो अविद्यारूप है, अज्ञानी इनकी ओर धावते हैं, ज्ञानवान् नहीं धावते, वे सर्वते अतीत हैं, सर्व इच्छाका जिसने त्याग किया है अरु आत्मपदविषे संतोष पाया है, वे इनकी इच्छा नहीं करते, इनकी इच्छा भोगों अथवा बड़ाईके निमित्त होती है अथवा मान अरु जीवनेके निमित्त तथा सिद्धिके निमित्त इच्छा होती है, आत्मज्ञानीको न भोगोंकी इच्छा होती है, न सिद्धता न मानकी इच्छा होती है, काहेते जो सब अनात्माधर्म है, वह नित्य तृप्त परम शांतरूप है, वीतराग निर्वासनिक पुरुष है अरु आकाशकी नाईं सदा अपने आपविषे स्थित है, जैसे सुख स्वाभाविक आता है, तैसे दुःख स्वाभाविक आता है; शरीरके सुख दुःखकी अवस्थाविषे चलायमान नहीं होता, नित्य तृप्त असंग होता है जीवन मरणकी वृत्ति उसको नहीं फुरती, सर्वविषे सम रहता है, समुद्रविषे नदियां प्रवेश करती हैं अरु समुद्र अपनी मर्यादाविषे स्थित है, तैसे ज्ञानवान्को क्षोभ नहीं प्राप्त होता. हे रामजी! जो कछु ज्ञानवान्को प्राप्त होता है, सो आत्माविषे अर्चन करते हैं, तिसको करनेविषे कछु अर्थ नहीं, अकरनेविषे कछु प्रत्यवाय नहीं होता अरु तिसको किसीका आश्रय नहीं, सदा अपने स्वरूपविषे स्थित है अरु यह जो सिद्धि हैं, सो मंत्र काल कर्मकारि होती हैं, एक योगक्रिया ऐसी होती है, तिसके साधनेकारि उडनेकी शक्ति हो आती है, एक मंत्रोंकारि शक्ति होती है, एक गुटका मुखमें रखनेकारि डड़नेकी शक्ति होती है, इत्यादिक शक्तिकी प्रथम ही नीति हो रहती है, तिसते अन्यथा नहीं होती.

हे रामजी ! जैसी शक्ति जिस साधनकरि नीति हुई है, तिसके अन्यथा करनेको सदाशिव भी समर्थ नहीं, काहेते जो स्वाभाविक स्वतःसिद्ध है, जैसे चंद्रमाविषे आदि नीति शीतलता है अरु अग्निविषे उष्णता है इत्यादिक पदार्थोंविषे आदि नीतिकरि जो स्वयंभाव हुआ है, तिसके दूर करनेको समर्थ कोऊ नहीं, सर्वज्ञ जो विष्णु भगवान् है, सो भी अन्यथा करनेको समर्थ नहीं होता. हे रामजी ! जिस द्रव्यविषे मारनेकी सत्ता है, सो मारता है मद्यविषे मत्त करनेकी शक्ति है, तैसे द्रव्य योग काल आदिकविषे सिद्धता शक्ति नीति हुई है, जैसे एक औषधमें क्लेश करनेकी शक्ति है, तिसके पायेते क्लेश होता है, जैसे इनविषे अपनी अपनी शक्ति है, जो इनको साधता है तिसको वह प्राप्त होती है, जो आत्मज्ञानी इनका साधन करे, वह करतेविषे भी अकर्त्ता है अरु आत्मज्ञानके पानेविषे सिद्धि कछु उपकार नहीं कर सकती. परंतु जो इनकी वांछा करै तौ यत्नकरिकै पाता है,यत्न विना नहीं पाता, आत्मज्ञानीको इच्छा भी नहीं होती, आत्मपरायण ही होता है, आत्मलाभकरि सर्व इच्छा तिसकी शांत हो जाती. हे रामजी ! जेते लाभ हैं तिनते परम आत्मलाभ है, आत्माको पाइकरि बहुरि इच्छा किसीकी नहीं होती, जैसे अमृतके पान किये और जलकी इच्छा नहीं करता, तैसे आत्माके लाभकरि और इच्छा नहीं होती, ऐसे आत्मलाभ जिनने पाया है तिनको इनकी इच्छा कैसे होवै, जैसी जैसी किसीको इच्छा होती है, तिसको तैसा ही प्राप्त होता है, ज्ञानी होवै अथवा ज्ञानते रहित होवै, इच्छा प्रयत्नके अनुसार प्राप्त होती है, यह जो वीतव था, तिसको इच्छा कछु न रही थी अरु प्रथम जो सूर्यपास गमनकी शक्ति इसविषे दृष्टि आई थी; सो क्रियाके साधनकरिके थी, पीछे जब ज्ञान उपजा तब इच्छा कछु न रही. हे रामजी ! जो कछु किसीको फल प्राप्त होता है, सो अपने प्रयत्नकरि होता है, जो ज्ञानवान् है सो सदा तृप्त रहता है, तिसको इष्ट अनिष्टकी इच्छा कछु नहीं फुरती. राम उवाच—हे भगवन् ! एता काल जो वीतव तीनसौ वर्ष समाधिविषे रहा, तब तिसका शरीर पृथ्वीसाथ पृथ्वी क्यों न हो गया अरु सिंह बघाडादिक उसको क्यों

भोजन न करि गये? अरु पाछे विदेहमुक्त हुआ, प्रथम क्यों न हुआ? जो पृथ्वीविषे दबे हुएको निकासने निमित्त बड़ा यत्न किया, इस संशयको निवारण करौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जो संवित् वासनासाथ बांधी हुई है, सो सुखदुःखको भोगती है अरु मलिन भावकरि आवरी हुई है अरु जो वासनाते रहित है, सो शुद्ध समतारूप है, सुखदुःखके भोगते रहित है, किसी कारणकरि छेदी नहीं जाती. हे रामजी! जिस जिस पदार्थविषे चित्त लगता है, सोई सोई पदार्थ स्वरूपविषे भासता है, यह पदार्थकी शक्ति है, जैसी पदार्थोंविषे शक्ति होती है, तैसी भासती है, इस कारणते बहुत वर्ष व्यतीत होते हैं, तौ भी समाधिके बलकरि तिसका शरीर ज्योंका त्यों रहता है, काहेते कि, चित्त जिस पदार्थविषे लगता है, तिसका रूप हो जाता है, जैसे मित्रको मित्रभावकरि देखता है, स्वाभाविक ही प्रसन्न होता है अरु शत्रुको देखिकरि चित्तविषे स्वाभाविक ही अप्रसन्नता फुरि आती है, मिष्ट वस्तुको देखिकरि चित्त स्वाभाविक लोलुप हो जाता है, कटुकविषे विरसताको प्राप्त होता है, जैसे मार्ग चलनेवालेका चित्त मार्गके पर्वत वृक्षोंके रागकरि बंधायमान नहीं होता अरु जैसे चंद्रमाके निकट गयेते शीतलता होती है, सूर्यके निकट उष्णता प्राप्त होती है, सो पदार्थकी शक्ति है, जिस पदार्थसाथ वृत्तिका स्पर्श होता है, तिसका स्वाभाविक आरंभ विफल प्राप्त होता है, तैसे जब योगी देह इंद्रियोंकी वासना ममत्वभावको त्याग कर समभावविषे प्राप्त होता है, तब तिसको समभावका अनुभव होता है. अर्थ यह कि, सर्वविषे एक ही भासता है, इस कारणते शरीरको सिंहादि कछु कोऊ छेदि सकते नहीं, जो जीव उसके घात करनेको आते हैं, सो हिंसाभावको त्यागि देते हैं, अहिंसक हो जाते हैं, इस कारणते निकट आय शांत हो जाते हैं, वीत-वका शरीर छेदनको न प्राप्त भया; न पृथ्वीविषे पृथ्वी हो गया, सर्वत्र समता आकाश एक ही स्थित है, काष्ठ लोष्ट पत्थर ब्रह्मादि तृणपर्यंत सर्वविषे एक अनुस्यूत है अरु जहां पुर्यष्टका होती है, तहां भासता है, जहां पुर्यष्टका नहीं होती, तहां नहीं भासता, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब सब ठौरविषे पूर्ण है, परंतु जहां स्वच्छ ठौर दर्पण जलते आदि लेकरि होते हैं सो

भासते हैं, जहां उज्ज्वल ठौर नहीं होता, तहां प्रतिबिंब नहीं भासता, तैसे जहां पुर्यष्टका है, तहां संवित् भासती है, अन्यथा नहीं भासती, इस कारणते जो वीतवकी संवित् समभावविषे स्थित है, उसको किसी तत्त्वका अरु जीवका क्षोभ नहीं होता अरु पञ्च तत्त्वोंका क्षोभ तब होता है, जब प्राण फुरते हैं, जब प्राण फुरणेते रहित होता है, तब तत्त्वोंका क्षोभ नहीं होता, सो वीतवकी बाह्य अरु अन्तर स्पन्दकला प्राणोंकी शांति हो गयी थी, प्राण अरु चित्तकला दोनों फुरणेते रहित थीं इसका हृदय भी क्षोभित न भया. हे रामजी! देहरूपी गृहविषे चित्त अरु वायुका स्पन्द शांत हो जाता है, जब इनका फुरना शांत होता है, तब शरीर नाश हो जाता है, तब सब सुमेरुकी नाईं स्थित हो जाते हैं, किसीकी समर्थता नहीं जो तिसको क्षोभ करै अरु नाश करै, योगीश्वरका चित्त अरु प्राण निस्पन्द हो जाता है, सो इनको वश करिकै जुड़ता है, तब उसको न तत्त्वोंका क्षोभ होता है, न वात पित्त कफका क्षोभ होता है, न और कछु क्षोभ होता है, इसकरिकै योगीका शरीर सहस्रवर्षपर्यंत भी ज्योंका त्यों रहता है, नष्ट नहीं होता है, जैसे वज्रको कोऊ चूर्ण नहीं कर सकता, तैसे तिसके शरीरको कोऊ नाश नहीं कर सकता, सबकी शक्ति तिसके ऊपर कुंठित हो जाती है, इस कारणते वीतवका शरीर ज्योंका त्यों रहा अरु तब क्यों न विदेह मुक्त हुआ सो सुन. हे रामजी ! तत्त्वज्ञ विदितवेद्य वीतराग महाबुद्धि हैं, जिनकी अभिमानरूपी गांठ टूट पड़ी है, सो पुरुष स्वतंत्र स्थित होता है, तिनको न कोऊ प्रारब्ध कर्म है, न संचित कर्म है न वर्तमानका कर्म है, सबते मुक्त तत्त्ववेत्ता स्वतंत्र स्थित होते हैं अरु स्वेच्छ विचरते हैं, जैसी इच्छा करै तैसी शीघ्र होती है. हे रामजी ! वीतवको आकाशमात्रते जीवनेका स्पन्द फुर आया, तब केताक काल जीवता रहा, जब उसकी संवित्‌विषे विदेह मुक्त होनेका स्पन्द फुरा, तब विदेह मुक्त हो गया, उनकी स्थिति स्वाभाविक स्वतंत्र होती है, जिसकी वांछा करता है सो तत्काल हो जाता है, मन आत्मपदविषे स्थित होता है, उनको कछु कृत्य कर्तव्य नहीं.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सिद्धिलाभविचारो नाम एकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

नवतितमः सर्गः ९०.

दानविचारवर्णनम्।

राम उवाच-हे भगवन्! जब विचारकरि वीतवका चित्त शांत हो गया, तब उसको मैत्री करुणा आदिक गुण आन प्राप्त हुए, यह तुमने कहा, परन्तु जब विवेक करिकै चित्त उसका नष्ट हो गया, बहुरि मैत्री आदिक गुण कहां आनि प्राप्त भये. वसिष्ठ उवाच हे-रामजी! चित्तका नाश दो प्रकारका है; जीवन्मुक्तका चित्त अचित्तरूप हो जाता है अरु विदेहमुक्तका चित्त स्वरूपते नष्ट हो जाता है, जैसे भूना दाना होता है, तैसे जीवन्मुक्तका चित्त देखनेकरि चित्तरूप है, सो बीचते शब्दभाव नहीं अरु जैसे दाना नष्ट हो जावै तैसे विदेहमुक्तका चित्त है, सो देखनेमात्र भी नहीं रहता. हे रामजी! जो चित्तकी सत्यता है, सो दुःखोंका कारण है अरु चित्तकी असत्यता सो सुखोंका कारण है, चित्तविषे विषयोंकी वासना फुरती है, सो चित्त जन्मोंके देनेहारा है अरु दुःखोंका कारण है, गुणोंके संगकरि अहं मम भावविषे रहता अरु चित्तकी सत्यताकरि जीव कहाता है. हे रामजी! जबलग चित्त विद्यमान है, तबलग अनन्त दुःख होता है, दुःखरूपी वृक्षका बीज चित्त है, जब चित्त नष्ट हुआ तब कल्याण हुआ. राम उवाच-हे ब्राह्मण! मन किसका नाम हुआ अरु कैसे नष्ट होता है अरु अस्त कैसे होता है? सो कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे प्रश्नवेत्ताविषे श्रेष्ठ! चित्तसत्ताका लक्षण मैं तेरेको कहा है, अब चित्त-मृतकका लक्षण सब सुन, सुख अरु दुःखकी दिशा जिसके धैर्य-स्वरूपको चलाय नहीं सकती, जैसे सुमेरुको पवन चलाय नहीं सकता, तैसे जिसके चित्तको दुःख चलाय नहीं सकता, तिसका मृत्यु जान. अर्थ यह कि, वह चित्त सत्पदको प्राप्त भया है, उस चित्तते चिंता नाश हो गयी है, जैसे भूने दानेते अंकुर नाश हो जाता है, तैसे उसका चित्त नाश हो जाता है, आत्माते इतर जिसको कछु नहीं फुरता सो चित्त मृतक हुआ है. हे रामजी! अहम् इच्छा द्वेषादिक

विकार जिसके चित्तको तुच्छ करि सकैं नहीं, तिसका चित्त मृतक जान अरु जिसको इंद्रियोंके विषय इष्ट अनिष्ट प्राप्त होवैं अरु रागद्वेषकरि ग्रहण त्यागकी द्वैतभावना न उपजै, ज्योंका त्यों रहै, तिस पुरुषका चित्त मृतक जान, जिसका चित्त नाश न हुआ है, सो जीवन्मुक्त जान अरु जिसको संसारके इष्ट पदार्थोंविषे राग होता है, तिसकरि ग्रहणकी इच्छा करता है अरु अनिष्टकी प्राप्तिविषे दोषकरिकै त्यागनेकी इच्छा करता है, अहं ममभाव संयुक्त देहविषे अभिमान है. तिसकरि आपको सुखी दुःखी मानता है, अपने विषे अनुभव होता है सो चित्त जीवता है, यह चित्त सत्यता है अरु जब चित्त संसारते विरक्त होवै अरु जब चित्त सत्संग करै, सच्छास्त्रोंका श्रवण मनन करै अरु स्वरूपका अभ्यास करै, तब चित्त अचित्त हो जाता है अरु परमानंदकी प्राप्ति होती है, तब जीवन्मुक्त होकरि विचरता है अरु मैत्री आदिक गुण जिस प्रकार जीवन्मुक्तविषे होते हैं, सो सुन. हे रामजी ! चित्तविषे जो संसारकी सत्यतारूपी मैल है, यही चित्तभाव है, सो आत्मज्ञानकरि नष्ट हो जाता है तब मैत्री आदिक गुण आनि प्राप्त होते हैं, जैसे सूर्यके उदय हुए तम नष्ट हो जाता है अरु प्रकाश उदय होता है अरु जैसे भूने दानेका अंकुर जलि जाता है, तैसे ज्ञानकरि चित्तका चित्तत्वभाव नष्ट हो जाता है अरु मैत्री आदिक गुण उदय होते हैं; देखनेमात्र चित्त देखता है, अज्ञानीकी नाईं यत्न करता भासता है, परंतु अज्ञानीका चित्त जन्मका कारण है, ज्ञानीका चित्त जन्मका कारण नहीं, जैसे कच्चा दाना उगता है, भूना नहीं उगता, तैसे अज्ञानी जन्मता है, ज्ञानी नहीं जन्मता, जैसे चन्द्रमा राहुते छूटता है, तब चित्तविषे मैत्री करुणा आदिक गुण आनि उदय होते हैं, जैसे वसंतऋतुके आये वल्लियां सब प्रफुल्लित हो आती हैं, तैसे चित्तभाव मिटेते मैत्री आदिक गुण स्वाभाविक आनि फुरते हैं अरु जो विदेहमुक्त होता है, तिसका चित्त स्वरूपते भी नष्ट हो जाता है, वहां गुण कोई नहीं रहता, वह अवस्था और कोई नहीं जानता, विदेहमुक्त जानता है, तिसविषे द्वैतकल्पना कछु नहीं फुरती, निर्मल पावन पद है. हे रामजी ! जीवन्मुक्तका चित्त स्वरूपविषे

अचित्त होकरि रहता है अरु विदेहमुक्तविषे चित्त स्वरूपते नष्ट हो जाता है, इस कारणते जीवन्मुक्तविषे मैत्री आदिक गुण पाते हैं, विदेहमुक्तविषे आत्मा निर्मल निष्कलंक है, सो चित्तके नष्ट हुए विदेहमुक्तविषे रहता है, गुणोंकी कल्पना तिसविषे कोई नहीं फुरती, परम पावन निर्मल पदविषे स्थित होता है अरु शांति आदिक गुण भी नष्ट हो जाते हैं, काहेते कि, चित्त स्वरूपते नष्ट हो जाता है, चित्तके नष्ट हुए चित्तकी अवस्था कहां रहै, न कोऊ गुण रहता है, न अवगुण रहता है, न वह गुणोंते उत्पन्न भया सार कहाता है, न अवगुणोंते उत्पन्न भया असार कहाता है, न लोलुप है, न लक्ष्मी है, न अलक्ष्मी है, न उदय है, न अस्त है, न हर्ष है, न शोक है, न तेज है, न तम है, न दिन है, न रात्रि है, न संध्या है, न दिशा है, न आकाश है, न अर्थ है, न अनर्थ है, न वासना है, न अवासना है, न अंजन है, न निरंजन है, न सत्य है, न असत्य है, न चंद्रमा है, न तारे हैं, न सूर्य है, ऐसा जो सर्वकलनाते रहित पद है; शरत्कालके आकाशकी नाईं निर्मल है अरु बुद्धिते परे पद है, तिसविषे औरकी गम नहीं, जैसे आकाशके स्थानको पवन जानता है, तैसे उसकी अवस्थाको वही जानै, तहां स्थित हुए सर्व दुःख शांत हो जाते हैं, ब्रह्मानंदविषे लीन हो जाता है, ज्ञानवान् आकाशकी नाईं निर्मल पदको प्राप्त होता है, जिसके पायेते और पाना कछु नहीं रहता.

इति श्रीयोगवासिष्ठ उपशमप्रकरणे ज्ञानविचारो
नाम नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

एकनवतितमः सर्गः ९१.

स्मृतिबीजविचारवर्णनम्।

राम उवाच-हे भगवन्! परमाकाशके कोशविषे एक पहाड है, तिसके ऊपर एक जगत्‌रूपी वृक्ष है, तारे तिसके फूल हैं अरु मेंदु पत्र

हैं, सूर्य चद्रमा स्कन्ध हैं, देवता दैत्य मनुष्यादिक जीव सब तिसऊपर पखेरू रहते हैं, सप्त समुद्र तिसके पास बावडियां हैं, अनन्त नदियां तिसविषे प्रवेश करती हैं, चतुर्दश प्रकारसे भूतजात उत्पन्न होते हैं, सुखदुःखरूपी फलोंकरि पूर्ण है, मोहरूपी जलकरि सींचता है, सो दृढ होकारि स्थित हुआ है, तिसका बीज कौन है ? यह ज्ञानरूपी बोधकी वृद्धिके निमित्त मुझको संक्षेपते कहौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इस संसारका बीज बडा शरीर है, जिसके अन्तर आरंभकी घनता है, जब शुभ अशुभका आरम्भ शरीरका अंकुर होता है, तब शुभ अशुभ करता है, तातें संसारका बीज शरीर है, तिस शरीरका बीज चित्त है, राजस सात्त्विक तामस वृत्ति जिसके टास हैं अरु जन्ममरणका भंडार है अरु सुखदुःखरूपी रत्नका डब्बा है, ऐसा जो चित्त है, सो इस शरीरका कारण है. हे रामजी ! जेता कछु जगज्जाल दृष्टि आता है, सो सब असतरूप है, चित्तके फुरणेकरि नाना प्रकारके आडम्बर भासते हैं, जैसे गन्धर्वनगर नाना प्रकारके आरंभसहित भ्रमकरिके भासते हैं, जैसे संकल्पपुर भासता है सो असत् है, तैसे यह जगत् असत् है, जैसे मृत्तिकाविषे घट भाव होता है, तैसे चित्तविषे जगत्का सद्भाव होता है, चित्तरूपी अंकुरके वृत्तिरूपी दो टास होते हैं, एक प्राणोंका, दूसरा दृढभावना, जब प्राणस्पंद होती है, हृदय गात्र जो है, इकहत्तरसौ नाडी हैं, जब तिनकी ओर संवेदनरूप चित्त उदय होता है, तब प्राणस्पन्द तिनकी ओर नहीं फुरता, जब प्राण फुरता है, तब शुद्ध सात्त्विक चित्त आनि उपजता है, तिसविषे जगत् भासता है, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे प्राणविषे नीलता भासती है, जब प्राणस्पन्द होता है, तब चित्त संवित् उछलती है, जैसे हाथकरि ताडन किया गेन्द उछलता है, जैसे प्राणस्पन्दविषे सर्वगत संवित् उपलब्धरूप होती है, तहां प्रतिबिंबितरूप होकारि सात्त्विक भागविषे स्थित होती है, महासूक्ष्मते सूक्ष्म है, जैसे वायुविषे गंध रहती है, सोई संवित्‌रूपको त्यागिकरि बहिर्मुख धावती है, तिसकरि नाना प्रकारका जगत् भासता है,

अरु नाना प्रकारकी वासना उठती है, तिस करिकै अनेक दुःखोंको प्राप्त होता है. ताते हे रामजी! संवित्को अन्तर्मुख रोकना कल्याणका कारण है, जब संवित् स्वरूपविषे स्थित होती है, तब क्षोभ मिट जाता है, जब शुद्ध संवित्विषे अहम् उल्लेख फुरता है, तब वेदनरूप होती है, सो चित्त है, चित्तकरि अनेक दुःख होते हैं, चित्तका होना अनर्थका कारण है, जब चित्त न उपजै, तब शांति हो जाती है अरु चित्त तब निवृत्त होता है, जब प्राणस्पंद रोकिये अथवा वासना नष्ट होवै, सो ध्यान अरु प्राणायामकरि योगीश्वर प्राणोंको रोकता है, तब चित्त स्थित हो जाता है, यह योगकरि अनुभव करता है अरु ज्ञानकरि भी अनुभव सुन. हे रामजी! चित्त वासनाकरिकै उत्पन्न होता है, सो वासना विचारते रहित फुरती है, जैसे बालकोंको जन्मते ही स्तनोंते दूध चूसनेकी वृत्ति फुरती है, तैसे अकस्मात् भावनाकी दृढतासों वासना फुरि आती है. हे रामजी! जिसविषे पुरुषकी तीव्र भावना होती है, सोई रूप पुरुषका होता है, स्वरूपके प्रमादकरिकै भासा है, तिसविषे दृढ प्रतीति हो गयी है, तिसकी भावना करता है, जगत्की वासनाकरि मोहको प्राप्त भया है, जो स्वतः सिद्ध अनुभवरूप आत्मा है तिसको जानि नहीं सकता अरु वासनाकी प्रबलता करि स्वरूपका त्याग किया है अरु भ्रांतिरूप जगत्को सत्य देखता है, जैसे मद्यकरि मत्तको पदार्थ विपर्यय हुए औरके और भासते हैं, तैसे मूर्खोंके वासनाके बलकरि जगत्के पदार्थ सत्य भासते हैं. हे रामजी! असम्यक्ज्ञानकरि जीव दुःखी होता है, शांतिको नहीं प्राप्त होता, मनकी चिंताकरि जलते हैं; मन किसका नाम है, सो श्रवण कर, जो असम्यक् ज्ञानकरि अनात्माविषे आत्मभावना होवै अरु वस्तु आत्माविषे अवस्तु अनात्मभावना होवै, तिसका नाम मन है, सो मन कैसे उत्पन्न होता है चेतन संवित्विषे जो पदार्थोंकी चिंतवना होती है, बहुरि तीव्र पदार्थकी दृढ भावना होती है, तब वही चेतनसंवित् चित्तरूप हो जाती है, तिस चित्तविषे बहुरि जन्म मरण आदिक विकार उपजते हैं, बहुरि किसीका ग्रहण किसीका त्याग करता है, जब ग्रहण अरु त्यागका

संकल्प अंतरते निवृत्त होवै, तब चित्त भी मृतक हो जावै; जब वासना नष्ट हो जाती है; तब मन अमन पदको प्राप्त होता है, मनका अमन होना परम उपशमका कारण है. हे रामजी ! जेते कछु जगत्के पदार्थ हैं, तिनकी अभावना करिये अरु सब जगत् भूतकरि त्यागिये, तब हृदय आकाशविषे चित्त शांत हो जावै. हे रामजी ! चित्तका स्वरूप एता मात्र है, जब पदार्थोंते रस उठि जावै, तब चित्त बहुरि नहीं उपजता, जबलग पदार्थोंका रस फुरता है, तबलग स्थूल हो जाता है, असम्यक् ज्ञानकरि जो अनात्माविषे आत्मभावना है, ज्यों ज्यों यह दृढ़ होती है, त्यों त्यों चित्तरूपी वृक्ष अनर्थके निमित्त बढ़ता जाता है अरु ज्यों ज्यों अनात्मासों आत्मबुद्धि निवृत्त हो जाती है, जो अवस्तुविषे वस्तुबुद्धि न होवै, त्यों त्यों चित्तरूपी वृक्ष क्षीण हो जाता है, सो कल्याणके निमित्त हैं, जब चित्त यथाभूत यथार्थको देखता है, तब चित्त अचित्त हो जाता है अरु सर्व आशा निवृत्त हो जाती हैं, परम शांति शीतलता हृदयविषे स्थित होती है, तब पदार्थोंको ग्रहण भी करता है, परंतु अंतरते रागसंयुक्त वासना निवृत्त भयी है, तिसकरि चित्त शांतिको प्राप्त होता है. हे रामजी ! जीवन्मुक्तविषे भी चेष्टा दृष्टि आती है, परंतु जन्मका कारण नहीं होती, काहेते कि मनविषे मनका सद्भाव नहीं, जैसे नटुआ अभिमानते रहित अनेक प्रकारके स्वांग धारता है, तैसे वह अभिमानते रहित चेष्टा करता है, जैसे कुंभारका चक्र भ्रमता ताडनाते रहित हुआ शनैः शनैः स्थिर हो जाता है, तैसे ज्ञानवान्का चित्त चेष्टा करता दृष्टि भी आता है, परंतु जन्मका कारण नहीं, जब प्रारब्ध भोग वेग पूर्ण होवैगा, तब स्वाभाविक ठहरि जाता है, जैसे भूना बीज नहीं उगता, तैसे रागते रहित ज्ञानीकी चेष्टा है. जैसे भूना बीज नहीं होता, देखनेमात्र ज्ञानीकी चेष्टा तुल्य होती है, जैसे भूना अरु काचा बीज एक समान भासता है, परंतु काचा उगता है, भूना नहीं उगता, तैसे ज्ञानीकी चेष्टा जन्मका कारण नहीं होती, काहेते कि चित्त शांत हो जाता है. हे रामजी ! जिसकी चेष्टा

अभिमानते रहित है सो जीवन्मुक्त कहाता है, तिसका चित्त केवल चिन्मात्रको प्राप्त हुआ है, जब शरीरको त्यागता है, तब अचित्तरूप चिदाकाश होता है. हे रामजी! चित्तके दो बीज हैं, एक प्राणोंका फुरणा, दूसरा वासनाका फुरणा, दोनोंविषे जब एकका अभाव हो जाता है, तब दोनों नाश हो जाते हैं, ये परस्पर कारणरूप हैं, जैसे तालते मेघ जलपानकरि जाता है, बहुरि वर्षाकरि ताल पुष्ट होता है, सो परस्पर कारणरूप हैं, तैसे प्राणस्पंद अरु वासना परस्पर कारणरूप हैं, जैसे बीजते अंकुर होते हैं अरु अंकुरते बीज होते हैं, तैसे प्राणस्पंदते वासना होती है अरु वासनाते प्राणस्पंद होता है, ये दोनों चित्तका कारण हैं, जैसे फूल विना सुगंधि नहीं होती, सुगंधि विना फूल नहीं होता, तैसे वासना विना प्राण नहीं होते, प्राण विना वासना नहीं होती. हे रामजी! जब वासना फुरती है, तब संवितविषे क्षोभ होता है, वह प्राणोंको जगावती है, तिसकरि जगत् उपजता है, जब हृदयविषे प्राणस्पंदके धर्म होते हैं, तब संवित् क्षोभ होता है अरु चित्तरूपी बालक उपजता है, इस प्रकार वासना अरु प्राण दोनों चित्तका कारण हैं, दोनोंविषे एकका नाश होवै, तब दोनों नाश हो जावैं अरु चित्तका भी नाश हो जावै. हे रामजी! चित्तरूपी एक वृक्ष है; सुख दुःखरूपी तिसके स्कंध हैं, चितारूपी फल हैं, कार्यरूपी पत्र हैं, वृत्तिरूपी वल्लीसे वेष्टित हुआ है अरु रागद्वेषरूपी दोनों बगले ऊपर आनि बैठे हैं अरु तृष्णारूपी काली सर्पिणी करि वेष्टित किया है अरु इंद्रियांरूपी पक्षी तिसपर आनि स्थित होते हैं, इच्छादि रोगोंकरि पुष्ट होता है, अज्ञान इसका मूल है, अवासनारूपी खड्गकरि शीघ्र ही काटा जाता है, संसारकी अभावना अरु स्वरूपकी भावनाकरि शीघ्र ही नाश हो जाता है, जैसे तीक्ष्ण पवनकरि पका फल वृक्षसों शीघ्र ही गिर पड़ता है, तैसे आत्मभावकरि फल गिर पड़ता है. हे रामजी! चित्तरूपी आँधी है, सर्व दिशा तिसने मलिन करी हैं, प्रकाशको आच्छादि लिया है अरु तृष्णारूपी तृण तिसविषे पड़े उछलते हैं अरु शरीररूपी स्तंभाकार अज्ञानरूपी कुंडेते उपजा हुआ, वायु विरोला

बड़े क्षोभको प्राप्त करता है, जब अन्तर प्रकाश होवै, तब तम दूर करै, जब स्पन्द रोकिये तब धूलि शांत हो जाती है, आत्मविचारते जब वासनाते रहित होवै, तब शरीर रूपी धूलि शांत हो जावै. हे रामजी! प्राणोंके रोकनेकरि शांति होती है अरु वासनाके अनउदयते चित्त स्थिर हो जाता है, प्राणस्पन्द अरु वासनाका बीज संवेदन है, जब शुद्ध संवित्मात्रविषे संवेदनका त्याग करै, तब वासना अरु प्राण दोनों न फुरैं, जैसे वृक्षका बीज मूल काटिये तब बहुरि नहीं होता, तैसे इनका मूल संवेदन है; जब संवेदनका अभाव होवै, तब दोनों नहीं बनते, संवेदनका बीज आत्मसत्ता है, संवित् सत्ताते संवेदन प्रगट भया है, तिसते इतर नहीं. जैसे तिलों विना तेल नहीं पाता, अंतर बाह्य और कछु नहीं, सब संवितसत्ता विना अंतर नहीं पाता, वही संकल्पद्वारा संवेदनको देखती है, जैसे स्वप्नविषे अपनी मृत्युको देखता है, देश देशांतरको प्राप्त होता है, तैसे सब सत्ता संवेदनको देखती है, संवित् चिन्मात्रविषे संवेदनका उत्थान होता है, जो अहमस्मि तब संवेदन जगज्जाल दिखावती है, अपनी संवेदन उठिकरि आपको भ्रम दिखाती है, जैसे बालकको अपने संकल्पते उपजा वैताल सत्य भासता है, जैसे स्थाणुविषे पुरुष भासता, तैसे संवित्विषे संवेदन भासती है. हे रामजी! असम्यक् ज्ञानकरिकै संवेदनरूप हो जाती है, तिसविषे आत्मबुद्धि होती है अरु सम्यक् ज्ञानकरिकै लीन हो जाती है, जैसे जेवरीविषे असम्यक् ज्ञानकरिकै सर्प भासता है, तैसे आत्माविषे संवेदन भासती है, तीनों जगत ब्रह्म संवितरूप हैं, संवेदन भी कछु भिन्न नहीं, यह निश्चय जिसको दृढ़ होवै, इसको बुद्धीश्वर सम्यक्ज्ञान कहते हैं, जो प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष जगत् है, तिससों वास्तव बुद्धि त्याग करनी, इसकरि भी संसारके पारको प्राप्त होवैगा अरु जो अवस्तु बुद्धिकरि न त्यागैगा, तौ जगत् बडे विस्तारको पावैगा. हे रामजी! संवेदनका जो उत्थान होता है, सो बडे दुःखोंको देनेहारा है अरु संवेदन जो जडवत् अजड है, सो परम सुखसंपत्तिका कारण है, सो आनंद उत्थानते रहित आनंदस्वरूप है, जिसको संवेदन उत्थानते

रहित असंवेदन संवित् आत्माकी बुद्धि हुई है, सो संसारसमुद्रके पारको प्राप्त होता है. राम उवाच-हे प्रभो ! जडताते रहित असंवेदन कैसे होता है अरु असंवेदनकारिकै जडता कैसे निवृत्त होती है ? वसिष्ठ उवाच-हे रामजी ! जो सर्व ठौरविषे आसक्त नहीं होता अरु कहूँ चित्तकी वृत्ति नहीं लगती अरु जीवतत्त्वका ज्ञान कछु न रहै, सो असंवेदन जडताते रहित है, संवेदन जो है, स्पन्दरूप जिसकारि दृश्य भासता है, सो दृश्यकी ओरते जड है अरु स्वरूपविषे चेतन है, सो अजड कहाता है. हे रामजी! हृदयाकाश जो चेतन संवित् है, तिससाथ संवेदनका स्पर्श कछु न होवै, ऐसा संवित् अजड है देवता भी वही है, नाग, दैत्य, राक्षस, हस्ती अरु मनुष्य आदिक स्थावर जंगमरूप सब वही धारि रहती है. हे रामजी ! अपनी चेष्टाकारिकै संवित् आपको आप ही बँधावती है, जैसे घुराण आप ही आपको गृहविषे बँधावती है, तैसे संवित् आपको बँधावती है, अरु अपनी ओर आती है; तब आप ही आपको प्राप्त होती है. हे रामजी ! जगत् जाग्रतरूपी समुद्र है, संवितरूपी तिसविषे जल है, तिसकारि सब स्थान पूर्ण हो गये हैं; अन्तरिक्ष पृथ्वी आकाश पर्वत नदियां आदिक सब संवितरूपी जलकी लहर हैं ताते सर्व जगत् संवितमात्र है, तिसविषे द्वैत कलनाका अभाव है, यह सम्यक् ज्ञान है, इस संवितका बीज सन्मात्र है, सन्मात्र सत्ताते संवितका उदय होना हुआ है, जैसे प्रकाशते ज्योति उदय होती है अरु इस सत्ताके दो रूप हैं, एक रूप नाना प्रकार हो भासता है, द्वितीय एक ही रूप है, घट पट तत्त्व आदिक एक सत्ताके नाना प्रकारके विभाग स्थित हैं अरु विभागते रहित एक सत्ता स्थित है, सो सत्ता सामान्य अद्वैतरूप परमार्थ सत्ता है. हे रामजी! विषयको त्यागिकारि जो सन्मात्र है सो अलेप एकरूप है, सो महासत्ता है; तिसको ज्ञानवान् परमसत्ता कहते हैं अरु नाना आकार भी सत्ता कबहूँ नहीं धारती, यह संवेदन करिकै हुए हैं, इस कारणते अवस्तुरूप है, एकरूप जो परम सत्ता निर्मल अविनाशी है, न कबहूं नाश होती है, न विस्मरण होती है, काहेते अनुभवरूप

है. हे रामजी! एक कालसत्ता एक आकाशसत्ता है सो यह सत्ता अवस्तुरूप हैं, इस विभागसत्ताको त्यागिकारि सन्मात्रसत्ता जो है; तिसी परायण होउ, कालसत्ता आकाशसत्ता यद्यपि उत्तम है, परंतु वास्तव नहीं. जहां नाना विभाग कलना आकार अरु नाना कारण हैं, सो पवित्रकर्ता पावन नहीं इसीते कहा है कि, आकाश काल आदिक सत्ता वास्तव नहीं अरु सत्ता सामान्य जो संवित्‌मात्र है, सो सर्वका बीज है, तिसते सबकी प्रवृत्ति होती है. हे रामजी! जेते कछु पदार्थ हैं, तिनकी जो कलना सत्ता सामान्य पर्यंत है, तिस परमपद आनंद अनादि बीजरूपका बीज और कोई नहीं, जब तिसका भान होवै, तब यह निर्विकार होकारि स्थित होवै, तिसको जीवन्मुक्त कहते हैं, जब दृश्यकी भावना कछु न फुरै, जैसे बालक मूक (गूंगा) होता है, अभिमानते रहित होता है, तैसे ज्ञानकारिकै यह निर्वासनिक होवै, तब जड़ताते मुक्त होता है अरु सर्व आत्मभावको प्राप्त होता है अरु जिस संवितविषे दृश्यका स्पर्श होता है, सो संवित जड़ है, काहेते कि, शुद्ध स्वरूपविषे मालिन्यका स्पर्श होता है, इसीते जड है अरु जो संवित् द्वैत फुरणेते रहित है, सो शुद्ध है अरु अजड है अरु जो द्वैतभावको ग्रहण करती है, सो स्वरूपकी ओरते जड़ है. हे रामजी! जिसको स्वरूपकी ओर स्थिति भयी है अरु दृश्यभावका लेप नहीं होता, सो सर्व वासनाको त्यागिकारि निर्विकल्प समाधिविषे जुडता है, जैसे आकशविषे नीलता स्वाभाविक वर्त्तती है, तैसे योगी आनंदविषे वर्त्तता है अरु निःसंवेदन संवित्‌विषे नष्ट होता है वहीरूप हो जाता है मनकी वृत्ति तहां स्थिर हो जाती है, बैठते, चलते, स्पर्श करते, सुगंध लेते, देखते, सुनते सब इंद्रियोंकी क्रिया करते भी मन स्थिर रहता है, दृश्यका अभिमान नहीं फुरता सो अजड कहाता है, संवेदनते रहित सुखी होता है. हे रामजी! ऐसी दृष्टि प्रथम तो कष्टरूप भासती है, परंतु सब दुःखको नाश कर्त्ता होती है, ताते इसी दृष्टिको आश्रय करके दुःखरूप जो संसारसमुद्र तिसको तरि जाउ. कैसा संसार है, जैसे वटका बीज सूक्ष्म है, विस्तारको पाइकारि आकाशको स्पर्श करनै

लगता है, तैसे सूक्ष्म संवेदनते जब संकल्प पसरता है, तब वही बड़े जगत्के विस्तारको धारती है अरु जन्मके जालको प्राप्त होती है, बीजरूपकरि आप ही जन्मोंविषे डारता है बहुरि बहुरि मोहविषे गिरता है, जब संवित् अपनी ओर होती है, तब मोक्षको प्राप्त होता है, जैसी भावना स्वरूपविषे दृढ होती है, सोई सिद्ध होती है, जैसे नटुआ अनेक स्वांगको धारता है, तैसे संवित् अनेक आकारोंको धारती है जब नट भूमिकाको त्यागता है, तब अपने स्वरूपविषे प्राप्त होती है. हे रामजी! संवित्रूपी नटिनी है अरु जगत्रूप धारिकरि नृत्य करती है अरु जो दुःखरूप संसारसमुद्रविषे गिरे नहीं, सो सत्ता सब कारणोंका कारण है, तिसका कारण कोई नहीं अरु सर्व सारोंका सार है, तिसका सार कोई नहीं, तिस चेतनरूपी बडे दर्पणविषे सम सत् जगत् भासता है, प्रतिबिंबित होता है, जैसे तालविषे किनारेके वृक्ष प्रतिबिंबित होते हैं, तैसे सब वस्तु चिद्दर्पणविषे प्रतिबिंबित होती है. हे रामजी! जेते कछु पदार्थ हैं, सो आत्मसत्ताकरि सिद्ध होते हैं, उसी अनुभवविषे सबका अनुभव होता है, जैसे षट् रसोंका स्वाद जिह्वाकरि सिद्ध होता है, तैसे सब पदार्थ चिदाकाशके आश्रय सिद्ध होते हैं, सब जगत्गण तिसीते उपजे हैं, तिसीविषे वर्तते हैं, बढते हैं तिसीविषे स्थित दीखते हैं, तिसीविषे लीन होते हैं, सबका अधिष्ठान वही सत्ता है, बहुरि कैसी है, गुरुकी गुरुता वही है, लघुकी लघुता वही है, स्थूलकी स्थूलता वही है, सूक्ष्मकी सूक्ष्मता वही द्रव्योंका द्रव्य वही है, कष्टोंविषे कष्टता वही है, बडेविषे बडाई वही है, तेजोंका तेज वही है, तमका तम वही है, वस्तुकी वस्तु वही है, दृश्योंका दृश्य वही है, दृष्टिका द्रष्टा वही है, किंचनविषे किंचन वही है, निष्किंचनविषे निष्किंचन वही है, तत्त्वोंका तत्त्व वही है, असत्यका असत्य वही है, सत्यका सत्य भी वही है, आश्रमविषे आश्रम वही है, अनाश्रमविषे अनाश्रम वही है. हे रामजी! ऐसी जो परम पावन सत्ता है, तिसविषे प्रयत्न करिकै स्थित होउ, बहुरि जैसी इच्छा होवै, तैसे करहु,

सो आत्मतत्त्व निर्मल है,अजर है, अमर है, शांतरूप है, चित्तके क्षोभते रहित है, भवसंसारते मुक्तिके निमित्त तिसविषे स्थित होउ.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे स्मृतिबीजविचारो नामैकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

द्विनवतितमः सर्गः ९२.

संशयनिराकरणोपदेशवर्णनम् ।

राम उवाच–हे महाआनंदके देनेहारे ! यह जो बीजोंका बीज तुमने कहा है, सो किस प्रकार प्राप्त होवै, जिस प्रकार उस पदकी शीघ्र प्राप्ति होवे सो उपाय कहौ. वसिष्ठ उवाच–हे रामजी ! इनके सबके बीजका जो उत्तर दिया है तिस तिस उपायकारि परमपदकी प्राप्ति होती है, अब और भी जो तैंने पूछा है,सो सुन, सत्ता सामान्यविषे स्थित होने निमित्त यत्न कर्तव्य है, जेती कछु संसारकी वासना हैं, बलकारि तिसको त्याग करिये अरु शुद्ध आत्माविषे तीव्र अभ्यास करिये, तब शीघ्र ही अविघ्न आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होवै. हे तत्त्ववेत्ता ! उस पदविषे क्षीण भी स्थित होहुगे, तब अक्षयभावको प्राप्त होहुगे. हे रामजी ! सत्ता सामान्य संवितमात्र तत्त्व है, तिसविषे स्थित होउ, जो इच्छा होवै सो करौ, तिस विना कछु अपर सिद्ध न होवैगा, सब वही भासैगा, ऐसा जो अनुभवतत्त्व है, सो तेरा स्वरूप है, तिसके ध्यानविषे स्थित हुए तुझको खेद कछु न होवैगा, ऐसा संवेदनसाथ ध्यान नहीं होता अरु ऊंचा पद है, पुरुषप्रयत्नकारि तिस पदको प्राप्त होहु. हे रामजी ! केवल संवेदनसाथ ध्यान नहीं होता, काहेते जो सर्वत्र संभव संवित् तत्त्व है, संवित् सर्वदा सर्वकाल सहायक होती है अरु सबसाथ मिली हुई है, जो कछु चितवै जहां इच्छित होवै, जो कछु करै, सो सब संवित्कारि सिद्ध होता है. हे रामजी ! आत्मतत्त्व प्रत्यक्ष है, तिसका भान नहीं होता, और कछु भासता है, यही अविद्या आवरण है, सो इसको दुःख होता है, जो स्वरू-

पके प्रमादकरि दृश्यकी वासना करता है, तिसकी दृढताकरि अंतःकरण दुःख पाता है, जब यत्न करिकै वासनाका त्याग करिये, तब मन अरु शरीरके दुःख सब नाश हो जावैंगे अरु पूर्व जो इसको मोह दृढ हो रहा है, जैसे मेरुको मूलते उखाड़ना कठिन है, तैसे वासनाका त्याग कठिन हो रहा है, सो वासना मनते होती है, जबलग मन क्षय नहीं होता, तबलग वासना भी क्षय नहीं होती अरु तत्त्वज्ञान विना मन नाश नहीं होता, जब वासना अरु मनका आवरण दूर होता है, यह परस्पर कारण रूप है. ताते हे रामजी ! तू पुरुषप्रयत्न करिकै मनके संकल्प विकल्पको निवृत्त कर, अभ्यास अरु विचार करिकै विवेकको उपायकरि भोगोंकी वासना दूरते त्याग, इसकरि तू शांतिमान् होवैगा, इन तीनोंका सम अभ्यासकरि तत्त्वज्ञान मनोनाश अरु वासनाक्षयका वारंवार अभ्यास कर, जबलग इनको न साधैगा, तबलग अनेक उपायोंकरि शांतिको न प्राप्त होवैगा. हे रामजी ! जो वासनाका क्षय होवै अरु मनोनाश तत्त्वज्ञानका अभ्यास न करै; तौ कार्य सिद्ध नहीं होता अरु जो मनोनाश करै अरु तत्त्वज्ञानकरि वासनाक्षय न करै, तब भी कल्याण न होवैगा अरु तत्त्वज्ञानका विचार करै अरु वासनाक्षय न होवै, तौ भी कुशल न होवैगा, जब तीनोंका सम अभ्यास होवै, तब फलकी प्राप्ति होवै. हे रामजी ! एकके सेवनेते सिद्धता नहीं प्राप्त होती, जैसे मंत्रोंको कोऊ प्रतिबंध लय करै, तब फलदायक नहीं होता. अर्थ यह कि, मंत्र संपूर्ण हुआ फलदायक होता है, एक एक चरण पढै तौ फलदायक नहीं होता जबलग सब मंत्र संध्यादिक एक ठौर नहीं पढता, तबलग मंत्र नहीं फुरते तैसे एकला किसीकरि कार्य सिद्ध नहीं होता, जब चिरकाल इनका इकट्ठा ही सेवन होवे, तब कार्य होवै, जैसे बडा शत्रु सैन्य संयुक्त होवै तिसको मारनेको एक शूरमा जावै, तब शत्रुको मारि न सके, जब इकट्ठे सेनाके ऊपर जाय पडै, तब उसको जीति लेवै, तैसे संसाररूपी शत्रु है, जब तत्त्वज्ञान मनोनाश और वासनाके क्षयका इकट्ठा अभ्यास होवै, तब संसाररूपी शत्रु नाश होवै. हे रामजी ! जब तीनोंका अभ्यास

करैगा, तब हृदयकी अहं मम ग्रंथी टूटि पडती है, जैसे अनेक जन्मोंकी संसारसत्यता जो इसके हृदयविषे स्थित हो रही है, सो अभ्यास योगकरि टूटि पडैगी नाश हो जावैगी, ताते चलते, बैठते, खाते, पीते, सूंघते, स्पर्श करते, जागते, इन तीनोंका अभ्यास करौ. हे रामजी ! वासनाके त्यागेते प्राणस्पंद रोंका जाता है, जब प्राणोंका स्पंद रोका, तब चित्त अचित्त हो जाता है; एक प्राणोंके रोंकेते वासना क्षय हो जाती है, तब भी चित्त अचित्त हो जाता है, आत्मयोगकरि अथवा वासना त्यागकरि आत्मतत्त्व प्रकाशैगा, इनविषे जो तेरी इच्छा होवै सोई कर. प्राणोंका रोंकना योगकरि भावैं, वासनाका त्यागकर; प्राणायाम तब होता है, जब गुरुकी दीनी युक्ति स्थित होती है, आसन अरु आहारके संयमकरि प्राणोंका स्पंद रोंका जाता है अरु सम्यक् ज्ञानकरिकै जगत्को अवास्तव जानता है, तब वासना नहीं प्रवर्त्तती, जो जगत्की आदि भी अरु अंत भी स्थित है, तिसविषे मन जब स्थित होता है, तब वासना नहीं उपजती. हे रामजी ! जब व्यवहारविषे निःसंग हुआ अरु संसारकी भावनाते विवर्जित हुआ अरु शरीरविषे नाशवंत बुद्धि भई तब वासना नहीं प्रवर्तती, जब विचारकरिकै वासना क्षय होवै, तब चित्त भी नष्ट हो जावैगा, जैसे वायुके ठहरते धूलि नहीं उडती, तैसे वासनाके क्षय हुए चित्त नहीं उपजता, जो प्राणस्पंद है, सोई चित्तस्पंद है, जब वासना फुरती है, तब जगद्भ्रम उपजता है, जैसे अरुडते धूलि उपजती है, तैसे चित्तते वासना उपजती है, जब प्राणस्पंद ठहरता है, तब चित्त भी ठहर जाता है, ताते यत्नकरि प्राणस्पंद अथवा वासनाके जीतनेका अभ्यास करौ, तब शांतिमान् होवोगे अरु जो यह उपाय न करैगा अरु औरको चित्त वश करनेका उपाय करैगा, तौ बहुत कालते पावैगा. हे रामजी ! मनके जीतनेका अन्य उपाय इन युक्ति विना और कोई नहीं, जैसे मतवाले हस्तीके अंकुश विना वश करनेका उपाय और कोई नहीं, तैसे मन युक्ति विना वश नहीं होता, सो युक्ति कौन है, संतोंकी संगति सच्छास्त्रोंका विचार करना, जो इस उपायकरि तत्त्व-

ज्ञान अरु वासनाक्षय अरु प्राणोंका स्पंद रोकना यह चित्त वश करनेको परमयुक्ति है, इसकरि चित्त शीघ्र ही जीता जाता है अरु जो इन उपायोंका त्याग करि हठसों मन वश किया चाहते हैं, सो क्या करते हैं, जैसे तमके नाश करनेको दीपक जगावै, तौ नाश हो जाता है अरु शस्त्रोंकरि तमको काटै, तौ तम नाश न होवैगा, तैसे और उपायोंकरि चित्त वश न होवैगा, इस विना और उपाय करते हैं, सो मूर्ख हैं, जैसे मतवाला हस्ती भेहकी तंतुसे बांधा नहीं जाता, जो कोऊ इसकरि बांधने लगै तौ महामूर्ख है, तैसे मनके जीतनेको और प्रकार जो हठ करते हैं, सो महामूढ हैं और उपाय करिकै क्लेश प्राप्त होवैगा, आत्मसुख न प्राप्त होवैगा, जैसे दुर्भागी जीवोंको कहूं सुख नहीं होता है. हे रामजी! तीर्थ, दान, तप, देवताकी पूजा यह चारों साधन जिनने किये हैं अरु मन जीतनेका उपाय नहीं किया, सो मृगकी नाईं हुए भ्रमते फिरते हैं, पहाड़ोकी कंदराविषे फल पत्र खाते फिरते हैं, मनका नाश किया नहीं, ताते आत्मपदको नहीं पाया, सो और पशुओंके समान हैं, जैसे और पशु मृग पहाडोंविषे होते हैं, तैसे वे भी हैं. हे रामजी! जिस पुरुषने मनको वश नहीं किया, तिसको शांति प्राप्त नहीं होती, जैसे कोमल अंग मृग ग्रामविषे गया शांतिको प्राप्त नहीं होता, जैसे जलविषे आया तृण नदीके वेगकरि भटकता फिरता है, कष्टवान् होता है, तैसे वह पुरुष कर्म करता है, मनको स्थित किये विना कष्ट पाता है, कबहूं दुःखसाथ जलता है, कबहूँ कर्मोंके वशते स्वर्गको प्राप्त होता है, सो भी नाश हो जाते हैं, जैसे जलविषे तरंग उछलता है, कबहूँ अधःको जाता है, तैसे कर्मोंके वशते जीव स्वर्ग नरकविषे मध्यविषे भ्रमते हैं, ताते ऐसी दृष्टिका त्याग करि शुद्ध संवित्मात्रको आश्रय कर अरु वीतराग होकरि स्थित होउ. हे रामजी! जगतविषे ज्ञानवान् सुखी है अरु जीता भी वही है, और सब दुःखी हैं अरु मृतक समान हैं अरु बली भी ज्ञानवान् है, सो मोहरूपी शत्रुको मारकर संसारसमुद्रके पारको प्राप्त होता है, और सब निर्बल हैं, ताते तुम भी ज्ञानवान् होहु, संवेदन रहित जो संवित्मात्र तत्त्व है, सो

एक है अरु सर्वकी आदि है, सबते उत्तम कलनाते रहित सर्वविषे स्थित है, तिसविषे स्थित होहु, तब कर्ता हुआ भी अकर्ता होवैगा अरु परम ब्रह्म उदय होवैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे संशयनिराकरणोपदेशवर्णनं नाम द्विनवतितमः सर्गः॥ ९२॥

त्रिनवतितमः सर्गः ९३.

मोक्षोपायवर्णनम्।

वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! जिस पुरुषने आत्मविचारकरि अल्प भी अपना चित्त निग्रह किया है, सो संपूर्ण फलको प्राप्त होवैगा अरु तिसका जन्म सफल हुआ है. हे रामजी! जिसके चित्तविषे विचाररूपी कणका उदय हुआ है, सो अभ्यास करिकै बडे विस्तारको पावैगा, निरागपूर्वक जिसके हृदयविषे विचार उपजा है, सो बढता जाता है अरु अविद्यारूपी गुणोंके फलको काटि डारैगा अरु सब शुभ गुण आनि आश्रय करैंगे. जैसे जलकरि पूर्ण हुए तालका सब पक्षी आनि आश्रय करते हैं. हे रामजी! जिसको सम्यक् ज्ञान प्राप्त हुआ है अरु निर्मल बोधकरि यथादर्शन हुआ है, तिसको इंद्रियोंके विषे चलाइ नहीं सकते, जबलग स्वरूपका प्रमाद होता है, तबलग आधि दुःख इसको होता है अरु जब स्वरूपविषे स्थित होता है, तब शरीर अरु मनके दुःख इसको वश नहीं करि सकते, जैसे बिजुरीको ग्रहण कोऊ नहीं करता, जैसे पुष्टिकारि मेघोंको मुष्टिविषे कोऊ पकड नहीं सकता, जैसे आकाशके चंद्रमाको मुष्टिविषे कोऊ नहीं पकड सकता, जैसे मूढ स्त्री चंद्रमाको मोहनेको समर्थ नहीं होती, तैसे ज्ञानवान्को दुःख कोऊ वशकरि नहीं सकता. हे रामजी! जो हस्ती मदकरि मत्त है अरु मद मस्तकते झरता है अरु भँवरे तिसके आगे शब्द करते हैं, मच्छरोंके प्रहार अरु स्त्रियोंके श्वास तिसको नहीं छेदि सकते, तैसे ज्ञानवान्को विषयोंके रागद्वेष चलाय नहीं

सकते अरु जिस हस्तीके मस्तकसों मोती निकसते हैं, ऐसे बलवान् हस्तीको नखोंसाथ विदारणेहारा जो सिंह है,जैसे उस सिंहको हिरण मारि नहीं सकता, तैसे ज्ञानवान्को दुःख चलाय नहीं सकता अरु जिसके फूत्कारसाथ वनके वृक्ष जल जाते हैं, ऐसा जो सर्प है, जैसे उस सर्पको दर्दुर ग्रासि नहीं सकते, तैसे ज्ञानवान्को रागद्वेष चलाय नहीं सकते अरु जैसे कोऊ राजा सिंहासनपर बैठेको तस्कर दुःख दे नहीं सकते, तैसे जो ज्ञानी स्वरूपविषे स्थित है, तिसको इंद्रियोंके विषय दुःख दे नहीं सकते अरु जो विचारते रहित देहाभिमानी हैं, आत्मतत्त्वको नहीं प्राप्त हुए; तिनको विषय उडाइ ले जाते हैं, जैसे सूखे पत्रको पवन उडाइ ले जाता है अरु ज्ञानवान्को चलाय नहीं सकते अरु जैसे पर्वत मंदिर पवनकारि चलायमान नहीं होते, तैसे ज्ञानवान् सुखदुःखविषे चलायमान नहीं होते अरु जो विचारते रहित हैं, सो देशके परिणामभावविषे स्थित मानता है अरु जगद्भाव है, संसारभाव पदार्थोंविषे मनुष्य जन्मविषे गुरुशास्त्रका मार्ग तिसकी ओरते सोइ रहा है अरु मूढ हो रहा है, खाने पीनेविषे सावधान है अरु विचारते शून्य है, सो मृतकसमान है, मृतक कहाता है, यह विचार इसको कर्तव्य है, जो मैं कौन हौं अरु यह जगत् क्या है, कैसे उत्पन्न हुआ है अरु कैसे निवृत्त होवैगा ? इस प्रकार संतोंका संग अरु अध्यात्मशास्त्रकारि विचारकारि जो पुरुष दृश्यभावको त्यागिकारि आत्मतत्त्वविषे स्थित होता है सो परमपदको पाता है, जैसे दीपके प्रकाशकारि पदार्थको पाता है, तैसे विचारकारि आत्मतत्त्व पाता है. हे रामजी ! जो शास्त्रविचारकारि आत्मतत्त्वका बोध होता है,सो ज्ञान कहाता है,सो ज्ञान ज्ञेयके साथ अभिन्नरूप है, अध्यात्मविद्याके विचार करिकै आत्मज्ञान प्राप्त होता है, जैसे दूधसों मथिकारि माखन काढता है, तैसे विचारकारि आत्मज्ञान प्राप्त होता है, ज्ञेय इसके अंतर होता है, सो ज्ञेय परब्रह्मस्वरूप है, सत्य है, असत्यकी नाईं होकारि स्थित है, ज्ञानवान् तिसको पाइकारि तृप्त

होता है अरु जीवन्मुक्त होकरि अपने आपविषे प्रकाशता है, जैसे चक्रवर्ती राज्यविषे आनंदकरि तृप्त होता है, तैसे ज्ञानवान् ब्रह्मानंदविषे इंद्रियोंकी इच्छाते रहित शोभता है, शब्द स्पर्श रूप रस गंध पांचों इंद्रियोंमें आसक्त नहीं होता, सुंदर राग तंत्रिके शब्दविषे स्त्रियोंके गानेविषे और भी जो कोकिला पक्षी है अरु गंधर्व गंधर्वीविषे लेकारि गायन है, तिनका किसीविषे आसक्त नहीं होता अरु जेते कछु स्पर्श हैं सुंदर फूल अगरु चंदन मंदार कल्पवृक्षोंके फूलोंकी सुगंध अरु सुंदर स्त्रियोंका स्पर्श करना, अप्सरा नागकन्या अरु स्वर्णके द्रवत्वकी नाईं जिनके अंग हैं, तिनका स्पर्श करना अरु हीरा मणि भूषण नाना प्रकारके वस्त्र हैं, तिनविषे बंधमान नहीं होता, जैसे चंद्रमा सुंदर अरु शीतल है, परंतु सूर्यमुखी कमलोंको विकास नहीं करि सकता, तैसे सुंदर स्पर्श ज्ञानीके चित्तको हर्षवान् नहीं करते, जैसे मरुस्थलविषे हंस प्रसन्न नहीं होता तैसे ज्ञानवान् स्पर्शविषे नहीं प्रसन्न होते अरु ज्ञानवान् रसादिकविषे भी बंधवान् नहीं होता, दूध दही घृतादिक जो रस हैं अरु भक्ष्य भोज्य लेह्य चोष्य चार प्रकारके भोजन हैं अरु कटु तीक्ष्ण मीठा खारा जितने रस हैं, तिनकी इच्छा ज्ञानवान् नहीं करते, किसीविषे बंधमान् नहीं होते, आकाश बोधकारि नित्य तृप्त हैं, किसी भोगकी इच्छा नहीं करते जैसे ब्राह्मण कूकरका मांस खानेकी इच्छा नहीं करते, तैसे ज्ञानवान् उर्वशी रंभा मेनका आदिक अप्सराकी इच्छा नहीं करता अरु गन्धकी इच्छा भी नहीं करता, चंदन अगर कस्तूरी मंदार वृक्षके फूल सुगंधिकी इच्छा नहीं करता; जैसे मच्छी मरुस्थलकी इच्छा नहीं करती, तैसे ज्ञानवान् सुगंधकी इच्छा नहीं करता अरु रूपकी इच्छा भी नहीं करते, सुंदर स्त्रियां बाग तालाव नदियां इत्यादिक जो रूपवंत पदार्थ हैं, तिनकी इच्छा नहीं करता, जैसे चंद्रमा बादलोंकी इच्छा नहीं करते, तैसे ज्ञानवान् रूपकी इच्छा नहीं करते औरकी क्या बात है, इंद्र यम विष्णु ब्रह्मा समुद्र कैलास मंदराचल रत्न मणि कांचन यह जो बडे

बड़े पदार्थ हैं, तिनकी इच्छा नहीं करता, जैसे राजा नीच पदार्थोंकी इच्छा नहीं करता, तैसे ज्ञानवान् पदार्थोंकी इच्छा नहीं करता, समुद्रके गर्जने सिंहके गर्जनेते बिजलीके गर्जनेते आदि भयानक शब्द हैं तिनको सुनकरि भयमान नहीं होता, जैसे शूरमा धनुष्यका शब्द सुनकरि भयमान नहीं होता, जैसे ज्ञानवान् मतवाले हस्ती अरु वैताल पिशाचके शब्द सुन अरु इन्द्रके वज्रका शब्द देवता सुनता हुआ कंपायमान नहीं होता सत् स्वरूपकी स्थितिते चलायमान कदाचित् नहीं होता अरु जो आरेसे शरीरको काटिये अरु खड्गसे कणकण करिये, बाणोंसे वेधा जावै, तौ भी कम्पायमान नहीं होता; उसको रागद्वेष किसीविषे नहीं होता, शरीरपर एक ओर जलता अंगार राखिये अरु एक ओर फूलोंका स्पर्श राखिये तौ भी हर्ष शोकवान् नहीं होता अरु एक ओर खड्गधारावत् तीक्ष्ण स्थान होवै अरु एक ओर पुष्पशय्या होवै, तिसको दोनों तुल्य हैं, एक शीतल स्थान होवै, एक ओर तप्त शिला होवै, दोनों उसको तुल्य हैं, एक ओर मारनेवाला विष होवै, दूसरी ओर जिवानेवाले अमृत होवै सो दोनों उसको तुल्य हैं. हे रामजी ! संपदा प्राप्त होवै, भावै आपदा प्राप्त होवै, भावै मृत्यु प्राप्त होवै, इनविषे व्यवहार करता भी दृष्टि आता है, परंतु अंतरते हर्ष शोक नहीं, उसका मन अन्तरते मुक्त है, सदा सम रहता है. हे रामजी ! लोहके जंबुरासाथ उसका मांस तोडिये अरु नरकविषे डारिये अरु ऊपर शस्त्रोंकी वर्षा होवै, तौ भी ज्ञानवान् पुरुष भयको न पावैगा अरु न उद्वेगवान् व्याकुल होवैगा, न दीन होवैगा, ज्ञानवान् इनविषे सदा समसन रहता है, पहाड़की नाईं धैर्यवान् स्थित रहता है. हे रामजी ! ज्ञानवान् रागद्वेषते रहित है, देह अभिमानते मुक्त जो हुआ है, तिसका शरीर अग्निविषे पडै अथवा खाईविषे गिरै, अथवा स्वर्गविषे होवै उसको दोनों तुल्य हैं हर्ष शोकते रहित है. हे रामजी ! जिसको स्वरूपविषे दृढ स्थिति भयी है, सो चलायमान नहीं होता, जैसे मेरु स्थित है, उसको पवित्र पदार्थ होवै अथवा अपवित्र होवै पन्थ होवै अथवा कुपन्थ

होवै, विष होवै अथवा अमृत होवै, मीठा, खट्टा, सलोना, कडुवा, दूध, दही, घृत, रस, रक्त, मांस, मद्य, अस्थि, तृण आदिक जो भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य भोजन हैं, सो सम हैं, न इष्टविषे रागवान् होता है, न अनिष्टविषे द्वेषवान् होता है, एक प्राणोंके निकसनेको सम्मुख आवै अरु दूसरा प्राणोंकी रक्षानिमित्त आवै, तो दोनोंको आत्मस्वरूप शांतमन मधुररूप देखता है, रागद्वेषते रहित है, रमणीय अरमणीय पदार्थोंको सम देखता है; संसारकी आस्था त्यागि दीनी है, बोधस्वरूपविषे निश्चय भया है, चित्त निराग पदको प्राप्त भया है, सब जगत् उसको आत्मस्वरूप भासता है, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, पञ्च विषयोंके भोग अवसर अपना नहीं पाते, जैसे दर्पणको देखने लगै तो प्रतिबिंब भासता है, दर्पणकी सूरत नहीं रहती, तैसे विषयोंविषे आत्मा देखता है, विषयोंकी सूरत नहीं रहती अरु जो अज्ञानी है, तिसको इंद्रियां ग्रास लेती हैं, जैसे तृणोंको मृग ग्रासि लेता है अरु जिसने आत्मपदविषे विश्रांति पाई है, तिसको इंद्रियां ग्रास नहीं सकतीं. हे रामजी ! अज्ञानरूपी समुद्रविषे जो पडा है अरु वासनारूपी लहरीसे मिलिकरि उछलता है अरु गिरता है, तिसको आशारूपी तंदुआ ग्रास लेता है, हाय हाय करता है शांतिको प्राप्त नहीं होता है अरु जो विचार करिकै आत्मपदको प्राप्त भया है, सो विश्रांतिको पाइ चलायमान नहीं होता. जैसे सुमेरुपर्वत जलके समूहकरि चलायमान नहीं होता, तैसे वह संकल्प विकल्पविषे चलायमान नहीं होता, सर्व संकल्पकी सीमा आत्मपदविषे विश्रांति जिसको भयी है, सो उत्कृष्टताको प्राप्त भया है. हे रामजी ! तिसको यह जगत ज्ञानमात्र भासता है, संवित्मात्र जानिकरि विचार करता है, न किसीका ग्रहण त्याग करता है ताते भ्रांतिको त्यागिकरि संवित्मात्र ही तेरा स्वरूप है, किसका त्याग करता है, किसका ग्रहण करता है, जो आदिविषे भी न होवै, अन्तविषे भी न रहै, मध्यविषे कछु भासै सो भ्रममात्र जानिये, इस प्रकार जानिकरि भाव अभावकी बुद्धिको त्यागिकरि निःसंवे-

दनरूप होइकरि संसारसमुद्रको तरि जावहु, मन बुद्धि इंद्रियांकरिके कर्म करौ, भावै न करौ, निःसंग होहुगे तब तुमको लेप न लगैगा. हे रामजी! जिसका मन अभिमानते रहित हुआ है, सो कर्म करता भी लेपायमान नहीं होता, जैसे मन और ठौर गया होता है, तौ विद्यमान शब्द अथवा रूप पदार्थोंको होते भी नहीं जानता, तैसे जिसका मन आत्मपदविषे स्थित हुआ है, तिसको सुखदुःख कर्म नहीं लगता, जो पुरुष अभिमानते रहित है, सो कर्मोंविषे सुखदुःखको भोगता दृष्टि आता है, परंतु उसको स्पर्श नहीं करता, देखो तौ यह बालक भी जानते हैं, जो मन और ठौर जाता है, तौ सुनता भी नहीं सुनता, तैसे वह पुरुष करता भी नहीं करता. हे रामजी! जिसका मन असंग हुआ है, सो देखता है, परंतु नहीं देखता, सुनता है, परंतु नहीं सुनता, स्पर्श करता है, परंतु नहीं करता है, सूँघता है, रस लेता है, परंतु नहीं लेता, इत्यादिक जो कछु चेष्टा हैं, सो कर्त्ता भी अकर्त्ता है उसका चित्त आत्मपदविषे लीन भया है, जैसे कोऊ पुरुष देशांतरको जाता है, सो उस देशविषे व्यवहार कर्म करता है, परंतु उसका चित्त गृहविषे रहता है, तैसे ज्ञानवान्का चित्त आत्मपदविषे रहता है, यह बात मूर्ख भी जानता है, कि जैसा वेग मनविषे तीव्र होता है, तिसीकी सिद्धता होती है, सोई भासता है, और नहीं भासता. हे रामजी! सर्व अनर्थोंका कारण संग है, संसारके संगकारि जन्ममरणके बंधनको प्राप्त होता है ताते सब अनर्थोंका कारण संसारका संग है, सब इच्छाका कारण संग है अरु सब आपदाका कारण संग है, संगत्याग करि मोक्षरूप अजन्मा होता है, ताते संगको त्यागिकरि जीवन्मुक्त होकरि विचरहु. राम उवाच-हे भगवन्! सर्व संशयरूपी कुहाडके नाशकर्त्ता शरत्कालका पवन, संग किसको कहते हैं? संक्षेपते मुझको कहौ. वसिष्ठ उवाच-हे रामजी! भाव अभाव जो पदार्थ हैं; सो हर्ष शोकको देनेहारे हैं, जिस मलिन वासकारि यह प्राप्त होता है, सो वासना संग

कहाता है. हे रामजी ! जो देहविषे अहंबुद्धि होती है अरु संसारकी सत्य प्रतीति होती है, तिस संसारके इष्ट अनिष्टको रागद्वेष सहित ग्रहण करता है, ऐसी मलिन वासना संग कहाती है अरु जीवन्मुक्तकी वासना हर्षशोकते रहित शुद्ध होती है, सो निःसंग कहाती है, तिसकी वासना जन्ममरणका कारण नहीं होती. हे रामजी ! जिस पुरुषको देहविषे अभिमान नहीं होता अरु स्वरूपविषे स्थित है, शरीरके इष्ट अनिष्टविषे रागद्वेष नहीं करता, उसकी शुद्ध वासना है, वह जो सत्ता है, सो बंधनका कारण नहीं होती, जैसे भूना बीज नहीं उगता, तैसे ज्ञानवान्की वासना जन्ममरणका कारण नहीं होती अरु जिसकी वृत्ति जगत्के पदार्थविषे स्थित है अरु रागद्वेषकरि ग्रहण त्याग करता है, ऐसी जो मलिन वासना है, सो जन्मोंका कारण है, इस वासनाको त्यागिकरि जब तू स्थित होवेगा, तब तू कर्त्ता हुआ भी निर्लेप रहैगा, हर्ष शोकादि विकारोंते जब तू रहित होवैगा, तब वीतराग भय क्रोधते असंग होवैगा. हे रामजी ! जिसका मन असंग हुआ सो जीवन्मुक्त हुआ है, ताते तू भी वीतराग होकरि आत्मतत्त्वविषे स्थित होवहु, जीवन्मुक्त पुरुष इंद्रियोंके ग्रामको निग्रह करिकै स्थित होता है अरु मान मद वैरको त्यागिकरि संतापते रहित स्थित होता है, जो कछु कर्म करते हैं, सो सब आत्मा जानि करते हैं, परंतु व्यवहार बुद्धिते रहित असंग होइकरि कर्म करते हैं, सो करते भी अकरते हैं, तिसको आपदा अथवा संपदा प्राप्त होवै; अपने स्वभावको नहीं त्यागते, जैसे क्षीरसमुद्रको मन्दराचल पर्वत पाइकरि शुक्लताको न त्यागता भया, तैसे जीवन्मुक्त अपने स्वभावको नहीं त्यागते. हे रामजी ! आपदा प्राप्त होवै अथवा चक्रवर्ती राज्य प्राप्त होवै अथवा सर्पका शरीर प्राप्त होवै अथवा इन्द्रका शरीर प्राप्त होवै, इन सबविषे सम आत्मभाव स्थित होते हैं, जैसे क्षयकाल और उदयकालमें चन्द्रमा एकसा ही रहता है वैसे हर्ष शोकको नहीं प्राप्त होते हैं अरु सर्व आरंभको त्यागिकरि नानात्वभावते

रहित स्थित होते हैं, विचार करिकै जिनने आत्मतत्त्व पाया है, जैसे स्थिति होवै तैसे स्थिति होवै, तुम भी इसी दृष्टिको पाइकरि आत्मतत्त्वको देखौ, तब वीतज्वर होवैगा, आत्मपदको पाइकरि बहुरि जन्म मरणके बंधनमें न आवैगा.

इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे आर्षे देवदूतोक्तमहारामायणे मोक्षोपायवर्णनं नाम त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

इति पञ्चममुपशमप्रकरणं समाप्तम् ५.

पुस्तक मिलनेका पता–

खेमराज श्रीकृष्णदास

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) प्रेस खेतवाड़ी ७ गली खम्बाटा लैन बंबई.

NEPAL SANSKRIT UNIVERSITY
पुस्तकालय
Acc. 1099
१०५५

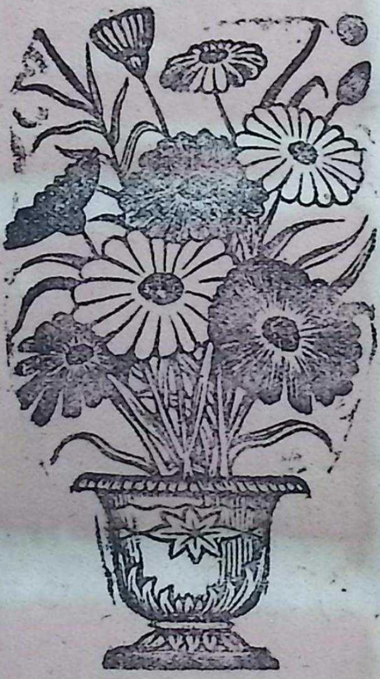

ব্রহ্মার একদিন।
Page ৩৮।